CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिन्दी विश्व-भारती

ज्ञान विज्ञान का प्रामाणिक कोश

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिन्दी
विश्व-भारती

: ज्ञान-विज्ञान का प्रामाणिक कोश :

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हिन्दी

विश्व-भारती

ज्ञान-विज्ञान का प्रामाणिक कोश

भारत सरकार के अनुदान से प्रकाशित
हिन्दी के सुप्रसिद्ध ज्ञानकोश का
संशोधित संस्करण

संपादक

कृष्ण वल्लभ द्विवेदी

खंड

२

हिन्दी विश्व-भारती
ज्ञान-विज्ञान-साहित्य की प्रमुख प्रकाशन-संस्था

कमलाश्रम, चारबाग, लखनऊ-२२६००१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकाशक
राजराजेश्वरप्रसाद
कमलाश्रम, चारबाग, लखनऊ

4628

नवीन संशोधित संस्करण

सर्वाधिकार स्वरक्षित

मूल्य
प्रति खंड : चालीस रुपये

State Museum Library Lucknow

मुद्रक
मुद्रण-कला-मंदिर, लखनऊ,
तथा स्वस्तिक प्रिन्टिङ्ग प्रेस, लखनऊ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्रंथ-परिचय

अपने जन्म के ३६ वर्ष बाद, 'हिन्दी विश्व-भारती' का यह पुनर्संस्करण प्रस्तुत करते समय, अब फिर से नए सिरे से उसका परिचय देने की वैसे तो कोई आवश्यकता नहीं है, कारण देश में ऐसी कोई भी हिन्दी की शिक्षण-संस्था अथवा पुस्तकालय नहीं है, जिनके लिए यह प्रकाशन आज एक अपरिचित या अज्ञात वस्तु हो। परन्तु चूँकि केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय के आदेशानुसार उसके नवीन स्वरूप का निर्माण करते समय ग्रंथ की मूल रूपरेखा और व्यवस्था में बहुत-कुछ उलटफेर करना पड़ा है तथा उसकी सजधज आदि में भी एक क्रांतिकारी परिवर्तन का समावेश हुआ है, अतः उसकी एक संक्षिप्त रूपरेखा यहाँ प्रस्तुत कर देना अनुपयुक्त न होगा।

सबसे पहले तो हम यह बात स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि यद्यपि पठन-सामग्री एवं उपादेयता के नाते यह ग्रंथ एक 'एनसाइक्लोपीडिया' (या विश्वकोश) की कोटि में निर्विवादतः परिगणित हो सकता है, तथापि इसे एक 'ज्ञानकोश' कहकर पुकारना हमने कहीं अधिक उपयुक्त समझा है; कारण, यह अकारादि क्रम से निर्मित कोई निर्देश-ग्रंथ नहीं है, जैसा कि आम तौर पर लोग 'एनसाइक्लोपीडिया' (या ज्ञानकोश) का अर्थ लगाते हैं। वस्तुतः इसका प्रयोजन एक सर्वतोमुखी शिक्षक की पूर्ति करना है – उस शिक्षक की नहीं, जो विद्यालय की चहारदीवारी के घरौंदे में अपने को सीमित रखते हुए, निरी टकसाली पाठ्यपुस्तकों की जानकारी करा देने में ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान बैठे, प्रत्युत एक ऐसे जीवन-पथप्रदर्शक की, जो मानव-जीवन के विकास से सम्बन्धित समस्त पहलुओं का ज्ञान कराकर हमारी बहुमुखी उन्नति में सहायक बन सके।

इसी अभिप्राय से 'हिन्दी विश्व-भारती' के इस संस्करण का नियोजन और निर्माण उसे एक विशिष्ट साँचे में ढालकर किया गया है। इसके आगे सूचित १६ भाग हैं, जिनके अंतर्गत दी जानेवाली पाठ्य-सामग्री का संकलन इस प्रकार किया गया है कि पहले अधिक सरल, रुचिकर एवं बोधगम्य विषय पाठकों के सामने आएँ, तदनंतर क्रमशः अधिक गम्भीर विषयों के साथ उनका साक्षात्कार हो। यही नहीं, एक ही विषय या विभाग की सामग्री पाठक के लिए बोझिल न बन जाय, इस उद्देश्य से उसे कई अंशों में विभक्त करके अलग-अलग खंडों में बिखेर दिया गया है – इस बात का ध्यान रखते हुए कि उसका नैसर्गिक तारतम्य टूटने या बिगड़ने न पाए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: 'हिन्दी विश्व-भारती' के विविध विभाग :

१. **विशाल मानव परिवार**—पृथ्वी के विभिन्न भूभागों में बिखरे हुए मानव-जाति के विशाल परिवार की विविध शाखाओं का परिचय । **(नृतत्व-शास्त्र)**

२. **प्रकृति पर विजय**—मनुष्य ने पहले-पहल औजार बनाना सीखा, तब से वायुयान, रेडियो, टेलीविजन और कृत्रिम उपग्रहों के निर्माण के इस युग तक मनुष्य द्वारा प्रकृति पर विजय पाने की अमर गाथा । **(आविष्कार, अनुसंधान, आदि)**

३. **विश्व की झाँकी**—दृश्य जगत् के अनन्त रूप—सर्वव्यापक आकाश—के अंचल में बिखरे हुए कोटि-कोटि नक्षत्रों, नीहारिकाओं एवं ग्रहों-उपग्रहों की कहानी । **(ज्योतिष)**

४. **जन्तु-जगत्**—भाँति-भाँति के रंग-रूप और विविध प्रकार के रहन-सहनवाले अनगिनत प्राणियों की अद्‌भुत जीवनलीला का मनोरंजक विवरण । **(जीव-विज्ञान)**

५. **मनुष्य की युगयात्रा**--संगी-साथी जानवरों को पीछे छोड़ता हुआ मनुष्य जिस दिन जंगलों से बाहर निकला था, तब से आज तक की उसकी विकास-यात्रा की गौरव-गाथा । **(विकासवाद, इतिहास, आदि)**

६. **हमारी क्रीड़ाभूमि पृथ्वी**—जिस पर अपने जीवन का खेल रचकर हम इस ब्रह्माण्ड की यात्रा कर रहे हैं, उस धरती की भौतिक और भौगोलिक रूपरेखा का परिचय । **(भूविज्ञान और भूगोल)**

७. **वनस्पति-संसार** – जिनके बिना हमारी यह धरती एक विशाल मरुप्रदेश जैसी होती और किसी भी प्राणी का उस पर पैदा होना या जीवित रहना असंभव होता, उन अचरजभरे पेड़-पौधों की कहानी । **(वनस्पति-विज्ञान)**

८. **महापुरुष**—मनुष्य जाति के उन महान् प्रकाशस्तम्भों का परिचय, जो अपनी ज्योति द्वारा युग-युग तक हमारे अंधकारमय पथ को आलोकित कर संसार का पथ-निदर्शन करते रहेंगे । **(जीवन-चरित्र)**

९. **द्रव्य-जगत्**—उन तत्वों और प्राकृतिक शक्तियों की कहानी, जिनसे विश्व के भौतिक कलेवर की रचना हुई है, तथा जिनके समवाय से इस सृष्टि का संचालन होता है । **(भौतिक और रसायन विज्ञान)**

१०. **मानव-शरीर**—जीव-जगत् के एक सदस्य के नाते मनुष्य के स्थूल भौतिक कलेवर की रचना एवं क्रिया-प्रक्रियाओं का अध्ययन । **(शरीर-शास्त्र)**

११. **कला**—शिल्प, संगीत और नृत्य आदि के रूप में अभिव्यक्ति का मार्ग खोजती हुई चिरंतन मानवीय पिपासा और उसके फलस्वरूप उपजी अद्‌भुत भावसृष्टि की कहानी । **(चित्रकला, शिल्प, संगीत, आदि)**

१२. **भारतभूमि** – अपनी मातृभूमि की भौतिक रूपरेखा और सांस्कृतिक विरासत की झाँकी । **(भारत-दर्शन)**

१३. **समाज**--मनुष्य-जीवन के सामूहिक स्वरूप और उससे उत्पन्न आर्थिक एवं राजनीतिक पहलुओं का विवेचन । **(समाज-विज्ञान, राजनीति, अर्थशास्त्र)**

१४. **साहित्य**--दृश्य जगत् का अनुभव-ज्ञान प्राप्त करने के साथ-साथ विचारों और भावनाओं के कल्पनालोक में अनुभूत भावों को भाँति-भाँति के प्रबन्ध-जाल में बुनकर अक्षरबद्ध अथवा छंदोबद्ध करने का जो प्रयास मानव मस्तिष्क द्वारा किया गया है, इसकी रोचक कहानी । **(विश्व-साहित्य)**

१५. **मनोविज्ञान**--जिसकी बदौलत उन्नति की दौड़ में अन्य जीवधारियों को पीछे छोड़कर मनुष्य कहाँ से कहाँ उठ गया है, उसकी उस अद्‌भुत संपत्ति 'मस्तिष्क' या 'मन' की रहस्यमयी क्रिया-प्रक्रियाओं का परिचय । **(मनोविज्ञान)**

१६. **सत्य की खोज**--एक अद्‌भुत पहेली की तरह हजारों वर्षों से मनुष्य की बुद्धि को उलझन में डाले हुए इस अचरजभरे सृष्टि-प्रपंच के रहस्यों के संबंध में संचित तत्व-ज्ञान का विवेचन । **(दर्शन तथा अध्यात्म)**

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लेखक-मंडल

डॉ० गोरखप्रसाद, डी०एस-सी० (एडिनबरा), एफ० आर० ए० एस०, आचार्य, गणित-विभाग, प्रयाग-विश्वविद्यालय ।

डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी, डी० एस-सी० (लंदन), अध्यक्ष, इतिहास-विभाग, प्रयाग-विश्वविद्यालय; तदनंतर उप-कुलपति, सागर-विश्वविद्यालय ।

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, पी-एच०डी०, डी० लिट्, अध्यक्ष, प्राच्यविद्या - विभाग काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय ।

श्री वीरेश्वर सेन, एम० ए०, वाइस-प्रिंसिपल, राजकीय कला-महाविद्यालय एवं तदनंतर डायरेक्टर, डिजाइन सेंटर, लखनऊ ।

डॉ० शिवकण्ठ पांडे, डी० एस-सी०, आचार्य, वनस्पति-विज्ञान-विभाग, लखनऊ विश्व-विद्यालय ।

श्री भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव, एम०एस-सी० एल-एल० बी०, आचार्य, भौतिक विज्ञान, धर्मसमाज-कॉलेज, अलीगढ़ ।

श्री श्रीचरण वर्मा, एम० एस-सी०,प्राध्यापक, जीवविज्ञान-विभाग, प्रयाग-विश्वविद्यालय ।

श्री मदनगोपाल मिश्र, एम० एस-सी०, प्रिंसिपाल, कान्यकुब्ज कॉलेज, लखनऊ ।

डॉ० भगवतशरण उपाध्याय, एम० ए०, पी-एच० डी०, आचार्य, इतिहास-विभाग, विक्रम-विश्वविद्यालय ।

डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव, एम० ए०, पी-एच० डी०, प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग, लखनऊ-विश्वविद्यालय ।

डॉ० सत्यनारायण, पी-एच० डी० (हाइडेल-बर्ग), प्रख्यात लेखक, पत्रकार एवं भू० संसद सदस्य ।

श्री रामनिहोर चतुर्वेदी,एम० ए०,एल०टी०, प्रिंसिपाल, महात्मा गांधी विद्यालय, बछरावाँ (रायबरेली)

डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, एम०ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०, प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग, लखनऊ-विश्वविद्यालय ।

डॉ० शंकरलाल यादव, एम० ए०, पी-एच० डी०, प्राध्यापक, हिन्दी - विभाग, लखनऊ-विश्वविद्यालय ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

डॉ० जे० एन० राय, एम० एस-सी०, पी-एच० डी०, प्राध्यापक, वनस्पति-विज्ञान विभाग, लखनऊ-विश्वविद्यालय।

डॉ० सी० एस० अवस्थी, एम० ए०, पी-एच० डी०, अध्यक्ष, दर्शन-विभाग, सागर-विश्वविद्यालय।

श्री रामनारायण कपूर, बी० एस-सी०, मेटलार्जिस्ट, इंडियन आयर्न एण्ड स्टील कं०, पश्चिमी बंगाल।

श्री हरीश चन्द्र निगम, एम० एस-सी०, प्राध्यापक, जीव-विज्ञान-विभाग, क्रिश्चियन-कॉलेज, लखनऊ।

श्री श्यामसुन्दर द्विवेदी, एम० ए०, एल-एल० बी०, साहित्यरत्न, अतिरिक्त जिला जज, मध्य प्रदेश।

श्री तिलकसिंह परमार, एम०ए०, साहित्य-रत्न, भूतपूर्व संपादक, 'पांचजन्य'।

श्री चन्द्रोदय दीक्षित, एल-एल० एम०, संपादकीय विभाग, 'पायनियर' लखनऊ।

श्री रामकृष्ण अवस्थी, एम० ए०, संपादकीय विभाग, 'नेशनल हेराल्ड,' लखनऊ।

श्री शिवप्रसाद त्रिपाठी, एम० ए०, बी०एड०, प्राध्यापक, महात्मा गांधी महाविद्यालय, बछरावाँ।

श्री रमेशदत्त मिश्र, एम० ए०, दर्शन-विभाग, लखनऊ-विश्वविद्यालय।

श्री भुवनेश्वर, लेखक एवं नाटककार।

श्री नीलकण्ठ तिवारी, एम० ए०, कवि एवं गीतकार।

श्री ब्रजमोहन तिवारी, एम० ए०, एल० टी०, भूतपूर्व प्राध्यापक, कान्यकुब्ज कॉलेज, लखनऊ।

श्री लक्ष्मीशंकर मिश्र, 'अरुण', लेखक एवं पत्रकार, लखनऊ।

श्री रमाकान्त शास्त्री, भूतपूर्व संपादक, 'संघर्ष', लखनऊ।

श्री सदाशिव शुक्ल, बी० ए०, अध्यापक, मंसादीन शुक्ल इन्टर कॉलेज, लखनऊ।

श्री शंभुप्रसाद बहुगुणा, एम० ए०, प्राध्यापक, आई० टी कॉलेज, लखनऊ।

श्री गोविन्दनारायण नातू, एम० म्यु०, प्रिंसिपाल, भातखण्डे संगीत-महाविद्यालय, लखनऊ।

श्री एम० एस० कल्याणपुरकर, नृत्य-निपुण, अध्यक्ष, नृत्य-विभाग, भातखण्डे संगीत-महाविद्यालय, लखनऊ।

श्रीमती वेंडी वोहरा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषयानुक्रम

: मनुष्य की युगयात्रा :

हम कौन और क्या हैं--जन्तु जगत् में हमारा स्थान : [श्री श्रीचरण वर्मा]

मनुष्य भी जन्तु-जगत् का एक सदस्य है—क्या मनुष्य एवं अन्य प्राणियों की आत्मा एक है—जन्तु-जगत् में मनुष्य का स्थान—मानव-शरीर के मुख्य स्मारक-चिह्न—मनुष्य की दुम क्या हुई—अन्य अवशिष्ट स्मृति-चिह्न—मनुष्य एवं अन्य स्तनधारियों की गर्भावस्था—रक्त की बनावट एवं गुणों में समता व भिन्नता—अपने मस्तिष्क की ही बदोलत मनुष्य मनुष्य है—वानर-कक्षा के विशिष्ट लक्षण या गुण—मनुष्य-वंश और वनमानुषों के गुणों की तुलना—शिम्पैंजी का बुद्धिबल—मनुष्य वनमानुषों से कैसे पृथक् हुआ—मानव-मस्तिष्क :: दृष्टि और कल्पना-शक्ति—हमारी और जानवरों की भाषा—बातचीत करनेवाली मधुमक्खी और कुत्ते—मनुष्य और समाज—नेकी और मनुष्य—सत्य और ईमानदारी—मनुष्य की परोपकार-वृत्ति—मनुष्य वनमानुष आदि निकट के सम्बन्धियों से कैसे, कब और कहाँ पृथक् हुआ—नई दुनिया के बन्दर—प्रधानभागीय अर्थात् 'प्राइमेट्स' वर्ग का वंशवृक्ष और उसमें मनुष्य का स्थान—पुरानी दुनिया के बन्दर—वानर-वंश से मनुष्य की विकास-धारा अलग है—वृक्षवासी आदिम पुरखे से मनुष्य का विकास—वनमानुष मनुष्य का साथ क्यों न दे सके—आदि मनुष्य कहाँ जनमा—मनुष्य कितना पुराना है।

पृ० ४१९-४५२

प्रस्तर-विकल्पों का लेखा--हमारे अत्यन्त प्राचीन पूर्वज : [श्री श्रीचरण वर्मा]

प्रस्तर-विकल्प कैसे बने—प्रस्तर-विकल्पों का अध्ययन—ये चिह्न बहुत क्यों नहीं मिले—उपमनुष्य की सबसे पुरानी खोपड़ी—पिथैकेन्थ्रापस इरैक्टस या खड़ा होकर चलनेवाला सबसे पहला उपमनुष्य—साइनैनथ्रापस पिकेनैन्सिस—योरप में प्राप्त अवशेष—पेलियनथ्रापस हाइडैलबर्जैसिस--होमो नीएनडरथलैनसिस—नीएनडरथल जाति लुप्त क्यों हो गई—होमो र्‌होडेशियेन्सिस—होमो सोलोएन्सिस—होमो सेपियेन्स वर्ग की क्रोमैगनन जाति—अभी मानव-जाति शैशवावस्था ही में है।

पृ० ४५३-४६९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनुष्य की लंबी यात्रा का आरंभ--पाषाण-युग में मानव : [डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी]

मनुष्य की प्रगति—आदि मानव का जीवन—पाषाण-युग में मनुष्य—पाषाण-युग का उत्तरकाल—सभ्यता की ओर मनुष्य का प्रयाण—धातुओं से परिचय और उनका प्रयोग।

पृ० ४७०-४७७

सभ्यताओं का उदय--(१) प्राचीन भारत की सभ्यता : [डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी]

भारतभूमि के आदिम निवासी—मोहनजोदड़ो और हड़प्पा—उच्च कोटि की सभ्यता—धार्मिक मत और विश्वास—वैदिक आर्यों का उत्थान :: अनार्यों से उनका संघर्ष और उन पर विजय—आर्यों का भारत में प्रसार—ऋग्वैदिक युग के विभिन्न दलों में संघर्ष—पौराणिक अनुश्रुति :: सूर्यवंश, चन्द्रवंश, आदि—आर्य सभ्यता उन्नति की चोटी पर—महाभारत का युद्ध—महाभारत-युद्ध के बाद के भारत का राजनीतिक मानचित्र—**आर्य-सभ्यता : (क) पूर्व वैदिक काल**—सामाजिक व्यवस्था—आर्थिक जीवन—उद्योग-धंधे और व्यापार—आहार, पोशाक और रहन-सहन—धर्म-कर्म—विद्या और साहित्य—राजनीतिक संगठन—**आर्य सभ्यता : (ख) उत्तर वैदिक काल**—सामाजिक संगठन—अर्थ-व्यवस्था—धर्म-कर्म—विद्या-शिक्षा—राजनीतिक संगठन।

पृ० ४७८-४९६

सभ्यताओं का उदय--(२) सुमेरियन सभ्यता : [डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी]

सुमेरियन लोग :: आकृति और वेशभूषा—किश, एरेच, उर, लगश, आदि नगर-राज्य—सुमेरियन सभ्यता—सुमेरियन सभ्यता की अमूल्य देन)

पृ० ४९७-५०३

सभ्यताओं का उदय--(३) प्राचीन मिस्र : [डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी]

पुरातन-राज्यकाल (३४००-२१६० ई० पू०)—चतुर्थ राजवंश (३०००-२५०० ई० पू०)—उन्नत जीवन—पाँचवाँ राजवंश (२९६५-२८२५ ई० पू०) और छठा राजवंश (२८२५-२६३० ई० पू०)—माध्यमिक राज्यकाल :: ग्यारहवाँ राज्यवंश (२३७५ से २२१२ या २१६० से २००० ई० पू०)—बारहवाँ वंश (२००० से १७८८ ई० पू०)—सेनूस्रेत तृतीय—नया राज्यकाल (१५८०-९४५ ई० पू०)—अठारहवाँ राजवंश (१५८०-१३५० ई० पू०)—थटमोज तृतीय (१४७९-१४४७ ई० पू०)—आमेनहोतेप तृतीय (१४११-१३५७ ई० पू०)—उन्नीसवाँ और बीसवाँ राजवश :: रामसेज वंश (१३२१-१०९४ ई० पू०)—राज्य का पतन (११६७ से १०९० ई० पू०)—मिस्र का जीवन और उसकी सभ्यता—कला-कौशल और उद्योग-धन्धे—महान् इंजीनियर—शिक्षा और साहित्य—धार्मिक विचार और आचार—राज्य-संगठन—कानून और दंड-व्यवस्था।

पृ० ५०४-५१९

सभ्यताओं का उदय--(४) बेबिलान की सभ्यता : [डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी]

सेमेटिक जाति का उद्भव—अक्कद का अभ्युत्थान :: सम्राट् सारगन—अक्कद का ह्रास :: सम्राट् खम्मूरबी—

खत्ती जाति का उदय—बेबिलान का सभ्यता नागरिक थी—बेबिलान नगर की भव्यता—रहन-सहन, काम-धंधे पहनावा, आदि—विविध सामाजिक वर्ग—स्त्री-पुरुष का संबंध और गृह-जीवन—राज्य-संगठन—न्याय और क़ानून—देवी-देवता और धार्मिक विश्वास—लेखनकला का विकास—ज्ञान-विज्ञान—पुरातत्त्व और कला।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृ० ५२०-५२९

सभ्यताओं का उदय--(५) चीन की सभ्यता : [श्री रामकृष्ण अवस्थी]

दैवी सम्राटों का राज्यकाल—चीन के इतिहास के दस युग—चीनी जाति का पितामह :: पीत सम्राट्—महान् सम्राट् याओ, शिवन और यू—चीनी सभ्यता का विकासक्रम—शांग राज्यवंश—शिकार, पशुपालन, कृषि, उद्योग-धंधे—धर्म-कर्म और राज्य-व्यवस्था—कला-कौशल।

पृ० ५३०-५३६

: हमारी क्रीड़ाभूमि पृथ्वी :

पृथ्वी के आधार और आकार का दर्शन : [श्री रामनारायण कपूर]

भू-विज्ञान :: जन्म और विकास—धरातल की झाँकी—पृथ्वी का निरंतर रूप-परिवर्तन हो रहा है—पृथ्वी के संबंध में प्राचीन धारणाएँ—भूगर्भ का रूप—धरातल का आकार-प्रकार।

पृ० ५३९-५४९

धरती की जन्मकहानी--पृथ्वी कहाँ से और कैसे : [श्री रामनारायण कपूर]

उल्काओं की उत्पत्ति—उल्कापिण्डों की नीहारिका—आधुनिक सिद्धान्त—भारतीय पौराणिक धारणा—पौराणिक और आधुनिक धारणाओं में साम्य—चन्द्रमा का जन्म—पृथ्वी की आरम्भिक दशा—चिप्पड़ का निर्माण—लाखों वर्ष तक धुँआधार वर्षा—सागर कैसे बने—जल और स्थल भागों का विभाजन।

पृ० ५५०-५५७

धरातल की रूपरेखा--पुरानी और नई दुनिया : [श्री रामनारायण कपूर]

पृथ्वी एक विशाल गोला है—ध्रुवों पर पृथ्वी कुछ-कुछ चपटी है—पृथ्वी की गोलाई के विविध प्रमाण—पृथ्वी का परिमाण—महाद्वीप और महासागर—पूर्वीय और पश्चिमी गोलार्द्ध।

पृ० ५५८-५६३

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पृथ्वी की दैनिक और वार्षिक गतियाँ—आवर्तन और परिभ्रमण : [श्री रामनारायण कपूर]

पृथ्वी की धुरी—आवर्त्तन और परिभ्रमण ।

पृ० ५६४-५६६

भौगोलिक स्थितिसूचक रेखाएँ—'अक्षांश' और 'देशान्तर' : [श्री रामनारायण कपूर]

उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव तथा भूमध्य रेखा—अक्षांश और देशान्तर—इन रेखाओं की उपयोगिता—अक्षांश का पता कैसे लगाया जा सकता है—संसार के प्रमुख नगरों के अक्षांश और देशान्तर—भारत के प्रमुख नगरों के अक्षांश और देशान्तर—देशान्तर निश्चित करने की विधि—प्रामाणिक समय या 'स्टैण्डर्ड टाइम'—तिथि-रेखा—देशान्तर के बीच का अन्तर समान नहीं है ।

पृ० ५६७-५७३

नक्शे द्वारा भौगोलिक परिस्थितियों का अध्ययन : [श्री रामनारायण कपूर]

नकशे या मानचित्र क्या हैं और क्यों बनाये जाते हैं—भाँति-भाँति के मानचित्र—पैमाना—दिशा-ज्ञान और धरातल की नाप—प्रोजेक्शन या प्रक्षेप—पृथ्वी के मानचित्रों के विविध प्रक्षेप—ढोल-प्रणाली—शंकु-प्रक्षेप—आरथोग्राफिक प्रक्षेप—अजिम्युयल प्रक्षेप—स्टीरिओग्राफिक प्रक्षेप ।

पृ० ५७४-५८१

भूपृष्ठ और उसका निर्माण करनेवाली चट्टानें : [श्री रामनारायण कपूर]

शिला या चट्टान—तीन प्रकार की चट्टानें—आग्नेय चट्टानें—परतीली चट्टानें—रूपान्तरित चट्टानें ।

पृ० ५८२-५८५

पृथ्वी का अन्तराल—भूगर्भ की झाँकी : [श्री रामनारायण कपूर]

पृथ्वी ठोस है या पोली—भूगर्भ पर वाह्य पृष्ठ का भार—भू-तरंगे—भूपिण्ड की रचना—अभ्यन्तर उत्तप्त है या ठंढा—३,५०,०००° का भीषण ताप—भूगर्भ की हलचल का चिप्पड़ पर प्रभाव ।

पृ० ५८६-५९०

पृथ्वी का अनवरत रूप-परिवर्तन—भूपृष्ठ पर होनेवाली घटनाएँ : [श्री रामनारायण कपूर]

परिवर्तनकारी घटनाओं के तीन प्रकार—डायस्ट्राफिज्म—आइसोस्टेसी ।

पृ० ५९१-५९६

भूपृष्ठ के साधारण खनिज और उनकी पहचान : [श्री रामनारायण कपूर]

भौतिक गुण—ऑक्साइड अथवा ऑक्सीजन-प्रधान खनिज—सिलिकेट-प्रधान खनिज—कार्बोनेट खनिज—भूपृष्ठ के प्रधान खनिज ।

पृ० ५९७-६०६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: वनस्पति-संसार :

सजीव सृष्टि--पेड़-पौधों की दुनिया : [डॉ० शिवकंठ पांडे]

सजीव और निर्जीव पदार्थों का अन्तर—वनस्पति-विज्ञान और जन्तु-विज्ञान—जानवरों और पेड़-पौधों में क्या भेद है।

पृ० ६०९-६१६

वनस्पति-जगत् का विस्तार--परिवार और उप-परिवार : [डॉ० शिवकंठ पांडे]

उद्भिजों के चार मुख्य भाग—सपुष्पक पौधे :: नग्नबीज और गुप्तबीज—टेरीडोफाइटा, पर्णांग आदि—नलिकायुक्त और नलिकाहीन पौधे—ब्रायोफायटा :: मॉस और लिवरवर्ट—थैलोफायटा :: शैवाल, फफूंदवर्गीय और बैक्टीरिया—शैवाल या काई-वर्ग—फफूंद-वर्ग—बैक्टीरिया—वनस्पतियों से हमारा सम्बन्ध।

पृ० ६१७-६३१

पौधे की रचना और अंग-विधान : [डॉ० शिवकंठ पांडे]

पौधे के अंग—पौधे का पृथ्वी के अन्दर का भाग :: जड़ और उसके कर्त्तव्य—पौधे के पृथ्वी के ऊपर के भाग :: तना, पत्ती, फूल, फल और बीज—पत्तियाँ क्या करती हैं—पत्ती के मुख्य भाग—फूल—फूल के मुख्य भाग—फल, बीज और प्रसारण।

पृ० ६३३-६४२

जीवन का मूल आधार--जीव-द्रव्य और उसे धारण करनेवाली कोशिकाएँ : [डॉ० शिवकंठ पांडे]

जीव-द्रव्य के भौतिक और रासायनिक गुण—कोशिका, नाभिक, अणुनाभिक और कोशिकामूल—प्लैस्टिड्स—जीव-द्रव्य की उत्पत्ति—कोशिका के अन्दर की वस्तुएँ :: माड़ी, प्रोटीन, तेल और रवे आदि—कुंड और कोशिका-द्रव्य—रवे या केलास—विटामिन, एनजाइम और हार्मोन—कोशिका-भित्ति—कोशिकाओं के भेद और आकार—कोशिका-सिद्धान्त—कोशिका-वृद्धि, कोशिका-परिवर्तन तथा तन्तु रचना—एक कोशिका से अनेक कोशिकाओं की रचना :: कोशिका-विभाजन—कोशिकाओं में परिवर्तन :: एक से अनेक प्रकार की कोशिकाएँ कैसे बनती हैं—कोशिका-भित्ति में परिवर्तन—काष्ठकर—कागजन—चर्मोज—मौलिक तन्तु-संस्थान—आधार-तन्तु—रक्षक तन्तु—प्रवाहक तन्तु।

पृ० ६४३-६६४

भोजन की खोज में--जड़ों की कहानी : [डॉ० शिवकंठ पांडे]

जड़ों के कर्त्तव्य और उनकी पूर्ति के साधन—पौधे के तन्तुओं में जल की मात्रा तथा जीवनक्रियाओं में उसकी आवश्यकता—पृथ्वी में जल कहाँ से आता है—पृथ्वी पर गिरने के बाद वर्षा का जल क्या होता है :: सूचिका और

क्लेदन जल—जल-शोषण करनेवाला पौधे का अंग :: जड़—अभिसरण और निस्सरण—पौधे भूमि से खूराक कैसे खींचते हैं—मिट्टी के अन्दर की कार्बनिक वस्तुएँ—भूमि के अन्दर रहनेवाले जीव और उनका पौधों पर प्रभाव।

पृ० ६६५-६७४

जड़ों के निराले काम--अनोखी जड़ें : [डॉ० शिवकंठ पांडे]

गोदाम का काम देनेवाली जड़ें—वायविक जड़ें—वायु से जलशोषण करनेवाली वायविक जड़ें—पत्तियों का काम करनेवाली जड़ें—अवलम्ब जड़ें—पुस्तवात जड़ें—साँस लेनेवाली जड़ें—परोपजीवी जड़ें—राइज्वाइड्स।

पृ० ६७५-६८२

पत्ती, फूल, फल आदि को धारण करनेवाला अंग--तना : [डॉ० शिवकंठ पांडे]

तने की पहचान—तने की आन्तरिक रचना—जड़ और तने की नसों में अन्तर—गुप्तबीजी पौधों के दो प्रधान समूह—द्विदली पौधे के तने की आन्तरिक रचना—तने की मोटान कैसे बढ़ती है :: गौण वृद्धि--एकदली पौधे के तने की आन्तरिक रचना—पौधों में मजबूती कैसे पैदा होती है :

६८३-६९० पृ०

तने के विशेष रूप और कर्त्तव्य--विचित्र तने : [डॉ० शिवकंठ पांडे]

लिपटने और बौंड़नेवाले तने—जड़ की भाँति रोपड़-शोषण का काम करनेवाले तने—बीज की भाँति पौधों की उत्पत्ति का काम देनेवाले तने—मूलस्कंध और सम्मूलनी शाखा—कंद, ग्रंथिकंद और बज्रकंद—कांडपत्र या पत्रवत् तने—संरक्षक तने :: शूल और कंटक बृहदाकार तने।

पृ० ६९१-७००

: महापुरुष :

गीता के अमर संदेश के उद्गाता--महापुरुष श्रीकृष्ण : [डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल]

जन्म और बालचरित्र—राजनीतिक चरित्र—अन्धक-वृष्णि गणराज्य के प्रधान—सोलह कला का अवतार—गीता—भारत के शिरोमणि महापुरुष।

पृ० ७०३-७०७

विश्व-कल्याण के महासाधक--महात्मा गौतम बुद्ध : [श्री तिलकसिंह परमार]

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'—वैराग्य का बीजारोपण—महाभिनिष्क्रमण—सिद्धार्थ से बुद्ध—धर्मचक्र-प्रवर्त्तन—जनता के हृदय-सम्राट्—बिरोधियो की कुचेष्टाएँ—आम्रपाली का उद्धार—महानिर्वाण—महान् देन—आर्य परम्परा ही की उपज।

पृ० ७०८-७१५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ईरान के प्राचीन शिक्षागुरु--महात्मा जरथुस्त्र : [श्री श्यामसुन्दर द्विवेदी]

जन्म और बचपन—वैराग्य का उदय—'स्पितमा' से जरथुस्त्र—विरोध और संघर्ष—ऐतिहासिक पृष्ठभूमि—ईरानी और भारतीय संस्कृतियों का साम्य—प्राचीन ईरानी धर्म के मूल सिद्धान्त।

पृ० ७१६-७१९

भारतीय ज्ञान-गंगा के भगीरथ--महर्षि वेदव्यास : [डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल]

जीवन-चरित्र—वेदव्यास की रचनाएँ—भारत और महाभारत—पूना-संस्करण—साहित्यिक महत्व—व्यास और राष्ट्र--व्यास और धर्म—मानव की महत्ता—पाणिवाद— व्यास और अध्यात्म—कालधर्म।

पृ० ७२०-७२८

रामायण के रचयिता--आदिकवि वाल्मीकि : [डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल]

चरित्र-योग—वाल्मीकि का लोकागम धर्म—धर्मबन्ध—वाल्मीकि और राष्ट्र।

पृ० ७२९-७३६

भारतीय चरित्र और आस्था के संबल--मर्य्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र : [श्री तिलकसिंह परमार]

नर से नारायण बनने की प्रेरणा देनेवाला चरित्र—युग-पुरुष—राज्याभिषेक का प्रसंग—वनगमन—सीता-हरण—शक्ति-संगठन—राम-रावण युद्ध :: देवत्व दानवत्व का संघर्ष—मर्य्यादा-पुरुषोत्तम।

पृ० ७३७-७४१

चीन का महान् लोकशिक्षक--महापुरुष कुंग (कनफ्यूशियश) : [श्री सुरेन्द्र बालुपुरी]

जन्म और बचपन—जीवन का नया मोड़—राज्यमंत्री और न्यायाधीश के रूप में—जीवन के अन्तिम दिन—लाओत्जे से भेंट—शिक्षा का सार।

पृ० ७४२-७४६

वैदिक युग की महान् विभूति--महर्षि याज्ञवल्क्य : [श्री तिलकसिंह परमार]

अध्यात्म-विद्या की साक्षात् मूर्ति और महान् समाजशास्त्री—मैत्रेयी को अमृत-तत्त्व का उपदेश—जनक के बहु-दक्षिण यज्ञ में—स्मृतिकार याज्ञवल्क्य।

पृ० ७४७-७५०

भारतीय समाज-व्यवस्था के प्रतिष्ठापक--प्रजापति मनु : [डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल]

ऐतिहासिक तिथिक्रम से परे का व्यक्तित्व—आर्य राजर्षि-परम्परा के आदि स्रोत—मनुस्मृति—मनु का धर्म—

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

कुल-धर्म—मनु के अनुसार नारी का गौरव—आर्य नारी का यशोगान—मनु और राष्ट्र—मनु के अनुसार मनुष्य सब के केन्द्र में है ।

पृ० ७५१-७५७

आर्य-संस्कृति के महाप्रचारक—महर्षि अगस्त्य : [डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल]

विविध दिशाओं में बृहत्तर भारत का प्रसार—आर्य-संस्कृति के प्रसार के नायक :: अगस्त्य—अगस्त्य द्वारा समुद्र-पान का वास्तविक अर्थ—अगस्त्य का जीवनवृत्त—दक्षिणापथ—तमिल वाङ्मय में अगस्त्य ।

पृ० ७५८-७६१

यूनान का महान् सत्यान्वेषक—ऋषि सुकरात : [श्री श्यामसुन्दर द्विवेदी]

कायापलट—अनोखा सत्यशोधक—विचित्र व्यक्तित्व—श्रीमंत और महंत जानी दुश्मन बन गये—अदम्य जिज्ञासा—गृहजीवन—जो कहता है 'मैं जानता हूँ,' वह कुछ नहीं जानता—पतनोन्मुख समाज पर प्रहार—निरंकुश सत्ताधारियों से टक्कर—वह अपनी राह से विचलित नहीं हुआ—कानून के शिकंजे में—चिरस्मरणीय वक्तव्य—कारागार में बलिदान का क्षण—अमर ज्योति ।

पृ० ७६२-७६९

अहिंसा-धर्म के महान् प्रवर्तक—महावीर और अन्य तीर्थंकर : [श्री शंभुप्रसाद बहुगुणा]

प्रथम तीर्थंकर :: ऋषभदेव—अन्य तीर्थंकरों का परिचय—पार्श्वनाथ और उनकी शिक्षा—वर्द्धमान महावीर का आविर्भाव—वैराग्य और केवल-ज्ञान की प्राप्ति—उपदेश और शिक्षा—महावीर के प्रमुख सिद्धान्त—महावीर का काल-निर्णय—जैन-धर्म ।

पृ० ७७०-७८०

महान् राष्ट्र-निर्माता—कौटल्य [कौटिल्य] : [श्री तिलकसिंह परमार]

सही नाम 'कौटिल्य' नहीं, 'कौटल्य है—जन्म-स्थान और जन्म-तिथि—विदेशी यवन आक्रांताओं से देश को मुक्त करने के लिए संगठन—मौर्य-साम्राज्य की प्रस्थापना—अर्थशास्त्र ।

पृ० ७८१-७८४

अद्वैत वेदान्त के महान् शिक्षागुरु—आचार्य शंकर : [श्री तिलकसिंह परमार]

जन्म और बचपन—आरंभिक शिक्षा-दीक्षा—जीवन का नया मोड़ :: ब्रह्मचारी से संन्यासी—गुरु की खोज और प्राप्ति-हिमालय में : गौड़पाद से भेंट—साहित्य-साधना—माँ और गुरु की मृत्यु—लोक-शिक्षक के रूप में—मण्डन मिश्र से शास्त्रार्थ और विजय—दिग्विजय और मठों की स्थापना—परमधामगमन ।

पृ० ७८५-७९१

विश्वकल्याणार्थ सूली पर चढ़नेवाले प्रेमयोगी महात्मा ईसा मसीह : [श्री ब्रजमोहन तिवारी]

मानव-पुत्र—यहुन्ना से भेंट—चालीस दिन की तपश्चर्या और आत्मज्ञान—'स्वर्ग का राज्य'—क्रान्तिकारी विचारक—उपदेश और शिक्षा—विरोध का सामना :: फैरिसी वर्ग से टक्कर—गैलिली से विदा :: जूडिया में—जीवन का अन्तिम चरण—बलिदान ।

पृ० ७९२-८००

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रस्तर-युग के मानव-जीवन की एक झाँकी

मानव-इतिहास के आरंभिक युगों में प्रस्तर-युग या पत्थर का युग सब से महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि इस युग में मनुष्य की आविष्कारक प्रवृत्तियों का बड़ा अद्भुत विकास हुआ। पत्थर, सींग, हड्डी आदि से औजार बनाना, आग का उपयोग करना, सामूहिक रूप से शिकार खेलना तथा एक प्रकार की बस्तियों में रहना प्रारम्भ करके मनुष्य ने इसी युग में हजारों वर्ष के अपने भावी जीवन और सभ्यता की नींव डाली थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हम कौन और क्या हैं ::
जंतु-जगत् में हमारा स्थान

यद्यपि विज्ञान और इतिहास दोनों ही इस संबंध में एकमत हैं कि मनुष्य जैसा आज है वैसा ही वह सदैव नहीं रहा—उसका क्रमिक विकास हुआ है—तथापि यह समस्या एक जटिल प्रश्नचिह्न के रूप में आज भी संतोषप्रद समाधान खोज रही है कि वस्तुतः मनुष्य कैसे कब और कहाँ पहले-पहल इस धरती पर आविर्भूत हुआ और किस प्रकार उसकी लंबी युगयात्रा का आरंभ हुआ ? आइए, देखें कि इस संबंध में हमारे ज्ञान की सीमाएँ अभी कहाँ तक पहुँच पाई हैं ?

यदि तुमसे कोई पूछे कि 'तुम आदमी हो या जानवर', तो अवश्य तुम यही उत्तर दोगे कि 'हम तो आदमी हैं, जानवर नहीं।' लेकिन चाहे तुम मानो या न मानो, और चाहे तुम्हें यह बात अच्छी लगे या न लगे, हम तुम्हें यह बताना चाहते हैं कि हम, तुम और सब आदमी अन्य जीवधारियों की तरह जानवर ही हैं। इसमें कोई घबड़ाने की बात नहीं। सच यह है कि हम लोग जानवरों की श्रेणी में आकर भी और जन्तुओं से भिन्न हैं। मनुष्य की-सी बुद्धि और बोलचाल दूसरे जीवों में नहीं पाई जाती; उसके शरीर का आकार और रहन-सहन के नियम भी उनसे भिन्न हैं। यों तो हाथी व घोड़े भी मक्खी और मच्छर से उसी प्रकार भिन्न हैं, जैसे हम-तुम जानवरों से। लेकिन इस भिन्नता के होते हुए भी हम उन सबको जानवर ही कहते हैं। फिर यह मान लेना हमें क्यों अखरता है कि हम भी अन्य जीवधारियों की तरह प्रकृति की गोद में पैदा हुए हैं और, जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, हम भी जन्तु-जगत् के एक मुख्य भाग हैं ?

इस पृथ्वी पर हम और अन्य सभी प्राणी साथ-साथ बसते हैं। हमारी ही तरह वे जीव भी पैदा होते, खाते-पीते, बढ़ते और अन्त में मर जाते हैं। सर्दी, गरमी, आदि जैसे हमें सताती हैं, वैसे ही अन्य प्राणियों को भी, और जैसे हम उनसे बचने के उपाय करते हैं, वैसे ही वे भी करते हैं। जैसे हम अपने बाल-बच्चों के पालन-पोषण का प्रबन्ध करते हैं, वैसे ही दूसरे जानवर भी। जिस तरह अपनी और अपने परिवार की रक्षा के लिए हम लड़ते-झगड़ते हैं, उसी प्रकार अन्य जीवधारियों में भी होता है। हमारी तरह उन सब को भी पेट भरने के लिए भोजन और रहने के लिए सुरक्षित स्थान चाहिए। इन सब बातों से स्पष्ट है कि हमारी और अन्य जानवरों की मुख्य-मुख्य आवश्यकताएँ लगभग एक-सी ही हैं, और हमारा व उनका रहन-सहन भी अधिकांश में मिलता-जुलता है। कदाचित् यही कारण है कि हम बहुत-से प्राणियों को देखकर खुश होते हैं और उनमें से बहुतों को अपने घरों में पालते भी हैं। कुत्ता, बिल्ली, खरगोश, तोता, मैना, कबूतर इत्यादि ऐसे ही जीव हैं, जो हमें ऐसे प्यारे लगते हैं कि हम उन्हें अपने साथ रखना पसन्द करते हैं। उनका रूप-रंग, चलना-फिरना, खेलना-कूदना देखकर हमारे बच्चे कितने प्रसन्न होते हैं! यह केवल इसीलिए होता है कि हममें और उनमें अनेक समानताएँ हैं।

मनुष्य भी जन्तु-जगत् का एक सदस्य है

मनुष्य के प्राचीन इतिहास से पता चलता है कि किसी समय वह अन्य जीवनधारियों को भी अपने ही जैसा प्राणी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मानता था और उनके बुद्धि-बल को उत्तम एवं पूजनीय समझकर उनके शरीर के अनेक अंगों--जैसे सींग, पर, दांत, नाखून इत्यादि--को अपने शरीर पर धारण कर रोग और आपत्तियों से बचने का प्रयत्न करता था। बहुत-सी प्राचीन जातियों का विचार था कि उनके वंश की उत्पत्ति किसी विशेष पशु-पक्षी से हुई थी। इसीलिए वे उसकी मूर्ति चिह्न-स्वरूप अपने घर में रखकर उसकी पूजा करती थीं। जैसे-जैसे समय बीतता गया, और आदमी की बुद्धि का विकास होता गया, वह अपने को पशुओं से बिलकुल भिन्न समझने लगा और अंत में उसने उनसे अपना नाता तोड़ दिया।

परन्तु एक बार फिर आदमी की मति ने पलटा खाया। आधुनिक विज्ञान ने यह स्पष्ट कर दिया कि रूप, कार्य, उत्पत्ति, वृद्धि और बुद्धि में आदमी और जानवरों में बड़ी समता है। हमारे शरीर की रचना वस्तुतः उच्च श्रेणियों के प्राणियों जैसी ही है। जब हम उनके और अपने अंगों की तुलना करते हैं, तो पता चलता है कि उनके आँख, कान, नाक, यकृत, फेफड़े, उँगलियाँ और नाखून आदि अंग हमारे अंगों से बहुत-कुछ मिलते हैं। बहुत-से बाहरी और भीतरी अंग तो बिलकुल एक जैसे बने हैं। इससे मानना पड़ता है कि मनुष्य भी जन्तु-जगत् का एक सदस्य है। केवल अपने अहंकार और अज्ञान के कारण ही वह अपने आपको जानवरों से भिन्न और अलग मानने लगा है। अब भी बहुत-से लोग हैं, जो अपनी असली उत्पत्ति को सुनकर चिढ़ते हैं। हम अपने वंश के बारे में बहुत कम ध्यान दिया करते हैं। मामूली तौर से हमें अपने दादा, परदादा या यों कहिए कि केवल दो-तीन पीढ़ियों ही का हाल मालूम रहता है। यदि हम पच्चीस-तीस पीढ़ियों का हाल मालूम कर सकें, तो हमें अच्छी तरह ज्ञात हो जाय कि हम सबके पूर्वजों में सभी प्रकार के मनुष्य थे। कुछ होशियार, कुछ बेवकूफ, कुछ अमीर, कुछ गरीब, कुछ चंगे, कुछ रोगी, कुछ विद्वान्, कुछ पागल, कुछ नेक, कुछ मनुष्य जैसे और कुछ जंगली जानवरों जैसे भी। तो भी हम इस बात से सन्तुष्ट नहीं कि हमें 'जानवरों के बादशाह' की पदवी मिले। हम तो अपने को जानवरों से कोसों दूर समझना ही उचित मानते हैं। किन्तु यह हमारी भूल है।

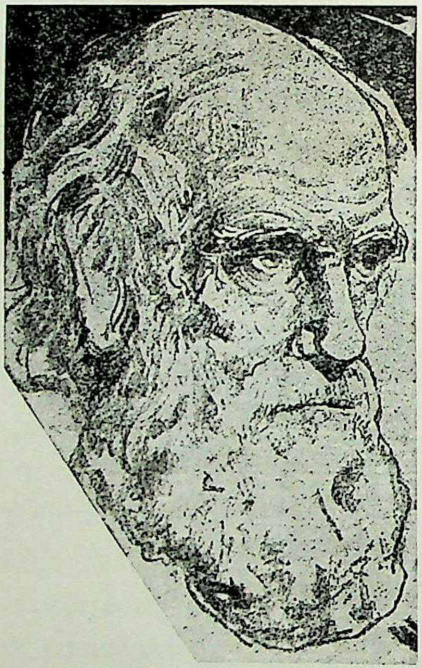

विकासवाद का महान् प्रतिपादक डार्विन, जिसने जीव-जगत् में मनुष्य के स्थान का निर्णय करने में युगान्तरकारी योग दिया।

कुछ लोग कहेंगे कि यह बात उचित नहीं कि हम अपनी श्रेष्ठता का विस्मरण कर यह घोषित करते रहें कि हम जानवरों के अधिक समान हैं, और उन्हीं के अति उत्तम और श्रेष्ठ रूप हैं। दूसरी ओर कुछ लोगों का विचार है कि अगर किसी को हर घड़ी उसकी अच्छी बातों और बड़प्पन का ही ध्यान दिलाया जाय, और उसकी कमी, बुराइयों एवं त्रुटियों को लगातार उससे छिपाया जाय, तो उसे अपने ऊपर झूठा गर्व हो जाने की सम्भावना है। परन्तु इन दोनों ही पक्षों पर परदा डाले रहना और भी बड़ी भूल है। अतः उचित यही जान पड़ता है कि हम असलियत से वाकिफ हो जाएँ और यह जान लें कि हम और जीवधारियों की तरह हैं तो एक प्राणी ही, लेकिन बहुत-सी बातों में उनसे भिन्न भी हैं। हम अपने उन्नत स्वभाव और लक्षणों के कारण ही सब जीवों से अलग मनुष्य की श्रेणी में गिने जाते हैं।

क्या मनुष्य एवं अन्य प्राणियों की आत्मा एक है ?

यूनान देश के प्रसिद्ध दार्शनिक और प्रकृतिवादी पिथेगोरस ने, जो ईसा से कई शताब्दी पहले हुआ था, पाश्चात्य जगत् को पहले-पहल यह समझाने की कोशिश की थी कि जानवरों में भी आदमी के भाई-बन्धु होते हैं। कहते हैं, एक समय उसने किसी आदमी को जब अपने कुत्ते को निर्दयता से पीटते देखा, तो उससे कहा, 'कुत्ते पर दया करो और उसे न मारो, क्योंकि इस कुत्ते के चिल्लाने में मुझे अपने एक स्वर्गीय प्यारे मित्र की आवाज सुनाई देती है।" पिथेगोरस का मत था कि आत्मा अमर है, वह जनमकर या मरकर बार-बार केवल शरीर बदलती रहती है। आत्मा एक जीव के शरीर को त्यागकर दूसरे के बदन में प्रवेश कर लेती है। जब समय आने पर वह जीव मर जाता है, तब उसे छोड़कर वह किसी दूसरे शरीर में जा पहुँचती है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वही आत्मा मनुष्य से जानवर के शरीर में और फिर जानवर से मनुष्य के शरीर में आ जाती है। प्राचीन हिन्दुओं का भी ऐसा ही विश्वास रहा है कि आत्मा अनादिकाल से जन्म-जन्मान्तर के फेर में पड़कर इस संसार में आती रहती है, और कभी किसी प्राणी का तो कभी किसी का रूप वह धारण कर लेती है। जब तक उसे मुक्ति प्राप्त नहीं होती, इसी प्रकार उसका आवागमन होता रहता है। तुमने अखबारों में पढ़ा या सुना होगा कि कभी-कभी ऐसे बालक भी पैदा होते हैं, जो अपने पिछले जन्म की बातें याद रखते हैं और उन्हें जल्दी नहीं भूलते।

का पालन करते हैं। जैसे अन्य प्राणियों के अंग सूक्ष्म कोशिकाओं के बने हैं, वैसे ही आदमी के अंग भी बहुत-सी छोटी-छोटी कोशिकाओं के बने हुए हैं। इन सब में वही जीव द्रव्य पाया जाता है, जो समस्त जीवन का मूल है। इससे साफ पता लगता है कि हमारे शरीर की ऊपरी व भीतरी रचना ही नहीं, बल्कि हमारे अंगों का कार्यक्रम भी उच्च श्रेणी के प्राणियों जैसा है। इन बातों को जानकर भला कोई कैसे न मानेगा कि मनुष्य भी एक जन्तु है—यदि उसमें विशेषता है तो यही कि वह अन्य प्राणियों से अधिक सुविकसित है।

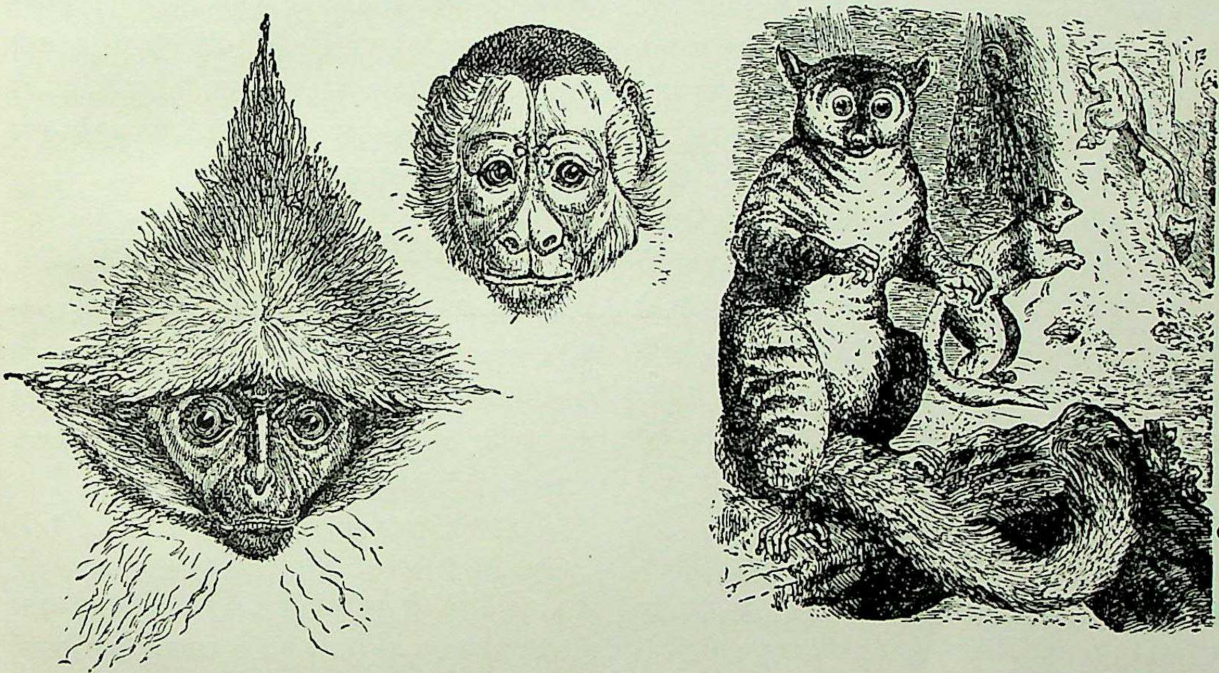

मनुष्य के नातेदार होने का दावा करनेवाले प्राणियों के तीन वर्ग—(बाईं ओर) पुरानी दुनिया का वानर; (बीच में) नई दुनिया का वानर; (दाहिनी ओर) लीमूर नामक अर्द्ध-वानर।

यह तो आत्मवाद हुआ। अब शरीर पर आइए। हम देखते हैं कि हमारे शरीर में भी वही अवयव हैं, जो कि ऊँची श्रेणी के जन्तुओं में होते हैं। जैसे उनमें सोचने के लिए मस्तिष्क, रक्त-संचालन के लिए हृदय, साँस लेने के लिए फेफड़े, भोजन कुचलने को दाँत, पाचन करने के लिए आमाशय और आँते, तथा शरीर का रूप बनाए रखने के लिए हड्डी, मांसपेशी या त्वचा आदि होती हैं, वैसे ही आदमी में भी ये सब अंग पाये जाते हैं। जैसे उनमें सब अंग मिल-जुलकर शरीर के पालन और रक्षा के लिए अपना-अपना कर्त्तव्य करते रहते हैं, उसी तरह हमारे अंग भी एक-दूसरे से हिल-मिलकर अपना-अपना कार्य करते हुए शरीर

जन्तु-जगत् में मनुष्य का स्थान

यदि आदमी जानवरों ही में सम्मिलित है, तो हमें यह देखना है कि जीवधारियों में उसका स्थान क्या है! दुनिया के सभी प्राणी दो मुख्य भागों में विभाजित हैं——१. एककोष्ठी, जो बहुत छोटे-छोटे होते हैं और जिनका पूर्ण शरीर एक ही कोशिका का बना होता है; २. बहुकोष्ठी, जिनमें छोटे-छोटे से लेकर बड़े से बड़े जीव पाये जाते हैं। चूँकि मनुष्य का शरीर अगणित कोशिकाओं का बना हुआ है, अतएव वह बहुकोष्ठी प्राणियों के समूह में गिना जाता है। परन्तु कीड़े-मकोड़े, मक्खी-मच्छर, आदि से वह नितान्त भिन्न

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है, क्योंकि उसकी पीठ में हाथी, घोड़ा, कुत्ता, बिल्ली, तोता, साँप, मेढक, मछली आदि के समान रीढ़ की हड्डी होती है। ऐसे सब जीव 'पृष्ठवंशी' श्रेणी के जीव कहलाते हैं। लेकिन इस वंश में भी बहुत प्रकार के जीव हैं। उनमें कुछ ऐसे हैं, जिनकी खाल पर बाल होते हैं और जिनकी माताएं बच्चों को अपने स्तन द्वारा दूध पिलाती हैं, जैसे गाय, बकरी बन्दर, हाथी, ऊँट, घोड़ा, चूहा, चमगादड़ इत्यादि। ये 'स्तन-पोषित' कहलाते हैं। उधर बहुत-से ऐसे जीव भी हैं, जिनमें न तो शरीर के ऊपर बाल ही होते हैं और न उनमें माताओं के स्तन ही पाये जाते हैं, जैसे चील, कौआ, सर्प, छिपकली, मछली, मेढक, इत्यादि। तुम स्वयं समझ सकते हो कि मनुष्य क्यों गाय-बैल की तरह पृष्ठवंशियों के स्तनपोषित समुदाय में सम्मिलित है। परंतु इस समुदाय में भी नाना प्रकार के प्राणी हैं। उनमें से वनमानुष, बन्दर और लीमूर ही ऐसे हैं, जो आदमी से सबसे अधिक मिलते हैं। उनमें मनुष्य के कुछ लक्षण पाये जाते हैं--जैसे हाथ व पैरों में वस्तुओं के पकड़ने की शक्ति, उँगलियों और अँगूठों में पंजों की अपेक्षा चपटे और चौड़े नाखून, पेट पर सामने की ओर दो स्तन, गले में हँसली की हड्डी, खोपड़ी के भीतर अन्य स्तन-पोषित जीवों की अपेक्षा बड़ा और पेचदार मस्तिष्क, आदि। इसलिए मनुष्य और वानर-वर्ग अन्य स्तनपोषित जन्तुओं से भिन्न एक ही श्रेणी में सम्मिलित किये जाते हैं। इस श्रेणी को 'प्रधानभागीय' (प्राइमेट) वर्ग कहते हैं।

तो फिर हम इस नतीजे पर पहुँचे कि हम वस्तुतः वानर-वंश से संबंधित हैं। यह एक वैज्ञानिक सत्य है। हमारे शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों से विदित होता है कि मनुष्य और सभी जातियों के वानरों के बदन एक ही ढाँचे पर बने हुए हैं। किन्तु वानर-वंश में भी अन्य समूहों की भाँति कई श्रेणियाँ हैं। नई दुनिया (अर्थात् उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका) के बन्दर पुरानी दुनिया (अर्थात् एशिया, योरप और अफ्रीका) के बन्दरों से भिन्न हैं। वे अपनी दुम से वृक्षों की डालियाँ पकड़कर लटक जाते हैं और उसी के सहारे डाली-डाली कूदते-फिरते हैं। परन्तु दुम से लटकनेवाले इन नई दुनिया के बन्दरों में पुरानी दुनिया के बन्दरों की तरह गले में खाद्य एकत्रित करने के लिए थैलियाँ नहीं होतीं। इन दो प्रकार के वानरों के अतिरिक्त बंदरों की एक और भी जाति है, जिसमें दुम नहीं पाई जाती और जो आदमी की तरह थोड़ा-बहुत खड़े होकर चल-फिर सकती है। इन्हें हम 'मानव-सम वानर' या वनमानुष कहते हैं। इन ऊँची जातिवाले बन्दरों और मनुष्यों की जटिल बनावट में अद्भुत समानता पाई जाती है। इनके बदन की हर एक हड्डी, पेशी, नाड़ी, रक्त-प्रणाली इत्यादि मनुष्य से बिल्कुल मिलती-जुलती है। हमारी-तुम्हारी तरह इन वनमानुषों के भी न तो दुम होती है, न खाद्य भरने को गले में थैली और न नितम्बों पर बैठने में सहायता देनेवाली गद्दियाँ ही। लेकिन जिस प्रकार मानवसम वानरों और नई एवं पुरानी दुनिया के बन्दरों में एक दूसरे से भेद है, और जैसे अफ्रीका और उसके निकट के मेडागास्कर टापू में रहनेवाले अर्द्ध-वानर या 'लीमूर' बाकी सब असली बन्दरों से अपनी विभिन्नता द्वारा सहज में पहचाने जा सकते हैं, उसी तरह अपनी शारीरिक बनावट के अनुसार मनुष्य भी मानवसम वानरों और दूसरे बन्दरों के वंश से अलग किये जाते हैं। इन भेदों का वर्णन आगे चलकर किया जायगा। प्रस्तुत प्रकरण में हम केवल यही बताना चाहते हैं कि मनुष्य और उससे मिलते-जुलते अन्य 'प्रधानभागीयों' में क्या समानता है।

मानव-शरीर के मुख्य स्मारक-चिह्न

प्रख्यात जीव-वैज्ञानिक सर जे० ए० टामसन का कहना है कि मनुष्य का शरीर पुरातन स्मारक-चिह्नों का एक चलता-फिरता अजायबघर है, अर्थात् उसके बदन में ऐसे बहुत-से चिह्न अवशिष्ट हैं, जिनसे उसकी वंशावली का पता चलता है। इनमें से कुछ नीचे लिखे अनुसार हैं;—

१. नीची श्रेणी के स्तनपोषित जीवों की आँखों में दो पलकों के अतिरिक्त एक खासी अच्छी झिल्ली भीतरी कोने में और होती है, जो पुतली के आगे के भाग को साफ रखती है। यह मानो एक प्रकार की तीसरी पलक है। यह झिल्ली वनमानुषों और बन्दरों की आँख में भी होती है, किन्तु उनमें वह उतनी बड़ी नहीं होती, जितनी अन्य स्तनपोषित प्राणियों में। अपनी आँख के भीतरी कोने को यदि तुम ध्यान से दर्पण में देखोगे, तो तुम्हें भी इस तीसरी पलक का बचा हुआ चिह्न दिखाई देगा। किसी-किसी मनुष्य-जाति में यह चिह्न औरों से अधिक बड़ा रहता है। प्राचीन समय में यह चिह्न कदाचित् सारे मनुष्य-समाज में अब से बड़ा रहा होगा। कहते हैं, ज्यों-ज्यों मनुष्य का रहन-सहन जंगली जानवरों के रहन-सहन से पृथक् होता गया, त्यों-त्यों हमारे नेत्रों को इस झिल्ली की आवश्यकता न रही और फलतः वह छोटी होने लगी। अब तो हम लोग नित्य सबेरे पानी से अपना चेहरा और उसके साथ ही अपनी आँखों को धोकर साफ कर लेते हैं। अतः जो चिह्न बचा रह गया है, वह भी सम्भव है कि आगे चलकर बिलकुल विलुप्त हो जाय।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनुष्य और उसके कुछ निकटतम संबंधी। (बाएँ से दाहिनी ओर क्रम से) पहलीं पंक्ति में——मैंड्रिल नामक बानर, शिम्पैंजी, और लंगूर। दूसरी पंक्ति में —औरङ्क-उटाङ्ग, ममुष्य, और गोरिल्ला। तीसरी पंक्ति में—सफेद हाथों वाला काला गिब्बन, लीमूर, और लम्बी नाकवाला बबून।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

२. तुमने हाथी को चलते समय अपने कानों को पंखे की तरह झलते हुए अवश्य देखा होगा। अधिकतर स्तनपोषित जीव इसी तरह अपने कान आगे-पीछे हिला सकते हैं। इसके लिए इन सब जन्तुओं में विशेष पेशियाँ होती हैं। यद्यपि मनुष्य-जाति में कान हिलाने की शक्ति तो करीब-करीब बिलकुल नहीं रही, परन्तु कान हिलानेवाली पेशियाँ अभी तक बहुत सूक्ष्म रूप में कान के पीछे विद्यमान हैं और कभी-कभी ऐसे मनुष्य भी पाये जाते हैं, जो अपने पूरे कान या उनके केवल ऊपरी भाग को आसानी से हिला लेते हैं। प्रयाग-विश्वविद्यालय में सन् १९३३ में एक विद्यार्थी था, जो अपने कान को पूरा अथवा उसके ऊपर-नीचे का हिस्सा अलग-अलग हिला सकता था।

३. अब एक और स्मारक-चिह्न का परिचय तुम्हें देते हैं। सितम्बर, १९३७, की 'विज्ञान' पत्रिका में ठाकुर शिरोमणि-सिंह का इस विषय में एक लेख प्रकाशित हुआ था। उस लेख का कुछ संशोधित भाग इस प्रकार है :—

मनुष्य की दुम क्या हुई

विद्यार्थी—क्या मनुष्य के भी कभी दुम थी ?

गुरु—हां, आजकल तो नहीं होती है, परन्तु अपने पूर्वजों के तो अवश्य थी।

विद्यार्थी—मैंने तो आज तक ऐसा नहीं सुना और न यह मेरी समझ ही में आता है कि हम 'बेदुम के बन्दर' हैं। भला कहां हम और कहाँ जंगली बन्दर ? हमारा और उसका कैसा सम्बन्ध ! गुरुजी, मैं कभी उनको अपना पुरखा नहीं मान सकता।

गुरु—क्या जो बात तुम्हारी समझ में न आये या जिसको कोई पूर्ण रूप से न समझा सके, वह ठीक ही नहीं हो सकती ? अभी कल ही हम पढ़ रहे थे, एक समय विद्वान् लोग भी कहते थे कि सूर्य पृथ्वी के चारों ओर घूमता है और पृथ्वी अपनी जगह अचल है। वे यह मानते थे कि नित्य सबेरे सूर्य पूर्व में निकलकर संध्या-समय पश्चिम में जा डूबता है और रात भर में पृथ्वी के दूसरी ओर का चक्कर पूरा कर फिर सबेरे पूर्व से ऊपर की ओर आते दीख पड़ता है। किन्तु अब साधारण लोग भी यह जानते हैं कि सूर्य अपने स्थान पर स्थिर है और पृथ्वी अपनी कीली पर एक रात-दिन में पूरा चक्कर लगा लेती है और उसके इस घूमने के कारण सूर्य पूर्व से पश्चिम की ओर जाता हुआ दिखाई देता है। जो बात किसी समय ठीक जान पड़ती थी, वास्तव में वह बिलकुल गलत थी। इसी प्रकार बहुत-सी बातें हैं, जो पहले सही मानी जाती थीं, पर पीछे गलत सिद्ध हुईं, और कितनी ऐसी भी हैं, जो अभी असम्भव जान पड़ती हैं, किन्तु आगे संभव हो जायँगी।

विद्यार्थी—जी हाँ, यह तो मैं मानता हूँ कि बहुधा बहुत-सी बातों के समझने में धोखा हो जाता है और अज्ञानता के कारण जो बात समझ में नहीं आती, ज्ञान होने पर वही बात ठीक जान पड़ने लगती है।

गुरु—तो फिर यह भी मान लो कि पृथ्वी के आरम्भ में प्राणियों का आकार, रंग-रूप ऐसा न था, जैसा हम आजकल देखते हैं। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, उसमें परि-वर्तन होता गया और आजकल जो-जो अगणित जीव-जन्तु सृष्टि में दीख पड़ते हैं, सब उन्हीं प्रारम्भिक सीधे-सादे प्राणियों से ही विकसित हुए हैं।

विद्यार्थी—तो वे प्रारम्भिक जीव हमारे और बन्दरों के भी दूर के पुरखे हुए ?

गुरु—अवश्य! अगले पृष्ठ पर दिया गया चित्र देखो, जिसमें मनुष्य एवं चारों प्रकार के मानवसम बन्दरों की ठठरियाँ हैं। इन वनमानुषों में भी आदमी की तरह बाहर पूँछ नहीं दिखाई देती, परन्तु इस चित्र में सबकी रीढ़ की हड्डी में मणिमाला-सी चार छोटी-छोटी गुरिया एक दूसरे से मिली हुई दुम की तरह लटक रही हैं। इन हड्डियों को 'पुच्छस्थियाँ' कहते हैं। मनुष्य में ये दुमवाली हड्डियाँ उतनी बड़ी नहीं होतीं, जितनी मानवसम बन्दरों में। वनमानुषों में ऊपरी दो या तीन बड़ी गुरियाँ होती हैं, मनुष्य में केवल एक ही।

विद्यार्थी—जब हमारे और इन वानरों के दुम है ही नहीं, तो ये हड्डियां कहां से आई ?

गुरु—यही तो समझने की बात है। ऊपर बताये हुए स्मारक-चिह्नों की तरह ये भी वस्तुतः उसके शरीर के एक अवशिष्ट अंग हैं, जो शायद घटते-घटते किसी समय मानव जाति से बिल्कुल लुप्त हो जाएंगे। अभी तो गर्भावस्था में जब बच्चा माँ के पेट में होता है, तो खरगोश या बिल्ली के भ्रूण की तरह उसकी दोनों टाँगों के बीच में पैरों से बड़ी, मुड़ी हुई, पीछे को निकली दुम मौजूद होती है। सब वन-मानुषों के भ्रूणों में भी ऐसी ही दुम पाई जाती है। किन्तु जैसे-जैसे इन प्राणियों का भ्रूण बढ़ता जाता है, उनकी बाहरी पूँछ घटती जाती है और माता के पेट से बाहर होने के समय तक वह बिल्कुल लुप्त हो जाती है। केवल उसकी जड़ की हड्डियाँ ही मांस के भीतर बनी रहती हैं। कभी-कभी मनुष्य में ऐसा भी होता है कि बालक के पैदा होने के बाद भी यह भ्रूणवाली दुम बनी रह जाती है और टाँगों के बीच में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लटकती हुई दिखाई देती है । हमारे देश में ऐसे बालक कई बार उत्पन्न हुए हैं । कहा जाता है कि शिवाजी महाराज के गुरु स्वामी रामदास के भी छोटी-सी दुम थी । इतना ही नहीं, जैसे कान हिलाने की शक्ति जाती रहने पर भी उन्हें हिलानेवाली पेशियाँ बाकी रह गईं, वैसे ही यद्यपि हममें न पूँछ रह गई और न दुम हिलाने की शक्ति, परन्तु उस दुम की जड़ की हड्डियाँ और उसे हिलने में सहायता देनेवाले स्नायु अब भी हममें बाकी हैं ।

विद्यार्थी—यह सुनकर मानना ही पड़ता है कि हम सब न केवल 'बेदुम के बन्दर' ही हैं, बल्कि कभी-कभी दुमदार

कोई कड़ा खाद्य पदार्थ उसमें जा अटकता है, तो उसमें पीड़ा होने लगती है और यदि वह पक जाये तो जान तक जोखम में पड़ जाती हैं । तब डाक्टर को पेट चीरकर उसे काटकर बाहर निकालना पड़ता है । वनमानुषों में भी आँत का यह अंग पाया जाता है, परन्तु वह मनुष्य की आँत से बड़ा और अन्य स्तनपोषित जीवों से छोटा होता है ।

इनके अतिरिक्त मनुष्य के शरीर में और भी कुछ बचे-बचाये स्मारक-चिह्न हैं । प्रोफेसर वीडर शैम ने ऐसे लगभग पचास अंग गिनाये हैं । इनमें से कई तो इतने छोटे हैं कि हर व्यक्ति के लिए उन्हें समझना या पहचानना मुश्किल है ।

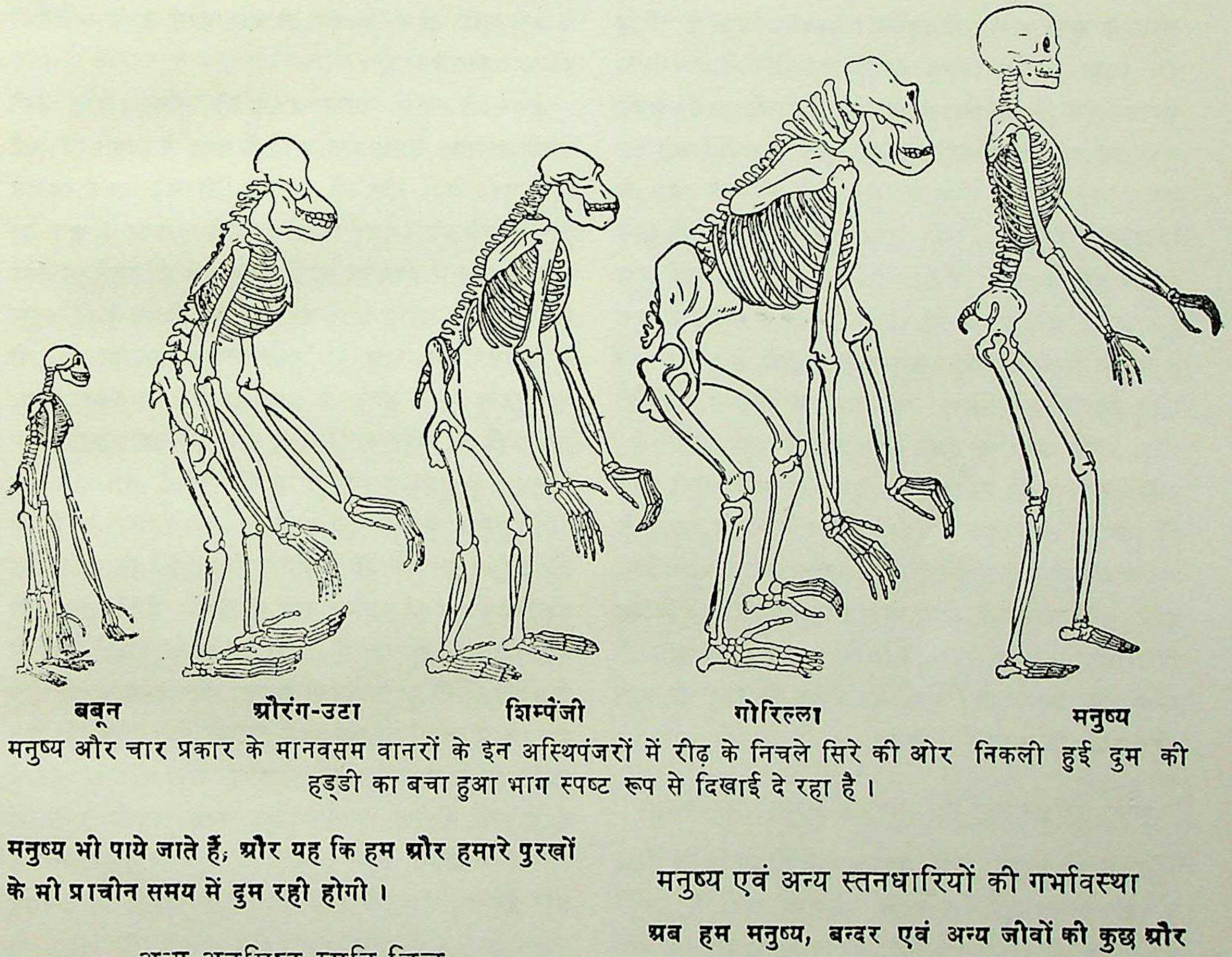

मनुष्य और चार प्रकार के मानवसम वानरों के इन अस्थिपंजरों में रीढ़ के निचले सिरे की ओर निकली हुई दुम की हड्डी का बचा हुआ भाग स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है ।

मनुष्य भी पाये जाते हैं; और यह कि हम और हमारे पुरखों के भी प्राचीन समय में दुम रही होगी ।

अन्य अवशिष्ट स्मृति-चिह्न

आदमी के पेट में छोटी और बड़ी आँतों के संगमस्थल पर उँगली के समान एक नलिका पाई जाती है । इसको 'एपेंडिक्स' कहते हैं । घास चरनेवाले प्राणियों में यह अंग लम्बा और पाचन-क्रिया में उपयोगी होता है । किन्तु आदमी में यह निरर्थक ही नहीं, वरन् कभी-कभी अत्यन्त हानिप्रद भी साबित होता है । जब किसी कारण से वह सूज जाता है या

मनुष्य एवं अन्य स्तनधारियों की गर्भावस्था

अब हम मनुष्य, बन्दर एवं अन्य जीवों की कुछ और समानताओं की ओर ध्यान दिलाना चाहते हैं, जिनसे यह जाना जा सकता है कि कैसे जन्तु एक दूसरे से आपस में नाता रखते हैं और वह नाता निकट का है या दूर का । पृष्ठ ४२७ के चित्र को ध्यान से देखिए । उसमें कुछ जानवरों के भ्रूणों की झाँकी दिखाई गई है । उन्हें देखने से पता लगता है कि मानव-गर्भ की वृद्धि अन्य जन्तुओं के गर्भ की वृद्धि से कितनी मिलती-जुलती होती है । सब

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्राइमेटों के भ्रूण अपनी प्रारम्भिक अवस्था में न केवल एक दूसरे से बल्कि अपने से बहुत नीची श्रेणी के जीव जैसे मछली या मेढक के भ्रूण से भी समता रखते हैं। आरम्भिक अवस्था में सब प्राइमेटों के गर्भ का हृदय दो कोठरियों ही का होता है, जैसा कि मछलियों का। लेकिन थोड़ा और बढ़ने पर उसमें मेढक के हृदय की-सी तीसरी कोठरी भी बन जाती है। कुछ और वृद्धि होने पर चौथी कोठरी भी बन जाती है और भ्रूण का हृदय ऊँची श्रेणीवाले जन्तुओं के हृदय का-सा हो जाता है।

इसके अतिरिक्त गर्भ-शास्त्रियों ने, जिन्होंने बहुत-से जीवों के भ्रूणों के गर्भ में बढ़ने का अध्ययन किया है, सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य सहित सब प्राणियों के गर्भ का आरम्भ एक ही कोशिका से होता है। इसी कारण उन सबमें कुछ अवस्था तक अधिक समानता रहती है। ज्यों-ज्यों गर्भ बढ़ता जाता है, एक समूह का भ्रूण दूसरे समूह के भ्रूण से भिन्न होने लगता है। गर्भ की अन्तिम अवस्था में यह साफ मालूम होने लगता है कि वह किस श्रेणी के जीव का भ्रूण है। इससे आप यह समझ लेंगे कि निकट के समूहों के भ्रूण में अधिक समय तक बहुत-कुछ समता रहती है, और एक जीव दूसरे जीव से जितना दूर के समूह का होता है, उतने ही शीघ्र ऊनके भ्रूण एक दूसरे से भिन्न जान पड़ने लगते हैं। इसी प्रकार मनुष्य का भ्रूण आरंभ में तो अन्य जीवों जैसा ही होता है, तदुपरान्त वह अन्य स्तनधारियों के भ्रूण के समान हो जाता है। उसके बाद वह प्राइमेट के भ्रूण जैसा मालूम होने लगता है, और थोड़ा और बढ़ने पर यह विदित होने लगता है कि वह आदमी ही का भ्रूण है। छः मास की आयु तक मनुष्य के भ्रूण पर बन्दर की तरह घने बाल और छोटी-सी दुम भी होती है।

रक्त की बनावट एवं गुणों में समता व भिन्नता

इससे भी अधिक मनोरंजक पहचान तो प्रकृति ने जीवों के रक्त की बनावट और उसके लक्षण या गुणों में रक्खी है। रक्त में जो लाल कण हैं, उनका व्यास नापने से पता चला है कि सबसे निचली श्रेणी के प्रधानभागीय 'लीमूर' नामक जीव में रक्तकरण सबसे छोटे होते हैं, जबकि बन्दर में उससे बड़े, और बन्दर से बड़े वनमानुष एवं मनुष्य में क्रमानुसार सबसे बड़े हैं। हारवर्ड-विश्वविद्यालय के प्रोफेसर हुटन ने इससे नतीजा निकाला है कि लीमूर इस बात का संकेत करता है कि मनुष्य से उसका दूर का सम्बन्ध है! बन्दर भी हमसे नातेदारी का दावा करता है और वनमानुष तो पेड़ों की चोटी पर बैठा मानों ढिंढोरा पीटता है कि वह हमारा ही निकट का सम्बन्धी है!

पिछले दिनों वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि अगर किसी जन्तु का रक्त अपने से नजदीक के रिश्तेवाले प्राणी के रक्त में मिलाया जाय, तो दोनों का रक्त मिलकर एक समान हो जाता है। परंतु यदि वह ऐसे जीव के रक्त में डाला जाय कि जिससे उसकी घनिष्टता नहीं है, तो वह अच्छी तरह न मिलेगा। मनुष्य और शिम्पैंजी में अधिक घनिष्टता होने के कारण दोनों का रक्त आपस में बिल्कुल घुल-मिल जाता है। परन्तु आदमी का रक्त यदि घोड़े के रक्त में भरा जाय, तो वह मिलता ही नहीं, वरन् उसके रक्तकणों को नष्ट कर देता है।

इससे भी अद्भुत उदाहरण एक और सुनिए। यदि किसी प्राणी का रक्त किसी अन्य समूह के जन्तु के रक्त में सुई द्वारा भरा जाय, और जो रक्तरस (सीरम) उसके रक्त से निकले, उसे पहले समूह के और किसी जानवर के खून या खून के घोल में मिलाया जाय, तो तुरन्त ही उसमें तलछट बैठ जाता है। परन्तु अगर वही रक्तरस किसी दूसरे समूह के प्राणियों के रक्त वा रक्त-घोल में मिलाया जाय, तो क्रमानुसार जितने ही दूर के समूह के जीव का रक्त होगा, उतना ही कम और काफी देर में तलछट बनेगा। अधिक दूर के संबंधी जन्तुओं के रक्त में डालने से तो नाममात्र का या बिलकुल ही तलछट न बनेगा। इससे या स्पष्ट है कि इस तलछट द्वारा जीवों के पारस्परिक संबंध की घनिष्टता और विलगता का पर्याप्त ज्ञान हो सकता है। मनुष्य का रक्त खरगोश के रक्त में भरकर जो रक्तरस बने, उसमें से कुछ यदि किसी दूसरे आदमी के रक्त या रक्त के हलके घोल मे मिलाया जाय, तो वह शीघ्र तलछट फेंक देगा। किन्तु वही रक्तरस वनमानुष, बन्दर, लीमूर और घोड़े के रक्त में छोड़ा जाय, तो देखा जायगा कि वनमानुष के रक्त में तलछट तो बनेगा, किन्तु आदमी के रक्त की तुलना में कम और देर से। बन्दर के रक्त में नाममात्र का तलछट बनेगा, लीमूर के रक्त में उतना भी नहीं होगा और घोड़े या अन्य स्तनपोषित जीवों में तो बिलकुल ही प्रभाव न दिखाई देगा। हममें और वनमानुषों में घनिष्ट सम्बन्ध होने का इससे भी पक्का प्रमाण और क्या चाहिए—दोनों का रक्त तक एक ही सा है!

ऊपर के दृष्टांतों से यह पूर्ण रूप स्पष्ट है कि मनुष्य अपने शरीर के अंगों में निस्सन्देह अन्य प्राइमेटों का संबंधी होने के काफी चिह्न अभी तक रखता है। यदि सच बात कही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाय, तो अवश्य यह मानना पड़ेगा कि मनुष्य भी जान-वर ही है। यह अवश्य है कि जानवर होते हुए भी उसमें ऐसी विशेषताएँ हैं, जिनके कारण वह वनमानुष और अन्य ऊंचे से ऊँचे जन्तुओं से भी ऊँचा और भिन्न है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि मनुष्य मनुष्य ही है।

अपने मस्तिष्क की ही बदौलत मनुष्य मनुष्य है

मनुष्य की रचना जीवशास्त्र तथा रसायनशास्त्र की दृष्टि से अन्य जीवधारियों की शरीर-रचना से कोई विशेष भिन्न नहीं है। मानव-शरीर भी उन्हीं संस्थाओं के समूह से बना हुआ है, जिनसे कि अन्य प्राणियों के शरीर बने हैं। यद्यपि मनुष्य के शरीर में लगभग दो सौ पेशियाँ विद्यमान हैं, जितनी कि और किसी भी प्राणी में नहीं हैं, परन्तु उनमें एक भी ऐसी नहीं है, जो केवल उसके ही शरीर में पायी जाय। मनुष्य तथा अन्य प्राणियों की गर्भावस्था तो बहुत समय तक एक-सी ही रहती है। सच तो यह है कि मनुष्य के जीवन में जितने भी काम एक प्राणी की हैसियत से होते हैं, वे अन्य जानवरों की तरह ही होते हैं। अन्तर यही है कि कोई बात में वह कम है, तो कोई में ज्यादा। मनुष्य में न तो शेर या हाथी जैसा बल है, न वह उनके बराबर खा ही सकता है। न उसकी आवाज ही उतनी दूर तक पहुँच सकती है, जितनी दूर तक शेर की दहाड़ या हाथी की चिंघाड़ पहुँचती है। न उसकी सुनने की शक्ति ही उतनी तेज है, जितनी जंगल में रहनेवाले हिरन, बिल्ली, खरगोश इत्यादि की है। उसकी दृष्टि भी उतनी तेज नहीं, जितनी चील व अन्य चिड़ियों की है। इन सब बातों में कमजोर होते हुए भी मनुष्य कैसे सब जानवरों पर हावी रहता है? इसका उत्तर यही है कि

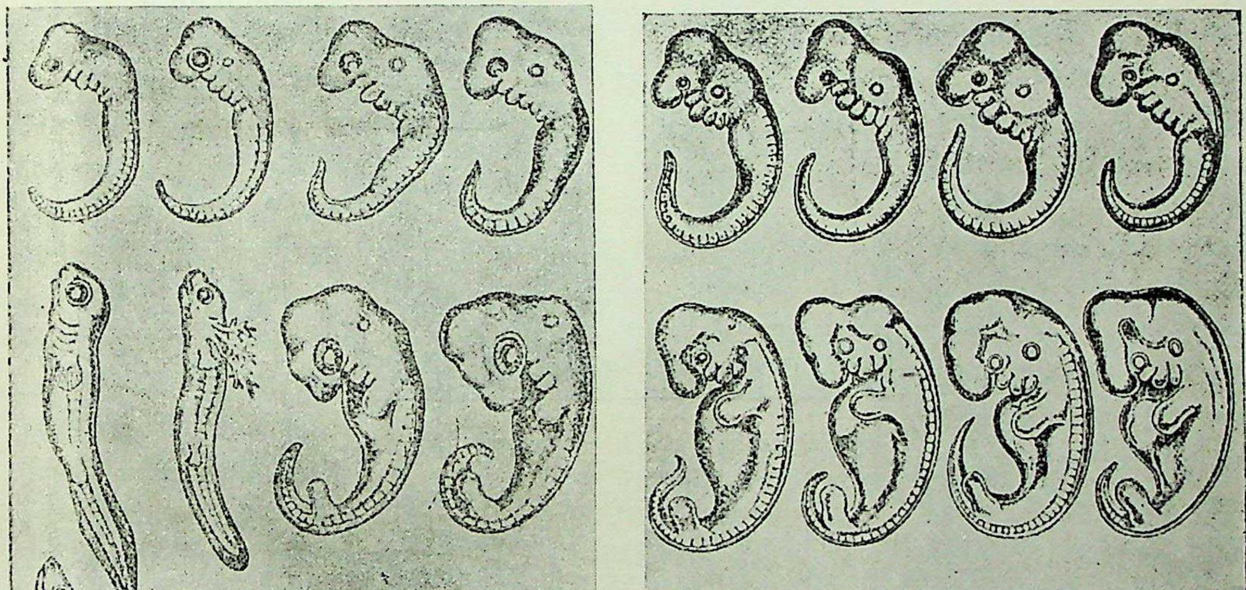

मछली मेढक कछुआ मुर्गी सुअर गाय खरगोश मनुष्य

मनुष्य और अन्य जानवरों के भ्रूणों के इस तुलनात्मक चित्र से स्पष्ट है कि आरंभिक अवस्था में इन भिन्न-भिन्न जानवरों में से सभी के भ्रूण एक-दूसरे से कितने मिलते-जुलते होते हैं! सब में दुम जैसा अंग भी मौजूद है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

केवल अपनी बुद्धि और चतुराई से। आदमी का मन या मस्तिष्क ही वह चीज है, जिसने आज उसे अन्य जीवधारियों से ऊँचा उठा दिया है। मस्तिष्क ही की बदौलत आदमी प्रारम्भिक अवस्था से ऊँचा उठकर आज सभ्य बन पाया है। वह हवा में उड़ता है, समुद्र की छाती को रौंदता हुआ चलता है, सात समुद्र पार बैठे हुए अपने मित्रों से बातचीत करता है, यहाँ तक कि उन्हें उतनी ही दूर पर बैठे-बैठे देखने भी लगा है। उसने प्रकृति पर विजय पा ली है, वह बीमारी और मृत्यु तक पर विजय पाने को तुला बैठा है।

वानर-कक्षा के विशिष्ट लक्षण या गुण

यह सब होते हुए भी डॉ० त्रिलोकीनाथ वर्मा के शब्दों में "मनुष्य एक जानवर ही है, जिसकी चार शाखाएँ होती हैं। इनमें से दो खाशाएँ तो चीजों को पकड़ने, लड़ने और लिखने, इत्यादि के काम में आती हैं और दो शाखाएँ चलने, फिरने, भागने, दौड़ने के काम में आती हैं। अर्थात् मनुष्य एक दोपाया जानवर है। बचपन में जब वह खड़ा होना नहीं जानता, तब मनुष्य भी चौपाया होता है; इस समय उसकी अगली शाखाएँ भी जमीन पर दौड़ने और चलने-फिरने में उसे सहायता देती हैं।" प्राणिशास्त्र-वेत्ताओं अथवा विकासवादियों ने ही नहीं, प्रत्युत विकासवाद के विरोधियों ने भी शरीर की रचना का साम्य देखकर मनुष्य का समावेश स्तनधारी श्रेणी की वानर-कक्षा में ही किया है। संस्कृति में 'वानर' आधे मनुष्य को कहते हैं। जो विशेषताएँ वानर-कक्षा में पाई जाती हैं, वे सब मनुष्य में भी हैं। उनमें से मुख्य ये हैं। दोनों ही में अन्य प्राणियों की अपेक्षा खोपड़ी और दिमाग बड़ा होता है। आँखें सामने होती हैं और सामने ही देखती हैं। हाथ-पाँव लम्बे होते हैं और उनमें अन्य पदार्थों को ग्रहण करने की शक्ति से युक्त पाँच-पाँच उँगलियाँ होती हैं जो इच्छानुसार घूमती हैं। अँगूठा घूमकर सामने आ जाता है और यदि सब उँगलियों में नहीं, तो कम-से-कम अँगूठे का नाखून जरूर चपटा होता है। सभी में मादाओं के वक्षस्थल पर दो स्तन होते हैं, जिनके द्वारा वे अपने बच्चों को दूध पिलाती हैं। हँसली की अस्थियाँ दृढ़ और पूरी तरह से बढ़ी हुई होती हैं। दूध के दाँत गिरकर स्थिर दाँत उगते हैं और उनकी संख्या इस कक्ष के सब प्राणियों में नियत होती है। इनमें गर्भावस्था में माता और भ्रूण या गर्भस्थ शिशु का संबंध नाल द्वारा होता है।

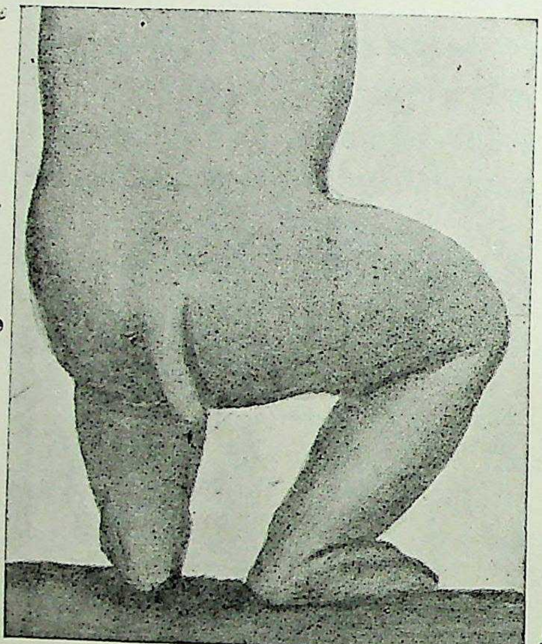

कौन कहता है कि मनुष्य के दुम नहीं हो सकती! प्रस्तुत चित्र में एक मानव-शिशु की तस्वीर है, जो इस छोटी-सी दुम को लेकर पैदा हुआ था! ऐसे बालक कभी-कभी ही पैदा होते हैं, तथापि वे इस बात को प्रमाणित करते हैं कि मनुष्य भी कभी एक दुमदार प्राणी था। चूँकि इस अंग की आवश्यकता बाद में नहीं रह गई, अतः वह क्रमशः लुप्त हो गया।

मनुष्य-वंश और वनमानुषों के गुणों की तुलना

हम पिछले पृष्ठों में यह बता चुके हैं कि मनुष्य का वंश वनमानुषों के वंश से अलग है, जैसा कि वनमानुषों का वंश अन्य वानर-वंशों से जुदा है, यद्यपि उपर्युक्त लक्षण सभी में पाये जाते हैं। मनुष्य के निकटतम सम्बन्धी मानवसम वानरों का विस्तारपूर्वक वर्णन तो 'जन्तु-जगत्' विभाग में आगे चलकर दिया जायगा। यहां केवल उनके मुख्य लक्षण, जिनसे कि वे अन्य प्रधानभागियों से जुदा किये जाते हैं, हम दे रहे हैं। उनका अपूर्ण खड़ा आसन; उनके हाथों जैसे पैर, जिनसे कि वे जमीन पर भली भाँति नहीं चल सकते; उनका आगे को बढ़ा हुआ सिर; मजबूत, बिना ठोढ़ी के आगे को निकले हुए उनके जबड़े; नीचा और पीछे को दबा हुआ उनका माथा भौं के ऊपर ऊँची निकली हुई हड्डी—ये इस वर्ग के मुख्य लक्षण हैं। मनुष्य की खोपड़ी से वनमानुषों की खोपड़ी की समाई आधी से भी कम होती है। यह कहा जाता है कि वनमानुषों का मानसिक विकास दो-तीन वर्ष के आदमी के बच्चे के बराबर होता है। किन्तु शारीरिक गुणों में मनुष्य और वनमानुषों में केवल मात्रा का ही अन्तर है।

जिस प्रकार मानवसम बन्दर उपर्युक्त गुणों द्वारा अन्य वानरों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

से पृथक् किए जाते हैं, उसी प्रकार मनुष्य भी अन्य प्राणि-भागियों से कई विशिष्टलक्षणों द्वारा अलग माना जाकर मानव-वंश में रक्खा जाता है। मनुष्य बिलकुल सीधा खड़ा होकर घंटों चल-फिर सकता है, जबकि दूसरे जीव अपनी पिछली टाँगों पर थोड़े ही समय तक खड़े हो सकते हैं। गोरिल्ला और शिम्पैंजी ही ऐसे हैं, जो कमर झुकाए पिछली टाँगों पर खड़े होकर दो-चार पग चल-फिर लेते हैं। बन्दर भी मदारी के सिखाने से रस्सी या छड़ी पकड़कर दो पैरों पर चल लेता है; लेकिन मनुष्य की तरह बिलकुल सीधा होकर कोई प्राणी नहीं चल-फिर सकता। कहा जाता है कि मनुष्य के पूर्वजों ने जब पिछली टाँगों पर चलना सीख लिया, तो उनकी भुजाएँ और हाथ दूसरे कार्य करने के लिए खाली हो गए और उनको अवसर मिला कि हाथों को धीरे-धीरे नाना प्रकार के कामों में लगाते हुए निपुण कार्य करने योग्य बना लें। इस प्रकार हाथ और पैरों के काम अलग-अलग बँट जाने से उनके स्वरूप में भी अन्तर हो गया। हम अपने हाथ के अँगूठे की तरह पैर के अँगूठे को बन्दरों की तरह उँगलियों से नहीं छुआ सकते और न उनकी तरह पैरों से कोई चीज पकड़ने ही का काम ले सकते हैं। वन-मानुषों से तुलना करने पर यह पता लगता है कि हमारी भुजाएँ टाँगों से अधिक छोटी होती हैं और शरीर पर बाल भी बहुत कम होते हैं। मानवसम बन्दरों के समान मनुष्य में न तो जबड़े ही आगे निकले हुए हैं, न आँखों के ऊपर की हड्डियाँ उनकी जैसी उभरी हुई हैं, और न कुक्कुर-दन्त या कीलें अन्य दाँतों से लम्बे होते हैं। मनुष्य में ठोड़ी साफ होती है और उसकी नाक नुकीली और ऊपर की ओर गड्ढेदार होती है। उसके ऊपरी होठ के बीचोबीच में एक नाली भी बनी हुई है। परन्तु सबसे मुख्य विशेषता तो वस्तुतः उसका मस्तिष्क है। मनुष्य अपने शरीर की साधारण रचना द्वारा बन्दरों से इतना भिन्न नहीं किया जा सकता है, जितना कि अपने बड़े मस्तिष्क द्वारा वह उन्हें मात करता है। उसका मस्तिष्क बड़े-से-बड़े वनमानुष के मस्तिष्क से भी दो या तीन गुना अधिक बड़ा होता है! मनुष्य का मस्तिष्क वजन में १३८० माशा, गोरिल्ला का ६०० माशा, शिम्पैंजी का ४५० माशा और घोड़े का ६५० माशा होता है।

सर आर्थर कीथ का कथन है कि मनुष्य के गुणों में से शिम्पैंजी में ९८, गोरिल्ला में ८७, गिब्बन में ८४, पश्चिमी गोलार्द्ध (नई दुनिया) के बन्दरों में ६०, औरंग-उटांग में ५६ और पूर्वी गोलार्द्ध (पुरानी दुनिया) के बन्दरों में ५३ गुण मिलते हैं। सर्वश्रेष्ठ वनमानुष और सबसे प्राचीन मनुष्य में भी मानसिक स्तर पर इतना अधिक भेद है कि उनकी तुलना करना बहुत कठिन है।

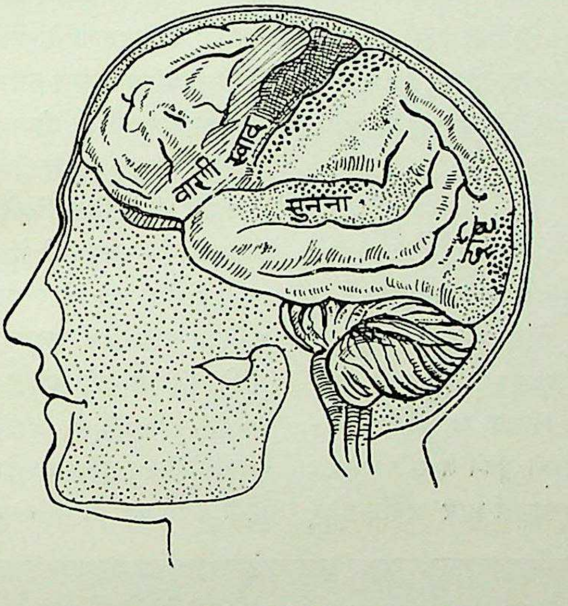

मानवीय मस्तिष्क के इस मानचित्र में वाणी, स्वाद, श्रवण और दृष्टि के केन्द्र दिग्दर्शित हैं। ये कितने विकसित हैं? इसी यंत्र की बदौलत मनुष्य मनुष्य बना है।

शिम्पैंजी का बुद्धिबल

इसमें सन्देह नहीं कि शिम्पैंजी और मनुष्य के मस्तिष्क की मौलिक रचना एक ही-सी है, परन्तु शिम्पैंजी का दिमाग बहुत साधारण कोटि का है। वह हमारे दिमाग की तरह काम नहीं करता, यद्यपि यह सिद्ध हो चुका है कि वह सिर्फ नकल ही नहीं करता, या चालाकी के जो काम वह एक बार संयोग से कर लेता है, उन्हें करना याद ही नहीं रखता, वरन् अपने कार्यों का आगा-पीछा भी थोड़ा-बहुत सोच सकता है। वह कोट-पतलून पहनना, कुर्सी पर बैठकर छुरी-काँटे से खाना, चाय पीना बाइसिकिल पर सैर करना, और सिगरेट पीना ही नहीं सीख सका है, वरन् उसके सामने यदि कोई समस्या—जो बहुत कठिन न हो—रख दी जाय, तो सोच-विचार-कर वह उसे हल भी कर लेता है। एक बार प्रयोग के तौर पर उसके बुद्धिबल की परीक्षा करने के लिए एक शिम्पैंजी को एक बड़े कटघरे में बन्द कर दिया गया और कटघरे के बाहर केलों का एक गुच्छा काफी ऊँचाई पर लटका दिया गया। कटघरे के अन्दर उसकी पहुँच के बाहर एक टेढ़ी मूठवाली छड़ी लटका दी गई, और कोने में एक लकड़ी का बक्स रख दिया गया। उस होशियार शिम्पैंजी ने बिना किसी पूर्व अनुभव के अपने आसपास की दशा को ताड़ लिया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बक्स को ढकेलकर वह उस पर चढ़ गया और छड़ी को उसने उतार लिया। फिर छड़ी और बक्स को वह केलों की ओर ले गया और बक्स पर खड़ा होकर छड़ी से केलों को उतारकर खा गया (देखो पृष्ठ ४३१ का चित्र)। अब बताइए कि कौन कह सकता है कि शिम्पैंजी मूर्ख है? और भी बहुत-से प्राणियों में ऐसे ही उम्दा दिमाग होते हैं। बन्दर और रीछ नाचना, पैसा माँगना, सलाम करना, पैर छूना, मूढ़े पर बैठकर डमरू बजाना, अपनी स्त्री को प्यार करना और उससे रूठना सीख लेते हैं। गाय-बकरी अपने भोजन का समय पहचान जाती हैं। बिल्ली मिठाई खाने के लिए अलमारी की कुंडी खोलना सीख लेती है। सरकस में शेर, हाथी, घोड़े बहुत-से अनोखे काम कर दिखाते हैं। फिर भी मनुष्य के निकट कोई भी नहीं पहुँच सकता। वे सब बहुत-से बुद्धि के काम कर दिखाते हैं, किन्तु यह मानना कठिन है कि उनमें से किसी में शिम्पैंजी के बराबर भी अपने कर्त्तव्यों का परिणाम सोचने की योग्यता है।

मनुष्य वनमानुषों से कैसे पृथक् हुआ ?

इन बातों से मालूम होता है कि मनुष्य और अन्य ऊँचे-से-ऊँचे पशुओं की बुद्धि में इतना विशाल अन्तर होने का कारण केवल मनुष्य के मस्तिष्क का बड़ा और भारी होना ही है। औसत डील के मनुष्य के दिमाग का बोझ भारी-से-भारी गोरिल्ला के मस्तिष्क से भी दुगने से अधिक होता है। उसकी वृद्धि उसके सबसे महत्त्वपूर्ण भाग अर्थात् वृहत् मस्तिष्क के कलक में ही हुई है, जो बुद्धि, स्पर्शज्ञान, वाक्-शक्ति और विचार आदि का केन्द्र है। हमारे बृहत् मस्तिष्क की वात-कोशिकाओं की संख्या नौ अरब बीस करोड़ है! इसी कारण वह बहुत पेचीदा हो गया है। जिस प्रकार मस्तिष्क की वृद्धि की ही बदौलत वनमानुषों ने अन्य प्राणियों की अपेक्षा उच्चता प्राप्त की है, उसी तरह मनुष्य भी वनमानुषों पर मस्तिष्क की अत्यधिक वृद्धि के कारण ही उच्चता प्राप्त कर सका है। मस्तिष्क की उन्नति ने ही उसे शारीरिक बल के स्थान पर यान्त्रिक बल का प्रयोग करना सिखाया। इसी की बदौलत अन्य जानवरों की अपेक्षा उसमें सोचने, विचारने इत्यादि के केन्द्र काफी बड़े और उत्तम प्रकार के होते हैं एवं बुद्धि भी अधिक होती है। जो काम अन्य जानवर नहीं कर सकते, उन्हें भी वह कर सकता है। वह किसी विषय पर अपने मन में तर्क-वितर्क करके उस विषय का निर्णय करने की योग्यता रखता है, जो और कोई प्राणी नहीं कर सकता। बुद्धि ही की बदौलत वह शेर, हाथी और ह्वेल जैसे भीमकाय प्राणियों को भी---जो उससे कहीं अधिक बलशाली हैं--सहज ही में वश में कर लेता है।

शारीरिक बल के स्थान पर यान्त्रिक बल का प्रयोग करने के साथ-साथ मनुष्य ने अग्नि, जल, आदि का भी भाँति-भाँति से प्रयोग करना सीखा। पत्थर फेंकना, निशाना लगाना, पत्थरों के अस्त्र बनाना, इत्यादि प्रारंभिक कार्यों के पश्चात् शनैः-शनैः मकान बनाने और बीज बोकर खेती करने का भी ज्ञान उनसे प्राप्त किया। इस प्रकार

इस चित्र में तीन पालतू शिम्पैंजी कुर्सी और मेज पर बैठकर आदमी की तरह छुरी-काँटे से खाना खाते दिखाई दे रहे हैं। प्रायः समाचार-पत्रों में शिम्पैंजियों के ऐसे चित्र और वर्णन प्रकाशित होते रहते हैं, जिनमें वे बल्ले से टेनिस खेलते, साइकिल चलाते और पियानो जैसा पेचीदा बाजा बजाते भी दिखाई देते हैं। एक शिम्पैंजी ने तो सिनेमा-चलचित्रों में भी अभिनय किया है! फिर भी यह सोचना गलत होगा कि इनका मस्तिष्क मनुष्य की कोटि का है।

वन्य जीवन से क्रमशः सभ्यता की ओर उसकी
CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
प्रगति हुई। कालान्तर में उसने अंगविक्षेपों, चित्रमय संकेतों और उनसे भी कहीं अधिक अचरजभरे अक्षरमय चिह्नों से अपने विचारों को प्रकट करने की शैली भी ढूंढ निकाली। इस प्रकार जैसे-जैसे उसकी विचार करने की शक्ति बढ़ती गई, वैसे-वैसे उसके पास अधिकाधिक साधन इकट्ठे होते चले गये और इसी अनुपात में उसमें और वनमानुषों में अन्तर भी बढ़ता चला गया। सोलस, कीथ और हेकल नामक विद्वानों के अनुसार इस धरती पर मनुष्य का प्रादुर्भाव हुए दस लाख से भी अधिक वर्ष बीत चुके हैं। इतनी अवधि में मनुष्य के बुद्धि-सामर्थ्य के कारण उसमें और वनमानुषों में इतना अधिक अन्तर पड़ गया है कि उसकी माप लेना अब असम्भव है। वनमानुषों से पृथक् होकर ही मनुष्य की उन्नति समाप्त नहीं हो गई, बल्कि उसके विकास का चक्र तो अब भी बराबर गतिशील है।

मानव-मस्तिष्क—दृष्टि और कल्पना-शक्ति

मनुष्य का मस्तिष्क बड़ा और भारी होने के कारण उसमें कौन-कौन से विशेष गुण आ गये हैं, अब हम उनका वर्णन करना चाहते हैं। मनुष्य का मस्तिष्क एक प्रगतिशील यंत्र है। वह किसी घटना के विषय में आगे-पीछे दोनों पक्षों की कल्पना कर सकता है, जब कि अन्य पशु केवल अपने सामने ही की घटना की अनुभूति कर सकते हैं। आदमी ही एक ऐसा जानवर है, जो अंतर्मुखी होकर न केवल स्वयं अपना ही अध्ययन करता, बल्कि अपनी इच्छाओं और विचारों की छानबीन करके वह इस बात का भी कुछ-कुछ अनुभव कर सकता है कि अपने आसपास की अद्भुत सृष्टि में, जिसका कि ज्ञान उसके मन को नेत्रों द्वारा होता है, वह क्यों भाग ले रहा है। यों तो विविध इंद्रियाँ और उनकी कार्यक्षमता वनमानुषों में भी वैसी ही है, जैसी कि हममें, किन्तु उनके मस्तिष्क में भला वह सामग्री कहाँ है, जिससे वे नेत्रों द्वारा दिखाई देनेवाली चीजों के बारे में आगे-पीछे का नतीजा निकाल सकें? उनमें पेचीदा बातों को याद रखने की भी उतनी योग्यता नहीं है, जितनी कि हममें है। जब वनमानुषों का ही यह हाल है, तो फिर अन्य प्राणियों में तो यह शक्ति और भी कम है। आगे आप देखेंगे कि आदमी की दृष्टि और उनके सीधे खड़े होने की शक्ति में एक घना सम्बन्ध है। इन दोनों विशेषताओं ने अन्य शक्तियों के साथ मिलकर उसके मस्तिष्क को ऊँचे स्तर पर उठा दिया है। जब मनुष्य ने सीधा खड़ा होना सीख लिया, तो उसकी

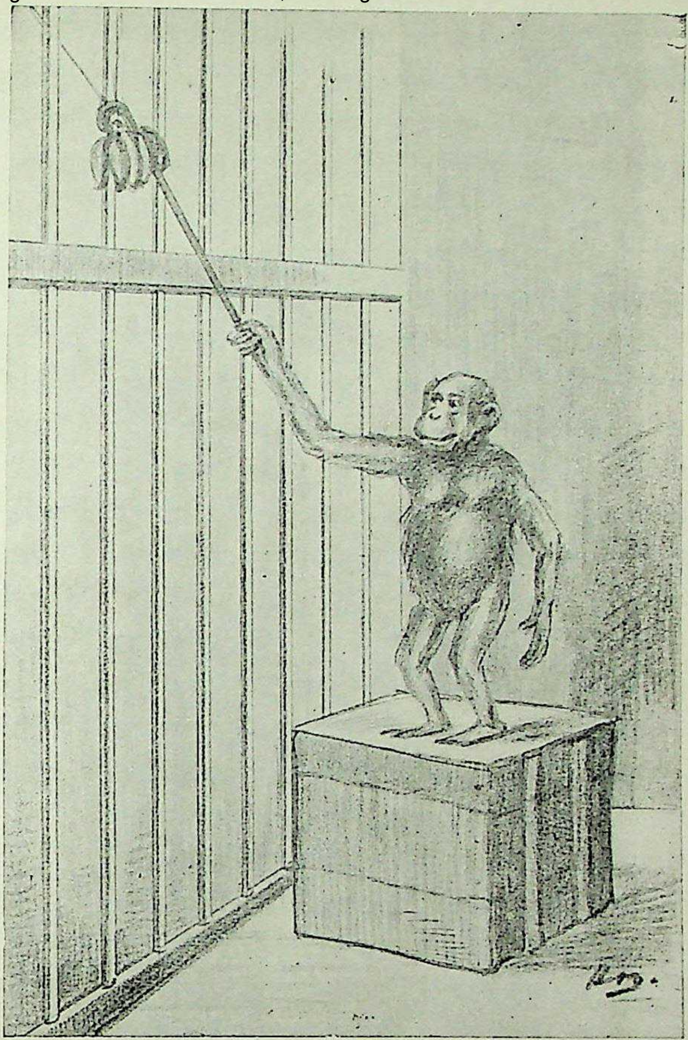

वनमानुष के बुद्धिबल की परीक्षा करने के हेतु प्रयोग के लिए एक शिम्पैंजी को एक बड़े कटघरे में बन्द कर दिया गया और कटघरे के बाहर केलों का एक गुच्छा काफी ऊँचाई पर लटका दिया गया। कटघरे के अन्दर उसकी पहुँच के बाहर एक टेढ़ी मूठवाली छड़ी लटका दी गई, और कोने में एक लकड़ी का बक्स रख दिया गया। होशियार शिम्पैंजी ने बिना किसी अनुभव के अपने आसपास की दशा को ताड़ लिया। बक्स को ढकेलकर वह उस पर चढ़ गया और छड़ी उतार ली, फिर छड़ी और बक्स केलों की ओर ले गया और बक्स पर खड़े होकर छड़ी से केलों को उतारकर खा गया! फिर भी मनुष्य से उसका मस्तिष्क बहुत घटिया या निम्न कोटि का है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दृष्टि पहले की अपेक्षा अधिक विस्तीर्ण हो गई [illegible] उसे हाथों की जरूरत अब न रही। फलतः वह उनसे चीजों को छूने, पकड़ने और टटोलने का काम लेने लगा। ज्यों-ज्यों हाथों द्वारा वस्तुओं को पकड़ने और उनका ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति उसमें बढ़ती गई, त्यों-त्यों उसके हाथ या उँगलियों में अनुकूलता और छूकर बोध करने की योग्यता भी बढ़ती चली गई। इस प्रकार वह समय आ गया, जब कि आदमी निरीक्षण और स्पर्शज्ञान द्वारा अपने आस-पास की चीजों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता रखने लगा। जैसे-जैसे उसकी आवश्यकताएँ बढ़ती गई, यह बात जरूरी हो गई कि उसे जो ज्ञान देखकर और छूकर हुआ है, उसे वह भूल न जाय। इसलिए उसके दिमाग को स्मरण-शक्ति की अधिक आवश्यकता पड़ी, जिसके कारण मस्तिष्क के स्मरण-शक्ति-सम्बन्धी केन्द्रों की उत्तरोत्तर उन्नति और वृद्धि होने लगी।

इस योग्यता की बदौलत ही तो एक बार हम जो कुछ देख लेते हैं, उसे बाद में याद भी रख सकते हैं। हम केवल अपनी दृष्टि द्वारा ही एक चेहरे को दूसरे चेहरे से अलग पहचानते हैं; एक रंग को दूसरे रंग से अलग कर सकते हैं; छूकर या देखकर, अथवा दोनों ही प्रकार से, दूसरी वस्तुओं की बनावट में भेद समझ सकते हैं और दूसरों के संकेतों अथवा चेहरों के भावों को देखकर उनकी इच्छा और विचारों तक का थोड़ा-बहुत आभास प्राप्त कर लेते हैं। इससे स्पष्ट है कि हमारे मस्तिष्क में अपने पिछले अनुभवों, अर्थात् उन वस्तुओं का, जिन्हें हम पहले देख या छू चुके हैं, या उन कामों का, जिन्हें हम पहले कर चुके हैं, परस्पर मिलान करने की शक्ति विद्यमान है; अथवा यों कहिए, कि हम बड़ी पेचीदा स्मरण-शक्ति से युक्त हैं।

हमारी और जानवरों की भाषा

मस्तिष्क की समृद्धि होने की दूसरी आवश्यक सीढ़ी मनुष्य में वाक्-शक्ति का उदय होना भी है। मनुष्य में यह शक्ति अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक बढ़ी-चढ़ी है, यद्यपि बहुत-से अन्य जीवधारी भी बोलते पाये जाते हैं। चिड़ियाँ अपने बच्चों के चहचहाने के ढंग से जान जाती हैं कि वे क्या चाहते हैं। बकरी का बच्चा अपनी माँ की आवाज दूर से ही पहचान लेता है। बिल्ली भी म्याऊँ-म्याऊँ करके अपने बच्चों को पास बुला लेती है। शेर, हाथी और बैल गरजते, चिंघाड़ते और रंभाते हैं। बुलबुल और लावा जैसे पक्षी सुरीले और मधुर राग अलापते हैं। शिम्पैंजी भी आवाज [illegible] गाते हैं, जिससे उनकी खुशी या नाराजी प्रकट होती है। चींटियाँ तो बिना बोले ही अपने महीन शृंगों द्वारा एक-दूसरे को इशारा करके समझाती-बुझाती हैं। इसी प्रकार मनुष्य भी बोलता, गाता और चिल्लाता है। तो फिर उसकी वाक्-शक्ति और जानवरों की बोलचाल में भला क्या भेद है?

कहा जाता है कि मनुष्य और अन्य जानवरों की बोली में मुख्य भेद यह है कि मनुष्य ने उन्नति करके अपनी भाषा का इस प्रकार से विकास कर लिया है कि उसमें एक शब्द से केवल एक ही अर्थ समझा जा सकता है; जब कि पशुओं की बोलचाल में किसी विशिष्ट अभिप्राय के लिए कोई नियुक्त शब्द नहीं है। हाँ, यह कहना कि अन्य जीवों में अपने भावों को ठीक से प्रकट करने की योग्यता है ही नहीं, ठीक नहीं होगा। शायद लोगों का यह विचार कि अन्य प्राणियों में कोई भाषा है ही नहीं, इसलिए हो कि उनकी बोली हमारी समझ में नहीं आती है। पर यह बात तो मनुष्य पर भी लागू है। क्या एक देश के निवासी दूसरे देश के मनुष्य की भाषा बिना सीखे समझ लेते हैं? न तो भारतीय चीनी या जापानी भाषाएँ समझ पाते हैं, न जर्मन और फ्रांसीसी अंग्रेजों की तरह बोलते हैं।

बातचीत करनेवाली मधुमक्खी और कुत्ते

जर्मनी के एक विद्वान् वी० वॉन फिस ने लगभग २७ वर्ष तक शहद की मक्खियों का स्वभाव एवं उनकी बोलचाल समझने का प्रयत्न किया था। उन्होंने लिखा है कि उन लघु प्राणियों में भी एक प्रकार की भाषा प्रचलित है, जो उनकी हरकतों या गंध द्वारा व्यक्त होती है। कहते हैं, जब कोई मक्खी किसी फूल पर काफी शहद का भांडार देखती है, तो वह अपने छत्ते में आकर चक्कर काटकर नाचने लगती है। उस नाच को देखकर बाकी और मक्खियाँ यह समझ जाती हैं कि उसने कहीं काफी शहद देखा है। यह समझकर वे उसके पास आकर सूँघती हैं कि किस फूल की सुगन्ध उसके शरीर में से आ रही। बस, उन्हीं फूलों पर जाकर वे तुरन्त शहद इकट्ठा करने लगती हैं। यदि शहद बहुत थोड़ा अथवा कठिनता से मिलनेवाला होता है, तो वह मक्खी छत्ते में आकर अन्य मक्खियों को बुलाने के लिए नाचा नहीं करती। वह स्वयं बार-बार जाकर थोड़ा-थोड़ा शहद ले आती है। इन महाशय ने पर्याप्त परिश्रम करके मक्खियों के इस प्रकार एक दूसरे से बात करने की भाषा को पहचान लिया है और उनके नृत्य की एक फिलम तक उन्होंने बना डाली है। उनका कथन है कि इसी तरह मछलियों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

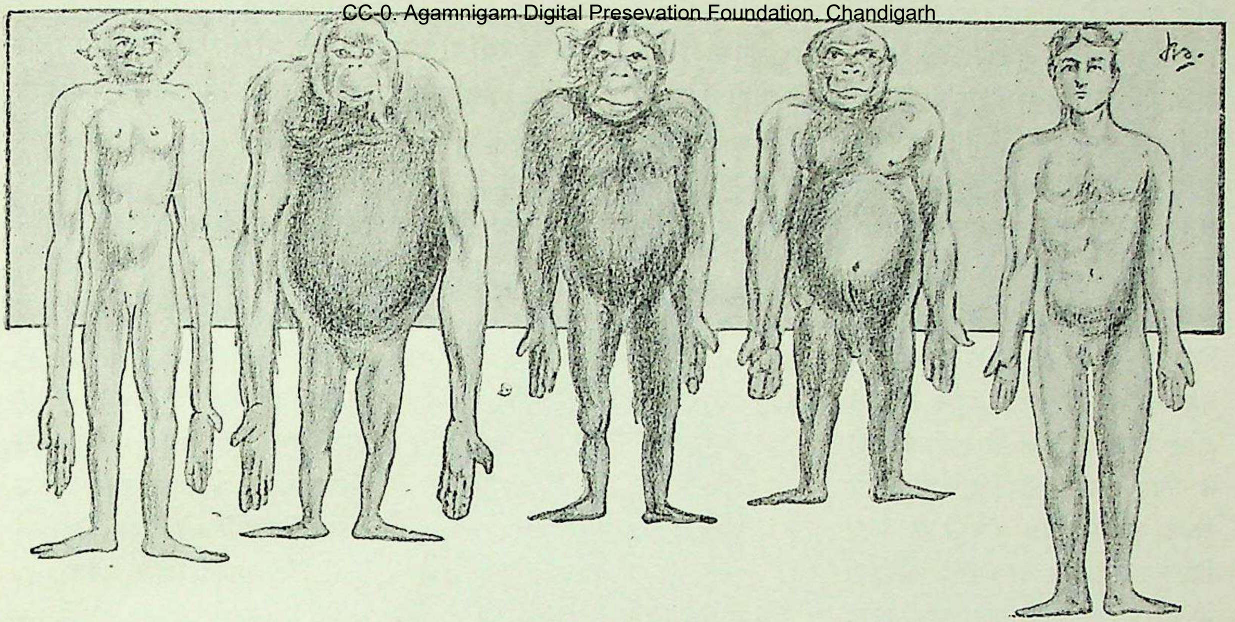

इस चित्र में मानवसम वानरों के हाथ-पैरों की लम्बाई के साथ मनुष्य के हाथ-पैरों के आकार की तुलना प्रस्तुत की गई है। बाईं ओर से दाहिनी ओर को क्रमशः गिब्बन, औरंग-उटांग, शिम्पैंजी, गोरिल्ला और मनुष्य की आकृतियाँ सीधी खड़ी दिखाई गई हैं, ताकि उनके हाथ-पैरों की लम्बाई की तुलना की जा सके। आप देखते हैं कि औरंग और गिब्बन के हाथ घुटनों से कितने अधिक नीचे तक लम्बे हैं। यह इसलिए है कि इन्हें पेड़ों की डालियों पर लटकने और उन्हें पकड़-कर वृक्षों पर विचरने की आदत है। इसके विपरीत मनुष्य से अधिक मिलते-जुलते शिम्पैंजी और गोरिल्ला के हाथ अपेक्षाकृत छोटे हैं।

की भी बोली होती है। वे उनसे बातचीत भी कर सकते हैं। उनका तो दावा है कि जिस प्रकार हम सीटी बजा-कर कुत्ते को अपने पास आना सिखा सकते हैं, उसी तरह मछलियों को भी सिखाया जा सकता है।

इन पंक्तियों के लेखक को एक बार जयपुर के पुराने महल के पीछे की झील देखने का अवसर मिला था। उस झील में कई मगर थे। वहाँ का चौकीदार हाथ से ताली बजाकर "आ, आ; हा, हा" की आवाज लगाकर जब चाहे तब उन प्राणियों को अपने पास किनारे पर बुला लेता था। उनकी आवाज सुनते ही चाहे कितनी ही दूर वे क्यों न हों, वे दैत्या-कार प्राणी तैरते हुए उसकी ओर किनारे पर आ पहुँचते थे। जर्मनी के वैमार नामक नगर में ऐसे कुछ सिखाये हुए कुत्ते थे, जिन्हें संख्याओं द्वारा बातचीत करना सिखाया गया था। डा० मैक्समूलर ने स्वयं जाकर इन कुत्तों को देखा था और उनका बड़ा ही मनोरंजक विवरण समाचारपत्रों में प्रकाशित कराया था। उन्होंने लिखा है कि ये कुत्ते भोंककर और पंजों से थपथपाकर अक्षरों का बोध कर सकते थे। जैसे 'ए' के लिए एकबार भोंकना, 'बी' के लिए दो बार, 'सी' के लिए तीन बार, और इसी तरह से आगे के अक्षरों के लिए भी वे उतने ही बार भोंकते और थपथपाते थे, जितना उस अक्षर के लिए निश्चित होता था। इन महाशय ने उन कुत्तों से लिखकर और जबानी कई प्रश्न किये, जिनका उत्तर उन्होंने बहुत सोच-समझकर और बुद्धिमानी से दिया। मैक्समूलर लिखते हैं कि उन्हें इतनी आशा नहीं थी कि वैमार के कुत्ते मूर्त्त और अमूर्त्त विचारों को इतनी अच्छी तरह संख्याओं द्वारा बातचीत में प्रकट कर सकते हैं और मनुष्य की बातों को समझ सकते हैं। इन कुत्तों ने हमें दिखला दिया है कि इन मूक पशुओं के विषय में हमारे आम विचार कितने गलत हैं। इससे यह भी पता लगता है कि जितना हम जानवरों को समझ पाते हैं, वस्तुतः उससे कहीं अधिक जानवर हमें समझ लेते हैं। पशु-संबंधी इन अध्ययनों से हम यह दावा नहीं कर सकते कि जानवरों में सोचने और अपने विचारों को प्रकट करने की योग्यता है ही नहीं। वस्तुतः यदि लोग जानवरों को इस शक्ति से हीन बतलाते हैं, तो इसका कारण केवल उनका अपना घमण्ड या हठधर्मी ही समझिए।

मनुष्य और समाज

अपनी वाणी ही के द्वारा मनुष्य दूसरे की विद्या और अनुभव से लाभ उठाता है और इस प्रकार अपनी बुद्धि की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वृद्धि करता है कि वाक् और स्मृति ही ऐसी शक्तियाँ हैं जिनके कारण हम दूसरों की अनुभूतियों और अनुमानों को अपने मस्तिष्क में जमा कर सकते हैं और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक उन्हें पहुँचाते हैं। इससे हमारी अपने आप देखने-भालने और निर्णय करने की योग्यता की तो कुछ क्षति अवश्य हुई, परन्तु उससे मानव-समाज में परम्परागत विचार और रूढ़ियों की प्रथा चल पड़ी। वस्तुतः आदमी को उस दिन अपने विकास के क्रम में एक बहुत बड़ी सहायता मिली, जब उसने लिखना सीख लिया। लेखों के द्वारा आदमी ने जिस प्रकार दूसरों के अनुभवों से लाभ उठाया, वह बन्दरों के लिए बिल्कुल असम्भव था। इन्हीं शक्तियों के कारण हम अपने मस्तिष्क के ऊपर बहुत-कुछ गर्व भी करने लगे। कदाचित् हम कभी इतने होशियार न होते, यदि हमसे कभी कोई बोला ही न होता अथवा हमने कभी कोई किताब न पढ़ी होती। यदि हमें सिखाया न गया होता, तो शायद ५-६ तक की गिनती भी हमें न आती। अब तो मौखिक शिक्षा और पुस्तकों की बदौलत हम गणित और रेखागणित जैसे कठिन विषय भी सीख लेते हैं।

इन सब बातों से स्पष्ट होता है कि मनुष्य खाने-पीने, चलने-फिरने, लिखने-पढ़ने के लिए अन्य पशुओं की अपेक्षा दूसरों पर अधिक निर्भर है। यूनान के प्रसिद्ध प्रकृतिवादी और दर्शनशास्त्रवेत्ता अरस्तु ने ठीक ही कहा है कि 'मनुष्य एक सामाजिक जीव है। वह न कभी अपने लिए जीता है, न कभी अपने लिए मरता है।' हम ऐसे बने हैं कि हमारे लिए दूसरों के प्रभाव से अलग रहकर जीना बिल्कुल असम्भव है। सच तो यह है कि हम समाज के नियमों से ऐसे जकड़े हुए हैं कि दुनिया को बजाय अपनी आँखों के समाज की आँखों से ही देखने लगे हैं। कदाचित् इसी का यह फल है कि जब हम दुनिया में

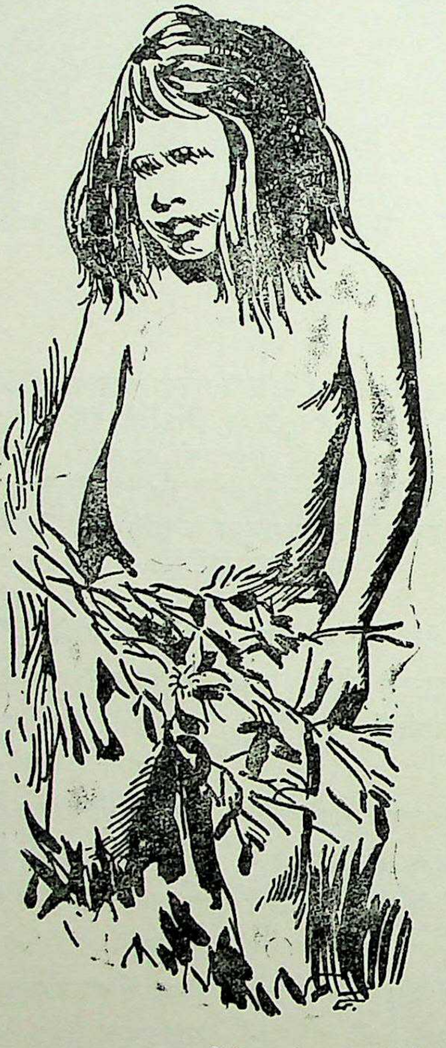

यह मानव-बालक अमेरिका के जंगलों में से मिला था। कहते हैं, इसे बचपन में भालू उठा ले गये थे और उन्हीं के द्वारा वह पाला-पोसा गया था। फलतः इसके सभी व्यवहार भालू जैसे हो गये थे।

जन्म लेते हैं तो बिल्कुल बेबस होते हैं। उस दशा में हम अन्य जन्तुओं या वनस्पतियों से भी कम अपनी देखभाल कर सकते हैं। हम अन्य प्राणियों से कहीं अधिक समय तक बेबस बने रहते हैं। मानव-शिशु यह जानने के लिए कि क्या करें और कैसे करें, अन्य जीवधारियों की अपेक्षा दूसरों पर अधिक निर्भर है। अगर कोई स्वस्थ और समझदार मनुष्य अन्य मनुष्यों की संगत से काफी समय तक पृथक् रक्खा जाय, तो उसकी विचारशक्ति में अवश्य ही हीनता आ जायगी। बच्चों में यह बात बहुधा देखी गई है। कभी-कभी अवसर पाकर भेड़िए, भालू आदि पशु मानव-शिशुओं को उठा ले जाते हैं और वे उनका अपने बच्चों की भाँति पालन-पोषण करते पाये गये हैं। जब ये बच्चे अपने जंगली आश्रयदाताओं से छीनकर वापस मनुष्य-जगत् में लाये गये, तो देखा गया कि वे मानव-प्रकृति से बिल्कुल वंचित थे। वे अपने चारों हाथ-पैरों से चलते-फिरते थे और मनुष्यों की-सी बोली बोलने की अपेक्षा उन्हीं पशुओं की भाँति, जिनके बीच वे रह चुके थे, चीखते, चिल्लाते और इधर-उधर कूदते-फिरते थे। ऐसे शिशुओं में से किसी-किसी को तो आदमी की चाल और बोली सीखने में वर्षों लग गये, फिर भी वे सदा मूर्ख के मूर्ख ही बने रहे। हमारे देश में कई बार ऐसे बच्चे जंगलों से पकड़े गये हैं और उनके विवरण प्रकाशित हुए हैं। लेखक को स्वयं ही सन् १९१२ या १९१३ में एक बच्चे को, जो लगभग ९ वर्ष का था और भेड़िए की माँद से पकड़कर लाया गया था, वाराणसी के अस्पताल में देखने का अवसर मिला था। यह बच्चा अपने चारों हाथ-पैरों से चलता-फिरता था और झुककर चलने के कारण उसकी खोपड़ी भी कुछ लम्बी-सी हो गई थी। वह आदमियों को देखकर भेड़ियों की तरह गुर्राता और भोंकता था तथा छोटे बच्चों पर आक्रमण करने की भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चेष्टा करता था। वह उस समय न तो मनुष्यों की बोली बोल सकता था, न उसे समझ ही सकता था। सन् १९३७ में ऐसी ही दो लड़कियों का वर्णन समाचारपत्रों में छपा था, जिन्हें एक पादरी मिदनापुर के जंगल से भेड़ियों के भिटे से पकड़कर लाया था। जिस समय ये बच्चे पकड़े गए थे, वे बिल्कुल भेड़ियों ही की तरह चलते-फिरते तथा खाते-पीते थे। उनकी भाषा भी केवल गुर्राना और भोंकना ही थी। रात में वे नित्य तीन बार एक विशेष प्रकार से निश्चित समय पर भोंका करते थे। उनका यह स्वभाव धीरे-धीरे बहुत दिनों में छूटा। पूरे दो वर्ष तक मनुष्यों के साथ रहने और सिखाये जाने पर भी वे केवल "मा" हू, "हू" और "न, न" के सिवाय और कुछ नहीं बोल सकते थे। चार वर्ष बीतने पर उन्होंने कुछ बोलना सीखा था, यद्यपि उनकी आयु तब तक ८-१० वर्ष की हो गई थी। इसी तरह पिछले दिनों की बात है कि लखनऊ के समीप एक लड़का पाया गया, जिसके बारे में यह अनुमान किया गया कि वह भेड़ियों द्वारा पाला-पोसा गया था। यह लड़का, जिसका नाम 'रामू' रख दिया गया है, अभी भी स्थानीय अस्पताल में है और समाचारपत्रों में उसकी काफी चर्चा हुई है। ऐसा ही अन्य एक बालक आगरे के समीप भी पाया गया है, जिसका नाम 'परशुराम' रखा गया है।

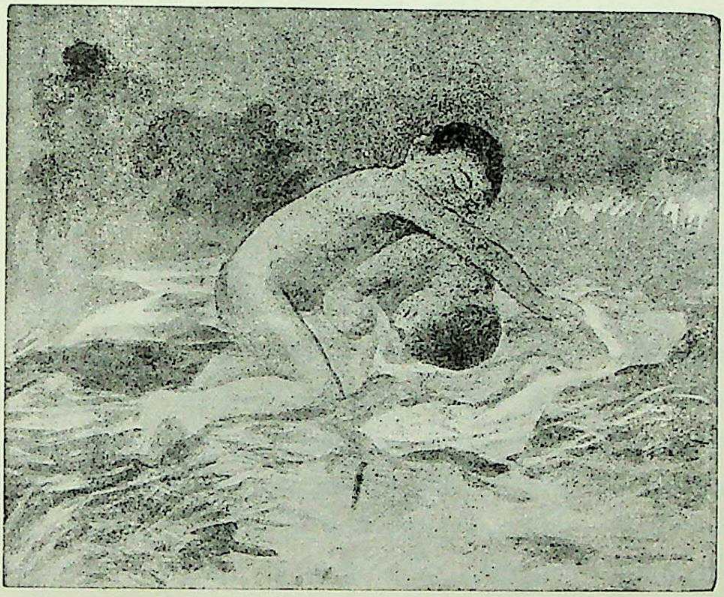

नेकी और मनुष्य

उपर्युक्त बातों से स्पष्ट रूप से विदित होता है कि जानवरों और आदमियों के मानसिक और नैतिक स्तरों के बीच एक महान् खाई है। ऐसा अन्तर स्वयं मनुष्यों में भी परस्पर पाया जाता है, जैसा कि सन्त और पापी में, विद्वान् और मूर्ख में। परमात्मा की सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ कृति मनुष्य ही है। ईश्वर ने अपने अंश का जितना भाग मनुष्य को दिया है, उतना कदाचित् और किसी जीवधारी को नहीं मिल सका है। मनुष्य और पशुओं को एक दूसरे से जुदा करनेवाली रेखा के ऊपरी छोर पर सच्चाई, साहस, ईमानदारी, परोपकार,

भेड़ियों द्वारा पालित-पोषित ये दो लड़कियाँ कई वर्ष हुए तब मिदनापुर के समीप के जंगलों में से भेड़ियों के भिटे से पकड़कर लायी गई थीं। इनके सारे आचरण भेड़ियों जैसे हो गये थे। वे इसी तरह चारों हाथ-पैरों पर चलती थीं, जैसे कि नीचे के चित्र में दिग्दर्शित है। वे भेड़ियों की तरह ही गुर्राती थीं और कच्चा मांस खाती थीं। अस्पताल में लाने पर इनका नाम 'कमला' और 'अमला' रक्खा गया था। 'कमला' और 'अमला' के उपरान्त भेड़ियों द्वारा पाले गये मानव-शिशुओं में हाल के वर्षों में पाये गये लखनऊ के सरकारी अस्पताल में विद्यमान 'रामू' एवं आगरे के 'परशुराम' नामक बालकों के नाम सबसे प्रसिद्ध हैं। इनकी काफी चर्चा समाचारपत्रों में हो चुकी है।

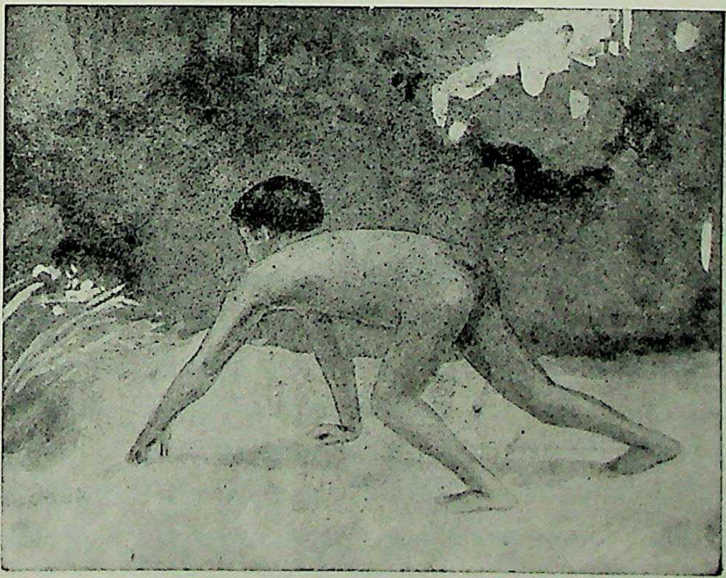

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विपत्ति में दूसरों की सहायता करना, आदि मानवोचित गुण हैं और उसके नीचे लड़ना-झगड़ना, मारना-पीटना, नोचना-खसोटना इत्यादि पशुओं के-से कर्त्तव्य हैं। कभी-कभी जब मनुष्य मनुष्यत्व से गिर जाता है अथवा उसके ऊपर पशुत्व हावी हो जाता है, तब वह भी पशुओं के-से ही कार्य करने लगता है। कोई भी व्यक्ति या राष्ट्र जब दूसरे व्यक्ति या राष्ट्र के धन और माल को जबरदस्ती छीनने को तैयार हो जाता है और इसके लिए घमासान युद्ध ठान लेता है तथा निरपराध स्त्री-पुरुष और बालकों पर अत्याचार करता है, उस समय वह अपनी सभ्यता को भूलकर लालच और घमंड के नशे में अपनी बुद्धि खो देता है और पशुओं की भाँति निर्दयी तथा जंगली हो जाता है। परंतु मनुष्य द्वारा जहाँ ऐसा अत्याचार हुआ है, वहाँ कुछ व्यक्ति ऐसे भी निकले हैं, जो सत्य और न्याय पर सदैव अड़े रहे हैं और इन गुणों के बल पर जिन्होंने विरोधियों पर विजय पाई है। यदि ऐसा न हुआ होता, तो आज हम इस संसार को एक निरा उजड़ा हुआ रेगिस्तान ही पाते।

सत्य और ईमानदारी

अब हम "सत्य और ईमानदारी", इन दो मानवोचित गुणों के विषय में तनिक सोचें कि इनके अभाव में हमारी क्या दशा होती। अगर हमें एक दूसरे पर विश्वास न होता, तो न तो आज कहीं दूकानें होतीं, न बैंक, न डाकखाने ही। तब हम सबको अपना-अपना पेट भरने के लिए स्वयं ही अपना सारा प्रबंध करना पड़ता, इस भय से कि वह दूकानदार, जिससे हम खाने की वस्तुएँ लाये हैं, झूठा या दगाबाज तो नहीं है; उसने कहीं हमारे खाने में विष तो नहीं मिला दिया है! अगर हम दूसरों को एकदम झूठा समझते, तो अपने कठिनता से बचाये हुए धन को बैंक में न रख सकते, क्योंकि हमारे जी में तब यह खटका लगा रहता कि कहीं उस धन को कोई हड़प न जाए। आज हम डाक्टर की बतलाई हुई जहरीली से जहरीली दवा भी दूकान से खरीदकर पीते हैं, क्योंकि हमें विश्वास रहता है कि डाक्टर का नुस्खा हानिकारक न होगा और दूकानदार ने भी दवा ठीक से ही बनाई होगी। हम हवाई जहाज, रेलगाड़ी, आदि में बैठकर यात्रा करते हैं, क्योंकि हमें भरोसा रहता है कि इनके चलानेवाले अपनी यथाशक्ति हमें हमारे इच्छित स्थान पर पहुँचा देंगे। अगर मनुष्य के लिए दूसरों पर विश्वास करना असम्भव हो जाय, तो उसका सारा जीवन और सामाजिक व्यवहार ही तहस-नहस हो जाय। इसलिए सच्चाई और ईमानदारी ये दोनों गुण मनुष्य के लिए अति आवश्यक गुण हैं।

मनुष्य की परोपकार-वृत्ति

मनुष्य का एक और गुण उसकी स्वाभाविक परोपकार-वृत्ति है, जो उसे सारे जीवों से ऊँचा उठा देती है। ऐसा और कौन-सा जानवर है, जो अन्य को विपत्ति में देखकर प्राणों की पर्वाह न करते हुए उसकी सहायता के लिए दौड़ पड़ेगा? यदि किसी मकान में आग लग जाती है, तो अपरिचित मनुष्य भी उसको बुझाने और विपत्तिग्रस्त प्राणियों को बचाने का यथाशक्ति प्रयत्न करते हैं, चाहे इससे स्वयं उनके अपने प्राण भी संकट में क्यों न पड़ जायँ। कोई आदमी यदि नदी में अचानक डूबने लगता है, तो दूसरा आदमी अपनी जान पर खेलकर उसे बचाने को पानी में कूद पड़ता है और उसे किनारे पर ले आता है। क्यों? इसीलिए कि वह मनुष्य है, पशु नहीं। कई मनुष्यों ने केवल परोपकार के लिए अपना सारा सुख-वैभव त्याग दिया, जैसा कि महात्मा बुद्ध ने! कई ने कष्ट ही नहीं सहा, वरन् अपने प्राण तक दे दिये, जैसा कि सुकरात, ईसामसीह और महात्मा गाँधी ने किया!

वास्तव में मनुष्य और अन्य प्राणियों के मानसिक और नैतिक स्तरों में एक महान् भेद है। जब प्राचीन मनुष्य विकास की सीढ़ी पर आगे बढ़ा और सीधा खड़ा होकर चलने लगा, तब उसकी आँखों की दृष्टि बढ़ी, हाथों में निपुणता आई, उसकी वाणी का भी विकास हुआ एवं मस्तिष्क में स्मरण-शक्ति बढ़ी। इसके पश्चात् उसने लेखन-कला का विकास किया और तरह-तरह के आविष्कार करना शुरू किया। इस प्रकार वह धीरे-धीरे वनमानुषों को नीचे छोड़ उन्नति की सीढ़ी के उस ऊँचे डंडे पर पहुँच गया, जहाँ हम उसे आज पाते हैं। अपने इतिहास के प्रारम्भ से ही मनुष्य का मन दृश्य और अदृश्य वस्तुओं के बारे में सोचता और प्रश्न करता रहा। वह जंगल में कन्द, मूल और फलों से अपना पेट भरकर संतोष की नींद नहीं सोता रहा, बल्कि सागर के तट पर खड़ा होकर उसकी गिरती-उठती लहरों पर भी उसने गौर किया। बादलों की गरज सुनकर, आकाश में सूर्य और चन्द्रमा को निकलते देखकर, उनके बारे में भी वह सोचने लगा, जिससे कि उसके मस्तिष्क की उत्तरोत्तर उन्नति होती गई। इसके साथ ही उसमें भलाई और बुराई की पहचान करने की भी क्षमता आ गई, जो और किसी जीव में नहीं पाई जाती। क्रमशः

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनुष्य के उपर्युक्त गुणों में ऐसी उन्नति हुई कि आज यह कहा जाने लगा है कि प्रकृति ने मनुष्य को नेकी के लिए ही बनाया है। आज हम सब यह मानते हैं कि जब तक मनुष्य अपने को अधिक नेक बनाने की कोशिश करता है, तभी तक वह सच्चा मनुष्य है और जिस घड़ी उसके मन में इस बात की पर्वाह नहीं रह जाती कि वह अच्छा है या बुरा, उसी घड़ी मनुष्य की पदवी से गिरकर वह पशुओं से जा मिलता है।

मनुष्य वनमानुष आदि निकट के संबंधियों से कैसे कब और कहाँ पृथक् हुआ ?

पिछले पृष्ठों में हमने यह समझाने की कोशिश की कि मनुष्य भी अन्य जानवरों की तरह एक जानवर है, परन्तु उसमें बहुत-सी ऐसी विशेषताएँ हैं, जिनके कारण वह और जीवों से भिन्न किया जाता है। अब यहाँ हम आपको यह बताना चाहते हैं कि वनमानुषों या अपने अन्य निकट के सम्बन्धी जानवरों से मनुष्य कैसे, कब और कहाँ पृथक् हुआ!

भूविज्ञान हमें बताता है कि किसी समय यह पृथ्वी आग का एक तप्त गोला थी। उसके चारों ओर भयंकर ज्वालाएँ उठा करती थीं। इन ज्वालाओं के बुझ जाने के हजारों वर्ष बाद जब उसकी सारी गरम-गरम भाप उड़कर समाप्त हो गई, उसके भी सहस्रों वर्ष पश्चात् पृथ्वी के धरातल पर पहले-पहल सूक्ष्म जीव का आविर्भाव हुआ। क्रमशः जीव ने अनेक रूप धारण कर लिये और उन आरंभिक सूक्ष्म जीवों के स्थान में भीमकाय जंतु पृथ्वी पर विचरण करने लगे। इन जीवों के जन्म के करोड़ों वर्ष पीछे इस पृथ्वी पर प्रकृति ने एक ऐसे जीव की रचना की, जो और सब प्राणियों से विचित्र और निराला था। यह था मनुष्य। इस अनोखे और अद्भुत जीव के निर्माण में अनेक युग व्यतीत हो गये। यह प्राणी वास्तव में था तो अन्य सभी प्राणियों से निराला, परन्तु बाहरी रूपरंग में कुछ जानवरों से यह इतना मिलता-जुलता था कि इसमें और उनमें भेद करने में धोखा होने की सम्भावना थी।

जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं, इस जीव तथा अन्य जानवरों में जो भेद है, वह अति सूक्ष्म है। केवल देखने से ही उसे उन दूसरे जीवों से अलग नहीं किया जा सकता, क्योंकि जो चीज उनमें भेद करती है, वह इसके शरीर के अन्दर है। यह वस्तु है इसका मस्तिष्क, जो संसार की सबसे आश्चर्यजनक वस्तुओं में से एक है। यह आदि मनुष्य पृथ्वी के प्राचीन जंगलों में विचरता हुआ इधर-उधर की चीजों को अपनी आँखों से देखता था। ऐसी आँखें बन्दर और हाथी, चिड़िया और शेर, भालू और सर्प को भी प्राप्त थीं। किन्तु उसकी आँखों के पीछे उसका अद्भुत मस्तिष्क जो था! अतः यह उन चीजों पर, जिन पर कि उसकी दृष्टि पड़ती थी, विचार भी करता था। इस तरह जहाँ अन्य सारे जीव अपने आसपास की दुनिया को केवल देखते ही थे, वहाँ यही अकेला एक प्राणी था, जो उन पर सोचता-विचारता भी था।

१९ वीं शताब्दी के मध्य में जब चार्ल्स डार्विन ने अपने लेखों द्वारा यह सिद्ध कर दिखाया कि मनुष्य वनमानुष और वानर-कक्षा का ही जीव है और उसका भी विकास प्रकृति की गोद में उसी प्रकार हुआ है, जैसा कि अन्य जानवरों का, तो लोगों के विचारों को बड़ा धक्का लगा। डार्विन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "मनुष्य का आविर्भाव" में यह लिखा है कि "मैं उस छोटे-से बहादुर बन्दर को, जिसने कि अपने संरक्षक के प्राणों की रक्षा करने के लिए भयंकर शत्रु का मुकाबला किया था, अथवा अफ्रीका के उस बड़े बन्दर बबून को, जो अपने एक छोटे साथी को कुत्तों से घिरा देखकर फौरन् पहाड़ से नीचे दौड़ पड़ा था और अपने साथी को कुत्तों के बीच से ले भागा था, सन्तान कहा जाना उतना ही पसन्द करूँगा, जितना कि उस असभ्य मनुष्य की सन्तान कहलाना, जो अपने शत्रुओं को सताने और दुःख देने में प्रसन्न होता है।"

परन्तु इससे डार्विन का यह आशय न था कि मनुष्य-जाति सीधे उन जानवरों की ही सन्तान है; यद्यपि बहुत-से लोगों ने भ्रमवश ऐसा कहना और लिखना शुरू कर दिया था और अब भी कुछ लोग मनुष्य के विकास के सिद्धान्त से वही अर्थ निकालते हैं कि मनुष्य वानरों से ही मनुष्य बन गया है। जो ऐसा सोचते हैं, वे भूल करते हैं। कुछ वैज्ञानिकों ने कभी-कभी ऐसी ही बातें कहीं और लिखी हैं, जिससे साधारण लोगों को भ्रम हुआ है। सन् १९२७ में ब्रिटिश एसोसियेशन के सभापति ने अपने भाषण में कहा था, "मनुष्य का प्रारम्भ क्या है? क्या डार्विन ने ठीक कहा था कि उन्हीं विकासवादी शक्तियों के द्वारा, जो अन्य जानवरों में पाई जाती हैं, मनुष्य वनमानुष के बीच के किसी स्थान से उठकर अपनी वर्तमान स्थिति को पहुँचा है?" उक्त महाशय ने अपने प्रश्न का उत्तर स्वयं ही दे दिया था, "हाँ।" किन्तु जैसा कि जोन्स ने इसके दो वर्ष पश्चात् "स्तन-पोषितों में मनुष्य का स्थान" नामक अपनी पुस्तक में लिखा है, यह सम्मति देना उचित न होगा। मनुष्य की उत्पत्ति के विषय में आज का कोई भी वैज्ञानिक यह विचार नहीं करता कि वह किसी भी विद्यमान वनमानुष या उससे मिलते-जुलते विलुप्त पशुओं से पैदा हुआ। पिछले वर्षों में बहुत-से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लेखकों ने इस बात पर जोर दिया है कि यह बिलकुल स्पष्ट है कि वनमानुष या वानर और मनुष्य जाति के वर्तमान समूह ज्यादा से ज्यादा एक दूसरे के साथ दूर के भाई-बन्धुओं का रिश्ता रखते हैं, या यों कहिए कि वे सब किसी जमाने में एक ही सामान्य पुरखे से पैदा हुए हैं। सिद्धान्त तो यह है कि मनुष्य और वनमानुषों की शाखाएँ एक ही धड़ से फूटी हैं—वानरों ने एक राह ली और मनुष्य ने दूसरी। दोनों के जहाज एक ही बन्दरगाह से चले हैं, दोनों एक ही कारखाने में बने हैं।

आज हम सब जानते हैं कि पृथ्वी अपनी जगह पर घूमती हुई सूर्य के चारों ओर परिक्रमा लगाती है, यद्यपि प्रतिदिन की बोलचाल में, प्रचलित परंपरा के अनुसार, हम अब भी यही कहते हैं कि सूर्य एक ओर से निकलकर और चल-फिरकर स्थिर पृथ्वी के दूसरी ओर डूब जाता है! इसी परंपरा के अनुसार हम यह कहते हैं कि सूर्य पूर्व में निकलता है और पश्चिम में डूब जाता है। जिस प्रकार हमारे ढीले-ढाले विचारों का यह एक नमूना है, उसी प्रकार उन प्रचलित वृत्तान्तों और मतों को भी समझना चाहिए, जो यह बताते हैं कि मनुष्य विद्यमान वानरों के किसी मिलते-जुलते आकार से निकला है। मनुष्य और वनमानुषों में जो समता या भिन्नता है, वह हम आपको बता ही चुके हैं। अब यहाँ हम थोड़ा-सा हाल प्रधानभागियों के विभिन्न वर्गों के बारे में भी बता देना आवश्यक समझते हैं, जिनसे कि आगे इस विषय को समझने में सहायता मिले।

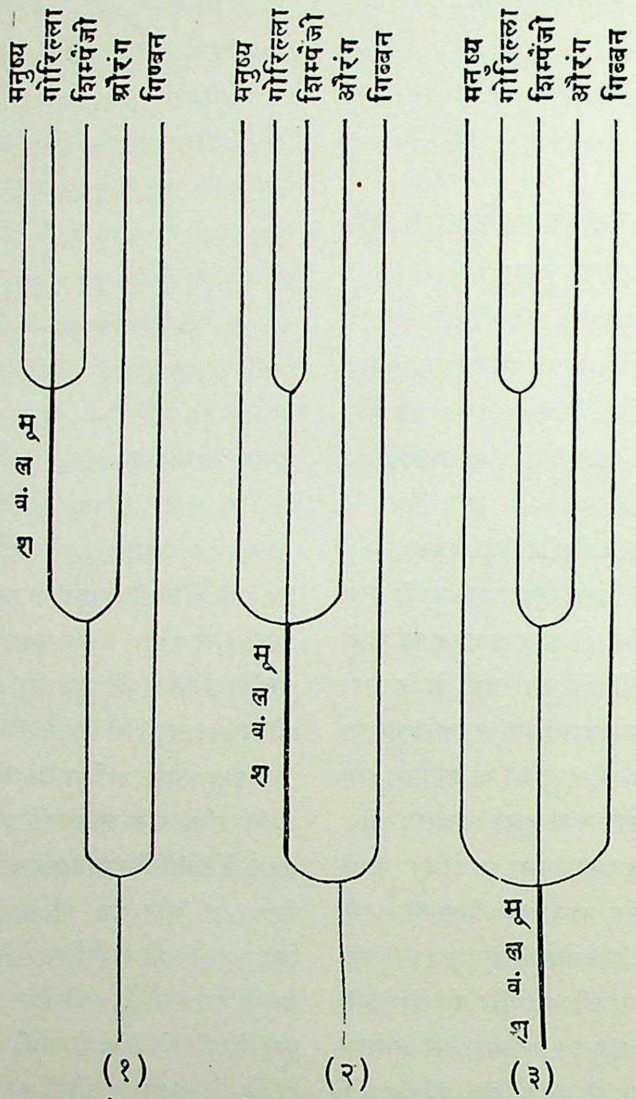

मनुष्य और वनमानुषों के मूलवंश-सम्बन्धी तीन मत—(१) **प्रथम मत**—मनुष्य, गोरिल्ला और शिम्पैंजी, एक ही मूलवंश की तीन समान उपशाखाएँ हैं। औरंग और गिब्बन इनसे बहुत पहले ही पृथक् हो चुके थे। (२) **द्वितीय मत**—एक ही मूलवंश से तीन शाखाएँ निकलीं—पहली मनुष्य की, दूसरी औरंग की और तीसरी गोरिल्ला और शिम्पैंजी की, जो दो भागों में बँट गई; गिब्बन पहले ही अलग हो गया था। **तृतीय मत**—एक ही मूलवंश से तीन शाखाएँ फूटीं—एक से मनुष्य, दूसरी से गिब्बन और तीसरी से क्रमशः तीन उपशाखाओं के रूप में औरंग, शिम्पैंजी और गोरिल्ला निकले, जैसा कि मानचित्र में दिग्दर्शित है।

नई दुनिया के बन्दर

दुनिया में पाये जानेवाले वानरों के जो मुख्य समूह हैं, उन्हें जंतु-विज्ञानवेत्ता क्रमशः नई और पुरानी दुनिया के बानरों के दो बृहत् वर्गों में विभाजित करते हैं। नई दुनिया के बन्दर पुरानी दुनिया के बन्दरों से छोटे होते हैं और वे सब करीब-करीब पेड़ों पर ही रहते हैं। वे अधिकतर डरपोक और सीधे-सादे स्वभाव के होते हैं—पुरानी दुनिया के बन्दरों की तरह नटखट और आक्रमणकारी वे नहीं होते। पुरानी दुनिया के बन्दरों के मुकाबले में उनके मस्तिष्क में मुख्य इन्द्रियों के स्थान अधिकतर समान रूप से बढ़े हुए होते हैं। यदि कोई परिचित मनुष्य नई और पुरानी दुनिया के बन्दरों के किसी मिले-जुले झुण्ड में बिलकुल दूसरे ढंग के या अपरिचित कपड़े पहनकर अचानक आ जाय, तो पुरानी दुनिया के बन्दर तो आवाज सुनकर भी उसे न पहचान सकेंगे, परन्तु नई दुनिया के बन्दरों को उसे पहचानने में भेष बदलने से कोई बाधा नहीं पड़ेगी। नई दुनिया के बन्दर अपने परिचित मनुष्य को उसकी आवाज या उसके पैरों की आहट सुनकर ही पहचान लेते हैं। पुरानी दुनिया के बन्दर किसी को देखकर पहचानने में तेज होते हैं, लेकिन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रधानभागीय अर्थात् 'प्राइमेट्स' वर्ग का वंशवृक्ष और उसमें मनुष्य का स्थान

(अगले पृष्ठ का चित्र देखिए)

विकासवाद के सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य जीवधारियों के प्रधानभागीय या 'प्राइमेट्स' वर्ग का सदस्य है और इस वर्ग की विभिन्न शाखाओं में उसका स्थान वनमानुषों के बाद आता है। इस संपूर्ण वर्ग में मनुष्य का स्थान सबसे अधिक उन्नत अवस्था पर है। चित्र में लाक्षणिक रूप में एक मूल वृक्ष दिखाया गया है तथा उसमें से निकली हुई निम्न विभिन्न शाखाएँ या वर्ग तथा उक्त शाखाओं के मुख्य-मुख्य उपवर्गों के प्रतिनिधि दिखाये गये हैं :—

ट——टारसीग्राइड्स वर्ग—इसका मुख्य प्रतिनिधि 'टारसियस' नामक जंतु है (चित्र में नं० १)।

ल——लीमूराइड्स—इसके निम्न प्रतिनिधि हैं :—(नं० २) अय-अय; (नं० ३) गंडेदार दूमवाला लीमूर; (नं० ४) रफेड लीमूर; (नं० ५) मंगूज लीमूर; (नं० ६) सिफाका; (नं० ७) इन्द्रिस; (नं० ८) गैलागो; (नं० ९) बुश-वेबी; (नं० १०) लोरिस; (नं० ११) पॉटो। [इन सबको अर्द्ध-वानरों की संज्ञा प्रदान की जाती है।]

पु——पुरानी दुनिया के वानर——इस वर्ग के मुख्य प्रतिनिधि ये हैं :—

(नं० १२) गुइनान; (नं० १३) लाल पेटवाला बंदर; (नं० १४) मंगेबी; (नं० १५) मेकेक; (नं० १६) काला एप; (नं० १७) गेलादा बबून; (नं० १८) पवित्र बबून; (नं० १९) गुरेजा; (नं० २०) लंगूर; (नं० २१) चपटी नाक का बंदर; (नं० २२) लंबी नाकवाला बंदर।

न——नई दुनिया के वानर—इस वर्ग की निम्न मुख्य जातियाँ हैं :—

(नं० २३) मारमोसेट; (नं० २४) तीती बंदर; (नं० २५) इसी जाति का एक और बन्दर; (नं० २६) काला हाउलर; (नं० २७) ऊनी बालवाला बंदर; (नं० २८) मकड़ी बंदर; (नं० २९) साकी; (नं० ३०) यूकारी; (नं० ३१) सेपेजू; (नं० ३२) गिलहरी बंदर।

व——वनमानुष वर्ग—इस वर्ग के नीचे लिखे मुख्य प्रतिनिधि हैं :—

(नं० ३३) शिम्पैंजी; (नं० ३४) गोरिल्ला; (नं० ३५) औरंग-उटाङ्ग; (नं० ३६) हुलक गिब्बन; (नं० ३७) साधारण गिब्बन।

म——मानव वर्ग——इस वर्ग में आदिम मानवों से आज की जातियों तक की विकास-श्रेणी बतायी गयी है :—

(नं० ३८) जावा में प्राप्त खोपड़ीवाला आदि मानव 'पिथेकैन्थ्रापस'; (नं० ३९) ऑस्ट्रेलोपिथैकस नामक आदि मानव; (नं० ४०) पेकिंग में प्राप्त खोपड़ीवाला आदि मानव 'साइनैनथ्रापस'; (नं० ४१) 'हाइडैलवर्ग मानव'; (नं० ४२) 'नीएण्डरथल मानव'; (नं० ४३) 'क्रोमैगनन मानव'; (नं० ४४) ऑस्ट्रेलियन जाति का मनुष्य; (नं० ४५) कृष्णवर्ण अफ्रीकन जाति का मनुष्य; (नं० ४६) ताम्र वर्ण का मनुष्य; (नं० ४७) पीत वर्ण का मंगोलाइड जाति का मनुष्य; (नं० ४८) गौर वर्ण का काकेशियन जाति का मनुष्य।

[यह चित्र 'अमेरिकन म्यूजियम ऑफ नेचरल हिस्ट्री, न्यूयार्क', के एक भित्ति-चित्र के आधार पर तैयार कराया गया है। इसके निर्माण में लखनऊ-विश्वविद्यालय के जन्तु-विज्ञान-विभाग के भूतपूर्व आचार्य डा० एम० एल० भाटिया और डा० दास से हमें अनमोल सहायता मिली है, अतएव हम उनके अत्यन्त कृतज्ञ हैं।]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

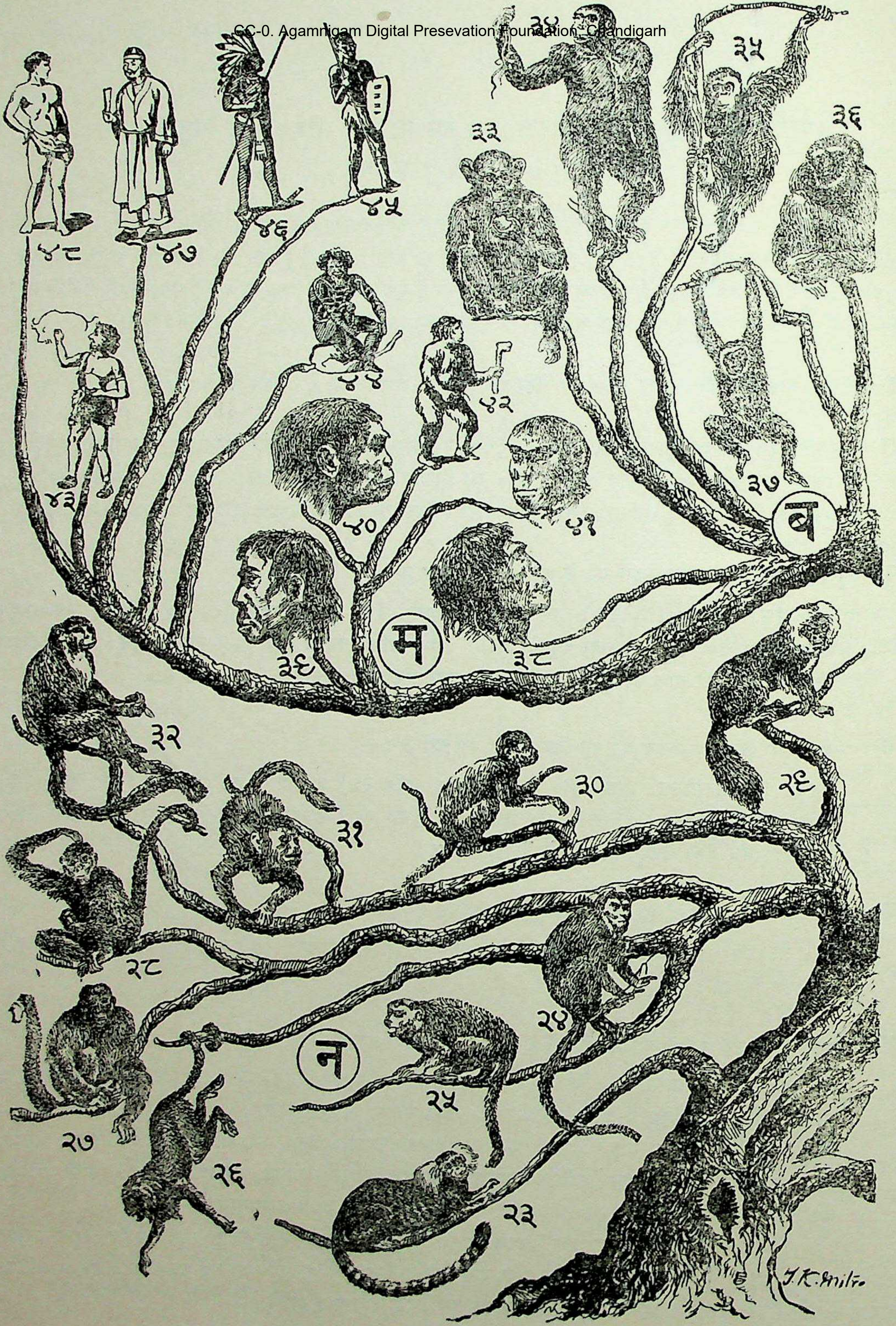

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

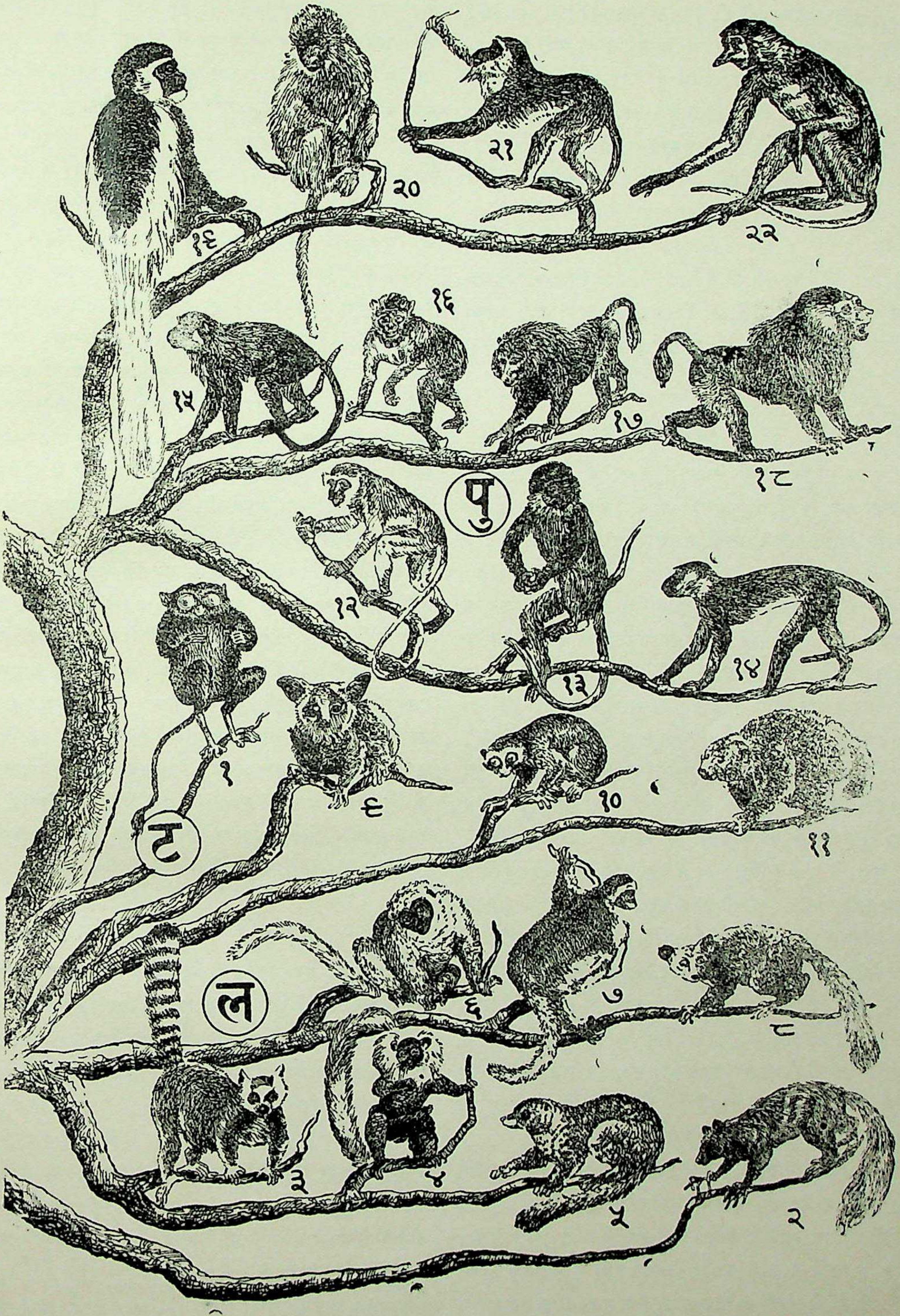

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वे नई दुनिया के बन्दरों की तरह आवाज से किसी को नहीं पहचान सकते। इससे प्रकट है कि इन वानर-वर्गों के मानसिक स्तरों में परस्पर बहुत भेद है। नई दुनिया के बन्दर 'सेबिडी' वंश में रक्खे जाते हैं। इनके नथुने एक दूसरे से बहुत दूरी पर होते हैं, इसलिए इन्हें चपटी नाकवाले कहा जाता है ? 'मकड़ी बन्दर' में आगे की टाँगें पिछली टाँगों से लम्बी होती हैं, किंतु 'ऊनी बन्दर' में चारों टाँगें करीब-करीब एक ही लम्बाई की होती हैं। शेष सब जातियों में पिछली टाँगें लम्बी होती हैं। दुम केवल 'ककाजो' नामक बंदर में ही छोटी होती है, बाकी सबमें बड़ी एवं लम्बी होती है और बहुतों में उससे हाथ की तरह पकड़ने का काम लिया जाता है।

पुरानी दुनिया के बंदर

पुरानी दुनिया के बन्दर दो समूहों में बाँटे जाते हैं—पहला समूह कपिसदृश वानरों का है, जिसमें वे बन्दर और वानर आदि सम्मिलित हैं, जो चारों टाँगों से चलते-फिरते हैं और जिनकी अगली टाँगें पिछली टाँगों से छोटी होती हैं। दूसरा समूह उन मानवसदृश कपियों का है, जिनमें मानवसम बन्दर और आधे खड़े होनेवाले वनमानुष सम्मिलित हैं, जिनकी अगली टाँगें पिछली टाँगों से लम्बी होती हैं। समस्त कपिसदृश बन्दरों में नथुने पास-पास होते हैं और वे तंग नाकवाले होते हैं। उनके नाखून नई दुनिया के बन्दरों से ज्यादा चौड़े व कम टेढ़े होते हैं और सबके कूल्हों पर लोम-रहित बैठने की गद्दियाँ होती हैं। लंगूरों को छोड़कर इस वर्ग के सभी सदस्यों के गालों में थैलियाँ होती हैं। इनमें से कुछ के (जैसे जिब्राल्टर में रहनेवाले बार्बरी वानर के) दुम नहीं होती। 'काले एप' में बहुत छोटी और 'मकाकस' नामक कपि में सुअर-जैसी दुम होती है। बहुतों में दुम लम्बी होती है, पर उनमें पकड़ने की शक्ति नहीं होती, जैसी कि पेड़ पर रहनेवाले नई दुनिया के बन्दरों में होती है। इनमें से कुछ हलके शरीरवाले और पेड़ों पर ही रहनेवाले हैं, जैसा कि अफ्रीका के 'गुइनान'। कुछ भारी डीलडौलवाले एवं धरती पर रहनेवाले भी हैं, जैसे पश्चिमी अफ्रीका के 'ड्रिल' और 'मेंड्रिल' नामक बन्दर।

नई और पुरानी दुनिया के बन्दरों की पृथक् बनावट और रहन-सहन से यह साफ-साफ विदित होता है कि उनमें से कोई भी एक दूसरे से उत्पन्न नहीं हुए हैं। ये दोनों तृतीय युग से पहले के काल की किसी वानर या अर्द्ध-वानर शाखा से भी नीची श्रेणी से निकलकर एक दूसरे से अलग अपने-अपने मार्ग के अनुगामी बने रहे। यह बात जरूर है कि दोनों की आवश्यकताएँ बहुत-कुछ एक-सी ही रहीं। उनके जीवन-निर्वाह के ढंग भी प्रायः मिलते-जुलते थे और इसलिए उनमें एक ही तरह की बनावट का विकास हुआ। कहा जाता है कि इओसीन या तृतीय युग के प्रारंभिक काल या उससे भी पहले क्रिटेशियस काल में छः करोड़ वर्ष हुए उत्तरी अमेरिका में प्रधानभागीय पुरखे की शाखा से 'लीमूर' और 'टारसियस' नामक अर्द्ध-वानर निकले और तृतीय युग के शुरू में इन टारसियसों में से किसी एक से असली बंदरों की शाखा फूटी। इनमें से कुछ दक्षिणी अमेरिका में जा पहुँचे और वहाँ धीरे-धीरे चपटी नाकवाले बन्दर बन गए। दूसरों ने अर्द्ध-वानर और टारसियसों के कुछ पुरखों के साथ-साथ यात्रा करना स्वीकार की। इस यात्रा में ये प्राचीन बन्दर अदल-बदलकर पुरानी दुनिया के तंग नाकवाले बन्दर हो गये। उन्होंने अपनी इस यात्रा के चिह्न उस समय की चट्टानों में छोड़े हैं, जिनमें से कुछ मिस्र, भारत और योरप की बहुत प्राचीन चट्टानों के काटने से मिले हैं। तृतीय महायुग के चौथे काल अथवा प्लायोसीन युग तक पहुँचते-पहुँचते लंगूर ऐसे जीव—मध्यकपि तथा लंबित कपि—बन चुके थे और योरप एवं एशिया में लंगूर, मकाकस और बबून भी पाये जाने लगे थे। इसके आगे के युगों में इन्हीं रूपों और अन्य समूहों के द्वारा इनका प्रचार सारे एशिया में हो गया। इन्हीं के साथ-साथ उससे ऊँची श्रेणी के मानवसम वानरों के पूर्वज भी कदाचित् जन्म ले चुके होंगे। कहा जाता है कि इनका विकास भारतवर्ष की शिवालिक घाटी में हुआ और यहाँ से ये पूर्वी गोलार्द्ध के अन्य भागों में फैले। इनमें से चार अर्थात् गिब्बन, औरंग, शिम्पैंजी और गोरिल्ला अभी तक मौजूद हैं।

वानर-वंश से मनुष्य की विकास-धारा अलग है

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या इन मानवसम वानरों की शाखा पूर्वी गोलार्द्ध में फैले हुए कपिसदृश वानरों से ही फूटी और मनुष्य के तत्कालीन पूर्वज भी क्या इनमें से ही बने ? स्थानाभाव के कारण हम इस संबंध में यहाँ विस्तार से नहीं लिख सकते, फिर भी जो बातें अभी तक मालूम हुई हैं, उनसे यह परिणाम निकाला ज ता है कि पूर्वी गोलार्द्ध के बन्दरों के सारे कुटुम्ब में कोई भी ऐसा नहीं है, जो मानव-जाति का पुरखा कहा जा सके। इसमें सन्देह नहीं कि बड़े डीलवाले वानर ही बनावट में अन्य जीवों की अपेक्षा मनुष्य से अधिक मिलते-जुलते हैं। इस विषय के सभी अधिकारी विद्वान् इस बात में एकमत हैं कि वनमानुषों का शिम्पैंजी और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

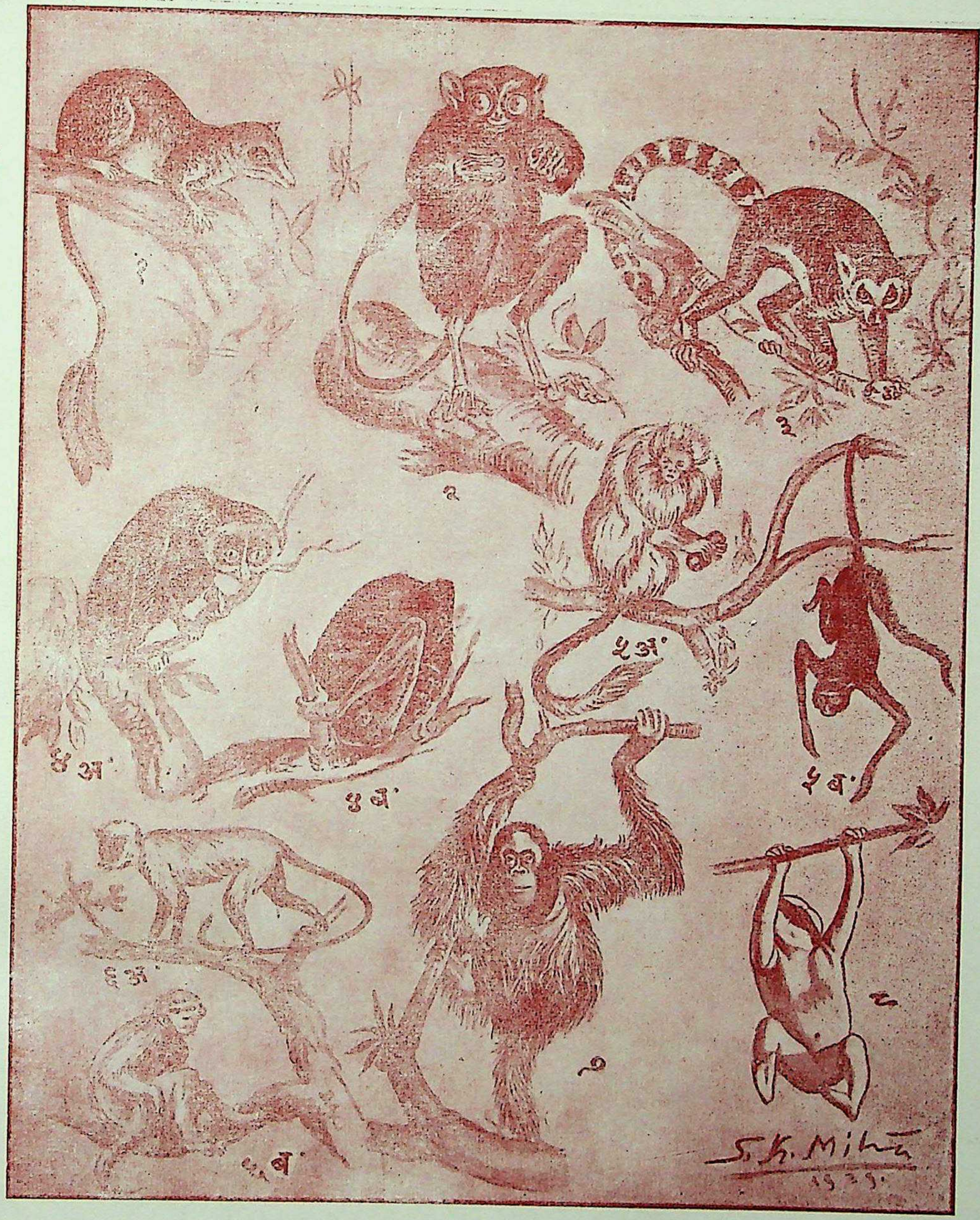

मानव-विकास का सोपान-क्रम

(१) पेड़ों पर रहनेवाला छछूंदर-जैसा कीटभोजी 'श्रू'; (२) सबसे नीची श्रेणी का प्रधानभागीय जीव 'टारसियस', जो मलाया और समीप के टापुओं में मिलता है; (३) मेडागास्कर टापू का गंडेदार दुमवाला अर्द्धवानर लीमूर; (४) दक्षिणी भारत और लंका में पाया जानेवाला एक लीमूर—(अ) जाग्रत अवस्था में; (ब) सोया हुआ; (५) नई दुनिया के नीची जातिवाले (अ) मारमोसेट और (ब) मकड़ी बंदर; (६) पुरानी दुनिया का (अ) काला मुँहवाला लंगूर और (ब) मामूली बंदर; (७) बोर्निओ और सुमात्रा में पाया जानेवाला वनमानुष ओरंग-उटांग; (८) बन्दर की तरह पैरों को उठाए हुए लटकता हुआ तीन सप्ताह का मनुष्य-बालक ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वनमानुषों और मनुष्य में पैरों पर खड़े होकर चलने की शक्ति का उत्तरोत्तर विकास

(१) पेड़ों पर हाथों के बल झूलता हुआ गिब्बन; (२) प्रायः वृक्ष ही पर घोंसला बाँधकर रहनेवाला ओरंग-उटांग; (३) वृक्ष से धरती पर उतरकर बैसाखी की तरह एक हाथ का सहारा लेकर झुकी दशा में चलनेवाला गोरिल्ला; (४) मनुष्य की तरह कुछ-कुछ खड़े होकर चलनेवाला शिम्पैञ्जी; (५) वानरों की तरह चारों हाथ-पैर से वृक्षों पर विचरनेवाले लाखों वर्ष पूर्व के मनुष्य के आदिम पुरखे की एक कल्पना; (६) आदि मानव का वृक्ष से नीचे उतरकर डंडे का प्रयोग करने के प्रयत्न में पैरों पर खड़े होकर चलना।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

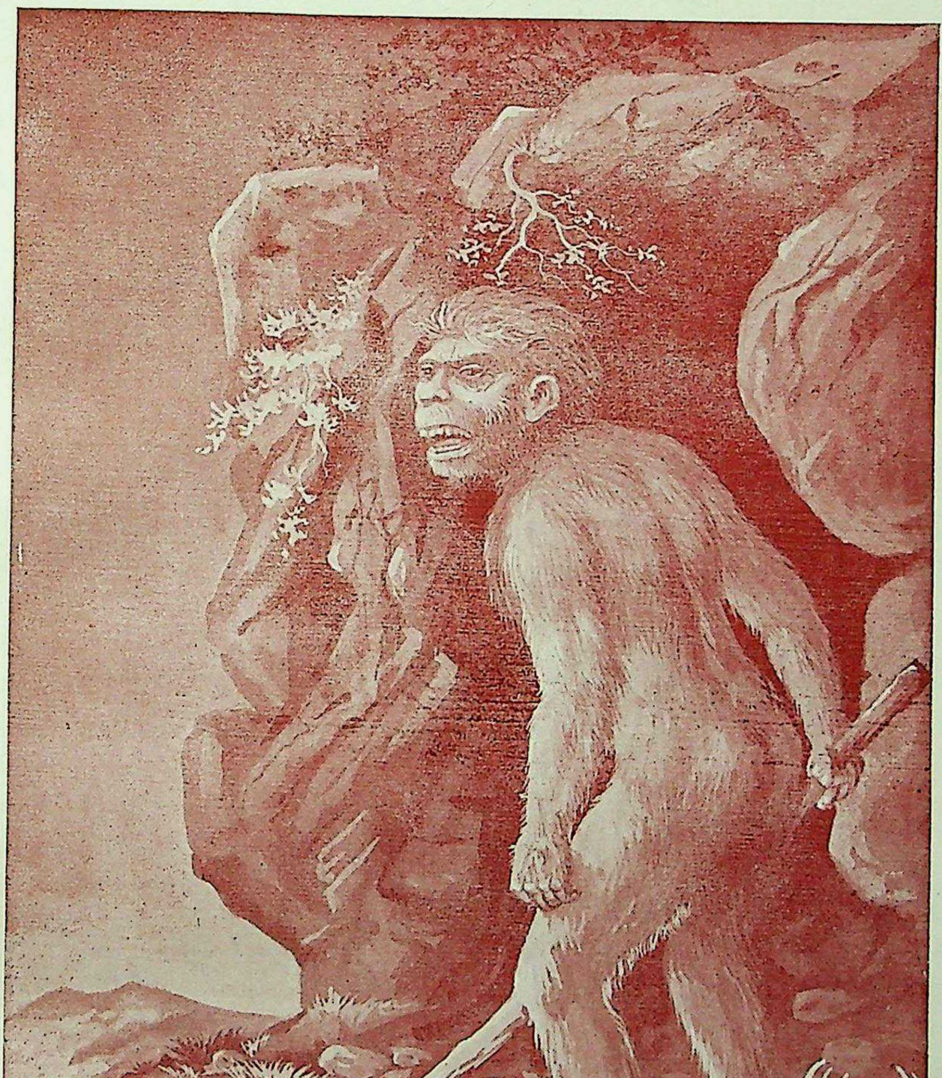

दस लाख वर्ष पूर्व का आदि मानव

अब तक प्राचीन मनुष्य की जो खोपड़ियाँ मिली हैं, उनमें सबसे पुरानी विद्वानों द्वारा दस लाख वर्ष की मानी जाती है और जिस आदि मानव की खोपड़ी यह रही होगी, उसे "पिथैकेन्थ्रापस" नाम दिया गया है। कदाचित् यह ऐसा ही रहा होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दो ढाई लाख वर्ष पूर्व के आदि मानव के जीवन की एक झलक

इस युग तक आते-आते मनुष्य-जाति के पुरखे समकालीन जानवरों से अपनी रक्षा करने तथा शिकार के लिए पत्थरों से गढ़े गए भौंडे अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग करने लग गए थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

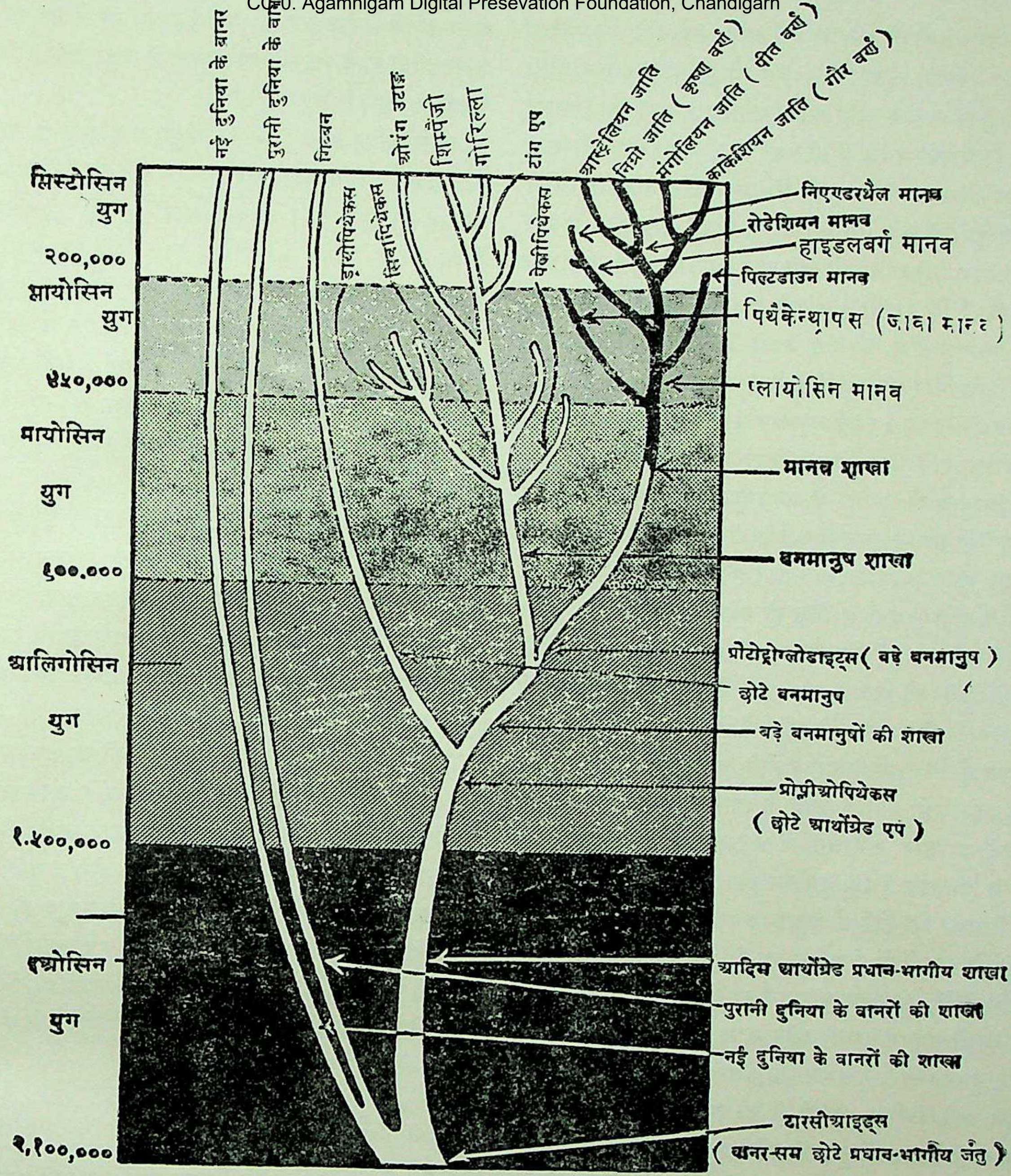

वानर, वनमानुष और मनुष्य-जाति के मूल वंश-वृक्ष का यह मानचित्र मानव-विज्ञान के धुरंधर विद्वान् सर आर्थर कीथ द्वारा तैयार किये गये एक रेखा-चित्र के आधार पर बनाया गया है। इससे स्पष्ट है कि किस प्रकार सुदूर अतीत में एक ही प्रधानभागीय मूल तने से दो विशाल शाखाएँ फूटीं, जिनमें से एक डाली की दो उपशाखाओं से नई और पुरानी दुनिया के बन्दर निकले, और दूसरी डाली से क्रमशः गिब्बन, औरंग आदि वनमानुष और मनुष्य की उपशाखाएँ फूटीं। वनमानुष-उपशाखा से ड्रायोपिथेकस, सिवापिथेकस, औरंग, टांग एप, गोरिल्ला, शिम्पैंजी आदि निकले और मानव शाखा से पिथैकेन्थ्रापस आदि प्राचीन और काकेशियन आदि अर्वाचीन मानव स्वरूप निकले। चित्र की पृष्ठभूमि में क्रमशः गहरे और हलके रंग से विभिन्न युगों का निर्देश किया गया है, जिससे उक्त शाखाओं के फूटने के समय का ज्ञान होता है। इस मूलवृक्ष के तने में सबसे नीचे 'टारसीआइड' वर्ग का निर्देश है, जो वानर-शाखाओं के फूटने के पहले के प्रधानभागीय रूप का स्मारक है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ासेना-जगोवरितमल्ला वर्ग अन्य जानवरों की अपेक्षा अधिक मिलता-जुलता है। तब भी हमें यह न भूल जाना चाहिए कि मानव-जाति और कपिसदृश तथा मानवसदृश वानरों में पर्याप्त भेद है और उन दोनों के विकास की धारा मानव-विकास की धारा से बिल्कुल अलग बहती है। फिर वनमानुषों में कुछ ऐसे रूप भी हैं, जिनमें बन्दरों के प्रधान लाक्षणिक परिवर्तन नहीं पाये जाते। आर्थर कीथ ने हिसाब लगाया है कि पुरानी दुनिया के बन्दरों के लक्षणों की संख्या, जो वनमानुषों में भी पाई जाती है, निम्न प्रकार से है—गोरिल्ला में १४४, शिम्पेंजी में १७२, औरंग में २१३ और गिब्बन में ३२३। इससे यह मानना ही पड़ता है कि वनमानुष एक प्रकार के परिवर्तित कपिसदृश बन्दर हैं।

किन्तु चारों प्रकार के वनमानुषों और मनुष्य में अन्य बन्दरों के समान दुम नहीं पाई जाती। यह दुम क्यों और कैसे गायब हुई? क्या उसके गायब होने से ही वनमानुष और मानव अन्य बन्दरों से भिन्न हो गये? इस संबंध में डाक्टर ग्रेगरी की राय है कि बन्दर और मनुष्य के पूर्वपुरुषों में सीधे बैठने की आदत पड़ जाने से दुम धीरे-धीरे छोटी होती गई और गायब हो गई। लेकिन सर आर्थर कीथ का कहना है कि दुम के गायब होने का कारण इनका सीधा खड़ा होना है; क्योंकि कूल्हे के स्नायु दुम को चलाने तथा आँतों का भार सँभालने में असमर्थ हो गये। उधर वुड जोन्स की राय है कि दुम का होना या न होना ऐसी बात है, जिसका कि कोई ठीक कारण बतलाना आसान नहीं है। बहुत-से समूहों में देखा जाता है कि दो निकट सम्बन्धी प्राणियों में, जो बहुत-कुछ एक-सा ही जीवन व्यतीत करते हैं, किसी एक में लम्बी और काम आनेवाली दुम होती है और दूसरा बिना दुम का भी होता है। यदि हम पेड़ों पर रहने वाले विविध जीवों ही की ओर ध्यान दें, तो पता लगता है कि उनमें दुमदार और बेदुमदार दोनों ही प्रकार के जीव पाये जाते हैं, चाहे वे खड़े रहनेवाले हों या बैठनेवाले। पेड़ों पर चढ़नेवाले मांसभोजी श्रेणी के जंतुओं में बहुत-सी लम्बी दुमवाली बिल्लियाँ, बेदुमदार लिन्क और दुम से डालियों को पकड़ने वाले किंकाजू हैं। थैलीवाले जन्तुओं में भी दुमदार, बेदुमदार तथा पकड़ने के काम में आनेवाली दुम से युक्त जन्तु पाये जाते है। अर्द्ध-वानरों में भी बहुत-से लम्बी दुमवाले और बहुत-से बेदुमदार प्राणी हैं। इसी प्रकार नई और पुरानी दुनिया के बन्दरों में भी लम्बी दुमवाले, दुम से डालियों को पकड़नेवाले और बेदुमदार जीव मिलते हैं। परन्तु इनमें यह देखा जाता है कि जहाँ लम्बी दुमवाले कूदने फाँदने में तेज होते हैं, वहाँ जिनकी दुम में पकड़ने की शक्ति होती है, वे लटकने और झूलने में चतुर तथा हाथों से पकड़कर चढ़ने में निपुण होते हैं।

इससे विदित होता है कि सब में दुम न तो बैठने के कारण और न खड़े होने के कारण ही लुप्त हुई और न आँतों के बोझ सहने की वजह से ही। साथ-ही-साथ यह भी जान पड़ता है कि दुम के गायब हो जाने से इनके पेड़ों पर चढ़ने का ढंग भी बदल गया। अब वे हाथों से चढ़नेवाले बन्दर बन गए। अवश्य ही यही कारण है, जिससे कि ऐसे वानरों की अगली टाँगें पिछली टाँगों से लम्बी हो गईं। यही मनुष्य-सदृश और कपिसदृश वानरों में मुख्य अंतर है। मनुष्य की उत्पत्ति पर विचार करते समय हमें इस बात को भूल न जाना चाहिए।

अतएव यह कल्पना उचित प्रतीत होती है कि पुरानी दुनिया के कुछ बेदुमदार बन्दर अपने समूह के अन्य वानरों की भाँति यथेष्ट उन्नति नहीं कर सके और वे अपनी पहली अवस्था में ही बने रहे। दुम न होने के कारण ही उन्होंने हाथ से काम लेना शुरू किया। हाथों से ही पकड़कर वे वृक्षों पर चढ़ने लगे; इससे उनके हाथों में पकड़ने की शक्ति आती गई और कुछ समय बाद वे पेड़ों की डालियाँ पकड़कर लटकने और झूलने भी लगे। धीरे-धीरे उनमें अधिक समय तक सीधे रहने की योग्यता भी आने लगी, जिसके कारण उनके शरीर के अंगों में परिवर्तन होने लगा। इसी तरह उनमें से कोई-कोई अदल-बदलकर वनमानुष हो गये। इसी सीधे लटकने के ढंग ने वृक्षवासी बेदुमदार जीवों की हड्डियों, पेशियों और आँतों में ऐसे परिवर्तन कर दिये, जिनकी वजह से वे दो टाँगों पर बिल्कुल सीधे खड़े होनेवाले आदमी के पूर्वजों का रूप ग्रहण करने लगे।

वृक्षवासी आदिम पुरखे से मनुष्य का विकास

कीथ ने यह भली भाँति दिखलाया है कि इसी प्रकार के हेर-फेर और हाथों से चलने-फिरने, लटकने आदि का काम लेने के कारण (जैसा कि हम आजकल गिब्बनों में लाक्षणिक रूप में पाते हैं) वनमानुषों के शरीर में उन्हें सीधे रखनेवाले प्रबन्धों की नींव पड़ी होगी। एक ओर हलके और फुर्तीले गिब्बन बने, जो अपनी लम्बी भुजाओं के सहारे पेड़ों पर सीधे कूदते और झूलते रहते थे। तब आगे चलकर उनसे कुछ भारी बदनवाले औरंग बने, जो वृक्षों पर लटकते थे और कालान्तर में उनसे भी भारी शरीरवाले गोरिल्ला बने, जो अपने अधिक बोझ के कारण पेड़ों पर बराबर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चल-फिर नहीं सकते थे। इसलिए वे धरती पर बैठने लगे और लम्बी बाँहों से बैसाखी की तरह शरीर को साधते हुए झुकी दशा में तथा कभी-कभी टाँगों पर सीधे खड़े होकर दो-चार कदम चलने लगे। सब वनमानुषों में गोरिल्ला ही सबसे ज्यादा धरती पर रहता है और कदाचित् इसीलिए उसमें ही सबसे अधिक फेरबदल भी पाया जाता है। इसके विपरीत औरंग में सबसे कम परिवर्तन पाये जाते हैं, क्योंकि यही सबसे ज्यादा पेड़ों पर रहता है।

मनुष्य के आदि पूर्वपुरुष भी वनमानुषों की तरह वृक्षों पर रहने वाले जीव रहे होंगे तथा हाथों से खाते-पीते और लटकते होंगे। टामसन का कथन है कि इसी प्रकार के रहन-सहन के कारण उनके हाथों को चलने-फिरने से छुटकारा मिल गया और फलतः उनके शरीर ने नया रूप धारण कर लिया। उनका थूथन छोटा होता गया और इसी कारण उनकी खोपड़ी बड़ी हो गई। आँखें आगे को आ गई तथा उनमें दूर तक देखने की शक्ति पैदा हो गई। घ्राणपिण्ड (मस्तिष्क का वह भाग जो सूँघने से संबंध रखता है) छोटा होता गया और मस्तिष्क के वे भाग, जिनमें दृष्टि, श्रवण और स्पर्श की संवेदना पहुँचती हैं, बढ़ते चले गये। जब थूथन छोटा होने लगा, तो खाना खाने का काम भी हाँथों से ही होने लगा, फलतः उनमें स्पर्श का बोध बढ़ता गया। इस तरह हाथ-पैर का काम अलग-अलग बँट गया।

प्रोफेसर लल का विचार है कि मायोसिन या प्लायोसिन काल के आरंभ में जब पृथ्वी पर जंगल घटने लगे, तो इन मानवीय पूर्वजों को पेड़ छोड़ कर पृथ्वी पर रहने को विवश होना पड़ा होगा। इस नई परिस्थिति में उन्हें बहुत-सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा। इन कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने के लिए उन्हें जो उपाय करने पड़े, उनसे असली मनुष्य के विकास में बहुत सहायता मिली। भयंकर जंगली जानवरों से अपनी रक्षा करने के लिए उन्हें अपने हाथों, जबड़ों और मजबूत कुक्कुरदन्तों से युद्ध करना पड़ा होगा। इसके अतिरिक्त उनको उस समय की घनघोर वर्षा, कड़ी धूप आदि कठोर प्राकृतिक आपदाओं से बचने के लिए भी अपनी मति दौड़ानी पड़ी होगी। इसीलिए उनकी बुद्धि का विकास होता गया। थोड़े ही समय में उन्होंने अपनी रक्षा के लिए कंकड़ पत्थर, लकड़ी, डंडे आदि का प्रयोग करना सीख लिया। डार्विन लिखते हैं कि ये ज्यों-ज्यों अधिक सीधे और दोपाये होते गये होंगे, त्यों-त्यों उन्हें डंडे और पत्थरों से अपनी रक्षा करने तथा भोजन के लिए दूसरे जानवरों पर आक्रमण करने और वृक्षों पर बिना चढ़े फल तोड़ने में अधिक सहायता मिली होगी। हाथों की क्षमता बढ़ने के साथ-साथ बाँहों की लम्बाई और भार में कमी होना भी अब आवश्यक हो गया, क्योंकि तेज दौड़ने, जोर से डंडा मारने या पत्थर फेंकने के लिए ऊपरी शरीर का हलका होना और उसका पैरों पर साधना जरूरी हो गया। इसी आवश्यकता के अनुसार इस दोपाये शिकारी की सारी बनावट में कालान्तर में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया।

अब लड़ाई का काम पूर्ण रूप से भुजाओं ने अपने जिम्मे ले लिया और भागने-दौड़ने का काम पैरों के हिस्से में आ पड़ा। खोपड़ी अब पहले से कम मोटी तथा चेहरा पहले से अधिक सुडौल होने लगा; क्योंकि जब लड़ने का काम दाँतों के बदले हाँथों पर आ गया, तो न उतने भारी जबड़े जरूरी रह गये और न उतनी मजबूत गर्दन ही। कार्वेथ रीड का कहना है कि इस प्रकार जहाँ सिर आक्रमण से बचा रहने लगा और खोपड़ी की मोटाई कम हो गई, वहाँ उसके भीतर की खोखली जगह और दिमाग बढ़ता गया, जिससे चेहरे सुडौल, जबड़े छोटे, और मस्तक सीधा व ऊँचा हो गया। कालान्तर में इन आदि नराकार प्राणियों ने वनमानुषों से अलग होकर मानव का रूप और ढंग धारण कर लिया। पर इन साधारण परिवर्तनों के होने में भी कई लाख वर्ष लग गये।

वनमानुष मनुष्य का साथ क्यों न दे सके ?

प्रश्न उठता है कि जमीन पर रहनेवाले गोरिल्ला आदि वनमानुषों में भी ऐसे परिवर्तन क्यों नहीं हुए ? भला वे भी मनुष्यों के पुरखों की तरह सारी धरती पर क्यों नहीं फैल गए ? इसका उत्तर यही जान पड़ता है कि मनुष्य के पूर्वज केवल शाकाहारी ही नहीं रहे, बल्कि वे शिकारी और मांसाहारी भी हो गये। इसलिए उन्हें केवल फलवाले जंगलों में ही रहने की आवश्यकता नहीं रह गई। वे स्थलवासी पशुओं को मारकर खाते हुए कालांतर में जंगलों से ढके गरम देशों को छोड़कर सम्पूर्ण पृथ्वी पर फैल गये; जबकि बेचारे वनमानुष आज तक फलाहारी ही बने हुए हैं और अफ्रीका के उष्ण कटिबन्धीय वन, मलाया प्रायद्वीप तथा सुमात्रा और बोर्नियो के घने जंगलों में ही पाये जाते हैं, जहाँ उनके आहार के लिए उपयुक्त शाक-पात आदि बारहों महीने मिलता रहता है। यहाँ के अतिरिक्त वे और कहीं नहीं पाये जाते। उनमें से शिम्पैंजी और गोरिल्ला यद्यपि भूमि पर उतर आते हैं, फिर भी वे रहने के लिए झोपड़ी पेड़ों पर ही बनाते हैं। इस प्रकार वे मानवीय पुरखों की भाँति वनों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

से अभी तक छुटकारा नहीं पा सके हैं। कहा जा सकता है कि वनवासी फलाहारी जीव भी शाकपात खाते हुए उन आदिम वनों को छोड़ अन्य देशों में फैल सकते थे, जैसे कि गाय, बैल, भैंस इत्यादि फैले। परन्तु ऐसा करके भी वे न तो सीधे खड़े होने वाले दोपाये हो सकते थे, न उनके मस्तिष्क ही की वृद्धि हो सकती थी और न मनुष्य के विशेष लक्षणों को ही वे पा सकते थे। यह भी सम्भव है कि कुछ शिकारी मानवीय पूर्वपुरुष जब ऐसे देशों में पहुँच गये जहाँ उन्हें खाने योग्य नरम शाक-पात बिल्कुल ही न मिल सका, या कम मिलने लगा, तो वे उनके बदले माँस के साथ-साथ कंद-मूल व दूसरी खुरदरी वस्तुएँ भी खाने लगे। इसी कारण उनके दाँत इस नये आहार के अनुरूप बदल गये।

अपनी उन्नति के मार्ग में हमारे पूर्वज कुछ ऐसी अवस्थाओं से गुजरे होंगे, जिनका कि हमारे पास प्रस्तर-विकल्पों में कोई प्रमाण नहीं हैं। फिर भी यह निश्चित है कि लगभग मध्य मायोसिन काल तक 'लाइकोपिथैकस' जैसा कोई प्राणी पृथ्वी पर था। उसके बाद धीरे-धीरे वह दूसरी श्रेणी में पहुँचा। इस अवस्था में शायद वह प्लायोसिन काल के मध्य तक रहा। इसी युग में उसमें मानवीय रूप और गुण का कुछ अंश आने लगा, जैसा कि 'प्रोटोरैन्थ्रापस' या हाल ही में पाये गये "पैराएनथ्रापस" में हम देखते हैं। इसी अवस्था का एक पिछला नमूना शायद 'पिथैकेन्थ्रापस' है, जो सीधा खड़ा हो सकता था। इसके आगे चलकर हमें और भी कई उपजातियाँ मिली हैं, जो मानव जाति में सम्मिलित की जा सकती हैं, लेकिन वे मनुष्य की वर्तमान उपजाति से सर्वथा भिन्न हैं। मनुष्य के इन प्रस्तर-विकल्पीय पूर्वजों का वर्णन हम आगे करेंगे।

मनुष्य की शाखा बन्दरों और वनमानुषों की शाखा से कहाँ और किस अवस्था में मिलती है, इस बात पर विस्तारपूर्वक विचार करने के लिए हमारे पास स्थान नहीं है, क्योंकि इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ वैज्ञानिकों की राय है कि मनुष्य मानवसम वानरों के धड़ से ऐसे समय में निकले, जब इन्होंने अपने वर्तमान लक्षण ग्रहण कर लिये थे। परन्तु यह बात अब सही नहीं मानी जाती। औरों की धारणा है कि मनुष्य और मानवसम वानर एक ही धड़ से निकले तथा वर्तमान बड़े वानर भी इसी धड़ से निकले। आजकल अधिकतर विद्वानों का यही विचार है। परन्तु इसमें अभी बहुत मतभेद है कि इन सबके धड़ से मनुष्य के

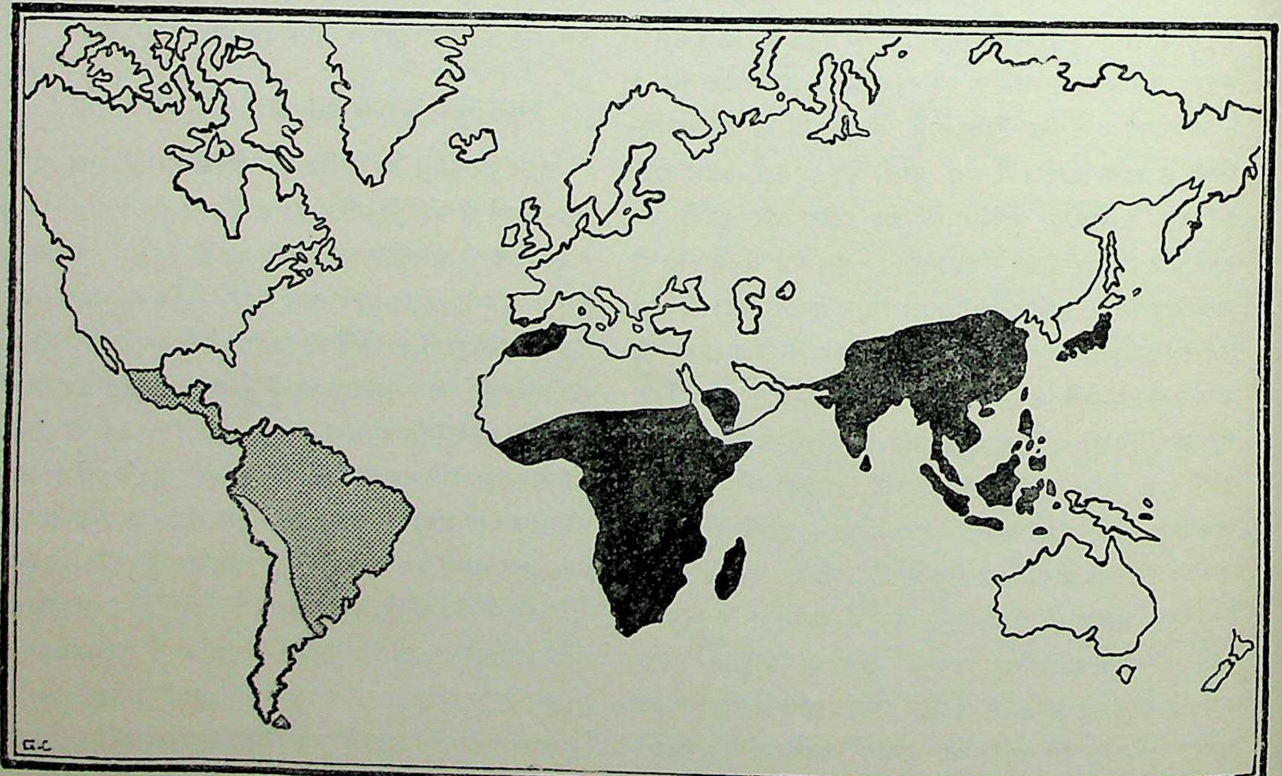

इस मानचित्र में पृथ्वी पर नई और पुरानी दुनिया के वानरों का भौगोलिक वितरण दिग्दर्शित है। गहरे काले रंग से जो भूभाग निर्देशित किए गए हैं, वहाँ पुरानी दुनिया के बन्दर पाए जाते हैं। हलके रंग द्वारा निर्दिष्ट भूभाग में नई दुनिया के बन्दर फैले हुए हैं। शिम्पैंजी, गोरिल्ला, औरंग, गिब्बन आदि चारों वनमानुष केवल अफ्रीका के उष्ण कटिबन्धीय वनों तथा मलाया, सुमात्रा और बोर्नियों में ही पाए जाते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुरखे कितनी दूर से निकले। हाँ, इस बात में सभी सहमत हैं कि पुरानी दुनिया के बन्दरों की शाखा मनुष्य और वनमानुषों की शाखा से पहले और अधिक प्राचीन अवस्था में अलग हो गई थी। मनुष्य और वनमानुषों के पुरखे एक ही थे, जो शिवालिक की उपत्यका में मिलनेवाले 'ड्रायोपिथेकस' और 'सिवापिथेकस' जैसे प्रस्तर-विकल्पों से मिलते-जुलते रहे होंगे। हाल के कुछ लोगों का मत है कि मनुष्य वनमानुषों की शाखा से कदापि नहीं निकला और उसकी शाखा उनकी शाखा से अलग नीचे के और किसी पूर्वज से निकली है।

यह कहना कठिन है कि इनमें कौन-सा मत ठीक है। लेकिन मनुष्य, वनमानुषों और बन्दरों की शारीरिक रचना की अच्छी तरह तुलना करते हुए यह विचार ठीक जान पड़ता है कि मनुष्य के अत्यन्त प्राचीन पूर्वज 'प्राइमेट्स' या प्रधानभागीयों के तने से पुरानी दुनिया के बन्दरों की छाप लगने के पहले ही निकल चुके थे।

आदि मनुष्य कहाँ जनमा ?

आदिम मनुष्य का जन्म दुनिया के किन भागों में हुआ, इसका भी ठीक-ठीक उत्तर देना असम्भव है। परन्तु यह निश्चित है कि हिमालय के दक्षिण में शिवालिक की पहाड़ियों में अफ्रीका से आये हुए प्राचीन वनमानुषों से ही नये वनमानुष पैदा हुए। मनुष्य के सबसे प्राचीन प्रस्तर-विकल्प अभी तक भारतवर्ष में कहीं नहीं मिले हैं। अतः यह कहना कठिन है कि वर्तमान मनुष्य-जाति की उत्पत्ति भारतवर्ष में हुई है। डार्विन का विचार था कि मनुष्य-वंश का मूल उद्गमस्थल अफ्रीका है। पर जब सन् १८९१ में एक अति प्राचीन मनुष्य की खोपड़ी 'पिथैकेन्थ्रापस' जावा में मिली, तो यह धारणा की गई कि मनुष्य के उत्पन्न होने की जगह पूर्वी एशिया में है, अफ्रीका में नहीं। जब सन् १९२९ और उसके आगे के वर्षों में चीन में पेकिंग नगर के आस-पास 'साइनेन्थ्रापस' के नाम से अभिहित की गई मानव-जाति की कई पूरी खोपड़ियाँ और हड्डियाँ मिलीं, तब यह बात और भी पक्की हो गई।

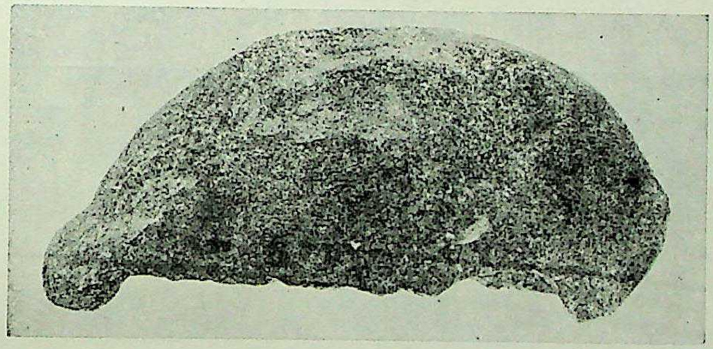

'पिथैकेन्थ्रापस' या जावा आदि का मानव कदाचित् ऐसा ही कुछ दिखाई देता होगा, जैसा प्राप्त अवशेषों के आधार पर निर्मित उसके शीर्षभाग की इस काल्पनिक प्रातिकृति में दिग्दर्शित है। नीचे प्राप्त हुई उसकी खोपड़ी के ऊपरी भाग का बाजू की ओर का दृश्य है।

लेकिन प्राचीन मनुष्यों की ये दो जातियाँ जब पूर्वी देशों में रहती थीं, तभी दूर के पश्चिमी देशों में भी एक और जाति घूमती-फिरती थी। इसके प्रस्तर-विकल्प मिले हैं। लगभग १५ लाख वर्ष पूर्व तक प्लायोसिन काल समाप्त होने के पहले सारी पुरानी दुनिया में मनुष्य के बिगड़े हुए स्वरूप यत्र-तत्र फैले हुए थे। जहाँ तक प्रमाण मिलता है, मनुष्य-वंश से सचमुच मिलनेवाले वानर भारतवर्ष के पश्चिमी भागों में ही पाये जाते थे। इससे यह अधिक सम्भव प्रतीत होता है कि मनुष्य-वंश की शैशवावस्था हिमालय और अफ्रीका के बीच के प्रदेश के ही आसपास बीती होगी। पिछले वर्षों में स्वेन हेडिन ने मंगोलिया के रेगिस्तानों में खोज की थी और इस खोज में प्राचीन मनुष्य के साथ रहनेवाले बड़े-बड़े जानवरों के प्रस्तर-विकल्प पाये गये थे। इससे पता चलता है कि मनुष्य की उत्पत्ति शायद यहीं कहीं या गोबी के रेगिस्तान में हुई हो। रूस के कुछ वैज्ञानिकों ने कुछ वर्ष हुए प्रो० कैप्टैरैफ के नेतृत्व में एक खोज-सम्बन्धी यात्रा करने का प्रयत्न किया था। कैप्टैरैफ का कहना है कि आशा है कि हमें उत्तराखण्ड के ध्रुव प्रदेश के आस-पास मनुष्य के पूर्वजों के शव बर्फ के भीतर ढके हुए मिलें, जिनसे पता चलेगा कि वे काले थे या गोरे; उनके शरीर पर लम्बे और सीधे बाल थे या छोटे और घुंघराले; वे दाढ़ी रखते थे या नहीं; किसी प्रकार के कपड़े वे पहनते थे या नहीं; वे लम्बे या सुन्दर थे, अथवा नाटे या बदसूरत; तथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वे बन्दर की-सी शक्ल के थे या नहीं। इस प्रोफेसर का विचार है कि इन प्राचीन मनुष्यों के शव ध्रुवप्रदेश की किसी खोह या गुफा में बर्फ में जमे-जमाये पड़े होंगे।

मनुष्य कितना पुराना है

मनुष्य कितना पुराना है, इस संबंध में भी विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है, सर आर्थर कीथ ने एक बार कहा था कि वर्तमान काल के चारों प्रकार के मनुष्य-अर्थात् श्वेतांग, पीतांग, रक्तांग और कृष्णांग–मध्य प्लिस्टोसिन काल में एक ही शाखा से पैदा हुए थे। किन्तु बाद की कुछ खोजों ने उनको अपना यह विचार बदलने के लिए बाध्य कर दिया। अब ऐसा जान पड़ता है कि प्लिस्टोसिन काल के आरंभ में ही, लगभग ५ लाख वर्ष हुए, मंगोल, ऑस्ट्रेलियन और नीग्रो जाति के पूर्वज महाद्वीपों पर फैल चुके थे। इसके पश्चात् इन सभी जातियों में एक ही जैसे कतिपय परिवर्तन हुए, जिनकी वजह से वे वानरों के रूप को छोड़कर मनुष्य के रूप को धारण करती गई–जैसे जबड़ों और दाँतों का छोटा होना, मस्तिष्क का बड़ा होना, इत्यादि। जे० रीड मायर के अनुसार पेकिंग में पाया गया मनुष्य दस लाख वर्ष पुराना है। परन्तु बाद के विद्वानों ने इसे पाँच लाख वर्ष पुराना और जावा के पिथेकेन्थ्रापस को उससे अधिक प्राचीन माना है। जो भी हो, प्लायोसीन काल में ऐसे मनुष्य थे, जो चट्टानों से बड़े-बड़े चिप्पड़ उखाड़ सकते थे और उनसे औज़ार बना सकते थे। अमेरिका के प्रसिद्ध प्रस्तर-विकल्प-शास्त्री प्रो० ओसबोर्न का कथन है कि मनुष्य सर आर्थर कीथ तथा अन्य वैज्ञानिकों के बताये हुए समय से भी लगभग ९० लाख वर्ष अधिक पुराना है! उनके कथनानुसार मनुष्य बन्दरों की शाखा से ६० लाख वर्ष नहीं, वरन् लगभग १ करोड़ ५० लाख वर्ष पहले अलग हो चुका था? १२ लाख ५० हजार वर्ष तो उसे हाथी तथा अन्य स्तनपोषितों का शिकार करते ही बीत गये, क्योंकि प्राचीन हाथियों के दाँत मनुष्य के प्रस्तर-विकल्पों के साथ-साथ पाये गये हैं। प्रोफेसर स्विनरटन ने इस विषय के सम्बन्ध में बहुत ही सुन्दरता से लिखा है कि "वैज्ञानिक लोग थियेटर देखनेवाली जनता की तरह हैं, जो रंगमंच पर अभी-अभी तो एक अभिनेता को एक आवारे का अभिनय करते देखती है और तब थोड़ी ही देर बाद उसे एक राजकुमार के रूप में भी सामने पाती है! परन्तु वह पर्दे के पीछे जाकर यह नहीं देख पाती कि उस आवारे ने किस घड़ी और कैसे राजकुमार का वह भेष धारण कर लिया!"

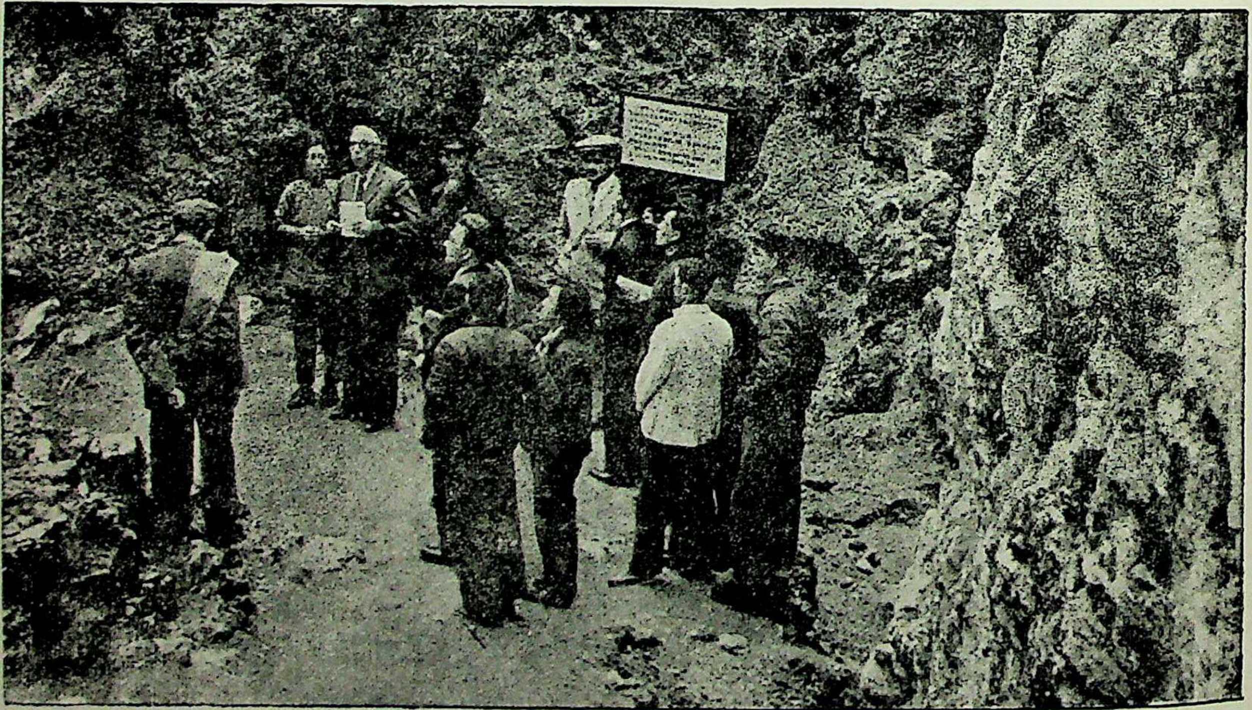

इस महत्वपूर्ण फोटो चित्र में चीन की राजधानी पेकिंग के निकट अवास्थित वह स्थान प्रदर्शित है, जहाँ से 'साइनेनथ्रापस' नामक उपमनुष्य के लगभग पाँच लाख वर्ष पुराने अवशेष पाये गये हैं। चीन सरकार ने इस स्थान को अपने संरक्षण में ले रक्खा है और दूर-दूर से पुरातत्त्वप्रेमी दर्शक उसे देखने पहुँचते हैं। पृष्ठ ४५८ पर 'साइनेनथ्रापस' की उक्त खोपड़ी का चित्र देखिए, जो इस स्थान में मिली थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रस्तर-विकल्पों का लेखा :: हमारे अत्यन्त प्राचीन पूर्वज

मनुष्य की उत्पत्ति कैसे, कब और कहाँ हुई, इस जटिल और विवादात्मक प्रश्न की भूलभुलैया में भटकते हुए अब हम उस स्थिति पर आ पहुँचे हैं, जहाँ आज से कुछ लाख वर्ष पूर्व के ऐसे मानवसम जीवों के प्रस्तरीभूत अवशेषों से हमारी भेंट होती है, जिन्हें हम एकबारगी ही आधुनिक मानव की श्रेणी में तो नहीं रख सकते, फिर भी जिनमें मानव के रूप और गुण स्पष्ट रूप से उदय होते हुए हम पाते हैं। आइए, इस लेख में सर्वप्रथम उन्हीं से हम आपका परिचय कराएँ, तदुपरांत उन आदिम मानवीय समूहों का भी वर्णन करें, जिन्हें विधिवत् मनुष्य-जाति के पूर्वजों की संज्ञा प्रदान की जाती है।

पिछली शताब्दी में मनुष्य की उत्पत्ति पर बहुत-कुछ विचार हुआ है। विद्वानों में इस विषय पर काफी बहस भी हुई है। परन्तु इस बात पर उनमें अभी तक बहुत मतभेद पाया जाता है। यह सही है कि हाल के वर्षों में मनुष्यों की उत्पत्ति के विषय में हमें बहुत-सी नई बातें मालूम हुई हैं, जिससे हमारे ज्ञान की वृद्धि हुई है एवं इसकी मनोरंजक कहानी बहुत-सी पुस्तकों में लिखी भी गई है। परन्तु वास्तव में यह विषय बड़ा ही कठिन है; क्योंकि जब हमें लगभग पाँच-छः हजार वर्ष से पहले के ही इतिहास का ठीक-ठीक पता नहीं है, तो फिर मनुष्य की समूची कहानी तो लाखों वर्ष पुरानी है! वास्तव में हमारे सबसे प्राचीन ग्रंथ वेद भी तो कुछ ही हजार वर्षों से अधिक पहले के नहीं हैं। इससे स्पष्ट है कि मनुष्य की उत्पत्ति की खोज हमें उस अंधकारमय युग में ले जाती है, जो किसी भी प्रकार के लिखित इतिहास से कहीं पीछे छिपा हुआ है। पिछले कुछ हजार वर्षों से, जब से मनुष्य को अपने अर्जित ज्ञान का लेखा छोड़ जाने की युक्ति मिल गई है, अवश्य हमें अपने पूर्वजों का ब्योरेवार हाल मिल रहा है। किन्तु जिस समय पृथ्वी पर कोई भी ऐसा बुद्धिमान मनुष्य नहीं था, जो अपने विचारों को कहकर या लिखकर अपनी सन्तान के लिए छोड़ जाता, उन दिनों का तथा उससे भी सहस्रों-लाखों वर्ष पहले का हाल जानना भला हमारे लिए किस प्रकार सम्भव है! सौभाग्य से हाल ही में मनुष्य की बुद्धि ने धरती की कोख में छिपे हुए एक और तरह के इतिहास का पता लगाने की एक युक्ति खोज निकाली है, जिससे कि आदि मनुष्य तथा अन्य प्राणियों के इतिहास के सदियों से खोये हुए अध्यायों के दो-चार पृष्ठों का पता हमें लग गया है। यह इसलिए हुआ है कि अन्य जानवरों की तरह हमारे प्राचीन पूर्वज भी अपने अस्थि-पंजर तथा खोपड़ियाँ एवं पत्थर तथा चकमक आदि हथियार अपनी रहने की गुफाओं के पास के दलदलों अथवा नदी की तहों में छोड़ गये हैं। समय के प्रभाव से उनके ये निशान वहीं के वहीं दबकर धरती की तहों या चट्टानों के भीतर पहुँच गये और नष्ट होने से बच गये। यही लेखा है, जिसे वे पृथ्वी के गर्भ में दबा हुआ छोड़ गये हैं। पुरातन युग का हाल जानने के लिए हम इन्हीं बची-खुची वस्तुओं पर निर्भर हैं।

प्रस्तर-विकल्प कैसे बने ?

इतिहासकारों के लिए यह अच्छा ही हुआ कि कन्दराओं तथा जंगलों में निवास करनेवाले हमारे उन आदिम पूर्व-पुरुषों को आजकल की-सी सफाई पसन्द न थी। वे अपने रहने के गड्ढों और गुफाओं में झाड़-पोंछ नहीं किया करते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थे। इसलिए अपने चूल्हे अथवा खाना पकाने की जगह के आसपास वे अपने भोजन का बचा-खुचा भाग—जैसे खाये हुए जानवरों की हड्डियाँ और बेकार औजार आदि—वहीं छोड़ गये। ये चीजें समय बीतने पर आसपास की गर्द-धूल या वर्षा और बाढ़ से बही हुई रेती एवं गुफाओं में ऊपर से गिरी हुई मिट्टी तथा चट्टानों के टुकड़ों से दब गई। ज्यों-ज्यों उनके ऊपर पत्थर और मिट्टी की तहें जमती गईं, वे सतह के नीचे होती गईं। कहीं-कहीं ये गुफाएँ इसी प्रकार एक के ऊपर दूसरी तह जमने से ऊँची भी होती गईं। संभवतः इन गुफाओं में निवास करनेवाले आदि मनुष्य अचानक तूफान, बाढ़ अथवा भूकम्प के आ जाने से जीवित ही जहाँ-के-तहाँ दब गये होंगे; अथवा वे उसी नदी में, जिसके तट पर वे रहते होंगे, डूब गये होंगे या मर जाने पर प्रायः नदी में फेंक दिये गये होंगे। इस तरह वहीं इनके अस्थिपंजर दब गये और उनके सड़ने-गलने से पहले ही उन नदियों की तह पत्थर और चट्टान बनकर सूखी तथा ऊँची हो गई, जिससे वे शव प्रस्तर-विकल्प बन गये। यह भी हो सकता है कि इन मनुष्यों ने अपने मुर्दे स्वयं ही उन गुफाओं में गाड़ दिये हों। याद रहे कि पृथ्वी की तहों में भूचालों तथा अन्य प्राकृतिक घटनाओं द्वारा भी बहुत-कुछ परिवर्तन हुआ है और अब भी होता रहता है। बहुत-से भाग, जो एक समय समुद्र में डूबे हुए थे या नदी और झीलों के नीचे छिपे हुए थे, अब उठकर ऊपर आ गये हैं। इसी तरह बहुत-से भाग, जो स्थल के ऊपर थे, दबकर नीचे चले गये हैं।

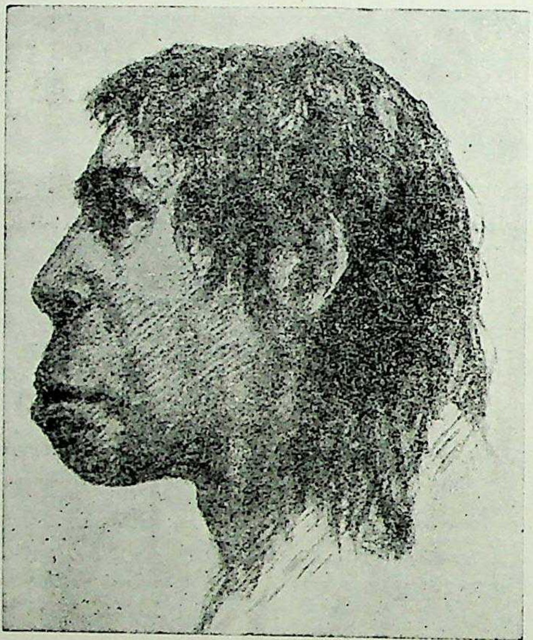

पिथैकेन्थ्रापस का चेहरा बाजू से संभवतः ऐसा ही दिखाई देता रहा होगा। पृ० ४५१ के चित्र की तरह यह भी एक काल्पनिक रचना ही है।

प्रस्तर विकल्पों का अध्ययन

इस तरह जो गुफाएँ और जमीन की तहें इन दबे-दबाये स्मारक-चिह्नों समेत जमीन के अंदर सैकड़ों फीट नीचे घुस गई, उनमें से बहुतेरी अभी तक वहीं दबी हुई हैं और कुछ थोड़ी-बहुत पुनः ऊपर भी उठ आई हैं। सौभाग्य से मनुष्य ने जिज्ञासावश दुनिया के भिन्न-भिन्न भागों में अपने फावड़े द्वारा इन दबे-दबाये चिह्नों को कहीं-कहीं खोद निकाला है। प्राचीन मनुष्य-सम्बन्धी ऐसे जो कुछ चिह्न हमें मिले हैं, उन्हीं से हमने उनका इतिहास गढ़ा है। उनकी खोपड़ियों और दूसरी हड्डियों से यह पता लगता है कि वे कैसे थे। उनके द्वारा बनाये गये चकमक पत्थर तथा धातुओं के औजारों से उनके रहन-सहन का भी थोड़ा-बहुत आभास हमें मिलता है। उनके द्वारा खाए गए जानवरों की हड्डियों के ढेर, जो उनके चूल्हे की राख में या उसके आसपास मिलते हैं, उनके शिकार और आहार का पता हमें देते हैं। इन्हीं जानवरों की हड्डियों, दाँतों और वृक्षों के अवशेष से यह भी जाना जाता है कि उस समय की जलवायु कैसी रही होगी। जिन चट्टानों और मिट्टी की तहों में ये स्मारक-चिह्न पाये गये हैं, उनकी तथा उनके ऊपर और नीचे की तहों की बनावट का मिलान करने से यह जाना जा सकता है कि उनमें से कौन एक दूसरे से नए और पुराने हैं और उनकी आयु क्या है। इसी तरह अन्दाज लगाया जाता है कि जिनके चिह्न मिले हैं वे मनुष्य थे या जानवर, एवं वे किस युग में पृथ्वी पर जीवित थे। प्रस्तर-विकल्पों का यह लेखा निस्संदेह एक मूल्यवान् सामग्री है।

ये चिह्न बहुत क्यों नहीं मिले ?

पर मानव-सम्बन्धी इस प्रकार की जो सामग्री अभी तक मिली है, वह वास्तव में बहुत ही कम है। इसके कई कारण हैं। एक तो हमारे पूर्वज अपने समय के बड़े वानरों के समान कभी भी शायद बहुत अधिक संख्या में नहीं रहे। वे जंगली घोड़ों, मृगों और प्राचीन ऊँट तथा हाथियों के पुरखों की तरह नहीं थे, जो हर एक पीढ़ी में लाखों या हजारों की संख्या में मिलते रहे हैं। इन जंतुओं में से बहुतेरे पानी में डूब जाते होंगे या मगर आदि उनको पानी में खींच ले जाते होंगे; अथवा वे झील, नदी या दलदल के तट पर मर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाया करते होंगे, जहाँ वे पानी पीने को जाते रहे होंगे और इस तरह सहज में उनके प्रस्तर-विकल्प बन जाते रहे होंगे। यह सब होने पर भी इनमें से दो-चार को छोड़कर किसी के पुराने प्रस्तर-विकल्पों का पता नहीं लगा है, यद्यपि ये सब स्तनपोषित जीव समूहों में ही रहा करते थे। इसके विपरीत बड़े वानर, आदि मानवसम जीव और उपमनुष्य कदाचित् कभी भी दो-चार से अधिक एक जगह इकट्ठे नहीं रहते थे। वे अकेले या जोड़े में एक-दो बच्चों सहित इधर-उधर फिरते रहे होंगे और सुभीते की जगह से अपनी ही जाति के अपने से निर्बल व्यक्तियों को भगाकर उनकी जगह पर अपना अधिकार जमा लेते होंगे। हम यह भी जानते हैं कि मनुष्य स्वभावतः तैर नहीं सकता, उसे आज भी तैरना सीखना पड़ता है। इससे ज्ञात होता है कि काफी लंबे समय तक वह नदी, झील, समुद्र आदि जल के स्थानों से दूर ही रहा होगा। इसलिए उसको ऐसे अवसर बहुत कम मिलते रहे होंगे कि पानी में या पानी के निकट की ऐसी जगहों पर वह मरता, जहाँ कि उसकी हड्डियाँ प्रस्तर-विकल्प बन जातीं। इससे यह धारणा उपयुक्त ही जान पड़ती है कि तत्कालीन मानव के वंश-के-वंश अपनी उपस्थिति का चिन्ह छोड़े बिना ही समाप्त हो गए होंगे।

इन्हीं कठिनाइयों के कारण मानवीय प्रस्तर-विकल्प तृतीय युग के प्रारम्भिक तथा मध्यकाल की चट्टानों में अधिक नहीं मिले हैं। कहते हैं, इस महायुग के प्रथम या द्वितीय काल के आरम्भ होने तक आदि मनुष्य और वनमानुष वनों में ही वास करते थे; इसलिए वे वहीं मरते रहे होंगे। उनके शरीर या तो अन्य पशुओं ने खा लिए होंगे अथवा वे सड़-गल गए होंगे। जब तीसरा महायुग समाप्त हो रहा था और चतुर्थ (जो अभी तक चल रहा है) शुरू हो रहा था, तब कदाचित् ये लोग गुफाओं में रहने लगे थे। इस समय से उनके स्मारक-चिह्न और अस्थिपंजर चट्टानों और पृथ्वी की तह में दबने लगे होंगे। अभी तक केवल थोड़े-से ही ऐसे चिह्न हमारी जानकारी में आए हैं, क्योंकि यह विद्या अभी केवल दो-चार पीढ़ी ही पुरानी है, तथा बहुत थोड़े आदमियों ने इसका अध्ययन किया है। बेल्जियम, डेनमार्क, फ्रांस और इंगलैंड आदि योरप के पश्चिमी भागों में इस विषय की अच्छी खोजें की गई हैं। पर अफ्रीका, एशिया, भारत और पूर्वी द्वीपों के समूह में मनुष्य के ये चिह्न अभी तक बहुत कम खोजे गए हैं। बहुत सम्भव है, इन देशों में उस समय के इतिहास को प्रकाशित करनेवाले अनेक भेद छिपे हुए हों।

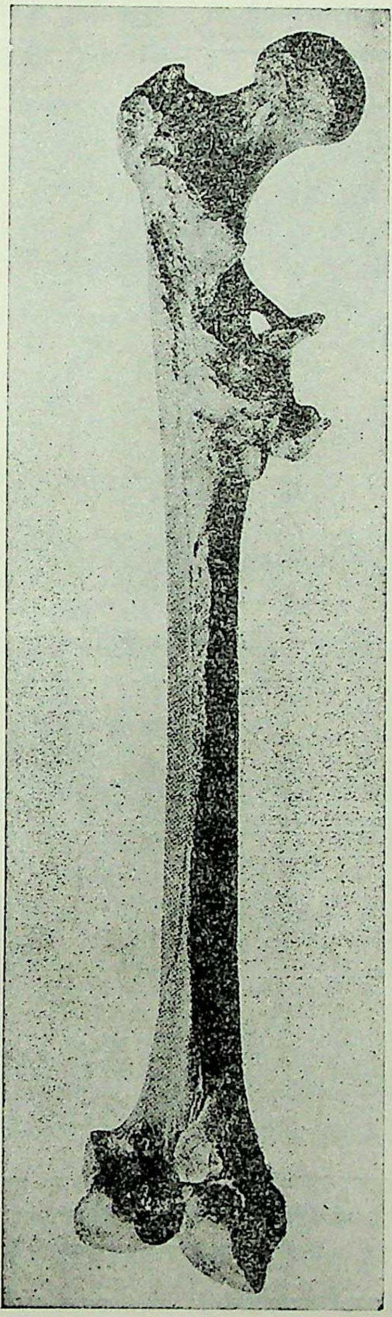
पिथैकेन्थ्रापस की जाँघ की हड्डी, जो उसकी खोपड़ी के साथ प्राप्त हुई है।

अतः यह याद रखना आवश्यक है कि चट्टानों और गुफाओं में इन चिह्नों का बहुत कुछ पता लगाना अभी बाकी है। शायद अभी आदि मनुष्य और उनके पुरखों की ऐसी और भी बहुत-सी धरोहरें आगे चलकर मिलें, जिनसे मनुष्य के विषय में अभी तक जो हाल हम जानते हैं, वह केवल उसके वास्तविक हाल का एक अणुमात्र ही जान पड़े। हमें पूरा विश्वास है कि भविष्य के भूगर्भवेत्ता तथा प्रस्तर-विकल्प-शास्त्री मनुष्य की प्राचीन कहानी को हिन्दुओं, चीनियों, बैबीलोनियों, यूनानियों और मिस्रियों के पुराने से पुराने इतिहास ही के आगे नहीं, वरन् डेनमार्क, फ्रांस, पूर्वी द्वीपसमूह आदि की गुफाओं में प्राप्त स्मारक-चिह्नों के भी युग से कहीं पहले की लाखों वर्ष पुरानी चट्टानों की तहों तक पहुँचा सकेंगे। आज तो मनुष्य की जो कहानी हमें ज्ञात है, वह नितान्त अधूरी है और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उसमें भाँति-भाँति की कपोल-कल्पनाओं के लिए अभी बहुत गुंजाइश है। इसीलिए जब कोई पूरी खोपड़ी मिलती है, तब भी उस विषय के सब विद्वानों की उसके बारे में एक राय नहीं हो पाती। उस खोपड़ी को कोई बनमानुष और मनुष्य के बीच की खोई हुई कड़ी का स्मारक समझता है, तो कोई उसे शिम्पैंजी की खोपड़ी समझकर अलग कर देता है। तब भी आधुनिक विज्ञान और तत्संबंधी अनुसंधानों का हमें आभारी होना चाहिए कि ऐसे मनोरंजक विषय की सीढ़ी के मुख्य-मुख्य डंडों का पता लग गया है और पुस्तकों में प्रकाशित हो जाने से इस विषय का ज्ञान सर्वसुलभ हो गया है। आइए, अब हम आपको इसी विषय की सुविस्तृत जानकारी कराएँ।

उपमनुष्य की सबसे पुरानी खोपड़ी

सबसे प्राचीन अवशिष्ट हड्डियाँ, जो आदि मनुष्य या उपमनुष्य की कही जा सकती हैं, एक अधूरी खोपड़ी, उसके नीचे का जबड़ा और कुछ दांत हैं, जिनके मिलने की सूचना अमेरिका के 'कारनेगी इन्स्टीट्यूट' ने सन् १९३९ के प्रारम्भ में दी थी। ये जावा में सोलो नदी के किनारे डाक्टर वॉन कूनिग्जवौल्ड को मिली थीं। कूनिग्जवौल्ड का विचार है कि ये हड्डियाँ अब तक ज्ञात सबसे पुराने मनुष्य की हैं और जावा ही में पाए गये खड़े होनेवाले उपमनुष्य 'पिथेकेन्थ्रापस इरेक्टस' से भी (जिसका कि विवरण आगे लिखा गया है, और जो अभी तक सबसे प्राचीन माना जाता था) अधिक पुरानी हैं। कारनेगी इन्स्ट्रीट्यूट के प्रधान डाक्टर मरियम का कथन है कि हाल की खोजों में यह खोज सबसे महत्त्वपूर्ण हैं; क्योंकि अभी तक पाए गए मनुष्य के प्रस्तर-विकल्पों की आयु १२ हजार वर्ष से लेकर ५ लाख वर्ष से कुछ अधिक तक ही है। इन नई हड्डियों से साबित होता है कि पिथेकेन्थ्रापस अपनी शारीरिक और मानसिक दशा में बड़े वानरों से काफी आगे बढ़ चुका था तथा यह भी ज्ञात होता है कि मनुष्य को अपने पैरों पर खड़े होते हुए एवं मस्तिष्क को काम में लेते हुए करीब १९ लाख वर्ष हो चुके हैं। इससे भी अधिक प्राचीन एक और खोपड़ी उपलब्ध है, जो कुछ वर्ष हुए पाई गई है। यह खोपड़ी डाक्टर राबर्ट ब्रूम को दक्षिणी अफ्रीका में मिली थी। इस प्रस्तर-विकल्प का नाम उन्होंने 'पैरेन्थ्रापस' रक्खा था।

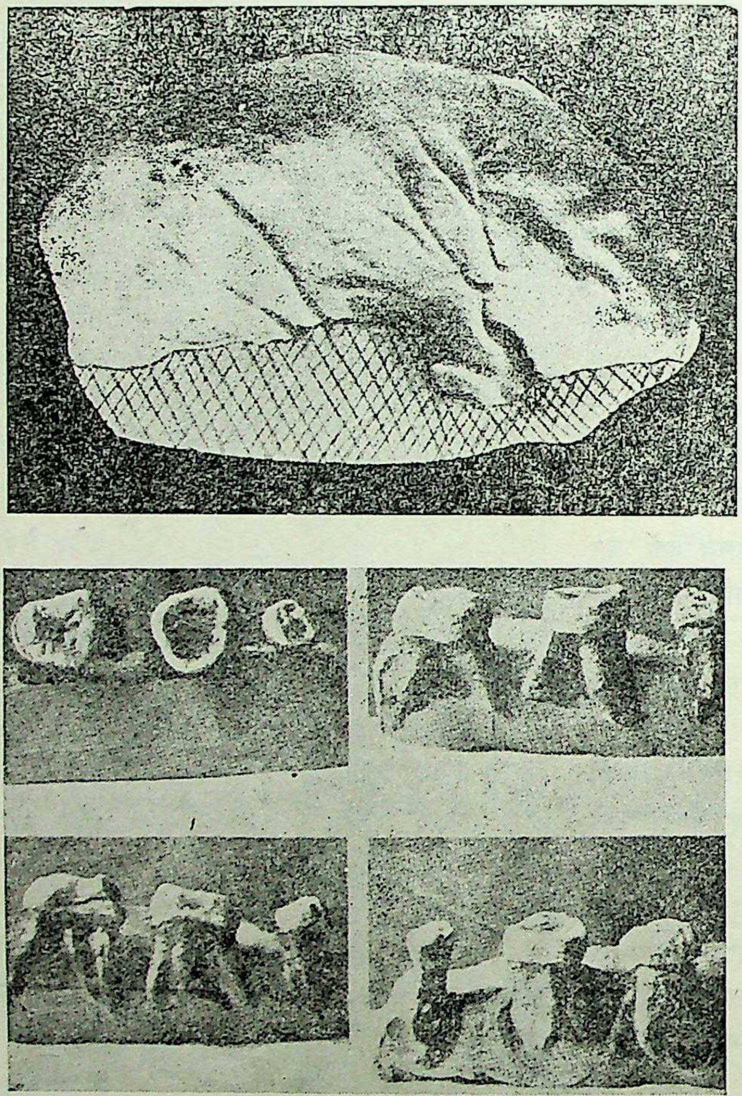

(ऊपर) पिथेकेन्थ्रापस की खोपड़ी के भीतरी पृष्ठ का बनाया गया प्लास्टर का ढाँचा। इससे खोपड़ी की समाई का अंदाज किया जा सकता है। (नीचे) खोपड़ी के साथ प्राप्त इस प्राणी के दांत।

अब इस खोपड़ी के अलावा उसकी बाजू की हड्डी, बाँह की ऊपरी हड्डी और पैर की उँगली की भी एक हड्डी मिली है। जैसा कि उनका पहले विचार था, ये करीब-करीब मनुष्य की-सी ही हैं। पैर की उँगली की हड्डी से पता चलता है कि यह जीव खड़ा होकर दो पैरों के बल चल सकता था। बाँह की हड्डियों से विदित होता है कि वे हड्डियाँ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चलने-फिरने में शरीर को साधने का काम नहीं देती थीं। ये हड्डियाँ मनुष्य की तो नहीं मानी जातीं, लेकिन ऐसे मानवसम वानर की अवश्य हैं, जो उस समय मनुष्य की तरह दो टाँगों पर चल सकता था। इसी प्रकार के एक और मानवसम प्राणी 'प्लेसिएनथ्रापस' की भी कुछ हड्डियाँ इन्हीं महाशय को ट्रांसवाल में मिली हैं। इनका मत है कि यह भी दो टाँगों पर चल-फिर सकता था। इसकी खोपड़ी के ढाल से पता चलता है कि इसका मस्तिष्क पिथै-केन्थ्रापस के मस्तिष्क से थोड़ा ही छोटा है। उपर्युक्त खोजों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इन हड्डियों से हमें उस समय के विकास के ढर्रे की एक झलक मिलती है, जब प्राचीन जानवरों ने पूर्ण रूप से खड़ा होना सीखा ही था और यह केवल मनुष्य की ही विशेषता थी।

पिथैकेन्थ्रापस इरैक्टस या खड़ा होकर चलनेवाला सबसे पहला उपमनुष्य

उपर्युक्त अवशेषों के बाद अन्य प्रसिद्ध हड्डियाँ, जिनकी गणना हम उपमनुष्य के अस्थिपंजरों में कर सकते हैं, जावा द्वीप में सोलो नदी के तट पर बसे हुए ट्रिनिल नगर के निकट सन् १८९१ या १८९२ में पाई गई थीं। इन हड्डियों में एक खोपड़ी की टोपी या ऊपरी भाग, दो-तीन दाढ़ें और एक जाँघ की हड्डी है, जो खोपड़ी से लगभग २० गज हटकर मिली थीं। कुछ लोगों का यह कहना था कि यह जाँघ की हड्डी किसी और आदमी की है और दाढ़ें तथा खोपड़ी किसी और की। परन्तु अब काफी विवाद के बाद यह मान लिया गया है कि जाँघ की हड्डी भी उसी आदमी की है, जिसकी दाढ़ें तथा खोपड़ी की हड्डी है। इसका माथा तंग और ढालू है तथा भीतर की जगह छोटी है। इससे जान पड़ता है कि इस जीव के माथा था ही नहीं और उसका सिर भौंहों तक बहुत ढालदार था। इसकी जाँघ की हड्डी या ऊर्वस्थि वर्तमान मनुष्य की सी ही है, जिससे प्रकट होता है कि यह प्राणी सीधा चल-फिर सकता था। हड्डी की लम्बाई से इस प्राणी का कद पाँच फीट सात इंच आँका जाता है। दांत बिल्कुल आदमियों के से हैं। सन् १८९० में ट्रिनिल नगर से २५ मील हटकर एक नीचे के जबड़े की हड्डी का टुकड़ा भी मिला था। उसमें अगली दूध-दाढ़ और आगे की कील का गड्ढा बना हुआ है। यह भी ऊपर उल्लिखित प्राणी का ही अवशेष माना गया है। इस जबड़े से यह समझ में आता है कि इस जीव की ठोढ़ी बैठी हुई होगी तथा इसकी कील भी छोटी रही होगी। इसके जबड़े तो मनुष्य जैसे रहे होंगे और थूथन बन्दरों की अपेक्षा आगे कम निकला होगा। किन्तु उसकी भौं की हड्डी ऊपर को बहुत उभरी रही होगी, जैसी कि गोरिल्ला और शिम्पैंजी में होती हैं। इन हड्डियों की खोज करनेवाले प्रोफेसर डूबोय ने इस जीव का नाम 'पिथैकेन्थ्रापस इरैक्टस' रक्खा। हिन्दी में इसको 'खड़ा होनेवाला उपमनुष्य' कह सकते हैं। प्रो० डूबोय की यह धारणा थी कि यह जीव मनुष्य और वनमानुषों के बीच का प्राणी था। न यह मनुष्य में गिना जा सकता है और न पेड़ों पर रहनेवाले शिम्पैंजी जैसे वनमानुषों में ही उसकी गणना हो सकती है। यह यदि बिल्कुल नहीं तो बहुत-कुछ हमारी ही तरह सीधे खड़े होकर चल-फिर सकता था। खोपड़ी के हिस्से को साँचे में ढालकर निपुण वैज्ञानिकों ने इसके मस्तिष्क की रचना का पता लगाने की भी कोशिश की है और उसके रूप को निश्चित कर लिया है। इससे वे हिसाब लगाते हैं कि इसके मस्तिष्क का बोझ बड़े-से-बड़े मस्तिष्कवाले वनमानुष, गोरिल्ला और साधारण मनुष्यों में छोटे-से-छोटे मस्तिष्क (जो ऑस्ट्रेलिया के मूल निवासियों में मिलता है) के बोझ के बीच का है। इससे बहुत लोग यह प्रश्न कर सकते हैं कि गोरिल्ला जैसे भारी वनमानुष से भी अधिक बड़े मस्तिष्क की जरूरत

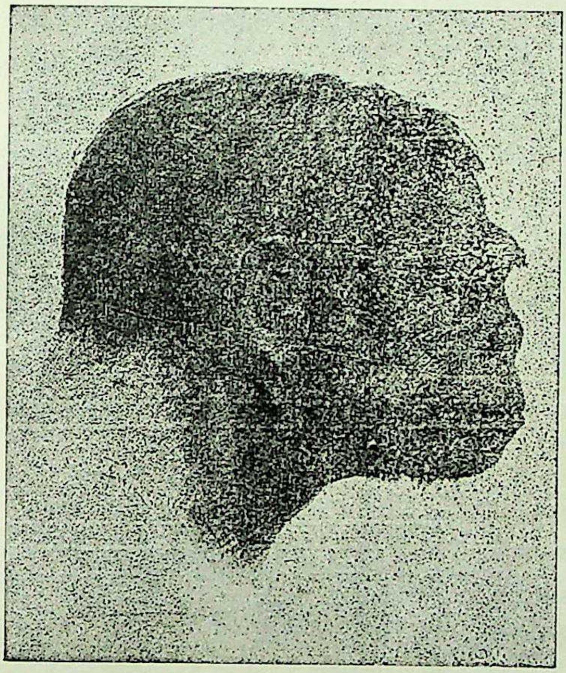

'साइनेनथ्रापस' या पेकिंग के मानव की आकृति कदाचित् ऐसी रही होगी। यह आकृति अगले पृष्ठ पर प्रदर्शित इसकी खोपड़ी के आधार पर बनाई गई है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भला इस हल्के शरीर वाले मानव की क्या हुई ? इसका कारण यही मालूम होता है कि वनमानुषों के मुकाबले में उसमें अधिक मानसिक शक्ति थी, तथा उसके मस्तिष्क में याद रखने, सुनने और बोलने के क्षेत्रों की बनावट बहुत-कुछ मनुष्य से मिलती-जुलती थी। यह ठीक-ठीक कोई भी नहीं कह सकता कि यह जीव मनुष्य की ही तरह सोच सकता

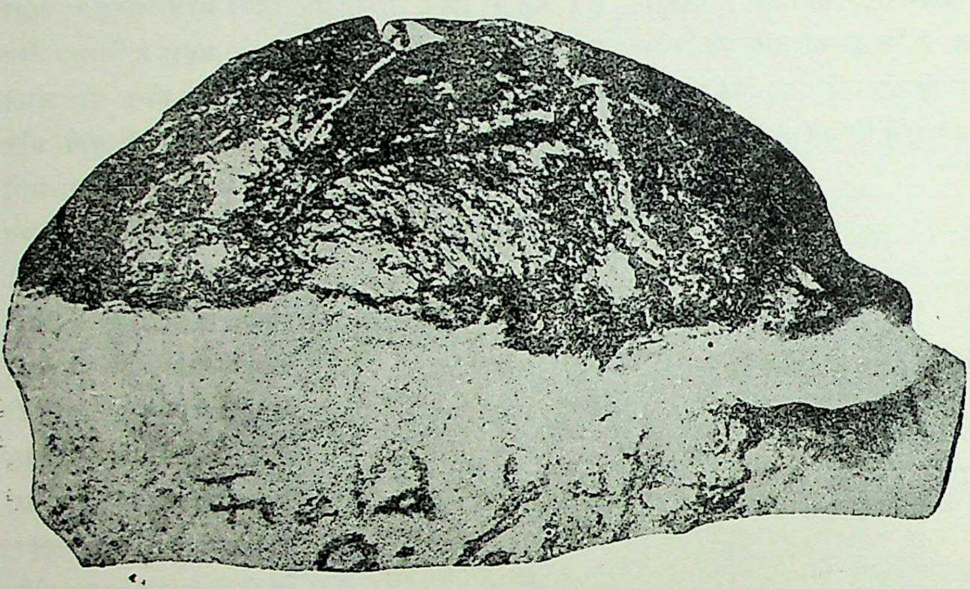

'साइनैनथ्रापस' या पेकिंग मानव की खोपड़ी। (ऊपर) बाजू से यह खोपड़ी ऐसी दिखाई देती है। (नीचे) यही सिरे पर से ऐसी दीख पड़ती है।

था या नहीं। इन बातों में विद्वानों का एकमत होना असम्भव है। यही कारण है कि कुछ लोग कहते हैं कि यह एक मानव-सम वानर था, तो दूसरे लोग उसे नकली मनुष्य या उपमनुष्य की पदवी देते हैं, और कुछ उसे वास्तविक या असली मनुष्य का पूर्वज मानते हैं। सर आर्थर कीथ, जो प्राचीन मनुष्य के विषय के सबसे बड़े अधिकारी विद्वान् माने जाते हैं, लिखते हैं कि यह काल्पनिक जीव मस्तिष्क के अतिरिक्त अपने डील-डौल, चाल-ढाल और बहुत-से भागों की अंग-रचना में मनुष्य जैसा ही था। कुछ भी हो, यह निश्चय है कि इस प्राणी के अवशेषों से दो पैरों पर चलनेवाले लुप्त वानरों के बाद आनेवाले मनुष्य के विकास का बहुत-कुछ पता चलता है; किन्तु यह मानना न्यायसंगत नहीं होगा कि जावा का पिथेकेन्थ्रापस असली मनुष्य-जाति के पूर्वजों में से है। सब बातों पर विचार करते हुए यह मानना उचित प्रतीत होता है कि इसकी शाखा मानव-जाति के धड़ के नीचे की ओर से बहुत पहले ही अलग से फूट गई थी और वह मानव-वंश की पहली शाखा मानी जा सकती है। इस उपमनुष्य की ऊपर वर्णन की गई हड्डियाँ ४५ फीट मोटी चट्टानों की तह में पाई गई थीं। इनके साथ बीस तरह के स्तनपोषित जीवों, जैसे हाथी के 'मैमथ' नामक विशाल पुरखे, बड़े बालवाले गैंडे, भारी डीलवाले दरियाई घोड़े, कटार जैसे दाँतवाले बाघ, और आदि बारहसिंघे इत्यादि की हड्डियाँ भी पाई गई थीं। इन प्राणियों के प्रस्तर-विकल्पों से हमें इस आदि मानव के समय का सही निर्धारण करने में विशेष रूप से सहायता मिल सकती है, कारण उनका ठीक समय अन्य प्रमाणों के आधार पर बहुत-कुछ निश्चित हो चुका है। ये सब पशु अब नष्ट हो गए हैं और आजकल कहीं भी नहीं पाए जाते। प्रोफेसर डूबौय तथा अन्य कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि ये प्रस्तर-विकल्प और जिनमें ये अवशेष पाए गए थे वे चट्टानें तीसरे महायुग के दूसरे काल (प्लायोसिन) के ऊपरी खंड की हैं, जिसका कालमान पाँच लाख वर्ष अनुमान किया जाता है। अतः इनकी आयु कम से कम ५ लाख वर्ष की है। किन्तु बाद के बहुत-से लेखकों

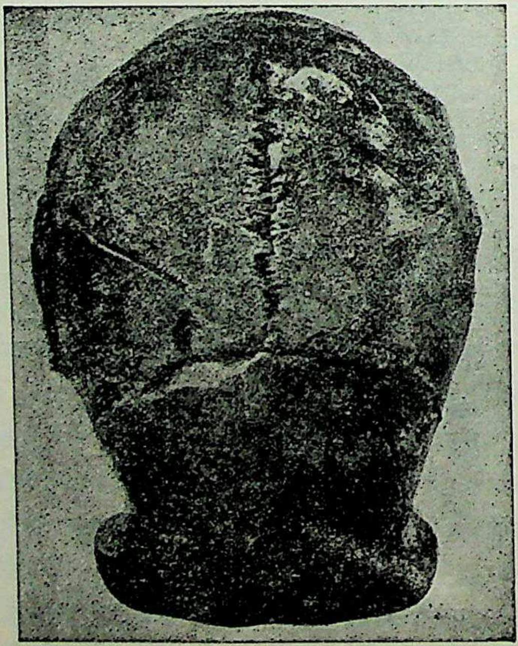

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का विचार है कि वे इसी युग के पहले काल (प्लिस्टो-सिन) की निचली या बीच की तहों से सम्बन्ध रखती हैं। उधर राबर्ट ब्रूम का तो कहना है कि ये तहें कम-से-कम १० लाख वर्ष पुरानी हैं। अतः यह पथराई हुई खोपड़ी भी उतनी ही प्राचीन है।

जावा में पाए गए ये महत्वपूर्ण अवशेष हॉलैण्ड के हार्लेम नगर के टाइलर अजायबघर में सुरक्षित हैं।

साइनैन्थ्रापस पिकेनैन्सिस

उपमनुष्य की दूसरी सबसे पुरानी जाति के अवशेष १९२१-१९३६ के बीच चीन की राजधानी पेकिंग के पास पाए गए थे। इस प्रदेश में खोज करने के लिए विद्वानों का ध्यान किस प्रकार आकर्षित हुआ, इसका इतिहास भी बहुत ही मनोरंजक है। कहते हैं १९०३ में जर्मनी के श्लौसर नामक एक डाक्टर ने चीन के एक दवाखाने से परदार साँप की हड्डियों का एक ढेर खरीदा था। उसमें उन्होंने एक ऐसा दाँत पाया, जिसको किसी अनजान वनमानुष का समझकर उन्होंने इस बात की सूचना दी कि यदि चीन में खोज की जाय और खोदकर देखा जाय, तो आशा है कि वहाँ किसी पथराए हुए वानर या वानर-मनुष्य की पुरानी हड्डियाँ अवश्य मिलेंगी। यह जानकर कुछ आदमियों ने खोज शुरू की और शीघ्र ही श्लौसर की उक्त धारणा बिलकुल सही सिद्ध हुई।

इस कार्य में सबसे पहले स्वीडन देश के भूगर्भवेत्ता जे० जी० एन्डरसन को सफलता मिली। उन्होंने सन् १९२१ में पेकिंग नगर के निकट प्रस्तर-विकल्पों से युक्त चट्टानों की एक खोह में खोज की लेकिन १९२३-१९२७ तक उन्हें उपमनुष्य के केवल तीन दाँत ही मिले। किंतु बाद की अधिक खोज के बाद अब तक वहाँ ३४ व्यक्तियों की भिन्न-भिन्न हड्डियाँ मिल चुकी हैं। इनमें अधिकतर दाँत हैं, कुछ खोपड़ी और जबड़े के टुकड़े हैं, १२ पूरे-पूरे नीचे के जबड़े हैं और ४ लगभग पूरी खोपड़ियाँ हैं। इनमें से एक खोपड़ी लगभग ८ वर्ष के एक लड़के की है और एक वयस्क स्त्री की है। ये सब हड्डियाँ एक ही उपजाति की हैं, जिसका कि नाम 'साइनैनथ्रापस पिकेनैन्सिस' अथवा 'पेकिंग का मनुष्य' रक्खा गया है।

संसार भर में और कहीं भी आदि मनुष्य की हड्डियों का इतना अच्छा संग्रह नहीं मिला है। आश्चर्य की बात तो यह है कि खोपड़ी के इतने हिस्से मिलने पर भी धड़ या हाथ-पैर की एक भी हड्डी उस खोह में नहीं मिली। इससे यह धारणा होती है कि शायद इन खोपड़ियों को उस गुफा में मनुष्य का मांस खानेवाले आदमी ही ले गए होंगे। यदि चीता या लकड़बग्घा उन्हें ले गया होता, तो यह समझ में नहीं आता कि वे केवल खोपड़ी ही क्यों ले गए! इन सभी खोपड़ियों में नाक की पतली हड्डी गायब है। यह भी कहा जाता है कि शायद उस जमाने में मनुष्य एक दूसरे का केवल भेजा अथवा दिमाग ही खाते रहे होंगे। हाल ही में इनके नाक की हड्डी के भी कुछ टुकड़े पाए गए हैं, परन्तु वे इतने छोटे हैं कि उनसे उक्त उपमनुष्य के चेहरे का ठीक-ठीक पता नहीं लग सकता। इन खोपड़ियों में भी पिथैकेन्थ्रापस की भाँति आँख के अन्दर की हड्डी बहुत उभरी हुई है। परन्तु इनमें मस्तिष्क का भाग उससे अधिक अच्छी तरह बढ़ा हुआ है। उसके मुकाबले में इन खोपड़ियों की हड्डी भी बहुत मोटी है। भौं की हड्डी निकली हुई जरूर है, लेकिन वह आँख के ऊपर गोरिल्ला और शिम्पैंजी की तरह लटकती नहीं है। इस उपमनुष्य की खोपड़ी पिथैकेन्थ्रापस से बहुत-कुछ मिलती-जुलती होने पर भी उसके ललाट की ऊँचाई मनुष्य की खोपड़ी से ज्यादा मिलती है। इस खोपड़ी का खोखला भाग असाधारण रूप से छोटा है और मस्तिष्क अति संकीर्ण है, किन्तु जावा के मनुष्य से यह अधिक ऊँचा रहा होगा। कनपटी की हड्डियाँ नवजात शिशु की तरह हैं। इसकी दाढ़ें भी जावावाले मनुष्य की अपेक्षा आज के मनुष्य

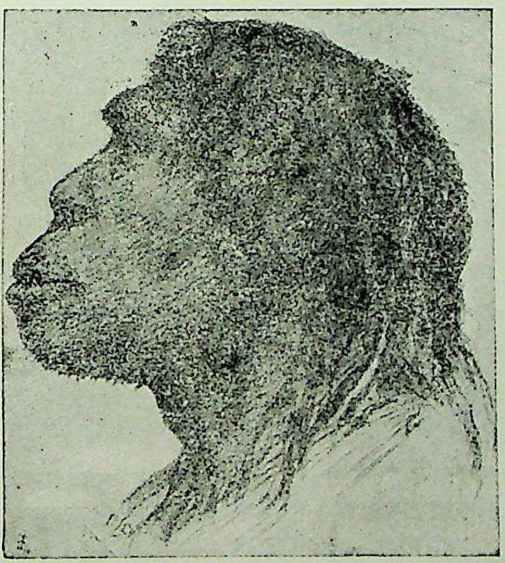

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि 'पिथैकेन्थ्रापस' और 'साइनेनथ्रापस' के उपरान्त मानवाकृति सुविकसित होकर एक लाख वर्ष पूर्व के लगभग ऐसी ही कुछ दिखाई देने लगी होगी, जैसी कि इस काल्पनिक चित्र में प्रदर्शित है। ललाटास्थि और नासिका के सुडौल स्वरूप पर गौर कीजिए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से अधिक मिलती हैं। इससे यह प्रकट होता है कि चीन के इस मनुष्य में कई लक्षण ऐसे हैं, जो न जावा के वानर-मनुष्य में और न जर्मनी में पाये जानेवाले मनुष्य में (जिसका वर्णन आगे किया गया है) मिलते हैं। इसमें कुछ लक्षण तो एक उपजाति के-से हैं, कुछ दूसरी के-से और कुछ आधुनिक मनुष्य जैसे। कदाचित् ये सब जातियाँ इसी भाँति की एक मूल जाति से उत्पन्न हुई हों। चीन के सभी प्रस्तर-विकल्प बहुत-से लुप्त पक्षी, हिरन, गैंडों और लकड़-बग्घों की हड्डियों के साथ ११० फीट की गहराई में चट्टानों की पर्त्तों में पाए गए थे, जो तृतीय महा-युग के सब से हाल के काल की मानी जाती हैं। इनकी आयु लगभग ५ लाख वर्ष मानी गई है। इन प्रस्तर-विकल्पों का एक बहुत सुन्दर संग्रह पेकिंग के अजायबघर में सुरक्षित है।

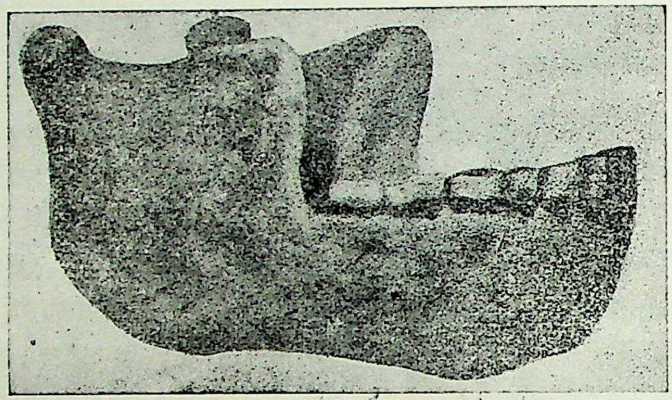

यह मानवीय जबड़ा जर्मनी के हाइडैलबर्ग नगर के समीप प्राप्त हुआ था और इसकी आयु पचास हजार वर्ष मानी जाती है। इसकी खोपड़ी अप्राप्य है।

योरप में प्राप्त अवशेष

अब प्राचीन मनुष्यों की यह खोज हमें दो महाद्वीपों के पार अर्थात् पूर्वी एशिया से पश्चिमी योरप को ले जाती है, क्योंकि उपर्युक्त वर्णित प्रस्तर-विकल्पों के पश्चात् अन्य प्राचीनतम प्रस्तर-विकल्प जर्मनी और फ्रांस में पाए गए हैं।

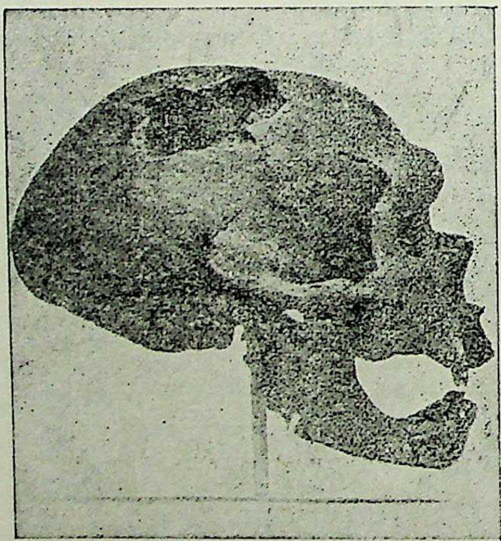

फ्रान्स में प्राप्त पचास हजार वर्ष पूर्व की एक मानवीय खोपड़ी। नासिका एवं भौंह के ऊपर की अस्थि के उभार पर ध्यान दीजिए।

अब तक वर्णित उपमनुष्य, जिनका विस्तृत वर्णन हम ऊपर दे चुके हैं, आपस में थोड़ी-बहुत विभिन्नता रखते हुए भी कई एक साधारण बातों में बिलकुल एक-जैसे ही थे। यह बात बहुत ध्यान देने योग्य है कि इनके बहुत-से गुण बन्दरों से मिलते थे, परन्तु कुछ बातों में वे उन लक्षणों तक पहुँच गए थे, जो वर्तमान मनुष्य के लक्षण कहे जा सकते हैं। जब कुम्हार कोई नई शक्ल का बर्तन बनाने का विचार करता है, तो पहले वह एक नमूना बनाता है। ठीक न बनने पर वह उसे बिगाड़कर और कुछ बदलकर फिर से बनाता है। फिर भी यदि वह ठीक रूप का नहीं बना, तो उसे भी वह बिगाड़ डालता है। इसी प्रकार जब तक उसकी मनचाही शक्ल का बर्तन नहीं बन जाता, वह एक-के-बाद दूसरा बर्तन बनाता और बिगाड़ता रहता है। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी समय प्रकृति भी कुम्हार की तरह वर्तमान मनुष्य को बनाने के लिए ऐसे ही तरह-तरह के प्रयोग कर रही थी। उसने उपमनुष्य की कई जातियाँ एक दूसरे से थोड़ी बहुत भिन्न करके बनाईं। उन्हीं में से एक ने वर्तमान मनुष्य का रूप ले लिया, जो अब तक बना हुआ है। शेष सब जातियाँ लुप्त हो गईं। ऊपर वर्णित नमूनों के बाद आगे चलकर जो प्रस्तर विकल्प मिले हैं, वे सब वर्तमान मनुष्य जाति के ही गिने जाते हैं; यद्यपि सबकी उपजातियाँ भिन्न-भिन्न हैं। इनमें से दो मुख्य उपजातियों का वर्णन संक्षेप में हम यहाँ उपस्थित कर रहे हैं।

पेलियनथ्रापस हाइडैल-बर्जेंसिस

१९०७ ई० में औटो शूटेन्सक ने जर्मनी के हाइडैलबर्ग नामक स्थान से लगभग छः मील की दूरी पर मनुष्य एक का नीचे का पूरा जबड़ा पाया था। लेकिन उसमें एक पत्थर का टुकड़ा ऐसा चिपका हुआ था कि उसे छुड़ाते समय बाईं ओर के कुछ दाँतों के टुकड़े पत्थर के साथ ही निकल गए। यह जबड़ा बहुत भारी है। इसका ऊपरी हिस्सा बहुत चौड़ा है, परन्तु इसमें ठोड़ी गायब है। पीछे की ओर जबड़े के दोनों बाजुओं के बीच का स्थान

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संकीर्ण है, जिसके कारण वह प्राणी अपनी जिह्वा सुविधा-पूर्वक न हिला-डुला सकता होगा। इससे यह अनुमान किया जाता है कि आज के मनुष्य की तरह बोलने में वह कदाचित् समर्थ न रहा होगा। यह जबड़ा आज के मनुष्य के जबड़े से चौड़ा, बड़ा और बिना ठोड़ी का है। फिर भी इसके दाँत केवल रूप में ही नहीं, वरन् डील में भी बिल्कुल

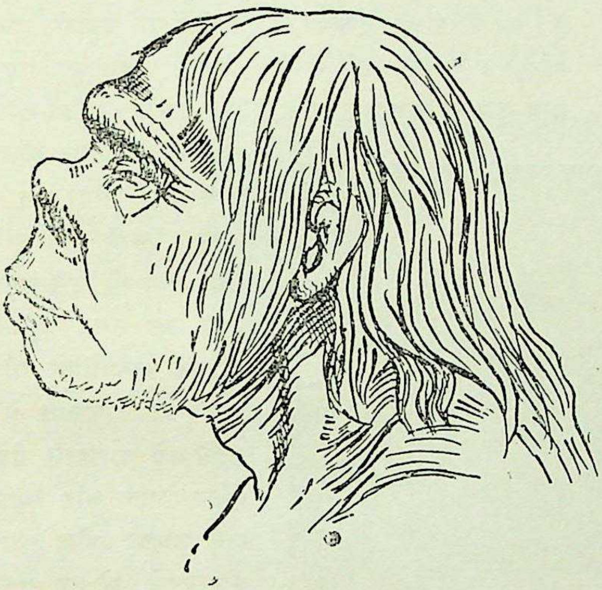

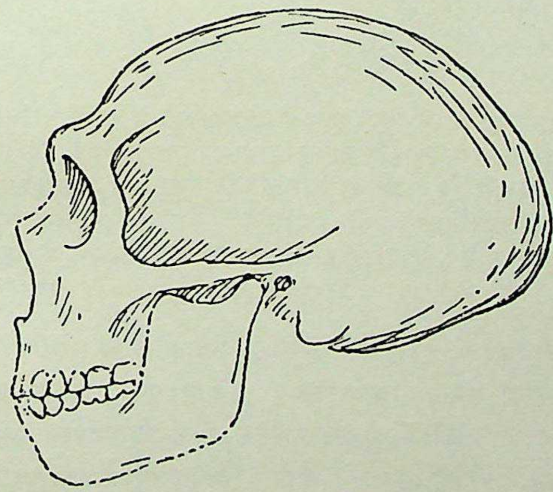

दाहिनी ओर नीएनडरथल मानव की संपूर्ण खोपड़ी का रेखाचित्र है। ऊपर उसी के चेहरे की एक काल्पनिक प्रतिकृति है, जो इसी खोपड़ी के आधार पर रची गई है। नीएनडरथल मानव वास्तविक मनुष्य थे—वे वर्तमान मनुष्य-जाति के अधिक समक्ष थे, इसीलिए उन्हें 'होमो नीएनडरथलैनसिस' कहा जाता है।

वर्तमान मनुष्य-जैसे ही हैं! उसके कीलदन्त आजकल के आस्ट्रेलिया और टस्मानिया प्रदेश के कुछ आदिम निवासियों से भी छोटे हैं। उसकी दाढ़ें भी आजकल के मनुष्य से बड़ी नहीं हैं। अतः यह जबड़ा किसी भी कारण से बन-मानुष का नहीं कहा जा सकता। दाँतों में सादृश्य होने के कारण ही बहुत-से लोग इसे वर्तमान मानव की एक नई जाति मानते हैं और इसे 'पैलियनथ्रापस हाइडैलबर्जेन्सिस' के नाम से पुकारते हैं। लेकिन कुछ लेखक यह राय रखते हैं कि यह जबड़ा साइनैनथ्रापस अथवा चीन में पाए गए मनुष्य और 'होमो' नामक वर्तमान मानव-जाति के मध्य की जाति का नहीं है। इसलिए इन लोगों ने इसे 'होमो हाइडैलबर्जेन्सिस' का नाम दिया है।

यह जबड़ा २० वर्ष की खोज के बाद बालू के एक ढेर में ८२ फीट की गहराई में दबा हुआ पाया गया था। उसी गड्ढे में इसके साथ गेंडे, हाथी, बिसन, मैमथ आदि अन्य जीवों की हड्डियाँ भी पाई गई थीं। इनसे यह कहा जा सकता है कि यह मनुष्य प्लिस्टोसिन काल के प्रारंभिक समय में इस पृथ्वी पर अवश्य मौजूद रहा होगा। इसकी आयु लगभग ४ लाख वर्ष कूती जाती है। इस जबड़े के साथ-साथ बहुत कम गढ़े हुए या बिना गढ़े हुए ऐसे कुछ बड़े-बड़े पत्थर के टुकड़े पाए गए हैं, जिन्हें देखकर यह जान पड़ता है कि उनसे औजार-हथियार का काम लिया जाता होगा। चूँकि ऊपर लिखी हुई अन्य उपजातियों के साथ पाए गए पत्थरों से ये पत्थरों के टुकड़े अधिक बड़े हैं, इसलिए यह कहा जाता है कि जर्मनी में पाए गए इस मनुष्य का शरीर बड़ा तथा हाथ-पैर लम्बे रहे होंगे, जैसा कि उसके बड़े और चौड़े जबड़े से भी विदित होता है। जबड़े के अतिरिक्त इसके शरीर का और कोई अवयव अभी तक नहीं पाया गया है, इसलिए इसकी शक्ल-सूरत के विषय में अभी कुछ अधिक नहीं कहा जा सकता। यह जबड़ा हाइडैलबर्ग के जियोलोजिकल इन्स्टीट्यूट में रक्खा है। पृ० ४६० पर इसका फोटो देखिए।

होमो नीएडरथलैनसिस

सन् १८४८ ई० में एक सैनिक अफसर को जिब्राल्टर के निकट एक बहुत-कुछ सुरक्षित खोपड़ी मिली थी। केवल उसका नीचे का जबड़ा खो गया था। इस खोपड़ी में आँखों के गड्ढे काफी बड़े हैं और नाक के सूराख भी आजकल की मानवीय खोपड़ियों से बहुत चौड़े और अधिक बड़े हैं। भौं की हड्डियाँ मोटी और उसके भीतर की समाई १३०० या १४०० सी० सी० है। यह खोपड़ी कई साल तक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किसी प्राचीन मनुष्य-जाति की समझी जाती रही; किन्तु उसके मिलने के दस वर्ष पीछे जब जर्मनी में नीएनडरथल नामक घाटी में और हड्डियाँ पाई गई, तब पता चला कि जिब्राल्टरवाली खोपड़ी और ये हड्डियाँ एक ही जाति के मनुष्य की हैं, जो मौजूदा जाति के मनुष्यों से अन्य मानवीय प्रस्तर-विकल्पों की अपेक्षा अधिक समानता रखती हैं। इसलिए वे वर्तमान मानव-जाति "होमो" में ही सम्मिलित की जाती हैं और उन्हें 'होमो नीएनडरथलैंनसिस' कहा जाता है। उस समय से अब तक बहुत-सी खोपड़ियाँ और अस्थिपंजर फ्रांस, बैलजियम, स्पेन, जर्मनी, ऑस्ट्रिया आदि देशों में पाई गई हैं। यही नहीं, कुछ वर्ष हुए इसी उपजाति के एक आठ वर्ष के बच्चे की खोपड़ी एशियाई रूस के उजबेकिस्तान प्रान्त में भी पाई गई है! इससे पता चलता है कि यह उपजाति योरप में ही नहीं वरन् एशिया में भी फैली हुई थी। इस आदमी की सबसे पूर्ण अस्थियाँ फ्रांस में पाई गई हैं। उक्त अवशेषों में प्राप्त इस मानव की खोपड़ी पहलेवाली सब खोपड़ियों से बड़ी है, और उसके मस्तिष्क की समाई १६३० सी० सी० है।

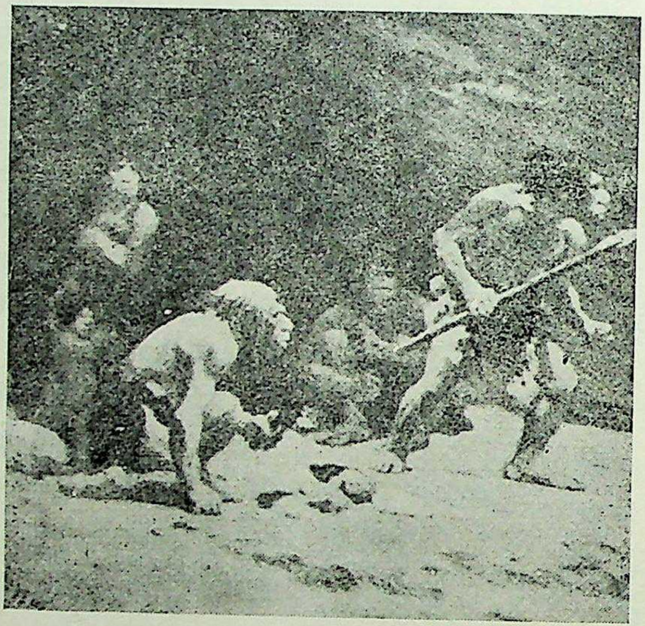

यह है नीएनडरथल मानव के जीवन की एक झाँकी। निस्संदेह यह चित्र कल्पित है, किन्तु विश्वास किया जाता है कि हमारे ये जंगली पूर्वज इसी तरह पर्वतों की गुफाओं के मुहानों पर बसते रहे होंगे तथा अपनी रक्षा एवं शिकार के लिए वैसे ही हथियार काम में लाते रहे होंगे, जैसे कि इनमें से एक के हाथ में दिखाया गया है।

नीएनडरथल मानव के कल्पित चित्र को देखकर आप स्वयं ही समझ सकते हैं कि वर्तमान मनुष्य और उसमें क्या-क्या समानता-असमानताएँ हैं। उसकी खोपड़ी बहुत बड़ी, परन्तु चपटी थी। चेहरा आगे को निकला हुआ था। ठोड़ी पीछे को दबी हुई और भौंहें ऊपर को उभरी थीं। उसकी टाँगें छोटी और मजबूत, हाथ-पैर बड़े, सिर रीढ़ की हड्डी पर एक अनोखे रूप से आगे को लटका हुआ-सा और कमर कुछ-कुछ वानरों-जैसी झुकी हुई थी। उसकी भुजाएँ बहुत लम्बी न थीं, और चलने-फिरने में घुटने आगे को मुड़े रहते थे। सब बातों का विचार करते हुए कहा जा सकता है कि यह जीव नाटा और गठीला था और उसकी ऊँचाई ५ फुट १ इंच से लेकर ५ फुट ४ इंच तक रही होगी। उसमें हमारी बहुत-सी मुख्य-मुख्य विशेषताएँ विद्यमान थीं।

सर आर्थर कीथ का कहना है कि नीएनडरथल मानव की रचना में यद्यपि वनमानुषों के बहुत-से लक्षण मिलते हैं, लेकिन वह उनके कारण न वनमानुषों में गिना जा सकता है, न हमारी जाति से पृथक् ही माना जा सकता है। वह योरप की गुफाओं के मुहानों में या चट्टानों तथा पहाड़ों के लटकते भागों के नीचे निवास करता था। वह आग जलाना जानता था और चकमक पत्थर को काट-छाँटकर काम के योग्य अस्त्र-शस्त्र बना लेता था। उनमें लकड़ी के हत्थे लगा लेना भी उसे आता था। उस समय बहुत-से बड़े-बड़े स्तनपोषित जीव धरती पर विद्यमान थे। उनमें बड़े बालवाले गैंडे, मैमथ, भालू और व्याघ्र जैसे भयंकर जीव हमारे इस पुरखे को हर समय चीर-फाड़कर खा जाने को तैयार थे। किन्तु वह गढ़े-गढ़ाए पत्थरों, पेड़ों से तोड़े हुए डंडों और हड्डी या पत्थर के भालों द्वारा उनसे अपनी रक्षा करता तथा इन्हीं हथियारों से आहार के लिए हिरन, भेड़, बकरी, बिसन, आदि पशुओं को मारकर अपना जीवन-निर्वाह भी करता था। इसमें सन्देह नहीं कि हमारे इन पूर्वजों का जीवन बड़ा कठिन रहा होगा। उस समय योरप की जलवायु अब से कहीं अधिक ठंडी थी और ये लोग केवल गुफाओं और चट्टानों में ही सरदी और वर्षा से रक्षा पाते थे। वे गरम वस्त्र तो क्या, कैसे भी वसन से शरीर ढकना नहीं जानते थे। हाँ, यह सम्भव है कि शिकार में मारे गए जानवरों की खाल ओढ़कर वे अपनी रक्षा करते हों। पर गरमी भर तो वे अवश्य ही बिलकुल नंगे रहते थे। इससे हम यह समझ सकते हैं कि शीतकाल में उनका जीवित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रहना बड़ा कठिन हो जाता होगा। आज के दिन भी कहीं-कहीं ऐसी जंगली नस्लों के लोग पृथ्वी पर बचे हुए हैं, जो करीब-करीब नंगे रहते हैं। ऐसे भी असभ्य मनुष्य पृथ्वी पर अभी कहीं-कहीं मौजूद हैं, जो अपने उन नीएतडरथल पूर्वजों की तरह आज भी पत्थर, हड्डी और लकड़ी के औजारों का प्राचीन रीति से प्रयोग कर अपना जीवननिर्वाह करते हैं। यह भी निश्चय हैं कि नीएनडरथल लोग अपने मुर्दे को जमीन में गाड़ दिया करते थे और गाड़ते समय शव के साथ वे थोड़ी-सी भोजन-सामग्री तथा मृत मनुष्य की कोई प्रिय वस्तु भी रख दिया करते थे। यही कारण है कि इन लोगों के बहुत-से अस्थि-पंजर हमें आसानी से भिन्न—भिन्न देशों में प्राप्त हुए हैं, जिनसे पता लगता है कि यह उपजाति सारे योरप तथा पश्चिमी एशिया के फिलिस्तीन जैसे कुछ भागों में फैली हुई थी। इसी से बहुत कुछ मिलती-जुलती एक उपजाति अफ्रीका में भी फैली थी, जिसकी कि खोपड़ी र्‌होडेशिया में पायी गयी है(दे०पृ०४६५)।

नीएनडरथल जाति लुप्त क्यों हो गई ?

अब सवाल यह उठता है कि नीएनडरथल जाति के ये लोग सारे योरप और निकट के अन्य देशों में फैल चुकने पर भी सब-के-साथ एकाएक लुप्त क्यों हो गये! यह वास्तव में एक रहस्य है, जिसको विद्वान अभी तक ठीक से नहीं सुलझा सके हैं। यह तो निश्चित है कि ये लोग पृथ्वी पर लगभग दो लाख वर्ष तक रहे, और यह भी सिद्ध हो चुका है कि अन्तिम हिमप्रलय के समय ये अवश्य सारे योरप महाद्वीप में फैले हुए थे। इनके अवशेष गुफाओं तथा नीची समतल भूमि में बर्फ से बहाई गई मिट्टी और पत्थरों से दबे हुए मिले हैं। कहा जाता है कि उक्त हिमयुग अब से दो लाख चालीस हजार वर्ष पहले योरप में शुरू हुआ था। इसके पहले कि अपने इन पूर्वजों का अधिक हाल हम आपको बताएँ, आइए पहले आपको यह बता दें कि हिमप्रलय का अर्थ क्या है। इस संबंध में यह याद

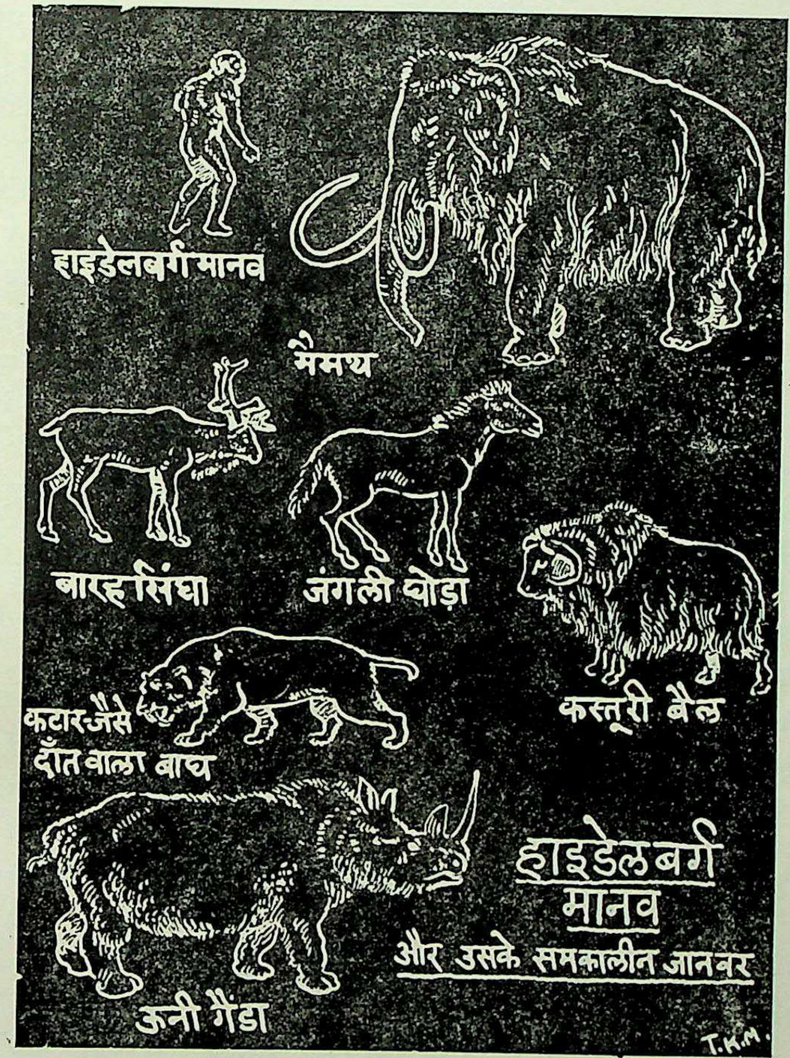

इस चित्र में अवशेषों के आधार पर रचित हाइडैलबर्ग मानव तथा उसके समकालीन जंतुओं का आकार-प्रकार दिखाया गया है। हाइडैलबर्ग मानव का केवल जबड़ा ही पाया गया था। इससे विदित होता है कि उसका शरीर बड़ा तथा हाथ-पैर लंबे रहे होंगे। बहुत संभव है कि यह ऐसा ही दिखता रहा हो, जैसा ऊपर के चित्र में सबसे ऊपर की पंक्ति में बाईं ओर के कोने में दिखाया गया है। इस मानव के जबड़े के साथ-साथ जिन अन्य समकालीन जानवरों की अस्थियाँ मिली हैं, उनके आकार और रूप की बहुत-कुछ निश्चित कल्पना की जा सकती है। ऊपर के चित्र में हाथी का पुरखा मैमथ, कटार जैसे दाँत-वाला बाघ, ऊनी बालवाला गैंडा, जंगली घोड़ा तथा कस्तूरी बैल आदि प्रदर्शित हैं, जिनके अवशेष प्राप्त हुए हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रखना जरूरी है कि योरप और उत्तरी तथा मध्य एशिया का जलवायु जैसा आजकल है, वैसा सदैव नहीं रहा है। कहते हैं, उत्तरी अमेरिका तथा ध्रुव-प्रदेशों में आजकल जैसी सरदी पड़ती है, उससे भी अधिक ठंडक इन देशों में कई बार हो चुकी है। ऐसे शीतकाल योरप और उत्तरी एशिया में जब आये थे, तब वहाँ की धरती पर एक व्यापक बर्फ की चादर छा गई थी, और जाड़े के मारे समुद्रों तक का जल जम गया था। इस अत्यन्त ठंडी दशा में लाखों वर्ष तक रहने के बाद ये प्रदेश फिर धीरे-धीरे अपनी असली अवस्था में आये। जब बर्फ गलकर बह गई, तब शीत दूर हो जाने पर जलवायु फिर पूर्ववत् गरम हो गया। ऐसी महान् ठंडक के प्रसार को ही हिमप्रलय कहा गया है। यह जरूरी नहीं कि जब ये हिमप्रलय के युग पृथ्वी के मुख्य भागों पर आये हों, तब वहाँ एकदम प्रलय ही हो गया हो। भूगर्भवेत्ता कहते हैं कि हिमप्रलय जब आने लगता है, तब वह धीरे-धीरे फैलता है, और लाखों वर्ष तक उसका सिलसिला लगा रहता

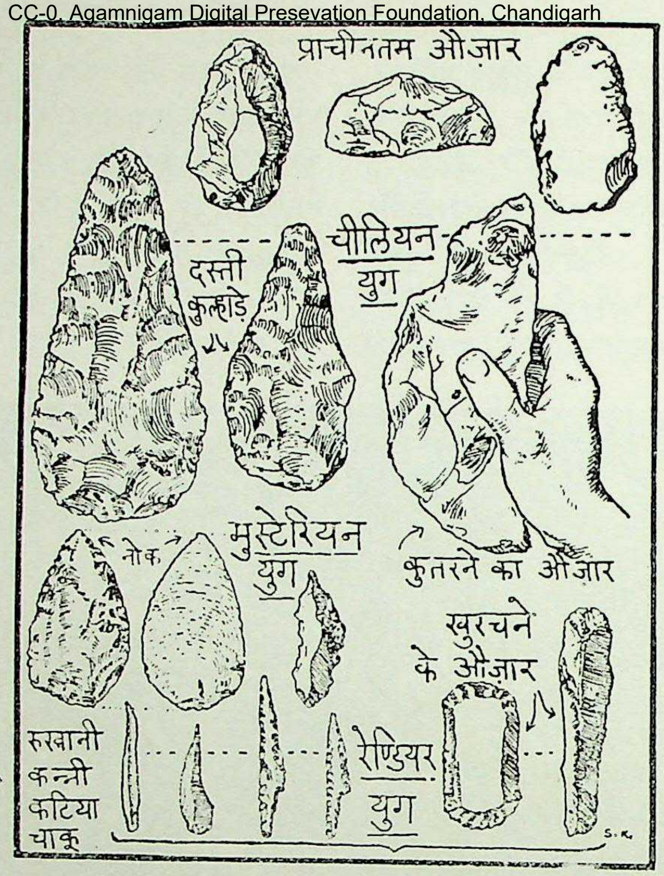

इस चित्र में आदिम मनुष्य के अब तक मिले सबसे प्राचीन पत्थर के औजारों और हथियारों के कुछ नमूने दिग्दर्शित हैं। चीलियन और मुस्टेरियन युग के औजार नीएनडरथल मनुष्यों के और रेण्डियर युग के औजार कोमैगनन अर्थात् असली मनुष्य के हैं। सबसे ऊपर की पंक्ति में एक ही औजार के तीन भिन्न-भिन्न पहलू के चित्र हैं। यह या तो नीएनडरथलों का रहा होगा या उनसे भी पूर्व के उपमानवों का।

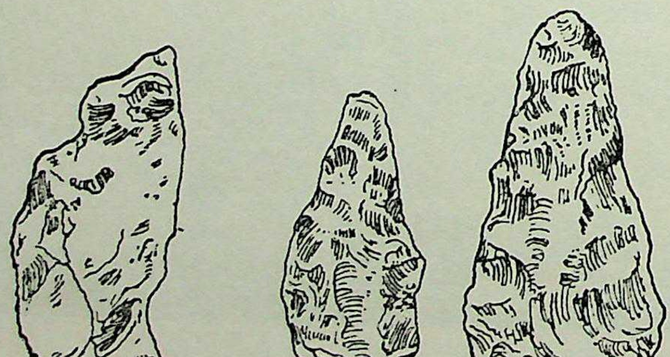

हाइडेलबर्ग मानव के जबड़े के साथ प्राप्त हुए पत्थर के ये औजार हाथ से पकड़ने के लिए गढ़े गये थे। इससे यह ज्ञात होता है कि इस युग का मानव काफी उन्नत ढंग के औजार-हथियार बनाने लगा था।

है। कहते हैं, जैसे धीरे-धीरे उसका प्रवेश होता है, वैसे ही धीरे-धीरे उसकी समाप्ति भी होती है। यहाँ यही लिखना पर्याप्त होगा कि उपमनुष्य के आविर्भाव के युग से अब तक इस तरह के कम-से-कम तीन हिमप्रलय योरप में आ चुके हैं।

कहते हैं, जब योरप में अन्तिम हिमप्रलय का जोर बढ़ रहा था, तब बर्फीले प्रदेशों में रहने वाले बारहसिंघे जैसे जीव भी अधिक ठंड न सह सकने के कारण योरप के कम ठंडे दक्षिणी प्रदेश (जैसे स्पेन आदि) में चले आये थे। उन्हीं की तरह नीएनडरथल मनुष्य भी कड़ी सरदी और बर्फ से भूमि ढक जाने के कारण निपीड़ित हुए होंगे। उनमें से कई तो मर गये होंगे और जो कुछ बचे होंगे, वे योरप के दक्षिणी देशों में ही रहे होंगे। जब योरप में हिमप्रलय का प्रभाव कम होने लगा, और फिर गरमी का संचार हुआ, तो एशिया से मनुष्य की एक और उपजाति आकर सारे योरप में फैलने लगी। इस नई उपजाति ने बचे-खुचे नीएनडरथल मनुष्यों को या तो मार डाला या अपने में मिला लिया; क्योंकि हालैण्ड,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आयरलैण्ड आदि देशों के निवासियों में अब भी उनके जैसे कुछ लक्षण मिलते हैं। इस एशियावाली नई उपजाति के लोग योरप के पुराने बाशिन्दे नीएनडरथल लोगों से डील-डौल में लम्बे, हृष्ट-पुष्ट तथा बुद्धिमान थे। इन्हें हम वर्तमान मनुष्य-जाति में ही गिनते हैं और 'होमो सेपियेन्स' के नाम से पुकारते हैं। पर ये होमो सेपियेन्स वर्ग की वर्तमान नस्लों और वंशों से भिन्न थे, अतः आम तौर से हम इनको 'क्रोमैगनन मानव' के नाम से पुकारते हैं।

होमो र्होडेशियेन्सिस

सन् १९२१ में दक्षिणी अफ्रीका में र्होडेशिया की एक गुफा में एक मनुष्य की खोपड़ी मिली थी, जिसमें नीचे का जबड़ा नहीं था। इस खोपड़ी में भौं की हड्डी वर्तमान मनुष्य की अपेक्षा अधिक उभरी हुई, चेहरा बड़ा, तथा माथा नीचे की ओर दबा हुआ था। फ्रांस में पाये गये नीएनडरथल मनुष्य की खोपड़ी से इस खोपड़ी में बड़ा छेद (जिसके पास खोपड़ी गर्दन से मिलती है) अधिक आगे को बढ़ा हुआ था, जिससे मैकर्डी ने यह परिणाम निकाला है कि र्होडेशिया का मनुष्य नीएनडरथल मनुष्य से ज्यादा सीधा खड़ा हो सकता होगा। किन्तु ब्रूम का मत है कि खोपड़ी के अगले भाग के आकार से यही नतीजा निकलता है कि अफ्रीकावाला यह आदमी भी बहुत-कुछ कमर झुकाकर ही चलता रहा होगा। इसके दाँत करीब-करीब वर्तमान मानव-जाति जैसे ही थे। इसकी खोपड़ी की समाई लगभग १२८० सी० सी० है (जो लाक्षणिक नीएनडरथल मनुष्य की खोपड़ी से बहुत कम है)। यह करीब-करीब जिब्राल्टरवाली खोपड़ी के ही बराबर है इसके अतिरिक्त कई और भी बातें हैं, जिनके कारण ब्रूम के मत में यह र्होडेशियन जाति असली मनुष्य से नीचे स्तर की है, तथा जिब्राल्टरवाले मानव से अधिक मिलती-जुलती है। उधर स्मिथ और पाइक्राफ्ट की राय है कि र्होडेशिया का आदमी वर्तमान मनुष्य और नीएनडरथल मनुष्य के बीच का है। चाहे र्होडेशियन आदमी होमो जाति का ही सदस्य माना जाय या उससे भिन्न जाति (सीफेनथ्रोपस) में सम्मिलित किया जाय, यह कहना उचित होगा कि उसमें नीएनडरथल मनुष्य के कई लक्षण मिलने पर भी उनके विशेष लक्षण बिल्कुल नहीं पाये जाते। उसके ऊपरी जबड़े और दोनों जबड़ों के मिलने के स्थान की सतह से विदित होता है कि उसका जबड़ा हाइडेलबर्गवाले जबड़े से भी अधिक भारी रहा होगा और वनमानुष जैसी उसकी उठी हुई भौंहों से कहा जा सकता है कि यह जीव करीब-करीब मनुष्य का-सा रहा होगा। हाँ, वास्तविक मनुष्य के बच्चे तो उसे देखकर जरूर ही डर जाते होंगे। यह संभव है कि वास्तविक मानव-काल तक ये प्राणी जीवित रहे हों और दक्षिणी अफ्रीका में वे कुछ समय तक असली मनुष्य के साथी भी रहे हों।

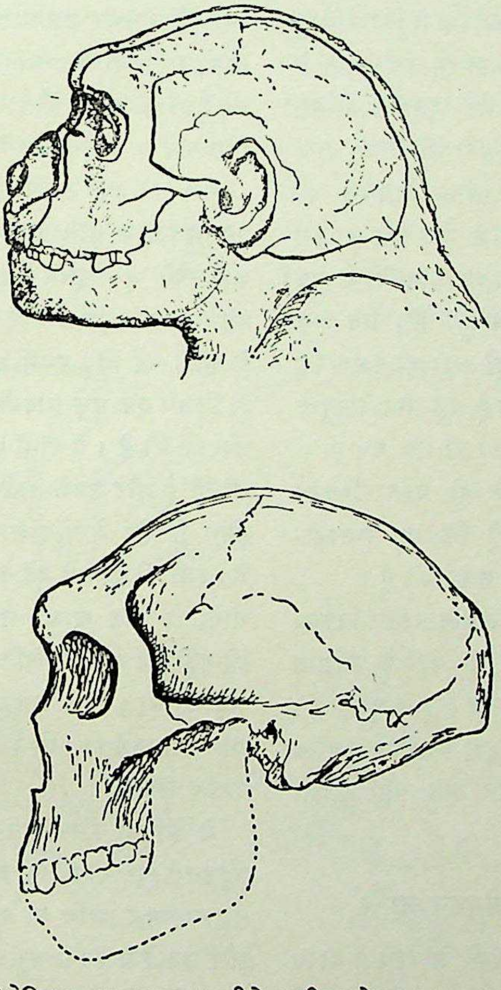

रहोडेशिया का मानव। नीचे अफ्रीका से प्राप्त इस आदि-मानव की खोपड़ी दिखाई गई है और ऊपर उसी के आधार पर निर्मित उसका चेहरा प्रदर्शित है।

होमो सोलोएन्सिस

सन् १९३१ में हालैंड के एक भूगर्भवेत्ता ने जावा में उस स्थान से ६ मील हटकर, जहाँ ४० वर्ष पहले पिथेकेन्थ्रापस इरेक्टस की खोपड़ी पायी गयी थी, सोलो नदी के किनारे मनुष्य की एक नयी उपजाति की खोपड़ी पायी है। यह खोपड़ी वैसे तो सब तरह से उत्तम है, परन्तु उसमें चेहरे की हड्डियाँ और जबड़े नहीं हैं। भौं की हड्डियाँ बहुत बड़ी हैं, माथा बैठा हुआ है और उसके मस्तिष्क की समाई जावा या पेकिंग के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनुष्यों की ही तरह है। परन्तु उन दोनों से उसका परिमाण अधिक होने के कारण वह ऊँचे दर्जे की समझी जाती है। सर आर्थर कीथ का विचार है कि यह खोपड़ी होमो जाति की सबसे प्राचीन उपजाति की है और वह इसे नीएनडरथल एवं र्‌होडेशियावाली उपजाति से भी नीचा स्थान देते हैं। उनका कहना है कि पुरानी दुनिया के इस भाग में मनुष्य का विकास इस क्रम से हुआ—(१) पिथैकेन्थ्रापस, (२) साइनैनथ्रापस, (३) होमो सोलोएन्सिस, (४) आस्ट्रेलिया के जीवित आदिम मनुष्य। किन्तु ब्रूम उसको होमो जाति से भिन्न 'जावनथ्रापस' जाति में रखते हैं और वह इसे साइनैनथ्रापस और र्‌होडेशियेन्सिस के बीच का समझते हैं। हमारी समझ में लोकी की राय, जो उन्होंने "आदम के पूर्वज" नामक पुस्तक में प्रकट की हैं, अधिक उचित जान पड़ती है कि जब तक कि इस खोपड़ी और उसके साथ के पाये गये अन्य जानवरों के शेष भागों का ठीक-ठीक पूरा हाल न मालूम हो, तब तक निश्चित रूप से इसके विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि उसका ठीक-ठीक स्थान क्या है। सम्भव है, यह खोपड़ी मनुष्य की जीवित उपजाति होमो सेपियन्स का ही एक रूप हो।

इस खोपड़ी के साथ अन्य पशुओं के जो प्रस्तर-विकल्प पाये गये, हैं, उनसे यह जान पड़ता है कि यह प्लिस्टोसिन काल के मध्य या ऊपरी तहों के समय की है।

दक्षिणी अफ्रीका में एक और बहुत प्राचीन प्रस्तर-विकल्प बौसकौप नामक नस्ल के मिले हैं, जो वहाँ के वर्तमान मनुष्य की नस्ल—बुशमैन—से बिलकुल मिलते-जुलते हैं। इसी प्रकार ग्रिमाल्डी आदि और भी कुछ नस्लों के अवशेष अन्य देशों में पाये गये हैं, जिनका वर्णन हम यहाँ करना आवश्यक नहीं समझते।

होमो सेपियेन्स वर्ग की क्रोमैगनन जाति

नीएनडरथल मनुष्य के प्रस्तर-विकल्पों के पश्चात् योरप में जो खोपड़ियाँ और हड्डियाँ गुफाओं और धरती की तहों में दबी पायी गयी हैं, वे उससे अधिक लम्बी, समझदार और हर प्रकार से मनुष्यों की श्रेणी में मानने योग्य एक उपजाति की हैं! यह निश्चय है कि ये लोग वर्तमान मनुष्य की ही उपजाति के थे। इनके बहुत-से पूर्ण कंकाल योरप के कई देशों में मिले हैं, जिनसे उनके रहन-सहन का पूरा पता चलता है। पहले हम आपको थोड़ा-सा हाल इनमें की कुछ मुख्य हड्डियों का बतलाएँगे, तब उनके विषय के भिन्न-भिन्न मतों पर दृष्टिपात करेंगे।

वेल्स में पैवीलैण्ड की गुफा से १८२३ ई० में एक मानव-ठठरी खोदी गई थी, जो गेरू में रँगी हुई थी। ये हड्डियाँ उस समय तो प्राचीन मनुष्य की नहीं समझी गईं, जैसा कि नीएनडरथल की जिब्राल्टर में पाई हुई खोपड़ी का भी हाल हुआ। किन्तु जब ४५ वर्ष पीछे फ्रांस और इटली में भी इसी प्रकार की और हड्डियाँ मिलीं और वे क्रोमैगनन जाति की समझी गईं, तब यह ठठरी भी उसी नस्ल की मानी गई। जब यह ठठरी वेल्स में पायी गयी थी, तब उसे स्त्री की मानकर उस प्राणी को 'पैवीलैंड की लाल स्त्री' का नाम धर दिया गया था। बाद को निश्चय किया गया कि वह पुरुष की ठठरी थी। अब यह ठठरी आक्सफोर्ड-विश्वविद्यालय के अजायबघर में रक्खी हुई है।

सन् १८६७ से लेकर १९२४ तक फ्रांस में कई स्थानों पर चट्टानों के नीचे बहुत-सी खोपड़ियाँ और हड्डियाँ खोदी जा चुकी हैं। इनमें से मुख्य वे हैं, जो १८६८ ई० में डौरडौग्ने नगर के एक गाँव में क्रोमैगनन नामक चट्टानी आश्रय से खोदी गई थीं। इनमें ५ प्राणियों के अस्थिपंजरों के भाग हैं, जिनमें एक बूढ़े आदमी की खोपड़ी तथा एक औरत की खोपड़ी भी है। ये दोनों खोपड़ियाँ होमो सेपियन्स उपजाति की-सी हैं और उनके साथवाली जाँघ की हड्डियों से सूचित होता है कि ये लोग आजकल के फ्राँसीसियों से लम्बे होते थे। स्त्री की खोपड़ी को देखने से पता चलता है कि वह माथे पर चोट खाकर मरी थी और बूढ़े आदमी की जाँघ की हड्डी टूट गई थी, लेकिन वह उसकी मृत्यु से पहले पुनः जुड़ गई थी। उसके जबड़े और दाँतों को देखकर यह भी कहा जाता है कि उसे दाँतों से मवाद निकलने का पायरिया नामक रोग था।

ये हड्डियाँ उत्तर पाषाण-काल की हैं तथा उनके साथ बहुत-सी हाथ की बनायी हुयी वस्तुएँ भी पायी गयी हैं। ये चीजें नीएनडरथल जाति की बनायी हुई वस्तुओं से अधिक सुन्दर और उपयोगी हैं। ये महत्वपूर्ण अवशेष पेरिस के अजायबघर में सुरक्षित हैं।

इटली में भी तीन-चार गुफाओं से क्रोमैगनन जाति के मनुष्यों की कई हड्डियाँ मिली हैं। इनमें स्त्री, पुरुष और बालक सभी की हड्डियाँ हैं। कैवीलन गुफा में मिली हुई ठठरी एक लम्बे कद के युवक की है। गाड़ते समय उसके साथियों ने उसे रंगबिरंगी सीपी और घोंघों की माला से सजाकर दफन किया था तथा उसके साथ हड्डी का एक लम्बा नाकीला औजार एवं चकमक पत्थर के अन्य कई हथियार भी रक्खे थे। हमारे पड़ोसी ब्रह्म देश की एक गुफा में भी कई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अस्थियाँ खोदकर निकाली गई हैं। इसमें एक जगह तीन लाशें एक साथ दफन की गई थीं, जो एक युवक, एक युवती तथा पन्द्रह वर्ष के एक लड़के की हैं। ये तीनों एक ही गड्ढे में वेल्सवाली ठठरी की भाँति गेरू से रँगी हुई मिली थीं और गेरू से ही वे ढकी हुई भी थीं। इनके साथ भी पत्थर के शस्त्र तथा नाना प्रकार के आभूषण एवं एक आकर्षक कंठा मिला है। इसी प्रकार की और भी बहुत-सी ठठरियाँ जर्मनी तथा पूर्वी योरप के देशों में खोजी गई हैं।

इन सबसे यह ज्ञात होता है कि क्रोमैगनन मनुष्य नीएनडरथलों से अधिक लम्बे थे, क्योंकि उनकी टाँगों की हड्डियाँ नीएनडरथलों की अपेक्षा अधिक लम्बी हैं। उनकी ठोड़ी और माथा भी उनसे अधिक सुस्पष्ट हैं। ये लोग एक तो अपने कद या ऊँचाई के कारण और दूसरे कला-कौशल की योग्यता के कारण भी अपूर्व थे। एक वृद्ध पुरुष की ठठरी की लम्बाई ६ फीट ४ इंच से भी कुछ अधिक है तथा एक स्त्री का पंजर ५ फीट ५ इंच है। इससे निश्चय होता है कि उनकी औरतें भी आजकल के औसत मनुष्य से लम्बी होती थीं। उनके सिर भी बहुत बड़े थे। वे चुस्ती से बिल्कुल सीधे खड़े होते थे। उनके कंधे तनिक भी नहीं झुकते थे और न उनके भावों से सुस्ती ही झलकती थी। उनके शानदार डील-डौल से लम्बे पंजाबी, अफगान या मध्य एशिया के कुछ निवासियों का ध्यान आ जाता है।

उनकी दूसरी विशेषता उनकी अद्भुत कलाप्रवीणता थी। जिन गुफाओं में वे रहते थे, उनकी दीवालों और छतों पर अपनी चित्रकारी के अनुपम उदाहरण उन्होंने छोड़े हैं। फ्रांस की एक प्रसिद्ध गुफा फौन्त-द-गौमे तो मानो उस समय के पशुओं की चित्रशाला-सी है। उसकी नीची-ऊँची दीवालों पर मैमथ, बारहसिंघे, बिसन, घोड़े आदि के बहुत-से रंग-बिरंगे चित्र खिंचे हुए हैं, जिनमें एक झबरे गेंडे की अद्भुत तस्वीर भी है। स्पेन और फ्रांस में और भी बहुत-सी गुफाएँ तथा चट्टानी आश्रय हैं, जिनमें इन लोगों द्वारा बनायी गयी तस्वीरें और मूर्तियाँ मौजूद हैं। इन्हें देखकर हम अचम्भे में

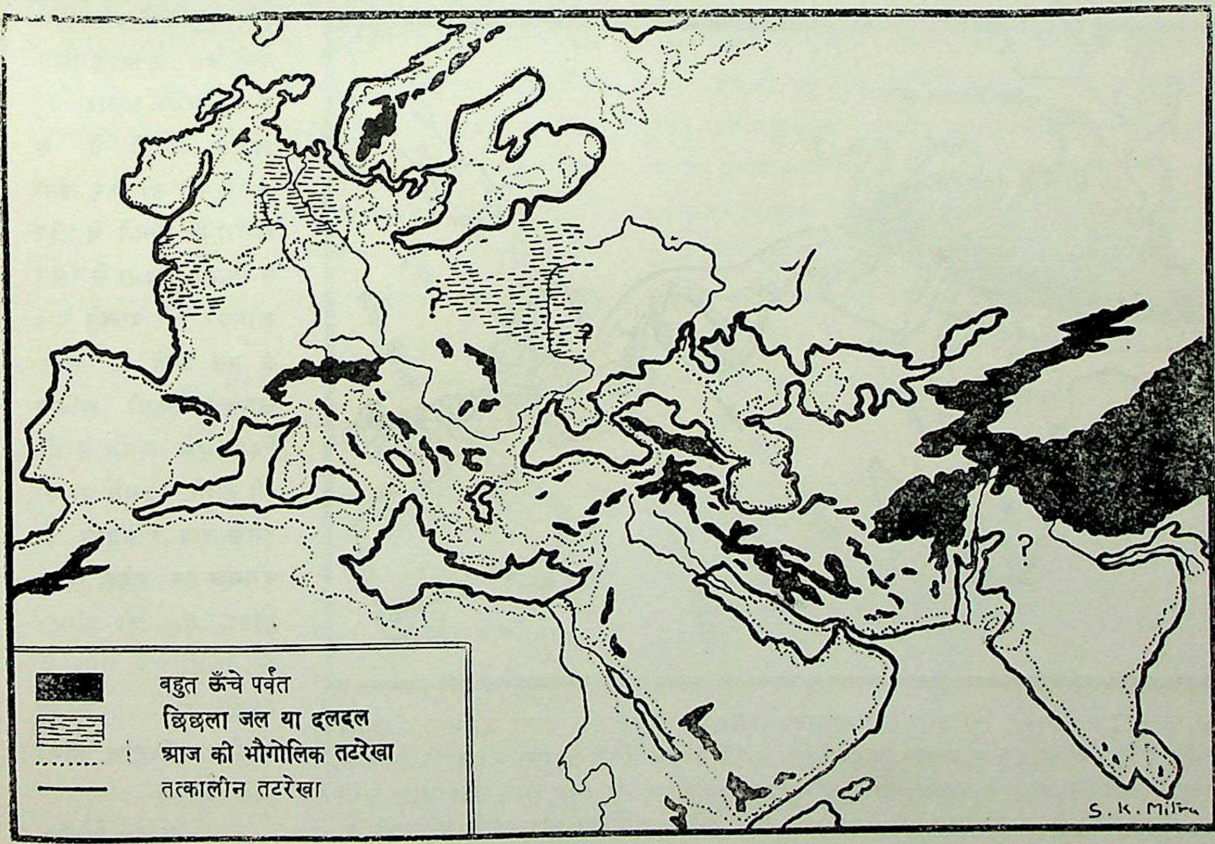

इस मानचित्र में उत्तर पाषाण-युग में ३५ हजार से २८ हजार वर्ष पूर्व योरप, पश्चिमी एशिया और उत्तरी अफ्रीका की कल्पित रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। यह उन दिनों की दुनिया का मानचित्र है, जब अन्तिम हिमयुग समाप्त हो रहा था। इसी समय योरप में क्रोमैगनन जाति के मानव विचरते रहे होंगे। जहाँ '?' चिह्न लगा है, वहाँ संभवतः स्थल के स्थान में जल रहा होगा, ऐसी धारणा की जाती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रह जाते हैं कि ये प्राचीन लोग ऐसे सुन्दर और शुद्ध चित्र बनाना कैसे सीख गये थे ! ये चित्र मिस्रवासियों के पुराने-से-पुराने चित्रों से भी कहीं अधिक यथार्थ हैं। क्रोमैगनन कला के सर्वोत्तम उदाहरण स्पेन की अल्टामीरा नामक गुफा में सुरक्षित हैं। वहाँ बिसन के झुंडों के कई रंग-बिरंगे चित्र बने हैं। लाल, काले, पीले, भूरे और सफेद रंग के ये चित्र देखने में अत्यन्त आकर्षक और स्वाभाविक प्रतीत होते हैं। उनमें जंगली सुअर, घोड़े और हिरन भी चित्रित हैं। सब मिलाकर देखने में ये अद्भुत चमत्कार-से जान पड़ते हैं। ये अब से कोई पन्द्रह हजार वर्ष से भी पहले के बने हुए हैं, परन्तु अब भी ये बिल्कुल हाल के ही बने हुए नये से जान पड़ते हैं। क्रोमैगनन मूर्तिकार भी थे और भाँति-भाँति की बहुत-सी छोटी-छोटी वस्तुएँ गढ़ते थे। इनमें से बहुतों के चिह्न इन लोगों के निवास-स्थानों में पाये गये हैं। इन मूर्तियों में से कुछ भद्दी मूर्तियाँ स्त्रियों की हैं, परन्तु अधिकतर उस समय के पशुओं की ही हैं। उनमें से कुछ इतनी अच्छी बनी हुई हैं कि उनसे कुशल कलाकारी टपकती है। कुछ मूर्तियाँ हड्डी की, कुछ हाथीदाँत की, कुछ पत्थर की और कुछ मिट्टी की भी हैं। मानव-जाति के ये सर्वप्रथम कलाकार सचमुच बड़े गुणी थे। आश्चर्य है कि इतने सुनसान, कठोर और प्रतिकूल समय में रहते हुए भी, जबकि अनेकों भयंकर पशुओं ने उन्हें घेर रक्खा था, कैसे ये लोग अपना ध्यान मामूली साधनों से इतनी सुन्दर और सुहावनी वस्तुएँ बनाने में लगा सकते थे ! इससे उनकी बुद्धि और पौरुष ही का नहीं, बल्कि उनकी कल्पनाशक्ति और आत्म-निर्भरता का भी पता लगता है।

ये लोग हड्डी के टुकड़ों को घिसकर सुइयाँ बनाना भी जानते थे, जिनसे मारे गये पशुओं की खालों को जोड़कर अपने आपको सर्दी से बचाने के लिए शरीर को ढकने के हेतु वे वस्त्र तैयार कर लेते थे। इनके हथियार नीएनडरथल मनुष्यों के भारी-भरकम हथियारों के सामने छोटे और व्यर्थ से जान पड़ते हैं; किन्तु हड्डी और हाथीदाँत के इन सुकुमार शस्त्रों से ही अपनी तीक्ष्ण बुद्धि द्वारा वे बहुत-से काम निकाल लेते थे। जहाँ तक पता चलता है, ये प्राचीन कलाकार प्रकृति के वास्तविक प्रेमी थे। वे अपने लिए न तो किसी प्रकार की झोपड़ी बनाते थे, न धरती को जोतकर खेती करना ही जानते थे और न अपनी सुविधा के लिए जानवर ही पालते थे। ये सब बातें तो आगे चलकर किसी अधिक क्रियात्मक जाति ने ही की होंगी, जिसने या तो इनके बाद इतिहास के रंगमंच पर प्रवेश किया होगा, या जो संसार के किसी ऐसे भाग में रहती होगी, जिसका प्राचीन इतिहास अभी अंधेरे में है।

पता नहीं कैसे ये लोग भी अपने पूर्वजों की तरह पृथ्वी से लुप्त हो गये ! उनमें हमें कम-से-

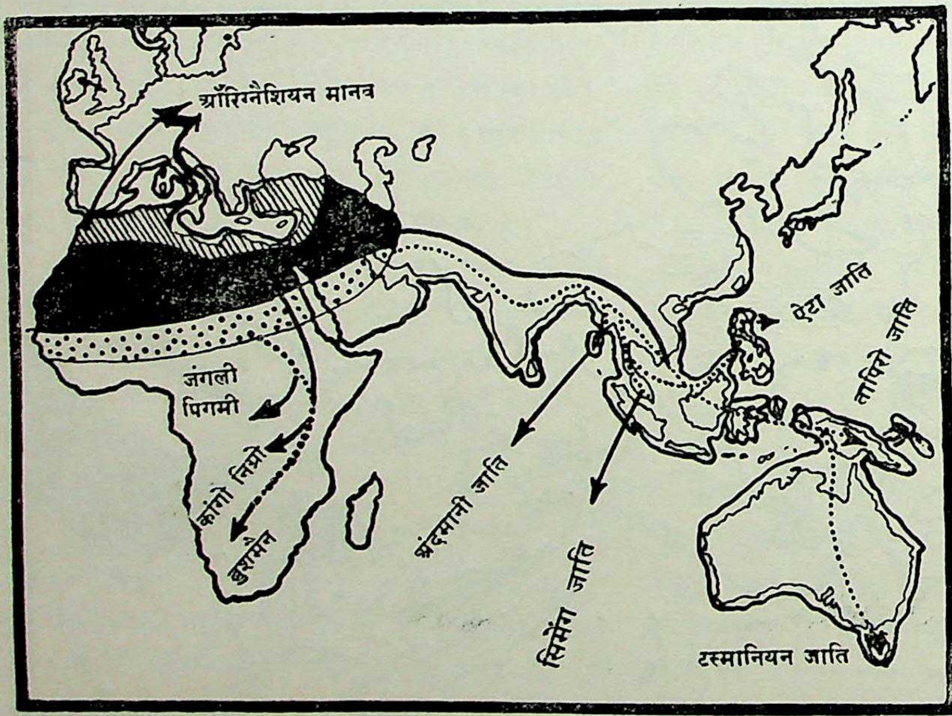

इस मानचित्र में काले रंग तथा समानान्तर रेखाओं व बिन्दुओं द्वारा जो भाग निर्देशित किये गये हैं, वहीं से असली मनुष्य क्रमशः अन्य भागों में फैले, ऐसी धारणा की जाती है। समानान्तर रेखावाले भाग के मनुष्यों के चेहरे कुछ-कुछ गौर वर्ग के, सिर लम्बे और बाल लहरदार घुँघराले थे। काले भाग के लोगों का वर्ण उनसे कम गोरा और बाल घुँघराले थे। बिन्दुवाले भाग के लोगों के सिर छोटे और बेडौल थे। नकशे की मोटी रेखा तत्कालीन स्थलभाग को सूचित करती है। हिमयुग की समाप्ति पर मनुष्य के आदिम पुरखे अफ्रीका के गरम चरागाहों से चारों ओर फैलने लगे। उनकी शाखाओं के मार्ग और आज की जातियों में बचे हुए उनके वंशजों के नाम नकशे में सूचित किये गये हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कम इस बात की झलक तो अवश्य मिलती है कि मनुष्य किस प्रकार एक आत्मनिर्भर जीव बना--कैसे उसकी श्रेष्ठ बुद्धि ने उसे सारे जीव-जगत् पर अधिकार प्राप्त करने के योग्य बनाया; साथ ही क्योंकर उसमें साहस और जिज्ञासा की वृत्ति उत्पन्न हुई।

अपने प्राचीन पूर्वजों की इस कहानी को हम वर्तमान मनुष्य की सबसे पहली उपजाति तक पहुँचा चुके हैं। इसके बाद उत्तरी पाषाण-काल का आरम्भ होता है। इस काल में मनुष्य गुफाएँ छोड़कर बाहर खुले में रहने लगा था तथा अपनी सुविधा के लिए कुत्ते पालने लगा था। उसके हथियारों में भी पहले से बहुत अधिक उन्नति हो गई थी। भाले, धनुष, बाण, कुल्हाड़ी आदि कई एक शस्त्र अब उसे शिकार में सहायता देते थे।

अभी मानव-जाति शैशवावस्था ही में है

पृथ्वी की अब तक की आयु तथा जीवों के इतिहास पर विचार करते हुए यह कहा जा सकता है कि मानव-जाति की अभी शैशवावस्था ही है। वैज्ञानिकों ने हिसाब लगाया है कि पृथ्वी को बने कम-से-कम १६ करोड़ वर्ष तथा अधिक से-अधिक ३०-४० करोड़ वर्ष बीत चुके हैं। पृथ्वी पर जीवन का विकास हुए इसका केवल चतुर्थांश समय व्यतीत हुआ है। उसमें भी पृष्ठवंशी जीवों का पता पृथ्वी के इतिहास के पाँचवें या छठे भाग से लगता है। उधर प्राचीन से प्रचीन उपमनुष्य को (जो मनुष्य कहा जा सकता है, वनमानुष नहीं) पृथ्वी के रंगमंच पर आये १ करोड़ वर्ष से अधिक समय नहीं हुआ। मनुष्य की वर्तमान उपजाति को उत्पन्न हुए तो अभी १० लाख वर्ष भी नहीं हुए। यदि पृथ्वी की आयु का औसत २३ करोड़ वर्ष मान लिया जाय, तो मनुष्य की आयु उसका केवल २३०० वाँ भाग है। इससे स्पष्ट है कि मनुष्य पृथ्वी पर अभी केवल उग ही रहा है अथवा वह इस समय केवल अपनी बाल्यावस्था में ही है। यदि उसने बचपन में ही (इतने थोड़े ही समय में) इतनी उन्नति कर ली है कि वह पृथ्वी के जीवों में सर्वश्रेष्ठ और सर्वोत्तम हो गया है; तो फिर भला कौन कह सकता है कि आगे चलकर मानवजाति क्या-क्या उन्नति करेगी और बदलकर क्या से क्या हो जायगी? वैज्ञानिकों का विचार है कि पृथ्वी को अभी इतनी अधिक ठंडी होने में कि उस पर जीवन असम्भव हो जाय, युग-के-युग बीत जायँगे। यह विश्वास किया जाता है कि जितने वर्ष जीवन के प्रारम्भ से अब तक बीते हैं, कम-से-कम उतने ही समय तक अभी और उस पर प्राणी बने रह सकेंगे।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि क्या मनुष्य का विकास अचानक ही हो गया, या प्रकृति की इस कारीगरी के पीछे कोई और समझदार शक्ति भी है? पृथ्वी के रंगमंच पर एक के बाद दूसरे नाना प्रकार के जीवों का लगातार प्रकट होना किसी प्राकृतिक शक्ति के कारण ही प्रतीत होता है, जिसके कारण मछली जैसे नीचे श्रेणी के जीवों से अंत में बुद्ध और गांधी जैसे महापुरुष बन गये। इस संबंध में ब्रूम जैसे विद्वान् का वह कथन स्मरणीय है कि जीवनधारा का आरम्भ, जो वर्तमान परिणाम से बिल्कुल विभिन्न था तथा जिसका विकास इतने धीरे-धीरे और एक के बाद दूसरी सीढ़ी पर चढ़कर हुआ है, अवश्य ही कोई विशेष अर्थ रखता है तथा किसी अज्ञात शक्ति द्वारा ही हुआ है। इस विद्वान् के अनुसार तो यह पहले से ही निश्चित था कि सोच-विचार करनेवाला मनुष्य ही पृथ्वी के अब तक के समस्त विकासों का मुख्य लक्ष्य बने।

क्रोमैगनन जाति के मनुष्यों की एक प्रधान विशेषता उनकी असाधारण कला-प्रवीणता थी, जिसके अनेक तेजस्वी स्मारक उन्होंने अल्टामीरा आदि कन्दराओं के भित्तिचित्रों के रूप में छोड़े हैं। हमारे उन प्रतिभाशाली पुरखों ने कदाचित् इसी तरह मशाल या दीपक के प्रकाश में अँधेरी गुफाओं की दीवारों पर ये अद्भुत चित्र बनाए होंगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनुष्य की लम्बी यात्रा का आरंभ :: पाषाण-युग में मानव

मनुष्य का इतिहास उसकी युगयात्रा का इतिहास है। आज जब हम युगों और महाकल्पों को लाँघकर चली आ रही अपने इतिहास की टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडी को पीछे मुड़कर देखते हैं, तो कुछ ही हजार या लाख साल पीछे तक नजर दौड़ा पाते हैं, उसके बाद वह पगडंडी निरन्तर क्षीण होते-होते प्रागैतिहासिक युग के धुँधलेपन में लीन हो जाती है। किंतु इससे क्या ? हमारी यात्रा का आरंभ तो निस्सन्देह आज से लाखों वर्ष पहले हुआ होगा। आदिकाल से जिस पगडंडी पर हम चलते चले आ रहे हैं, उसके किनारे-किनारे के हमारे युग-युग के पड़ावों के जो थोड़े-बहुत ध्वंसावशेष आज के दिन मुड़कर देखने पर हमें मिलते हैं, वे हमें विगत युगों की कैसी अनूठी कहानी सुनाते हैं ! आइये, अब हम उसी कहानी को क्रमशः दोहराएँ।

द्यपि वैज्ञानिकों ने तरह-तरह की खोजें कीं और अटकल लगाए, किन्तु अभी तक कोई दावे के साथ यह नहीं सिद्ध कर सका कि अब तक पृथ्वी की कितनी आयु बीत चुकी है। अधिकांश वैज्ञानिकों का मत है कि पृथ्वी को प्रकट हुए तीस-चालीस करोड़ से पन्द्रह करोड़ वर्ष बीत चुके। पृथ्वी पर जीव का प्रस्फुरण लगभग तीन करोड़ वर्ष हुए, सबसे पहले उथले जल अथवा दलदलों में हुआ था। उस समय जीवधारी का स्वरूप चिपचिपे जलकीट की तरह था। इन्हीं से आगे चलकर मेढक आदि निकले। बहुत समय बीतने पर जीव को रेंगनेवाले और सरककर चलनेवाले जन्तुओं का शरीर मिला। इस समय तक वनस्पतियों की भी उत्पत्ति हो चुकी थी, जिनसे आगे चलकर घने जंगल हो गये। इन्हीं जंगलों में पतिंगों और उड़नेवाले कीटों का जन्म हुआ। इसके बाद पशुओं की उत्पत्ति हुई। पशुओं के लाखों भेद थे। उन्हीं में से वानर भी थे। वानर की अनेक जातियाँ हैं। कतिपय वानरों—जैसे शिम्पेंजी, गोरिल्ला आदि—की शरीर-रचना मनुष्य की शरीर-रचना से इतनी मिलती-जुलती है कि कुछ लोगों की राय में उन्हीं के मूल वंशवृक्ष से मनुष्य का विकास हुआ। इस संबंध में जो खोजें अब तक हुई हैं तथा उनके आधार पर जो मान्यतायें विद्वानों ने प्रस्तुत की हैं, उनका विवरण विगत प्रकरणों में आप पढ़ चुके हैं।

मानवसम प्राणियों के प्राचीन अवशेषों का अब तक जो पता लगा है, उससे अनुमान किया जाता है कि शायद मनुष्य की उत्पत्ति अब से लगभग दस लाख वर्ष पहले हुई। जावा में मनुष्य की-सी खोपड़ी को लोग दस लाख वर्ष की पुरानी मानते हैं। चीन में प्राप्त खोपड़ी की आयु चार लाख पचहत्तर हजार वर्ष की आँकी गई है। जर्मनी की सबसे पुरानी खोपड़ी तीन लाख वर्ष की है। फ्रांस और स्पेन आदि में जो खोपड़ियां मिली हैं, वे एक लाख पचीस हजार वर्ष से लेकर दस हजार वर्ष तक पुरानी मानी जाती हैं।

भूगर्भवेत्ताओं के अनुसार पृथ्वी का पिछला जीवन कई युगों में विभक्त किया जाता है। इनमें एक युग ऐसा है, जिसका आरम्भ पृथ्वी पर घोर शीत पड़ने से होता है। इस बर्फ के युग अथवा हिमयुग के उन्होंने कई भाग किये हैं, जिनमें सबसे पहला अब से पाँच लाख वर्ष के पहले माना जाता है; और सबसे आखिरी (चौथे) का आरम्भ अब से पचास या पचीस हजार वर्ष पहले हुआ था। आजकल वही युग चल रहा है। इस गणना के अनुसार मनुष्य हिमयुग के आरम्भ से ही चला आ रहा है। अधिकतर विद्वानों का मत है कि मनुष्य सबसे पहले एशिया में ही पैदा हुआ। किन्तु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मतभेद इस बात में है कि वह एशिया के किस भाग में उत्पन्न हुआ। इस संबंध में इस ग्रंथ में अन्यत्र विशेष प्रकाश डाला गया है। यहाँ यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि पृथ्वी के धरातल का जो नकशा आजकल है, वह हमेशा से ऐसा ही नहीं रहा। उसमें अनेक फेरफार हो चुके हैं। उदाहरण के लिए एक समय ऐसा भी था जबकि जावा, सुमात्रा और मलय अन्तरीप एक साथ मिले हुए थे। इसी तरह एशिया, अफ्रीका और योरप भी आपस में मिले हुए थे। अब से तीस हजार वर्ष पहले ब्रिटेन भी योरप से मिला हुआ था। स्पेन और इटली अफ्रीका से जुड़े हुए थे। बल्कान अन्तरीप एशिया से मिला हुआ था। उस समय लंका भारतवर्ष से जुड़ा हुआ था। सिन्धु प्रदेश और बंगाल का कहीं पता भी न था। काला समुद्र और कैस्पियन सागर एक थे तथा तुर्किस्तान के ऊपर का हिस्सा जल में निमग्न था। सारांश यह है कि उस समय पृथ्वी पर आने-जाने के रास्ते आजकल के रास्तों से भिन्न थे। इन्हीं कारणों से मनुष्य और पशु आदि बिना जलयान की सहायता के ही एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप में पहुँच जाते थे।

मनुष्य की प्रगति

मनुष्यों के अनेक समूह हो गये हैं। उनमें से कुछ उपजातियों का लोप हो गया है, कुछ अभी तक बहुत पिछड़ी पड़ी हैं तथा कुछ ने अच्छी उन्नति और सभ्यता प्राप्त कर ली है। वस्तुतः मनुष्य अन्य पशुओं से इस बात में कहीं अधिक भाग्यशाली है कि वह उन्नतिशील है और उसकी उन्नति किसी-न-किसी अंश में बराबर होती चली आ रही है और हो रही है। मनुष्य अन्य पशुओं से कई बातों में भिन्नता रखता है। पहली बात तो यह है कि वह सीधा खड़ा होकर दो पैरों से चलता है। दूसरी यह कि उसके हाथ और अँगूठे की रचना दूसरे ही ढंग की है। तीसरी यह कि वह अपने और दूसरों के अनुभवों से लाभ उठा सकता है। चौथी यह कि वह स्मरण, मनन और चिन्तन से अपनी कृतियों को सुधार सकता तथा अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए अनेक उपाय और साधन निकालकर अपनी उन्नति और सुधार कर सकता है। पाँचवी यह कि वह अपने विचारों और भावों को वाणी और संकेतों के द्वारा प्रकट करने की शक्ति रखता है। इन्हीं सब गुणों के कारण वह निरन्तर उन्नति करता जा रहा है। इन शक्तियों का विकास एक साथ ही अथवा पूर्ण रूप से नहीं हुआ है। इनका विकास होने में वस्तुतः बहुत-सा समय लगा है और शायद अभी भी मनुष्य की गुप्त अथवा प्रकट शक्तियों का पूरा-पूरा विकास नहीं हो पाया है।

मनुष्य को प्रकृति ने जो शक्तियाँ दी हैं, वे उसकी उन्नति में सहायक हैं, किन्तु अपनी निजी शक्तियों के अलावा अन्य जीव-जन्तुओं की तरह उसे भी बाहरी प्रकृति से सहायता लेनी पड़ती तथा विरोध भी मिलता है। पशु-पक्षी तो प्रकृति के अनन्य अनुचर बने हुए हैं, किन्तु मनुष्य प्रकृति पर दिनोंदिन अपना अधिकार जमाता चला आ रहा है। वह प्रकृति का दास नहीं, बल्कि प्रकृति को ही अपनी अनुचरी बनाने की कोशिश करता चला आ रहा है। अपने इतिहास के आरम्भिक काल में वह प्रकृति के वश में अधिक था, इसलिए उसकी उन्नति बहुत धीरे-धीरे हुई। किन्तु जैसे-जैसे उसके साधन बढ़ते

अन्य पशुओं का साथ छोड़कर आदि मानव जब प्रागैतिहासिक जंगलों से बाहर निकला होगा, उसी समय से उसके इतिहास का भी सूत्रपात हुआ होगा। निस्संदेह इस प्रक्रिया में हजारों या लाखों वर्ष लग गये होंगे। परंतु अनुमान किया जाता है कि लगभग पचास हजार वर्ष पूर्व वह पत्थरों के औजारों से काम लेने लग गया था। प्रस्तुत चित्र में उस आदियुग के एक लघु मानव-परिवार की कल्पना की गई है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

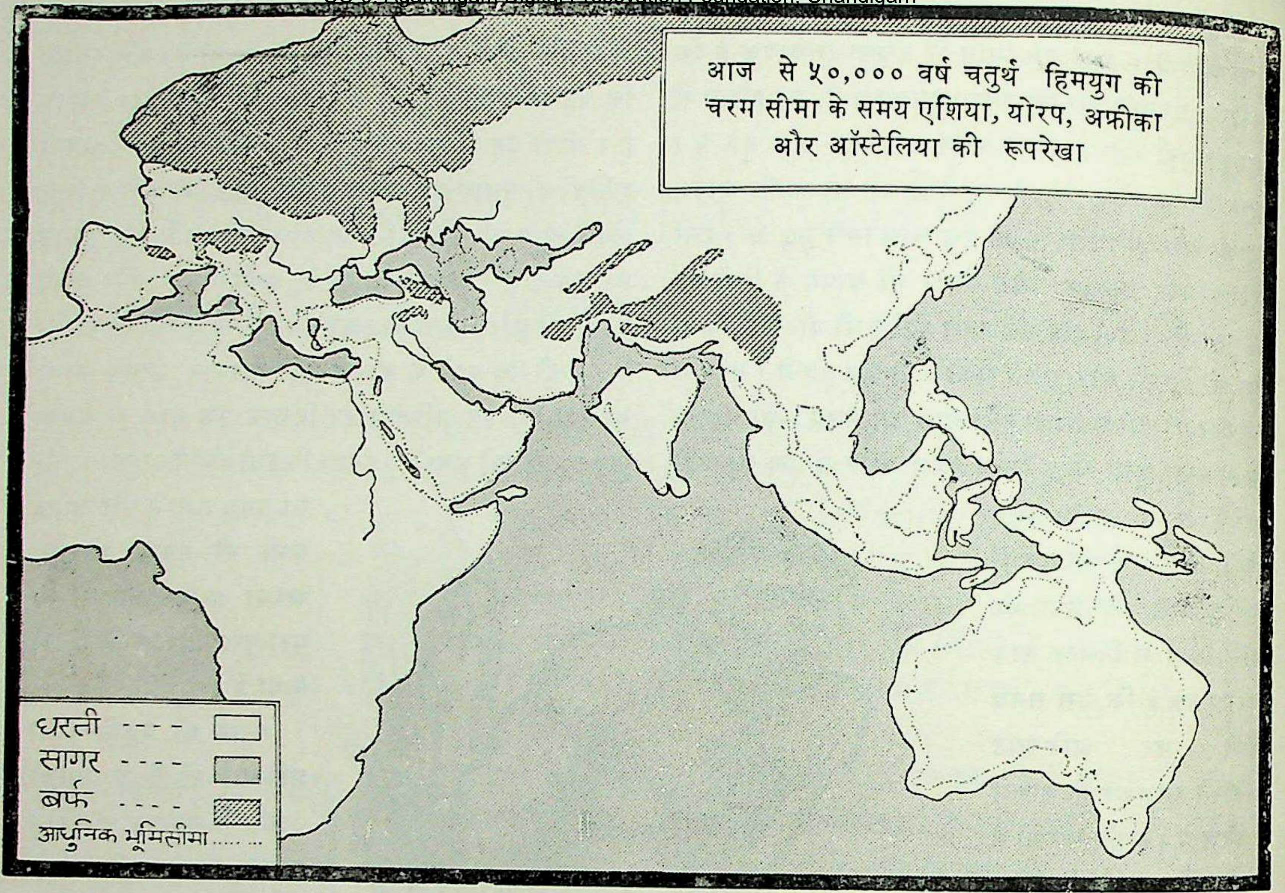

५० हजार वर्ष पूर्व, जब कि पृथ्वी पर नीएनडरथल जाति के मानव विचरते थे, पूर्वी गोलार्द्ध के जल और स्थल भाग का संभवतः ऐसा ही रूप रहा होगा, जैसा इस नक्शे में दिखाया गया है। इस युग में भारत का दक्षिणी भाग उत्तरी भाग से बिल्कुल अलग कटा हुआ था और गंगा-सिन्धु के मैदान में महासागर लहराता था।

गए, वैसे ही तेजी से उसकी उन्नति होने लगी और प्रकृति के ऊपर उसका प्रभुत्व भी बढ़ता चला गया।

आदि मानव का जीवन

अब से कुछ लाख वर्ष पहले मनुष्य का जीवन पशु का-सा था। अपने हाथों के सिवा उसके पास रक्षा करने का कोई साधन न था। तब उसको शरीर ढाँकना तक नहीं आता था। झोपड़ी बनाना भी वह नहीं जानता था। उसके पास गाय, भैंस, बकरी, भेड़, कुत्ता आदि भी नहीं थे। उसने अनाज का स्वप्न तक नहीं देखा था, और बर्त्तन आदि भी उसके खयाल के बाहर थे। कन्द-मूल, जंगली फल, पत्तियाँ अथवा मरे जानवरों या जल-जन्तुओं का मांस ही उसका आहार था। तब भाग्यवश उसे आग पैदा करना मालूम हो गया। लकड़ियों को जोर के साथ रगड़कर वह आग पैदा कर लेता था। उन दिनों आग जलाकर उसके चारों ओर बैठकर लोग तापा करते थे। धीरे-धीरे उसने लकड़ी के नुकीले और चपटे हथियार बनाना, मांस को भूनना और खाल अथवा पत्तियों से तन को ढकना सीख लिया। किन्तु इस थोड़े-से ज्ञान को प्राप्त करने में भी उसे हजारों वर्ष लग गये। मनुष्य की उस समय की दशा बड़ी दयनीय रही होगी, किन्तु उस समय में भी आग पैदा करके और हथियार की रचना करके उसने सभ्यता की जड़ जमा दी। ज्यों-ज्यों उसे आवश्यकताओं का अनुभव होने लगा, उसकी उन्नति का रास्ता भी त्यों-त्यों अधिकाधिक खुलने लगा। कहा जाता है कि लाखों वर्ष तक मनुष्य इसी दशा में टक्कर खाता रहा होगा! इस समय भी टस्मानिया जैसे प्रदेश में मनुष्यों के कुछ जंगली जन-समूह ऐसे पाये जाते हैं, जो आज भी पाषाण-युग की-सी आदिम दशा में रहते हैं।

पाषाण-युग में मनुष्य

करीब सवा लाख वर्ष हुए जब मनुष्य ने ऊपर वर्णित दशा से कुछ उन्नति करना आरम्भ कर दिया था, उसी समय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से 'पाषाण-युग' का आरम्भ होता है। इसे 'पत्थर का युग' इसलिए कहते हैं कि उस समय लोग पत्थर के औजारों और हथियारों से काम लेते थे। आज से लगभग सवा लाख वर्ष पहले आरम्भ हुआ यह युग अब से करीब छः हजार वर्ष पूर्व तक चलता रहा। इस पत्थर के युग के दो भाग माने जाते हैं, एक पूर्वकाल और दूसरा उत्तरकाल। इस युग के पूर्व भाग में आदमी पत्थर के ऐसे औजार बनाने लगे, जिन्हें मुट्ठी में पकड़कर वे काम में ला सकते थे। क्रमशः वे नुकीले और चपटे औजार भी बनाने लगे। उस समय के बने हुए हथौड़े, घन, खरोंचने की चीजें, तीर, बरछी के फल और चाकू वगैरह अमेरिका, योरप, अफ्रीका और एशिया के देशों में अब तक पाये जाते हैं। इसी तरह एक लाख वर्ष बीत गये। फिर उन्होंने हड्डी की चीजें, जैसे पिन, घन, पालिश करने के औजार, वगैरह बनाना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे उन्हें बरमा, आरी, बरछी, भाले आदि बनाना और उनमें हत्थे लगाना भी आ गया। इनके अलावा वे सींग और हड्डी के सूजे-सूजियाँ भी बनाने लगे। अब से करीब सोलह हजार वर्ष पूर्व की बनी हुई हाथीदाँत और सींग की खासी अच्छी चीजें मिलती हैं।

पत्थर-युग के इस पूर्वकाल में लोग लकड़ी, पत्थर, हड्डी या सींग से हथौड़े, घन, रन्दे, बरमे, रुखानी, कन्नी, खुरपी, बसूले, कुल्हाड़ी, फरसे, छोटे-बड़े चाकू, बरछे, खंजर, कटिया, पिन, दिये, आदि अनेक वस्तुएँ बना लेते थे। किन्तु सब से अचरज की बात तो यह थी कि वे उन गुफाओं में, जहाँ वे रहने लगे थे, दीवारों पर भाँति-भाँति के चित्र भी बनाते थे! स्पेन के अल्टामीरा नामक स्थान में अब से सोलह हजार वर्ष पहले के गुफाओं में बने हुए ऐसे अनेक सुंदर रंगीन चित्र मिलते हैं, जिन्हें

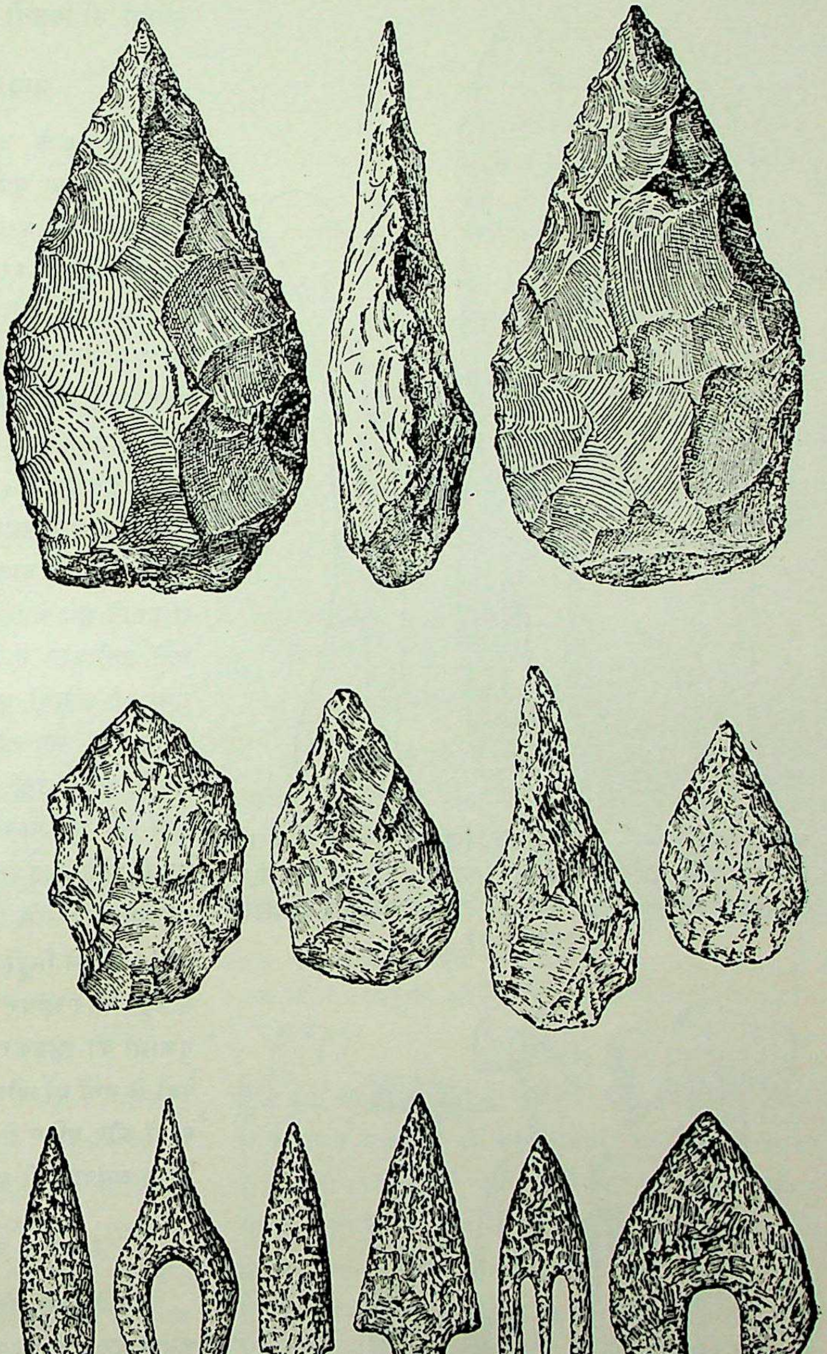

ये हैं पाषाण-युग के पत्थर के औजार-हथियारों के कुछ नमूने। (पहली पंक्ति में) मुट्ठी में पकड़ने योग्य पत्थर के औजार, जो रगड़कर बनाये गये थे। ये इटली में पाये गये हैं। (दूसरी पंक्ति में) ऊपर ही की तरह के अन्य औजार। ये उत्तरी अमेरिका में पाये गये हैं। (तीसरी पंक्ति में) पत्थरों के बने भाले या तीर के फल।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देखकर यह मानना पड़ता है कि पत्थर के युग में भी मनुष्य में कला-कौशल के प्रति स्वाभाविक अनुराग प्रकट हो चुका था। ये चित्र प्रायः बारहसिंघे, हाथी-घोड़े, भैंसा, रीछ

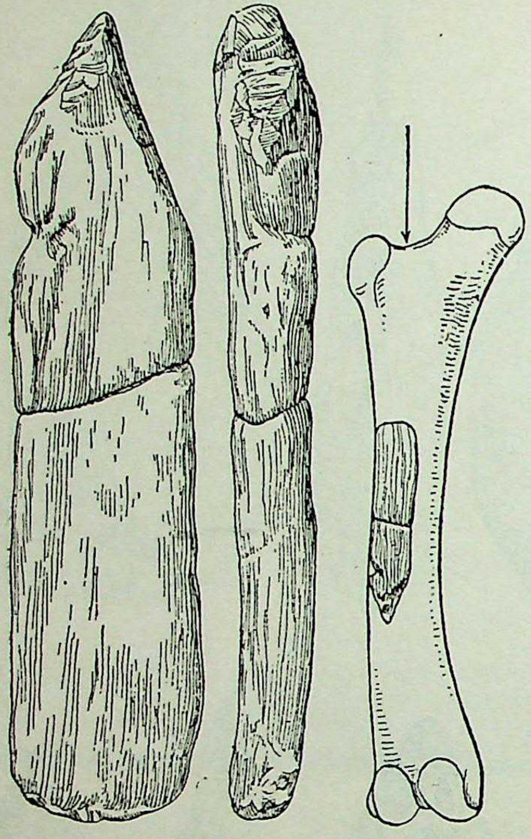

पाषाणकाल के अन्य कुछ औजार, जिनके भौंडेपन को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि पत्थर और हड्डी से बने ये औजार कदाचित् पिछले पृष्ठ पर चित्रित हथियार-औजारों से भी पूर्ववर्त्ती रहे होंगे।

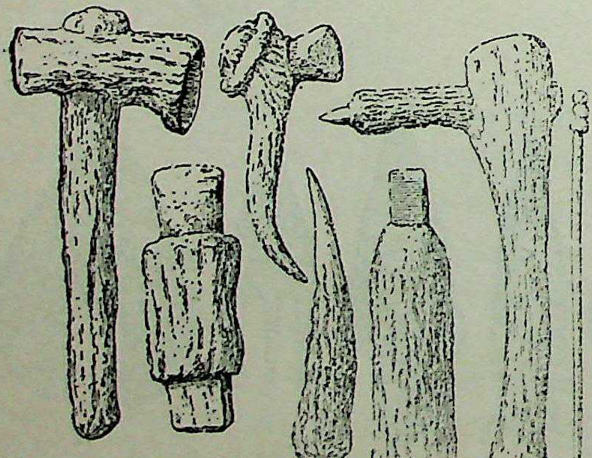

ये हैं पत्थर-युग के उत्तरकाल के कुछ औजार, जिसमें हड्डी, सींग आदि से बने कुल्हाड़ी, वसूला, रुखानी आदि सब कुछ हैं।

और सुअर आदि के हैं। कहीं-कहीं मोटी स्त्रियों के भी अनेक चित्र मिलते हैं। चित्रों के अलावा कहीं-कहीं हाथी, जंगली घोड़े और बारहसिंघे आदि की पत्थर की बनी मूर्तियाँ भी मिलती हैं।

पाषाण-युग का उत्तर काल

पत्थर-युग के उत्तरकाल में, जिसका आरम्भ अब से यदि दस हजार वर्ष नहीं तो सात हजार वर्ष पहले अवश्य माना जाता है, कुछ मार्के के परिवर्तन हो गये। इस समय पत्थरों को रगड़कर औजार बनाये जाने लगे, क्योंकि उन पर पालिश मिलती है। लोगों को पशुओं के पालने एवं उनसे लाभ उठाने का भी ज्ञान होने लगा। गाय, बैल, बकरी, भेड़, घोड़े, कुत्ते और सुअर पाले जाने लगे। पहले लोग केवल शिकार करके माँस जुटाते और खाते थे, किन्तु अब पले हुए जानवरों को वे इस काम में लाने लगे। वे उनका दूध पीते और माँस खाते तथा उनसे खेती वगैरह के भी काम लेते थे। वे जौ, गेहूँ और बाजरा की खेती करते थे। मिट्टी के बर्तन भी वे बनाने लगे थे। मिट्टी की ईटें भी बनने लगी थीं। यही नहीं, इसी काल में लोगों को बुनने का कौशल भी मालूम हो गया। वे पत्तियों, घासों और बाँसों से बुनकर डलिया, झोआ आदि तथा सन को पैदा करके उसको बटकर रस्सियां बनाने लगे। उन्हें गोलाकार गड़ेरियों के बनाने और उनसे काम लेने का ज्ञान भी होने लगा। कदाचित् इसी युग में उन्होंने पहिए का महत्वपूर्ण आविष्कार कर डाला, जिसकी सहायता से बोझ उठाकर ले जाने में उन्हें सुविधा होने लगी। उनको मिट्टी की दीवारें, घास-फूस, झाऊ, बाँस आदि से टट्टर और छप्पर आदि बनाना भी आ गया। इसलिए वे गुफाओं को छोड़कर अब झोपड़ों में रहने लगे। उनको पेड़ों के तनों को खोखला करके नावें बनाना भी आ गया। नावों और पहिए के ठेलों आदि की बदौलत अब वे परस्पर थोड़ा व्यापार भी करने लगे।

सभ्यता की ओर मनुष्य का प्रयाण

रहने के लिए झोपड़ी, खेती, पशुपालन आदि बातों का प्रभाव यह हुआ कि कुछ मनुष्य-समूह खानाबदोशी का जीवन त्यागकर स्थान विशेष के निवासी बन गये और किसानी करने लगे। इस नए प्रकार के रहन-सहन से सभ्यता की शक्ल ही बदल गई और आगे बढ़ने का रास्ता और भी साफ हो गया। लोगों को सम्पत्ति का ज्ञान और उससे लाभ उठाने की तरकीब भी मालूम हो गई, जिसका आगे चलकर व्यापार और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

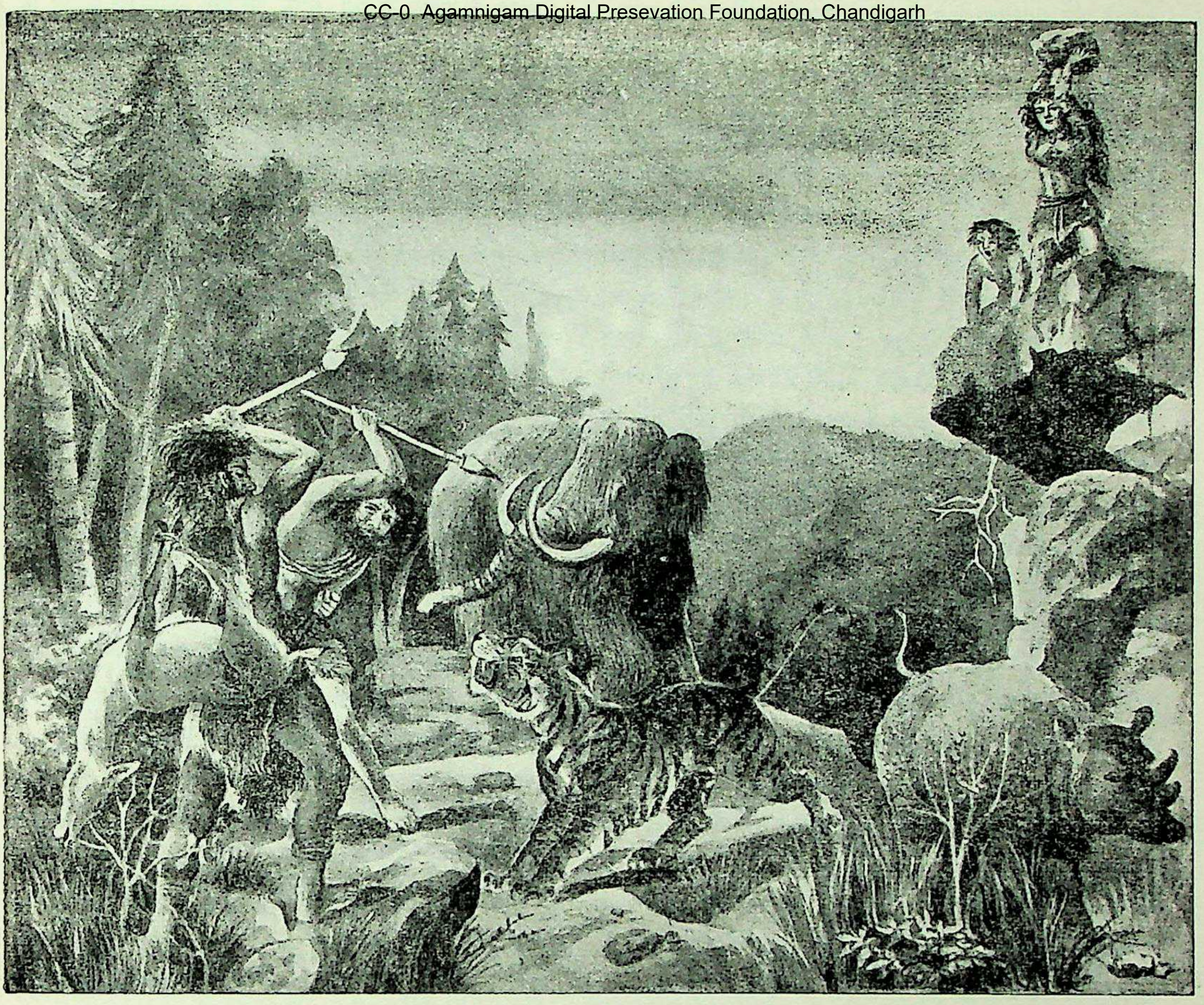

अपनी खाद्यपूर्त्ति करने तथा मैमथ नामक गजराज, कटारदन्ती व्याघ्र और ऊनी गैंडे जैसे भयावह शत्रुओं से अपनी रक्षा के हेतु मनुष्य को आरंभ ही से शिकारी का बाना पहनना पड़ा। उन दिनों क्या पुरुष और क्या स्त्री-बालक सभी मिलकर शिकार में भाग लेते थे।

समाज की रचना पर बहुत गहरा असर पड़ा। समाज में पेशों की श्रेणियाँ बनने लगी। गाँवों और बस्तियों का भी आरम्भ हो गया। बस्तियों के चारों ओर रक्षा के लिए वे लोग या तो मिट्टी की दीवारें अथवा लकड़ी के कुन्दों की बाढ़ बना लेते थे। पत्थर-युग के इस उत्तरकाल में मनुष्य के आचार-विचार, रहन-सहन, भाषा और कलाओं को ठीक-ठीक जानने के काफी साधन हमें नहीं मिलते। इस कमी को पूरा करने के लिए वैज्ञानिकों ने जंगली जातियों के वर्तमान जीवन की छानबीन करके कुछ बातें निकाली हैं। वे कहते हैं कि कुछ आधुनिक जंगली जातियाँ अभी तक पत्थर के युग में हैं, अतएव सम्भव है कि उनके आचार-विचार भी उसी स्तर के हों। हो सकता है; किन्तु इस ढंग की खोज कुछ कच्ची ही माननी पड़गी। अनुमान किया जाता है कि पत्थर के युग में भी मनुष्य भाषा का व्यवहार करते थे और उनको नाचने और गाने का भी शौक था। उनकी भाषा में लिङ्गभेद पर जोर दिया जाने लगा था। उनका शब्द-भाण्डार भी अच्छा खासा बन चुका था। गाने-बजाने का प्रभाव उन पर गहरा पड़ता था, जिससे कि वे अत्यन्त उत्तेजित अथवा बीमार तक हो जाते थे। यद्यपि उनके गाने-बजाने में मधुरता न थी, किन्तु उनके कोलाहल में ताल था। उनके बाजे ढोल, पिपिहरी या तुरही अथवा तन्तुवाले यंत्र थे। नाचने में भी उन पर ऐसी मस्ती छा जाती थी कि वे बेसुध हो जाते और थक जाते थे। वे साधारण कामों को भी यदि देर तक करना चाहते थे, तो गाने-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बजाने की सहायता लेते थे। इन जंगली जातियों को साज-सिंगार का भी शौक था। वे अपने बदन पर रंग लगा लेते थे और आभूषण पहनते थे। उनके विचार और विश्वास तथा कहानियाँ बच्चों और मूर्खों-जैसी होती थीं। पेड़, पत्थर पशुओं आदि में वे मनुष्य के-से व्यक्तित्व और जीवन की धारणा रखते थे। उनमें वे विचित्र शक्ति मानते थे। तावीज, जादू, झाड़फूँक, टोटकों और टोनों में वे बड़ा विश्वास रखते थे। उनमें इन बातों के जाननेवाले सयाने आदि होते थे, जो रोगों की दवा जड़ी, पत्ती, हड्डी, खाल, पत्थर आदि से करते थे। गा-बजाकर, मार-पीटकर, गाली देकर वे रोग दूर करने का दावा रखते थे। वे जादू में शत्रुओं या आदमियों में रोग ही नहीं बल्कि मृत्यु फैला देने की भी ताकत मानते थे। जल बरसने, ऋतु बदलने, मनुष्य या खेती में पैदावार बढ़ाने देवता बुलाने और भविष्य में होनेवाली बातों को जानने के लिए अनेक प्रकार के विधान वे रचते थे। भूत-प्रेत, मृत आत्माओं, देवी-देवताओं को तो वे बहुत मानते ही थे, किन्तु साथ ही उनको एक परम पिता अथवा महादेव का भी ज्ञान होने लगा था। उनमें अनेक दन्तकथाएँ और अलौकिक गाथाएँ भी प्रचलित थीं। उनमें विवाह-प्रथा भी थी और प्रायः एक पति या पत्नी का नियम-सा था। विवाह के कुछ नियम भी प्रचलित थे। जो सब समूहों में एक-से न थे यद्यपि स्त्रियाँ पुरुषों से घटिया समझी जाती थीं और वे बराबरी का दावा नहीं कर सकती थीं, तथापि उन्हें काम करने की बहुत आजादी थी। कुछ लोगों में वंश पिता के नाम से न चलकर माता के नाम से ही चलता था। उनमें कुल, कुटुम्ब जाति, भैयाचारा, बिरादरी आदि के भेद और प्रभेद पैदा हो गये थे। उन्हें नृशंसता और बेरहमी दिखाने में तनिक भी संकोच न था। वे लकीर के फकीर और पुरानी प्रथा के बड़े भक्त थे। नयेपन से वे बहुत घबराते थे। उनमें थोड़े-बहुत कानून भी चलते थे, जो किसी सिद्धान्त की बुनियाद पर न थे। बदला चुकाने के लिए वे सदैव तैयार रहते थे। शपथ दिलाकर अथवा अग्निपरीक्षा आदि से वे सत्य या असत्य का निर्णय करते थे। जाति-अपमान या बिरादरी से बाहर कर दिये जाने का उन्हें बहुत भय रहता था।

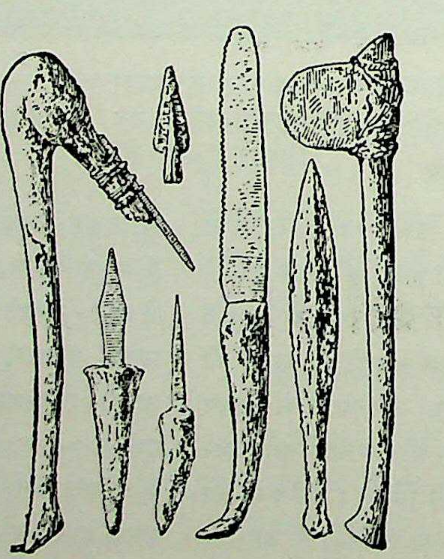

काँसे के ये औजार मिस्र में पाये गये हैं। इनके बेंट पत्थर, हड्डी आदि के हैं। इसी तरह के धातु के प्राचीन औजार दूसरे स्थानों में भी मिले हैं।

ऊपर के वर्णन से यह साफ मालूम होगा कि पत्थर के युग के समाप्त होने तक मनुष्य ने सभ्यता और उन्नति के अनेक साधन जमा कर लिये थे। फिर भी उसके पास तीन चीजों की भारी कमी रह गई थी। उसे न तो धातुओं का पता था; न उसे लिखना आता था और न उसका कोई राजनीतिक संगठन था। आगे चलकर इन तीनों चीजों का ज्ञान जब मनुष्य को हुआ, तब सभ्यता और उन्नति में बड़ी तेजी आ गई। विद्वानों का अनुमान है कि पत्थर का युग करीब पचास हजार वर्ष तक चलता रहा।

धातुओं से परिचय और उनका प्रयोग

सबसे पहली धातु जो मनुष्य को मिली, वह शायद सोना थी, किन्तु उसने सबसे पहले ताँबे का ही उपयोग करना सीखा। करीब आठ हजार वर्ष से ताँबे का उपयोग होना शुरू हो गया था। स्विट्जरलैंड, मसोपटेमिया, मिस्र, भारत और अमेरिका में ताँबे के औजारों के अवशेष मिले हैं। किन्तु इससे यह नतीजा न निकालना चाहिए कि पत्थर के युग के बाद ताम्रयुग का आगमन हुआ। वस्तुतः ताम्रयुग केवल काल्पनिक है, उसके होने का कोई प्रमाण नहीं है। पोलीनेशिया, फिनलैंड, उत्तरी रूस, मध्य अफ्रीका, दक्षिणी भारत, आॅस्ट्रेलिया, जापान और उत्तरी अमेरिका में पत्थर के युग के बाद ही लोहे का युग प्रयोग आरंभ हो गया।

शीघ्र ही मनुष्य को काँसे का भी पता लगा गया, किन्तु काँसा काफी मात्रा में न मिलने के कारण और धातुओं को मिलाकर काँसा बनाने की विधि न जानने के कारण वह काँसे का उपयोग अधिक न कर सका। किंतु जिनको काँसा काफी मात्रा में मिल सका, वे लड़ाई में दूसरों से अच्छे रहे और शक्तिशाली बन बैठे। कोई छः हजार वर्ष से लोहे का भी उपयोग हो रहा है। उत्तरी र्‌होडेशिया में अब से करीब छः हजार वर्ष पूर्व की लोहे की चीजें मिली हैं। ढाई-तीन हजार वर्ष की पुरानी लोहे की चीजें मिस्र और बेबीलान में भी मिलती हैं। किन्तु ढले हुए लोहे की सबसे पुरानी चीज फिलिस्तीन में प्राप्त चाकू का एक फल है, जिसे लोग साढ़ेतीन हजार वर्ष का मानते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

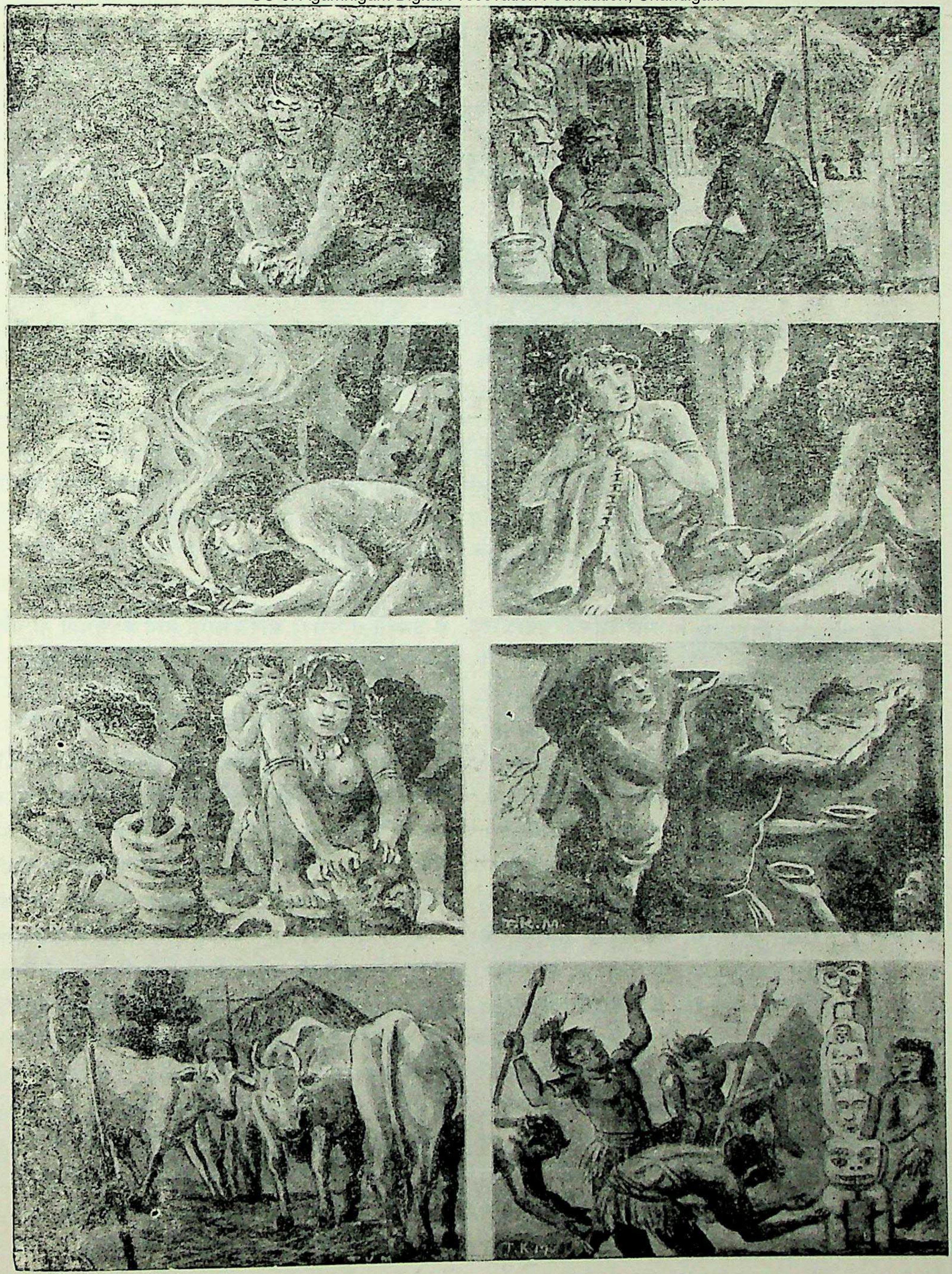

आदिम मनुष्य की सभ्यता की ओर प्रगति । (बाईं ओर ऊपर से नीचे) १. पत्थर के औजार बनाते हुए; २. आग जलाते हुए; ३. मिट्टी के बर्त्तन बनाते हुए; ४. दूध, मांस और कृषि के लिए पशुओं का पालन करते हुए । (दाहिनी ओर ऊपर से नीचे) १. बस्तियों में मिलकर रहने का प्रारम्भ; २. कपड़ों के व्यवहार का आरम्भ; ३. गुफाओं में चित्र बनाते हुए; ४. आदिम देवी-देवताओं की पूजा करते हुए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सभ्यताओं का उदय—(१)
प्राचीन भारत की सभ्यता

इतिहास की पगडंडी पर निरंतर बढ़ते चले जा रहे मनुष्य की प्रगति-यात्रा की आरंभिक झांकी पिछले पृष्ठों में हम देख चुके हैं। उस संक्षिपत सिंहावलोकन के दौरान में कुछ ही पन्नों की परिधि में हम एक साथ हजारों-लाखों वर्षों की अवधि पार कर गये। प्रागैतिहासिक युग के उस निविड़ कानन में से निकलकर अब हम अपने आपको ऐतिहासिकता के प्रांगण में पहुँचते पाते हैं। इस समय हम आज से लगभग छ-सात, हजार वर्ष पूर्व के कालमान की सीमा पर आ गये हैं। यह है पृथ्वी के विभिन्न विभागों—विशेषकर सिन्धु गंगा-यमुना, नील, दजला फरात आदि नदियों की उपत्यकाओं—में एक साथ ही विविधि ऐतिहासिक सभ्यताओं के उदय का अनूठा प्रहर। इन्हीं सभ्यताओं का परिचय क्रमशः एक-एक करके आगे के पृष्ठों में हम पाएँगे। आइए, सबसे पहले अपने देश भारत ही को लें।

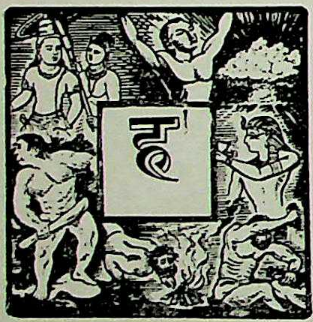

हमारे देश की रचना और सभ्यता का विकास भी उन्हीं प्राकृतिक नियमों के अनुसार हुआ है, जिन्हें हम सभ्यता के अन्य उद्गमस्थलों में क्रियान्वित देखते हैं। भूगर्भवेत्ताओं की खोजों के अनुसार भारतवर्ष का स्वरूप और आकार युग-युग में बदलता रहा है। दक्षिण भारत का अन्तरीप पुरातन काल में पृथक् था। वह उस महाद्वीप का एक भाग था, जो दक्षिण अफ्रीका से ऑस्ट्रेलिया और दक्षिण अमेरिका तक फैला हुआ था। उस महाद्वीप के उत्तर में 'टेथाइस' नामक समुद्र योरप से लेकर बर्मा तक लहराता था। केवल अरावली पर्वत उस समुद्र में टापू की तरह दिखाई पड़ता था। कालान्तर में भौगोलिक परिवर्तनों के प्रभाव से हिमालय का प्रादुर्भाव हुआ, जिसकी तलहटी में विकराल वन फैला हुआ था। यह वन धीरे धीरे कई युगों तक पीछे हटता और मैदान छोड़ता गया वही मैदान आजकल वह भूभाग है, जो हिमालय और विन्ध्याचल के बीच में फैला हुआ है। इस प्रकार 'टेथाइस' समुद्र के सिकुड़ने और जलमग्ना भूमि के उभड़ने से उत्तरी और दक्षिणी भाग का संयोग हो गया, जिससे हमारे देश का आधुनिक आकार प्रकट हो गया।

भारतभूमि के आदिम निवासी

इस देश में भी अन्य देशों की तरह अनेक जातियों और उपजातियों के लोग आते और बसते गये। उनमें सबसे पुराने लोग 'नेग्रिटो' माने जाते हैं, जिनके वंशज सुदूर दक्षिण और अण्डमन टापू में अब भी मिलते हैं। उनके बाद 'प्रोटो-ऑस्ट्रेलायड' लोग आये, जिनके वंशज आजकल 'वेद्द' कहे जाते हैं। उनके पश्चात् 'मेलानेशियन' आये, जिनके वंशज असम और बर्मा की सरहद एवं मलाबार तट और निकोबार टापू में हैं। उनके बाद ऐनाटोलिया (एशियाटिक तुर्की) एवं आर्मीनिया की ओर से 'मेडिटरेनियन' और 'आर्मिनायड' लोग आये। ये लोग अपने से पहले आनेवाले लोगों से अधिक सभ्य थे। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि इन्हीं दोनों जातियों के सम्मिश्रण से 'सुमेरियन' लोग उत्पन्न हुए थे। तमिल प्रान्त में इनके वंशज पाये जाते हैं। इन दोनों जातियों के अलावा पामीर की ओर से 'अल्पाइन' लोग भी आए, जिनके वंशज मराठा प्रदेश, मैसूर और बंगाल में बसते हैं। पूर्व से आनेवाले लोगों में 'मङ्गोल' भी थे, जिनके वंशज ब्रह्मपुत्र नदी की तलहटी और असम में मिलते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सारांश यह है कि हमारे देश की जनता और सभ्यता की सृष्टि में सारे एशिया की जातियों ने अपना-अपना अंश प्रदान किया है, और उन सबका सामूहिक प्रयत्न हमारे देश में गुप्त अथवा प्रकट रूप से केन्द्रित है।

उपर्युक्त सभी लोगों ने भारतीय सभ्यता के भाण्डार की पूर्ति में कुछ-न-कुछ भाग लिया है। कहते हैं कि 'नेग्रिटो' लोगों ने ही धनुष का आविष्कार किया था। 'प्रोटोआॅस्ट्रेलायड' लोगों ने मिट्टी के बरतनों का बनाना शुरू किया। इनकी भाषा मुण्डा थी, जो अब तक लद्दाख, शिकिम, सन्थाल परगना और छोटा नागपुर, मध्य-प्रदेश, गन्जाम और विजिगापट्टम में बोली जाती है। इन लोगों का अपना स्वतंत्र ग्रामीण जीवन और संगठन था तथा अपने रीति-रिवाज थे। जाति-भोज के रूप में जुर्माना देने अथवा जाति-बहिष्कार करने की प्रथा इन लोगों में प्रचलित थी। ये लोग वृक्षों की और उन पर रहनेवाले देवी-देवताओं की पूजा बलि चढ़ाकर करते थे। आर्यों से पहले आनेवाले लोगों में 'मेडिटरेनियन' और 'आर्मीनायड' लोग सबसे सभ्य थे। इनकी भाषा 'द्राविड़ी' थी। इन्होंने सिन्धु नद की तलहटी में सभ्यता का अच्छा और विशद विकास किया। आर्यों के आने के पहले ही इन्होंने हिन्दू-धर्म की प्रारंभिक रूपरेखा की रचना की थी। वेदों में इनका उल्लेख मिलता है। ये धनवान् थे, सिक्कों का प्रयोग करते थे, सुन्दर नगरों में रहते थे, जिनकी रक्षा के लिए पत्थर और लोहे के किले इन्होंने बनाए थे। इनका व्यापार जल-थल के मार्ग से होता था। अनुमान किया जाता है कि इन्हीं लोगों ने आर्यों का घोर विरोध किया था, और ये ही मोहनजोदड़ो की सभ्यता के निर्माता थे।

हमारे देश का सबसे प्राचीन भूभाग दक्षिण है। यहां पुराने पत्थर-युग की चीजें बहुतायत से पाई जाती हैं। मद्रास, गुन्टूर, कड़ापा जिलों में उस युग की चीजें प्रायः मिलती हैं। किन्तु नए पत्थर-युग के चिन्ह सारे हिन्दुस्तान में बिखरे हुए मिलते हैं। पत्थर के छोटे-छोटे औजार मिर्जापुर, रीवाँ, बघेलखण्ड, छोटा नागपुर, असम और बर्मा आदि में मिले हैं। पत्थर के पालिशदार बड़े बड़े औजार, उनके बनाने के साधन और कुम्हार के चाक से बनाए हुए मिट्टी के बरतन दक्षिण में विशेषतया बिलारी जिले में मिलते हैं। पत्थर की शिलाओं पर नक्काशी का काम और चित्र मिर्जापुर, होशङ्गाबाद, सिंहनपुर एवं कैमूर की पहाड़ियों में पाए गए हैं। सिंध और दक्षिण में नये युग की कुछ कब्रें भी मिली हैं, जिनमें मिट्टी के बरतन पाए जाते हैं।

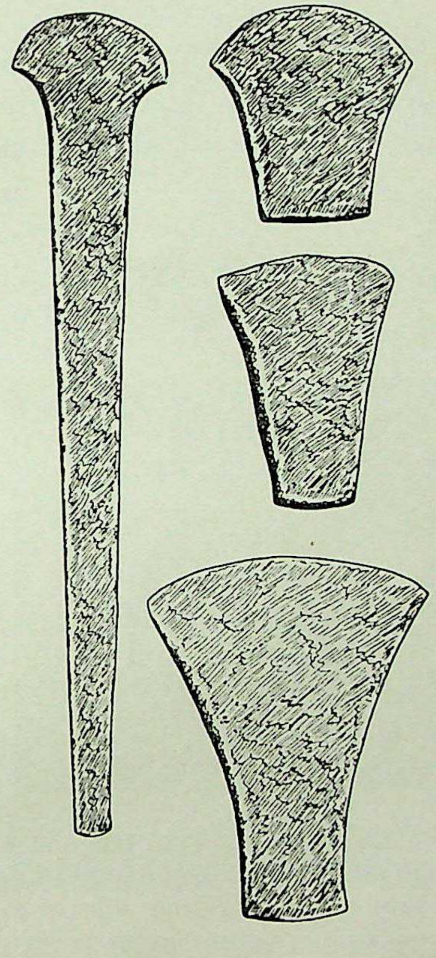

मध्यभारत में प्राप्त ताम्रयुग के कुछ औजार-हथियार। ऐसे औजार-हथियार हुगली नदी से सिन्धु नदी तक और हिमालय से कानपुर जिले तक सारे उत्तरी मैदान में पुरातत्त्ववेत्ताओं को मिले हैं।

मोहनजोदड़ो और हड़प्पा

पत्थर-युग के बाद दक्षिण में तो लोहे के और उत्तर में ताँबे के युग का आरम्भ हुआ। यद्यपि इधर-उधर कभी-कभी कुछ काँसे की चीजें भी मिलती हैं, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे देश में कभी काँसे का युग हुआ ही नहीं। हुगली नदी से सिंधु नदी तक और हिमालय से कानपुर जिले तक ताम्र-युग के ताँबे के बने हुए अनेक हथियार-औजार मिलते हैं। किन्तु सबसे बड़ा जखीरा मध्यभारत के गङ्गेरिया नामक गाँव में मिला है। पत्थर-युग अथवा आदिम ताम्रयुग की इतनी सामग्री हमें नहीं मिलती कि उस समय के जीवन, रहन-सहन आदि की हम साफ तस्वीर खींच सकें। किन्तु यह धुंधलापन अब से सवा पाँच हजार वर्ष हुए हटता हुआ दिखाई देता है। हमारे देश की प्राचीन सभ्यता का कुछ-कुछ दर्शन सिन्धु नद की तलहटी में होता है। पुरातत्त्ववेत्ताओं का कथन है कि सिन्धु नद और सिन्ध प्रदेश की मिहरान नामक लुप्त नदी की तलहटी में भी सभ्यता का आदिम विकास उसी तरह से और उसी समय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में हुआ, जैसे कि फारस की हेलमन्द, काबुल और करखे, मध्य एशिया की सिर और आमू, मसोपटेमिया की दजला और फरात तथा मिस्र की नील नदी की तलहटियों में हुआ था। मिस्र देश का सबसे पुराना पिरामिड जिस समय बनना शुरू हुआ, उस समय मोहनजोदड़ो उन्नति की चोटी पर पहुँच चुका था। ऐसा प्रतीत होता है कि सिन्धु नदी के तटवर्ती नगर उस समय मसोपटेमिया, एलाम आदि प्रदेशों से कुछ व्यापार भी करते थे। सम्भव है कि इन सबका आपस में और भी गहरा सम्बन्ध रहा हो। मेकडानेल की राय में सिन्धुतटवालों ने अपनी सभ्यता सुमेरिया से ली थी। इसके विपरीत हाल की सम्मति में सुमेरियावालों ने ही सभ्यता सिन्धुतटवालों से सीखी। किन्तु वूली का अनुमान है कि सुमेरिया और सिन्धुतटवालों की सभ्यता का उद्गम उनसे भी पूर्व की सभ्यता है, जिसका विकास बलूचिस्तान में अथवा उसके आसपास ही कहीं पर हुआ था। चाइल्ड का मत है कि सिन्धु नद के तट की सभ्यता सुमेरिया की सभ्यता से कहीं अधिक पुरानी है।

मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की सभ्यता के निर्माताओं का पता निश्चित रूप से अभी तक नहीं चला है। कुछ विद्वान् उन्हें द्रविड़ जाति का मानते हैं, जो भूमध्यसागर के आसपास से दक्षिण एशिया में फैली हुई थी। कुछ का मत है कि वे किसी एक विशेष जाति के न थे; उनका समाज तीन-चार जातियों के मेल से बना था। ये जातियाँ वे ही थीं, जिनके वंशज कोल, भील, गुजराती, मराठे, बङ्गाली और उत्तर प्रदेश के अधिकांश वासी हैं।

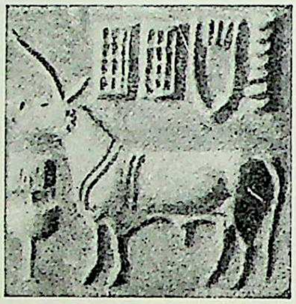

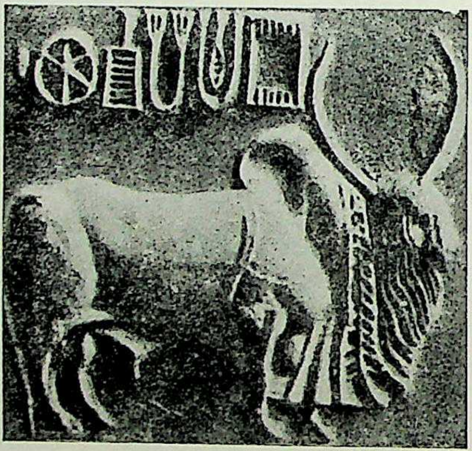

मोहनजोदड़ो से प्राप्त मिट्टी की दो मुद्राएँ। नीचे की मुद्रा पर वृषभ की आकृति प्रत्यांकित है, जिसे सिन्धु तट की प्राचीन सभ्यता में निश्चय ही गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था। मुद्राओं पर जिस रहस्यपूर्ण चित्र-लिपि में आलेख मिलते हैं, उसे अभी तक कोई पढ़ नहीं पाया है। इस लिपि के पढ़े जाने पर इस सभ्यता के बारे में आश्चर्यजनक बातों का पता लगने की संभावना है।
[फोटो—भारतीय पुरातत्व-विभाग]

उच्च कोटि की सभ्यता

खुदाई करने पर मोहनजोदड़ो में एक दूसरे के ऊपर पुरानी इमारतों की सात तहें मिली हैं। अनुमान किया जाता है कि सबसे नीचे की सतह के नीचे और भी तहें होंगी, जो पानी में डूबी हुई हैं। मोहनजोदड़ो में आज से पाँच हजार वर्ष पहले के पक्की ईंटों के बने हुए छोटे और बड़े मकान मिलते हैं। कोई-कोई मकान तो इतने बड़े हैं कि वे कोठी अथवा महल कहे जा सकते हैं। एक की लम्बाई ८५ फीट और चौड़ाई ९७ फीट है! उसमें ३२ फीट का आँगन है! सड़क की तरफ खास दरवाजा रहता था। उसमें घुसने पर आँगन मिलता था। आँगन के चारों तरफ कमरे या कोठरियाँ बनी थीं, जिनमें खिड़कियों से काफी हवा और रोशनी आती थी। कोई-कोई मकान की दीवारें चार या पाँच फीट तक मोटी हैं! शायद कुछ मकान दो मंजिल के भी रहे होंगे। दोनों मंजिलों के कमरों की फर्श पक्की ईंटों की हैं। सीढ़ियाँ तंग और कुछ सीधी-सी बनी हैं। मकानों में अक्सर तहखाने बने होते थे। प्रायः घरों में कुएँ भी होते थे। कुछ कुएँ तो इस ढंग से बनवाए जाते थे कि मकान के अन्दर और बाहर दोनों ओर से काम में आ सकें। पानी के निकास के लिए ढकी नालियाँ बनी रहती थीं। उनसे पानी एक हौज में गिरता था। नगर में बड़े हॉल, पक्के और बिटुमिन से पुते हुए तैरने के लिए सङ्गीन तालाब, नहाने के लिए गरम हम्माम आदि बने हुए थे! संभव है कि वहाँ देवालय भी रहे हों। शहर की सड़कें पक्की थीं। प्रत्येक गली और सड़क से पानी के निकास की नालियाँ बनी हुई थीं।

सिन्धु नद के इन श्रीसम्पन्न नगरों की समृद्धि कृषि और व्यापार के आधार पर थी। गेहूँ, जौ और रुई की खेती होती थी। नगरों का व्यापार अफगानिस्तान, तुर्किस्तान, खुरासान, एलाम, मसोपटेमिया और शायद ग्रीस से भी होता था। उनमें कताई और बुनाई का खूब काम होता था। अमीर और गरीब सब कताई का काम करते थे। वहाँ से सूती कपड़ा बाहर भेजा जाता था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वहाँ के निवासयों को संभवतः लोहे का ज्ञान न था; क्योंकि सोना, चाँदी, ताँबा, काँसा और जस्ते के बने हुए जेवर, सिक्के आदि मिलते हैं, किन्तु लोहे की बनी वहाँ कोई चीज नहीं मिली। हड्डी, हाथीदाँत और सीप की बनी चीजें भी वहाँ मिलती हैं। इनके अलावा घरेलू चीजें, जैसे तसले, लोटे, तश्तरियाँ, प्याले, मटके आदि भी मिले हैं। मोहन-जोदड़ो आदि नगरों के लोगों को कपड़ों और जेवरों का बड़ा शौक था। उनमें सूती-ऊनी कपड़ों का काफी चलन था। उस समय शायद सिले हुए कपड़ों का प्रयोग नहीं होता था। लोग शाल अथवा चादरें कंधों पर ओढ़ा करते थे। आदमी अपने बालों को या तो आज के ऑक्सफर्ड फैशन की तरह उलट लेते थे, या पट्टे रखाते अथवा बाँध लेते थे। औरतें बालों की चोटी गूँथकर गुण्डल करके सिर पर लपेट लेती थीं। आदमी दाढ़ी रखते थे, किन्तु मूँछें कुछ-कुछ मुड़वाते थे। मर्द अँगूठियाँ पहनते और औरतें हार या नेकलेस, करधनी, कड़े, टड़ियाँ आदि पहनती और बड़ी सज-धज से रहती थीं। उनमें कोई-कोई तो संभवतः दूध से नहाती थीं। वे लोग मूर्तियाँ, चित्र और खिलौने भी बनाते थे। बन्दर, भालू, खरगोश, बाघ, गेंडा और भैंसे की शक्ल के बने हुए खिलौनों के अलावा साधारण रङ्गीन चीजें, जैसे हाँड़ियाँ, घड़े, धूप-दीपदान, बटखरे आदि भी मिले हैं। वहाँ के लोगों को शायद जुआ खेलने का भी शौक था, क्योंकि पाँसे भी पाए जाते हैं। वे लोग शायद कला के अधिक प्रेमी न थे, क्योंकि केवल मनोविनोद के लिए उन्होंने कला या कारीगरी का कोई प्रयत्न नहीं किया। जानवरों में वे बैल, भैंसे, भेड़, हाथी, ऊँट, सुअर और शायद घोड़े और कुत्ते भी पालते थे। वे भेड़, बैल, सुअर, चिड़ियाँ, घड़ियाल, कछुओं आदि का मांस और अण्डे खाते थे। अनाजों के अलावा वे दाख भी खाते थे। उनके अन्य फलों-तरकारियों का ठीक पता अभी तक नहीं मिला है। सवारी और माल ले जाने के लिए उनके पास पहियोंवाली गाड़ियाँ और इक्के थे। परन्तु उनके पास युद्ध-सामग्री अधिक न थी। उन नगरों के लोग शायद युद्ध-प्रेमी न थे और न उनको आक्रमण का ही अधिक भय था। संभव है कि वे किले बनाते हों, किन्तु युद्ध में शरीर-रक्षा के लिए न तो उनके पास जिरह-बख्तर थे और न ढालें ही थीं। उन्हें तलवारों का भी उपयोग नहीं मालूम था। पर वे तीर-कमान, बर्छे, फरसे, खंजर, गदाओं और गोफनों से काम लेते थे।

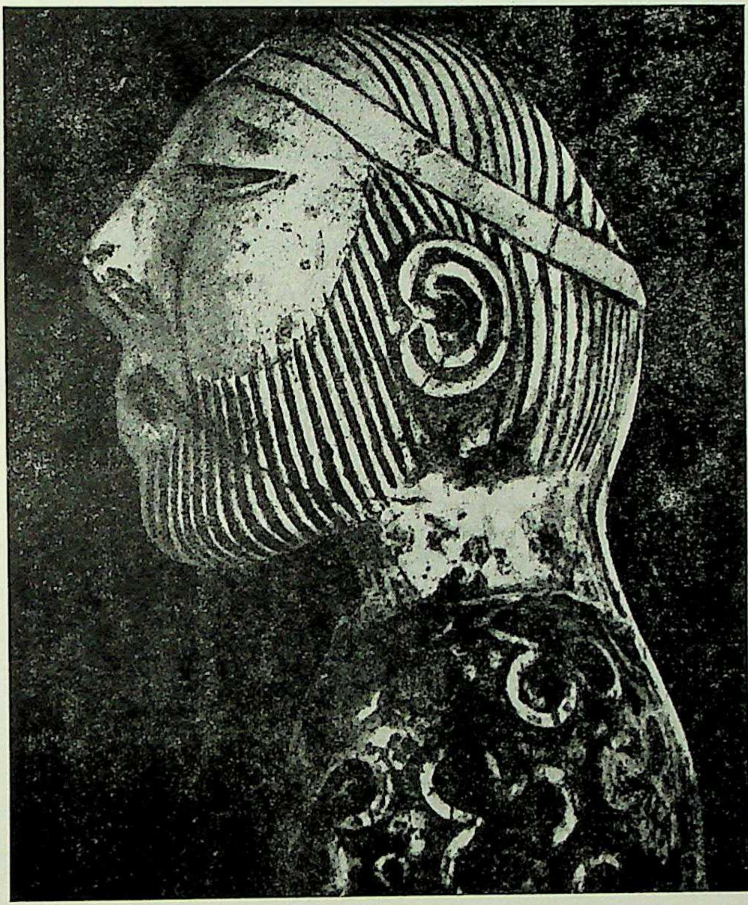

मोहनजोदड़ा से प्राप्त एक भव्य मानव-मूर्ति। कुछ पुरातत्त्वविदों ने इसे किसी तत्कालीन भद्रपुरुष की प्रतिमा बताया है और कुछ ने अर्द्धनिमीलित नेत्रों से अभिव्यक्त इसकी ध्यानावस्थित मुद्रा के आधार पर इसे एक योगी की मूर्ति माना है। [फोटो--भारतीय पुरातत्त्व-विभाग]

धार्मिक म और विश्वास

सिन्धुतट के निवासी अपने मुर्दों को प्रायः जला देते थे। जलाने के बाद मृतक की बची-खुची हड्डियों को चूर्ण करके या तो राख के साथ इधर-उधर फेंक देते थे, या उसको हांडी आदि किसी बर्तन में रखकर कुछ दूसरी चीजों के साथ गाड़ देते थे। कभी-कभी वे मृतक को या उसके किसी अंश को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दफना भी देते थे। कभी वे मृतक को पशु-पक्षियों के आहार के लिए भी छोड़ दिया करते थे।

सिन्धुतटवालों में धर्म के भाव भी थे। वे लोग धरती को माता अथवा देवी या शक्ति समझकर नग्न रूप में उसकी मूर्तियाँ बनाकर पूजा करते थे। वे पशुओं से सेवित योगासनस्थ दो सींगधारी त्रिमुख, अथवा एक मुखवाले त्रिनेत्र देवता की भी पूजा करते थे। चतुर्भुज देवता का भी वे सम्भवतः पूजन करते थे। उनका एक देवता कार्योत्सर्ग आसन में खड़ा हुआ मिलता है, जिसकी कुछ समता भगवान् 'जिन' से मिलती है। उसके पास नन्दी की तरह एक बैल भी बना रहता था।

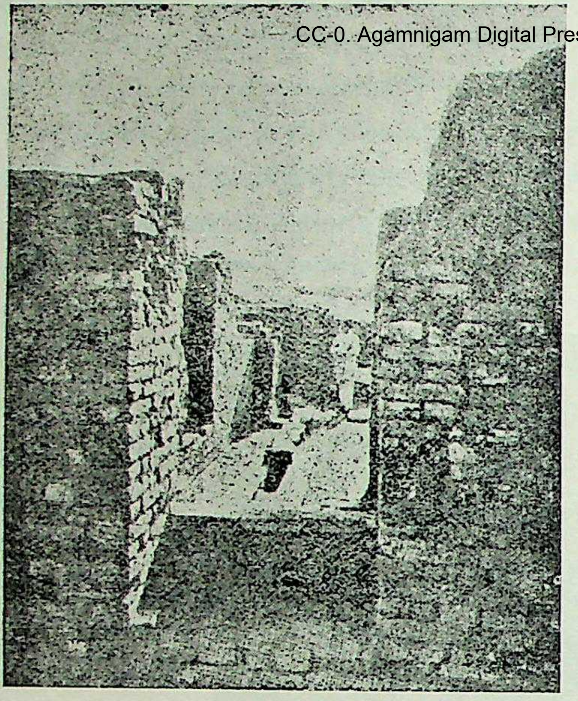

मोहनजोदड़ो के मकानों की दीवारें आज ही की तरह पक्की ईंटों की बनी होती थीं। मकानों तथा गलियों में से पानी के निकास के लिए पक्की ढकी हुई नालियाँ होती थीं। (नीचे) यह मोहनजोदड़ो के एक कुएँ का चित्र है। इसकी गोल रचना पर ध्यान दीजिए। (फोटो —भारतीय पुरातत्त्व-विभाग)

उपर्युक्त देवी और देवताओं के अतिरिक्त वे वृक्षों और उन पर रहनेवाली आत्माओं की भी पूजा करते थे। उस समय की एक मुद्रा मोहनजोदड़ो में मिली है, जिस पर पीपल का वृक्ष बना हुआ है। उस पर सात सहचरियों से सेवित वृक्ष की देवी है। उसके पास एक पशु अंकित है, जिसका कुछ अंग तो बैल का सा, कुछ बकरे का-सा और मुँह मनुष्य का-सा बना हुआ है। मनुष्य के-से मुखवाले बकरे, भेड़, बैल, हाथी, सींघवाले बाघों की भी बहुतेरी मुद्राएँ मिलती हैं। इनके अतिरिक्त स्वाभाविक आकार के पशु एवं पक्षियों की भी मुद्राएँ पाई जाती हैं।

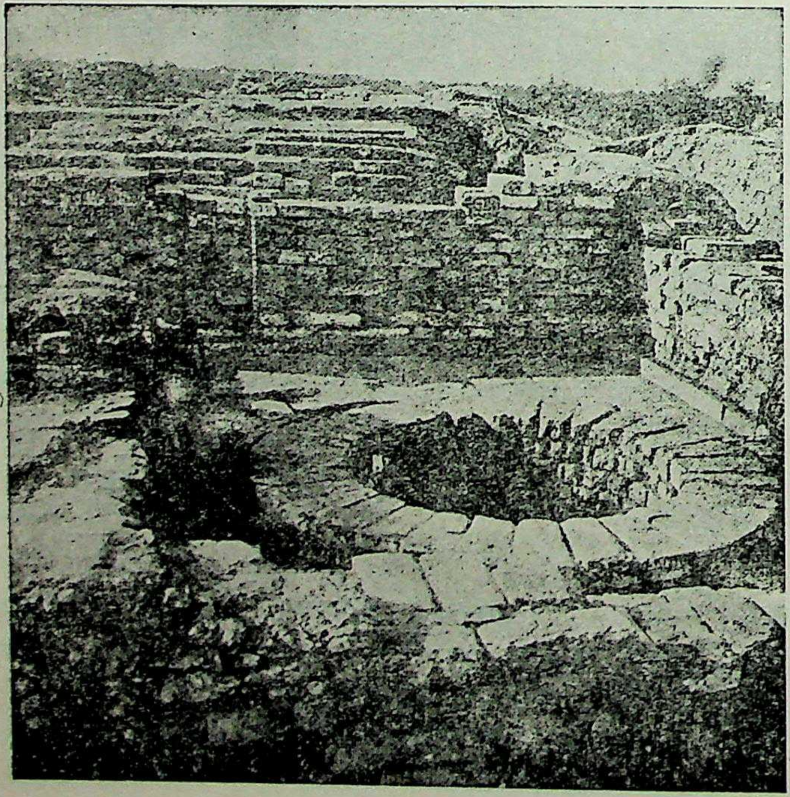

उपर्युक्त वर्णन से यह साफ जान पड़ता है कि उस समय पशु-पक्षियों, तथा देवी-देवताओं की पूजा उनकी कल्पित अथवा वास्तविक मूर्ति बनाकर की जाती थी। इन देवताओं में शक्ति-देवी और महादेव की पूजा अधिक प्रचलित थी, किन्तु विष्णु एवं अन्य देवताओं की भी कल्पना का आरम्भ हो गया था। इससे यह अनुमान किया जाता है कि आर्यों अर्थात् हिन्दुओं के अनेक देवताओं, उनके पूज्य नागों तथा पशु-पक्षियों की धारणाओं का विकास आज से पांच हजार वर्ष पहले ही होने लगा था।

अभी हाल में पंजाब में रूपड़ एवं सौराष्ट्र में लोथल नामक स्थानों में खुदाई के फलस्वरूप महत्त्वपूर्ण पुरातत्त्व सामग्री प्राप्त हुई है, जिससे मोहनजोदड़ो काल के बाद की विलुप्त कड़ियों पर प्रकाश पड़ने की संभावना है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैदिक आर्यों का उत्थान—अनार्यों से उनका संघर्ष और उन पर विजय

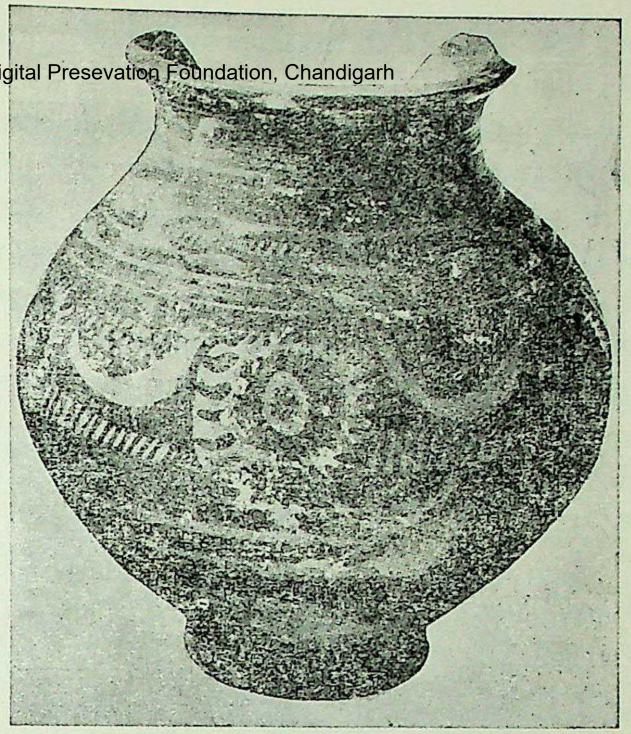

उस युग के इस मिट्टी के बरतन पर की गई कलापूर्ण चित्रकारी पर ध्यान दीजिए। (फोटो–भा० पु० वि०)

मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के समय की सभ्यता के क्षीण हो जाने के बाद क्या हुआ, इसका कुछ ठीक पता नहीं चलता। कुछ विद्वानों की धारणा है कि उसके बाद वैदिक आर्यों का उत्थान हुआ। उन्होंने पूर्ववर्ती सभ्यता के कुछ अंशों को ग्रहण कर लिया और शेष का अन्त कर दिया। ऋग्वेद में दास, दस्यु, असुर, पणि, राक्षस और पिशाचों का संकेत पाया जाता है, जो आर्यों का विरोध करते रहे। इन अनार्यों को कुछ विद्वान् मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा-काल की सभ्यता के निर्माता अथवा पोषक मानते हैं। अन्य विद्वान् इस धारणा से सहमत नहीं होते और कहते हैं कि असुर लोग दूसरी जाति के थे और उनकी सभ्यता भी उन्नत और स्वतन्त्र थी। यह विषय अत्यन्त विवादग्रस्त है और इसके निर्णय के साधन भी इतने कम हैं कि दृढ़तापूर्वक किसी सिद्धान्त को स्थापित करना दुस्तर है। ऋग्वेद में इन अनार्यों का अनादरसूचक वर्णन मिलता है। उसके अनुसार अनार्यों की बोली कर्कश और विचित्र थी; वे वैदिक कर्मों का पालन नहीं करते थे; वैदिक देवताओं, यज्ञों और अनुशासनों को नहीं मानते थे; शिश्नदेव अर्थात् लिंग के उपासक थे। उनका रंग काला था, उनकी नाक छोटी या चपटी थी। किन्तु वे लोग निरे असभ्य और जंगली नहीं थे। उनके पास पशुओं की सम्पति भी थी। वे पुरों में भी रहते, जिनकी कि रक्षा के लिए उन्होंने दुर्ग बना रक्खे थे। कुछ किले पत्थर के और काफी बड़े थे। उनके राज्य में लगभग एक सौ पुर थे। दासों में से फुटकर व्यक्तियों के तो नाम भी मिलते हैं--जैसे इलीविश, धुनी, चुमुरी, पिप्रु, वर्चिन, शम्बर—किन्तु उनकी जातियों में सम्भवतः

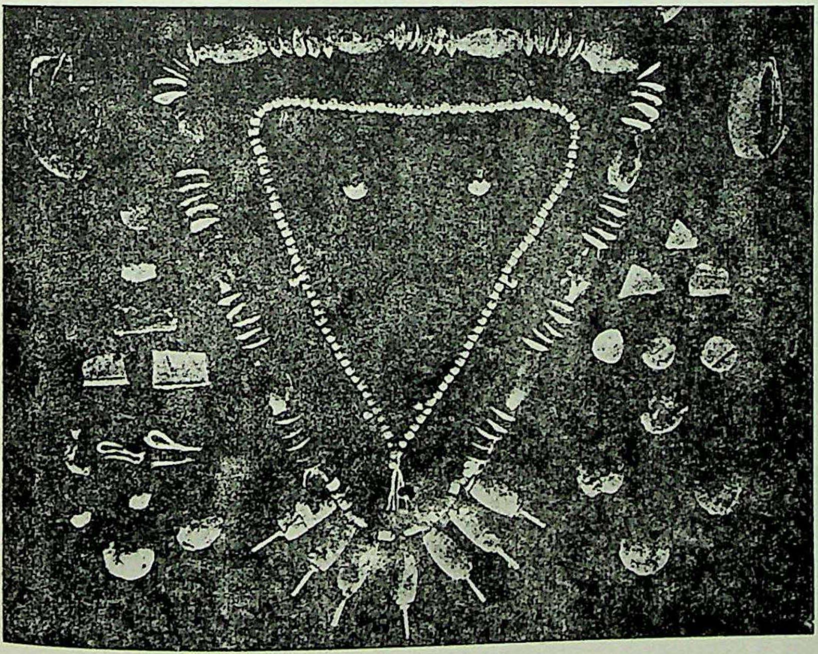

मोहनजोदड़ो की खुदाई में प्राप्त उस युग के इन गहनों में गले में पहनने के हार या नैकलेस, अँगूठियाँ, कड़े, टड्डियाँ आदि हैं, जिनमें से कुछ स्वर्ण-निर्मित भी हैं। इनकी कलापूर्ण रचना से तत्कालीन सभ्यता की उन्नतावस्था का अनुमान किया जा सकता है। (फोटो—भारतीय पुरातत्त्व-विभाग)

शिम्यु, कीकट, अजस, यक्षु और शिग्रु नामक समूहों का ही संकेत मिलता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आर्यों के समय से जिस सभ्यता का हमारे देश में आरम्भ हुआ, वह कुछ काट-छांट के साथ आज तक चली आ रही है। इसी कारण यह कहा जाता है कि हमारे देश के इतिहास और सभ्यता का स्रोत वैदिक काल से ही चला है। यद्यपि बहुत अंश में यह बात ठीक मानी जा सकती है, किन्तु फिर भी एक कठिनाई यह है कि भगवान् बुद्ध के पूर्व के इतिहास का कालक्रम और समयगणना अनिश्चित और संदिग्ध है। पाश्चात्य विद्वानों द्वारा कालक्रमबद्ध इतिहास का आरम्भ बुद्ध भगवान् के समय से होना माना गया है। इसी से उनके द्वारा बुद्ध से पूर्व का युग 'प्रागैतिहासिक' और बाद का 'ऐतिहासिक' माना जाता है।

'प्रागैतिहासिक' काल का अविच्छिन्न इतिहास आर्यों से आरंभ होता है। आर्य कौन थे? भाषाविज्ञान और सभ्यता के अनुसंधान करनेवालों की धारणा है कि पुरातनकाल में 'आर्य' जाति किसी एक स्थान में बसती थी। अनेक कारणों से वह अपने मूलस्थल से निकलकर योरप और एशिया में फैल गई। आर्य भाषा का प्रचार आयरलैंड, फ्रांस, स्पेन, जर्मनी, रोम, स्लाव प्रदेश, प्राचीन ईरान और भारतवर्ष में हुआ। इससे अनुमान किया जाता है कि किसी समय आर्य जाति बड़ी प्रबल, उद्योगशील और पराक्रमी थी। उसने अपने मूलस्थान से निकलकर संसार की सभ्यता पर सदा के लिए अपना अमिट सिक्का जमा दिया।

आर्यों के मूलस्थान के सम्बन्ध में बहुत मतभेद है। कुछ लोग उत्तरी ध्रुव प्रदेश को, कुछ मध्य एशिया को और कुछ दक्षिण-पश्चिम योरप को उनका मूलस्थान मानते हैं। कुछ लोगों का यह विश्वास भी है कि आर्य लोगों का मूलस्थान भारत ही के उत्तरी प्रदेशों में कहीं पर था। किन्तु अधिकतर झुकाव आर्यों का मूलस्थान उस प्रदेश में मानने की ओर है, जो अरल समुद्र से डैन्यूब नदी तक फैला हुआ है। सच बात तो यह है कि उपर्युक्त धारणाएँ केवल अनुमान पर अवलम्बित हैं और उनमें से एक भी ऐसी नहीं, जो सर्वथा निश्चित अथवा सर्वमान्य कही जा सके। इसलिए इस विषय पर अधिक विवेचन करने का प्रयत्न अनुपयुक्त एवं व्यर्थ-सा है। तथापि यह मानने में कोई विशेष आपत्ति नहीं कि आर्यों का विस्तार योरप एवं एशिया में हुआ और वैदिक आर्यों के इतिहास की प्रारम्भिक रंगभूमि भारत के पश्चिमोत्तर प्रान्तों में पाई जाती है। उत्तर-पश्चिम की ओर से ही बढ़कर वे भारत के अन्यान्य प्रान्तों में फैले और अपनी सभ्यता और आधिपत्य बढ़ाते चले गए। कालान्तर में सारे देश में उन्हीं की विभूति फैल गई, जो आज तक जीवित और प्रगतिशील है।

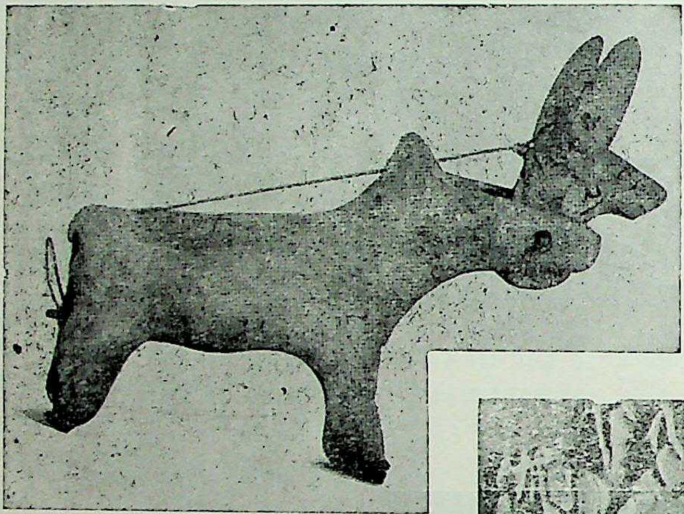

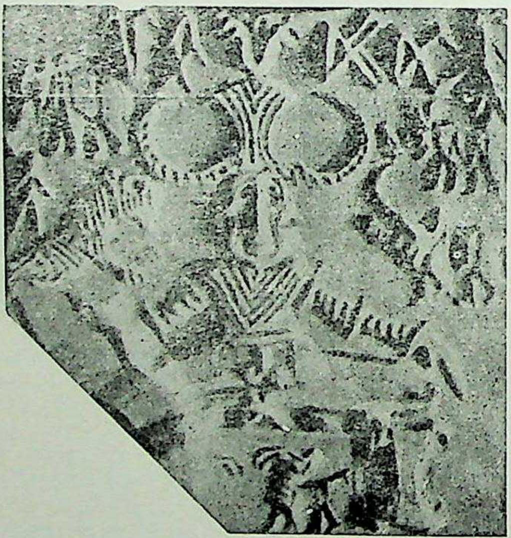

(बाईं ओर) सिन्धुतटवासियों का एक अनूठा खिलौना। पाँच हजार वर्ष पूर्व के इस अद्भुत खिलौने की विशेषता यह है कि जब इसकी दुम खींची जाती है तो डोरी से बँधा हुआ इसका सिर नीचे की ओर झुक जाता है!

(दाहिनी ओर) मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक मिट्टी की मुद्रा।

प्रागैतिहासिक समय का शृंखलाबद्ध इतिहास मिलना दुस्साध्य है। वैदिक काल के ग्रन्थों में एवं महाभारत और रामायण तथा पुराणों में कुछ संकेत, अनुश्रुतियाँ और घटनाएँ मिलती हैं, जिनके आधार पर पुरातन काल के इतिहास के निर्माण का प्रयत्न किया गया है। किन्तु ये आधार अपने-अपने ढंग और अपने-अपने साधन के अनुसार जो वर्णन करते हैं, वे आपस में बहुत मेल नहीं खाते। उनमें आपत्ति-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जनक विषमताएँ हैं, जिससे किसी मत के स्थिर करने में स्वाभाविकतया अपरिमित कठिनाई होती है। ऐसी दशा में भलाई इसी बात में प्रतीत होती है कि वैदिक काल और विशेषतः ऋग्वेद के समय के इतिहास की रूपरेखा वेदों में प्राप्य सामग्री से रची जाय, और उसके बाद का इतिहास आख्यानों, 'इतिहासों', 'नाराशंसी' एवं पुराणों की सहायता से निर्मित किया जाय।

कहा जाता है, अपने मूलस्थान से डेन्यूब नदी के किनारे-किनारे वेलेकिया होते हुए आर्य लोग बास्फरस और डार्डनल्स को लाँघकर एशिया माइनर से गुजरते हुए ईरान, अफगानिस्तान और भारत पहुँचे। रास्ते में वे अपने दल इधर-उधर छोड़ते गए। पश्चिम, मध्य और दक्षिण एशिया में उन्होंने अनेक प्रकार के परिवर्तन और संगठन किए, जिनका थोड़ा-बहुत वर्णन आगे चलकर उचित स्थानों पर किया जायगा। इस स्थान पर तो केवल पुरातन भारत का प्रसंग उठाया जा रहा है।

आर्यों का भारत में प्रसार

अनुमान किया जाता है कि आर्यों ने कम-से-कम चार या साढ़े चार हजार वर्ष पूर्व भारतभूमि में प्रवेश करना आरम्भ किया था। ऋग्वेद के समय में आर्यों का कार्यक्षेत्र भारत के पश्चिमोत्तर प्रान्त से यमुना नदी के तट तक था। उन लोगों के अनेक दल थे। जैसे, गन्धारी उस प्रान्त में बसे, जो आगे चलकर गान्धार कहलाया; मूजवन्त कुभा (काबुल) नदी) के आसपास; अलिन काफिरिस्तान के उत्तर-पूर्व-प्रदेश में; पक्थ और भलानस बोलन दर्रे के पास; शिव सिन्धुनद के समीप, और वहीं कहीं विषाणिन आदि जम गए। इसी प्रकार परुष्णी (रावी नदी) के आसपास अनु और द्रुह्यु बस गए। सरस्वती नदी के इधर-उधर तुर्वसु, यदु, पुरु और भरत आदि आकर बसे।

ऋग्वैदिक युग के विभिन्न दलों में संघर्ष

इन दलों का बहुत दिनों तक शान्त रहना सम्भव न था। आधिपत्य और प्रसार की ऐषणाओं से प्रेरित होकर उन्होंने अपना संगठन बढ़ाना आरम्भ कर दिया। सरस्वती, दृषद्वती और आपया नदियों से सिञ्चित प्रदेश ब्रह्मावर्त के नाम से प्रसिद्ध था। वहाँ पर भरत दल आकर जम गया था। उनके राजा दिवोदास के साथ तुर्वसु, यदु और पुरु आदि युद्ध किया करते थे। यही नहीं, यमुना के आसपास रहनेवाले प्रबल अनार्यों से तो उसकी निरन्तर लड़ाई हुआ करती थी। उसके पुत्र अथवा पौत्र राजा सुदास के समय में उस सुंदर भूभाग के लिए पंजाब के अनु, द्रुह्यु आदि दश दलों ने विश्वामित्र के नेतृत्व में एक संघ बनाकर पश्चिम की ओर से ब्रह्मावर्त पर चढ़ाई कर दी। अपनी विजय को निश्चित करने के लिए उन्होंने ब्रह्मावर्त के पूर्व में रहनेवाले अनार्य दलों को उस ओर से आक्रमण करने पर राजी कर लिया। दोनों ओर से आक्रान्त होने पर भी सुदास ने वीरता और साहस के साथ शत्रुओं से युद्ध किया और दोनों को परास्त कर दिया। यह युद्ध बड़े मार्के का था। इसका परिणाम यह हुआ कि पुरु, भरत, किवि और सृंजय दल मिलकर एक हो गए और संयुक्त रूप से वे 'कुरु' के नाम से प्रसिद्ध हुए। इस संगठित शक्ति ने धीरे-धीरे आसपास के मत्स्य आदि आर्य दलों का दमन किया। प्रबल हो जाने से उत्साहित होकर उन्होंने पूर्व देश के अनार्यों का व्यवस्थित रूप से दमन करना आरंभ किया। यद्यपि उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना और अनेक युद्ध करने पड़े तथापि अंत में उनकी विजय हुई।

ऋग्वैदिक काल के अंत में आर्यशक्ति का केन्द्र ब्रह्मावर्त था। वहीं से आर्य लोग अनार्यों को परास्त करते हुए आगे बढ़े। कुरुक्षेत्र उनका कर्मक्षेत्र हो गया। सम्भव है कि इसीलिए उसका नाम क्रमशः 'धर्मक्षेत्र' पड़ गया हो। पंचनद अथवा 'पंजाब' का ध्यान अब भूलने लगा। यही नहीं, वहाँ के रहनेवाले आर्यों को पूर्ववाले कुछ नीची दृष्टि से देखने लगे। 'ऐतरेय ब्राह्मण' के समय में मध्यदेश-स्थित कुरु, पांचाल, मत्स्य, वश, उशीनर, सत्वन्त, उत्तरकुरु और उत्तर-मद्र आदि का उल्लेख अधिकतर पाया जाता है। कुरु-पांचाल प्रदेश के पूर्व के प्रान्त जैसे कोसल, विदेह, मगध और अंग का भी उल्लेख पाया जाता है। किन्तु विन्ध्याचल के दक्षिण के किसी प्रदेश का स्पष्ट उल्लेख नहीं पाया जाता।

'ब्राह्मण'-काल में रहन-सहन में एक और भी विशेषता दिखाई पड़ती है। वह है नगरों और पुरों का विकास। आसन्दीवन्त, काम्पील, परिचक्रा, कौशाम्बी, काशी आदि राजधानियों और नगरों का उल्लेख पाया जाता है।

इस समय का सबसे प्रमुख और प्रख्यात वंश कुरु-पांचालों का था। उनकी भाषा और विद्या, उनका रहन-सहन, उनका धर्म-कर्म आदर्श-सा माना जाता था। वे बलवान् और समृद्धिशाली, सुसंगठित और विद्याप्रेमी थे। कहा जाता है कि महाराज परीक्षित् के समय में वे अपनी उन्नति की चोटी पर पहुँचे। इसके पश्चात् शायद टीड़ियों के भयंकर विनाशात्मक आक्रमण अथवा ओलों के पड़ने से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

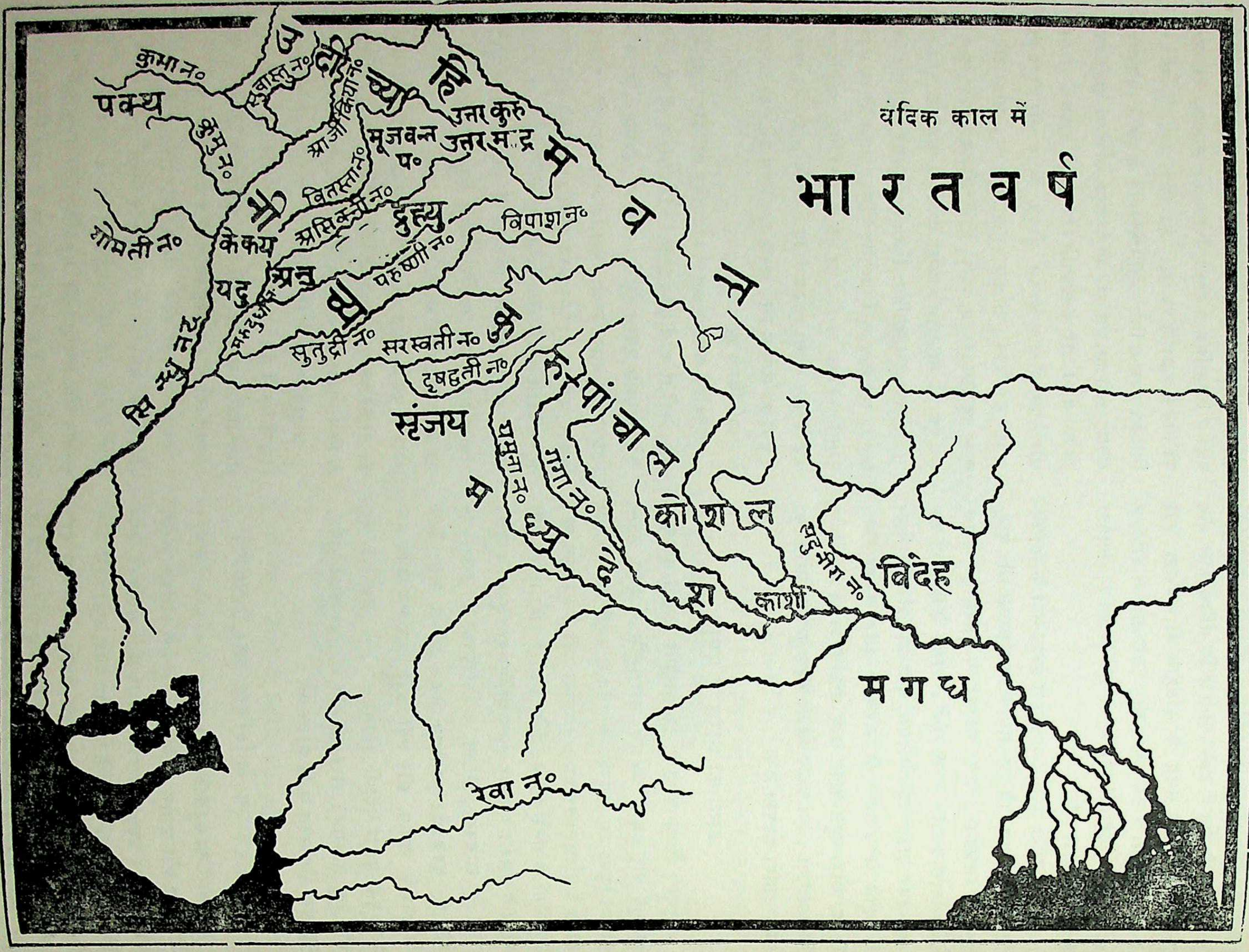

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उनकी आर्थिक और राजनीतिक स्थिति बिगड़ने लगी। फिर भी कौशाम्बी तक उनका प्रभुत्व शिथिल न होने पाया और उनके राजा जनमेजय ने कई अश्वमेध यज्ञ किए। इससे यह न समझना चाहिए कि अन्य राजा उनके अधीन थे; क्योंकि इस बात के उल्लेख मिलते हैं कि उस काल में औरों ने भी अश्वमेध यज्ञ किए थे।

इनके सिवा कोसल, काशी और विदेह के राज्य भी काफी उन्नत और वैदिक सभ्यता के प्रसिद्ध पोषक थे। जलजातूकरार्य कोसल और विदेह दोनों पर राज्य करता था। किन्तु अंग एवं मगध के राज्यों और उनकी सभ्यता का कोई विशेष आदर न था। वहाँ के लोग अधिकतर अनार्य अथवा नीची श्रेणी के माने जाते थे। वहाँ आर्य-व्यवस्था का यथोचित पालन भी नहीं होता था।

पौराणिक अनुश्रुति—सूर्यवंश, चन्द्रवंश, आदि

उपर्युक्त वर्णन वैदिक साहित्य—संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् और प्राचीन सूत्रों—के आधार पर किया गया है। किन्तु 'इतिहास' और 'पुराणों' का वर्णन कुछ और ही ढंग का है। उनके अनुसार सबसे पहले राजा वैवस्वत मनु हुए। उन्होंने सारे भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। उनके नौ या दस पुत्र हुए, जिनमें से सबसे बड़े का नाम इक्ष्वाकु था। इक्ष्वाकु ने अपनी राजधानी अयोध्या से सारे मध्य देश पर गौरवसहित राज्य किया। इक्ष्वाकु के भाई करूष को शोण नदी के पश्चिम और गंगा के दक्षिण का प्रदेश मिला, सौद्युम्न को गया और पूर्वी प्रदेश दिए गए, शर्याति नाम के भाई को आधुनिक गुजरात का प्रदेश मिला। कहा जाता है कि मनु के एक पुत्री भी थी, जिसका नाम इला था। इला का पुत्र पुरूरवा ऐल हुआ, जिसके राज्य की राजधानी प्रतिष्ठान (प्रयाग के पास) थी।

इक्ष्वाकु के वंशज सूर्यवंशी या मानववंशी कहलाए और इला के वंशज चन्द्रवंशी या ऐलवंशी के नाम से प्रख्यात हुए। पुरूरवा के पुत्र अमवसु के कान्यकुब्ज (कन्नौज) और उसके पड़पोते काश ने काशी की स्थापना की। पुरूरवा का एक प्रपौत्र ययाति, जो प्रतिष्ठान की गद्दी पर था, बड़ा प्रतापी निकला। उसने चारों ओर अपना राज्य बढ़ाया, जिससे वह पहला चक्रवर्ती राजा कहलाया। उसके पाँच पुत्र—यदु, तुर्वसु, द्रुह्य, अनु और पुरु—थे। यमुना के पश्चिमी भाग और चंबल नदी से शोण नदी तक का विस्तृत प्रदेश उनको बाँट दिया गया। पुरूरवा के प्रतिष्ठानवाले वंशज पौरव कहलाये। यदुवंशी की यादव और हैहय शाखाओं ने आगे चलकर इतिहास में बड़ी ख्याति प्राप्त की। यदुवंश के एक राजा शशिबिन्दु ने द्रुह्यु और पौरव राज्यों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। उसीकी पुत्री बिन्दुमती ने अयोध्या के इक्ष्वाकुवंशी राजा मान्धाता से विवाह करके सूर्य और चन्द्रवंश को मिला दिया, जिससे राजनीतिक परिस्थिति में भारी हेरफेर हो गया। मान्धाता ने पौरवों के देश, कन्नौज और सम्भवतः आनवों पर सफल आक्रमण किए। सम्बन्धी होने के कारण यादवों को उसने छोड़ दिया, किन्तु दक्षिण के हैहय देश को जीता। उसके भय से कुछ आनव और द्रुह्यओं को पंजाब की ओर भागना पड़ा, और कुछ आनव विदेह के पूर्व की ओर भाग गए। इस प्रकार इक्ष्वाकुवंश के उत्थान से पुरुवंश निस्तेज और श्रीहीन हो गया।

पुरुवंश की 'हैहय' शाखा ने प्रबलतापूर्वक इक्ष्वाकुवंश का विरोध जारी रखा और तीन पीढ़ी में ही मध्य भारत पर अपना आतंक और आधिपत्य जमा दिया। हैहयों में कार्तवीर्य अर्जुन बड़ा प्रतापी, दिग्विजयी सम्राट् हुआ। यद्यपि नर्मदा-तटस्थ भार्गवों ने कान्यकुब्ज और अयोध्या की सहायता से हैहयों को कुछ समय तक के लिए दबा लिया था, तथापि वे शीघ्र ही सँभल गए और उन्होंने शक, यवनों, कम्बोजों, पारदों और पहलवों की सहायता से अयोध्या और कान्यकुब्ज को विजय करके अधीनस्थ कर लिया। इक्ष्वाकुवंशी राजा सगर ने फिर अपने वंश का प्राधान्य स्थापित कर दिया और हैहय वंश का दलन कर दिया।

आर्य सभ्यता उन्नति की चोटी पर

हैहय वंश के क्षीण होने पर चन्द्रवंश का झंडा दुष्यन्त और उसके सुप्रख्यात पुत्र भरत ने उठाया। प्रतिष्ठानपुर का मोह छोड़कर हस्तिनापुर में राजधानी स्थापित करके भरत और उनके वंशजों ने पाञ्चाल और काम्पिल्य तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया। किन्तु एक बार फिर इक्ष्वाकुवंश का प्रताप बढ़ा। भगीरथ, दिलीप, रघु और दशरथ का पराक्रम बढ़ते-बढ़ते इक्ष्वाकुवंशी श्री रामचन्द्रजी के समय तक अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया। श्रीरामचन्द्रजी ने सुदूर दक्षिण और लङ्का तक में अयोध्या की प्रभुता स्थापित कर दी। उनके समय में आर्य सभ्यता अपनी सबसे ऊँची चोटी पर पहुँची। उनका चरित्र आर्य जाति के लिए आदर्श हो गया, यहाँ तक कि वह ईश्वर की तरह पूजे जाने लगे। उत्ताल तरङ्गमाला की तरह उठकर इक्ष्वाकुवंश श्री रामचन्द्रजी के बाद पतनोन्मुख होकर अस्त हो गया। फिर भी उस वंश के राजन्य बुद्ध भगवान् के समय तक राज्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

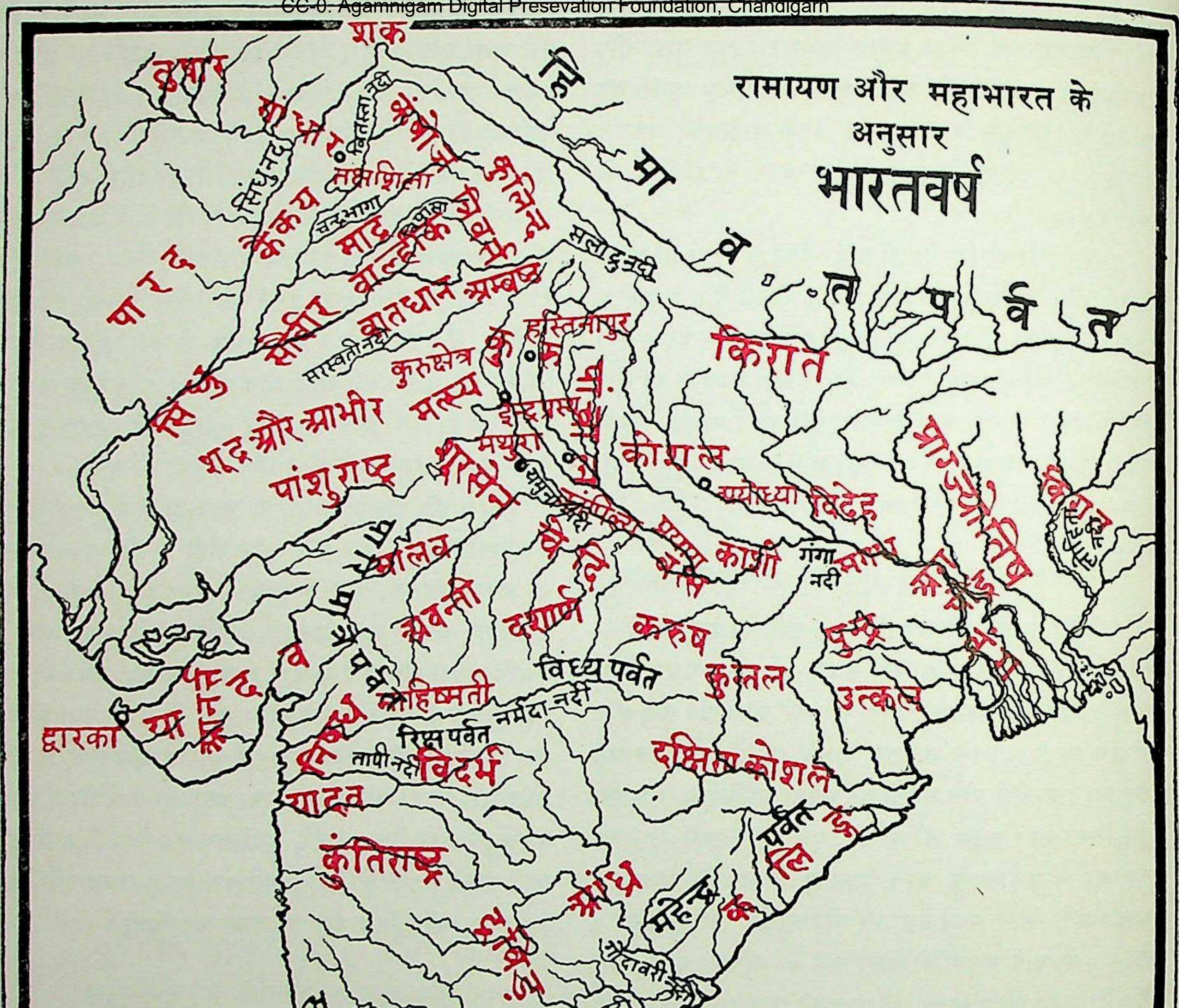

इस मानचित्र में नदियों और पर्वतों के नाम एक रंग में और नगर, देश तथा जातियों के दूसरे रंग में दिए गए हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करते रहे। इक्ष्वाकुवंश के क्षीण हो जाने पर फिर चन्द्रवंशी शाखाओं का उत्थान हुआ। किन्तु इन लोगों में एकता का अभाव था। यादव और पौरव इनकी सबसे प्रबल शाखाएँ थीं। यादवों के कई राज्य थे, जिनमें मथुरा के अन्धक और द्वारका के वृष्णि सबसे प्रमुख थे। इनके सिवा शाल्व, माहिष्मती, विदर्भ, अवन्ति और दशार्ण के भी यादव राज्य थे। इस प्रकार काठियावाड़ और गुजरात, नर्मदा-तट, दक्षिण, मध्य और पूर्वी राजस्थान और मथुरा तक यादवों का प्रभुत्व था। दूसरा प्रबल राज्य हस्तिनापुर का था। यद्यपि वहां के राजा संवरण को भरत-वंशज राजा सुदास ने, जिसकी विजय वैदिक साहित्य में वर्णित है, हराकर भगा दिया था, तथापि सुदास के बाद उसने अपना राज्य ही वापस नहीं छीन लिया वरन् उत्तर-पाञ्चाल को भी जीत लिया। संवरण का पुत्र कुरु और भी प्रतापी निकला और दक्षिण पाञ्चाल को जीतकर उसने कौरववंश का प्रभुत्व प्रयाग तक पहुँचा दिया। स्थूल रूप से सिन्धुनद से प्रयाग तक कौरवों का आधिपत्य जमा था।

पौरवों की एक शाखा और भी थी, जिसने बड़ी ख्याति पाई। वे कुरु के वंशज वसुचैद्य के पुत्र वृहद्रथ के नाम से 'वार्हद्रथ' कहलाए। इस वंश का सबसे प्रसिद्ध राजा जरासन्ध था, जो मगध में राज्य करता था। उसके अधीनस्थ मथुरा का अन्धक-वंशज कंस और चेदिराज शिशुपाल ऐसे निर्भीक और बलवान् राजा थे। उसने अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग, पुण्ड्र, आदि प्रदेश विजय किए। कंस तो उसका दामाद ही था और शिशुपाल उसकी सेना का प्रधान सेनाध्यक्ष था। उसने मथुरा से यादवों को भी निकाल दिया था। ऐसा प्रतीत होता है कि मथुरा से असम और उड़ीसा से राजस्थान और नर्मदा तक उसका साम्राज्य फैला हुआ था। श्रीकृष्ण, भीमसेन और अर्जुन ने मल्लयुद्ध में जरासन्ध को मार डाला, जिससे मगध-राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। यद्यपि वार्हद्रथों का साम्राज्य महाभारतकाल ही में नष्ट हो गया तथापि उनके वंशज छठी शताब्दी ईस्वी पूर्व तक अवन्ति (आधुनिक उज्जैन) में राज्य करते रहे।

महाभारत का युद्ध

पाण्डवों की महिमा एकाएक इतनी बढ़ी कि उससे कौरवों की उनके साथ पहले तो ईर्ष्या, फिर द्वेष और अन्त में शत्रुता हो गई। इसी शत्रुता से कुरुक्षेत्र में ऐसी समराग्नि प्रज्वलित हुई, जिससे कौरवों का नाश और पाण्डवों का ह्रास ही नहीं हुआ, वरन् आर्य-जाति के पतन का वही मुख्य साधन हो गई। भारत के इतिहास में राम-रावण के युद्ध के बाद घोर विनाशक युद्ध महाभारत का ही हुआ। कौरवों और पाण्डवों ने जितनी बड़ी सेना कुरुक्षेत्र में जमा की, उतनी बड़ी शायद आज तक फिर कभी न जमा हुई और न वैसे योद्धा ही कभी एकत्रित हो सके। इस युद्ध का समय १४०० ईस्वी पूर्व अनुमान किया जाता है। कौरवों के विनाश के बाद ही यादवों में ऐसा गृहयुद्ध ठना कि वे भी नष्ट हो गए।

महाभारत-युद्ध के बाद के भारत का राजनीतिक मानचित्र

कौरव-पाण्डवों और यादवों के पतन से भारत का राजनीतिक मानचित्र शीघ्रता से बदलने लगा। कौरवों को टीड्डियों (?) के उत्पात, गंगा की बाढ़ आदि के कारण अपनी राजधानी धीरे-धीरे हस्तिनापुर से हटाकर कौशाम्बी में, जो वत्स देश में थी, स्थापित करनी पड़ी। यहाँ का राजवंश शुद्ध कौरववंश न था, वरन् कौरवों और पाञ्चालों के मिश्रण से वह प्रकट हुआ। ये मिश्रित समुदाय कुरु-पाञ्चाल के नाम से प्रख्यात हुए। इस समय तक उत्तरी भारत में दस राज्य उल्लेखनीय थे--

गान्धार (पेशावर प्रान्त), केकय (गान्धार से व्यास नदी तक) मद्र (काश्मीर से रावी नदी तक), उशीनर (मध्य-देश), मत्स्य (भरतपुर, अलवर, जयपुर प्रदेश), कुरु-पाञ्चाल (बरेली, बदायूँ, फर्रुखाबाद), काशी, कोसल (अवध) और विदेह (तिरहुत)। इस काल में और राज्यों के स्वामी केवल राजा कहलाते थे, किन्तु विदेहपति की पदवी सम्राट् की थी। इसी से इस समय को 'जनकों' (विदेह के राजन्यों) का युग कहते हैं। विदेह के जनकों का आधिपत्य संभवतः ईस्वी पूर्व छठी सदी तक चलता रहा। इस युग में उपर्युक्त राज्यों के अलावा विदर्भ (बरार), कलिङ्ग (उड़ीसा), अस्सक (अश्मक?) (गोदावरी के आसपास), भोज (?) राज्य भी थे। उधर अन्ध्र, पुण्ड्र, शबर, पुलिन्द (विदिशा प्रान्त), मूतिव (मूषिक ?) आदि अनार्य जातियाँ दक्षिणी सीमाओं पर राज्य करती थीं।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से कई अनुमान लगाए जा सकते हैं:--

(१) वैदिक और पौराणिक जातियों और वंशों में विशेष विभिन्नता नहीं है। (२) वैदिक वर्णनों से यह जान पड़ता है कि आर्य जाति और वंश का प्रसार पश्चिम से बढ़कर मध्य, पूर्व और दक्षिण में हुआ; किन्तु पौराणिक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अनुश्रुतियों के अनुसार आर्य मध्य देश (आधुनिक उत्तर प्रदेश) से चारों ओर फैल गए। पश्चिमी प्रान्तों में उनका विस्तार अनुमानतः ईस्वी पूर्व सत्रहवीं शताब्दी में माना गया है। पौराणिक अनुश्रुति आर्यों के बाहर से आने का उल्लेख नहीं करती। (३) वैदिक अथवा पौराणिक घटनाओं को कालक्रमबद्ध करना दुस्साध्य है। बड़ी घटनाओं का काल अनुमान द्वारा निश्चित करने में कुछ सफलता मिली है, किन्तु वह भी संदिग्ध है। (४) इतना तो फिर भी मान्य हो सकता है कि प्राचीन भारत में मानव, ऐल और सौद्युम्न वंशों ने बड़ी ख्याति प्राप्त की और आर्य-सभ्यता का सारे देश में विस्तार उनके ही साहस, पराक्रम और परिश्रम का फल है। (५) आरंभ में आर्यों के दल और राज्य छोटे-छोटे थे, किन्तु बाद को बड़े राज्यों की ही नहीं, वरन् साम्राज्यों की भी स्थापना हो गई। किन्तु कोई भी ऐसा साम्राज्य शायद नहीं हुआ, जो सारे भारत पर आधिपत्य स्थापित कर सका हो। साम्राज्य को पुत्रों और वंशजों में बाँटने की प्रथा, वंशानुगत ऐश्वर्य की आकांक्षाएँ एवं कलह, बड़े साम्राज्य के सुसंगठित शासन के अभाव और यातायात के साधनों की कमी, आदि के कारण प्राचीन साम्राज्य [illegible] और [illegible] में छिन्न-भिन्न हो गए। किन्तु भारत ऐसे विशाल देश में अपनी सभ्यता को (जो हजारों वर्ष तक जीवित ही नहीं रही, वरन् जिसने संसार को योगक्षेम का सन्देश दिया) फैलाने और उच्च बनाने का कार्य एक ऐसा महान् कार्य है कि जिस पर कोई भी जाति अभिमान कर सकती है। आर्यों की इस सफलता की तुलना संसार के इतिहास में बहुत कम मिलती है। उनके इस अपूर्व प्रयास के कारण ही आज भी भारत में आर्य-सभ्यता जीती-जागती और प्रगतिशील बनी हुई है।

दो हजार वर्ष के उपर्युक्त इतिहास की घटनाओं का ज्ञान तो हमें कम प्राप्त है, किन्तु उस समय की सभ्यता का चित्र अधिक स्पष्ट और आदरणीय है। आर्य-सभ्यता के विकास की जड़ें वैदिककाल में ही दृढ़ हो गई थीं। अतएव वैदिक काल के जीवन का स्पष्ट ज्ञान हो जाने से उसके पश्चात् की सभ्यता के विकास का ज्ञान सरल और सुग्राह्य हो जायगा। सुभीते के लिए वैदिक काल को यहाँ हमने दो भागों--पूर्व वैदिक काल और उत्तर वैदिक काल--में विभक्त कर दिया है। आइए, अब इसी काल-विभाजन के अनुसार आर्य-सभ्यता का विवरण प्रस्तुत करें।

आर्य-सभ्यता--(क) पूर्व वैदिक काल

सामाजिक व्यवस्था

वैदिक काल में आर्य लोगों का जीवन अस्थिर नहीं था। उनका गृहस्थ-जीवन संगठित और परिमार्जित था। उनका कुटुम्ब पैतृक सिद्धान्तों पर बना था, जिसमें गृहपति की आज्ञा का पालन करना सबका कर्त्तव्य था। यद्यपि राजाओं में बहुविवाह होते थे, तथापि साधारणतया एक स्त्री से विवाह ही आदर्श माना जाता था और वही प्रचलित था। पूर्व वैदिक काल में बाल-विवाह का रिवाज न था। स्त्री-पुरुष दोनों को विवाह करने की बहुत-कुछ स्वतन्त्रता थी। भाई-बहनों और पिता-पुत्री में विवाह वर्जित था। विवाह तक तो कन्या का भार उसके माता-पिता या भ्राताओं पर था, किन्तु विवाह के बाद वह अपने पति के घर चली जाती थी और उसकी रक्षा करना उसी का कर्त्तव्य हो जाता था। विवाह में दहेज की प्रथा थी। कभी लड़की की कीमत देकर भी विवाह होता था। विवाह का विच्छेद मृत्यु तक नहीं हो सकता था। विवाह का लक्ष्य सन्तान उत्पन्न करना था। यदि स्त्री के सन्तान होती, तो विधवा हो जाने पर उसका पुनर्विवाह नहीं होता था। सन्तान न होने से यदि विधवा चाहती तो अपने देवर से व्याह कर सकती थी। सती-प्रथा का आरम्भ नहीं हुआ था। विवाहित स्त्री का कुटुम्ब में मान और आदर था। वह पति के साथ धार्मिक कार्यों में भाग लेती थी। उसकी इच्छाओं का श्वशुर, सास, पति के भाई-बहन सभी आदर करते थे। गृहस्थी का निर्वाह करने में उसका अनुशासन माना जाता था। पिता-पुत्र के सम्बन्ध भी अच्छे थे। पिता के मरने पर उसकी सम्पत्ति पुत्र को मिलती थी न कि पुत्री को, परन्तु पुत्र न होने की दशा में पुत्री को सम्पत्ति का अधिकार प्राप्त होता था। इस बात के उल्लेख तत्कालीन साहित्य में मिलते हैं।

आर्थिक जीवन

आर्यों की मुख्य जीविकावृत्ति पशुपालन और कृषि पर निर्भर थी। जोतने और बोझा ढोने के लिए बैल रखे जाते थे और सवारी, घुड़दौड़ और युद्ध के लिए घोड़े। इनके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अलावा गाय, भैंस (?), बकरी, भेड़, गधे और कुत्ते भी पाले जाते थे। जानवरों के कान पर उनके स्वामी का चिह्न बना दिया जाता था। 'गोपाल' पशुओं को 'गोष्ठ' में चराने ले जाते थे। लोग शिकार भी खेलते थे।

उर्वरा भूमि की जुताई में छः, आठ और बारह तक बैल नाथे जाते थे। यद्यपि कुओं, झीलों और कुल्याओं (नहरों) एवं नालियों (सूर्मी, सुशिरा) आदि से सिंचाई होती थी, किन्तु फिर भी कृषि जलवृष्टि पर ही निर्भर थी। 'शकन' या 'करीश' नाम की खाद का खेतों में प्रयोग किया जाता था। दैवी उत्पात—जैसे अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डी, कीड़ों और पक्षियों—से खेती को भय रहता था। अनाजों को वे यव या धान्य कहते थे। यद्यपि धान्यों के नाम नहीं मिलते तथापि उत्तरकाल के संकेतों से जान पड़ता है कि वे चावल, जौ, सरसों, तिल, मसूर, गोधूम (गेहूँ) आदि की खेती करते थे।

उद्योग-धन्धे और व्यापार

बढ़ई (तक्षण) रथ और गाड़ियाँ तो बनाते ही थे, वे लकड़ी पर नक्काशी का काम भी करते थे। लोहार (कर्मार) धातु के बरतन और औजार बनाते थे। सोनार सोने के गहने या आभूषण बनाते। चमड़े का काम करनेवाले गोफन, धनुष की ज्या, तसमे, रास, कोड़े, थैले और डोल बनाते थे। चमड़े की रँगाई भी होती थी। कपड़ा बुननेवाले (वाय) करघों पर कपड़े बुनते। स्त्रियाँ अन्य गृहस्थी के कामों के सिवा जरी का या बेलबूटे का काम, कताई, चटाई की बुनाई और पिसाई का काम करती थीं। वे कृषि-कार्य में भी योग देती थीं। वणिक विनिमय द्वारा व्यापार करते थे। मोल-तोल पर झकझक होती थी। इस विनिमय का मान प्रायः गाय होती थी, किन्तु 'निष्क' नामक सोने के सिक्के भी प्रचलित थे। जमीन का व्यापार नहीं होता था, यद्यपि उस पर स्वामी का अधिकार माना जाता था। कर्ज भी चलता था, विशेषतः जुआ खेलने के व्यसन के कारण। मूल का अष्टमांश अथवा षोड़शांश शायद सूद में लिया जाता था। यदि कर्ज लेनेवाला अदा न कर सके तो वह दास बनकर उऋण हो सकता था। स्थल के अलावा जल-मार्ग से भी नावों पर व्यापार होता था।

आहार, पोशाक और रहन-सहन

आर्य लोग दूध, पनीर, दही और घी के शौकीन थे। उनके साथ अनाजों को मिलाकर वे अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थ बनाते थे। जिन्हें मांस का शौक था, वे प्रायः बकरी और भेड़ का मांस खाते थे। गाय को मारना वे बुरा मानते थे। उसे वे 'अघन्य' समझते थे। हाँ, ब्याह-शादी के अवसरों अथवा अतिथि-सत्कार के लिए बैल का मांस भी चलता था। मूजवन्त पर्वत में उत्पन्न होनेवाली सोम लता से वे एक रस तैयार करके उसे बड़े चाव से पीते और उसके गुण का गान करते थे। उससे उन्हें सरूर और हर प्रकार की स्फूर्ति मिलती थी। कुछ लोग 'सुरा' नाम की नशीली शराब भी पीते थे। उसके नशे में कभी-कभी सभाओं में तू-तड़ाक से मारपीट तक की नौबत आ जाती थी।

पोशाक में उन्हें सादगी पसन्द थी। वे दो वसनों का प्रायः प्रयोग करते थे—एक नीवी (कमर) पर और दूसरा अधिवास या ऊपरी भाग के लिए। उनके वसन प्रायः भेड़ों के ऊन के होते थे। उनके वस्त्र पर बेलबूटे और जरी का काम भी बनाया जाता था। त्यागी अथवा ब्रह्मचारी लोग चर्माम्बर (अजिन) का परिधान बनाते थे। सिले हुए कपड़े या तो तब प्रचलित नहीं हुए थे या उनका रिवाज न था। कपड़ों की सादगी की पूर्ति वे आभूषणों के प्रेम से कर लेते थे। स्त्री-पुरुष दोनों कर्णफूल, कंठे, मालाएं, अँगूठियाँ, हाथों और पैरों के कड़े और रत्नों का बड़े शौक से प्रयोग करते थे। दोनों लम्बे बाल रखते थे। पुरुष जूड़े की तरह बाल बाँधते और स्त्रियां गूँथकर बाँधती थीं। बालों की तेल-कंघी होती रहती थी। बाल बनवाने का रिवाज न था। यद्यपि कुछ लोग दाढ़ी मुड़वाते थे, किन्तु फैशन दाढ़ी रखने का था।

आर्य लोग मनचले और आमोद-प्रमोद के प्रेमी थे। स्त्रियों में पर्दा न था। वे बेधड़क पुरुषों से मिलती-जुलती थीं। धार्मिक तथा सामाजिक संस्थाओं, खेल-कूद एवं आमोद-प्रमोद में वे भी भाग लेती थीं, जिससे कि सामाजिक जीवन में कोमलता, मधुरता और सुन्दरता का निरन्तर संचार रहता था। युवकों और युवतियों में मैत्री और प्रेम भी इन्हीं अवसरों पर कभी-कभी हो जाता था। युवक युवतियों को प्रसन्न और अनुकूल बनाने के लिए तन, मन, धन और सबसे अधिक वचनों से विविध प्रयत्न किया करते थे। युवतियाँ वीर, धीर और तेजस्वी पुरुषों को प्राप्त करने की इच्छा रखती थीं।

आर्यों को जुआ खेलने की बड़ी लत थी। वे गहरे दाँव लगाते थे। वे कुछ न रहने पर अपना शरीर भी दाँव पर लगा देते थे और हारने पर दास हो जाते थे। किन्तु लड़कों को जुआ खेलने की आज्ञा न थी। इसके सिवा रथों की दौड़

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और घुड़दौड़ का भी उन्हें विचित्र व्यसन था। नाचने, गाने और बजाने का स्त्री-पुरुष दोनों को बड़ा प्रेम था। वे साथ मिलकर गाते, बजाते और नाचते थे। हाथ से और फँफकर बजाने के उनके कई बाजे थे। विजय का बाजा दुन्दुभी (ढोल) था।

धर्म-कर्म

आर्यों के धार्मिक विचार और आचार अति सरल थे। वैदिक धर्म में पितृपूजा, देवपूजा प्रमुख कर्त्तव्य थे। उनका पूजा और कर्म का मुख्य साधन यज्ञ था। उनके देवता चार प्रकार के थे। प्रथम, वे देवता जो प्रकृति की प्रकाशक और संचालक शक्तियों के काल्पनिक स्वरूप थे--जैसे द्यौ, पृथ्वी, इन्द्र, वरुण, सूर्य, रुद्र, मरुत्, वायु, पर्जन्य (मेघ), उषा आदि। दूसरे, वैसे ही कल्पित गृह-देवता--जैसे अग्नि और सोम। तीसरे, भावजन्य देवता--जैसे श्रद्धा और मन्यु (क्रोध)। चौथे, गौण देवता--जैसे गन्धर्व, अप्सरा आदि। कभी-कभी वे देवताओं की कल्पना पशुरूप में भी करते थे। किसी विशेष देवता को स्वानुकूल और प्रसन्न करने के लिए वे विधि-विधानपूर्वक यज्ञ करते थे। यज्ञों में दूध, अन्न, घी, सोम और कभी-कभी मांस का भी प्रयोग होता था। यज्ञों में निर्दिष्ट विधि के अनुसार वेद-मंत्रों के साथ हवन किया जाता था। यद्यपि देवताओं से उन्हें भय भी रहता था, तथापि उनकी देवता-सम्बन्धी भावनाओं की प्रेरणा केवल भय के कारण न थी। देवताओं को मित्र बनाना और उन्हें प्रसन्न करके अपने उद्देश्य की सिद्धि करना उनका ध्येय था। उनका विश्वास था कि विधिपूर्वक यज्ञ करने से देवता उद्देश्य-पूर्ति करने को वाध्य हो जाते हैं। यज्ञ के विधान ऐसे लम्बे-चौड़े थे कि उनके करने के लिए कम से कम सात व्यक्तियों की आवश्यकता थी। बड़े यज्ञों में खर्च भी अधिक होता था, जिससे साधारण व्यक्ति उनके करने में असमर्थ थे।

अनेक देवताओं के स्वरूप की कल्पना करते हुए भी वैदिक तत्वज्ञों ने उनमें विविध रूप में एक ही देवाधिदेव के प्रकाश का चमत्कार देखा। इसी से यह कहना अनुचित न होगा कि तत्वतः आर्य एकेश्वरवादी थे। वस्तुतः वे सृष्टि को भी उसी अव्यक्त विराट् पुरुष का व्यक्त रूप मानते थे। उसी विराट् पुरुष के नाना नाम-रूप देश-काल-पात्र के अनुसार बहुधा पुकारे जाते हैं। धर्म-कर्म एवं यज्ञादि से बल, स्फूर्ति, तेज, पराक्रम, समृद्धि और स्वर्ग की कामना की जाती थी। ऐहिक लोक में अभ्युदय और विहित सफलता की ओर ध्यान रहता था। यद्यपि वैदिक आर्य यमलोक को मानते थे तथापि मरणोपरान्त पारलौकिक चिन्ता अथवा निराशावाद उनको कभी चिंतित अथवा व्यथित नहीं करता था। वैदिक आर्य प्रायः मृतकों को जला देते थे। किसी-किसी दशा में 'निखात' (दफनाने) अथवा शव को पशु-पक्षी के आहार के निमित्त छोड़ देने का भी रिवाज था। वे पितरों का श्राद्ध और तर्पण भी करते थे।

विद्या और साहित्य

वैदिक आर्यों का आदर्श सरल किन्तु उच्च जीवन का था। विद्यार्थी गुरु के घर पर रहकर वेदादि का अध्ययन करते थे। उनको बहुत सीधा-सादा ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करना पड़ता था। उनकी दिनचर्या बहुत समझ-बूझकर बनाई गई थी। आलस्य, व्यर्थ बकवाद, अनुद्योग और व्यर्थ आलाप-प्रलाप के लिए गुंजाइश ही नहीं रक्खी गई थी। गुरु की सेवा और शुश्रूषा करना अनिवार्य-सा था। मेधा, धारणाशक्ति और प्रज्ञा तीनों का विकास करना शिक्षा का उद्देश्य था। धारणाशक्ति के बिना उन दिनों काम भी नहीं चल सकता था, क्योंकि विद्यार्थियों को वेद-वेदांग सस्वर कण्ठाग्र करने पड़ते थे। उच्चारण और स्वर में जरा-सी भी भूल अक्षम्य मानी जाती थी। ऋग्वेद-संहिता की भाषा, व्याकरण, काव्य-कल्पना और विचार सभी व्यवस्थित और प्रौढ़ हैं। ध्वनि, स्वर और शब्द-विद्या काफी उन्नत थी। वैदिक शब्दों, स्वरों और वाक्यों की शुद्धता की रक्षा के लिए ही 'प्रातिशाख्य' और 'अनुक्रमणी' की रचना की गई थी।

राजनीतिक संगठन

वैदिक आर्यों के राजनीतिक संगठन का मूलाधार गृह अथवा कुल था। कुलवाले कुलपति या गृहपति के आज्ञानुवर्ती होते थे। कई कुलों के समूह और उनके निवासस्थान को ग्राम कहते थे। 'ग्रामणी' उसका नेता होता था। ग्राम से बड़ा संगठन 'विश' कहलाता था और विशों से बड़ा 'जन' कहलाता था। पर यह अनुमान किया जाता है कि जन का अर्थ कबील है और जनों का सामूहिक रूप विश कहलाता था। पर यह अनुमान संदिग्ध-सा है। राज्य के लिए 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग किया जाता था।

राष्ट्र का अधिपति राजा शान्ति अथवा समर में जन का नेता माना जाता था। वह बड़े ठाठ के साथ महल में अपने सेवकों के साथ रहता था। उसकी आमदनी का मुख्य साधन 'बलि' अर्थात् कर था। उसका चुनाव अथवा उसके उत्तराधिकारी के राजस्व का संस्थापन जनों की सभा-समिति करती

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वैदिक युग के एक साधारण देवता 'रुद्र' ही आगे चलकर विष्णु की भाँति हिन्दुओं के द्वितीय प्रधान देवाधिदेव 'शिव' बन गए, जिनका भव्यतम रूप हमें एलिफैंटा के कंदरालय की इस प्रख्यात मूर्ति में देखने को मिलता है।

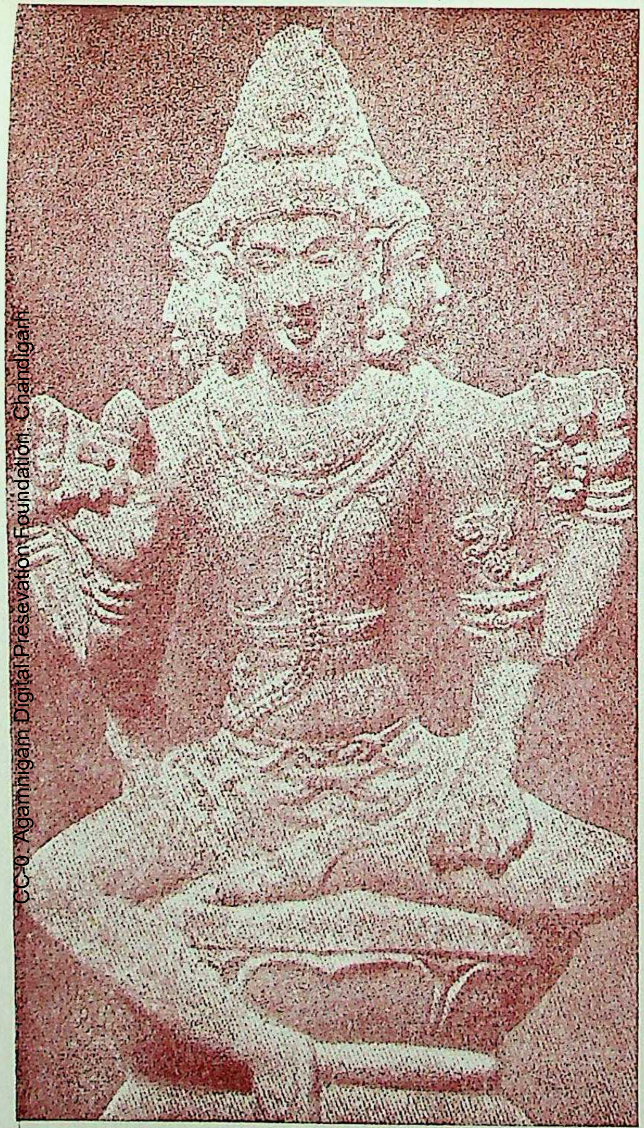

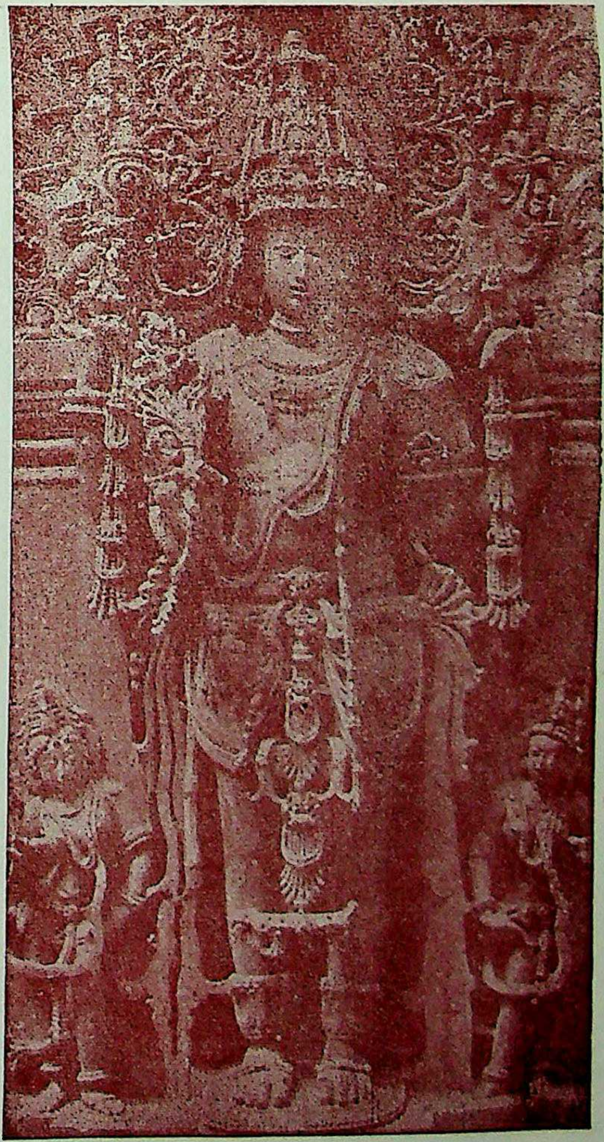

वैदिक युग की कोई शिल्प-सामग्री आज के दिन उपलब्ध नहीं होने के बावजूद, हम यह अनुमान कर सकते हैं कि प्राचीन आर्य किस प्रकार देवताओं की कल्पना करते रहे होंगे। प्रस्तुत चित्रों में बाईं ओर से दाहिनी ओर को क्रमशः 'ब्रह्मा', 'यम' तथा 'विष्णु' की प्रतिमाएँ दिग्दर्शित हैं, जो निस्संदेह हैं तो बहुत बाद की, तथापि वे मूलतः प्राचीन परम्पराओं पर ही आधारित हैं, इसमें संदेह नहीं है। इनमें 'विष्णु' का आगे चलकर बहुत महत्त्व बढ़ गया और शिव की भाँति वह हिन्दुओं के सर्वप्रधान देवाधिदेव बन गए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थी। सभा या समिति के संगठन का रूप निश्चित प्रकार से नहीं ज्ञात होता। सभा का प्रधान ईशान कहलाता था। राजा का निर्वाचन, निष्कासन अथवा पुनर्निर्वाचन सभा करती थी। समिति के सहयोग और परामर्श से राजा शासन करता था।

वैदिक आर्य यों तो शान्तिप्रिय थे, किन्तु अवसर पड़ने पर वे युद्धरत भी हो जाते थे। युद्ध बहुधा आत्मरक्षा एवं विजय-कामना दोनों के लिए होते थे। सेना में पैदल और रथी रहते थे। रथों में घोड़े जोते जाते थे और रथ चमड़े से मढ़ा होता था। घुड़सवार अथवा हाथियों की सेना का प्रयोग देखने में नहीं आता। सैनिक धनुष-बाण, फरसे, बर्छे, भाले, असि और गोफनों का प्रयोग करते थे। शरीर-रक्षा के लिए वे धातु के बने वर्म, अत्क, हस्तघ्न, शिरस्त्राण आदि पहनते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आर्य-सभ्यता—(ख) उत्तर वैदिक काल

२००० वर्ष के इतिहास में पूर्वकाल से उत्तरकाल की सभ्यता में परिवर्तन होना आश्चर्यजनक नहीं। उपर्युक्त क्रम से संक्षेप में मुख्य परिवर्तनों का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है।

सामाजिक संगठन

यद्यपि ऋग्वेद में ब्राह्मण, राजन्य, वैश्य और शूद्र का उल्लेख हुआ है, किन्तु उस समय वर्ण-व्यवस्था जटिल न थी। कम-से-कम पहले तीन वर्णों में खानपान और विवाह की सामाजिक विभिन्नता नगण्य थी। पर धीरे-धीरे उसमें कठोरता बढ़ने लगी। यहाँ तक कि सूत्र-काल में वर्णाश्रम-धर्म की व्यवस्था जन्म से गिनी जाने लगी एवं प्रौढ़ हो गई। सूत्र-काल में वर्णों में रोटी-बेटी का सम्बन्ध बहुत नियन्त्रित और करीब-करीब बन्द-सा हो गया, यद्यपि कुछ-कुछ द्वार खुला रखा गया। प्रत्येक वर्ण के कर्त्तव्य निश्चित कर दिए गए। तथापि शूद्र की परिस्थिति बहुत खराब नहीं हुई। मनुष्य का जीवन चार आश्रमों में बाँट दिया गया—ब्रह्मचारी, गृहस्थ, भिक्षु और वैखानस।

वर्ण-व्यवस्था के दृढ़ और जटिल हो जाने से एवं आर्थिक उन्नति होने से रहन-सहन में भी परिवर्तन हो गया। विवाह आठ प्रकार के माने गए, जिनमें से 'राक्षस' और 'पैशाच' विवाह गर्हणीय गिने जाते थे। दहेज लेकर विवाह करना 'आसुर' समझा जाता था। प्रत्येक गृहस्थ का यह कर्त्तव्य निश्चित हुआ कि वह पञ्च महायज्ञ प्रतिदिन किया करे। शूद्रों का उपनयन नहीं होता था, अतएव वे द्विज नहीं गिने जाते थे।

अर्थ-व्यवस्था

कृषि में उन्नति हुई। हल के बड़े-बड़े फाल बनाए जाने लगे, जिनके चलाने के लिए बारह जोड़ी बैलों तक की आवश्यकता पड़ गई। गोबर की खाद का भी खेतों में प्रयोग होने लगा। साल में दो फसलें पैदा की जाने लगीं। मुद्ग (मूँग ?) और माश (उड़द) बोए जाने लगे। इसी प्रकार कला-कौशल और व्यापार में भी उन्नति हुई। नए धंधे और रोजगार पैदा हो गए। मछलीवाले, हल चलानेवाले, धोबी, नाई, रंगसाज, बूचड़, चाकर, समाचारवाहक, जौहरी, नट, मल्लाह, डलिया-रस्सी बनानेवाले और कुम्हार आदि का उल्लेख पाया जाता है। रुपए का लेन-देन बढ़ गया। चाँदी, लोहा, कांसा, सीसा, जस्ता और टीन (त्रपु) का भी व्यवहार होने लगा। सोना-चाँदी और तांबे के कई प्रकार के सिक्के भी प्रचलित हो गए। कई प्रकार के नाप-तौल के साधन बनाए गए। सूद की दर दस सैकड़ा थी, किन्तु दो से पाँच सैकड़ा मासिक सूद भी प्रचलित था। ब्राह्मण और क्षत्रिय के लिए सूद लेना मना था। वे कृषि और व्यापार-कार्य भी अच्छा नहीं समझते थे।

धर्म-कर्म

धार्मिक क्षेत्र में पहले तो कर्मकाण्ड में बड़ी उन्नति हुई, अथवा यों कहिए कि पेचीदगी बढ़ गई, कारण यज्ञों में अब सात के बदले सत्रह कर्मकाण्डियों की आवश्यकता हो गई। किन्तु यज्ञ के विधान में कुछ कृत्य वास्तविक के बजाय लाक्षणिक गिने जाने लगे। यज्ञ की परिभाषा विस्तृत और व्यापक हो गई। सृष्टि-रचना और सृष्टि-पालन आदि भी एक प्रकार का यज्ञ माना जाने लगा। आत्मन्, कर्म, पुनर्जन्म, माया और मुक्ति की चर्चा दिनोंदिन बढ़ने लगी। यज्ञादि कर्मकाण्ड से आत्मज्ञान अधिक श्रेयस्कर समझा जाने लगा। 'तत्वमसि' का मन्त्र उपनिषदों में प्रचलित हो गया। इसके सिवा वैदिक देवताओं में से रुद्र और विष्णु का महत्व अधिकाधिक बढ़ने लगा और अन्य देवताओं का महत्त्व घटने

लगा। इस प्रकार आधुनिक हिन्दू धर्म की रूपरेखा स्पष्ट CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh तया निखरने लगी।

विद्या-शिक्षा

आर्यों का विद्या-व्यसन भी खूब उन्नति करता रहा। शिक्षा का आदर्श श्रद्धा, मेधा, प्रज्ञा, धन, आयु और अमृतत्व प्राप्त करना था। शिक्षा प्राप्त करने के लिए बारह वर्ष, बत्तीस वर्ष अथवा जीवनपर्यन्त के शिक्षा-क्रम बना दिए गए थे। विद्यार्थी और विद्वान् भ्रमण करके शिक्षा को प्राप्त अथवा प्रदान करते थे। परिषदों और सभाओं में ज्ञान-विज्ञान पर सत्यासत्य-निर्णय के लिए शास्त्रार्थ और व्याख्यान होते थे। स्त्रियाँ भी ऊँची-से-ऊँची शिक्षा प्राप्त करके शास्त्रार्थ में भाग लेतीं और धर्म का निरूपण करती थीं। किन्तु धीरे-धीरे उनके अधिकार कम होते जाते थे। क्षत्रिय लोग विद्या और विद्वानों का समादर ही नहीं करते, वरन् स्वयं भी पारंगत होने की श्लाघ्य चेष्टा करते थे। वेदों का तत्व-निर्णय करने के लिए छः वेदांगों (शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, कल्प) की रचना हुई। उपवेद (धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, आयुर्वेद, स्थापत्यवेद), इतिहास और (प्राचीनतम) पुराणों का संकलन किया गया। कल्प का अंग विशेष रूप से बढ़ा। श्रौत, गृह्य और धर्म सूत्र उसी के उपांग हैं।

राजनीतिक संगठन

वैदिक आर्यों का आरम्भिक जीवन ग्राम और पुर की नींव पर अवलम्बित था। किन्तु धीरे-धीरे बड़े नगरों, राज्यों और साम्राज्यों का विकास हुआ, जिससे उनमें नागरिकता एवं राष्ट्रीयता की विशाल भावनाएँ उत्पन्न हो गईं। सम्राटों के लिए विशेष यज्ञों का विधान रचा गया। राजा के लिए 'राजसूय', सम्राट् के लिए 'वाजपेय', स्वराष्ट्र के लिए 'अश्वमेध', विराट् के लिए 'पुरुषमेध' और सर्वराट् के लिए 'सर्वमेध' यज्ञों का विधान बनाया गया। इससे यह स्पष्ट जान पड़ता है कि राजनीतिक विकास की विविध सीढ़ियाँ थीं, जो एक दूसरे से उत्तरोत्तर विस्तृत और बड़ी थीं। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक महत्वाकांक्षी राजा अपना आधिपत्य उत्तरोत्तर बढ़ाने में लग गया, जिससे शान्ति का वातावरण क्षीण होकर युद्ध का दौर-दौरा रहने लगा।

राजा की शक्ति यद्यपि बढ़ती चली गई, तथापि उसकी स्वच्छन्दता के बन्धन ज्यों-के-त्यों रहे। राजा के निर्वाचन की प्रथा जारी रही। कर्त्तव्य-विमुखता के लिए उसे राज्यच्युत करने का अधिकार जनसभा के हाथ में रहा। राज्याभिषेक के समय उसे जो वायदे करने पड़ते थे, उनसे वह बँध जाता था। मन्त्रियों और सभा-समितियों का भी दबाव उसे मानना पड़ता था। वैदिक सिद्धान्त के अनुसार राजा के ऊपर धर्म था। धर्म का प्रतिपालन करना उसका परम कर्त्तव्य था। किन्तु धर्म का प्रतिपादन ब्राह्मणों के हाथों में था। उसको ग्रामसंस्था, श्रेणी, जाति, कुल एवं जनपद के नियमों का सम्मान करना पड़ता था। वैदिक सिद्धान्त के अनुसार राजा में दैवी गुण तो अवश्य माने जाते थे, किन्तु उसके कोई दैवी अधिकारों का उल्लेख नहीं किया गया है।

राजा के मन्त्री रत्न कहलाते थे। पहले उनकी संख्या पाँच थी, किन्तु बाद में बारह हो गई। उनमें पुरोहित, राजन्य, सेनानी, संगृहीता, भागदुह आदि के सिवा महारानी, सबसे प्रिय रानी, त्यक्त रानी एवं अक्षावाप (द्यूत-मन्त्री) शामिल थे। अनुमान किया जाता है कि राजा के प्रमुख साथी और सेवक ही कालान्तर में मन्त्री हो गए। धीरे-धीरे इनकी संख्या सैंतीस तक पहुँची, जो कार्यसम्पादन में विलम्ब करनेवाली हो गई। अतएव मन्त्रिमण्डल से नौ मन्त्रियों की एक 'परिषद' की रचना की गई। राजा के नियन्त्रण एवं परामर्श के लिए सभा का होना आवश्यक एवं अनिवार्य था। सभा में खूब बहसें होतीं और निर्णय बहुमत से होता था। सभा के नियमों के उल्लंघन के लिए सभापति दण्ड देता था। सभा न्याय भी करती थी। सभा के सिवा 'समिति' का उल्लेख है, जो राजा को निर्वाचित करती थी। उसके संगठन के विषय में स्पष्ट पता नहीं चलता। कुछ विद्वान् कहते हैं कि वह सभा से बड़ी संस्था थी।

शासन-विधान का भी विकास हुआ। पूर्ववत् 'ग्राम' का मुख्य पदाधिकारी 'ग्रामणी' था। उसके ऊपर उत्तरोत्तर क्रम से 'दशग्रामी', 'विंशतिप' 'शतग्रामी' और उनके ऊपर 'अधिपति' था जो एक सहस्र ग्रामों का शासक था। अपने-अपने क्षेत्र में राजकर वसूल करना और न्याय करना इनके मुख्य कर्त्तव्य थे। शासन के १८ विभागों एवं उनके अध्यक्षों का उल्लेख मिलता है। ऐसे भी राज्यों का उल्लेख है, जिनमें राजा नहीं होता था। ऐसे राज्य 'गणराज्य' कहलाते थे। उनका शासन सभा-समितियों, प्रधानों और मुखियों द्वारा होता था। कभी-कभी ऐसे कई राज्य मिलकर रक्षार्थ 'संघ' बना लेते थे। 'गणराज्य' अथवा 'संघ' में सबसे बड़ा दोष यह था कि उनमें दलबन्दी हो जाती और व्यक्तिगत ईर्ष्या-द्वेष के बढ़ने से फूट पड़ जाती थी। शायद इसी कारण से वे पनपने न पाए और एक राजानुशासित राज्यों के आघात से चूर्ण होकर अन्त में नष्ट हो गए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सभ्यताओं का उदय—(२)
::सुमेरियन सभ्यता

प्रारंभिक सभ्यताओं के प्राचीनतम स्मारक नील, दजला-फरात, सिन्धु, गंगा-यमुना आदि नदियों की तलहटियों में ही मिले हैं, जिससे धारणा होती है कि इन्हीं में से किसी के तट पर सभ्यता की सर्वप्रथम किरणें फूटी होंगी। सिन्धु और गंगा-यमुना के अंचल में पनपनेवाली प्राचीन भारतीय सभ्यता का वर्णन हम कर चुके हैं, अब दजला-फरात के दोआबे में पाई गई एक अन्य समकालीन सभ्यता का हाल सुनाने जा रहे हैं। इसके जो कुछ भी स्मारक प्राप्त हुए हैं, उनसे ज्ञात होता है कि सुमेरियन लोग किन्हीं-किन्हीं बातों में अन्य समकालीन लोगों से भी बढ़े-चढ़े थे।

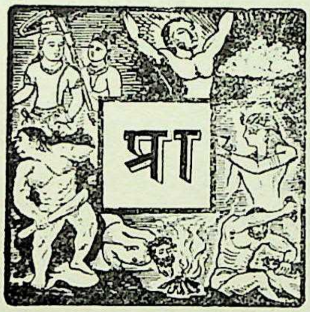

प्राचीन इतिहास के अधिकतर विद्वान् बहुत दिनों तक मिस्र की सभ्यता और उसकी राजसत्ता को ही सबसे पुरानी मानते रहे, इसीलिए मिस्र के इतिहास का वर्णन वे पहले करते रहे। किन्तु इधर कुछ वर्षों से इस मत पर सन्देह किया जाने लगा है और सभ्यता का आरम्भ एशिया में ढूँढा जा रहा है। मध्य एशिया, मसोपटेमिया अर्थात् दजला-फरात का दोआबा, सिन्धु नदी की तलहटी और पूर्वीय एशिया के द्वीप-समूह में से किसी एक जगह पर सभ्यता के आरम्भ का अनुमान किया जाता है। इन मतों में पहले तीन मत मुख्य हैं।

मनु और प्राचीन भारतवालों का यह मत था (जिसे कई विद्वान् सत्य मानते हैं) कि सभ्यता का आरम्भ उत्तरी भारत में ही हुआ और यहाँ से ही वह सारे संसार में फैल गई। आधुनिक खोजें भी इस मत का उत्तरोत्तर समर्थन कर रही हैं, किन्तु अभी अकाट्य प्रमाण प्राप्त न होने कारण यह सर्वस्वीकृत नहीं हो सका है। कुछ विद्वानों का विचार है कि सभ्यता का आरम्भ मसोपटेमिया में हुआ, जिसका मुख्य कारण यह है कि वहाँ पूर्व और पश्चिम के मेल में अधिक सुविधा थी। वहाँ की खोजें भी इस मत की बहुत-कुछ पुष्टि करती हैं। फिर भी अधिक झुकाव इसी ओर है कि सभ्यता का आरम्भ मध्य एशिया में हुआ। मध्य एशिया में पहले जल की कमी नहीं थी, जैसी कि बर्फ हटने के बाद पैदा हो गई। आज से करीब सात या आठ हजार वर्ष पहले इस प्रदेश में गेहूँ, बाजरा और जो पैदा किया जाता था, जानवर पाले जाते थे और मिटी के अच्छे बरतन बनाए जाते थे। उस सभ्यता का अभी बहुत ज्ञान नहीं हुआ है। यह अनुमान किया जाता है कि पूर्व और पश्चिम का सम्मेलन सबसे पहले यहीं हुआ। जब यहाँ जल की कमी होने लगी और रेगिस्तान बढ़ने लगा, तब यहाँ से लोग इधर-उधर हटने लगे। उन्हीं के साथ अथवा उन्हीं के प्रभाव से सभ्यता चारों ओर फैल गई। यहाँ से एक शाखा तो चीन और मंचूरिया चली गई, जहाँ से सभ्यता की लहरें सखालियन डमरूमध्य की राह से उत्तरी अमेरिका तक पहुँच गईं। दूसरी शाखा भारतवर्ष को चली आई। तीसरी शाखा पश्चिम की ओर बढ़ी और ईरान, मसोपटेमिया, मिस्र, इटली और स्पेन तक पहुँच गई। जो कुछ हो, यह निश्चय रूप से कहना कि सभ्यता का आरम्भ अमुक प्रदेश में ही सब से पहले हुआ, संभव नहीं है।

दजला और फरात नदियों के दोआबा और तलहटियों में प्राचीनतम सभ्यताओं ने बहुत उन्नति की। यहाँ पर कई पुराने नगरों और राज्यों के अवशेष मिलते हैं। इनमें किश, अगद, लगश, निप्पर, उर, अस्सुर, बेबिलान आदि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नगर मुख्य थे। इस दोआबे के उत्तर और पूर्व में पहाड़ियाँ, दक्षिण में ईरान की खाड़ी और पश्चिम में अरब है। इन दोनों नदियों के मुहाने के आसपास की भूमि दोआबे के अन्य भागों से अधिक उपजाऊ है। यहीं पर सुमेरिया नामक राज्य था। यहाँ की सभ्यता को 'सुमेरियन सभ्यता' कहते हैं।

सुमेरियन लोग—आकृति और वेशभूषा

अभी तक इसका ठीक पता नहीं चला कि सुमेरियन लोग कौन थे। इनका कद छोटा, नाक ऊंची और नुकीली, माथा दबा हुआ और आँखें नीचे की ओर झुकी हुई थीं। इनके सिर मुंडे रहते थे। इनमें कुछ तो दाढ़ी रखाते और कुछ मुंड़ाते थे। इनकी पोशाक ऊनी थी। साधारण लोग सिर्फ तहमत बाँधे रहते थे; कमर से ऊपर उनका बदन नंगा रहता था। किन्तु अमीर लोग गले तक पोशाक पहना करते थे। वे सिर पर टोपी और पैरों में कसी हुई चट्टी पहनते। औरतें नरम चमड़े की जूती पहनती थीं। यह तो निश्चित जान पड़ता है कि सुमेरियन लोग सेमेटिक वर्ग के नहीं थे। कुछ लोग इनका संबंध मध्य एशिया की मंगोल जाति से मानते हैं, कुछ इन्हें आर्य या द्राविड़ समझते हैं। द्राविड़ लोग किसी समय स्पेन, मध्य अफ्रीका और भारत के पूर्वीय भाग तक फैले हुए थे।

कहा जाता है कि ईसा से पाँच हजार वर्ष पूर्व मसोपटेमिया में वे लोग आए, जो इतिहास में 'सुमेरियन' नाम से प्रसिद्ध हैं। सुमेरिया में करीब पाँच हजार वर्ष पूर्व के मिट्टी की ईंटों पर अंकित किए हुए मार्के के कुछ लेख मिलते हैं, जिनके लेखक संभवतः वहाँ के पुरोहित होंगे। इनसे तथा इनके बाद के ईंटों के लेखों से सुमेरिया ही नहीं, बल्कि मसोपटेमिया एवं आसपास के अन्य प्रदेशों और राज्यों के प्राचीन इतिहास, कानून और संस्थाओं का भी पता चलता है। सभ्यता का इससे पुराना अंकित प्रमाण अन्यत्र कहीं नहीं पाया जाता। इन लेखों के अनुसार सुमेरियन राज्य की स्थापना आज से चार लाख बत्तीस हजार वर्ष पहले हुई थी! यह तो उनकी निरी कपोलकल्पना-सी जान पड़ती है, क्योंकि अभी तक जो पुरानी चीजें मिली हैं, वे साढ़े सात हजार वर्ष से अधिक पुरानी नहीं मानी जातीं। तो भी इनकी ऐतिहासिक वंशावली पांच हजार वर्ष से सिलसिलेवार मिलती है। किन्तु इनमें नामों के अलावा घटनाओं का उल्लेख नहीं है।

किश, एरेच, उर, लगश, आदि नगर-राज्य

पुरातत्ववेत्ता सुमेरिया के इतिहास को दो भागों में विभक्त करते हैं—एक तो वह जब वहाँ पर स्वतंत्र नगर थे, जिनमें "राजपुरोहित" (पटेसी) राज्य करते थे; दूसरा वह जब कि स्वतंत्र नगरों का दमन होकर वहाँ बड़े राज्य या साम्राज्य की स्थापना हो गई थी। नगर-राज्यकाल में सबसे पुराना वृत्तांत 'किश' नगर या नगर-राज्य का है। इसके बाद एरेच, उर, अक्शक, लगश आदि नगरों का भी पता चला है। यह प्रतीत होता है कि मसोपटेमिया में सुमेरियन लोग दक्षिण में थे और उनसे ऊपर सेमिटिक लोगों की प्रधानता थी। इन नगरों में आपस में कभी अनबन और कभी मित्रता भी हो जाती थी, जिससे कभी एक दूसरे पर अपना अधिकार जमा लेता अथवा स्वतंत्र हो जाता था। किश के 'मेसिलिम' नामक तीसरे राजवंश के समय (३६२८-३४८८ ई० पू०) की इतनी ऐतिहासिक सामग्री मिली है कि हम उससे एक प्रकार का रेखा-चित्र खींच सकते हैं। इस वंश का चौथा राजा अपने को संसार का अधिपति लिखता था। किश ने भाग्य के कई चक्कर खाए और कई बार स्वतंत्रता खोई। किन्तु अन्त में वह फिर बलशाली हो गया और छः सौ वर्ष तक आधिपत्य जमाये रहा। उल्लेखनीय बात यह है कि इस राजवंश की स्थापिका एक स्त्री 'अजग-बाऊ' थी, जो पहले

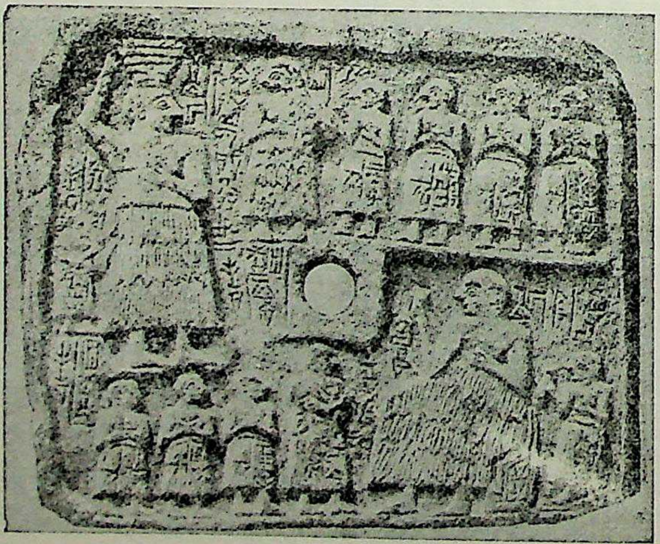

५,००० वर्ष पूर्व की सुमेरियन सभ्यता की इस कलाकृति में लगश नगर का शासक 'उर-निना' दो भिन्न-भिन्न अवसरों पर अपने चार पुत्रों और एक पुत्री से भेंट करते दिखाया गया है।

शराब का रोजगार करती थी। महारानी की हैसियत से उसने अच्छा यश प्राप्त किया। अपनी योग्यता के कारण वह अपने पुत्र और पौत्री की राजनियन्त्री रही। उसके समय में किश ने साहित्य, कानून, कला और व्यापार में अच्छी उन्नति की। सेमेटिक किशवालों पर सुमेरियन सभ्यता और धर्म की ऐसी छाप लग गई थी कि वे अपना व्यक्तित्व तक खो बैठे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लगश नाम के एक और नगर ने भी अच्छी उन्नति की। इसका सबसे पुराना राजा शायद 'उर-निना' (३१०० ई० पू०) था। इसने आसपास के क्षेत्र पर ऐसा आतंक जमाया कि बाद को लोग उसकी मूर्ति की पूजा करने लगे। इसके वंश के राज्यकाल में धर्माधिकारियों की एक नई श्रेणी पैदा हो गई। इस वंश में एक प्रख्यात राजा 'उरुकगिन' हो गया है। वह अपने को 'लगश और सुमेर का राजा' कहता था। उसने अनेक मन्दिर, इमारतें और एक नहर भी बनवाई। उसका दावा था कि उसने अपनी प्रजा को स्वतन्त्र कर दिया था। उसके प्रबन्धकाल में धर्माधिकारी अथवा धनिक लोग गरीब से गरीब विधवा अथवा अनाथ बालक पर भी अत्याचार नहीं कर सकते थे। साधारण जनता को धर्म, धन, प्रभुत्व आदि के बलवान् अधिकारियों के त्रास और अनुचित हस्तक्षेप से बचाने का यह सबसे पहला प्रयत्न समझा जाता है। लगश का पतन उम्मा नगर के शोषक आक्रमण से हुआ। उम्मा के विजेता 'लुगल जग्गिसी' ने लगभग २५ वर्ष तक राज्य किया, परन्तु उसे राज्यच्युत कर 'सारगन' ने लगश पर आधिपत्य जमा लिया।

सारगन (२७७२-२७१७ ई० पू०) सेमेटिक वंश का था। किम्वदन्ती है कि इसकी माँ नीची श्रेणी की और पिता अज्ञात था। माँ ने उसे नरकुलों के ऊपर रखकर नदी में बहा दिया था। एक सिंचाईवाले ने उसे नदी से निकालकर उसका पालन-पोषण किया और उसे माली बनाया। यही माली आगे चलकर बड़ा विजयी हुआ। उसने पचास नगरों को परास्त करके अपना राज्य बढ़ाया। इसकी राजधानी 'अक्केड़' में थी। सारगन ने ठेठ भूमध्यसागर तक अपना राज्य बढ़ा लिया और वह अपने को "सागर का सम्राट्" कहने लगा। कहा जाता है कि संसार का सबसे पहला साम्राज्य यही था। यदि यह सत्य है तो सारगन ही संसार का पहला सम्राट् कहा जाने का अधिकारी है।

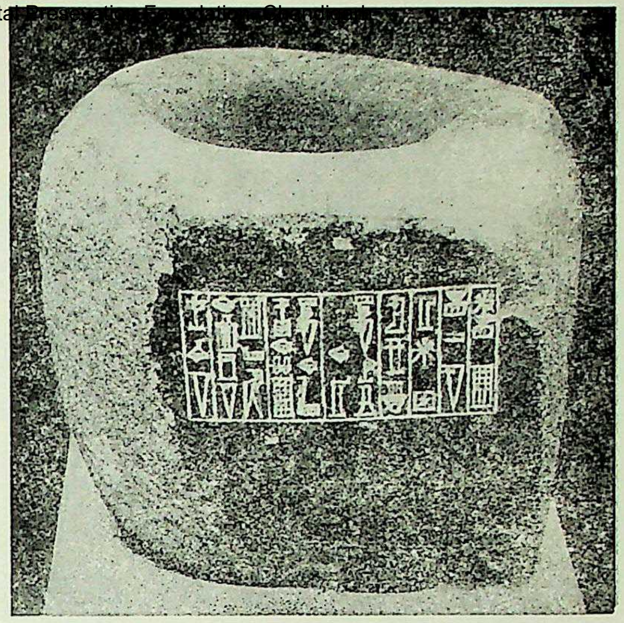

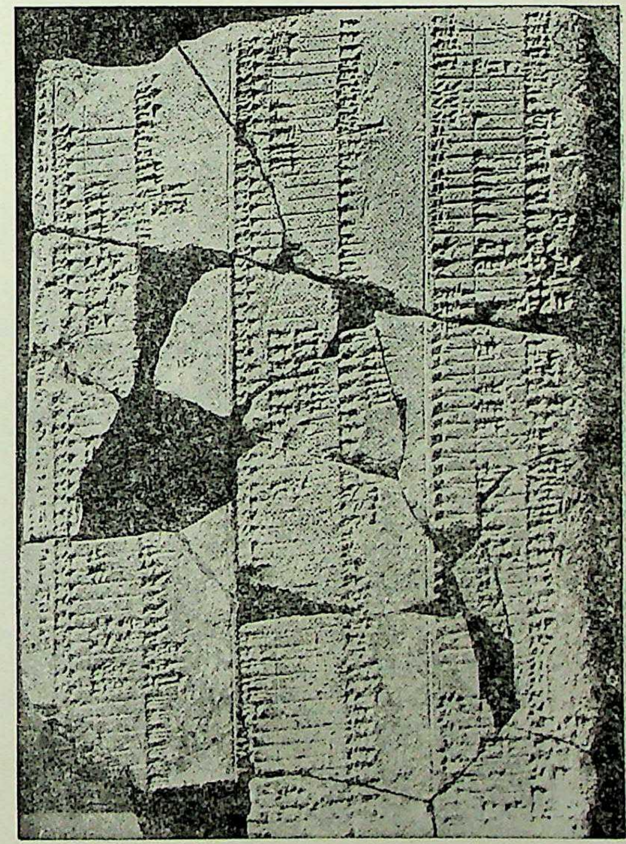

सुमेरियन सभ्यता के दो अद्भुत अभिलेख। (ऊपर) किवाड़ घुमाने के लिए प्रयुक्त पत्थर की कूँड़ी पर अंकित अभिलेख; (नीचे) आग में पकाई गई मिट्टी की तख्ती, जिस पर कीलाकार अक्षरों में पाँच हजार वर्ष पूर्व के लेख अंकित हैं।

Foundation, Chandigarh

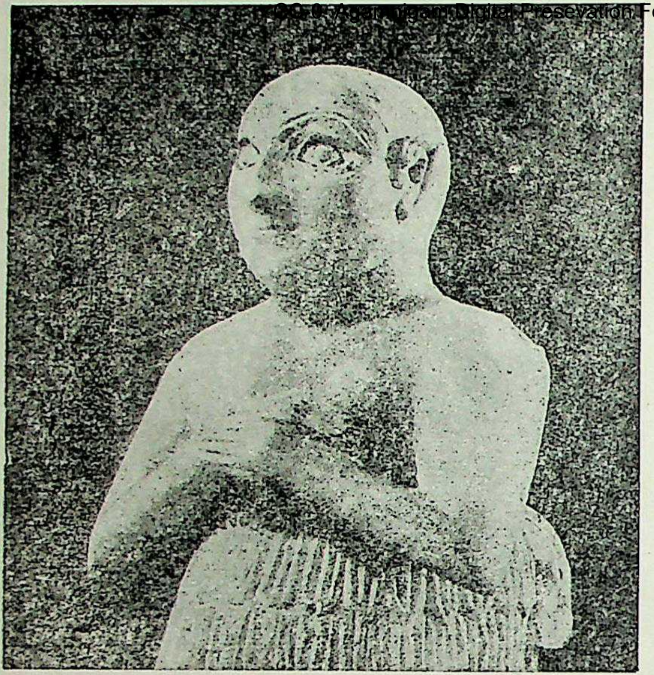

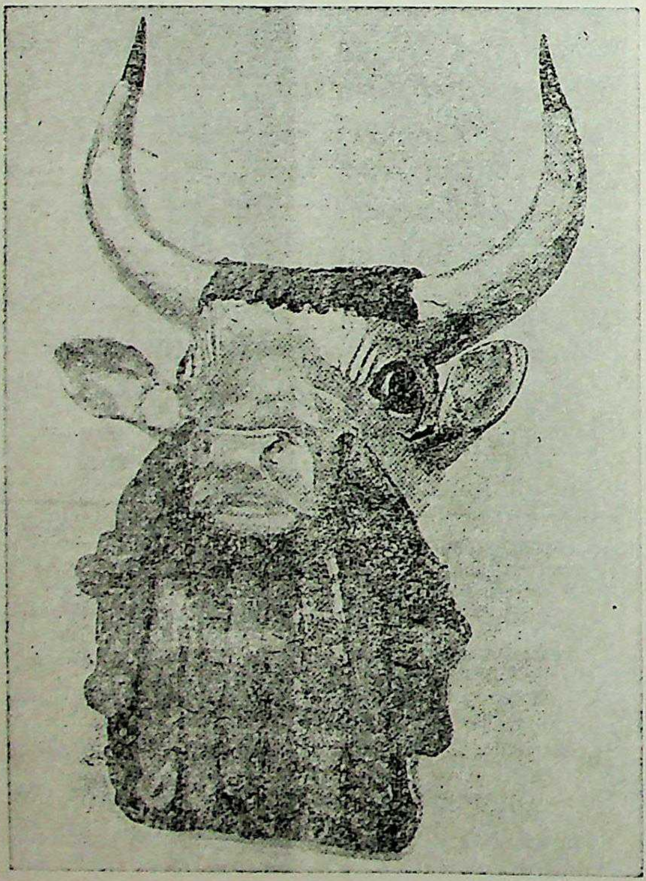

सुमेरियन कला के दो सुन्दर नमूने। ऊपर की मानव-मूर्ति की आँखें सीपी और लेपिस लेजुली की बनी हैं। नीचे की वृषभ-मूर्ति समूची सुवर्ण और लेपिस लेजुली द्वारा निर्मित है।

उसने अपने साम्राज्य को अनेक प्रान्तों में विभक्त कर दिया और प्रत्येक में किसी "राजप्रासाद के पुत्र" को शासन करने के लिए नियुक्त कर दिया। ऐसा ऐश्वर्य रहते हुए भी उसका बुढ़ापा चिन्ता और कष्ट से बीता। साम्राज्य में विद्रोह की आग चारों ओर फैल गई। उसने दमन करने का कठोर प्रयत्न अवश्य किया, किन्तु सफल होने के पहले ही उसकी मृत्यु हो गई। यद्यपि सारगन के उत्तराधिकारियों ने साम्राज्य को एकदम नष्ट नहीं होने दिया, किन्तु उसकी क्षीणता दिनोंदिन बढ़ती गई। उनके पुत्र 'नरम-सिन' ने अनेक विद्रोहियों का दमन किया, और कई मन्दिरों का निर्माण कराया। किन्तु उत्तर की ओर से अर्द्धसभ्य जाति वाले 'गुतियम' लोग सुमेर और अक्केड़ को दबाते ही चले गए और अन्त में उन्हें नष्ट कर दिया। यद्यपि इन विजेताओं में 'गुडिया' नामक एक तेजस्वी राजा हो गया है, जिसने अन्याय और बुराइयों को दूर करने के लिए सद्प्रयत्न कर अपना नाम इतिहास में अमर कर दिया, तथा पिलगश के पतन को कोई भी न रोक सका।

लगश के साम्राज्य के बाद 'उर' नामक नगर का उत्थान हुआ, जिसने सुमेर और अक्केड़ की पतनोन्मुख ख्याति की रक्षा करने का अच्छा प्रयत्न किया। 'उर' के राजवंश से 'उरएंगर' का नाम पहले आता है। उसके माता-पिता का ठीक पता न चलने के कारण पृथ्वी को ही उसकी माता और चन्द्रदेव को उसका पिता माना जाता था। कहा जाता है कि उसने और उसके पुत्र 'डुङ्गी' ने पश्चिमी एशिया को जीतकर अपने अधिकार में कर लिया था। अपने साम्राज्य को उन्होंने चार भागों में विभक्त कर दिया था—सुमेर एवं अक्केड़, एलाम, सुबर्तु और अमर्रु। पिता और पुत्र ने (२४५६ ई० पू०) सारे सुमेरिया के लिए कानून बनाए। इनके ही प्रयत्नों के बल पर आगे चलकर बेबिलान के सेमेटिक सम्राट् हम्मुरब्बो ने अपना सुप्रसिद्ध विधान बनाया, जिसका वर्णन आगे चलकर किया जायगा। सुमेरियन धर्म के पुनरुत्थान और संस्थापन में भी इन्होंने बड़ा परिश्रम किया। इनके समय में देवालयों का महत्व और उनकी आर्थिक सम्पत्ति बहुत बढ़ गई। चारों ओर से मन्दिरों के देवताओं की पूजा के लिए अन्न, फल, पशु एवं अन्य प्रकार की इतनी अधिक सामग्री आने लगी कि उनके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लेने और रखने के लिए एक अलग इमारत और कारिन्दों की आवश्यकता पड़ गई। उर के राजा यों तो अनेक देवताओं को मानते थे, किन्तु सूर्यदेव के प्रति उनकी विशेष श्रद्धा थी। अपने न्याय-प्रेम और धर्मनिष्ठा एवं राजनीतिक सेवाओं के कारण उर-एङ्गर और डुङ्गी भी देवताओं की श्रेणी में शरीक कर लिए गए। उनके मंदिर बन गए और उनकी मूर्तियों की पूजा होने लगी। इस वंश का अन्तिम राजा 'इबी-सिन' था। यद्यपि इसने पच्चीस वर्ष तक राज्य किया, तथापि इसके समय में साम्राज्य शीघ्रतापूर्वक छिन्न-भिन्न हो गया। एलामवालों ने आक्रमण करके उसे कैद कर लिया। उसके पतन के साथ ही सुमेरिया की स्वतंत्रता और सुमेरियन इतिहास का भी अवसान हो गया। यह स्मरण रखना चाहिए कि सुमेरियावाले शान्ति-उपासक थे, वे केवल विजय के भूखे न थे और न वे रण के प्रेम ही के कारण युद्ध करते थे। वे उपजाऊ भूमि पर अपना अधिकार जमाकर कृषि और सभ्यता की उन्नति करना ही अपना मुख्य आदर्श समझते थे। कहा जाता है कि उनके आधिपत्य और उन्नति का मुख्य कारण उनका सैनिक बल न था, वरन् उनकी सभ्यता और न्यायनिष्ठा थी।

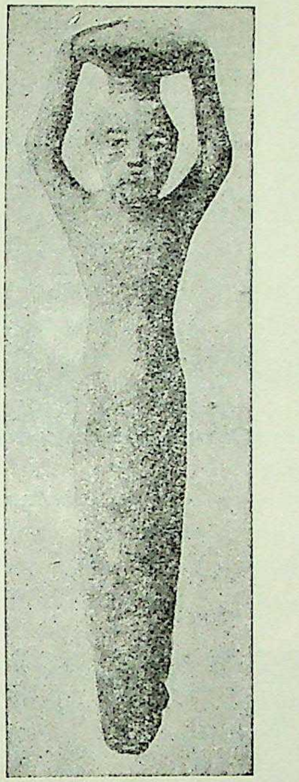

उर का राजा 'डुंगी', जो देवताओं में मान लिया गया था।

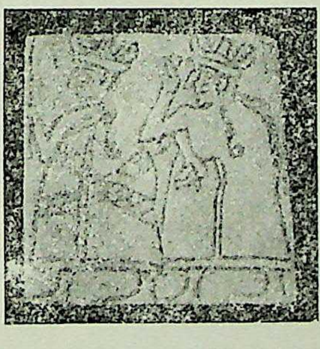

राजपुरुषों के चित्रों से सुशोभित यह सुमेरियन तावीज 'उर' की खुदाई में मिला था।

सुमेरियन सभ्यता

सुमेरियन लोगों में ६००० वर्ष पहले भी कृषि प्रचलित थी। उस जमाने में भी वे नदियों से नालियों द्वारा पानी काटकर जमीन को उपजाऊ बना लेते थे और बैलों से हल चलाकर कुछ अनाज और तरकारियां पैदा कर लेते थे। ये लोग गाय, भेड़, बकरी और सुअर पालते थे। घोड़ों का इन्हें पता न था। साधारण तौर पर ये पत्थर, हाथीदांत और हड्डियों ही से अपने औजार बनाते थे, किन्तु तांबा, टिन, कांसा और लोहा भी कभी-कभी काम में लाया जाता था। सोना और चांदी के जेवर भी इनमें प्रचलित थे। इन्हें सिक्कों का ज्ञान न था; लेकिन सोना-चांदी का लेनदेन ये तौल से करते थे। विनिमय (अदल-बदल) द्वारा ये स्थल और जल-मार्ग से आसपास के नगरों से ही नहीं, बल्कि मिस्र देश और भारतवर्ष से भी व्यापार करते थे। व्यापार-संबंधी लिखा-पढ़ी का ढंग भी इन्हें मालूम था। नाप-तौल और वर्ष-मास तथा ऋतुओं का भी इन्हें ज्ञान था। इनमें धनिक और दरिद्रों के बीच की एक जनश्रेणी पैदा हो गई थी, जिनमें विद्वान्, चिकित्सक और पुरोहित आदि थे। इसे यदि हम आधुनिक मध्यम वर्ग का प्राचीनतम रूप मान लें, तो अनुचित न होगा। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं; क्योंकि संभवतः नगरों का सबसे प्रथम संस्थापन मसोपटेमिया में ही हुआ था।

सुमेरियन लोगों को ईंटें और खपरैल तथा मिट्टी के बरतन आदि बनाना और पकाना मालूम था। उन्होंने ईंटों की एक ऊँची मीनार भी बनाई थी। किन्तु रहने के लिए साधारणतः वे लोग नरकुल के मकान बनाते थे। मजबूती के लिए टट्टर की दीवारों को भूसा और मिट्टी के सने हुए पलस्तर से वे थोप देते थे। ऐसे मकानों के अवशेष अब तक पाए जाते हैं। किन्तु वे लोग मकानों के दरवाजे लकड़ी ही के बनाते थे, जिनकी चूलें पत्थर की होती थीं।

सुमेरिया में अनेक नगर थे। प्रत्येक नगर में एक नगराधीश था, जिसे हम वहाँ का राजा कह सकते हैं। इन राजों ने अपने-अपने नगर की स्वतंत्रता को जहाँ तक और जब तक इनसे बन पड़ा कायम रखा। इसीलिए वे प्रायः आपस में युद्ध करते रहते थे। स्वतंत्र नगरों और उनके पारस्परिक संघर्ष का काल ३०५० ई० पू० तक माना जाता है। किन्तु व्यापार की उन्नति के कारण यह परिस्थिति स्थिर न रह सकी। २८०० ई० पू० वहाँ साम्राज्य की स्थापना हो गई। स्वतंत्र नगरों के बदले वहाँ अब एक नई राजकीय सत्ता का आरम्भ हो गया, जिससे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लोग राजनीतिक; आर्थिक और सामाजिक एकता के सूत्र में बँध गए और उनका कार्यक्षेत्र और भी अधिक विस्तृत हो गया।

सुमेरिया के लोग पृथ्वीदेवी, सूर्य, चन्द्र, आकाश, तथा समुद्र के देवताओं को मानते थे। किन्तु उनका सबसे बड़ा देवता 'वायु' था। वायु देवता का सबसे प्रसिद्ध मन्दिर निप्पर में था। यह मन्दिर पक्की ईंटों का बना था, क्योंकि सुमेरिया में पत्थर नहीं मिलता था। उसके पास पक्की ईंटों की एक ऊँची मीनार बनी थी, जो पिरामिड की-सी थी। मन्दिर के चारों ओर छोटी-छोटी इमारतें और आँगन बने थे। मन्दिर और उसके साथ की इमारतों को चारों ओर से चहारदीवारी घेरे हुए थी। भक्त लोग यहाँ पानी के घड़े और बकरे लाकर चढ़ाते थे। वे कर्मकाण्ड की विधि से मंत्र-तंत्र, आदि के द्वारा देवताओं को प्रसन्न करते और भूत-प्रेतादि को भगाते थे। वे मृत्यु के बाद भी जीवन की कल्पना करते थे, किन्तु वह कल्पना अंधकारमय थी। पाप-पुण्य का भी उन्हें ज्ञान था। वे मुरदों को दफना देते थे, किन्तु न तो वे उन्हें सन्दूकों आदि में रखते थे और न उन पर समाधि-स्तूप आदि ही बनाते थे। मन्दिरों में पुजारियों का प्रभुत्व था, जो 'पटेसी' कहलाते थे। यही लोग ज्ञान, विद्या, मंत्र, पूजा-विधि, चिकित्सा आदि के संरक्षक माने जाते थे। ये लोग धन-सम्पन्न भी थे। इनका प्रधान स्वयं राजा था। वस्तुतः राजा ही एक तरह से प्रमुख पुरोहित मना जाता था।

मन्दिरों में स्त्रियाँ भी रखी जाती थीं—कुछ तो साधारण काम-काज करने के लिए और कुछ देवताओं अथवा उनके प्रतिनिधियों के भोग-विलास के लिए। देवताओं के निमित्त कन्यादान करना अहोभाग्य और सराहनीय कार्य माना जाता था। सुमेरियावालों का धर्म और साहित्य के क्षेत्र में बहुत-कुछ प्रभाव पड़ा। बेबिलान तथा असीरियावालों पर तो उनका पूरा-पूरा प्रभाव था ही, ईसाई और इस्लाम धर्म भी उनके प्रभाव से नहीं बचे। संभवतः ईरान और भारत भी उनसे प्रभावित हुए हों। सुमेरिया में विवाह की प्रथा प्रचलित थी। पत्नी अपने पिता से पाए हुए दहेज पर अपना पूरा अधिकार रखती थी। बच्चों पर पति और पत्नी के अधिकार समान

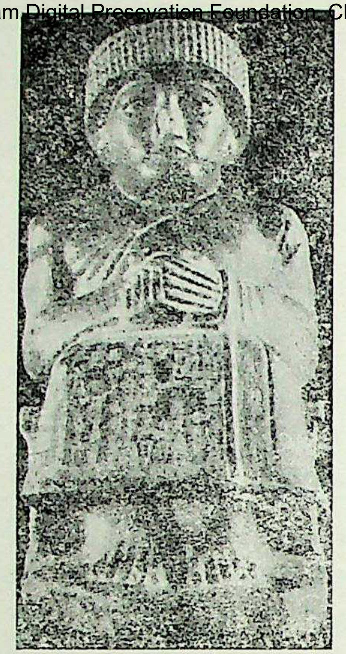

लगश के तेजस्वी सम्राट् गुड़िया की प्रतिमा। इस राजा का नाम सुमेरिया के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है

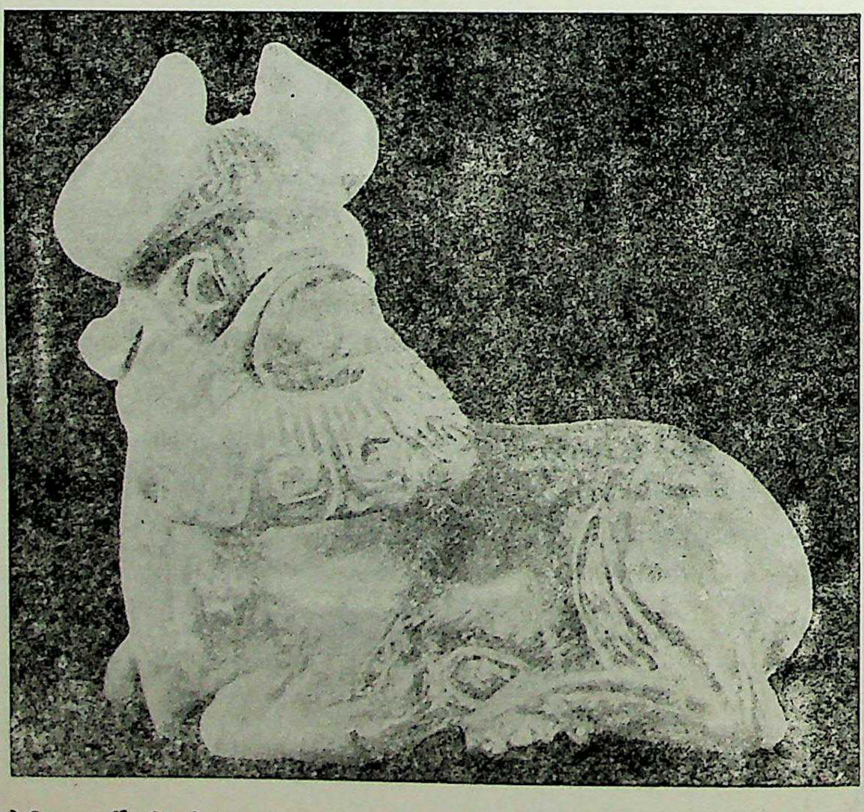

सुमेरियन मूर्ति-निर्माण-कला का एक उत्कृष्ट नमूना। गाय की यह भव्य मूर्ति खफाजे नामक स्थान की खुदाई करने पर पाई गई है। सुमेरियन कला के उन्नत स्तर के परिचायक अन्य कुछ चित्र इसी ग्रंथ के 'कला' विभाग के अंतर्गत देखिए।

थे। पत्नी अलग व्यवसाय करती थी। पति के मरने पर वही उसकी सम्पत्ति का प्रबंध भी करती थी। यदि पत्नी पर व्यभिचार का भी दोष होता, तो भी उसे तलाक नहीं दिया जा सकता था। हाँ, पति दूसरा विवाह कर सकता था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की, [illegible] का आरम्भ किया तथा जेवर और सौंदर्यवर्द्धक मसाले आदि बनाए। उन्होंने ही पहलेपहल मन्दिर एवं महलों का बनाना शुरू किया और गुम्बद, मेहराब, खम्भे वगैरह बनाकर स्थापत्य-कला की उन्नति की।

सुमेरियन सभ्यता की अमूल्य देन

इसमें संदह नहीं कि सुमेरियन लोगों ने ही पहलेपहल साम्राज्य की रचना की। उन्होंने ही शायद नालियों एवं नहरों से सिंचाई करने की तरकीब निकाली; सोने-चाँदी से चीजों की कीमत निश्चित करने का आविष्कार किया; लिखा-पढ़ी करके व्यापार करने की विधि चलाई; लेखन-कला का विकास किया; पुस्तकालयों और पाठशालाओं की स्थापना

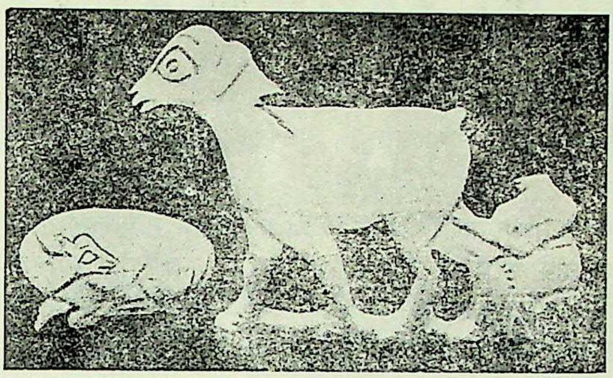

किश के राजप्रासाद की दीवारों पर के शिलाचित्रों का एक नमूना। दीवार पर कोरकर बनाए गए बकरे-बकरी के ये अनूठे चित्र लगभग पाँच हजार वर्ष पुराने हैं।

परन्तु उनकी कुछ देनें निंदनीय भी थीं। उदाहरणार्थ उन्होंने न केवल एकसत्तावाद, गुलामी, सैनिक अत्याचार और पुरोहित सत्ता की ही नींव डाली, बल्कि उन्हें काफी मजबूत भी बना दिया। यद्यपि उनके इतिहास का अभी तक पूर्ण ज्ञान नहीं प्राप्त हुआ है, किन्तु यह निश्चित है कि उनकी सभ्यता का दौर-दौरा तीन-चार हजार वर्ष तक कायम रहा। उन्हीं के चरण-चिह्नों का अनुसरण कर बेबिलान की सभ्यता विकसित हुई।

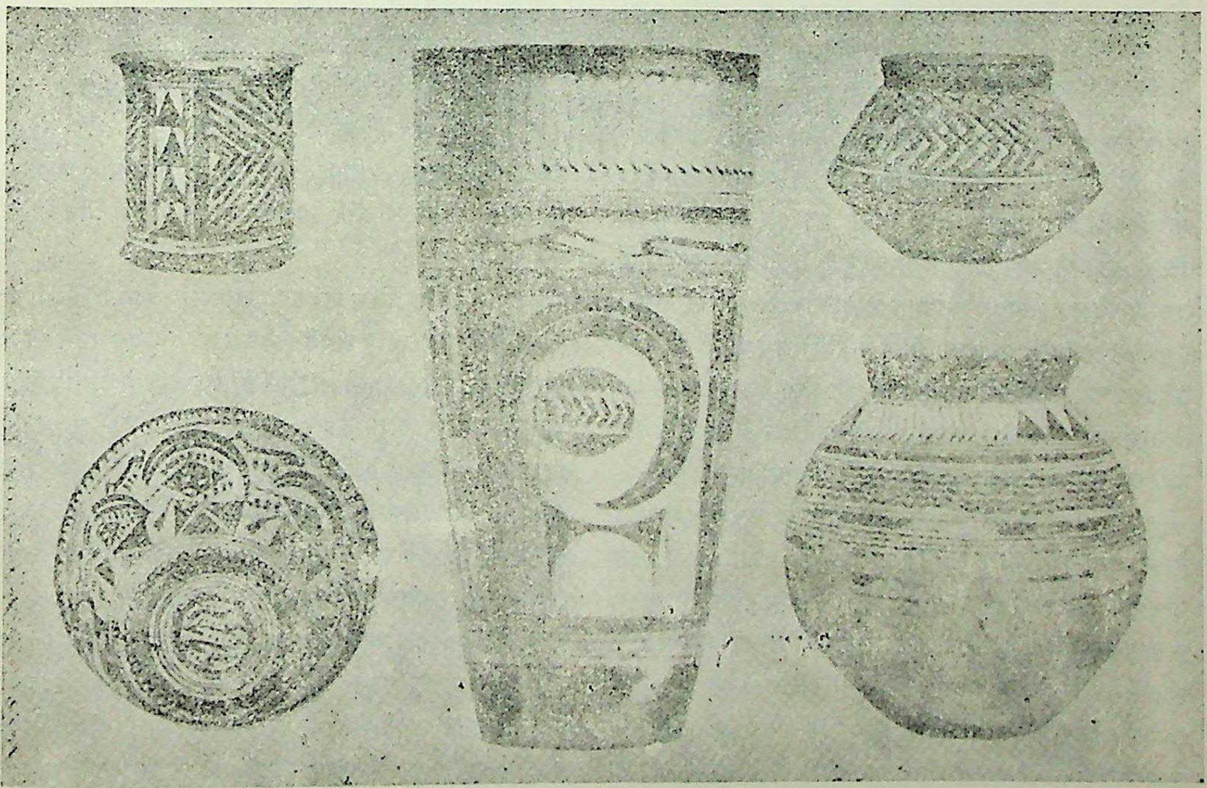

छः हजार वर्ष पूर्व के सुमेरियन बरतन। मिट्टी के इन पात्रों के सुघड़ आकार एवं सुन्दर चित्रकारी पर गौर कीजिए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सभ्यताओं का उदय—(३)
प्राचीन मिस्र

भारतवर्ष की सिन्धु और गंगा तथा मसोपटेमिया की दजला और फरात नदियों की भाँति मिस्र की नील नदी की उपत्यका में भी आज से पाँच-छः हजार वर्ष पूर्व एक महान् सभ्यता का उद्भव एवं विकास हुआ था, जिसके असाधारण वैभव का अनुमान आज भी विद्यमान उसके अनेक भव्य स्मारकों द्वारा किया जा सकता है। प्रस्तुत प्रकरण में उसी का परिचय दिया जा रहा है।

सिन्धु और गंगा ने भारत की तथा दजला और फरात नदियों ने मसोपटेमिया की सभ्यता के विकास में जितना भाग लिया है, उससे भी अधिक नील नदी ने मिस्र देश की सभ्यता पर अपना प्रभाव डाला है। वस्तुतः नील नदी के बिना वहाँ की सभ्यता की कल्पना तक नहीं की जा सकती। वहां का जीवन और सभ्यता नील नदी का ही प्रसाद है। उसकी बाढ़ से और जल में मिली हुई मिट्टी से उनके दोनों तट उपजाऊ हो गए वरना वहाँ रेगिस्तान ही दिखाई देता। उसी की सहयता से लोग मिस्र के विभिन्न स्थानों में आ-जा सकते थे। उसी के दोनों तटों पर मिस्र के इतिहास का निर्माण हुआ है। कोई आश्चर्य नहीं कि मिस्र- निवासी नील नदी को देवता मानकर उसकी स्तुति किया करते थे।

पुरातत्ववेत्ताओं ने, विशेषतया मॉर्गन ने, यह पता लगाया है कि अन्य देशों की तरह मिस्र में भी पुराने और नए पत्थर के युग थे, जिनका समय ईसा से दस हजार से चार हजार वर्ष पूर्व तक रहा। इस भूभाग के पत्थर के औजार संसार के अन्य देशों के पत्थर-युग के औजारों से बनावट, सफाई और तीक्ष्णता में बढ़कर हैं। उस समय के लोगों ने जंगल साफ करके, दलदलों को दूर करके खेती करना आरंभ कर दिया था। वे नाव बनाना, अनाज पीसना, मिट्टी के अच्छे बरतन बनाना, कपड़े और दरी बुनना और तस्वीर बनाना जानते थे। वे जानवर पालते थे। उन्हें सुगंधितद्रव्य बनाने और रत्नों का ज्ञान था। वे बाल कटवाते थे। उनको चित्र-लेख अंकित करना आता था। पत्थर-युग के अन्त में उनको धातुओं का भी ज्ञान हो चला था। कुछ लोगों का अनुमान है कि लेखन-कला का आविष्कार मिस्र देश में ही हुआ है। यह तो सब मालूम हुआ, किन्तु यह ठीक पता नहीं कि वहाँ के आदिम-निवासी कौन और किस जाति के लोग थे। यह अनुमान किया गया है कि वे लोग किसी एक जाति के न थे। उनका समाज न्यूबिया, लीबिया और इथोपिया के काले लोगों एवं सेमेटिक और आर्मिनाइड लोगों के मिश्रण से बना था।

मिस्र के ऐतिहासिक काल का आरम्भ वस्तुतः ईसा के ३४०० वर्ष पूर्व अर्थात् अबसे लगभग ५४०० वर्ष पहले होता है। वहां के इतिहास को विद्वानों ने कई भागों में विभक्त किया है। पहला भाग ३४०० से २१६० वर्ष ई० पू० तक रहा। उसे 'पुरातन राज्य' कहते हैं। उसके बाद 'माध्यमिक राज्य' अथवा 'सामन्त-सत्ताकाल' आरम्भ हुआ, जो २१६० से १५८० वर्ष ई० पू० तक रहा। तीसरा काल, जिसे 'नया राज्यकाल' अथवा 'साम्राज्यकाल' कहते हैं, १५८० से ९४५ ई० पू० तक रहा। इसके बाद मिस्र के दुर्दिन आ गए। उस पर आक्रमण होने लगे। ईसा के पूर्व की छठी शताब्दी में फारस ने मिस्र में अपना प्रभुत्व स्थापित किया और ३३२ ई० पू० में यूनान के प्रख्यात विजेता अलेक्जाण्डर (सिकन्दर) ने सदा के लिए मिस्र की स्वाधीनता का अन्त

कर दिया। ऐतिहासिक काल में मिस्र में इक्कीस राजवंशों ने राज्य किया, जिनमें चौथा, बारहवाँ और अठारहवाँ विशेष रूप से प्रख्यात हुआ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुरातन राज्यकाल (३४००-२१६० ई० पू०)

इस युग का आरम्भ उस समय हुआ जब कि 'मीनीज' नामक एक व्यक्ति ने, जो नील नदी के दक्षिणी भाग में राज्य करता था, नील के उत्तरी भाग को जीतकर सम्पूर्ण तलहटी में एक राज्य स्थापित कर दिया। उसके पहले अनेक छोटे-छोटे जमींदारों ने मिलकर एक राज्य नील के उत्तर में और एक दक्षिण में बना लिया था। मीनीज ने उन कानूनों को प्रचलित किया, जो उसे 'थोथ' नाम के देवता से मिले थे। उसने लोगों को मेज और तख्त का प्रयोग सिखलाया। उसने अपनी राजधानी 'मेम्फिस' नगर में स्थापित की। इस समय का दूसरा प्रसिद्ध राजा जोसीर (३१५० ई० पू०) हुआ, जिसे मिस्र के लोग देवता की तरह मानते थे। इसका कारण यह बतलाया जाता है कि उसने ही पहलेपहल वैद्यक, विज्ञान, कला और स्थापत्य-विद्या का प्रचार मिस्र में किया। कहते हैं कि इसी के समय से वहाँ पत्थर के मकान बनना शुरू हुए। इस युग में दस वंशों ने राज्य किया। जब जोसीर मरा, तब 'सक्कर' में उसकी कब्र के ऊपर पटरीदार या सीढ़ीदार पत्थर का एक पिरामिड बनाया गया, जिसे देखकर बाद को बड़े विशाल पिरामिडों की रचना की गई। इसी के समय में संसार में सबसे पुराना पत्थर का मकान भी बनाया गया था। इस युग में सुन्दर तराशदार पत्थर के खंभे, उभरी नक्काशी का काम, ग्लेजदार रंगीन मिट्टी की चीजें बनाई जाने लगी थीं। कहते हैं कि इस युग का संसार को ज्ञात सबसे प्राचीन प्रस्तर-स्थपित 'इमहोतेप' था। वह ऊँचे दर्जे का हकीम और राजनीतिज्ञ भी था। इन्हीं गुणों के कारण वह राजमंत्री हो गया था। उसी ने उस काल की पत्थर की इमारतें बनाई थीं।

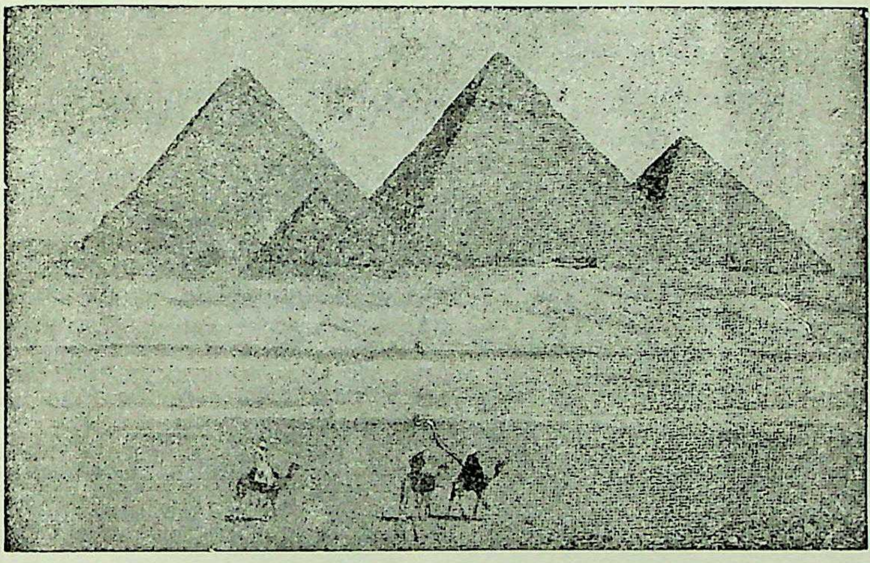

गीजे के सुप्रसिद्ध पिरामिड। यह फोटो इन पिरामिडों के दक्षिण-पश्चिम में स्थित रेगिस्तान से लिया गया है। इनमें बाईं ओर से पहला (खँफरे के उत्तराधिकारी) मेनकुरे का पिरामिड है, दूसरा खँफरे का पिरामिड है और तीसरा खूफू का पिरामिड है।

चतुर्थ राजवंश (३०००-२५०१ ई० पू०)

जोसीर के सौ वर्ष बाद मिस्र के चौथे राजवंश का प्रभुत्व आरम्भ हुआ। इस समय तक मिस्रवासियों ने स्थापत्य-कला और कारीगरी में ऐसी उन्नति कर ली थी, जितनी उन्नीसवीं सदी को छोड़कर संसार की किसी भी एक शताब्दी में कहीं भी नहीं हुई। खनिज-विद्या की उन्नति एवं मिस्र का बढ़ता हुआ व्यापार इस अपूर्व उन्नति के कारण माने जाते हैं। इस वंश का पहला राजा 'खूफ' नाम का था, जिसका ग्रीसवालों ने 'खीऑप्स' के नाम से उल्लेख किया है। उसके समय में मिस्र समृद्धिशाली देश हो गया था। खूफू अभिमानी और उग्र स्वभाववाला था। उसने एक लाख मजदूर लगाकर बीस वर्ष में 'गीजे' में सबसे पहला पिरामिड बनवाया। यूनानी लेखक हेरोडोटस के अनुसार कुछ लोगों ने उसे अत्याचारी माना है। इन लोगों के अनुसार गुलामों से जबरन काम लेकर उसने पिरामिड बनवाया था। किन्तु कुछ विद्वान् कहते हैं कि बेकारी के समय में अथवा नील में बाढ़ आने से पीड़ित किसानों और जनता को काम और दाम देकर उसने उनकी रक्षा की थी। अतः एव उसे प्रजापालक समझना चाहिए। उसका उत्तराधिकारी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

'खैफरे' हुआ, जिसने ५६ वर्ष तक शासन किया। उसके बाद वंश का पतन होने लगा।

गीजे का महान् पिरामिड तेरह एकड़ जमीन पर बना है। उसकी ऊँचाई ४८१ फीट, लम्बाई ७५५ फीट और चौड़ाई भी उतनी ही है। यह इमारत पत्थरों का एक ठोस त्रिकोण है। उसके बनाने में तेईस लाख या पच्चीस लाख पत्थर लगे होंगे। प्रत्येक पत्थर का वजन लगभग ढाई टन* है, किन्तु कुछ पत्थरों का वजन तो डेढ़ सौ टन (४२०० मन) तक है! इतने भारी-भारी पत्थरों को काटकर अरब आदि दूर-दूर के प्रदेशों से लाने और उतनी ऊँचाई तक चढ़ाने, साथ ही एक लाख मजदूरों के रहने, खाने-पीने आदि का प्रबन्ध करने में जो कठिनाई और समस्याएँ पैदा हुई होंगी, उनका अनुमान किया जा सकता है। उनको सुलझाकर इस कार्य को सफल बनाना प्राचीन इतिहास की एक महत्वपूर्ण कृति है। मिस्र में इंजीनियरिंग ग्रीस और रोम से अधिक बढ़ी-चढ़ी थी। वैसी इंजीनियरिंग योरप में उन्नीसवीं शताब्दी तक भी विकसित नहीं हुई।

उन्नत जीवन

गीजे के पिरामिडों के आसपास राजमहल, कचहरियाँ, बाग आदि बनने लगे और धीरे-धीरे वहाँ "मेम्फिस" नाम का एक सुन्दर नगर निर्मित हो गया। यहीं चतुर्थ वंश की राजधानी स्थापित हो गई। इस नगर की इमारतें पत्थर की नहीं, बल्कि कच्ची ईंट और लकड़ी की बनी थीं। रईस लोगों के मकानों के चारों ओर बाग लगाया जाता था। उनको कमल के फूलों का बड़ा शौक था। बागों के तालाबों में कमल के फूल लहलहाया करते थे। उनमें बाल-बच्चे खेला करते थे और पुरुष आमोद-प्रमोद करते, जुआ खेलते तथा स्त्रियाँ नाचा-गाया करती थीं। नगर में अच्छे-अच्छे कारीगर बसते थे। लकड़ी का और सुनारी का काम ऐसा सुन्दर होता था कि जिसका मुकाबला आज के दिन भी करना कठिन है। चतुर कुम्हार, शिल्पकार, शीशे की चीजें बनानेवाले, ताँबे और काँसे की चीजें बनानेवाले, बारीक कपड़े बिननेवाले, रँगरेज, छीपी, फर्दसाज, संगतराश, जौहरी, चित्रकार, कागज बनानेवाले सभी वहाँ बसते थे। स्मरण रखना चाहिए कि मिस्र में शीशा और बादामी कागज बनाने की कला और बिनाई में बड़ी उन्नति हुई थी। कहते हैं कि वहाँ ही सबसे पहले शीशे का बनना आरम्भ हुआ था। मेम्फिस नगर की समृद्धि कृषि और व्यापार पर अवलम्बित थी। मिस्रवासी छोटी-बड़ी नावों और बजरों द्वारा नदियों और मेडिटरेनियन (भूमध्यसागर) में व्यापार करते थे। स्थल-मार्ग से व्यापार गधों के द्वारा होता था, क्योंकि वहाँ के लोगों को घोड़ों का परिचय न था। इस समय वहाँ सिक्के का चलन शुरू नहीं हुआ था और व्यापार साधारणतया विनिमय द्वारा होता था। मालगुजारी भी जिन्स में दी जाती थी। केवल राजा और रईस सोने अथवा ताँबे के वजनी छल्लों का प्रयोग सिक्कों की तरह करते थे।

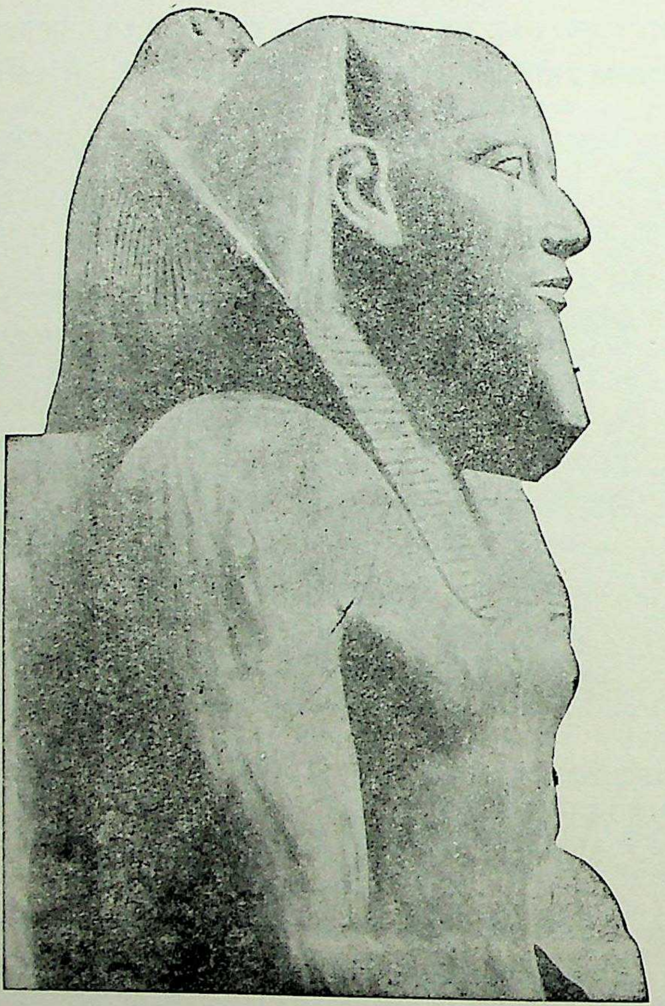

'कैरो म्यूजियम' में सुरक्षित खैफरे की मूर्ति।

पिरामिड-काल में मिस्र का समाज तीन श्रेणियों में विभक्त था। एक श्रेणी तो दासों की थी, जो दूसरों की जमीन पर काम करते थे। दूसरी श्रेणी में स्वतन्त्र जनता थी, जो

---

*एक टन का वजन लगभग २८ मन होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कृषि और उद्योग-धन्धों से अपना निर्वाह करती थी। प्रत्येक पेशे के लोग पीढ़ी-दर-पीढ़ी उसी काम को करते थे, जिससे कि हर एक पेशे की बिरादरी या जाति बन गई थी, जैसी कि हमारे देश में है। हर पेशे के लोगों का एक नायक होता था, जो सबसे काम लेता और उनको मजदूरी देता था। मजदूरी में अधिक विलम्ब होने अथवा ज्यादती करने पर कारीगर हड़ताल कर देते थे और कभी-कभी तो उपद्रव मचाते और आक्रमण कर बैठते थे। उपर्युक्त दोनों श्रेणियों के लोगों के पास अपनी जमीन नहीं थी। इनके ऊपर जमींदार और सरकारी बड़े उच्च पदाधिकारी थे। सबसे ऊंचा स्थान 'फरो' अर्थात् राजा या सम्राट् का था। सम्राट् ही कुल जमीन का मालिक माना जाता था।

पाँचवाँ वंश (२९६५-२८२५ ई० पू०) और छठा वंश (२८२५-२६३० ई० पू०)

चौथे राजवंश के बाद पांचवें राजवंश का आरम्भ हुआ। इस वंश के तेरह राजाओं के नाम मिलते हैं, किन्तु सम्भवतः नौ राजाओं ने ही राज्यासन ग्रहण किया। इस समय के इतिहास का अधिक ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है। किन्तु एक बड़े महत्व की वस्तु उस समय का एक 'पेपाइरस' अर्थात् कागज की लपेटी हुई कुण्डली-सी है, जिसमें पाँचवें वंश के सम्राट् तत्-का-रा-असा के समय की घटनाओं का उल्लेख है। कहा जाता है कि यही संसार का सबसे पुराना लेख है।

पांचवें वंश की मुख्य विशेषता मिस्र में उत्तर के सूर्य देवता 'रा' की पूजा की पुनः स्थापना और प्रचार होना है। इसके पहले वहाँ दक्षिण के आकाश-देवता 'होरस' की पूजा होती थी। कहा जाता है कि इसी काल से मिस्र में 'पुरोहित' श्रेणी का प्रारम्भ हुआ। इसके पहले पुरोहितों की कोई पृथक् श्रेणी नहीं थी। इसी प्रकार पैतृक या पुश्तैनी पदाधिकारियों का भी आरम्भ हो गया। इसके पहले वहाँ राज्य के बड़े-बड़े पद राजा के वंशजों को ही मिलते थे। किन्तु इस समय से उच्च पद पुश्तैनी हो गए। इनको जो अधिकार और भूमि मिली थी, वह छठे राजवंश के समय तक इनके वंश में पुश्तैनी हो गई।

छठे वंश में "पेपी" द्वितीय नाम का पराक्रमी राजा हुआ। इसके समय (२७३८ से २६४४ ई० पू०) से यह प्रथा चली कि प्रत्येक राजा अपने समय में ऐसे मन्दिरों का निर्माण कराए, जो भविष्य में उसके महत्व के साक्षी हो सकें। स्वयं पेपी ने लाल पत्थर के मन्दिर बनवाए। इस पत्थर के लिए उसे 'असवान' पर दो बार आक्रमण भी करना पड़ा। कहा

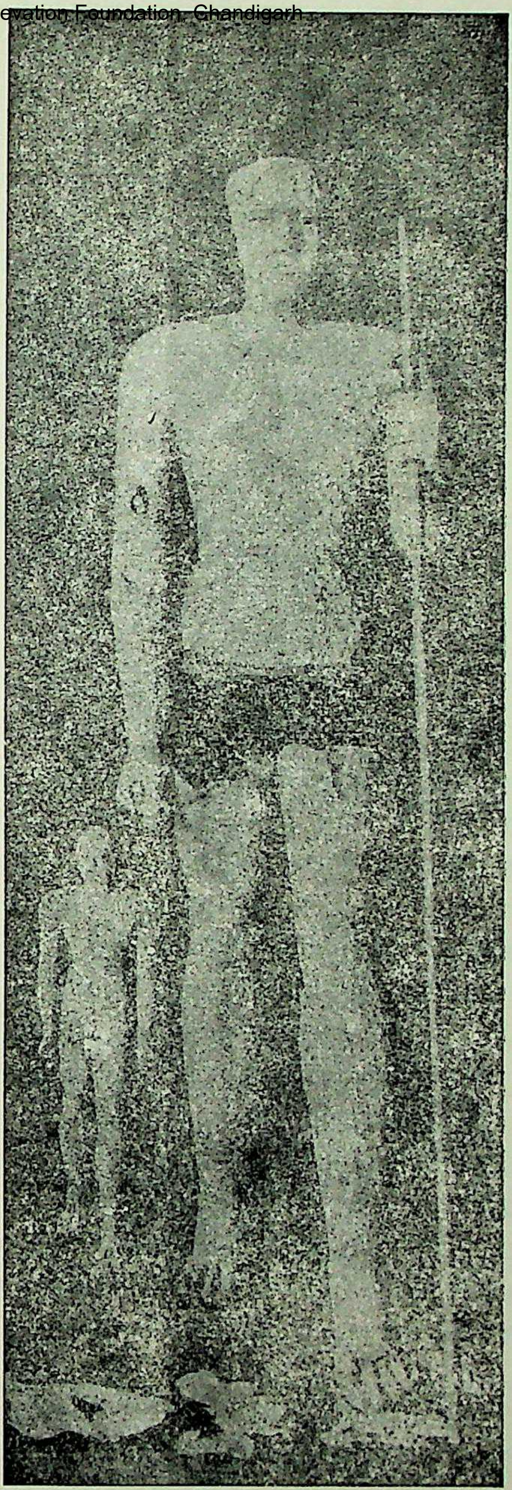

छठे राजवंश के प्रतापी सम्राट् पेपी द्वितीय की प्रतिमा। यह प्रतिमा पूरे मनुष्य के आकार की है और ताँबे की चादर की बनी है। पीछे की ओर जो एक और छोटी प्रतिमा है, वह पेपी के पुत्र की है। पेपी के समय से मिस्र में सम्राटों द्वारा भव्य देवालय बनवाने की प्रथा पड़ी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जाता है कि 'स्वेज' की ओर भी उसने चढ़ाई की थी। अपने राजत्व-काल में पेपी द्वितीय ने पाँच नहरें खुदवाईं, जिनका उद्देश्य असवान से पत्थर लाना था। यद्यपि पेपी के समय में राज्यकोष और राज्य की वृद्धि हुई एवं उसे योग्य मंत्री भी मिले और उसका राज्य-काल लगभग ९४ वर्ष तक रहा, किन्तु राज्य के अस्त-व्यस्त होने के लक्षण उसके राज्य-काल के अन्त तक साफ दिखाई पड़ने लगे। उसके मरते ही उसका राज्य टुकड़े-टुकड़े हो गया। स्थानिक जमींदार, सरदार और राजवंश स्वतन्त्र बन बैठे। मेम्फिस नगर का महत्व भी उसके साथ-साथ नष्ट हो गया। ऐसी परिस्थिति में 'सीरिया' वालों ने मिस्र पर आक्रमण कर दिया। यह भी कहा जाता है कि न्यूबिया के 'नीग्रो' लोगों ने भी उस पर चढ़ाई कर दी। परिणाम यह हुआ कि पुराने राजवंशों और उनके ऐश्वर्य का अन्त हो गया।

माध्यमिक राज्य-काल

ग्यारहवाँ राज्य-वंश (२३७५ से २२१२ या २१६० से २००० ई० पू०)

करीब तीन सौ वर्ष तक मिस्र का इतिहास अन्धकारपूर्ण और संभवतः अशान्तिपूर्ण रहा। छोटी-छोटी रियासतों के आपस के बैर और विदेशियों के आक्रमण से मिस्र अव्यवस्थित हो गया। किन्तु उसका उद्धार करनेवाली एक नई शक्ति देश के मध्य भाग में पैदा हो गई। यह थीबिया का "अन्तेफाँ" वंश था, जिसकी राजधानी 'थेबीज' में थी। इस वंश का सबसे बड़ा राजा नेमपेत्रे (२२६०-२२४२ ? ई० पू०) हुआ, जिसने जमींदारों पर अपना प्रभुत्व जमाकर मिस्र में फिर एक राज्य स्थापित कर दिया। किन्तु उसने उनको न तो नष्ट किया और न उनके स्थानिक अधिकारों को ही उनसे छीना। यही नहीं, उसने विदेशी आक्रमणकारियों से भी अनेक युद्ध किए। एक सौ साठ वर्ष तक राज्य करके यह वंश भी समाप्त हो गया, किन्तु इसने मिस्र के उत्थान के लिए रङ्गमञ्च तैयार कर दिया।

बारहवाँ वंश (२००० से १७८८ ई० पू०)

मिस्र के इतिहास में सबसे महत्व का वंश 'बारहवाँ वंश' माना जाता है। इसका सबसे पहला राजा "आमेनेमहेत" प्रथम (२२१२-२१८२ या १५५७-१५४१ ई० पू०) हुआ, जो या तो ग्यारहवें वंश की किसी शाखा से उत्पन्न हुआ था या उसके अन्तिम राजा का मन्त्री था। इसी के समय में नए वंश की राजधानी 'इत्थतोई' की बड़ी उन्नति हुई और 'लक्सर' के प्रसिद्ध देवालयों का निर्माण आरम्भ हुआ। इसी ने 'आमोन' देवता की पूजा का प्रचार किया, जो कुछ समय के बाद 'रा' से संयुक्त होकर 'आमोन-रा' के नाम से मिस्र का प्रमुख देवाधिदेव प्रख्यात हो गया। इसने राजा और युवराज के मिलकर शासन करने की परिपाटी चलाई, जिससे वयस्क और युवक के सहयोग से शासन में स्फूर्ति रहे तथा राज्याभिषेक में भी कम कठिनाई पड़े। कहा जाता है कि मिस्र का यही पहला राजा था, जिसने प्रजापालन और राष्ट्रसेवा को ही राजा का परम कर्त्तव्य निश्चित किया था। वह निरन्तर राज्य का दौरा करता रहा और अराजकता एवं देशद्रोहियों का दमन करता रहा। इसी की नीति का अनुकरण करके उसके प्रतापी उत्तराधिकारियों ने जमींदारी वंश का विनाश कर दिया और राजाश्रित नए राज्य-पदाधिकारियों का वर्ग तैयार कर दिया।

सेनूस्रेत तृतीय

इस वंश के राजाओं में दो विशेषतया उल्लेखनीय हैं। एक "सेनूस्रेत" तृतीय और दूसरा "आमेनेमहेत" तृतीय। 'सेनूस्रेत' तृतीय (२०६९-२०६१ या १८८७-१८४९ ई०पू०) ने न्यूबिया पर चढ़ाई करके अपने राज्य की सीमा दूसरे प्रपात तक बढ़ा दी। उसने पेलेस्टाइन के दक्षिणी भाग में 'सेकमेम' पर भी चढ़ाई की। किन्तु उसका सबसे महत्व का कार्य स्थानिक जमींदारों और रजवाड़ों को निस्तेज और अशक्त करना था। उसका उत्तराधिकारी आमेनेमहेत तृतीय (२०६१-२०१३ या १८४९-१८०१ ई० पू०) हुआ। इसने राज्य की सीमा तृतीय प्रपात तक बढ़ाकर वहाँ किले बनवा दिए एवं बांध बनाकर मोइरिस झील के पानी को नील नदी की ओर बहा दिया, जिससे एक बड़ा भूभाग जल से सिंचित और खेती से हरा-भरा हो गया। फैय्यूम में उसने प्रसिद्ध भूलभुलैयाँ और मनुष्य के चेहरे के सिंह बनवाए। सीनाई में याकूत और ताँबे की खानों से भी पूरा लाभ उठाने का प्रयत्न किया। उसके समय में राजा की शक्ति पूर्णता पर पहुँच गई और शासन का कार्य जमींदारों के हाथ से राजकर्मचारियों के हाथ में चला गया।

किन्तु इसके बढ़ते हुए वैभव में क्रूर काल का विनाशकारी विधान छिपा हुआ था। उसकी मृत्यु के बाद राज्य की दशा बिगड़ने लगी और १८०० या १७८८ ई० पू० 'हिक्सोस' नामक सेमेटिक भाषा-भाषी वंश ने अरब की मरुभूमि से बढ़कर मिस्र पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। मिस्र में विदेशियों का ऐसा प्रबल और इतने काल तक अधिकार

प्राचीन मिस्र के विभिन्न वंशों के सम्राट-सम्राज्ञी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मेनकुरे नेतरहोतेप

अमेनहोतेप प्रथम थटमोज प्रथम

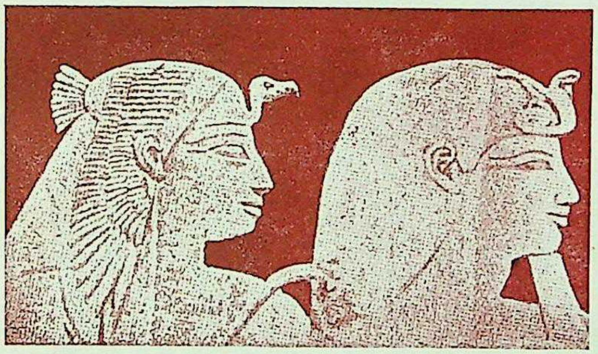

आहमीज थटमोज द्वितीय

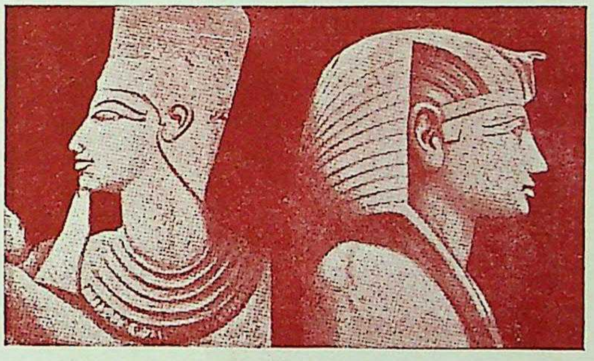

महारानी हाशपसुत थटमोज तृतीय

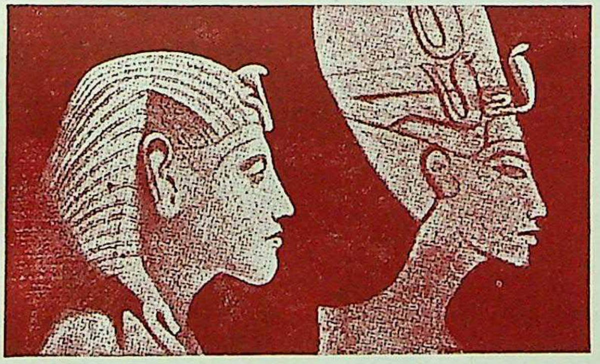

इखनातोन महारानी नेफेरतिती

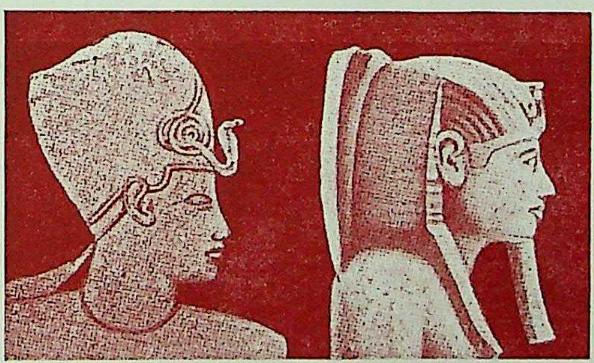

तूतनखामोन होरमहेब

सेती प्रथम रामसेज द्वितीय

मेरेनपा सेती द्वितीय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहली पंक्ति

(बाईं ओर) वृद्धि और उद्भिजों का अधिष्ठाता 'नफेर-अत्मू', तथा नारी-तत्त्व की अधिष्ठात्री देवी 'हाथोर'। (दाहिनी ओर) 'हाथोर' की उत्तरकालीन प्रतिमा तथा काल और विज्ञान का देवता 'खोन्सू'।

दूसरी पंक्ति

(बाईं ओर) मातृत्व की अधिष्ठात्री देवी 'आइसिस' या धारित्री देवी तथा सूर्यदेव 'अनहूर'। (दाहिनी ओर) चन्द्रदेव 'आ' एवं बुराई पर विजय का प्रतीक 'होरस'।

तीसरी पंक्ति

(बाईं ओर) अन्न का देवता 'ओसरिस' तथा सृष्टि का देवता 'पृा'। (दाहिनी ओर) मृतकों की पथ-प्रदर्शिका 'अनूबिया' देवी तथा आखेट का देवता 'बास्तेत'।

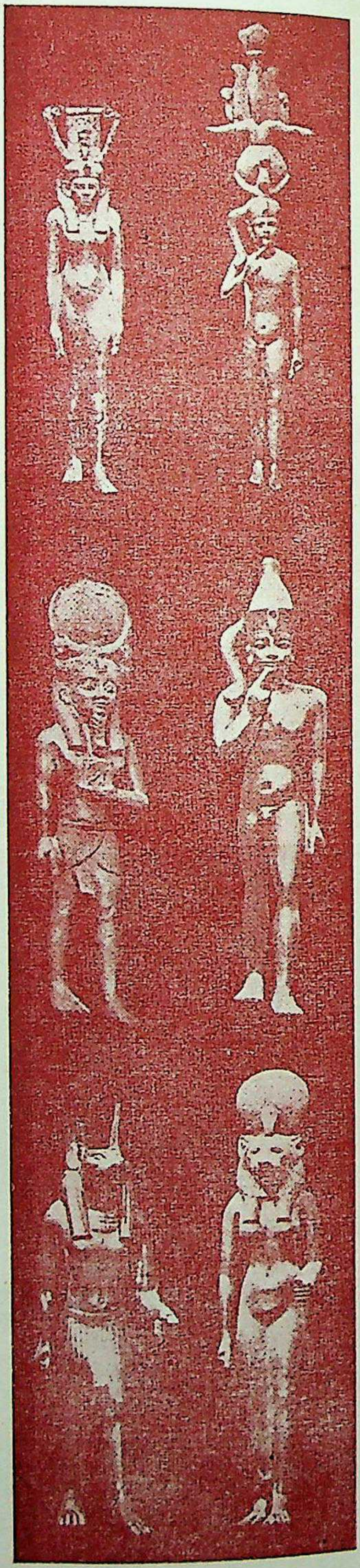

प्राचीन मिस्र के प्रमुख देवी-देवताओं की चित्र-विचित्र आकृतियां

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहले कभी नहीं हुआ था। उनकी विजय का मुख्य कारण उनके युद्ध के साधन थे। उनके पास घोड़े थे, जिनको वे पहियोंवाले रथों में जोतकर चलाते थे। मिस्रवालों को न तो घोड़ों और न पहियावाले रथों का ही ज्ञान था। इसके अलावा आक्रमणकारियों के पास कांसे के हथियार, विशेषतः तलवार थी, जिसके मुकाबले का कोई अस्त्र मिस्रवालों के पास न था, क्योंकि वे कांसे का प्रयोग जानते ही नहीं थे। जान पड़ता है कि मिस्र के अधिकारच्युत जमींदारों और असन्तुष्ट प्रजा ने राजाओं का साथ न दिया, जिससे आक्रमणकारियों का काम सुलभ हो गया। "हिक्सोस" वंश के उत्थान के साथ-ही-साथ मिस्र के माध्यमिक काल का अन्त माना जाता है।

नया राज्य-काल (१५८०-९४५ ई० पू०)

यद्यपि मिस्र के दक्षिणी भाग में वहाँ के ही राजा राज्य करते रहे, किन्तु हिक्सोस लोगों के प्रताप के सामने वे निस्तेज और नगण्य-से रहे। दो सौ आठ वर्ष तक हिक्सोस वंश का ही दौरदौरा रहा। किन्तु यह व्यवस्था ई०पू० की सत्रहवीं शताब्दी के अन्त से बदलने लगी। थेबीज के एक राजकुमार 'सेकेनेनरे' प्रथम ने हिक्सोस लोगों के विरोध का आरम्भ किया, जो दिनोंदिन बल पकड़ता गया। उसका एक उत्तराधिकारी 'सेकेनेनरे' तृतीय सम्भवतः इन्हीं विदेशी आक्रामकों के विरुद्ध स्वतंत्रता के लिए लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ (१५६० ई० पू०)।

सेकेनेनरे तृतीय का एक पुत्र 'आहमीज' बड़ा योद्धा निकला। उसने अपने पिता का संकल्प पूर्ण किया और हिक्सोस लोगों की राजधानी 'अवरिस' को छीनकर उन्हें मिस्र से निकाल दिया। इसी वीर नवयुवक ने १५७८ ई० पू० राजसिंहासन पर बैठकर मिस्र के इतिहासप्रसिद्ध अठारहवें राज्य-वंश की प्रतिष्ठा की, जिसमें आगे चलकर अनेक प्रतापी राजा पैदा हुए। यही नहीं, दक्षिण के विद्रोहियों और न्यूबियन लोगों का दमन करके उसने मिस्र को फिर एकता के सूत्र में बाँध दिया।

यह भग्न प्रस्तर-मूर्ति सेनूस्रेत तृतीय की प्रतिमा बताई जाती है, जो बारहवें राज्यवंश का सबसे प्रतापी राजा था।

अठारहवाँ राजवंश (१५८०-१३५० ई० पू०)

'आहमीज' के बढ़ते हुए प्रताप के आगे मिस्र के जमींदारों और प्रबल राजकर्मचारियों का सितारा फिर डूब गया। उसने उनकी पैतृक भूमि छीनकर अपने शासन में ले ली। इसके समय में सामन्तों का अन्त हो गया और सारी भूमि राज्य-शासन में आ गई। अपनी विजयों से उत्साहित होकर उसने सीरिया और पेलेस्टाइन पर चढ़ाइयाँ आरम्भ कर दीं। देश में विजयाकांक्षा की ऐसी उत्तेजक लहर उठी कि मध्यम श्रेणी के लोग भी हथियार बाँधकर सैनिक हो गए। उसने उनको उदारता के साथ पुरस्कृत करके उनके उत्साह को दृढ़ और संवर्द्धित कर दिया। मिस्र में घोड़े, रथ और नए अस्त्रों से सज्जित नए ढंग की स्थायी सेना की स्थापना हो गई। इस सेना से मिस्र में दिग्विजय की अभिलाषा और नए युग का आरम्भ हो गया। आहमीज ने बड़े परिश्रम के साथ अपने सुयोग्य मन्त्री की सहायता से नवआदर्शों के अनुकूल राज्य और शासन का संगठन किया। समाज में राजकर्मचारियों की वृद्धि होने लगी। मन्दिरों की सम्पत्ति और उनका महत्व बढ़ने के कारण "पुजारियों" के एक पृथक् श्रेणीबद्ध दल का आविर्भाव हो गया, जो आगे चलकर प्रबल हो गया और राज्य का एक महत्वपूर्ण अङ्ग बन गया।

आहमीज की मृत्यु (१५५७ ई० पू०) के पश्चात् कई प्रतापी राजा हुए। आमेनहोतेप प्रथम (१५५७-१५४१ ई० पू०) ने न्यूबिया के उत्तरी भाग को राज्य में मिला लिया। लीबियावालों को खदेड़कर उसने उनके प्रान्त पर चढ़ाई कर दी और कहा जाता है कि मसोपटेमिया की फरात नदी तक धावा किया। उसके उत्तराधिकारी 'थटमोज' प्रथम (१५४०-१५०१ ई० पू०) ने अपना राज्य नील के चौथे प्रपात तक बढ़ा दिया। एशिया के राज्य, जिन्हें उसके पूर्वजों ने करद बनाया था, ठीक तौर पर कर नहीं देते थे। अतएव वह सीरिया की ओर बढ़ा और फरात नदी के तट तक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जा पहुँचा। वहाँ उसे इतनी सफलता हुई कि वह प्रसन्नमन लौटा और थेबीज में आलीशान मन्दिरों की रचना में लग गया। मन्दिरों के लिए उसने बहुमूल्य सामग्री एकत्रित कर दी और उनके लिए जागीरें दे दीं। उसकी मृत्यु (१५०१ ई० पू०) के बाद उत्तराधिकारी पुत्र के अभाव में उसकी पुत्री 'हाशेपसुत' महारानी बनाई गई। वह बड़ी तेजस्विनी थी। यद्यपि उसका पति 'थटमोज' तृतीय स्वयं पराक्रमी और प्रतापी था, किन्तु महारानी के जीते जी तक उसकी कुछ चलने न पाई। सारा राज-काज महारानी ही करती रहीं। कहा जाता है कि ऐतिहासिक स्त्रियों में राज्य करनेवाली यही सबसे पहली महारानी हुई। यद्यपि उसने राज्य-विस्तार तो नहीं किया, किन्तु उसके गौरव की पूरी तरह रक्षा की। उसके शान्तिमय राजत्वकाल में मिस्र ने अच्छी उन्नति और समृद्धि प्राप्त की। उसने भी बड़े आलीशान मन्दिर निर्माण कराए। मिस्र-वाले उसे एक देवी का अवतार मानने लगे। १४७९ ई० पू० उसका देहान्त होने के बाद उसके पराक्रमी पति को स्वतंत्रता-पूर्वक अपने पराक्रम के प्रदर्शन का अवसर मिला।

थटमोज तृतीय (१४७९-१४४७ ई० पू०)

थटमोज तृतीय जैसा पराक्रमी और विजयी था, वैसा ही सेना-नायक और राजनीतिज्ञ भी था। इतिहासज्ञ उसकी सेना-संचालन की विधि को सोचकर अचम्भे में आ जाते हैं, क्योंकि उसका ढंग वैज्ञानिक और ठीक आधुनिक युद्धकला के अनुरूप था। अपने शासन के पहले वर्ष में ही उसने 'मेगीडो' में सीरिया के संयुक्त बल का मुकबला किया और घोर युद्ध के बाद प्रशंसनीय विजय प्राप्त की, जिससे अनेक राजा उसकी शरण में आ गए। इस विजय से प्रोत्साहित होकर उसने सात बार आक्रमण किया और प्रत्येक युद्ध में उसकी विजय हुई। इसी कारण उसे इतिहासकार 'मिस्र का नेपोलियन' कहते हैं। उसका आतंक ऐसा जम गया कि सीरिया, असीरिया, नहरेन, मिटानी, खेटी (हिटाइट), फोनीशिया, अलाशिया (साइप्रस ?) की रियासतें उसको कर देने लगीं। उसकी सेना फरात की तलहटी तक जा पहुँची। उसका जहाजी बेड़ा भूमध्यसागर में निर्द्वन्द्व विचरता फिरता था। चारों ओर से सम्पत्ति उठकर मिस्र में आने लगी, जिससे उसकी समृद्धि अभूतपूर्व हो गई। इस धन से मिस्र में बड़े-बड़े मन्दिर और स्मारक बनाए गए, जिनसे नील नदी के तट के कई नगर जगमगाने लगे। थटमोज जैसा विजेता था, वैसा ही शासक भी था। शासन के प्रत्येक विभाग और देश के समस्त जीवन पर उसने अपने व्यक्तित्व की छाप लगा दी। कहा जाता है कि वास्तविक अर्थ में वह सबसे पहला साम्राज्य-निर्माता और दिग्विजयी हुआ है। केन्द्रीय शासन के स्थानिक शासन पर आधिपत्य का विधान रचकर भविष्य को उसने नया मार्ग दिखाया। विजित प्रजा को स्वानुरक्त बनाने के लिए उसने सहानुभूति, न्याय, शान्ति और शिक्षा रूपी साधनों का प्रयोग किया।

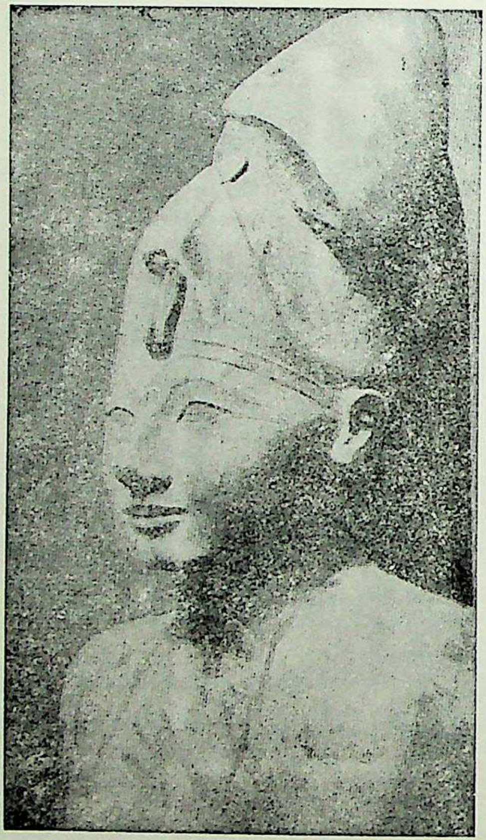

थटमोज तृतीय, जो 'मिस्र का नेपोलियन' कहा जाता है। यह सुन्दर प्रस्तर-मूर्ति कैरो म्यूजियम में रक्खी है।

आमेनहोतेप तृतीय (१४११-१३७५ ई० पू०)

मिस्र का साम्राज्य शक्ति के प्रयोग से बना था और उसी से उसकी रक्षा भी हो सकती थी। थटमोज के बाद उसके पुत्र और प्रपौत्र को बल का प्रयोग करना पड़ा, क्योंकि थटमोज के मरते ही सीरिया आदि में विद्रोह की आग भड़क उठी थी। इस विद्रोह का दमन ऐसी दृढ़ता के साथ किया गया कि "आमेनहोतेप" तृतीय को अपने छत्तीस वर्ष के राजत्वकाल में फिर सीरिया की ओर जाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। इस राजा के समय में मिस्र उन्नति और समृद्धि की पराकाष्ठा पर पहुँच गया। इस समय को लोग 'मिस्र का स्वर्णयुग' मानते हैं। सम्पत्तिशाली होने के कारण इस युग में मिस्र की कलाओं और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उद्योग-धंधों ने अभूतपूर्व उन्नति की। आमेनहोतेप तृतीय के पिता ने और स्वयं उसने भी मिटानी और बेबिलान के राज-वंश से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर लिया, जिससे मिस्र के राजनीतिक प्रभाव और सभ्यता की यथेष्ट वृद्धि हुई।

इतने वर्षों तक शान्ति, वैभव, ऐश और आराम में रहने के कारण मिस्र में विजयादर्श क्षीण हो गया और युद्धप्रेम भी कम हो गया। संयोगवश नया राजा 'आमेनहोतेप' चतुर्थ (१३७५-१३५८ ई० पू०) शान्ति और धर्म का प्रेमी निकला। उसके विचार और आदर्श क्रान्तिकारी थे। धर्म, कला, आचार-विचार आदि के सम्बन्ध में उसके विचार अपने पूर्वजों से भिन्न थे। न तो जातीय देवता 'आमोन' के प्रति उसकी श्रद्धा थी और न उसे मन्दिरों और पुजारियों का आडम्बर ही रुचिकर था। मन्त्र, तन्त्र, पशुबलि और नरबलि एवं मन्दिरों की अगणित देवदासियों को वह निन्दनीय समझता था। पुजारियों की जीवनचर्या और व्यभिचार आदि से उसे घृणा थी। उसके आचार-विचार पवित्र थे और भाव एवं आदर्श शुद्ध थे। नवयुवक होने और कवि का हृदय पाने के कारण उसमें उत्साह और सुधार करने की प्रबल इच्छा जाग्रत हो उठी। उसने एक ईश्वर 'आतोन' की पूजा का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। अन्य देवताओं के स्थान पर उसने केवल सूर्य की उपासना का ही आदेश दिया, क्योंकि वही सर्वव्यापक, परम पिता, दयालु, रक्षक, परमेश्वर की विभूति का द्योतक है। थेबीज नगर को आचारहीन और पापपूर्ण देखकर, उसने "आखेतातोन" नामक नवीन नगर का निर्माण किया। उसने 'आतोन' के सिवा सभी देवताओं की पूजा का नामनिशान मिटा देने की आज्ञा दे दी। स्वयं अपना नाम भी बदलकर उसने 'इखनातोन' रख लिया। यही नहीं, मन्दिरों में खुदे हुए विविध देवताओं के नामों से संयुक्त होने के कारण उसने अपने पूर्वजों के भी नाम वहाँ से खुरचवा दिए। देवालयों से पुराने देवता निकाल दिए गए और पुजारियों की सम्पत्ति छीन ली गई। उसने अपने क्रान्तिकारी विचारों और आदर्शों के प्रचार में अपनी पूरी शक्ति, अपना कवित्व और सारा समय लगा दिया, जिससे राज-काज में ढील पड़ गई और शिथिलता आने लगी। प्रजा में उसके विचारों और नीति से असन्तोष पैदा हो गया। वंशानुगत जातीय देवताओं का अपमान लोगों को असह्य होने लगा। पुजारियों ने भी असन्तोष बढ़ाने का पूरा प्रयत्न किया। परिणाम यह हुआ कि इखनातोन को लोग सनकी, धर्मान्ध, आदर्शवादी, निर्बल, और अदूरदर्शी प्रचारक, उपदेशक एवं प्रमादी कवि समझने लगे। उसके प्रति उपेक्षा, अरुचि और घृणा के भाव पैदा हो गए। राजकर्मचारियों ने ढील डाल दी। प्रबन्ध में गड़बड़ी पैदा हो गई। अधीनस्थ राज्यों ने कर देना बन्द कर दिया। खजाना खाली हो गया। सेना निरुत्साहित हो गई और मिस्रवासियों का आत्म-विश्वास घट गया। ऐसी पतनोन्मुख परिस्थिति में हिटाइट, मिटानी और बेबिलानवालों ने साम्राज्य का विरोध करना आरम्भ कर दिया। ऐसी शोचनीय दशा में अपने देश को छोड़कर, विलक्षण प्रतिभाशाली किन्तु प्रभावहीन 'इखनातोन' तीस वर्ष की अवस्था ही में दुःखी होकर बिना सन्तान के संसार छोड़कर चल दिया। उच्च आदर्शों का राज्य और देश पर दुःखद प्रभाव पड़ना इतिहास की एक विषम पहेली है।

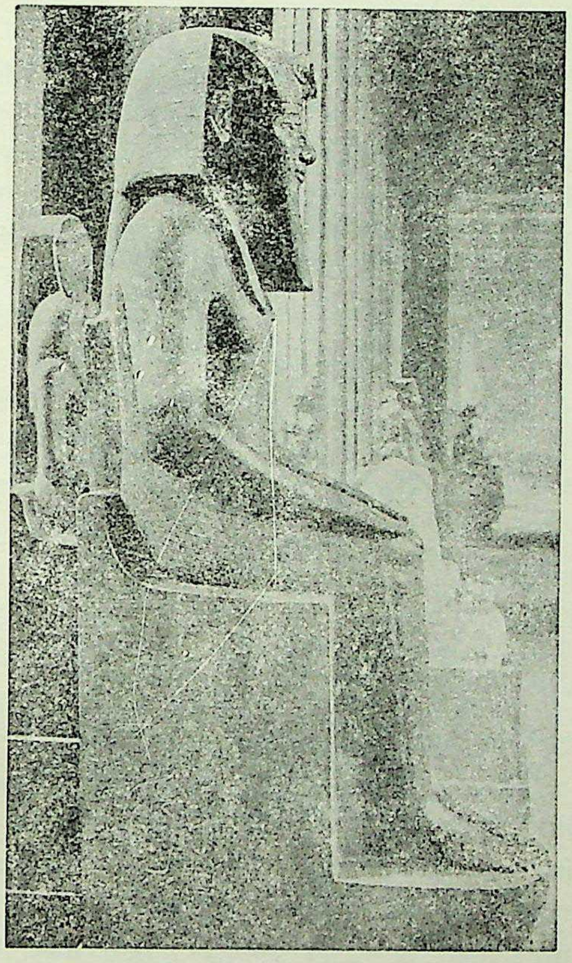

आमेनहोतेप तृतीय, जिसका राज्यकाल मिस्र के इतिहास का स्वर्णयुग माना जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इखनातोन की मृत्यु के बाद उसका उत्तराधिकारी उसका एक दामाद हुआ, किन्तु वह बिना कुछ किए ही उसी वर्ष मर गया। फिर दूसरा दामाद 'तूतनखातोन' राजा बना। जनता को संतुष्ट करने के लिए, वह राजधानी को फिर थेबीज वापस ले गया। 'आतोन' की पूजा छोड़ी जाने लगी। 'आमोन' तथा पुराने देवता फिर जीवित हो गए। पुराने पुजारी फिर फूलने-फलने लगे। उसने अपना नाम भी बदलकर 'तूतनखामोन' रख लिया। किन्तु यह परिश्रम निरर्थक रहा। उसने एक बार मिस्र के महत्व को पुनरुज्जीवित करने की कोशिश की, किन्तु वह असफल रही। उसका समाधिस्थान सन् १९२२ ई० में खोदा गया। *उसमें बड़े महत्व की चीजें निकलीं, जिससे पुरातत्व की दुनिया में उनकी बड़ी चर्चा हो गई। उन चीजों के देखने से साफ पता चलता है कि उसके श्वसुर के क्रान्तिकारी विचारों के कारण कलाओं का ह्रास हो गया था। राज्यासीन होने के पाँच वर्ष बाद तूतनखामोन की मृत्यु हो गई (१३५३ ई० पू०)। उसका उत्तराधिकारी और भी निर्बल निकला। उसके मरते ही (१३५० ई० पू०) अठारहवें राजवंश का विनाश हो गया। इस प्रकार मिस्र का शासन अस्तव्यस्त हो गया और अशान्ति के झकोरों से शासन की बेलि टूटकर गिरने लगी।

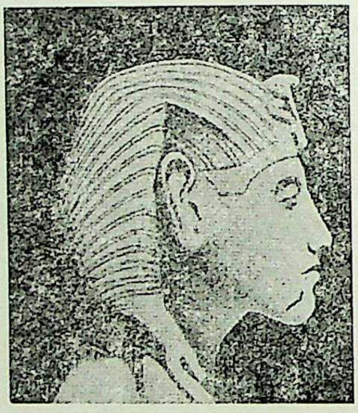

साम्राट् इखनातोन, जो मिस्र के राजाओं में सबसे अधिक प्रतिभाशाली, क्रान्तिकारी और आदर्शवादी हुआ।

अठारहवें वंश के अंतिम राजा 'आइ' का मन्त्री 'होरमहेब' एक चतुर, कार्यकुशल और प्रभावशाली व्यक्ति था। विप्लव से राज्य की रक्षा करने के लिए उसने राज्य की बागडोर अपने हाथों में ले ली। प्राचीन संस्थाओं, पुराने देवताओं और देवालयों का फिर से संस्कार करके उसने शासन को सुधारने का भरसक प्रयत्न किया। इखनातोन की बहिन से विवाह करके उसने राजवंश से अपना संबंध स्थापित कर लिया। अपनी मृत्यु (१३२१ या १३१४ ई० पू०) के पूर्व उसने शायद किसी पुराने राजवंश के 'रामसेज' प्रथम नाम के एक व्यक्ति को अपना उत्तराधिकारी चुन लिया था।

*तूतनखामोन के मकबरे से प्राप्त मूल्यवान् सामग्री को खोज निकालने का प्रमुख श्रेय हॉवर्ड कार्टर नामक एक अंग्रेज विद्वान् को है।

उन्नीसवाँ और बीसवाँ राजवंश रामसेज वंश (१३२१ १०९४ ई० पू०)

'रामसेज' से ही उन्नीसवाँ और बीसवाँ राजवंश चला है। रामसेज वृद्ध था। सिंहासन ग्रहण करने के एक वर्ष बाद ही उसका देहान्त हो गया। इस वंश में भी कई प्रसिद्ध राजा हो गए हैं। उनमें पहला 'सेती' प्रथम था, जिसने कि पेलेस्टाइन में बद्दुओं के बढ़ते हुए प्रभाव को रोककर वहाँ-वालों पर मिस्र की सेना का आतंक फिर स्थापित करने का प्रयत्न किया। वहाँ से लौटकर उसने लीबियावालों को पीछे हटा दिया। हिटाइट लोगों से, जिन्होंने सीरिया में अपना प्रभाव जमा लिया था, युद्ध करने के लिए सेती ने उन पर चढ़ाई की और उनको परास्त किया। इस विजय से मिस्र की शक्ति का ऐसा प्रभाव जमा कि हिटाइट उससे फिर न उलझे। सेती ने राज्य के पुनरुत्थान का प्रयत्न किया और थेबीज को पुनर्जीवित करके विशाल मन्दिरों और स्मारकों से उसे विभूषित किया। उसकी मृत्यु लगभग १३०० ई० पू० हुई।

दूसरा प्रतापी राजा रामसेज द्वितीय (१३००-१२२५ ई० पू०) हुआ। यह बली योद्धा था। इसमें अदम्य आत्मिक विश्वास और स्वाभिमान था। थटमोज तृतीय की समता प्राप्त करने के लिए उसने हिटाइट लोगों पर चढ़ाई कर दी। यद्यपि उससे भयंकर चूक हो गई थीं, किन्तु अपनी वीरता और उत्साह से उसने उन पर (१२९६ या १२८८ ई० पू०) विजय प्राप्त कर ली। किन्तु उनकी भूमि लिए बिना ही उसे लौटना पड़ा। इतिहास में यह सबसे पहला युद्ध माना जाता है, जिसका पूरा वर्णन मिलता है। इस विजय को सन्दिग्ध समझकर हिटाइटों ने फिर उपद्रव खड़ा किया और अन्य रियासतों को भी उभाड़ा। इस बार रामसेज ने फिर चढ़ाई की और तीन वर्ष तक वह इधर-उधर विजय करता तथा नगरों पर आधिपत्य जमाता रहा। अन्त में हिटाइटों की प्रार्थना पर उसने शान्ति प्रदान कर (१२९५ या १२-७२ ई० पू०) सन्धि कर ली। यह सन्धि भी इतिहास की पहली सन्धि है, जिसकी कि बाकायदा लिखा-पढ़ी की गई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थी । आगे चलकर उसने हिटाइट राजवंश की एक राज-कुमारी से विवाह कर लिया (१२५९ ई० पू०) । रामसेज के दीर्घव्यापी शासनकाल में यद्यपि मिस्र का बाहरी स्वरूप अच्छा दिखायी दिया, किन्तु भीतरी दशा कुछ न सुधर पाई । शासन में ढील पड़ गई । उच्च कर्मचारी मनमानी करने लगे । सम्पत्ति और शक्ति बहुत-कुछ पुजारियों के हाथ में आ गई और आसपास की रियासतों में अशान्ति और विद्रोह के लक्षण दिखाई देने लगे । रामसेज द्वितीय की मृत्यु (१२२५ ई० पू०) के बाद मिस्र के राजाओं के सामने शासन के संगठन और शत्रुओं से देश की रक्षा के दो जटिल प्रश्न बने रहे । कई राजा आए और गए, किन्तु सत्ताईस वर्ष तक व्यवस्था खराब ही रही ।

आखिर रामसेज तृतीय सिंहासन पर आया (११९८ ई० पू०), और तब मिस्र में फिर से जान आई । उसने देशी और विदेशी सिपाहियों को मिलाकर एक स्थायी सेना संगठित की और जहाजी बेड़ा भी मजबूत किया । इनकी सहायता एवं अपने साहस और बल से उस युवक राजा ने क्रीट और सीरियावालों से युद्ध ठान लिया एवं क्रीटवालों के प्रबल बेड़े को पराजित कर पीछे हटा दिया (११९४ ई० पू०)। सीरिया में ईजियन लोग थे, जो उत्तरी भूमध्यसागर से आकर बलपूर्वक जम गए थे । उन्हें भी रामसेज तृतीय ने जल और स्थल युद्ध में अच्छी तरह हराकर (११९० ई० पू०) अधीन कर लिया । उसी प्रकार मेशवेश नामक उत्तरी अफ्रीकावालों को, जो लीबिया में घुस बैठे थे और मिस्र में पैर जमाने का प्रयत्न कर रहे थे, उसने हराकर पीछे भगा दिया । यद्यपि उसने राज्य तो बहुत नहीं बढ़ाया, किन्तु मिस्र का आतंक पुनः उसने स्थापित कर दिया और विद्रोहियों और आक्रमणकारियों से देश की रक्षा कर ली । देश में शान्ति स्थापित हो गई । व्यापार फिर से चेत उठा । ठीक समय से राजकर वसूल होने लगा । सामुद्रिक बल और सेना-बल बढ़ गया । उस युग के विशाल मन्दिरों (उनमें प्राप्त) लेखों और तत्कालीन आर्थिक जीवन में मिस्र की इस शक्ति का उल्लेखनीय प्रभाव लक्षित है । मन्दिरों के महत्व के साथ पुजारियों का भी प्रभाव बढ़ने लगा और राज्य में उनकी शक्ति बहुत बढ़ गई । मन्दिरों पर होनेवाले खर्च का अनुमान इसी से किया जा सकता है कि उनकी सेवा में राज्य की उपजाऊ भूमि का सातवाँ भाग दे दिया गया था । इसके सिवा ८८ जहाज, ५३ कारखाने और कितने ही नगर भी इन मंदिरों के अधीन थे ! उनमें से सबसे सम्पन्न और वैभवपूर्ण 'आमोन' का मन्दिर था, जहाँ खजाने के खजाने खिंचे चले आते थे । रामसेज ने अनेक लोकहित के कार्य भी किए । उसने जनता के हितार्थ राज्य में स्थान-स्थान पर बहुत से पेड़ लगवा दिए थे, जिससे लोगों को छाया मिल सके ।

समाधिस्थान से प्राप्त तूतनखामोन की प्रतिमा

बाहरी वैभव में बहुत बढ़ा-चढ़ा दिखाई देने पर भी वास्तव में मिस्र के राज्य के भीतर पतन के कीटाणु छिपे हुए थे । मन्दिरों का अत्यधिक सम्पत्तिशाली होना, पुजारियों और राजकर्मचारियों का बल-वैभव बढ़ना, राजा तथा उनके अनुचरों और राजकर्मचारियों में आमोद-प्रमोद का व्यसन बढ़ना, राज्य में दासों और दासियों की संख्या बढ़ना, गुलामों का राज्य में महत्व पाना और उनके प्रभाव की वृद्धि होना, रनिवास में षड़यंत्र का विकास होना आदि लक्षण पतन के प्रमाण थे । एक रानी ने तो रामसेज ही की हत्या करने का षडयंत्र रचा, जो संयोगवश विफल हो गया । तत्संबंधी षड़यंत्रकारियों पर मुकदमा चल ही रहा था कि मानसिक और शारीरिक आघात से राजा की मृत्यु हो गई (११६७ ई० पू०) ।

राज्य का पतन (११६७ से १०९० ई० पू०)

रामसेज की मृत्यु के बाद राज्य में इतनी अस्थिरता बढ़ी कि पचीस-तीस वर्ष के भीतर ही पाँच राजा रामसेज नाम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के आए और चले गए। जब तक रामसेज नवां राजा हुआ, तब तक आमोन के महन्त का इतना महत्व बढ़ गया कि उसके सामने राजा का महत्व दबने लगा। समय में इतना फेर आ गया कि लोगों ने पुराने राजाओं के समाधिस्थानों की सम्पत्ति को चुराना और छीनना शुरू कर दिया, और अन्ततोगत्वा उन्होंने उसे लूट ही लिया। जब राजधानी में इतनी अराजकता फैल गई, तो दूरस्थ प्रान्तों का कहना ही क्या था! सीरिया तो स्वतंत्र हो ही गया था और पेलेस्टाइन में भी मिस्र का प्रभाव नगण्य सा हो गया। मिस्र के बुरे दिन आ गए और उसके हाथ से सभ्यता का झंडा और राजनीतिक नेतृत्व जाता रहा। राज्य का अङ्गभङ्ग हो गया और अन्त में उसका इतिहास केवल स्थानिक महत्व का ही रह गया।

मिस्र का जीवन और उसकी सभ्यता

मिस्र का विकास नील नदी की उपजाऊ तलहटी में हुआ था। वह कृषिप्रधान देश था। यद्यपि बाढ़ों के कारण हानि हो जाया करती थी तथापि धरती के अधिक उपजाऊ होने के कारण कृषि-कार्य वहाँ सरल था। समय-समय पर नहरों के बन जाने से और भी सहायता मिल गई थी। किन्तु किसानों की परिस्थिति बहुत अच्छी इसलिए न थी कि उनसे अधिक काम बेगारी का लिया जाता था, लगान भी दस से बीस सैकड़ा तक था, और जमींदारों एवं स्थानिक कर्मचारियों का भी हाथ उन्हें गरम करना पड़ता था। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि किसानों की दशा विशेष खराब थी। मिस्र के लोग अनाज, मछली और मांस खाते थे। खाद्य विविध ढंग से पकाये जाते थे। अस्सी तरह के पके हुए मांसों का और चौबीस प्रकार के पेय पदार्थों का उल्लेख पाया जाता है। अमीर अच्छी शराब और गरीब जौ की शराब पिया करते थे। मिस्र के लोग परिवर्तनप्रेमी नहीं थे। वे अपने आचार-विचार में कम फेरफार करते थे। वे प्रगतिशील नहीं थे। उनके बच्चे बारह वर्ष तक नंगे फिरा करते थे; लड़कियाँ अवश्य ही शरीर का कुछ भाग ढक लेती थीं। साधारणतः औरतें और मर्द नाभि तक नंगे रहते थे, उसके नीचे वे लुंगी-सी पहनते थे। आगे चलकर स्त्रियां और मर्द भी छाती ढकने लगे और चुस्त कपड़े के बदले ढीले कपड़े पहनने लगे। आदमी और औरतें आभूषणों के शौकीन थे। दोनों के कान छिदवाने का रिवाज था। औरतों को बनावटी सिंगार के अनेक साधन मालूम थे। आदमी दाढ़ी-मूंछें बनवाते थे और औरतें तरह-तरह से बाल संवारती थीं। लोगों को खेल-कूद और मेलों और जलसों का शौक था। कुश्ती, घूंसेबाजी और सांड़ों को लड़ाने में उन्हें आनन्द आता था। पाँसे का खेल भी उनमें प्रचलित था। आजाद किसानों के अलावा गुलामों की भी मिस्र में भारी संख्या थी। परन्तु उनकी परिस्थिति किसानों की स्थिति से भी खराब थी।

कला-कौशल और उद्योग-धंधे

यद्यपि मिस्र में खाने-पीने की चीजों की कमी नहीं थी, किन्तु ताँबे के सिवा अन्य खनिज पदार्थ वहाँ वालों को अन्यत्र से लाने पड़ते थे। न्यूबिया से सोना और हिटाइट प्रदेश से लोहा लाना पड़ता था। ताँबा और टीन मिलाकर वे लोग काँसा बनाना भी सीख गए थे। उनसे वे पेंच, बरमा, आरी, गड़ारी, पहिये आदि बनाते थे। उन्हें लकड़ी पर बढ़िया नक्काशी करना आता था। कुरसी, पलंग, संदूक, गाड़ी, नाव आदि वे बना लेते थे। ईंटें, सीमेन्ट और पलस्तर बनाना वे जानते थे। रंगीन चमकीले मिट्टी के बरतन और शीशे की सादी और रंगीन चीजें भी वे बनाया करते थे। जानवरों की खाल से वस्त्र, ढाल, तरकश आदि बनाते थे। पौधों और पेड़ों के रेशों से चटाइयाँ, रस्से, जूते और कागज बनाना उन्हें मालूम था। धातु पर रंग चढ़ाने और पालिश करने का कौशल भी उन्हें आता था। वे ऐसे बारीक कपड़े सूत से बिनते थे कि बिना आतशी शीशे की परीक्षा के उन्हें रेशम से भिन्न मानना कठिन था। उद्योग-धंधे आजाद और गुलाम कारीगर करते थे। कारीगरों के कुटुम्ब में पुश्त-दर-पुश्त कला या कौशल चला करते थे, जैसा कि हमारे देश में है। कारीगरों के ठेकेदार या मुखिया होते थे, जो लोगों से काम लेते और उन्हें मजदूरी देते थे। मजदूरी ठीक-ठीक न मिलने से मजदूर कभी-कभी हड़ताल भी कर देते थे, किन्तु ऐसा बहुत कम होता था। सिक्कों का चलन न था, इसलिए वेतन और मजदूरी जिन्स में दी जाती थी और कर भी वैसे ही वसूल किया जाता था। लेन-देन के लिए अमीर आदमी सोने के छोटे, बड़े, पतले और मोटे छल्लों या कड़ों का प्रयोग करते थे। व्यापार बड़े मजे से चलता था। व्यापारियों की साख पक्की होती थी और लिखा-पढ़ी, हुंडी और खाता से काम लिया जाता था।

महान् इंजीनियर

मिस्रवालों में इंजीनियरी ने अच्छी उन्नति की थी। कहा जाता है कि रोम, यूनान एवं अठारहवीं शताब्दी तक के योरप को भी उनके बराबर इंजीनियरी का ज्ञान न था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बड़े-बड़े बाँध, तालाब, नहरें, आलीशान मन्दिर और स्मारक बनाना उन्हें आता था। उनके बनाए हुए पिरामिड संसार में प्रख्यात हैं। इनका निर्माण किसी कला अथवा धर्म के भाव से नहीं किया गया था। ये मृतक के समाधिस्थान एवं एक प्रकार से स्मारक मात्र हैं। स्थापत्य के अलावा मिस्रवाले मूर्ति-निर्माण-कला में भी निपुण थे। वे पत्थर पर तरह-तरह की नक्काशी और तराश का काम करते थे। मिस्र के राजा अपना वंश और रक्त शुद्ध रखने के लिए कभी-कभी अपनी बहनों और लड़कियों से भी विवाह कर लेते थे। प्रेमी और प्रेमिका के लिए वे उन्हीं शब्दों का प्रयोग करते थे, जो भाई और बहन के लिए प्रचलित थे। राजा और रईसों में बहुत-सी स्त्रियों को रखने का फैशन था, किन्तु साधारण लोग एक ही स्त्री से संतुष्ट रहते थे। उनमें तलाक-प्रथा का चलन था। पुरुष स्त्री और स्त्री पुरुष को तलाक दे सकती थी। पर आगे चलकर यह अधिकार स्त्रियों के हाथ से जाता रहा। व्यभिचारिणी स्त्री को वे निकाल देते थे। मर्दों में भी एक पत्नी-व्रत का आदर था। स्त्रियाँ स्वतंत्रतापूर्वक अकेली अथवा साथियों के साथ आ-जा सकती थीं। पति प्रायः पत्नी के अनुकूल आचरण करता था। स्त्रियों को अपनी सम्पत्ति रखने, बेचने, देने और अपने नाम से लेने का अधिकार था। जायदाद की उत्तराधिकारिणी प्रायः स्त्रियाँ ही मानी जाती थीं। प्रेम प्रकट करने में भी वे पुरुष के प्रति स्वयं ही अग्रसर होती थीं। मिस्र में प्रेम की कविता प्रायः स्त्रियों की ओर से पुरुषों के प्रति की जाती थी। प्रणय-चर्चा बिना संकोच के सब करते थे। उनके मन्दिरों के शिल्प में नग्नता अनुचित नहीं गिनी जाती थी। वेश्याओं, देवदासियों एवं अन्य प्रकार के वासना-तृप्ति के साधनों की कमी न थी।

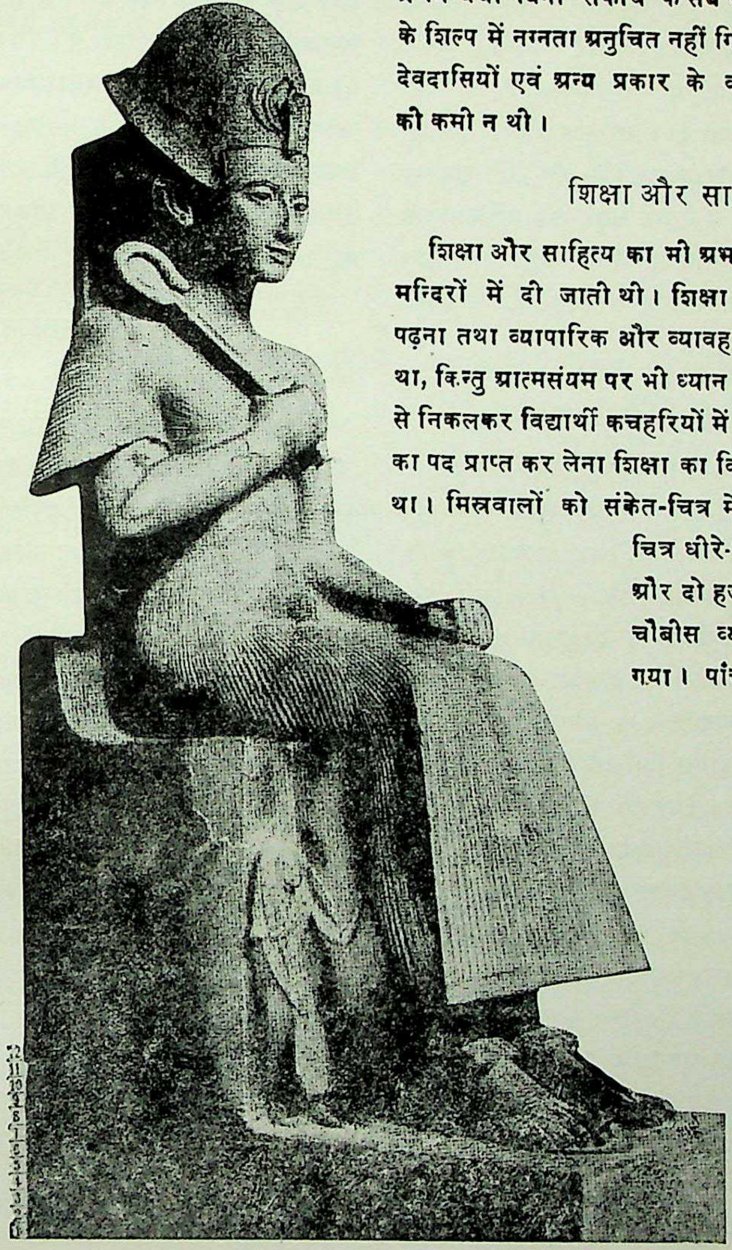

उन्नीसवें वंश का प्रतापी सम्राट् रामसेज द्वितीय

शिक्षा और साहित्य

शिक्षा और साहित्य का भी अभाव न था। शिक्षा प्रायः मन्दिरों में दी जाती थी। शिक्षा का मुख्य ध्येय लिखना-पढ़ना तथा व्यापारिक और व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करना था, किन्तु आत्मसंयम पर भी ध्यान रखा जाता था। मन्दिरों से निकलकर विद्यार्थी कचहरियों में काम सीखते थे। लेखक का पद प्राप्त कर लेना शिक्षा का विशेष लाभ माना जाता था। मिस्रवालों को संकेत-चित्र में लिखना आता था। ये चित्र धीरे-धीरे छोटे होते चले गए और दो हजार वर्ष ईस्वी पूर्व उनसे चौबीस व्यंजनों का विकास हो गया। पांचवें और छठे राज-वंश तक के समय के इसी शैली में लिखे हुए लेख पिरामिडों में मिले हैं। ईसा के दो हजार वर्ष के पहले के पेपाइरी (कागज) पर लिखे हुए लेखों के पुलिन्दे मिलते हैं। उनमें किस्से-कहानियाँ, धार्मिक विषय, प्रेम-गीत, रण-गान, कविताएँ, पत्र, मंत्र-तंत्र, स्तुतियाँ, ऐतिहासिक वार्ताएँ, वंशावलियाँ, नीति के उपदेश आदि भरे पड़े हैं। कहा जाता है कि नाटक और पद्य-कथाओं को छोड़कर मिस्रवालों ने साहित्य के सभी मुख्य अङ्गों का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। साहित्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के अलावा विज्ञान की ओर भी उनका ध्यान गया था। गणित, ज्योतिष, चिकित्साशास्त्र, प्रजनन-विज्ञान, शृंगार के मसालों आदि का भी अध्ययन किया जाता था। शल्यशास्त्र या जर्राही का भी उन्हें ज्ञान था। उनके लेखों में अड़तालीस प्रकार के आपरेशनों का उल्लेख है। सन्तान-निरोध की औषधियाँ उन्हें ईसा से अठारह सौ वर्ष पूर्व ही मालूम थीं। अनेक रोगों के सैकड़ों नुसखों का भी उल्लेख मिलता है। उपवास, रेचन, आदि का प्रयोग किया जाता था। कहा जाता है कि वहाँ के लोगों का स्वास्थ्य अच्छा था। साहित्य और विज्ञान की भाँति संगीत-कला और चित्र-कला से भी उन्हें अनुराग था। भित्ति-चित्र बनाने में वे बड़े चतुर थे। कई प्रकार के रंगों का चित्रों में वे प्रयोग करते थे। कहते हैं कि चीन को छोड़कर कोई भी प्राचीन सभ्य देश चित्र-कला में उनकी समता नहीं कर सकता था।

धार्मिक विचार और आचार

मिस्रवालों की धर्म-भावना बड़ी व्यापक थी। धर्म का प्रभाव उनकी प्रत्येक कृति में कुछ न कुछ पाया जाता है। मिस्र में अनेक देवता माने जाते थे, किन्तु आकाश, पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य आदि प्रमुख गिने जाते थे। नदी, वृक्ष, थलचर, जलचर और पक्षियों में भी वे देवताओं की भावना कर लेते थे। वे राजा को भी देवता मानते थे। बकरे और बैल का सबसे अधिक महत्व था। रा (आमोन), ओसरिस (लिङ्गधारी देव), आइसिस (धरित्री देवी), होरस (सूर्य देव), सुतेख, और पृा सब देवताओं में मुख्य थे। मिस्र के इतिहास के उत्तरकाल में रा, आमोन और पृा त्रिदेव गिने जाने लगे, जो एक ही महान् देवता के तीन भिन्न स्वरूप हैं।

इखनातोन ने आमोन देवता और पशु-बलि द्वारा उसकी पूजा का विरोध किया था। उसके सिद्धान्त के अनुसार सब देवता कपोलकल्पित थे; क्योंकि वस्तुतः ईश्वर केवल एक है, जिसे वह "आतोन" (सूर्य) कहता था। उसे वह सर्वव्यापक, आनन्दमय, प्रेममय, रक्षक, द्रष्टा, सर्वज्ञ, और अन्तर्यामी मानता था। इस प्रकार प्राचीन मिस्र में एकेश्वरवाद भी प्रचलित था। आतोन की उपासना भक्तिमूलक थी। इखनातोन ने स्वयं उसकी प्रभावपूर्ण भक्तिरसात्मक स्तुतियाँ रची थीं। मिस्र में देवताओं को भोज्य और पेय पदार्थ चढ़ाये जाते थे। देवताओं के लिए देवालय बने थे, जिनके प्रबन्ध के लिए उन्हें अच्छी सम्पत्ति मिली थी। उनकी सेवा के लिए पुजारी और दास-दासियाँ नियुक्त थे। प्रजनन के देवता ओसरिस की नग्न मूर्तियाँ साङ्केतिक मुद्रा में बनायी जाती थीं।

मिस्रवालों का विश्वास था कि प्रत्येक प्राणी का एक लिंग-शरीर होता है, जो उसके मरने के बाद भी जीवित रहता है। उसको वे लोग 'का' कहते थे। शरीर और 'का' के अतिरिक्त प्रत्येक प्राणी में 'जीव' रहता है, जो अमर है। शरीर यदि नष्ट होने से बचा लिया जाय, तो वह भी 'का' और जीव की तरह स्वर्ग को जाता है, जहाँ शान्ति, सुख और सम्पन्नता के साथ वे रहते हैं। किन्तु यदि प्राणी पापी है, तो वह अनन्तकाल तक अन्धकारमय समाधि-स्थान में भूखा-प्यासा पड़ा रहता है और तरह-तरह के त्रास पाता है। स्वर्ग केवल पवित्र आचरण से ही नहीं प्राप्त होता, प्रत्युत मंत्र-तंत्र आदि के प्रभाव से अपवित्र आचरणवाला भी स्वर्ग प्राप्त कर सकता है।

राज्य-संगठन

राजा के ऊपर राज्य-संचालन का भार था। न्याय करना तथा शासन का निरीक्षण और सेना का नियंत्रण इसके मुख्य कर्त्तव्य थे। ज्यों-ज्यों धन और वैभव बढ़ता गया, त्यों-त्यों कर्मचारियों की भी वृद्धि होती गई। कर्मचारियों की संख्या का इसी से अनुमान किया जा सकता है कि राजा के साज और शृंगार की सामग्री के प्रबन्ध के लिए इक्कीस अफसर नियुक्त थे! राज-सेवकों में मन्त्री और कोषाध्यक्ष प्रमुख माने जाते थे। राजा प्रातःकाल उनको बुलाकर उनसे राज्य और कोष की व्यवस्था पूछता, परामर्श करता और उचित आदेश देता था। मन्त्री का मुख्य काम शासन-तन्त्र का रक्षण, सेना-प्रबन्ध और न्याय करना था। राज्य बढ़ने पर एक के बदले दो मन्त्री रखे जाने लगे। राजा स्वयं राज्य में घूम-घूमकर शासन-प्रबन्ध का निरीक्षण करता और न्याय करता था। बड़े-बड़े पदाधिकारियों का एक परिषद् था, जिसे 'सरू' कहते थे। यह परिषद् परामर्श द्वारा राजा की सहायता करता था।

राज्य चालीस या पचास प्रान्तों में विभक्त था। प्रान्त के लिए वे लोग "नोम" शब्द का प्रयोग करते थे। प्रत्येक नोम का एक बड़ा अफसर रहता था, जो न्याय, प्रबन्ध और कोष के लिए उत्तरदायी था। इसी प्रकार प्रत्येक नगर के लिए भी अफसर रखे जाते थे। इनकी सहायता के लिए लेखक आदि बहुत से कर्मचारी नियुक्त कर दिए गए थे। जमीन दो प्रकार की थी। एक तो वह जो जमींदारों के अधिकार में थी और दूसरी वह जिसका प्रबन्ध स्वयं राज-कर्मचारी करते थे। सिक्कों का चलन न होने के कारण माल-गुजारी पशु, अन्न, तेल, शहद, शराब और वस्त्र आदि के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रूप में वसूल की जाती थी। पैदावार का पाँचवाँ हिस्सा मालगुजारी में लिया जाता था। कर्मचारियों से कर लिया जाता था, जो प्रायः सोना, चाँदी, पशु, अनाज और वस्त्र के रूप में था। स्थानिक कर्मचारी प्रति मास आय-व्यय का चिट्ठा राजमंत्री और कोषाध्यक्ष के पास भेजा करते थे।

कानून और दंड-व्यवस्था

मन्त्री से साधारण कर्मचारी तक सभी अपने-अपने क्षेत्र में न्याय करते थे। न्याय करने के लिए रोज खास कचहरी लगती थी। मुकदमों का फैसला प्रायः तीन दिन में ही कर दिया जाता था, किन्तु अगर मामला दूर का हुआ तो अधिक-से-अधिक दो महीने तक लग जाते थे। फैसला लिखे हुए कानून के अनुसार होता था। कानून चालीस पुलिन्दों में लिखे हुए थे। मुकदमे की सारी कार्रवाई लिखकर होती थी। वादी और प्रतिवादी एवं गवाहों के बयान और फैसले सब लिखे जाते थे। स्थानिक अफसरों के फैसले के विरुद्ध मन्त्री की कचहरी या राजदरबार में अपील की जा सकती थी। किसी भी व्यक्ति को बिना बाकायदा मुकदमा किए हुए दण्ड नहीं दिया जाता था।

मिस्र में रिश्वत भी चलती थी, जिससे धनी व्यक्तियों का काम बन जाता था। किन्तु अमीर और गरीब के लिए कानून एक ही था। सजाएँ कई तरह की थीं। शारीरिक दण्ड, अङ्ग-भङ्ग, देश-निर्वासन और प्राणदण्ड भी दिए जाते थे। यदि किसी बड़े आदमी को प्राणदण्ड दिया जाता था तो उसे पहले आत्महत्या कर लेने का अवसर दिया जाता था, ताकि वह जनता के सामने बेइज्जती से बच सके।

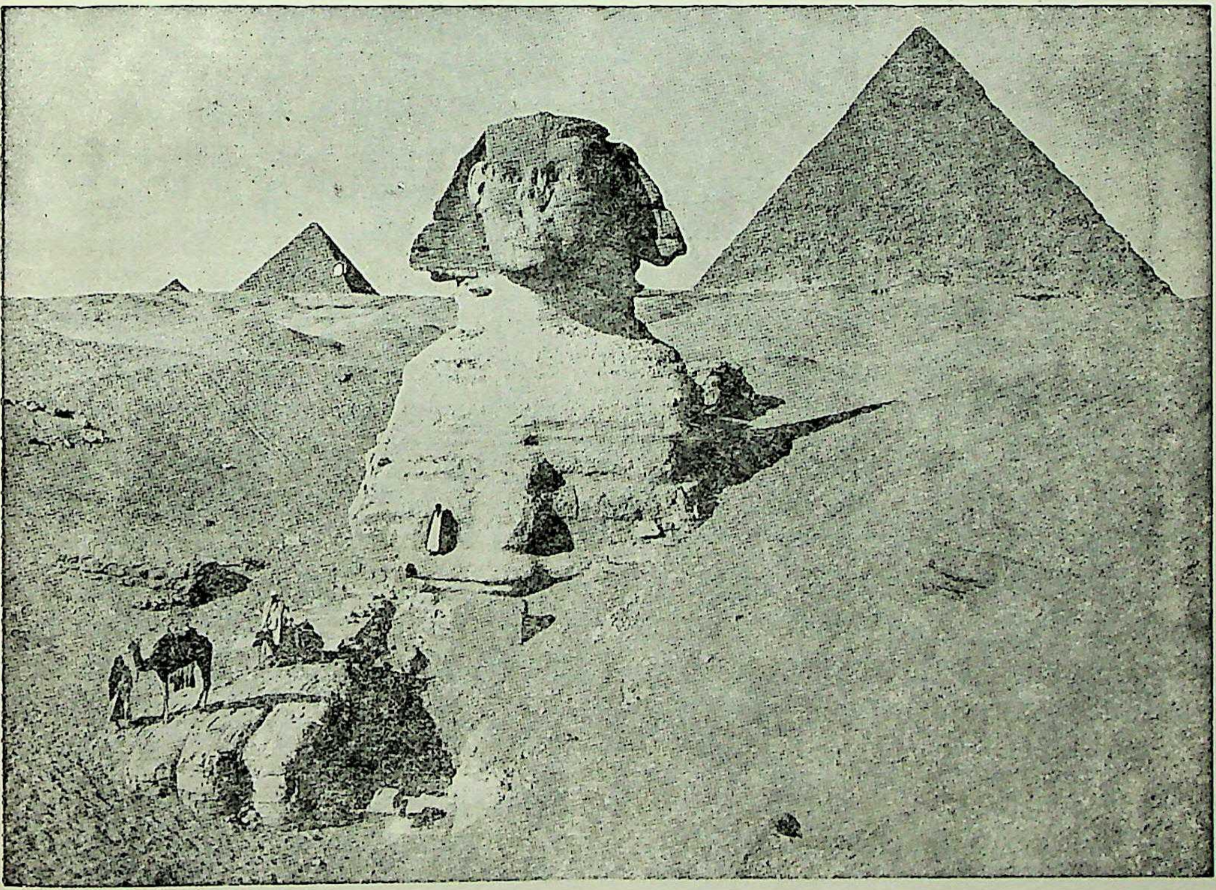

पिरामिडों की भाँति मिस्र के प्राचीन गौरव का अन्य एक भव्य स्मारक गीजे में स्थित स्फिंक्स की यह विशाल मूर्ति है, जिसकी मौन मुद्रा विगत तीन-चार सहस्राब्दियों के कोलाहलपूर्ण काल-चक्रमण एवं प्रकृति के अनवरत प्रहारों के बावजूद अभी तक भंग होते नहीं दिखाई दी है। इस रहस्यमय मूर्ति के संबंध में तरह-तरह की धारणाएँ प्रचलित हैं। कई इतिहासकार इसे किसी मिस्री सम्राट् की मूर्ति मानते हैं। इस संबंध में प्रायः खैफरे का नाम लिया जाता है, क्योंकि स्फिंक्स की इस मूर्ति के पंजों के बीच एक लेख में खैफरे का उल्लेख है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सभ्यताओं का उदय—(४)
:: बेबिलान की सभ्यता

पिछले एक प्रकरण में हम दजला और फरात नदियों की उपजाऊ घाटी में प्रस्फुटित होनेवाली सुमेरियन सभ्यता का परिचय आपको करा चुके हैं। जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, संसार की अन्य कई नदियों की तलहटियों की तरह दजला-फरात की यह घाटी भी मानवीय सभ्यता के विकास के लिए विशेष अनुकूल रही है। अतएव सुमेरियन सभ्यता के साथ ही वहाँ से सभ्यता का अंत नहीं हो गया, वरन् उसके बाद एक और महान् सभ्यता का वहाँ विकास हुआ, जिसे 'बेबिलान की सभ्यता' कहते हैं। मिस्र तथा भारत की तरह इस सभ्यता ने भी संसार को अमूल्य देन दी है। इस लेख में उसी का हाल सुनाया जा रहा है।

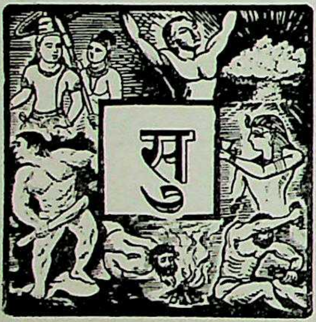

सुमेरिया की सभ्यता के विनाश के तीन मुख्य कारण माने जाते हैं। पहला तो यह है कि भौगोलिक परिस्थिति के फलस्वरूप वहाँ की जलवायु अच्छी और स्वास्थ्य रक्षक न थी। दूसरा यह कि सुमेरिया के स्वतंत्र या अर्द्धस्वतंत्र नगर आपस में लड़ने के कारण निर्बल हो गए थे। तीसरा यह कि उसके पड़ोस की जातियाँ, जैसे कि सेमेटिक, मिटानी और एलामी, उसे तीन ओर से दबाकर समुद्र की ओर ढकेलते चली आईं। इससे सुमेरिया के लोगों का कार्यक्षेत्र संकुचित होता गया, यहाँ तक कि उनकी स्वतंत्रता और शक्ति दूसरे लोगों के ओर (विशेषकर सेमेटिक लोगों के) हाथों में चली गई।

सेमेटिक जाति का उद्भव

सेमेटिक जाति के लोग सुमेरिया के पश्चिम और दक्षिण-पश्चिम भाग में रहते थे। उनके उद्गम का स्थान और उनका मूल निवासस्थान अरब माना जाता है। जन-संख्या बढ़ने और भोजन और चारे की सामग्री कम होने के कारण वे अरब से बाहर फैल गए। किन्तु यह मत सर्वसम्मत नहीं है। कारण यह है कि सेमेटिक लोगों के अरब में आने के पहले ही सीरिया और दजला-फरात के दोआबे में उनकी बस्तियों का पता मिलता है। मरुभूमि के दोनों ओर के समुद्र-तटों एवं उत्तरी चन्द्राकार भूभाग में तो उनकी सभ्यता के अगणित चिह्न हैं। किन्तु अरब में वैसे चिह्नों का उतने पुराने काल में अभाव पाया जाता है। अनेक विद्वानों का यह मत है कि सेमेटिक लोग एक जाति के न थे। वे सम्भवतः अनाटोलिया की ओर से सीरिया, फिलस्तीन और मसोपटेमिया में आकर बस गए थे। आर्यों की तरह वे भी कई जातियों के मिश्रण से बने थे। उनका व्यक्तित्व एक जाति के कारण नहीं, बल्कि एक भाषा और कुछ संस्थाओं की एकता के कारण है। जो कुछ भी हो, सेमेटिक लोग सुमेरियन लोगों से विभिन्न जाति के थे। सुमेरियन लोग सिर और दाढ़ी मुड़वाते थे और नङ्गे पैर चलते थे, किन्तु सेमेटिक काली जुल्फें और दाढ़ी रखते थे। वे पैरों में सेण्डल पहनते व सिर पर पगड़ी बाँधते और छड़ी लेकर चलते थे।

अक्कद का अभ्युत्थान :: सम्राट् सारगन

सेमेटिक लोग सैकड़ों वर्ष से सुमेरियावालों से लड़ते चले आते थे। वे प्रायः धनुष-बाण से लड़ते थे। उनके हथियार ताँबे के थे। उनका अक्कद (अक्केड़) नामक नगर धीरे-धीरे प्रबल होता गया और सुमेरिया पर उनका अधिकार बढ़ता चला गया। उनका सबसे पहला प्रसिद्ध नेता शर्रूकिन(सारगन) था, जिसका समय २८०० ईस्वी पूर्व माना जाता है। उसने सुमेरिया के नगरों को अपने अधिकार में कर लिया। उसकी सेना ने एलाम की पहाड़ियों से भूमध्यसागर के पूर्वी

तट तक अपना आतंक जमा दिया। बिखरे हुए सेमेटिक लोगों में उसने स्वाभिमान और एकता का भाव पैदा कर दिया। अब खानाबदोश और भ्रमणशील सेमेटिक अपने तम्बू छोड़कर नगरों के मकानों में रहने लगे। वे सुमेरिया की सभ्यता का अनुकरण करने लगे और उन्होंने सुमेरिया से लेखन-कला, अङ्क-गणना, काल-गणना, नाप-तौल और व्यापार के विधान, धार्मिक ज्ञान, शिल्पकला आदि सीख ली। करीब ढाई सौ वर्ष में सुमेरिया और अक्कदवालों में ऐसा मेल-जोल हो गया कि वे मिश्रित होकर बेबिलान राज्य और सभ्यता के संस्थापक बन गए। कालान्तर में राजनीतिक शक्ति अक्कद से बेबिलान के सेमेटिक लोगों के हाथों में चली गई। ये लोग 'एमोराइट' कहलाते थे। सीरिया की ओर से आकर इन्होंने बाबुल नगर में अपना प्रभुत्व जमा रखा था। यह निश्चित-सा है कि बेबिलान की सभ्यता सुमेरियन और सेमेटिक लोगों के संयोग से बनी थी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

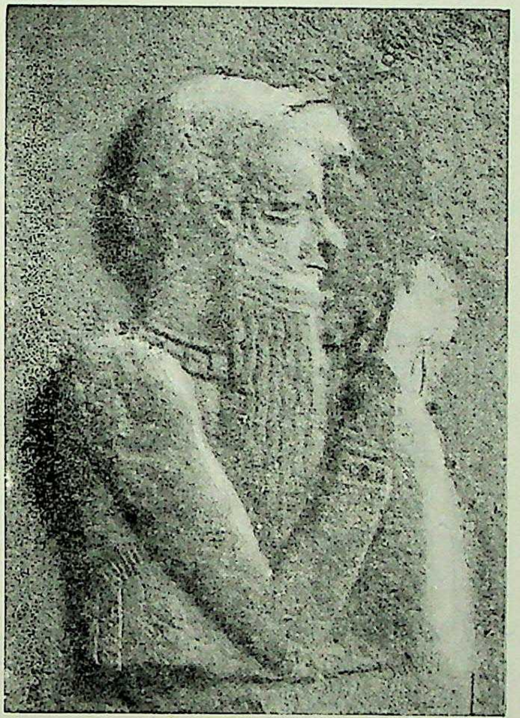

बेबिलान का महाप्रतापी सम्राट् खम्मूरबी, जिसने वहाँ का विधान बनाया।

अक्कद का ह्रास :: सम्राट् खम्मूरबी

शर्रुकिन के वंश में नरम-सिन नाम का दूसरा तेजस्वी नेता हुआ। दोनों ने शिल्पकला और साहित्य की उन्नति में ऐसा उत्साह दिखाया कि इन क्षेत्रों में बेबिलान ने अपूर्व श्रेय प्राप्त कर लिया। किन्तु अक्कद का राजवंश धीरे-धीरे क्षीण होता गया। उसका आतंक इतना घट गया कि मसोपटेमिया के नगर स्वतंत्र हो गए। पड़ोसियों ने भी अपना अधिकार जमाना शुरू कर दिया। आखिरकार एलामवालों की सहायता से 'सिप्पर' नगर के एमोराइट लोगों ने (लगभग २२०० ई० पू०) अक्कद राज्य का अन्त कर दिया। 'सुमूअबू' ने ही संभवतः अपनी राजधानी 'बेबिलान' में स्थापित करके नए राजवंश का आरम्भ किया था।

इस नए वंश में खम्मूरबी (हम्मूरपी) नाम का एक बड़ा प्रतापी राजा हो गया है। उसने दक्षिणी मसोपटेमिया से एलामवालों को निकालकर वहाँ बाबुल (बेबिलान) का अखण्ड आधिपत्य स्थापित कर दिया। उसने उत्तर की ओर असीरिया को भी अपने अधिकार में कर लिया, जिससे उसका ऊपर को बढ़ने का मार्ग खुल गया। उसने बयालिस वर्ष राज्य किया (२१२३ से २०८१ ई० पू० तक)। उसने मसोपटेमिया में ऐसा संगठन कर दिया कि लोग उसे बेबिलोनिया का राज्य कहने लगे। अपने सैनिक बल से खम्मूरबी ने एक साम्राज्य स्थापित कर दिया। उसकी महान् देन उसके प्रकाशित कानून और घोषणाएँ हैं, जो कि पुरानी मिट्टी की शिलाओं पर खुदे पाए गए हैं। खम्मूरबी ने बड़ी-बड़ी नहरें खुदवाईं, सड़कों और किलों का निर्माण किया और अनेक शहरों और मन्दिरों की रचना करवाई। पर उसकी सबसे प्रख्यात कृति, उसके उपर्युक्त विधान या कानूनों का संग्रह ही है, जो सन् १९०२ में सूसा में मिला था। संसार के इतिहास में और विशेषतः कानून के इतिहास में ये विधान बड़े ही मार्के के माने जाते हैं।

खत्ती जाति का उदय

खम्मूरबी की मृत्यु के बाद साम्राज्य का प्रान्तीय संगठन और सैनिक बल शीघ्रता से क्षय होने लगा। उस पर ईरान की पहाड़ियों की ओर से काशी (काशाइट) जातिवाले आक्रमण करने लगे, जो उत्तरोत्तर अधिक संख्या में आकर वहाँ बस गए (२०७२ ई० पू०)। उनके अलावा दक्षिण की ओर से भी आक्रमण होने लगे। परिणाम यह हुआ कि लगभग १८७० या १७५० ईस्वी पूर्व खम्मूरबी के वंश का अन्त हो गया और बेबिलान पर खत्ती (हिट्टाइट्स) लोगों का अधिकार हो गया। खत्ती लोग 'केपाडोसिया' (काले समुद्र का दक्षिणी तट, जो एशिया माइनर में है) में शायद योरप से आकर बसे थे। उनकी राजधानी बोगजकुई में थी। लगभग ढाई-तीन सौ वर्ष तक बेबिलान की परिस्थिति अनिश्चित-सी रही। खत्ती से काशाइट और उनसे असीरियावालों एवं फिर मिस्रियों के हाथ में इस प्रदेश का अधिकार चला गया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बेबिलान की सभ्यता नागरिक थी

उत्तरी आक्रमणकारियों की विजय के मुख्य कारण लोहे के अस्त्र-शस्त्र और घोड़ों के रथ माने जाते हैं। किन्तु बेबिलान की सभ्यता को आक्रमणकारी नष्ट न कर सके। वस्तुतः वे स्वयं उस सभ्यता से ऐसे प्रभावित हो गए कि विजेता स्वयं अपना व्यक्तित्व भूल गए। विजितों और विजेताओं का पूर्णतया मिश्रण हो गया, जिससे एक नवीन मिश्रित जाति की उत्पत्ति हो गई, जिसने बेबिलान की सभ्यता का संवर्द्धन और प्रचार अच्छी तरह से किया।

बेबिलान के लोगों का जातीय जीवन नगरों और उनके आसपास के भूभाग से सम्बन्ध रखता है। यह कहना अनुचित न होगा कि वहाँ की सभ्यता नागरिक थी। नगरों को एकता के सूत्र में बाँधकर बेबिलान राज्य की सृष्टि हुई थी। नगरों के चारों ओर दूर तक हरे-भरे बाग और खेत फैले हुए थे, जिनकी सिंचाई नहरों से होती थी। जौ, गेहूँ, दाल, सरसों तथा अन्य अनाजों से खेत लहलहाते थे। वहाँ साठ तरह की तरकारियाँ पैदा होती थीं। खजूर, अंगूर और सेब के पेड़ बहुतायत से लगे थे, जिनसे प्राप्त फलों को न केवल खाया जाता था, बल्कि उनसे चीनी व शराब भी बनाई जाती थी। ताड़ और खजूर की पत्तियों से रस्से तथा छाने की सामग्री बनती और लकड़ी से भी बहुत-से काम निकलते थे। खेतों और बगीचों के आगे जंगल था, जो सिंह, तेंदुए, सियार, लोमड़ी आदि से भरा पड़ा था। लोग खूनी जानवरों के भय से नगर से दूर जाने से डरते थे। मैदानों में हिरन के झुंड चौकड़ी मारते और जंगली गधे, सुअर और बैल विचरण करते थे। वहाँ के लोग गधे, ऊँट, भैंस, बैल, बकरे और भेड़ें पालते थे। काशी लोगों के आने से वहाँ घोड़ों का रखना भी शुरू हो गया था। कुत्ते और पक्षी भी पाले जाते थे। गाँवों के मकान करबी और झाऊ की टट्टियों से मिट्टी की नीची दीवालों पर छाकर बनाये जाते थे। लोग प्रायः मिट्टी के सादे बरतनों का प्रयोग करते थे। उन पर नक्काशी या बेलबूटे नहीं होते थे।

बेबिलान नगर की भव्यता

बेबिलान के बहुत पुराने युग की इमारतों के अधिक चिह्न नहीं मिलते। फिर भी सातवीं शताब्दी ईस्वी पूर्व के बेबिलान का जो वर्णन तथा ध्वंसावशेष मिलते हैं, उनसे जान पड़ता है कि वहाँ का नागरिक जीवन बहुत उन्नत और समृद्धिशाली था। ग्रीक इतिहासकार हेरोडोटस ने उसका सुन्दर वर्णन किया है। बेबिलान एक विस्तृत मैदान में चौकोर बसा हुआ था, जिसका प्रत्येक भुज १२० फर्लाङ्ग का था। नगर के चारों ओर एक चौड़ी और गहरी जल से भरी खाई तथा दो सौ हाथ ऊँची और पचास हाथ चौड़ी दीवार थी। नगर की चहारदीवारी में चौखट समेत पीतल के सौ दरवाजे थे। शहर के बीच से फरात नदी बहती थी। मकानों की मोटी दीवारें नदी के किनारे तक थीं। पहले तो वहाँ एक मंजिल के ही मकान बनते थे, किन्तु बाद में तीन-चार मंजिल के भी भवन बनाये जाते थे। किराये के मकानों को साल भर के लिए लोग भाड़े पर लेते थे और किराया हर छः महीने पर देते थे। शहर के बीच में सम्राट् के महल, किले, कचहरियाँ, ६५० फीट ऊँची जिग्गुरात (मीनार), आलीशान मन्दिर आदि थे। बड़ी इमारतों के दरवाजे प्रायः ठोस पीतल के बनाये जाते थे। सड़कें बिल्कुल सीधी थीं और वे नगर के चारों ओर बनी थीं। नदी को पार करने के लिए अनेक पुल थे। शायद नदी से नीचे-नीचे आने-जाने की चौड़ी सुरंग भी थी!

रहन-सहन, काम-धंधे, पहनावा आदि

शहर में ताँबे, काँसे, जस्ते, सोने, चाँदी और लोहे के तरह-तरह के ढलाई के काम होते थे। सूती और ऊनी कपड़े बुने जाते थे। लोग प्रायः ऊनी कपड़े ही पहनते थे। वे शौकीन मिजाज के थे और लम्बे बाल रखते थे, जिन्हें वे घूँघरदार बनाते थे। वे शरीर में सुगन्धि लगाते, गालों को रँगते तथा कान, हाथ और गले में आभूषण पहनते थे। वे रङ्गीन कपड़ों के शौकीन थे। रँगाई और बेलबूटे काढ़ने का काम खूब होता था, जिसका यूनान और रोम में बड़ा आदर था। उनका व्यापार गधों, घोड़ों, गाड़ियों, ऊँटों और नावों के द्वारा पूर्व में भारत तक तथा पश्चिम में मिस्र और भूमध्यसागर तक फैला हुआ था। इस नगर का जीवन इतना कोलाहल से भरा था कि सम्पन्न निवासियों ने उकताकर अपने रहने के मकान शहर के किनारे बनवा लिए थे। यद्यपि सिक्कों का प्रचलन न था, किन्तु सोने के कई किस्म और वजन के टुकड़ों को लेन-देन के काम में लाया जाता था। सबसे छोटा टुकड़ा 'शकल' कहलाता था। साठ शकलों का एक 'मीना' और साठ मीनाओं का एक 'टैलेन्ट' होता था। यद्यपि वहाँ बैंक न थे, किन्तु वहाँ के सेठ-साहूकार २० रुपए सैकड़ा सालाना सूद पर कर्ज दिया करते थे और हुन्डी का काम भी करते थे। धनिकों की रक्षा और उनकी व्यापारिक उन्नति के अनुकूल कानून बना दिए गए थे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विविध सामाजिक वर्ग

बेबिलान का समाज कई श्रेणियों में विभक्त था। सबसे ऊँची श्रेणी के लोग धर्मरक्षक अथवा पुरोहित थे। वे धर्म अथवा विद्याओं के रक्षक माने जाते थे। दूसरी श्रेणी में योद्धागण थे। तीसरी श्रेणी व्यापारियों और धनिकों की थी और चौथी श्रेणी में साधारण गरीब लोग थे। पाँचवीं श्रेणी गुलामों और दासों की थी। राजा के वंशज पहली, दूसरी और तीसरी श्रेणिवालों के काम करते थे।

विद्या, धन और बल की विभिन्नता के अलावा कानून के अनुसार भी लोग तीन श्रेणी में विभक्त किए गए थे। एक तो थे 'अमेलू' (अवेलू ?), जिनको हानि पहुँचाने पर हानिकारक को वही दण्ड या भारी हरजाना देना पड़ता था किन्तु यदि वे स्वयं कोई जुर्म करते थे, तो उनको कड़ा दण्ड अथवा प्राणदण्ड दिया जाता था। दूसरी और तीसरी श्रेणी में मजदूर, कारीगर, व्यापारी, शिक्षकगण, दरबारी और भिक्षुक लोग थे। ये 'मुश्किनू' कहलाते थे। यद्यपि उन्हें गुलामों और जायदाद के रखने का अधिकार था, किन्तु वे हथियार नहीं बाँध सकते थे और यदि उनको कोई शारीरिक हानि पहुँचाता, तो हर्जाना या जुर्माना देकर छूट जाता था। जुर्म करने पर वे 'अमेलू' की तरह कठोर दण्ड के भागी नहीं होते थे, यद्यपि सबके सामने वे कोड़ों से मारे जा सकते थे।

तीसरी श्रेणी के लोग 'अरदू' या गुलाम थे। गुलामों की परिस्थिति विचित्र थी। वे प्रायः लड़ाइयों में पकड़े गए कैदी अथवा जबरदस्ती अपहरण किए हुए अन्यजातीय व्यक्ति अथवा गुलामों के वंशज या खरीदे हुए दास थे। राज्य में गुलामों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी और एक समय ऐसा आ गया था कि उनकी संख्या स्वतंत्र जनता से भी बढ़ गई थी।

इन गुलामों के लिए भागकर बचने की कोई सूरत न थी। यदि कोई उनको भागने में सहायता देता अथवा उन्हें चुराता, तो वह प्राणदण्ड का भागी होता था। गुलाम अपने मालिक के पूर्णतया अधिकार में थे। उनसे वह चाहे जो काम ले सकता था, और उन्हें बिना चूँ-चरा किए वह करना पड़ता था। उनसे प्रायः चाकरी के काम लिए जाते थे। उन्हें बेगार के तौर पर नहरों, सड़कों अथवा सेनाओं में काम करना पड़ता था। गुलाम का तन, धन और सम्पत्ति मालिक के ही गिने जाते थे। यदि गुलाम स्त्री होती तो उसका यह कर्त्तव्य था कि वह अपने खरीदार को भोजन और बिस्तर दे और उसे अपने जी भरकर सन्तान पैदा करने में हर प्रकार की सुविधा दे। यदि मालिक चाहता तो वह गुलाम को चाहे गिरवी रख देता, चाहे कर्ज के बदले में दे डालता और यदि उसके मरने से उसे अधिक लाभ की संभावना जान पड़ती तो मार भी डालता !

इतनी कड़ी गुलामी में भी गुलाम को यदि मालिक चाहता तो व्यापार में लगा देता और उससे जो लाभ होता उसका कुछ अंश दे देता। इस अंश से गुलाम अपनी स्वतंत्रता को मोल ले सकता था। इसके अलावा उसकी बीमारी में हकीम की फीस, दवा के दाम और बेकारी या बुढ़ापे में भोजन-छाजन का भार मालिक के जिम्मे रहता था। यदि मालिक चाहता तो उसे मुक्त भी कर सकता था। किसी-किसी दशा में गुलाम स्वतंत्र स्त्री से विवाह भी कर सकता था। उससे उत्पन्न सन्तति भी स्वतंत्र मानी जाती थी और गुलाम की आधी जायदाद की हकदार होती थी। गुलाम का स्वतंत्र स्त्री-धन भी गुलाम का मालिक नहीं ले सकता था। गुलाम स्त्री से उत्पन्न सन्तति स्वतंत्र मानी जाती थी ! गुलामों के बदन पर गोदना गोदकर या दागकर गुलामी के चिह्न बना दिए जाते थे, और बाद को उनके लिए मिट्टी का एक विशेष चिह्न बाँधना अनिवार्य कर दिया गया था।

स्त्री-पुरुष का संबंध और गृह-जीवन

बेबिलान का गृहस्थ-जीवन भी व्यवस्थित था। अपनी सन्तति पर माता-पिता के अपार अधिकार थे। वे चाहे गुलामों की तरह उनसे व्यवहार करें, या उन्हें गिरवी रख दें, या कर्ज में दे दें। चाहें तो घर से निकाल दें अथवा उत्तराधिकार छीन लें। लड़कियों को माता-पिता के आदेश के अनुसार विवाह करना पड़ता था। माता-पिता की आज्ञा का उल्लंघन करनेवाली सन्तान को गुलामी की सजा मिलती थी और गुलामी के चिह्न उनके शरीर पर अङ्कित कर दिए जाते थे।

किन्तु यदि ऐसी कोई आपत्ति न हुई और निर्वाह हो गया, तो माता-पिता की जायदाद उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके लड़कों और लड़कियों में बराबर बाँट दी जाती थी। यदि स्त्री विधवा हो जाती तो उसको भी लड़कों या लड़कियों की तरह बराबर हिस्सा मिल जाता था। बेबिलान में स्त्रियों की दशा काफी अच्छी थी। कानूनी विवाह होने के पहले यदि युवक और युवतियाँ चाहते तो सांकल्पिक विवाह कर सकते थे और इच्छानुकूल विच्छेद भी कर सकते थे। किन्तु ऐसी दशा में उनको अपने साथ विशेष चिह्न

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रखना पड़ता था। लड़की का कानूनी विवाह उसके माता-पिता लड़केवाले से कुछ लेकर करते थे, और उनको दहेज या स्त्री-धन एवं आसन-वसन देते थे।

विवाह के बाद अपने श्वसुर के घर में रहना लड़की का कर्त्तव्य समझा जाता था। यदि मँगनी होने पर कोई लड़का विवाह न करे, तो लड़की का बाप नजराने की रकम हड़प सकता था और यदि लड़की इन्कार करे, तो उसके पिता को दुगनी रकम देना पड़ती थी। विवाह की कोई खास विधियाँ या रस्में न थीं। गवाहों के सामने कानूनी तौर पर दर्ज कर देने मात्र से ही विवाह हो जाता था। विवाह जीवन भर के लिए होता था, किन्तु तलाक भी आसानी से हो सकता था। पत्नी पर बाँझपन, मूर्खता या अनमेल स्वभाव और गृहस्थी के कामों में लापरवाही का इल्जाम लगाकर तलाक दिया जा सकता था, और स्त्री भी अत्याचार के कारण यदि चाहती, तो तलाक देकर अपना मालमता लेकर पिता के घर चली जाती थी। उसे अपने दहेज को भी वापस ले लेने का अधिकार था। यदि पुरुष का कसूर हुआ, तो उसे घर-बार स्त्री के सुपुर्द कर खाली हाथ घर से निकल जाना पड़ता था। और यदि औरत का अपराध हुआ, तो वह पानी में डुबा दिए जाने की सजा पाती थी। इल्जाम साबित होने पर पति चाहे उसे घर से नङ्गा न निकाले, किन्तु उससे पत्नी का अधिकार छिन जाता था और उसके साथ दासी का-सा बर्ताव किया जाता था। व्यभिचार के लिए स्त्री या तो पानी में डुबा दी जाती थी या ऊँची मीनार से ढकेल दी जाती थी। यही दण्ड उसके साथ व्यभिचार करनेवाले को भी दिया जाता था। यदि पति लड़ाई में कैद हो गया, या व्यापार के लिए गया, किन्तु स्त्री की जीविका का प्रबन्ध कर गया, तो वह दूसरे पुरुष के साथ सम्बन्ध नहीं कर सकती थी। किन्तु यदि जीविका का उचित प्रबन्ध वह नहीं कर गया, तो स्त्री दूसरा विवाह अथवा जीविका के लिए किसी पुरुष से अपने पति के लौटने तक सम्बन्ध कर सकती थी। यदि स्त्री चिररोगिणी हो तो पुरुष दूसरा ब्याह कर सकता था, किन्तु उसे पहली स्त्री का भरण-पोषण करना पड़ता था। पुरुष को यह अधिकार अवश्य था कि वह चाहे तो उपपत्नी या कम अधिकारवाली पत्नी कर ले, किन्तु अधिकतर लोग एक ही ब्याह करते थे। यदि चाहे तो वह गुलाम स्त्री या दासी रख सकता था, किन्तु उनके अधिकार गुलामों या दासियों के ही रहते थे। यदि मालिक चाहता तो दासी की सन्तति को भी ब्याही हुई पत्नी की संतान के समान अधिकार मिल जाते थे।

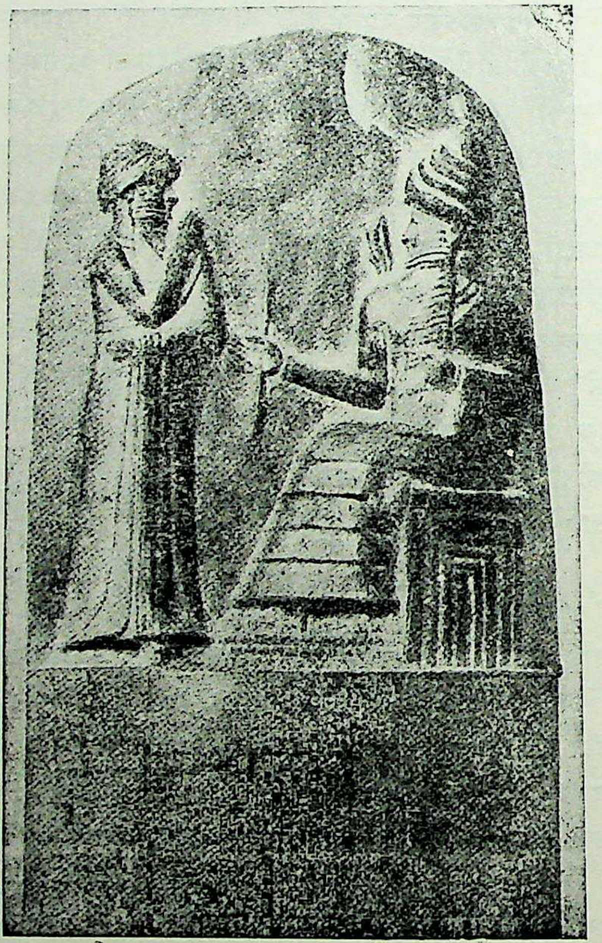

इस चित्र में सम्राट् खम्भूरबी को किसी दैवी विभूति द्वारा उन कानूनों को पाते हुए दिखाया गया है, जो मूर्ति के अधोभाग में अंकित हैं।

साधारणतया स्त्रियों को गृहस्थी का काम करना पड़ता था। वे बच्चों के पालने के सिवा घर की सफाई करती, कुएँ या नदी से पानी लाती, भोजन बनाती, अनाज पीसती, सूत कातती और बुनाई करती थीं। बड़े घरों की स्त्रियाँ प्रायः जनानखाने या पर्दे में रहती थीं। वे जब बाहर जातीं तो उनके साथ खोजा जाते थे। साधारण लोगों में ये सभी रुकावटें न थीं। स्त्रियों को व्यापार, रोजगार आदि करने का अधिकार था। वे अपनी निजी हैसियत से जायदाद या माल खरीद और बेच सकती थीं, या दे सकती थीं। चाहें तो वे साझे में भी व्यापार कर सकती थीं। उनकी गवाही अदालत में मानी जाती थी। इस तरह हम देखते हैं कि स्त्रियों को सामाजिक और कानूनी क्षेत्र के भीतर बहुत स्वतंत्रता थी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राज्य-संगठन

बेबिलान का राजकीय संगठन भी उन्नत दशा में था। वहाँ राजा का शासन था। राजनीतिक सिद्धांत के अनुसार असली शासक तो देवता थे, और राजा उनका प्रतिनिधिमात्र था। यद्यपि वह मनुष्य ही समझा जाता था, किन्तु अन्य मनुष्यों से उसका स्थान बहुत ऊँचा माना जाता था। मृत्यु के बाद राजा भी देवता के समान समझा जाता था। दैवेच्छा के अलावा उस पर कोई अन्य बन्धन न था। यद्यपि देवता के आदेशों को छोड़कर उसकी स्वच्छन्दता और स्वतंत्रता में अन्य कोई बाधा न थी, तथापि कानून, पुरोहित और महाजनों का उस पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से दबाव रहता था। न्याय करना, प्रजा का पालन और उन्नति, एवं धर्म, विद्या और कला-कौशल की उन्नति करना उसके मुख्य कर्त्तव्य थे। उसको यह अधिकार था कि अपने पुत्रों में से जिसे चाहे वह उत्तराधिकारी बना दे। इसका परिणाम यह होता था कि प्रत्येक राजकुमार अपने को राज्याधिकार का पात्र समझता था और अपनी विजय के लिए षड़यंत्र रचता अथवा बलप्रयोग करने के लिए उद्यत रहता था। राजा राज्य की सारी जमीन का स्वामी माना जाता था। वह जिसे जितनी जमीन देना चाहे दे सकता था। उसके प्रधान सहायक और सलाहकार पुरोहित, जमींदार और धनिक थे। साम्राज्य कई अर्द्धस्वतंत्र छोटे राज्यों या सूबों में विभक्त था। उनका शासन स्थानीय परंपरानुसार होता था।

न्याय और कानून

पहले पुरोहित और धर्माधिकारी लोग न्याय किया करते थे, किन्तु बेबिलान में वह अधिकार उनके हाथ से जाता रहा। न्याय करने के लिए प्रत्येक नगर में एक 'रबिअनु' होता था। साधारणतया उसका फैसला अंतिम रहता था। न्याय के अलावा 'रबिअनु' को शान्ति और कानून की रक्षा भी करनी पड़ती थी। यदि उसके अधिकार-क्षेत्र में डाका आदि पड़े, तो माल बरामद कराना उसका कर्त्तव्य था। यदि माल बरामद न हुआ, तो उसे और उसके क्षेत्र की रियाया को ही उतना माल देना पड़ता था। 'रबिअनु' की सहायता के लिए वयोवृद्ध और प्रमुख व्यक्तियों की एक छोटी समिति रहती थी। वे शायद 'शिबूती' कहलाते थे। किसी-किसी मामले में 'रबिअनु' के फैसले के खिलाफ राजधानी के मुख्य न्यायाधीश 'शक्कनक्कू' की कचहरी में अपील की जा सकती थी। 'शक्कनक्कू' की सहायता के लिए भी शायद ६ या १० प्रमुख व्यक्तियों की समिति होती थी। यदि कोई उससे भी संतुष्ट न होता, तो वह राजा के सामने अपील कर सकता था। न्याय करना राजा का मुख्य कर्त्तव्य माना जाता था। उस समय भी न्यायालयों में कुछ रिश्वत चलने लगी थी। अदालत में देवताओं की शपथ भी ली जाती थी, किन्तु न्यायाधीशों को वह सर्वदा विश्वसनीय नहीं जान पड़ती थी।

बेबिलान के कानून भी व्यवस्थित और सुसंगठित थे। इस विषय में वहाँ पश्चिम के अन्य समकालीन राज्यों से अधिक उन्नत अवस्था थी। खम्मूरबी ने उनको लिपिबद्ध करा दिया था, यद्यपि जनश्रुति यह थी कि उसे वे कानून सूर्यदेव से मिले थे। जुर्माना, कोड़, कैद, देशनिकाला, अङ्गभङ्ग और प्राणदण्ड की सजायें वहाँ प्रचलित थीं। धोखा देकर रुपया मारने तथा चोरी आदि में मूलधन से कई गुना जुर्माना होता था। अपने से बड़े को मारनेवाले को कोड़े की सजा दी जाती थी। जीभ काटनेवाले, आंख फोड़ने एवं स्तन काटनेवाले को प्रायः उसी प्रकार के अङ्ग-भङ्ग का दण्ड मिलता था। मकान के गिरने अथवा आपरेशन करने से यदि किसी की मृत्यु हो जाती, तो मकान बनानेवाले को और जर्राह को भी वही दण्ड भोगना पड़ता था। डकैती, जबरदस्ती किसी को उठा ले जाने, चोरी, बलात्कार, वर्जित सहवास, जहर देने, दूसरे के गुलामों को छिपा रखने, शत्रु के सामने कायरता दिखाने, अपने ओहदे का दुरुपयोग करने, गृहस्थी के प्रबन्ध में लापरवाही करने या शराब बेचने के नियमों के उल्लंघन आदि के अपराध के लिए प्राणदण्ड दिया जाता था। किसी के चालचलन के विरुद्ध झूठा दोष लगाने के लिये भी प्राणदण्ड दिया जाता था। जलपरीक्षा और शपथ से भी सत्यासत्य का निर्णय होता था। जायदाद के अधिकार, लेन-देन, सूद आदि के सम्बन्ध में कानून थे। कानून के द्वारा कुछ अंश तक चीजों की कीमत, मेहनताना, वेतन आदि का भी नियंत्रण होता था।

देवी-देवता और धार्मिक विश्वास

बेबिलान में अनेक देव और देवियों का पूजन हुआ करता था ई० पू० नवीं सदी में वहाँ के देवताओं की संख्या ६५,००० थी। बेबिलानवासियों ने सुमेरिया के देवताओं का सेमेटिक नाम रखकर उन्हें अपना लिया। सुमेरियनों के 'बब्बर' 'नन्नर' इनानी और 'एनलील' के यथाक्रम शम्स (सूर्य) सिन (चंद्रमा), इश्तर और बाल (धरती) नाम रख लिए गए। इश्तर देवी सौन्दर्य और प्रेम की साक्षात् परम मूर्ति थी, किन्तु वह मातृत्व के महान् भावों से विभूषित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

थी। यह युद्ध और प्रेम दोनों की देवी थी। वह स्वच्छन्द विचरण और विहरण करनेवाली कामिनी कुमारी थी। वह दुष्टों का दमन करनेवाली ज्योतिर्मयी जगद्धात्री थी। बेबिलान की साम्राज्य-स्थापना के साथ वहाँ का मुख्य देवता 'मर्दक' भी सब पुराने देवताओं से महत्व में काफी बढ़ गया और साम्राज्य का देवता माना गया किन्तु स्थानिक देवताओं के प्रति लोगों की जो चिर श्रद्धा थी, उसको वह न हिला सका। बेबिलान में यद्यपि विश्व भर के देवों की तो कल्पना की गई, किन्तु मिस्र देशवालों के समान उनको एक परमेश्वर का ज्ञान न था। हाँ, अन्य अनेक जातियों की तरह उनमें भी त्रिमूर्ति का सिद्धान्त अनेक रूपों में प्रचलित था।

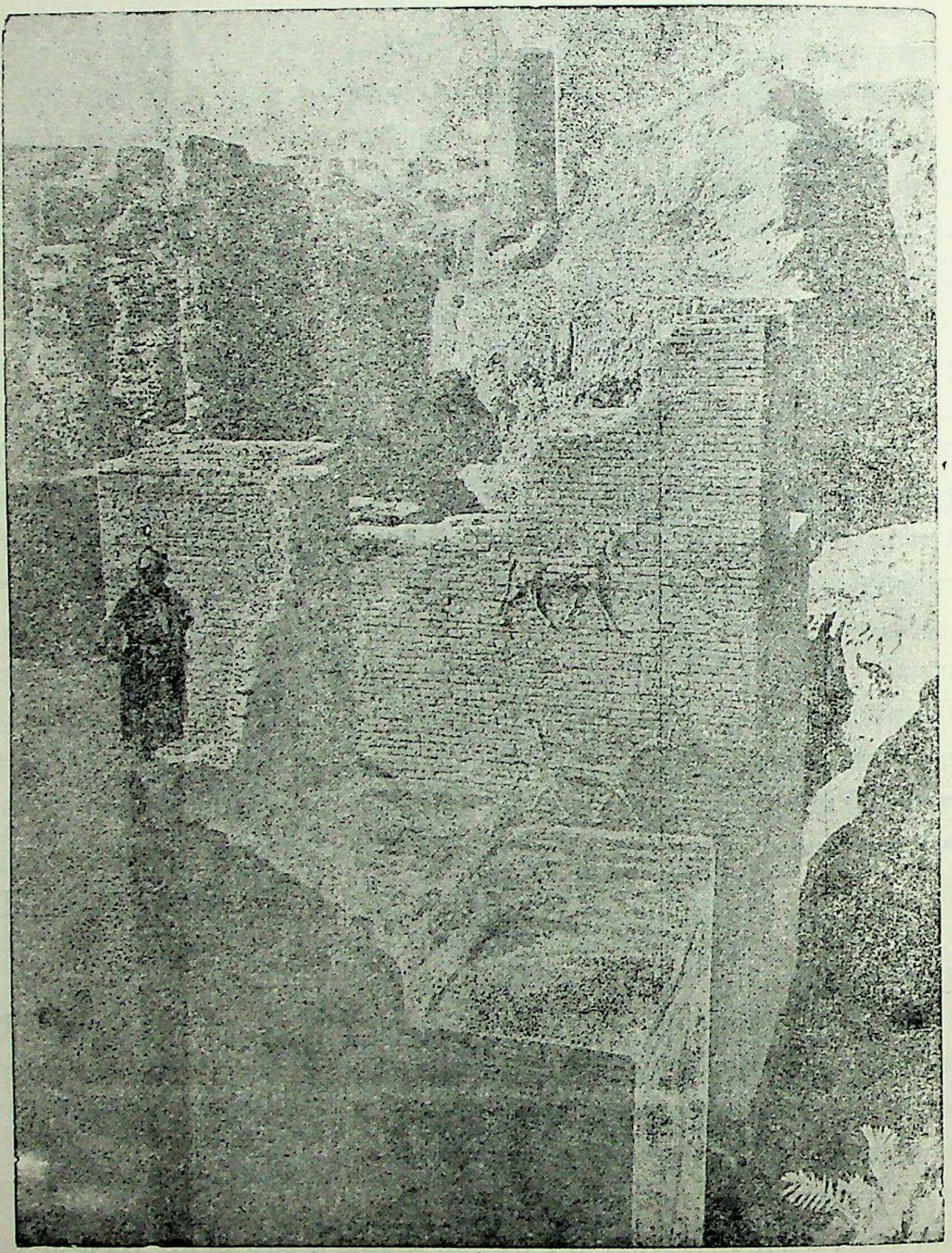

बेबिलान नगर के ये खण्डहर चार हजार वर्ष पूर्व की उसकी महान् सभ्यता के स्मारक के रूप में आज भी खड़े हैं। चित्र में सामने प्रसिद्ध 'इश्तर दरवाजे' के भग्नावशेष हैं, जिन पर बनी हुई मूर्तियाँ अब भी सुरक्षित हैं। ऊपर की ओर दूरी पर सुप्रसिद्ध 'बाबुल की मीनार' के भग्नावशेष दिखाई दे रहे हैं।

बेबिलान में देवालय बहुत थे। प्रत्येक मन्दिर का एक मुख्य देवता होता था, किन्तु वहाँ दूसरे देवताओं को भी स्थान दे दिया जाता था। अपने विश्वास के लिए न किसी को दण्ड दिया जाता था, न अनुदारता का ही सामना करना पड़ता था। देवताओं की चेष्टाएँ और वासनाएँ मनुष्यों की-सी होती थीं। वे खाते-पीते और अपनी कामादि वासनाएँ भी पूरी करते थे। उनको अनेक विधि विधानों और पशु बलि आदि से संतुष्ट करने की चेष्टा की जाती थी। उनके लिए गवैये और अनेक प्रकार के बाजे बजानेवाले रखे जाते थे। भोगादि के अन्यान्य साधनों में देव पत्नी और देववासियाँ भी मन्दिर में उपस्थित रहती थीं। उन्हीं की आड़ में वारांगनाएँ और मदिरा बेचने वाली अपना कुत्सित व्यवसाय करती थीं। उन सब साधनों को प्राप्त करने के लिए लोग बड़े-बड़े दान देते थे, जायदादें लगा देते थे। उस धन से मन्दिरों के अधिकारी लोग गहरा व्यापार और लेन-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देन करते थे और अपनी और मन्दिरों की सम्पत्ति बढ़ाते चले जाते थे। मन्दिरों में जो पशु पाए जाते थे, उनकी अच्छी तरह देखभाल होने का प्रमाण यह है कि वहाँ के कुत्तों तक को दूध-मलीदा दिया जाता था! धर्माधिकारी, समृद्धिपूर्ण और शिक्षित होने के कारण मंदिरों के अधिकारी जनता और राजा पर रोब-दाब जमाए रहते थे। पुरुषों के अलावा मन्दिरों में स्त्रियाँ भी रहती थीं। उनमें से 'देवपत्नी' का बड़ा आदर और सम्मान होता था। वे 'नतीतू' अथवा 'एन्तू' कहलाती थीं। उस सम्मान के लिए बड़े-बड़े राजा और धनी लोग अपनी पुत्रियों को देवता को समर्पित कर देते थे। कभी-कभी देवता उन्हें अलौकिक ढंग से सन्तान भी प्रदान कर देते थे! 'सारगन' का जन्म इसी अलौकिक विधान से हुआ था। वहाँ के देवता एक पत्नीव्रत न थे। उनके एक मुख्य पत्नी और अनेक उपपत्नियाँ व दासियां होती थीं। वे पुरुषों से विवाह भी कर सकती थीं, पर उनसे सन्तान पैदा नहीं कर सकती थीं। इसके लिए वे उन्हें अन्य स्त्री या स्त्रियां दे दिया करती थीं।

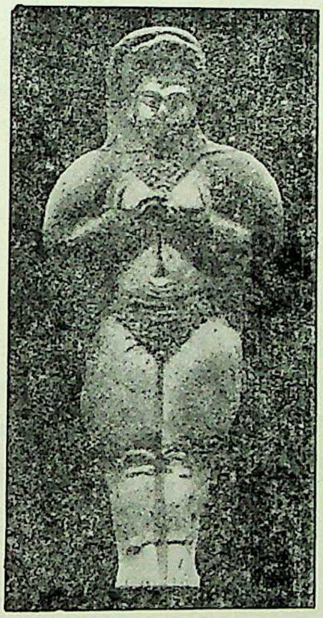

इश्तर देवी की प्रतिमा

बेबिलानवाले देवताओं से परलोक के सुख की आशा नहीं रखते थे और न उनके लिए उनसे प्रार्थना करते थे। वे इसी संसार और जीवन में सुख तथा आनन्द की कामना करते थे। वे लोग स्वर्ग को जानते ही न थे। उनका विश्वास था कि मरने के बाद सब लोग पृथ्वी के नीचे अन्धकारपूर्ण लोक में हाथ-पैर बँधे हुए विवश हो पड़े रहते हैं। अतः अपने वंशजों से श्राद्ध की सामग्री पाने के लिए वे लालायित रहते थे। अधोलोक में सब कोई एक विकट देवी की अध्यक्षता में अगणित युगों तक पड़े रहते हैं, इसी भयंकर विश्वास के कारण उन्होंने कभी समाधिस्थान की रचना की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया।

ग्रीक इतिहास-लेखक हेरोडोटस के अनुसार बेबिलान में स्त्री का यह कर्त्तव्य था कि वह मन्दिर में जाकर एक बार किसी अपरिचित व्यक्ति के साथ सहवास करे। मन्दिर में इस निमित्त जाने पर स्त्री तब तक वापस नहीं आ सकती थी, जब तक उसका काम सिद्ध न हो जाय। सुन्दरी स्त्रियों को तो शीघ्र सफलता प्राप्त हो जाती थी, किन्तु कुरूपिणी के लिए कठिनाई होती थी। किसी-किसी ऐसी अभागिनी भी होती थीं कि उनको तीन-चार साल तक प्रतीक्षा करनी पड़ती थी! यह क्रिया 'माईलिट्टा' देवी को सन्तुष्ट करने के लिए अनिवार्य थी। ऐसी प्रथा पश्चिमी एशिया के अन्य देशों और जातियों में भी प्रचलित थी।

बेबिलानवाले जलतत्त्व को प्रधान कारण और सृष्टि के उद्भव का मूल मानते थे। ज्ञान का उद्गम वे इलहाम को मानते थे। नियति (तकदीर) में उनका पूरा विश्वास था। बिना दैवी इच्छा को जाने वे कोई काम नहीं करते थे। दैवी इच्छा के जानने के कई रहस्यपूर्ण विधान वहाँ प्रचलित थे। उत्तर काल में नियति के सिद्धान्त में कुछ लोगों को सन्देह हो चला था। सेमेटिक होने के कारण बेबिलोनिया-वालों में भक्ति का भाव भी उत्पन्न हो गया था। ये देवताओं की भावमय स्तुतियाँ रचते और गाते थे। उनके अध्ययन से प्रतीत होता है कि वे मानव जीवन को पापपूर्ण समझते थे और देवता से अधीनता तथा दास्य-भाव के साथ क्षमा माँगते थे। तथापि उनके साधारण जीवन में उनका विशेष प्रभाव नहीं पाया जाता था। उनकी समझ में पाप रोग आदि के समान था, जो मंत्र-तन्त्रादि क्रियाओं द्वारा भगाया जा सकता था। व्यापारिक सभ्यता के कारण उनमें भोग-विलास की मात्रा बहुत बढ़ गई। यद्यपि वे व्यभिचार को पाप समझते थे, किन्तु पतनकाल में तो यह परिस्थिति पैदा हो गई थी कि निर्धन लोग अपनी कन्याओं के व्यभिचार की कमाई खाने में कोई बुराई नहीं देखते थे! भले-बुरे का ज्ञान रखते हुए भी वे भलाई की ओर अधिक न झुक सके। कारण यह था कि उनका विश्वास था कि बुराई में भी भलाई रहती है और वह भलाई का एक दूसरा रूप है।

सुमेरिया की तरह बेबिलानवालों का भी मुख्य उत्सव नए वर्ष का उत्सव था। यह उत्सव बड़े धूम-धाम से सुमेरिया में शरद संपात में और बेबिलान में वसंत-संपात में ग्यारह दिन तक मनाया जाता था। राजा को भी सब राजकीय ठाट-बाट छोड़कर उसमें भाग लेना आवश्यक था। इस उत्सव में प्रत्येक वर्ष प्रधान पुरोहित राजा को उसके अधिकार प्रदान करता था। इसके अलावा कोई-न-कोई उत्सव प्रत्येक महीने में होता रहता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लेखनकला का विकास

बेबिलान की सभ्यता का सबसे पूर्ण विकास उनके प्रसिद्ध कानूनों और व्यापार में पाया जाता है। कहा जाता है कि कानून को व्यवस्थित और व्यापक रूप सबसे पहले वहाँ ही मिला था। कानून का आदर राजा स्वयं करता और उस पर भी वह वैसा ही लागू होता था जैसा कि जनता पर। वहाँ के लोग विद्या के महत्व को समझते थे। शिक्षा प्रायः मन्दिरों में दी जाती थी। 'नबू' विद्या का देवता माना जाता था। लेखन कला का उन्हें मिस्रवालों से भी अच्छा ज्ञान था। उन्हें वर्ण का ज्ञान तो न था, तथापि लगभग ३०० वाक्चित्रों के द्वारा वे अपना सारा काम निकाल लेते थे। कुछ लोग लेखनकला का ही पेशा करते थे। वे उसकी मुख्य उपयोगिता व्यापार के लिए, न कि साहित्य के लिए मानते थे। वे मिट्टी की ईंटों पर लिखते और मिट्टी ही के लिफाफे बनाते थे। इन ईंटों को वे सँवारकर पुस्तकालय में रखते थे। उनकी भाषा सुमेरियन और सेमेटिक भाषाओं के मिश्रण से बनी थी। उसको अच्छी तरह समझने के लिए उन्होंने अनेक प्रकार के कोश और व्याकरण रचे थे। इसीलिए वे शब्दकोश और भाषा-विज्ञान के प्रणेता माने जाते हैं। वे कविता करते थे और उन्होंने काव्य में दो उपाख्यान और नीति के अनेक छन्दों की रचना की थी। इसके अलावा कालक्रम से घटनाओं और राजाओं की कृतियों का सविस्तर वर्णन करने की पद्धति निकालकर उन्होंने इतिहास-साहित्य का भी सूत्रपात किया।

ज्ञान-विज्ञान

बेबिलानवालों को गणित और ज्योतिष का भी शौक था। उन्होंने गोले को ३६० अंशों में विभक्त किया। तीन हिस्सों तक की वे गणना कर लेते थे। गणना की सुविधा के लिए वे जन्त्रियों का प्रयोग करते थे। जमीन का क्षेत्रफल निकालने की रीति भी उन्हें मालूम थी। प्राचीनकाल के सबसे प्रसिद्ध ज्योतिर्विद बेबिलानवाले ही माने जाते थे। नक्षत्रों को वे देवता मानते थे और उनकी चालों तथा मानव जीवन पर उनके प्रभाव का विशेष रूप से अन्वेषण करते थे। अतएव फलित ज्योतिष की ओर उन्होंने विशेष रूप से ध्यान दिया था उन्हें बारह राशियों का ज्ञान था। चान्द्रायण गणना के अनुसार उनका वर्ष बारह महीनों का और कभी तेरह महीनों का होता था। उनके छः महीने ३१ और छः २९ दिनों के होते थे। वे चार सप्ताहों का एक महीना और सात दिन का एक सप्ताह मानते थे। किन्तु उनका दिन २४ घंटों के बजाय १२ घंटा का ही होता था, और प्रत्येक घंटा ३० मिनटों का तथा प्रत्येक मिनट ६० सेकण्डों का होता था। इस हिसाब से उनका एक मिनट आजकल के चार मिनटों के बराबर था! समय के ज्ञान के लिए वे जल-घड़ी और सूर्य-घड़ी का प्रयोग करते थे। नाप-तौल के विधान भी उन्हें मालूम थे। बेबिलानवाले चिकित्सा के क्षेत्र में वनस्पति-काष्ठादि औषधियों के अलावा मांस, हड्डियों और पुरीष, तैल और आसव आदि का भी प्रयोग करते थे। वे जर्राही जानते थे। चिकित्सक और जर्राह की फीस कानून द्वारा निश्चित थी। यदि उनकी लापरवाही या भूल से बीमार को हानि पहुँचती, तो उन्हें प्राणदण्ड तक दिया जाता था। चिकित्सा मंत्रतंत्रादि से भी की जाती थी।

पुरातत्त्व और कला

बेबिलोनिया की प्राचीन इमारतें नष्ट हो गईं, किन्तु उनके अवशिष्ट चिह्नों से उनका कुछ अनुमान किया जाता है। उनके नष्ट होने का मुख्य कारण यह था कि बेबिलानवासी पत्थरों के अभाव के कारण ईंटों की इमारतें बनाया करते थे। इमारतों की दीवालों को वे या तो कई रंगों से रँग देते या उन पर कालीन या रंगीन चीनी के-से मोजइक टुकड़ों को सजा देते थे। कभी वे उन्हें धातुओं के आवरण से ढक देते थे। इन कलाओं में वे मिस्रवालों से बढ़े-चढ़े थे। उन्हें मिट्टी और पत्थर पर रंगीन पालिश करना आता था। सोना, चांदी, तांबे कांसे और बाद को लोहे की भी छोटी और बड़ी चीजें, बरतन और मूर्तियां वे बनाया करते थे। उन्हें अनेक प्रकार के जेवर बनाना आता था, किन्तु उनकी कारीगरी मिस्र से घटिया थी। गाने-बजाने का शौक होने के कारण उन्हें तरह-तरह के बाजों का ज्ञान था। मन्दिरों, महलों और रईसों के यहाँ उत्सवादि में प्रायः गाना-बजाना होता था। मन्दिरों के निर्माण में उन्होंने अधिक विवेक और योग्यता दिखाई। उनमें प्रत्येक आवश्यकता का विचार रखा गया था। उनकी ही इमारतों में पहलेपहल मेहराब दिखाई पड़ती है। ऊँचे चबूतरे और 'जिग्गूरात' (मीनारें) इनकी इमारतों की विशेषताएँ हैं। उनका स्थापत्य उपयोगी और प्रभावशाली, किन्तु अधिक कलात्मक न था। ईंटों की इमारतों में कला के लिए अधिक अवसर ही कहाँ होते हैं! चित्रकला में बेबिलान मिस्र से पीछे रहा। वहाँ वह केवल मंदिरों, स्मारकों आदि की सजावट के लिए ही काम में लाई जाती थी। स्वतंत्र रूप से उसकी कभी उन्नति नहीं हुई। फिर भी भित्तिचित्र बनाने में उन्होंने अच्छा कौशल प्राप्त कर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिया था। चित्रों के विषय प्रायः धार्मिक एवं काल्पनिक पशु-पक्षी प्राकृतिक दृश्य, राजा आदि होते थे। वे लोग वीभत्स एवं नग्न चित्र बनाना अनुचित समझते थे। इसीलिए उनकी कला खुल-कर न खेल सकी। मिस्र के देवता प्रायः अर्द्ध-पशु होते थे, किन्तु बेबिलान के देवता मनुष्यों की तरह होते थे। विलक्षण पशु-पक्षियों और उनके से मुखवाले जीवों का यदि वे चित्रण करते, तो उनका तात्पर्य किसी गुप्त भावना का प्रदर्शन मात्र होता था। उनके चित्रों में व्यक्तित्व का अभाव था, अन्यथा वे काफी अच्छे थे। यही दोष उनकी मूर्तिकला में भी दिग्दर्शित थे।

बेबिलानवासियों द्वारा प्रणीत दुनिया का नकशा, जो अब तक प्राप्त नकशों में सबसे प्राचीन है।

यद्यपि भारत और मिस्र की सभ्यता से बेबिलान की सभ्यता घटकर थी, तथापि वहाँ ही से यूनान और रोम को गणित ज्योतिष, चिकित्सा - विधान, व्याकरण, कोष, इतिहास, पुरा-तत्त्व-निरीक्षण और दर्शन का ज्ञान मिला था। उन्हीं की मेहराब और मीनारों का उपयोग ईसाइयों और मुसलमानों ने किया, जिनसे उनकी इमारतों की इतनी ख्याति हुई। उनके कानून रोम के कानूनों से सैकड़ों वर्ष पूर्व के हैं। यही नहीं, अन्त-र्राष्ट्रीय संधियों और पंचायत द्वारा राजनीतिक झगड़ों के निर्णय करने के साधन भी बेबि-लान ही से संसार में फैले।

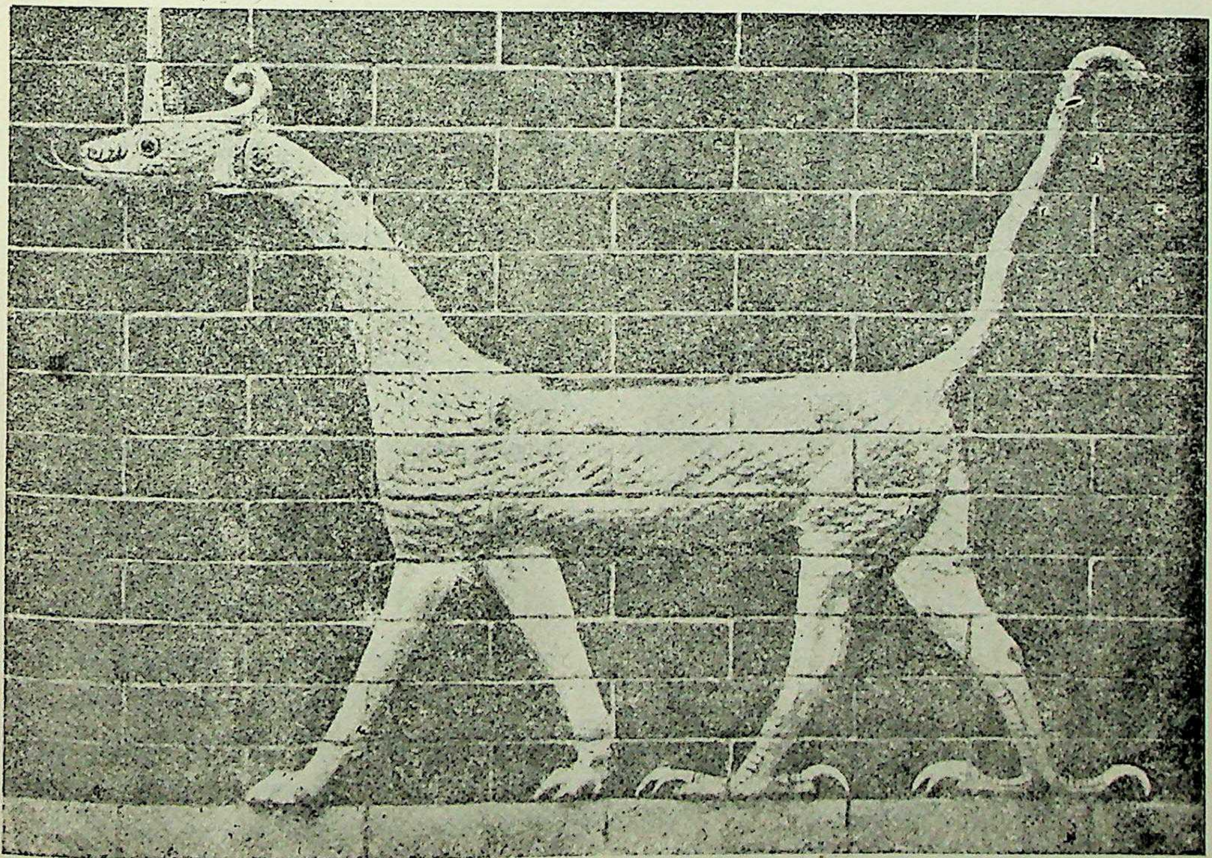

यह मूर्ति बेबिलान के सुप्रसिद्ध ईश्तर-द्वार की दीवारों पर ईंटों द्वारा बनाई गई विचित्र जन्तुओं की मूर्तियों में से एक है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सभ्यताओं का उदय—(५)
चीन की सभ्यता

इस विभाग के अंतर्गत पिछले कुछ लेखों में भारत, सुमेरिया, मिस्र, बेबिलान, आदि देशों में सभ्यता के उदय और आरंभिक विकास की कुछ झाँकियाँ आपके सम्मुख प्रस्तुत की जा चुकी हैं। आइए, अब अपने पड़ोसी महादेश चीन के आदि इतिहास पर दृष्टिपात करें, जिसकी गणना संसार के प्राचीनतम देशों एवं सभ्यता के आदि जन्मस्थलों में की जाती है।

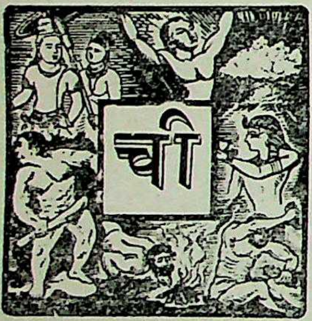

न की सभ्यता का पुरातन इतिहास अतीत की ओट में छिपा हुआ है। वहाँ के आदिम निवासी कौन थे? कहाँ से वे आए? उनकी मूल संस्कृति क्या थी? इन प्रश्नों का अधिकारपूर्ण उत्तर देना कठिन है। पेकिंग नगर के निकट पाई गई आदि मानव 'साइनेनथ्रापस' के प्रस्तरविकल्प वहाँ के आदिम मनुष्यों की प्राचीनता की ओर संकेत करते हैं।

दक्षिण मंचूरिया तथा होनान में पुरातत्त्ववेत्ताओं ने प्रस्तर-युग के उत्तरकाल की संस्कृति के चिन्ह पाये हैं, जो मिस्र और सुमेरिया के उत्तर प्रस्तर-युग से एक या दो हजार वर्ष बाद के माने जाते हैं। कुछ विद्वानों ने, इन सांस्कृतिक चिह्नों के आधार पर, आदि प्रस्तरयुगीन संस्कृति से ही चीन की संस्कृति का उदय माना है, क्योंकि उनके मत से मिस्र और सुमेरिया की संस्कृति में भी इन विशिष्ट प्रवृत्तियों का समावेश था। उस समय के अवशेषों में पत्थर के कुछ ऐसे औजार मिलते हैं, जो कि आकार-प्रकार में उत्तरी चीन के (आजकल के) फसल काटनेवाले लोहे के हँसियों से मिलते-जुलते हैं। इससे यह अनुमान किया जाता है कि चीन की सभ्यता लगभग सात हजार वर्ष पुरानी है।

पुरातत्ववेत्ता एण्ड्रू ज के मतानुसार ईसा से २०,००० वर्ष पूर्व मंगोलिया में पुरातन मानव की घनी बस्ती थी। वहाँ के निवासियों के औजार फ्रांस के मध्य प्रस्तर-युग के औजारों के समान हैं।

अनुश्रुतियों और किंवदंतियों के आधार पर सरकारी इतिहास-लेखक सदियों से चीन का इतिहास लिखते आए हैं। अन्य सभ्य देशों की अपेक्षा चीन के इतिहास की यह विशेषता है कि आदि काल से वर्तमान युग तक लिखित इतिहास की अटूट शृंखला वहाँ बनी हुई है। इसीलिए चीन को "इतिहासकारों का स्वर्ग" कहा गया है।

जगत् की उत्पत्ति के संबंध में प्राचीन भारतीयों की भाँति चीन के निवासियों ने भी विराट् पुरुष की कल्पना की थी। आदि पुरुष पआन-गू ने १८,००० वर्ष के अथक परिश्रम के बाद ठोंक-पीटकर जगत् को वर्तमान रूप में तैयार किया! उसी विराट् पुरुष की साँस से वायु और मेघ, स्वर से बिजली की कड़क, धमनियों से नदियाँ, मांस से पृथ्वी, रोम से घास और पेड़, अस्थियों से धातुएँ, पसीने से वर्षा तथा शरीर से चिपके हुए कीटों से मानव-जाति की सृष्टि हुई।

दैवी सम्राटों का राज्य-काल

पआन-गू के बाद के तीन सम्राट् दैवी सम्राट् माने गए हैं। इनमें प्रथम ताएन-हुआंग तथा द्वितीय ति-हुआंग क्रमशः स्वर्ग और पृथ्वी के राजा माने गए हैं। तीसरा सम्राट् जन-हुआंग मनुष्यों का राजा माना गया है। इन तीनों का सम्मिलित राज्य-काल ८१,६०० वर्ष समझा जाता है!

अनुश्रुतियों को यदि सत्य माना जाय तो इन्हीं सम्राटों के अथक परिश्रम और अध्यवसाय के द्वारा ही पआन-गू के

'कीट' आधुमिक मनुष्यों में बदल सके हैं ! दैवी सम्राटों के पहले लोग पशुओं की भाँति कच्चा मांस खाते थे, अपने पिता को न जानकर केवल अपनी माँ को पहचानते थे और वस्त्र के स्थान पर खाल से शरीर ढकते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चीन के इतिहास के दस युग

मनुष्यों के राजा जन-हुआंग के राज्यकाल से चीन में दस युगों का प्रारम्भ होता है। युगों की गणना और राजाओं के नाम के अतिरिक्त इस काल का विशेष वृत्तान्त अतीत के गर्त में है। चौथे; पांचवें तथा छठे युग में विभिन्न पशु-पक्षियों को पालतू बनाने का उल्लेख है। इनमें 'उड़नेवाले हरिण' और 'सींगदार घोड़े' उल्लेखनीय हैं। सातवें युग के एक शासक ने लोगों को पशुओं की खाल से शरीर ढकना सिखाया। नवें युग में सम्राट् फू-शी (२८५२ ई० पू०) का प्रादुर्भाव हुआ, जिसने अपनी विज्ञ रानी की सहायता से अपनी प्रजा को लिखना, चित्र बनाना, मछलियाँ पकड़ना, पशु-पालन और रेशम के कीड़े पालकर रेशम पैदा करना सिखाया। विवाह की रीति और नियमों की उत्पत्ति भी इसी समय से मानी जाती है। वर के द्वारा भावी पत्नी को हरिण की दो खाल भेंट करने की प्रथा, जो अब भी चीन की कुछ जातियों में पाई जाती है, मूलतः फू-शी द्वारा निर्धारित विवाह-पद्धति से ही निकली है।

फू-शी का उत्तराधिकारी शन-नुंग हुआ, जिसने कृषि का प्रचलन किया और लकड़ी के हल तथा फावड़ों का आविष्कार किया। चीन की सभ्यता के इतिहास में प्रथम कृषक होने के साथ-साथ शन-नुंग सर्वप्रथम चिकित्सक भी था। जड़ी-बूटियों की औषधियों का अनुसंधान करने का श्रेय उसी को है। अपने ही पेट को प्रयोगशाला मानकर उसने विभिन्न वनस्पतियों की परीक्षा की और एक-एक दिन में सत्तर-सत्तर बार विषैली वस्तुओं का शिकार वह हुआ !

चीनी जाति का पितामह :: पीत सम्राट्

दसवें युग का आरम्भ पीत सम्राट् हुआंग-दी की कथा से होता है। हुआंग-दी ने शन-नुंग के उत्तराधिकारी को हटाकर राज्य प्राप्त किया। शक्ति के बल पर राज्य पाने पर भी हुआंग-दी तथा उसके उत्तराधिकारियों ने शक्ति की अपेक्षा सद्गुणों पर अधिक भरोसा किया। चीन की जन-श्रुति में पीत सम्राट् और सम्राज्ञी का विशिष्ट स्थान है, क्योंकि समाज को सभ्यता और संस्कृति की ओर अग्रसर करने में इन दोनों का प्रमुख हाथ रहा है।

ईंटों के घर बनाना, दिशासूचक यंत्र का आविष्कार तथा प्रयोग, विभिन्न वर्गों की पहचान के लिए भाँति-भाँति के वस्त्रों का उपयोग ये सब पीत सम्राट् की ही देन हैं। उसी के राज्य-काल में (२६९७-२५९७ ई० पू०) वस्तुओं के विनिमय के माध्यम के रूप में धातु के सिक्कों का प्रचलन आरम्भ हुआ। नाव और रथ भी उसी काल की उत्पत्ति हैं। बोझ ढोने के लिए पशुओं का व्यवहार भी तभी से हुआ है। सरकारी इतिहास-लेखकों की नियुक्ति सर्वप्रथम हुआंग-दी ने ही की। नक्षत्रों के अध्ययन के लिए वेधशाला की स्थापना तथा समय की माप के लिए जन्त्री भी उसी के समय में बनी। सम्राट् फू-शी द्वारा प्रचलित लिपि में सुधार भी पीत सम्राट् ने ही किया। इन सब सुधारों तथा आविष्कारों के कारण ही हुआंग-दी को "चीनी जाति का पितामह" कहा गया है।

महान् सम्राट् याओ, शिवन और यू

लगभग ढाई सौ वर्ष बाद हुआंग-दी के चौथे उत्तराधिकारी दी-चिह की अयोग्यता और दुर्गुणों से चिढ़कर जनता ने उसे राज्य-सिंहासन से हटा दिया और याओ को सम्राट् बनाया। याओ ने सौ वर्ष तक राज्य किया। सौजन्यता और सदाचार इसके राज्य-काल की विशेषता थी। उसने अपने महल के फाटक पर एक नगाड़ा और एक तख्ती रख दी थी, जिससे उसकी जनता नगाड़ा बजाकर उसे फरियाद सुनने के लिए बुला सके और राज्य-प्रबंध के सुधार के लिए अपने सुझाव सूचित कर सके।

फिर भी याओ का राज्य-काल शांतिमय नहीं रहा। बाढ़ से पीड़ित जनता के कष्ट को दूर करने में ही उसका अधिकांश समय लगा। इस कार्य के लिए उसने शिवन को अपना सहायक नियुक्त किया। याओ ने अपने बाद शिवन को ही अपना उत्तराधिकारी बनाया।

शिवन ने खेती के लिए जंगल साफ कराए। व्यापार और यात्रा के लिए सड़कें बनवाईं और शिक्षा-प्रसार के लिए नियम बनाए। सामाजिक क्षेत्र में आचरण-संबंधी नियम भी उसके युग में बनने लगे। राजा और मन्त्रियों के आचरण तथा व्यवहार के नियमों ने राज-काज को नैतिक जामा पहनाया। पति-पत्नी के बीच कार्यों का बँटवारा, बड़ों और छोटों के पारस्परिक व्यवहार के नियम तथा मित्रों के प्रति वफादारी का सिद्धांत शिवन ने ही प्रतिपादित किया। तौलने के बाँट और नापने के मापदण्ड में भी उसके राज्यकाल में सुधार हुआ।

शिवन की मृत्यु के बाद उसका सहायक यू राजा बना। राज्य की ओर से बड़े पैमाने पर भूमि की नाप-जोख का कार्य उसी के समय से आरम्भ होता है। अनुश्रुति के अनुसार यू के राज्यकाल में पहले-पहल चावल की शराब बनी और उसे भेंट की गई! सम्राट् ने उसे भूमि पर पटककर भविष्यवाणी की कि "एक दिन इसी के कारण किसी को राज्य से हाथ धोना पड़ेगा।"

यू का सबसे बड़ा काम था नदियों को गहरा कराकर तथा पहाड़ों में झीलें बनवाकर नदियों की बाढ़ को काबू में लाना। यू के स्मारक के रूप में चीन में अब भी एक परम्परागत कहावत प्रचलित है कि "यदि यू न होता तो हम सब मछली होते?"

लोककथाओं के अनुसार, राजकीय नियुक्ति के द्वारा उत्तराधिकार के सिद्धान्त को न मानकर यू ने शिआह (सभ्य) राजवंश की स्थापना की।

यू की सत्रहवीं पीढ़ी में सम्राट् जी-अग्वे बड़ा आततायी हुआ। एक बार ३,००० व्यक्तियों को जी-अग्वे तथा उसकी रानी के मनोरंजन के लिए मदिरा के सरोवर में कूदकर प्राण देने पड़े! शांग के राजा तांग के नेतृत्व में जनता ने विद्रोह किया और शिआह राज्य-वंश की समाप्ति की।

चीनी सभ्यता का विकासक्रम

घटना-क्रम तथा समय-गणना की वास्तविकता के आधार पर भले ही सरकारी लेखकों द्वारा प्रस्तुत इस इतिहास पर विश्वास न किया जाय, किन्तु मानव-सभ्यता के विकासक्रम पर इससे पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

दैवी सम्राटों के राज्य-वृत्तांत से प्रकट है कि अन्य देशों के आदिम समाज की भाँति चीन में भी मातृप्रधान सामाजिक व्यवस्था थी। तब आग का उपयोग नहीं होता था। कच्चा मांस ही भोजन था और जानवरों की खाल ही वस्त्र का काम देती थी। धीरे-धीरे इस स्थिति में परिवर्त्तन हुआ और आदिम मनुष्य ने शिकार के अलावा पशु-पालन और मछली पकड़ना भी सीखा। उसके बाद लकड़ी के हल और फावड़े द्वारा खेती का युग आता है। वस्त्र के लिए कीड़े पालकर रेशम पैदा करने का प्रयत्न बर्बरता से सभ्यता की ओर बढ़ने का स्पष्ट प्रयास है।

इस समय तक आते-आते सामाजिक संगठन में भी स्थिरता के लक्षण दिखाई देते हैं। विवाह की उत्पत्ति हो चुकी थी। बहुविवाह की भी प्रथा जारी हो गई थी। विवाह के नियम तथा संबंधित रस्म-रिवाज भी शुरू हो गए थे।

इसके बाद ही यातायात के साधनों का विकास होता है। विनिमय के माध्यम के रूप में सिक्कों का चलन तथा तौल-नाप का आरम्भ भी सभ्यता की ओर प्रगति का संकेत करते हैं।

स्वास्थ्य-रक्षा तथा रोग-निवारण के लिए औषधियों का प्रयोग, दिशासूचक यंत्र का आविष्कार, वेधशाला द्वारा नक्षत्रों के रहस्योद्घाटन का प्रयत्न और जन्त्री का निर्माण, ये सब "पआन-गू के कीटों" की विज्ञान के क्षेत्र में उन्नति के परिचायक हैं।

सम्राट् शिवन के समय में समाज-संगठन में थोड़ा परिवर्त्तन और हुआ। यह था समाज के विभिन्न अंगों के पारस्परिक व्यवहार की नीति का निर्धारण। इस युग में निर्धारित राजा और मंत्री के आचरण के नियमों ने राज्यसंस्था को नीतिमय बना दिया।

इस अर्द्ध-सत्य इतिहास से पता चलता है कि चीन की कृषि-प्रधान सभ्यता का उदय पीली नदी के मैदान में हुआ। जनश्रुति के आधार पर यह कहा जा सकता है कि (प्रागैतिहासिक युग के) सभी सम्राटों की राजधानी इसी मैदान में स्थित शान्सी, होनान, होपे और शांतुंग के वर्तमान प्रान्तों में रही हैं। राज्य-प्रबन्ध की दृष्टि से राज्य का विभाजन प्रान्तों में हुआ था या नहीं, यह निश्चित रूप से कहना कठिन है, यद्यपि जनश्रुति के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पीत सम्राट् हुआंग-दी ने राज्य का विभाजन कर दिया था।

जनश्रुति विचारों की अपेक्षा व्यक्ति के प्रति अधिक उदार होती है, अतएव सदियों की प्रगति का श्रेय कुछ व्यक्तियों को मिल जाना स्वाभाविक है। लोककथाओं के नायक हुआंग-दी, याओ, शिवन, यू आदि का अस्तित्व था या नहीं, यह एक विवादास्पद विषय है। सभ्यता के इतिहास में इन व्यक्तियों का अस्तित्व विशेष महत्वपूर्ण नहीं है, किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि ये सब व्यक्ति चीनी सभ्यता की उन्नति के विभिन्न स्तरों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

शांग राज्य-वंश

शिआह राज्य-वंश के अंतिम शासक जी-अग्वे को हटाकर ताँग ने शांग राज्य-वंश की स्थापना की। चीन में ऐतिहासिक युग का प्रारम्भ इसी समय से होता है। शांग राज्य-वंश की स्थापना तथा उसके पहले की घटनाओं के समय के बारे में निश्चयात्मक राय देना कठिन है, किन्तु यह पहला राज्य-वंश था, जिसके अस्तित्व के प्रमाण अस्थिलेख तथा भग्नावशेषों के रूप में मिलते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(ऊपर) महान् सम्राट् यू, जिसके सम्बन्ध में चीन में यह कहावत प्रचलित है कि 'यदि यू न होता तो हम सब मछली होते !' यू का महान् कार्य देश की नदियों को गहरी कराकर तथा पहाड़ों में झीलें बनवाकर नदियों की बाढ़ का नियंत्रण करना था । (नीचे) शांग राज्य-वंश का प्रस्थापक सम्राट् तांग, जिसके नेतृत्व में जनता ने विद्रोह करके शिआह राज्य-वंश के अंतिम सम्राट् जी-क्वे को उखाड़ फेंका था ।

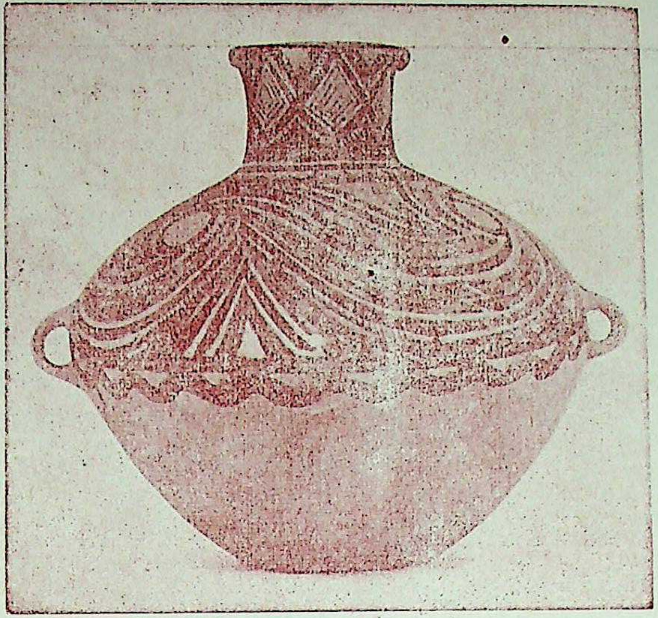

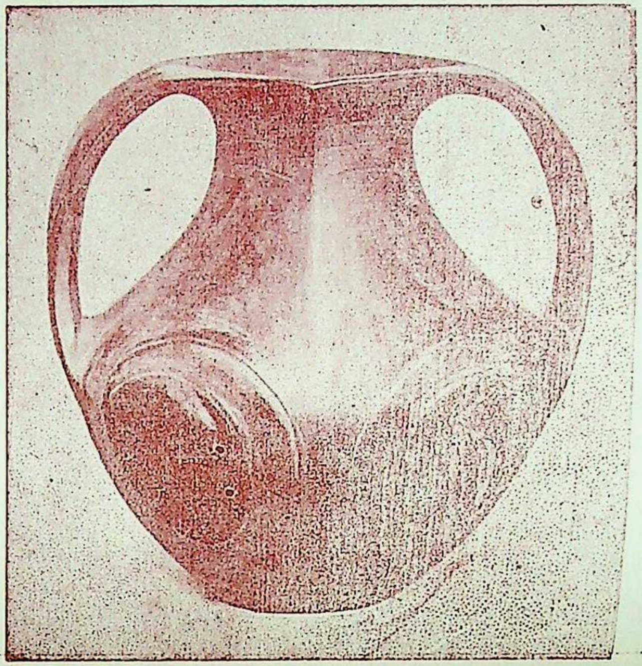

तीन हज़ार वर्ष पूर्व की चीनी कला के कुछ नमूने

(बाईं ओर) क्वांगसी प्रदेश की एक विशालपृष्ट पर अंकित पुरातन भित्तिचित्र। इन चित्रों में भाँति-भाँति के पशुओं के रेखाकृतियों के अलावा हथियारों आदि से सज्जित मानवकृतियां भी दिग्दर्शित हैं। (दाहिनी ओर) तीन हजार वर्ष पूर्व के दो सुन्दर मिट्टी के पात्र। इनकी सुघड़ आकृति एवं चित्रकारी आदि पर ध्यान दीजिए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

होनान प्रान्त में स्थित ग्रन्यांग नगर के निकट की खुदाई में प्राप्त अस्थिलेख तथा भग्नावशेष शांगकाल के समाज पर प्रकाश डालते हैं। तत्कालीन समाज की प्रत्येक समस्या के बारे में देवताओं तथा पूर्वजों से पूछे गए प्रश्नों के उत्तर के रूप में ये अस्थिलेख प्राप्त हैं।

शिकार, पशुपालन, कृषि, उद्योग-धंधे

उन दिनों आखेट, मछली का शिकार तथा खेती जीविका-निर्वाह के मुख्य साधन थे। इन कार्यों के लिए उस समय कौन-कौन से उपाय काम में लाए जाते थे, चीनी लिपि की विशेषता के कारण वे हमें चित्र-रूप में ज्ञात हैं। उदाहरणार्थ, इस लिपि में कटिया और जाल से मछली मारने की पूर्ण प्रक्रिया का चित्र उपलब्ध है।

शिकार खेलने के लिए बाण और भाले का व्यवहार होता था। साथ-साथ हरिण, खरगोश, बन्दर इत्यादि के लिए भी जाल लगाए जाते थे।

अस्थिलेखों में से एक में लिखा है कि "आज रात वर्षा होगी और एक हाथी पकड़ा जायगा"। इसके अलावा खंडहरों में पाए गए हाथीदाँत तथा उससे बने औजार भी यह सिद्ध करते हैं कि पीली नदी की घाटी में हाथी पाए जाते थे। हाथी से उस समय भी काम लिया जाता था, क्योंकि चीनी लिपि में हाथी का चित्र ही 'काम करने' का चिह्न माना जाता था। पालतू पशुओं में हाथी के अतिरिक्त गाय, बैल, भेड़, कुत्ते और सुअर भी थे। मुर्गियाँ भी पाली जाती थीं। रथ खींचने के लिए घोड़े और संभवतः हाथी का उपयोग होता था।

'हाथ में कोड़ा लिए हुए व्यक्ति' का चित्र हाँकने की क्रिया का द्योतक था। खेती के लिए आदिम अवस्था का हल तथा अन्य नुकीले औजार काम में लाए जाते थे। हल के चिह्न में परिवर्तन हो चुका था और अधिक व्यापक अर्थ 'शक्ति' को प्रकट करने के लिए उसका व्यवहार होने लगा था। 'खेत और हल' अथवा 'शक्ति और खेत' के चिह्न से 'पुरुष' का बोध होता था। पुरुष के लिए व्यवहृत चिह्न (शक्ति और खेत अथवा हल और खेत) से स्पष्ट है कि पुरुष ही खेतों पर काम करते थे। 'मनुष्य के सिर पर गेहूँ' का चित्र 'वर्ष' का द्योतक था। बाली के साथ 'द्रव' (बहने) का भाव जोड़ने से जौ का अर्थ लगाया जाता था। इससे यह अनुमान लगता है कि जौ का मुख्य उपयोग शराब बनाने में होता था। अन्न के लिए कई प्रकार के चिह्न बनाए जाते थे, जिससे अन्दाज लगता है कि शांग-युग में कई प्रकार का अनाज बोया जाता था। रेशम के कीड़ों के पालन के लिए शहतूत भी बहुतायत से होता था। खुदाई में बहुत से धातु के बर्तन मिले हैं। विद्वानों की राय है कि ये बर्तन ढालकर बनाए गए हैं। उस युग के धातु के काम की कारीगरी आश्चर्यजनक है। एक तीर के फल की धातु का विश्लेषण करने से पता लगा है कि उसमें लोहा, चांदी, राँगा और सीसा का सम्मिश्रण था। मिट्टी के बर्तनों की चमकदार पालिश से पता चलता है कि उद्योग के क्षेत्र में आग का प्रयोग भली प्रकार होने लगा था।

धर्म-कर्म और राज्य-व्यवस्था

आधुनिक अन्यांग के निकट शांग-राजधानी की खुदाई में दैनिक व्यवहार के बर्तनों और औजारों की अपेक्षा बलि तथा अन्य धार्मिक कृत्यों के उपयोग के बर्तन अधिक मिले हैं। किन्तु उनकी धार्मिक पद्धति के बारे में कुछ कहना कठिन है। इनके देवताओं में से एक का नाम 'सम्राट्' का सूचक था ऐसा जान पड़ता है कि ये लोग अपने किसी प्रथम पूर्वज की इसी भाँति पूजा किया करते थे। पूर्वजों की पूजा उनके (शांग लोगों के) जीवन में प्रधान थी। सब प्रकार के संकटों में पूर्वजों की कृपा-प्राप्ति के लिए भाँति-भाँति की बलि चढ़ाना उनका नियम था। एक अस्थि पर लिखा मिला है कि "वर्षा के लिए मातामही 'यी' की प्रार्थना करो"। बलि के पशुओं में भेड़, सुअर, कुत्ते, गाय-बैल, घोड़े और कभी-कभी मनुष्य भी सम्मिलित कर दिए जाते थे। मनुष्यों में बहुधा विजित शत्रु ही होते थे। बलिप्रदान का कार्य पुरोहित अथवा पुजारी द्वारा सम्पन्न होता था। राजा को सलाह देना तथा अदृष्ट शक्तियों के कोप से उसे बचाए रखना भी पुरोहित का कार्य था।

जन्त्री तैयार करना पुरोहित का ही काम था, जो कि उस समय से लेकर आज तक केवल चीन की सरकार का ही नहीं, वरन् प्रत्येक कृषि-प्रधान राष्ट्र का मुख्य कार्य रहा है। यह काम अत्यन्त उत्तरदायित्वपूर्ण समझा जाता था, क्योंकि जन्त्री के द्वारा ही फसल के बोने और काटने का समय निश्चित होता था, और इसी पर राजा के प्रति प्रजा की कृपा और अकृपा निर्भर थी।

राजा समाज का अगुवा होता था। राजा की एक या अधिक रानियाँ होती थीं, जो उसे राज-कार्य में सहायता देती थीं। युद्ध और आखेट में भी राजा ही नेता होता था। प्रकृति और जनता के बीच वह मध्यस्थ का कार्य करता था। जिस समस्या का हल वह स्वयं नहीं ढूँढ़ पाता था, उसके बारे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में वह पूर्वजों की सलाह पाने का यत्न करता था। कदाचित् यही पूर्वजों की पूजा का सम्भाव्य उद्गम है। राज्य और सम्पत्ति का उत्तराधिकारी छोटा भाई होता था और उसकी मृत्यु पर सबसे बड़े भाई के लड़के उत्तराधिकारी होते थे।

चीन की परिवार-व्यवस्था सदैव अन्य देशों से भिन्न रही है। जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं, सम्पत्ति का उत्तराधिकार पिता से पुत्र को नहीं, प्रत्युत बड़े भाई से छोटे भाई को मिलता था। सामाजिक परम्परा के अनुसार छोटे भाई के पैदा किए हुए धन तथा सम्पत्ति में बड़े भाई का भी भाग माना जाता था। इससे स्पष्ट है कि परिवार आधुनिक रूप में विकसित नहीं हुआ था। इस समय तक चीन में सम्पूर्ण जाति को एक ही सम्मिलित परिवार के रूप में मानने, तथा समस्त सम्पत्ति को सम्पूर्ण जाति की सम्पत्ति मानने के आदिमयुगीन नियम लागू थे। बहु-विवाह की प्रथा प्रचलित थी, किन्तु यह धनी व्यक्तियों तक ही सीमित थी।

अन्यांग नगर के निकट की खुदाई में शांग-राजधानी के शासन से सम्बन्धित राजकर्मचारियों के पदों की सूची भी मिली है, जिससे पता चलता है कि नगर का शासन-प्रबंध सुसंगठित था। कर वसूल करना और उसे खर्च करना, सड़कों तथा किलेबन्दी का निर्माण और सिंचाई का प्रबन्ध करना कर्मचारियों का प्रधान कार्य था।

कला-कौशल

राजधानी तथा अन्य नगरों का जीवन जटिल हो चला था और कार्यक्षेत्र में किसी कला विशेष में दक्षता प्राप्ति का रिवाज बढ़ चला था। यह निश्चित है कि कुछ व्यक्ति देहात और दूसरे स्थानों से आई हुई वस्तुओं की बिक्री और वितरण में विशेष रूप से लग गए थे। दूसरे लोग कपड़े, रस्सियाँ, टोकरियाँ इत्यादि बनाने का काम करते रहे होंगे। इसके अतिरिक्त लकड़ी, पत्थर और हड्डियों के काम करनेवाले भी अवश्य रहे होंगे। धातु के बर्त्तन बनानेवाले तथा मकान, मन्दिर और मकबरे बनानेवाले राजकारीगर भी रहे होंगे। शांग-काल की कब्रों में धातु और चीनी मिट्टी के बर्त्तन, संगमरमर तथा हाथीदाँत की मूर्तियाँ, नीलम और मोती से जड़ी हड्डियाँ, धातु की ढली छोटी-छोटी प्रतिमाएँ, ढोल इत्यादि वाद्य-यंत्र, युद्ध के फरसे, रथ के पुर्जे, घोड़े की जीन के साज और सन्दूकों के ढक्कन आदि मिले हैं, जिनकी कारीगरी और सुन्दरता पर मानव जाति को सदैव आश्चर्य रहेगा।

ऐसा जान पड़ता है कि लिखने और चित्र बनाने की आधुनिक चीनी कूची की तरह उस पुरातन युग में भी बारीक कूची का उपयोग होता था। यह निश्चित है कि उस काल के मिट्टी के बर्त्तनों पर जितने साफ और बारीक चित्र बने, वे महीन कूची के बगैर नहीं बनाये जा सकते। इतना समय बीत जाने पर भी इन बर्त्तनों पर अंकित चित्र आज भी चटक और स्पष्ट हैं। इससे अनुमान होता है कि चीन में उस समय अमिट स्याही का आविष्कार हो चुका था।

संगीत के क्षेत्र में भी काफी उन्नति हो चुकी थी। मकबरों में पाए गये वाद्य-यंत्र इसके प्रमाण हैं।

शांग-काल के सामाजिक एवं आर्थिक संघटन को देखकर यह स्पष्ट मालूम होता है कि उन दिनों राजनीतिक सत्ता का विकास इस अवस्था तक हो चुका था कि सामाजिक व्यवस्था में स्थायित्व आ सके। ऊपर लिखा जा चुका है कि राजा समाज का अगुआ था। राजा की छत्रछाया में अनेक छोटे-बड़े सरदार थे, जो कि कृषकों को अपने अधीन किए हुए थे। बाहरी शत्रुओं तथा आंतरिक विद्रोह के मुकाबले के लिए पैदल सैनिकों और रथों की सेना तैयार रहती थी। राज्य की ओर से सड़कों इत्यादि का प्रबंध होता था। सम्पूर्ण प्रजा की ओर से राजा धार्मिक कृत्य भी करने लगा था। इन सब बातों से प्रकट है कि जनसंख्या काफी बढ़ गई थी और सत्ता के केन्द्रीकरण का आरम्भ हो चुका था। अतिवृष्टि और अनावृष्टि के संकट से त्राण पाने के लिए अन्न का संग्रह भी होने लगा था।

शांग-राज्य दूर तक विस्तृत था। जनश्रुति के अनुसार प्रथम शांग सम्राट् ने १८०० सरदारों को पराजित कर उनके नगरों पर अधिकार किया था। इस कार्य में उसे इन नगरों की सम्मिलित शक्ति का भी सामना करना पड़ा होगा। इससे उसकी सेना की शक्ति और संख्या का अनुमान लगाया जा सकता है। शांग-साम्राज्य की सीमा आधुनिक शक्सान, होनान और हुपे से लेकर पूर्वी समुद्र-तट तक फैली हुई थी। समुद्र के किनारे कोरिया के कुछ भाग तक इसकी हद थी। शांग-राज्य की राजधानी की वास्तविक स्थिति अब भी अनिश्चित है। अन्यांग के निकट की खुदाई से अनुमान लगता है कि इस वंश के किसी राजा ने १४०० ई० पू० वहीं पर अपनी राजधानी बनायी थी।

शांग राज्य-वंश ने लगभग ६०० वर्ष तक राज्य किया। ११२२ ई० पू० 'जो' प्रदेश के राजा के नेतृत्व में ८०० सरदारों ने विद्रोह किया। अत्याचारपीड़ित जनता ने शांगवंशीय सम्राट् 'जो सिन' का साथ नहीं दिया। निराश होकर उसने अपने महल में आग लगा दी और उसी में वह जल मरा। इसके बाद शांग-साम्राज्य 'जो' राज्य-वंश के अधीन हो गया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृथ्वी का जन्म

अन्य ग्रहों के साथ-साथ पृथ्वी का भी निर्माण सूर्य से कभी टूटकर अलग हो जानेवाले उत्तप्त वायव्य पदार्थ के पिण्डीभूत हो जाने से हुआ है। ऊपर उन दिनों की लपटों से घिरी पृथ्वी और नीचे तत्कालीन सूर्य का कुछ अंश दिग्दर्शित है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृथ्वी के आधार और आकार का दर्शन

जिस धरती पर जीवनयापन करते हुए हम इस विश्व-ब्रह्माण्ड की यात्रा कर रहे हैं, क्या उसका भी कोई इतिहास है ? हमारे पुरखे इसके बारे में क्या सोचते थे और वैज्ञानिक आज इसकी क्या गाथा सुनाते हैं ? आइए, इन प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत और आगे के प्रकरणों में ढूँढ़ें ।

अपनी क्रीड़ाभूमि पृथ्वी के संबंध में मनुष्य सदैव ही से कुतूहलपूर्ण प्रश्न करता आया है । पृथ्वी कितनी लंबी और चौड़ी है ? उसका धरातल कितना गहरा है और उसके भीतर क्या है ? पृथ्वी कहाँ और किस प्रकार टिकी हुई है ? वह कब और कैसे उत्पन्न हुई ? वे कौनसी शक्तियाँ हैं, जो उसकी शक्ल बदलती रही हैं? जन्म से लेकर आज तक उसमें क्या-क्या परिवर्तन हुए हैं ? आकाश, तारे और नक्षत्र क्या हैं ? सूर्य और चन्द्रमा तथा अन्य नक्षत्रों के साथ पृथ्वी का क्या सम्बन्ध है ? ऐसे प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए मनुष्य अपनी स्वाभाविक जिज्ञासावृत्ति के कारण आदिकाल ही से प्रयत्नशील रहा है । प्रकृति की लीलाओं के अध्ययन के फलस्वरूप मनुष्य का उपर्युक्त विषयों संबंधी ज्ञान नित-प्रति बढ़ता गया और धीरे-धीरे वह स्वयं ही अपनी अनेक शंकाओं का समाधान करने योग्य हो गया । परन्तु उसकी शंकाओं का कभी अन्त न होने पाया । जैसे-जैसे उसका ज्ञान बढ़ा, उसकी जिज्ञासा भी बढ़ती गई ।

भू-विज्ञान—जन्म और विकास

अपनी क्रीड़ाभूमि पृथ्वी के भौतिक रूप एवं रचना के सम्बन्ध में जानकारी करनेवाली विद्या को ही 'भू-विज्ञान' के नाम से पुकारते हैं । इस विज्ञान का जन्म मनुष्य की पृथ्वी - संबंधी जिज्ञासा के फलस्वरूप हुआ । इसमें सन्देह नहीं कि पौराणिक काल के विद्वानों ने इस

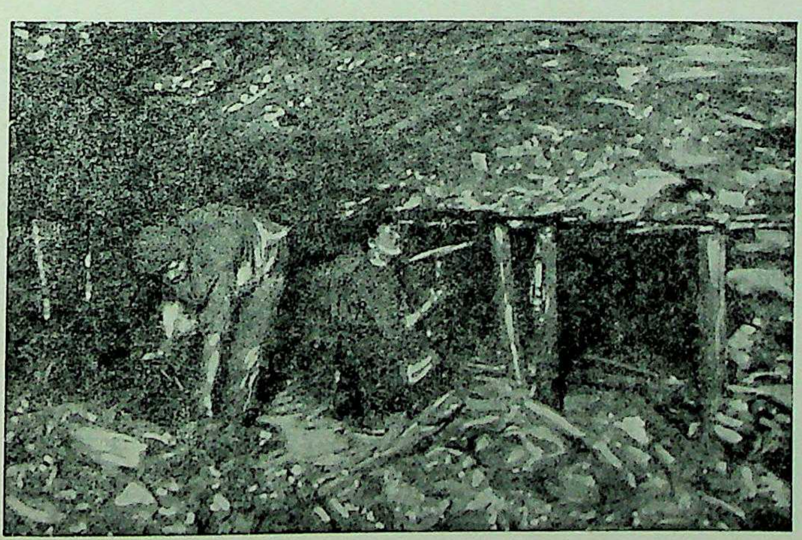

खनिज पदार्थों की खोज में मनुष्य ने पृथ्वी के गर्भ के परदे उघाड़ने का जो प्रयत्न किया, उससे उसे पृथ्वी की रचना के सम्बन्ध में काफी ज्ञान प्राप्त हुआ है ।

विज्ञान के प्रारम्भिक सिद्धान्तों का निर्माण किया और पृथ्वी-सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर प्राप्त किए। परन्तु भू-विज्ञान के आधुनिक स्वरूप और सिद्धांतों का विकास प्रारम्भ हुए अभी थोड़ा ही समय व्यतीत हुआ है। पृथ्वी-सम्बन्धी समस्त बातों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए इसी विज्ञान की सहायता ली जाती है। आधुनिक विज्ञान के जन्म और विकास के साथ-ही-साथ इस शास्त्र का भी विकास हुआ है, और इसका महत्व भी बढ़ता जा रहा है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भू-विज्ञान को अन्य विज्ञानों से तो सहायता मिली ही है, परन्तु सबसे बड़ी सहायता उसे मिली वस्तुतः खानों की खुदाई से। जिस प्रकार खानों की खुदाई से भू-विज्ञान को सहायता पहुंची है, उसी प्रकार भू-विज्ञान ने भी मनुष्य को सहायता पहुँचाई है। मनुष्य ने इस विज्ञान की बदौलत इस 'रत्नगर्भा' पृथ्वी से जो सम्पत्ति प्राप्त की है, वह अतुल और अनमोल है। आधुनिक विज्ञान को भी भू-विज्ञान ने यथेष्ट सहायता पहुँचाई है। सभ्यता के विकास में तो उसका प्रधान हाथ रहा है, क्योंकि हमारी आज की सभ्यता लोहा, कोयला आदि खनिज पदार्थों तथा धातुओं पर किस प्रकार निर्भर है, यह सब कोई भली भाँति जानते हैं। हमारे पैरों के नीचे पृथ्वी के भीतर क्या है, इसी का उत्तर खोजने की धुन में मनुष्य ने इस अपार धनराशि को पाया है। यदि यह कहा जाय कि मानवीय सभ्यता का जन्म हमारी पृथ्वी-सम्बन्धी जिज्ञासा तथा भू-विज्ञान के जन्म और विकास के साथ-ही-साथ हुआ तो असंगत न होगा। यद्यपि मनुष्य द्वारा पृथ्वी-सम्बन्धी छानबीन अति प्राचीन काल से ही आरम्भ हो चुकी थी, तथापि उसका पृथ्वी-संबंधी ज्ञान आज भी थोड़ी-सी गहराई तक ही सीमित है। गहरा-से-गहरा प्रवेश जो मनुष्य पृथ्वी के गर्भ में कर पाया है, दो मील से अधिक नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य का ज्ञान पृथ्वी की नगण्य गहराई तक ही सीमित है। वह आज भी प्रत्यक्ष यह नहीं देख पाया है कि पृथ्वी के भीतर इस गहराई के बाद क्या है? हाँ, उसने इस गहराई तक पहुँचने और वहाँ कार्य करने के जो प्रयत्न किए हैं, उनसे उसे यह ज्ञान अवश्य हो गया है कि पृथ्वी का चिप्पड़ किस पदार्थ का बना है। गहराई में जाने पर इस पदार्थ में किस प्रकार परिवर्तन होता जाता है, यह भी उसने सीखा और इसी आधार पर पृथ्वी के गर्भ में क्या हो सकता है, इसकी कल्पना उसने की है।

धरातल की झाँकी

आधुनिक वैज्ञानिकों के मतानुसार पृथ्वी का पिण्ड ७,९०० मील व्यास के एक विशाल गोले के रूप में है, जिसके नीचे और ऊपर के सिरे चपटे हैं। इस पृथ्वी-पिण्ड के चारों ओर वायुमण्डल का लगभग २०० मील गहरा पर्त चढ़ा हुआ है। पृथ्वी का क्षेत्रफल लगभग उन्नीस करोड़ सत्तर लाख वर्ग-मील है। इसका ७१ प्रतिशत भाग महासागर, समुद्र आदि के रूप में जलमग्न है। शेष भाग स्थलभाग है। धरातल का स्थलभाग कई प्रकार के पदार्थों से मिलकर बना है। इन पदार्थों में से कुछ तो सर्वत्र पाए जाते हैं और कुछ किसी विशेष स्थान पर ही मिलते हैं। मुख्यतः तीन प्रकार के पदार्थ हैं, जो धरातल को बनाते हैं। एक तो वे, जो पर्वत-श्रेणियों में पाए जाते

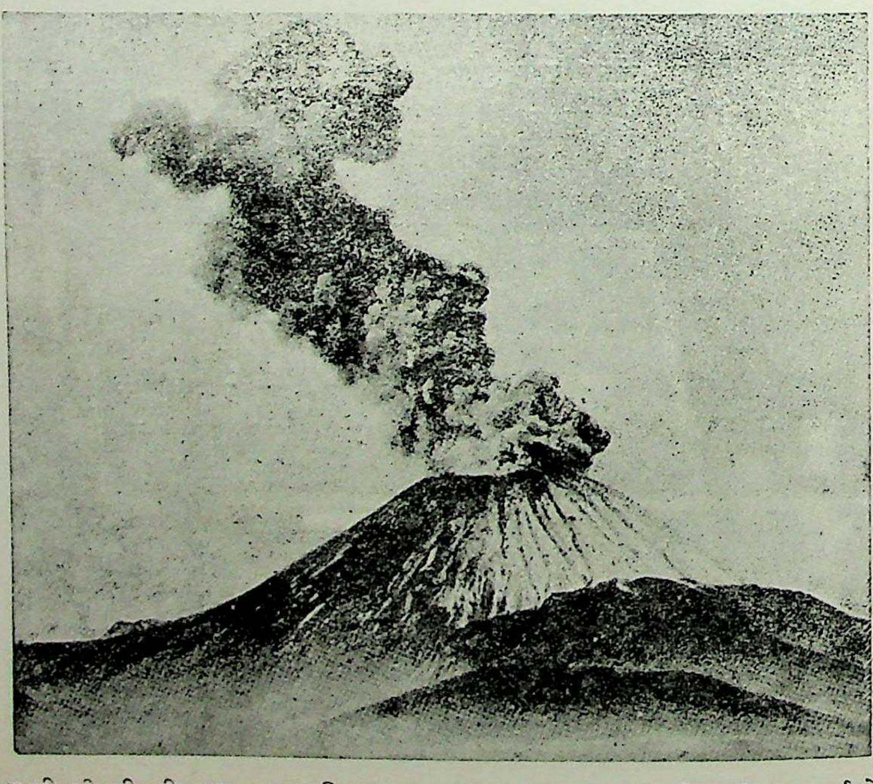

पृथ्वी की भीतरी अवस्था का परिचायक एक जाग्रत ज्वालामुखी। ऐसे अग्निमुख पर्वतों ने ही वैज्ञानिकों के मन में यह कल्पना जगाई कि भीतर से पृथ्वी एक तप्त पिंड है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

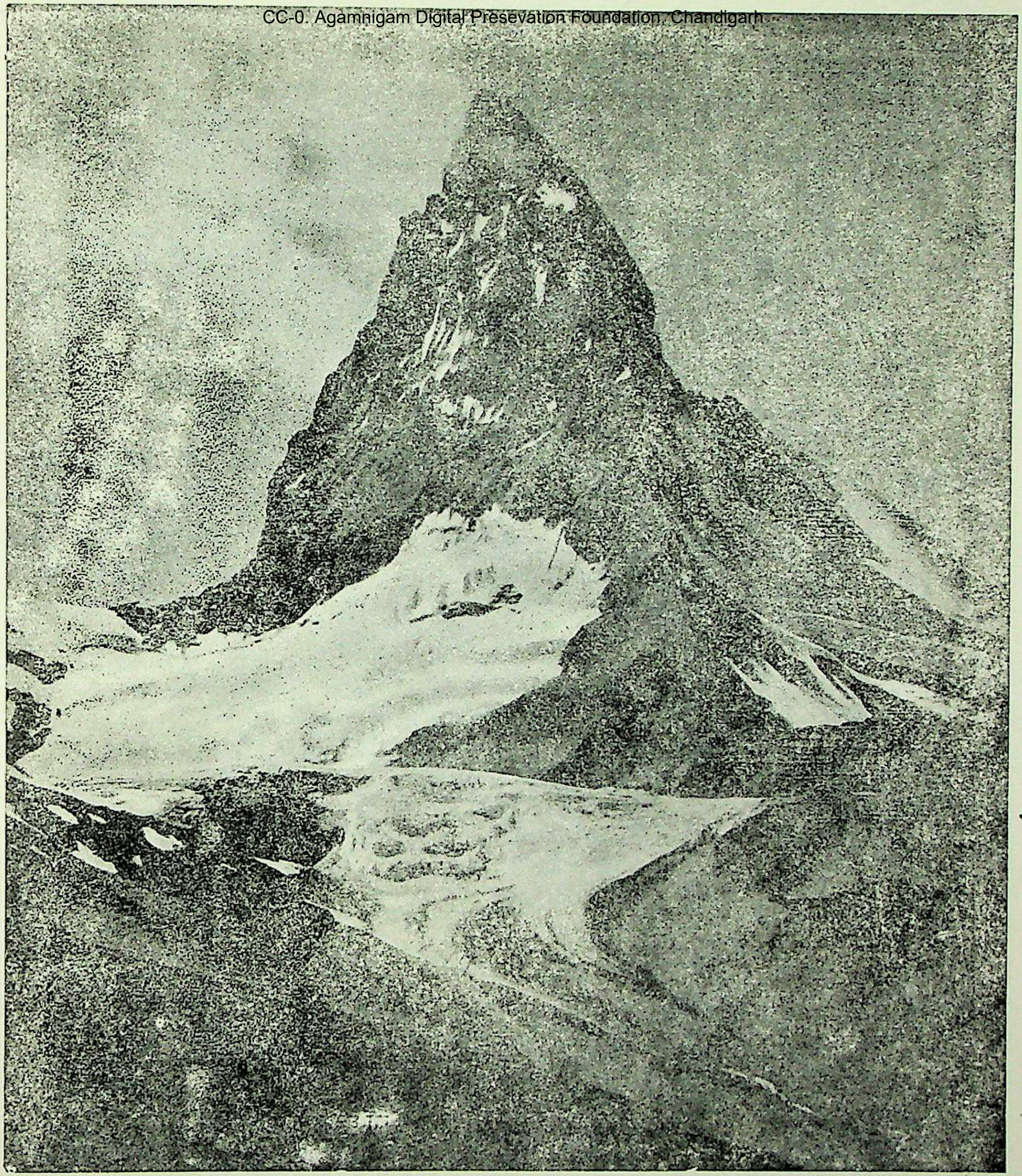

धरातल की शोभा में चार चाँद लगा देनेवाला एक उत्तुङ्ग शैल-शिखर। यह आल्प्स-पर्वतमाला के 'मेटरहार्न' नामक प्रख्यात शिखर का चित्र है। कहना अनावश्यक है कि यदि पृथ्वी इन गिरिशृंखलाओं और उनके भव्य शिखरों से अलंकृत न होती, तो उसका सौंदर्य शायद ही इतना आकर्षक होता !

हैं। हिमालय आदि पर्वतों की चट्टान परतीले शिलाखण्डों की बनी हैं। इन शिलाओं की पर्तों पर कहीं-कहीं ऐसे चिह्न पाए जाते हैं, जिन्हें देखकर अनुमान होता है कि ये प्रस्तरखण्ड किसी समय जल के भीतर रहे होंगे। ये शिलाखण्ड मिट्टी तथा बजरी-जैसे पदार्थ के बने हैं और गरमी के दबाव अथवा अन्य किसी कारण से जमकर कठोर हो गए

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हैं। वे पदार्थ, जो इन्हें बनाने में लगाए गए हैं, वही हैं जो आग्नेय चट्टानों के रूप में कहीं-कहीं पाए जाते हैं। दक्षिण भारत का पठार इसी प्रकार की चट्टानों से बना है। इन चट्टानों को देखने से यह प्रतीत होता है कि किसी समय ये शिलाएँ द्रव पदार्थ के रूप में थीं। कालान्तर में वे जमकर कठोर हो गईं। तीसरे प्रकार के पदार्थ मिट्टी, बालू, कंकड़ आदि हैं, जो लगभग सारे धरातल पर बिछे पाए जाते हैं। इस सामग्री से निर्मित होने के कारण ही पृथ्वी अपनी वर्त्तमान अद्भुत वेशभूषा से अलंकृत हो गई है।

ही मिट्टी निकलती है और कहीं पर कोयला तथा लोहा-जैसा खनिज, स्फटिक की शिलाएँ, गन्धक-मिश्रित जल और मिट्टी का तेल आदि द्रव पदार्थ मिलते हैं।

पृथ्वी के धरातल पर भी विचित्र दृश्य देखने में आते हैं। कहीं तो हिमालय-जैसी गगनचुम्बी पर्वत-श्रेणियाँ हैं, और कहीं गंगा-जमुना के मैदान के सदृश समतल भाग हैं! कहीं सहारा-जैसा मरुस्थल है, तो कहीं दक्षिण भारत-सी कठोर भूमि फैली है। कभी भूतल से किसी स्थान पर गरम पानी की धाराएँ बह निकलती हैं, तो कभी हरा-भरा मैदान मरुभूमि

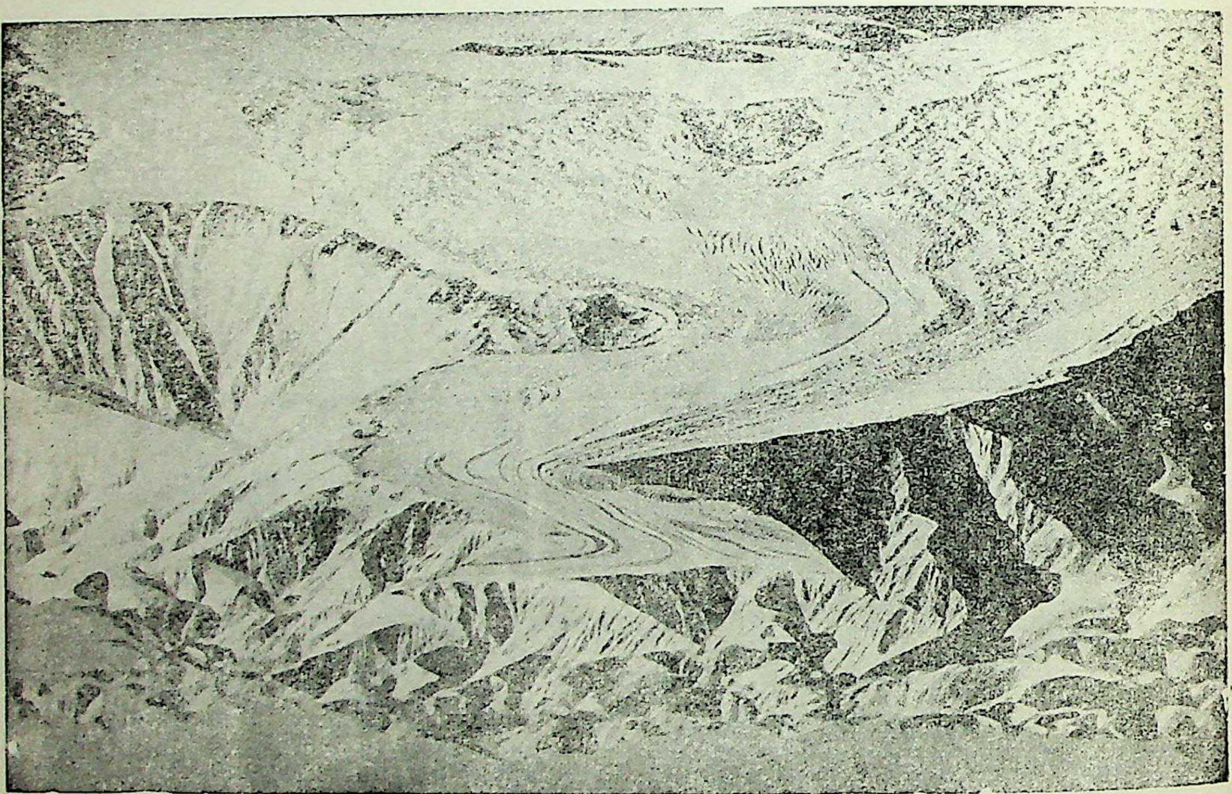

प्रकृति द्वारा धरातल के अनवरत रूप-निर्माणसंबंधी अनुष्ठान की एक भव्य झाँकी। यह सोचना गलत होगा कि पृथ्वी का जो कुछ रूप बनना या बिगड़ना था वह भूतकाल ही में हो चुका। दरअसल आज भी उसके निर्माण एवं विध्वंस का क्रम निरन्तर जारी है, जिसकी प्रत्यक्ष झाँकियाँ हमें यहाँ-वहाँ नित्य ही देखने को मिलती हैं। प्रस्तुत चित्र में अलास्का के एक महान् ग्लेशियर या हिमानी का भव्य दृश्य है! जैसा कि आगे चलकर आपको ज्ञात होगा, हिमशृंखलाओं से उद्भूत होकर धीरे-धीरे सरकती रहनेवाली इन हिम-नदियों का धरातल के रूपनिर्माण में गहरा हाथ रहा है।

धरती को खोदने से भी हमें विचित्र प्रकार के अनुभव होते हैं। कहीं तो चट्टानें इतनी कठोर हैं कि उन्हें साधारण औजारों की मदद से खोदना असम्भव हो जाता है। उन्हें प्रायः विस्फोटक पदार्थों द्वारा तोड़कर खोदना पड़ता है। कहीं पर चट्टानें बहुत नरम भी हैं। कहीं मीलों की गहराई तक पानी का पता नहीं और कहीं पर थोड़ा खोदते ही जल निकलने लगता है। कुछ भागों में खोदने पर केवल मिट्टी-

में परिणत होते देखा जाता है। कभी विशालकाय भूमिखण्ड समुद्र के गर्भ में विलीन हो जाते हैं, तो कभी समुद्र से निकलकर धराखण्ड पर्वतों का रूप धारण कर लेते हैं। कभी ज्वालामुखी पर्वतों के आग्नेय उद्गार से सारी पृथ्वी काँप उठती है, तो कभी भूचाल मनुष्य-निर्मित नगरों को तहस-नहस कर देते हैं। कहीं पर्वत-श्रेणियाँ ऊपर उठती हैं, तो कहीं नदियों द्वारा कट-कटकर वे मिट्टी में मिलती जाती हैं। इसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

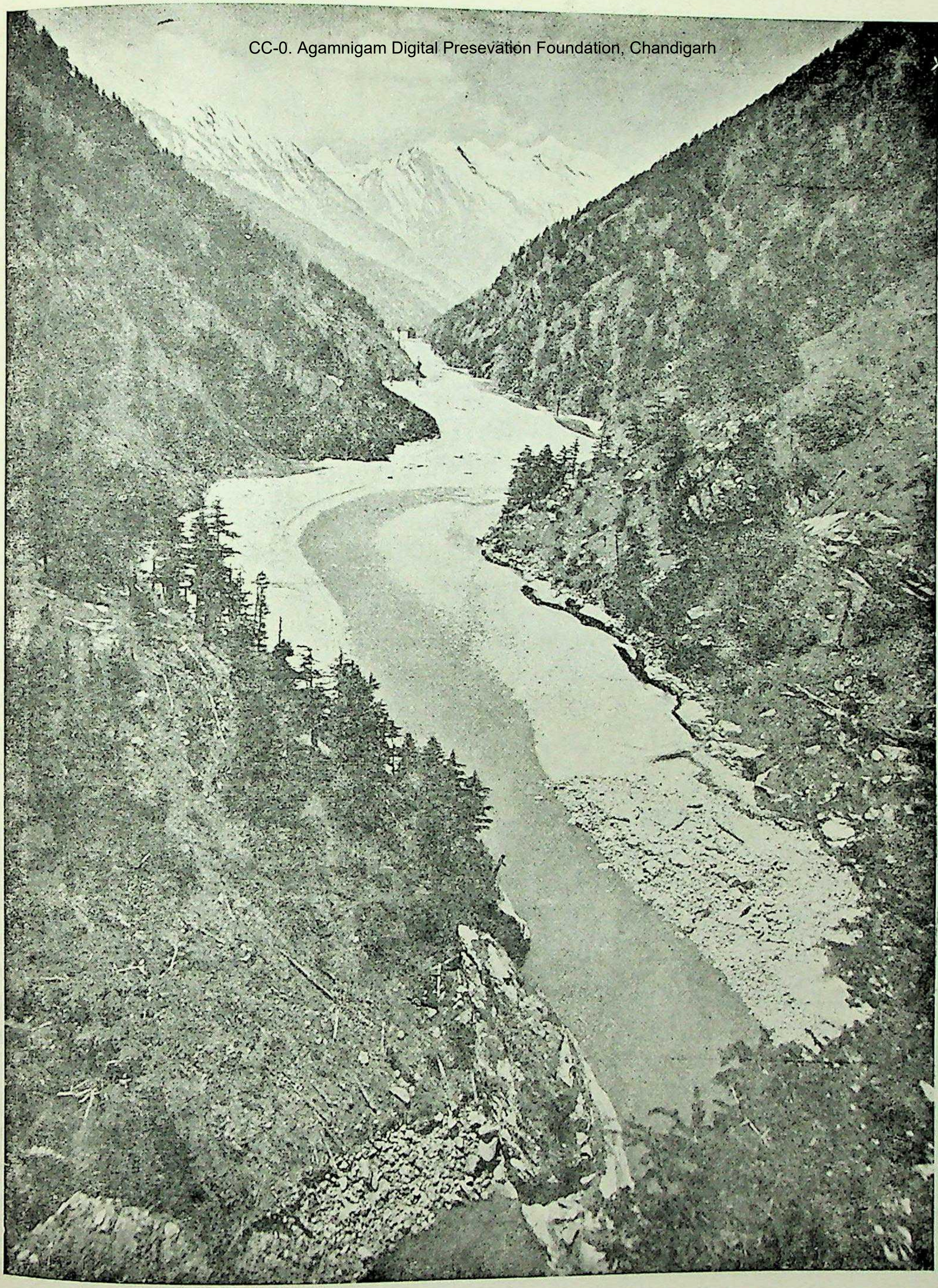

गिरि-पृष्ठ को भेदकर दौड़ती चली जा रही एक महान् जलधारा का दृश्य। जिस प्रकार पर्वत हमारी इस क्रीड़ाभूमि के लिए गौरव और भव्यता के प्रतीक हैं, उसी तरह नदियाँ मानो उसकी प्राणधारा-सी हैं। प्रस्तुत चित्र में गिरिराज हिमालय के हिमसदन से निकलकर मैदानों की ओर बढ़ती हुई पुण्यसलिला गंगा नदी की मनमोहक झाँकी है।

CC-0. Agamnigam Digital Prese

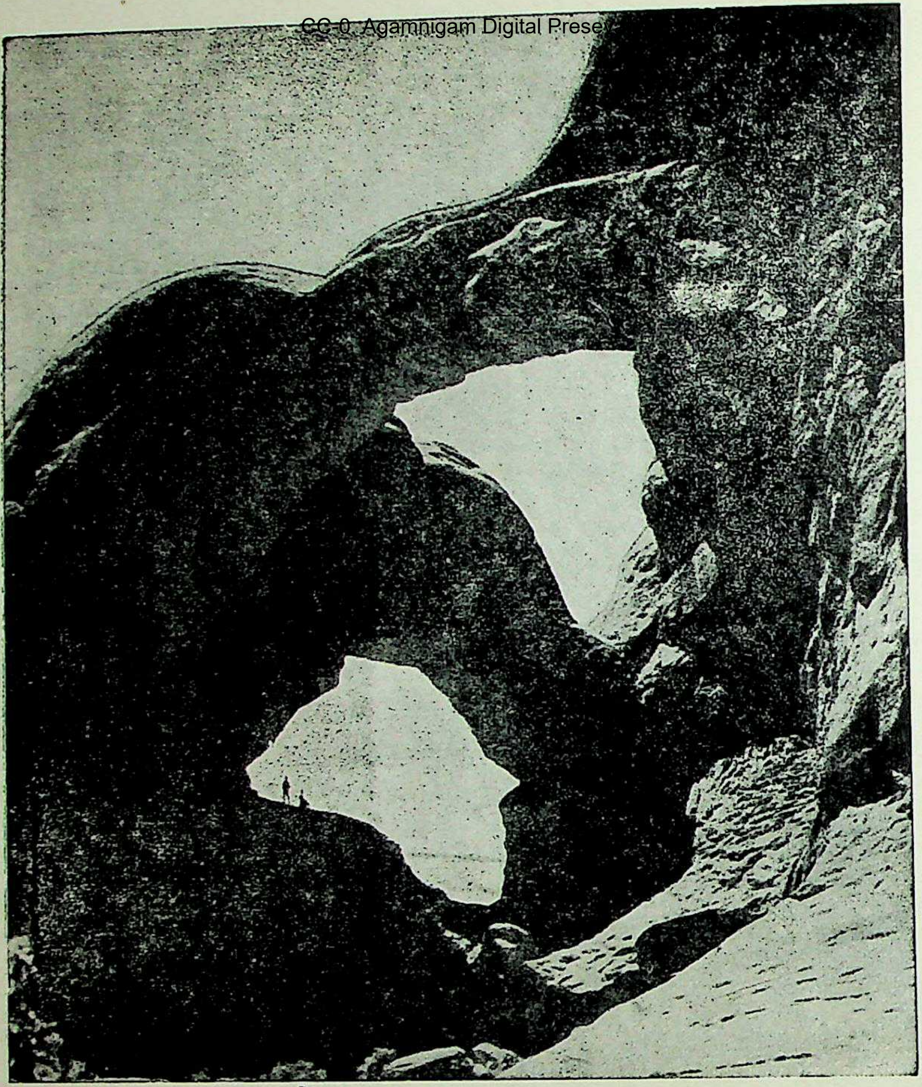

धरती की रामकहानी उसके अनवरत रूप-परिवर्तन की गाथा है। हमें पृथ्वी की ऊपरी सतह पर ऐसे अनेक चिन्ह देखने को मिलते हैं, जो प्रकृति द्वारा उसके निरन्तर रूप-परिवर्तन की गाथा सुनाते हैं। शिलाखंडों के क्षय से निर्मित इन प्राकृतिक सेतुओं पर गौर कीजिए।

तरह कहीं तो नदियां गहरी घाटियों में बहती हैं, और कहीं वे मैदानों में धीरे-धीरे सरकते हुए भी देखी जाती हैं।

पृथ्वी का निरन्तर रूप-परिवर्त्तन हो रहा है

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकृति की लीलाओं द्वारा पृथ्वी का रूप निरन्तर बदलता रहता है। कितने युगों से पृथ्वी का रूप बदलता आया है और उसका प्रारम्भिक रूप कैसा था, यह किसी ने नहीं देखा। आज जो शक्तियाँ उसके रूप को बनाती-बिगाड़ती हैं, वे भी आदि-युग में इसी प्रकार कार्यशील थीं अथवा नहीं, इसका भी हमें पता नहीं है। आदि मानव ने पृथ्वी का जो रूप देखा था, वह कैसा था, इसका भी हमें कुछ ज्ञान नहीं है। इन्हीं बातों को जानने का प्रयत्न भू-विज्ञान की सहायता से किया जाता है। जिस प्रकार मनुष्य अपना सामाजिक तथा राजनीतिक इतिहास जानने के लिए मानवीय सभ्यता के चिह्नों को एकत्रित करता है और उनका तात्पर्य समझने की चेष्टा करता है, उसी प्रकार भू-विज्ञानवेत्ता पृथ्वी के इतिहास को जानने के लिए उन साधनों का आश्रय लेता है, जो प्रकृति ने उसके लिए पृथ्वी पर अंकित कर रक्खे हैं। प्रकृति ने पृथ्वी के प्रत्येक अंग पर उसका इतिहास स्वयं उसी से लिखाया है। नदीतट के बालू के कणों से लेकर विशाल पर्वतश्रेणियां तक अपनी कहानी सुनाने को तैयार हैं। गरज-गरजकर समुद्र अपनी गहराई और भीतर बननेवाले पर्वतों के जन्म का हाल सुनाने को तैयार है। ज्वालामुखी का उद्‌गार बताना चाहता है कि भूगर्भ में क्या छिपा है। भूचाल पृथ्वी की न जाने किस आन्तरिक उथल-पुथल का परिचय देता है। इस प्रकार इनमें से प्रत्येक पृथ्वी की आत्मकथा का एक-एक अध्याय छिपाये हुए हैं। जो कोई भी इनके पास पहुँचता है, उसी को वे अपने पृष्ठ खोलकर दिखाने के लिए तत्पर हैं। इस महान् आत्मकथा को पढ़ने के लिए आवश्यकता है कि हम उसके प्रत्येक अंग को ध्यानपूर्वक देखें और फिर उसका मनन करें तथा आज जो घटनाएँ हो रही हैं, उन्हीं की सहायता से उसके इतिहास की खोज करें। वर्तमान ही के पास भूतकाल की कोठरी की कुंजी है—इसी सिद्धान्त पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भू-विज्ञान का अध्ययन निर्भर है। इसीलिए भू-विज्ञान एक यथार्थवादी विद्या है।

पृथ्वी के विकास के इतिहास का अध्ययन मनुष्य ने आदि युग से ही आरम्भ किया था। यद्यपि हमारी आज की धारणाएं हमारे पूर्वजों के विचारों से सर्वथा भिन्न हैं तथापि हमें भी यह कहने का साहस नहीं हो सकता कि हमारी ही बात सबसे अन्तिम है। मनुष्य का ज्ञान जैसे-जैसे बढ़ता जाता है, उसका मत भी बदलता जाता है। पृथ्वी के सम्बन्ध में मनुष्य के विचार समयानुकूल किस प्रकार बदलते रहे हैं, इसका इतिहास बहुत ही मनोरंजक है।

पृथ्वी के संबंध में प्रचीन धारणाएँ

सभ्यता के आदियुग में, जब लोगों का विचरण पृथ्वी के थोड़े-से भाग तक ही सीमित था, उनका विश्वास था कि पृथ्वी चौरस है और इसकी गहराई अनन्त है। पृथ्वी की सीमित लम्बाई-चौड़ाई की कल्पना उन लोगों ने नहीं की, परन्तु जब उनके पर्यटन का क्षेत्र बढ़ा और वे समुद्र के किनारे तक पहुँचने लगे, तब पृथ्वी के बारे में उनके विचार बदलने लगे। वे पृथ्वी को समुद्र में तैरनेवाली एक विशालकाय वस्तु समझने लगे। परन्तु अनन्त जलसागर में तैरनेवाली विशालकाय पृथ्वी जब उन्हें तनिक भी हिलती-डुलती सी नहीं प्रतीत हुई, तब उनका विचार हुआ कि पृथ्वी तैरती नहीं है, वरन् अचल है। उन्होंने सोचा कि वह एक वृक्ष की भाँति है, जिसकी जड़ें अनन्त जलराशि के नीचे तक चली गई हैं।

यह विचार भी अधिक काल तक स्थिर न रह सका और उसमें फिर परिवर्तन हुआ। लोगों ने पृथ्वी के आधार की खोज करना आरम्भ किया और यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि पृथ्वी एक बड़ी चौरस छत की भाँति है, जो बारह खम्भों पर स्थिर है। ये खम्भे किस आधार पर टिके हैं, इस सम्बन्ध में वे चुप रहे। परन्तु कुछ लोगों ने यह सिद्धान्त फैलाना आरम्भ किया कि यज्ञ, हवन, बलिदान आदि धार्मिक कृत्यों के बल पर ये खम्भे स्थित हैं। यदि पृथ्वी पर धार्मिक कृत्य बन्द हो जायँ, तो ये खम्भे एक दिन भी स्थिर नहीं रह सकेंगे और पृथ्वी गिरकर पाताल के अनन्त गर्भ में विलीन

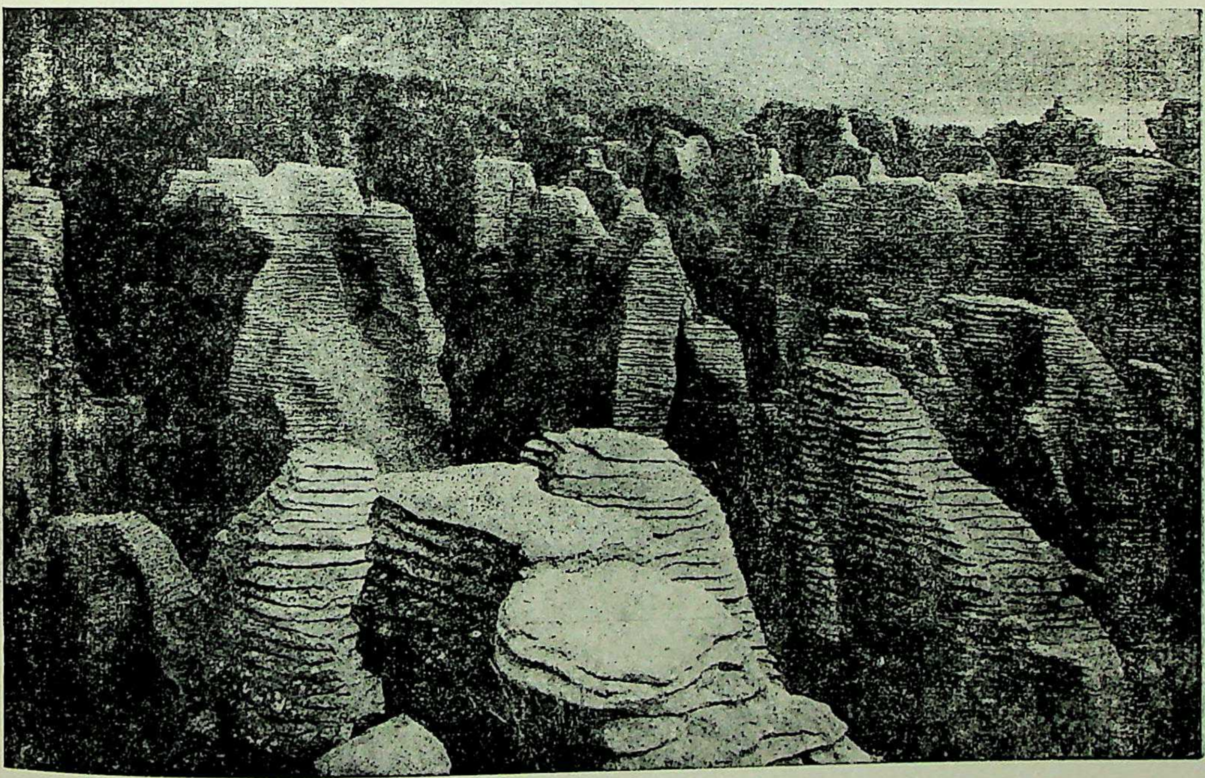

प्रकृति ने पृथ्वी से उसकी आत्मकथा स्वयं अपने ही हाथों अपने कलेवर पर लिखवाई है। यह एक उल्लेखनीय बात है कि शैशवकाल से आज तक के पृथ्वी के विकास की विविध मंजिलों का लेखा-जोखा बहुत कुछ उसके ही अपने संग्रहालय में हमें ढूंढ़ने पर मिल जाता है। इस संग्रहालय का सबसे महत्वपूर्ण अंश एक-दूसरे पर तह पर तह जमी हुई युग-युग की चट्टानों की वे परतें हैं, जो जल, वायु, सूर्यताप आदि शक्तियों की क्रिया-प्रतिक्रिया द्वारा क्षीण होकर कहीं-कहीं अद्भुत रूप-आकार की दिखाई देती हैं। इस चित्र में दिग्दर्शित शिलापर्तों पर ध्यान दीजिये!

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हो जायगी। इसी कल्पना के आधार पर भूकम्प का सिद्धान्त ठहराया गया। अर्थात् जब धार्मिक कृत्यों में कमी हो जाती है तब इन खम्भों की शक्ति क्षीण हो जाती है और फलतः पृथ्वी डगमगा जाती है। कई कैथोलिक ईसाई मतावलम्बी तो अब भी पृथ्वी को चपटी मानते हैं। इसी विश्वास के आधार पर योरप में मध्ययुग में कई ऐसे विद्वानों को जीवित जला दिया गया था, जो पृथ्वी को गोल कहने का साहस करते थे।

भारतवर्ष में पृथ्वी के सम्बन्ध में विभिन्न कालों में विभिन्न मत प्रचलित रहे हैं। हमारे शास्त्रों में पृथ्वी को अचला, अनन्ता, स्थिरा आदि नामों से पुकारा गया है। इससे पृथ्वी की स्थिति और विस्तार का तो ज्ञान होता है, परन्तु उसके आकार और आधार का पता नहीं लगता। कुछ लोगों का सिद्धान्त था कि पृथ्वी गोल छिलके की भाँति है और वह चार हाथियों की पीठ पर अवस्थित है। ये हाथी एक विशाल कच्छप की पीठ पर खड़े हैं। इसी कारण सम्भवतः इसका नाम 'काश्यपी' पड़ा। चीन देश में भी इसी प्रकार का कुछ विश्वास प्रचलित था। तिब्बत के लामा लोग आज भी पृथ्वी को मेढकों की पीठ पर प्रस्थापित मानते हैं।

भागवत पुराण की वाराह अवतार की कथा के प्रसंग में यह कहा गया है कि भगवान् ने पृथ्वी को रसातल से खोज निकाला और जल के ऊपर रख दिया और तब से वह वहीं पर रक्खी हुई है। पृथ्वी के आधार के विषय में कहा जाता है कि वह शेषनाग के फन पर रक्खी हुई है। शेषनाग ब्रह्माजी के आदेश से परोपकारार्थ इस 'चल' पृथ्वी को अपने सिर पर बिना परिश्रम के इस प्रकार धारण किए रहते हैं कि वह तनिक भी हिलती-डुलती नहीं।

आगे चलकर कुछ विद्वानों ने पृथ्वी की अण्डाकार कल्पना की। इस धारणा के अनुसार पृथ्वी आधी समुद्र के भीतर जलमग्न है और शेष पर मनुष्य रहते हैं। आगे चलकर विद्वानों ने अपनी बुद्धि और तर्क के अनुसार पृथ्वी का भिन्न-भिन्न आकार सिद्ध करने की चेष्टा की। किसी ने पृथ्वी को नल के समान, तो किसी ने छः पहलवाली माना। किसी ने पृथ्वी

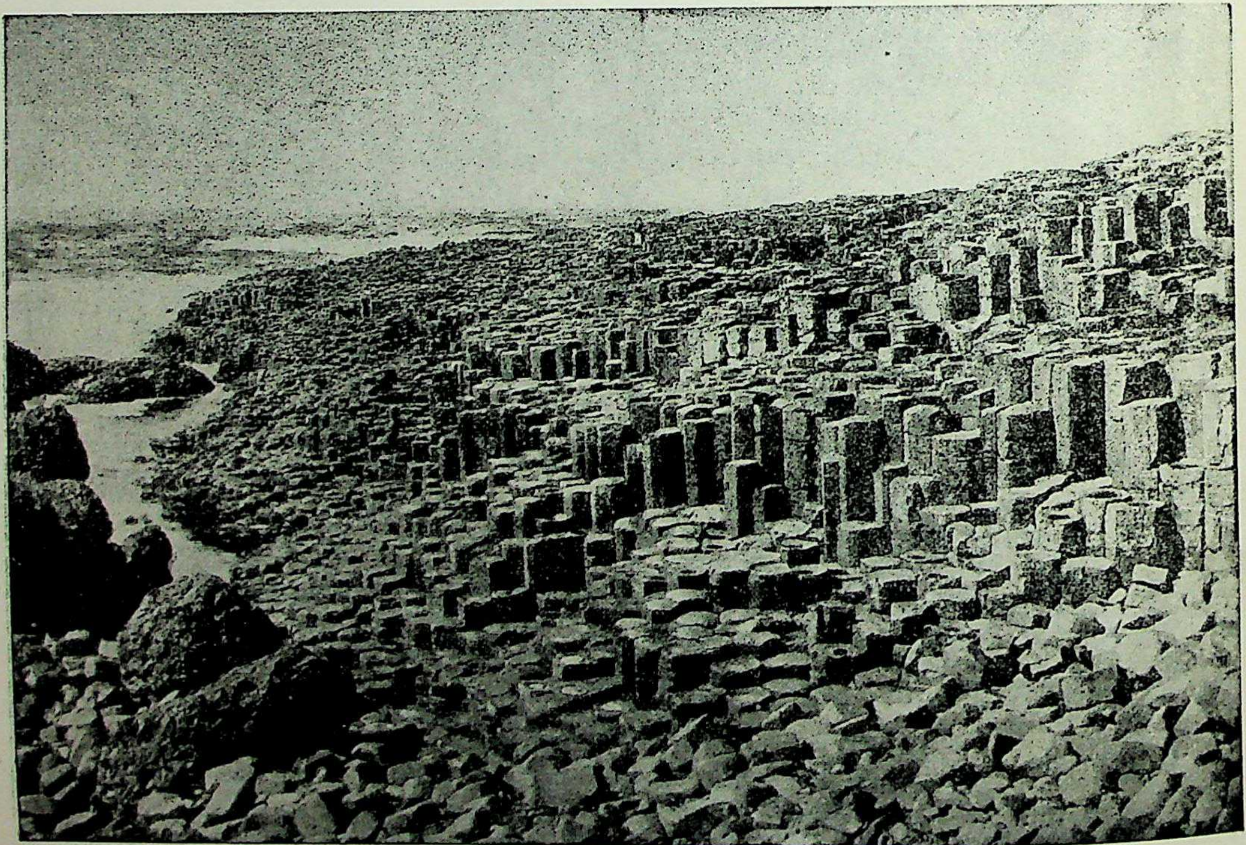

लीजिए, यह है पृथ्वी की अद्भुत आत्मकथा का एक पृष्ठ! इस चित्र में आयर्लैंण्ड के उत्तरी समुद्रतट पर प्रकृति द्वारा रची गई खंभों के टुकड़ों-जैसी कतिपय शिलाओं का अद्भुत दृश्य है। ये शिलाएँ 'बेसाल्ट' के नाम से पुकारी जाती हैं और आज से लाखों-करोड़ों वर्ष पूर्व पिघले हुए पाषाण के एक विशेष रीति से जम जाने से वे बनी थीं, ऐसा माना जाता है! ये ऐसी मालूम देती हैं, मानों पत्थर के किसी विशाल घाट के खण्डहर हों!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

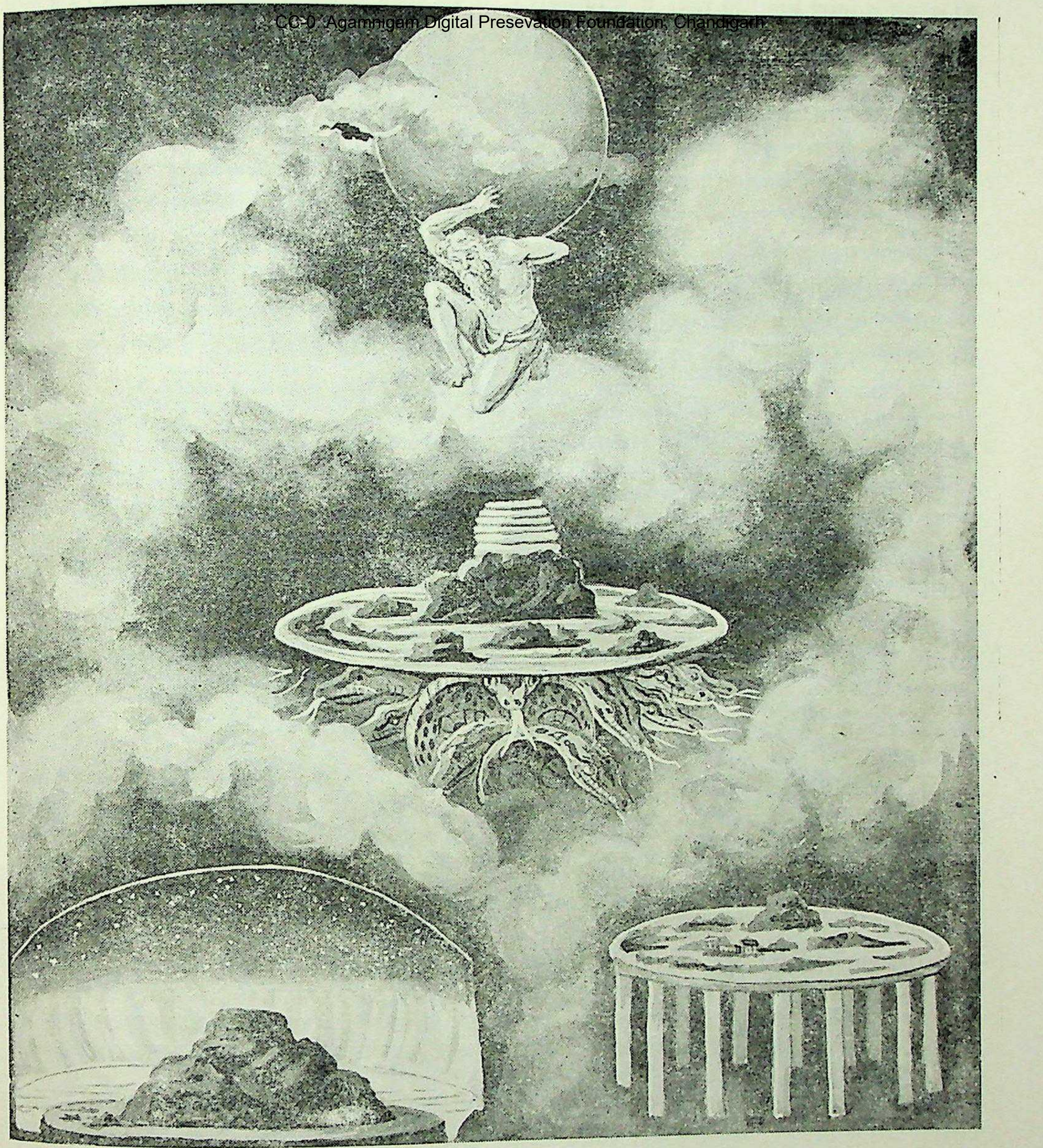

ये हैं पृथ्वी के सम्बन्ध में कुछ प्राचीन धारणाएँ। आरम्भ में मनुष्य के पास आज की तरह पृथ्वी के इस छोर से उस छोर तक जाने के साधन तो थे नहीं कि वह इस सम्बन्ध में प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त कर लेता। अतएव उसने कल्पना का सहारा लिया और फलतः पृथ्वी के आकार और आधार के सम्बन्ध में तरह-तरह की धारणाएँ प्रचलित हो गईं। प्राचीन भारत वासियों का विश्वास था कि पृथ्वी ईश्वर की कला शेषनाग के मस्तक पर टिकी हुई है और उसके बीचोबीच सुमेरु-नामक कई लाख योजन ऊँचा पर्वत है। इस पर्वत के आसपास क्रमशः सात द्वीप और उनको घेरनेवाले सात सागर थाली की तरह वलयाकार फैले हैं। उधर यूनानियों का विश्वास था कि पृथ्वी एक बड़ी चपटी छत की भाँति है, जो बारह खंभों पर टिकी हुई है। ये खंभे 'हरक्यूलीज के खंभे' कहलाते थे। एक मत यह भी था कि शाप के वश एटलस-नामक एक दैत्य पृथ्वी को उठाये हुए है। यहूदियों द्वारा पृथ्वी अण्डाकार विश्व का निचला भाग मानी जाती थी। इस तरह और भी कई मत प्राचीन काल में प्रचलित थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को खरबूजे के समान माना, तो किसी ने ताम्बूलाकार। कोलम्बस तक ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया था कि पृथ्वी शंखाकार है।

भारतीय गणितज्ञ भास्कराचार्य ने बारहवीं शताब्दी में ही यह सिद्ध कर दिया था कि पृथ्वी गोल है और उसमें आकर्षण-शक्ति है। पृथ्वी तथा अन्य ग्रहों की परस्पर आकर्षण-शक्ति के कारण ही सब ग्रह निरन्तर निराधार घूमा करते हैं, इस मत की पुष्टि आधुनिक विद्वानों ने भी की है। आधुनिक मतानुसार पृथ्वी नारंगी के समान गोल है और उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुवों के पास वह चपटी हो गई है। कुछ विद्वानों की गवेषण तथा खोज के परिणामस्वरूप पृथ्वी का एक नवीन आकार

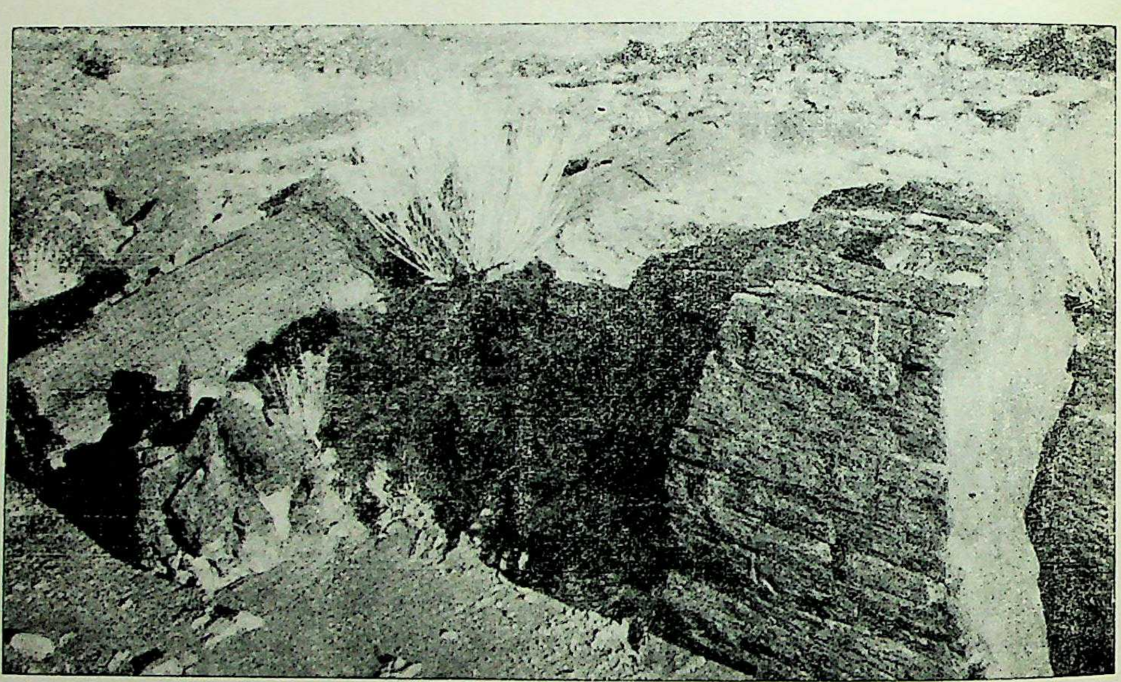

इस प्रकार के प्रस्तरीभूत वृक्षों के तने भू-विज्ञान के महान् आश्चर्यों में से हैं। आप मानें या न मानें पर चित्र में पेड़ के तने जैसी जो आकृतियाँ दिखाई दे रही हैं, वे लकड़ी नहीं बल्कि पत्थर की हैं ? कभी दरअसल ये लकड़ी ही के मोटे लट्ठे थे और सचमुच वृक्ष के तने या धड़ के भाग थे ! पर लाखों-करोड़ों वर्ष पूर्व के किसी विशाल वृक्ष के धड़ के ये अवशेष काल के प्रभाव से प्रस्तरीभूत हो गए हैं, अर्थात् पाषाण बन गए हैं !

माना गया है, जो न पूर्णतया गोल है और न अण्डाकार। इस आकार को 'पृथिव्याकार' कहें तो ठीक है, क्योंकि उसका अपना निराला ही आकार है। इस आकार की कल्पना इस कारण की गई है कि पृथ्वी का कोई भी अक्षांश—यहां तक कि विषुवत् रेखा भी—पूर्ण वृत्त नहीं है।

भूगर्भ का रूप

पृथ्वी के आकार और आधार के विषय में तो लोगों ने भाँति-भाँति की कल्पना की, परन्तु उसके भीतर क्या है, इसके बारे में प्राचीन लोग बहुत कम जान पाए। कुछ लोगों ने पृथ्वी को खोखला कहा और कुछ ने उसे ठोस माना। भूविज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान् मार्शल गार्डनर के मतानुसार पृथ्वी एक खोखला पिण्ड है। इसका छिलका ८०० मील मोटा है। इसके भीतर भी एक सूर्य है, जो इसे गरम रखता है। रासायनिक अरीनिउस का कहना है कि धरती धातु से बना हुआ एक भारी गोला है। इस गोले के भीतर उग्र आँच से उत्तप्त पदार्थ भरा है और इसका गर्भ वायव्य रूप में है। उसकी यह कल्पना ज्वालामुखी पर्वतों के उद्गार के आधार पर अवलम्बित है। उसका कहना है कि पृथ्वी के अत्यन्त गहरे भागों में भार के खिचाव से खिचकर सोना, चाँदी, प्लेटिनम आदि धातुएँ जमा हो गई हैं। प्राचीन ईरानी लोगों के मतानुसार कारूँ अपना खजाना लेकर पृथ्वी में धँस गया है और आज भी धँसता जाता है। वह 'कारूँ का खजाना' यही हो सकता है। इस अतुल धनराशि के चारों ओर वायव्य रूप में लोहे की बहुत बड़ी पर्त है। पृथ्वी का लगभग आधा पिण्ड लोहे का है। वायव्य लोहे के इस अनल-मण्डल का व्यास लगभग छः हजार मील है। इसके ऊपर छः सौ मील मोटा चट्टानों के वायव्य का स्तर है। इसके ऊपर १६० मील तक धधकती आँच से सफेद गले हुए पत्थरों की

पत्त है। इन सबके ऊपर लगभग १०० मील मोटा वह चिप्पड़ है, जिस पर हम लोग रहते हैं। [illegible] सिद्धान्त को आधुनिक वैज्ञानिक भी अपने मत का आधार मानते हैं।

धरातल का आकार-प्रकार

पृथ्वी-पिण्ड से लगभग २०० मील तक वायुमण्डल घिरा हुआ है। पृथ्वी के सम्पूर्ण ऊपरी पृष्ठ का क्षेत्रफल लगभग १९ करोड़ ७० लाख वर्गमील है। इसमें से लगभग १४ करोड़ वर्ग-मील महासागरों, समुद्रों और झीलों से व्याप्त है। शेष भाग में यूरेशिया, अफ्रीका, अमेरिका आदि महाद्वीप फैले हैं। प्रशान्त सागर की औसत गहराई लगभग १४,००० फीट है। धरातल के किनारों का भाग सागर में शनैः-शनैः डूबता हुआ अचानक अतुल गहराई में विलुप्त हो जाता है। सागर-जल की मात्रा इतनी प्रचुर है कि यदि पृथ्वी के ऊँचे-नीचे भाग सब बराबर कर दिए जायें, तो सम्पूर्ण धरातल जलमग्न हो जायगा और लगभग ८,६०० फीट गहरे जल की वेष्ठन (पर्त) उस पर चढ़ जायगा।

सागर की सबसे अधिक गहराई ३५,००० फीट से भी अधिक है। उधर भूतल के सर्वोच्च शिखर गौरी-शंकर (एवरेस्ट) की ऊँचाई २९,००० फीट से कुछ अधिक है। इस प्रकार हमारे चिप्पड़ के ऊपरी पृष्ठ पर कुल १२ मील के लगभग ऊँचाई-निचाई है। पृथ्वी के ७,९०० मील के व्यास की तुलना में १२ मील की ऊँचाई-निचाई नगण्य-सी है। इस प्रकार आधुनिक मनुष्य का ज्ञान पृथ्वी के ऊपरी चिप्पड़ के भी एक छोटे से अंश तक ही सीमित है। पृथ्वी के चिप्पड़ की अपेक्षा मनुष्य को समुद्र के भीतर का ज्ञान कहीं अधिक है, कारण समुद्र के भीतर मनुष्य आसानी से कुछ दूर तक जा सका है। पर धरातल की भाँति समुद्रतल भी सम-तल नहीं है। कहते हैं, धरातल की भाँति समुद्रतल पर भी नीची-ऊँची भूमि, घाटियाँ और पहाड़ियाँ-सी हैं।

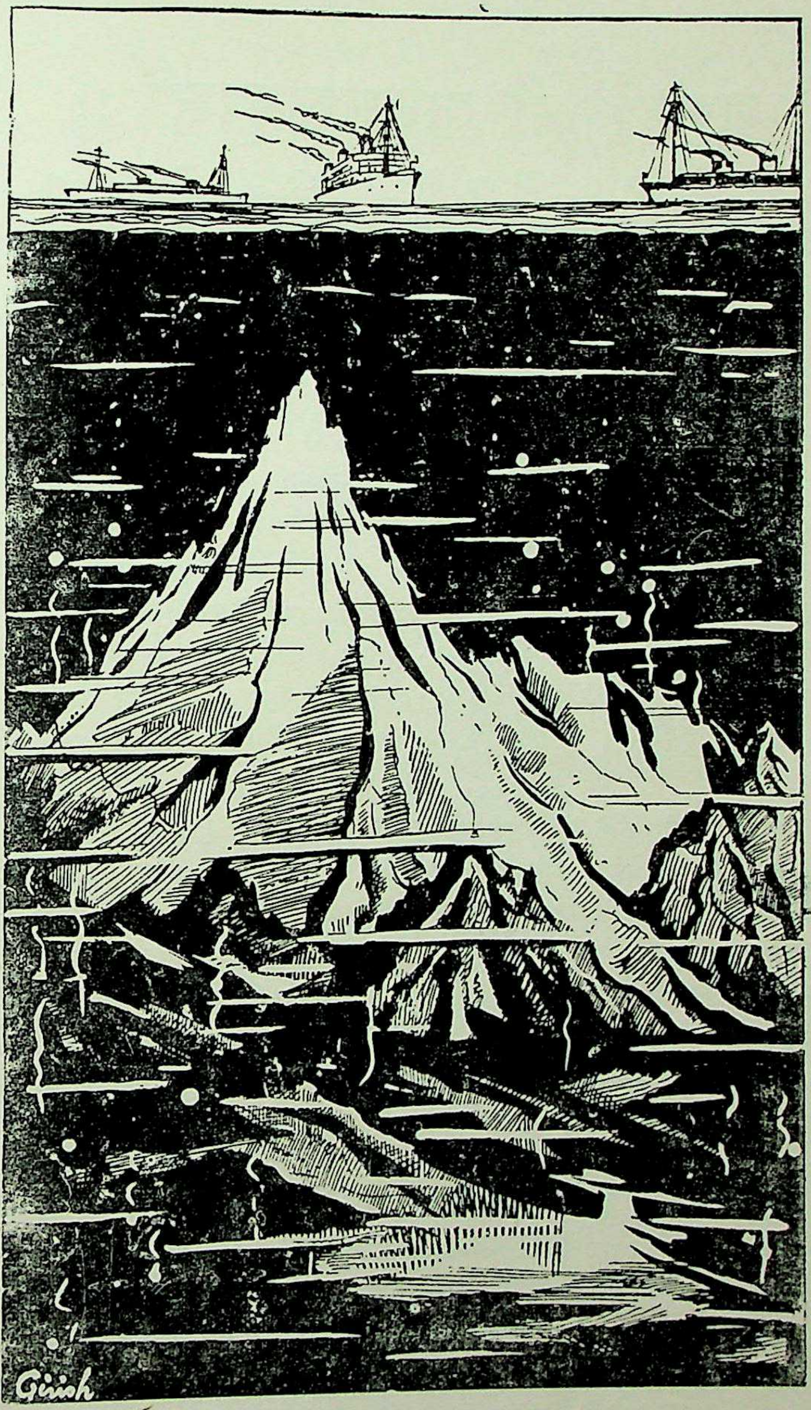

प्रस्तुत मानचित्र में समुद्र की गहराई का एक अनुमान प्रस्तुत करते हुए यह दिखाया गया है कि सागर इतना गहरा है कि यदि संसार का सबसे ऊँचा पर्वत "गौरीशंकर" (एवरेस्ट) भी उसके सबसे गहरे दह में डुबोया जाय तो वह उसमें पूरा समा जायगा और शायद ऊपर मील डेढ़ मील गहरा पानी और बचा रह जायगा!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धरती की जन्मकहानी ::
पृथ्वी कहाँ से और कैसे ?

पृथ्वी के संबंध में हमारी अब तक क्या-क्या धारणाएँ रही हैं और आज का उसका स्वरूप कैसा है, इसका सामान्य रूप से पिछले लेख में हम विवेचन कर चुके हैं। इस प्रकरण में हमें देखना है कि पृथ्वी कहाँ से और कैसे आई, और उसका शैशवकाल कैसा रहा ?

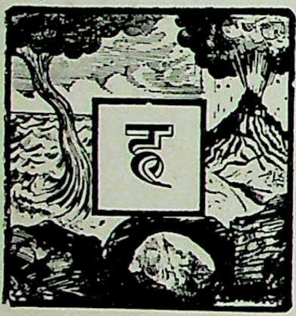

हमारी पृथ्वी सौर मण्डल का एक अंश है और सौर मण्डल इस निखिल ब्रह्माण्ड में विचरनेवाले करोड़ों नक्षत्र-मण्डलों में से एक है। अनन्त ब्रह्माण्ड में हमारे सौर मण्डल के सूर्य-सरीखे और उससे और कई गुना बड़े असंख्य नक्षत्र तो हैं ही, साथ ही पुच्छल तारे, सर्पिल नीहारिकाओं की दूर तक पसरी हुई कुण्डलियाँ तथा बड़े-बड़े उल्कापिण्ड भी निरन्तर उसमें घूमा करते हैं। पृथ्वी सौर मण्डल का ही एक भाग है, इसी कारण वैज्ञानिकों का विश्वास है कि पृथ्वी का जन्म भी सौर मण्डल के जन्म के साथ हुआ। ज्योतिष या खगोलविद्या के अध्ययन करनेवालों का विचार है कि सौर मण्डल का जन्म एक ऐसे वायव्य पिण्ड से हुआ, जो किसी कारण से सूर्य तथा सूर्य से भी बड़े एक विशाल नक्षत्र के परस्पर बहुत अधिक निकट आ जाने से उत्पन्न हो गया था। किस प्रकार इस महापिण्ड से सौर मण्डल की सृष्टि हुई, इसके विषय में वैज्ञानिकों में मतभेद हैं। लोगों ने कल्पना और तर्क के बल पर अनेकों सिद्धान्त बनाए, परन्तु अभी तक इस संबंध में कोई निश्चित् सिद्धान्त ठहराया नहीं जा सका है। इधर भूगर्भ-विज्ञान द्वारा भी पृथ्वी के विभिन्न स्तरों की बनावट, खानों के भीतर के अनुभव, ज्वालामुखी पर्वतों के विस्फोट, आदि के अध्ययन द्वारा बहुत-से वैज्ञानिकों ने इस पहेली को सुलझाने की चेष्टा की है। परन्तु आधुनिक विद्वान् सहज ही किसी भी सिद्धान्त को ग्रहण करने के लिए तैयार नहीं हैं।

अठारहवीं शताब्दी में लाप्लास नामक एक फ्रेन्च वैज्ञानिक ने यह सिद्धान्त उपस्थित किया कि सौर मण्डल के जन्म से पहले उसके स्थान पर धधकते वायव्य पदार्थ का एक महापिण्ड आकाशमण्डल में अधिक वेग से घूमता हुआ चक्कर लगाता था। यह पिण्ड उस समय इतना लंबा-चौड़ा था कि वर्तमान सौर मण्डल के अत्यन्त दूरवाले ग्रह नेपच्यून के परिक्रमा-क्षेत्र से भी बाहर तक पसरा हुआ था। वेग से घूमने के कारण इसके ऊपरी भाग की उष्णता आकाश-मण्डल में फैल गई और वह ठंडा होने लगा। ठंडा होने के कारण उसका बाहरी वायव्य पदार्थ घनीभूत होने लगा, परन्तु भीतर का पदार्थ अभी उत्तप्त वायव्य अवस्था ही में था। ऊपर का घनीभूत भाग, घूमने की गति में केन्द्रीय भाग का साथ न दे सकने के कारण, उससे अलग हो गया और उसके बाहर तेजी से उसकी परिक्रमा करने लगा।

कालान्तर में वह वलयाकार कुण्डली एक पिण्ड के रूप में सिमट गई और केन्द्रीय पिण्ड के चारों ओर पूर्वावस्था में परिक्रमा लगाने लगी। इस प्रकार उस महापिण्ड से एक-एक करके नौ पिण्ड अलग हो गए, जो सौर मण्डल के ग्रहों के रूप में—जिसमें हमारी पृथ्वी भी एक है—आज भी केन्द्रीय पिण्ड सूर्य के चारों ओर उसी भाँति परिक्रमा लगा रहे हैं। सूर्य तो अभी तक उत्तप्तावस्था में है, किन्तु उसके आसपास चक्कर लगानेवाले ये छोटे पिण्ड या ग्रह अब बहुत ठंडे हो गए हैं।

इस मत के अनुसार पृथ्वी एक वायव्य पिण्ड से घनीभूत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होकर, तरलावस्था को पार करके, धीरे-धीरे कठोर हुई है। अब भी यह पूर्णतया ठंडी नहीं हो पाई है, केवल इसके ऊपर का पिण्ड, जिस पर हम लोग रहते हैं, जमकर कठोर हो गया है। इसके भीतर अभी तक लावा की भाँति पिघला हुआ पदार्थ भरा है, जो धीरे-धीरे सिकुड़ता हुआ ठंडा हो रहा है। इस मत के अनुसार पृथ्वी का पिण्ड आरम्भ में इतना छोटा न था जितना कि आज है, वरन् इससे कई गुना बड़ा--लगभग सूर्य जैसा ही—था।

उल्काओं की उत्पत्ति

लोगों ने बहुत दिनों तक ऊपर के सिद्धान्त पर विश्वास किया और कुछ लोग अब भी इसको ही ठीक मानते हैं। परन्तु थोड़े दिनों के बाद वैज्ञानिकों ने एक नया सिद्धान्त निकाला। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन सर नार्मन लाकयर नामक वैज्ञानिक ने किया। इस सिद्धान्त का मूल तत्त्व यह है कि इस निखिल ब्रह्माण्ड में जितने भी पिण्ड हैं, वे सब उल्काओं के बने हुए हैं। अर्थात् आकाश-मण्डल में दिखाई पड़नेवाले ग्रह, नक्षत्र, सूर्य, धूमकेतु और नीहारिकाएँ आदि सब पिण्ड उसी प्रकार के उल्कापिण्डों तथा उल्काकणों की धूलि से मिलकर बने हैं, जो नित्य-प्रति हमारी पृथ्वी पर टूटनेवाले तारों के रूप में गिरते रहते हैं। इस मत के अनुसार सौर मण्डल भी उल्का और नन्हें उल्काकणों के समूह से मिलकर बने हुए एक विशाल पिण्ड से पैदा हुआ है, वायव्य पिण्ड से नहीं।

सौर परिवार की उत्पत्ति-संबंधी सिद्धांतों के दो महान् प्रतिपादक। (ऊपर) लाप्लास; (दाहिनी ओर) सर जेम्स जीन्स

इन उल्काओं की उत्पत्ति के विषय में वैज्ञानिक यह विश्वास करते हैं कि आकाशमण्डल के कुछ पिण्डों के परस्पर टकरा जाने से वे छिन्न-भिन्न होकर ब्रह्माण्ड में इधर-उधर छिटक जाते हैं। छिटके हुए ये पिण्ड किसी बड़े पिण्ड के आकर्षण से उसके अधिक समीप पहुँचकर उसी में मिल जाते हैं। हमारी पृथ्वी के समीप भी जो पिण्ड आ जाते हैं, वे पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से इतने वेग से इसमें आ मिलते हैं कि मालूम होता है कहीं से टूटकर गिर रहे हैं।

इस सिद्धान्त के अनुसार हमारे सौर मण्डल की उत्पत्ति उल्कापिण्डों से बनी एक नीहारिका से हुई है। दो महापिण्डों के परस्पर टकरा जाने से इतनी भीषण ज्वाला उत्पन्न हुई होगी कि इन महापिण्डों के छिन्न-भिन्न अंशों में से अधिकांश उसमें गलकर तरल हो गए होंगे। कुछ वायव्य रूप में भी परिणत हो गए होंगे और बादल की भाँति छा गए होंगे। परन्तु आकर्षण-शक्ति के वश तरल और वायव्य पदार्थ बड़े-बड़े पिण्डों से अलग नहीं हो सके होंगे, वरन् वायव्य पदार्थ ठोस और पिघले हुए पिण्डों को पूर्णतया मण्डित किए रहा होगा और इस प्रकार पूरा पिण्ड वायव्य के महापिण्ड के रूप में दिखाई पड़ता होगा। सहस्रों उल्कापिण्डों के वेग से इधर-उधर परस्पर टकराने से तथा रगड़ने से वेगवती ज्वाला और प्रकाश उत्पन्न होता रहा होगा, जो सारे वायव्य पिण्ड को प्रकाशित किए हुए होगा। इस अवस्था में सहस्रों उल्कापिण्ड आपस में रगड़कर चूर हो गए होंगे और इस चूरे ने उस बिखरे हुए पदार्थ के लिए यही काम किया होगा, जो ईंटों की जुड़ाई में चूना करता है, अर्थात् बड़े-बड़े उल्कापिण्डों को एकत्रित करके उसने एक बड़े पिण्ड के रूप में परिणत कर दिया होगा। यही पिण्ड हमारे सौर मण्डल का आदि पुरखा था।

उल्कापिण्डों की नीहारिका

टक्कर की वेदना से तिलमिलाकर यह महापिण्ड निरन्तर नाचता रहा होगा और कालान्तर में एक सर्पिल नीहारिका के रूप में परिणत हो गया होगा। नीहारिका का बाहरी भाग ठंडा होकर एवं केन्द्रीय भाग से अलग होकर एक पिण्ड के रूप में सिकुड़ गया होगा। कहते हैं, इस प्रकार धीरे-धीरे नीहारिका से कई पिण्ड अलग हो गए होंगे, जो सौर मण्डल के ग्रहों के रूप में आज केन्द्रीय पिण्ड के चारों ओर चक्कर लगाते घूमते हैं। एक उल्लेखनीय बात यह है कि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृथ्वी का चिप्पड़ जिन पदार्थों से मिलकर बना है, वे ही पदार्थ उल्काओं में भी पाए जाते हैं। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि मंगल आदि अन्य ग्रहों पर भी हमारी पृथ्वी की भाँति ही निरंतर उल्कापात होता रहता है।

प्रोफेसर सी नामक वैज्ञानिक ने यह सिद्धान्त ठहराया है कि अखिल ब्रह्माण्ड उल्काकणों की महीन धूल से निरन्तर छाया हुआ है। कभी-कभी ऐसा होता है कि इस धूल का कुछ अंश एकत्रित होकर एक पिण्ड बन जाता है। यह पिण्ड हमें आकाश में नक्षत्रों के रूप में दिखाई देता है। उल्काओं तथा उल्काकणों की नीहारिकाएँ भी आकाश-मण्डल में बनती रहती हैं। इन नीहारिकाओं में नक्षत्रों-जैसे उल्कापिण्ड भी आकर फँस जाते हैं। इस प्रकार वेग से घूमती हुई नीहारिकाओं में उल्का, उल्काकणों की धूल, इनके परस्पर के घर्षण से उत्पन्न वायव्य पदार्थ तथा नक्षत्र-जैसे बड़े-बड़े उल्का रहते हैं। प्रायः बड़े-बड़े विशाल पिण्ड अन्य पिण्डों को भी आकर्षित कर लेते हैं। इसी प्रकार हमारे सौर मण्डल के ग्रह सुदूर अतीत में सूर्य की प्रारम्भिक नीहारिका के चक्कर में आकर फँस गए होंगे, वे उसी से उत्पन्न नहीं हुए। तभी से वे आकर्षण के कारण सूर्य की परिक्रमा करते रहते हैं।

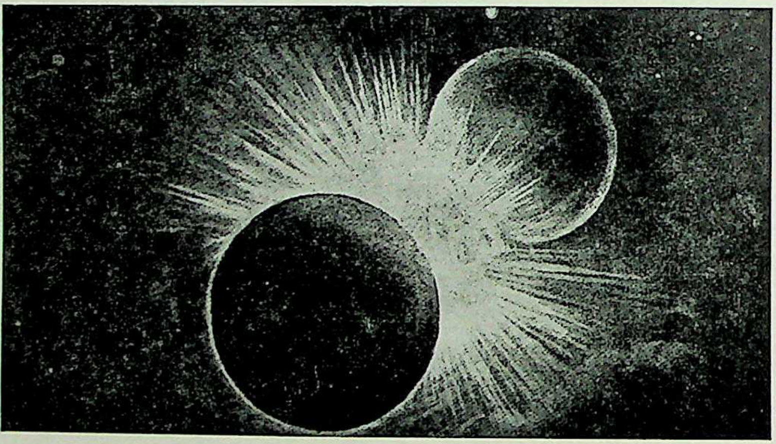
दो आकाशीय पिण्डों की टक्कर से सौर मंडल की उत्पत्ति की कल्पना। एक मत के अनुसार सौर मण्डल की उत्पत्ति अतीत में ऐसे ही दो महापिंडों के आपस में टकरा जाने से उत्पन्न नीहारिका द्वारा हुई होगी।

आधुनिक सिद्धान्त

सौर मण्डल की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जैफरे नामक वैज्ञानिक ने कुछ वर्ष हुए जो सिद्धान्त ठहराया है, वह अन्तिम हो या नहीं, परन्तु उसके अनुसार पृथ्वी का जन्म अन्य ग्रहों के समान अतीत में सूर्य के समीप एक विशाल नक्षत्र के आने और उसकी गुरुत्वाकर्षण-शक्ति के खिचाव से उसके (सूर्य के) कुछ अंश के दूर तक छिटक जाने से हुआ। इस घटना के फलस्वरूप सूर्यपिन्ड का बहुत-कुछ अंश आकाश-मण्डल में छिटक गया और पीछे से इस छिटके हुए पदार्थ के अनेक टुकड़े बन गए, जिनसे पृथ्वी आदि ग्रहों के पिण्डों का जन्म हुआ। आरम्भ में ये पिण्ड पिघली हुई दशा में थे और प्रचंड अग्नि से तप्त थे। जैफरे के बाद सर जेम्स जीन्स नामक विद्वान् ने गणित द्वारा यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि सौर मण्डल जिस नीहारिका-रूपी पिण्ड से आरम्भ हुआ है, वह घूमते-घूमते एक गिल्ली की-सी शक्ल का हो गया होगा। गिल्ली के अन्य भाग की अपेक्षा नुकीला भाग जल्दी ठंडा हो गया होगा और सिकुड़कर घना हो जाने के कारण वह मूल भाग का साथ न दे सका होगा, अतः टूटकर अलग हो गया होगा। टूट जाने पर भी यह उस बड़े पिण्ड के साथ-ही-साथ घूमता रहा होगा। क्रमशः बड़ा पिण्ड सिकुड़कर छोटा होता गया और इस प्रकार यह टूटा हुआ पिण्ड उससे दूर हो गया। साथ-ही-साथ बड़े पिण्ड से इस प्रकार के कई और पिण्ड टूटकर अलग हुए। ये ही पिण्ड सौर मण्डल के ग्रह हैं और केन्द्रीय पिण्ड सूर्य है। जो पिण्ड गिल्ली के नुकीले भाग के रूप में टूट गए थे, वे भी आरम्भ में पिघली हुई तप्त अवस्था में थे और बराबर वेग से नाचते हुए केन्द्रीय पिण्ड की परिक्रमा करते थे। कालान्तर में इन पिण्डों की शक्ल नाशपाती जैसी हो गई होगी और फिर इनके नुकीले भाग भी टूटकर इनसे अलग हो गए होंगे। ये भाग इन ग्रहों के चन्द्रमा के रूप में हो गए होंगे। हमारी पृथ्वी का भी नुकीला भाग टूटकर इससे अलग हो गया और चन्द्रमा बन गया। इस भाग के टूटने से जो स्थल खाली हुआ, उसमें पृथ्वी के ठंडी हो जाने पर पानी भर गया और वही हमारा आज का गहरा समुद्र बन गया।

भारतीय पौराणिक धारणा

इस सम्बन्ध में हमारी पौराणिक कथा भी बड़ी महत्वपूर्ण है। सृष्टि के आरम्भ में अनन्त भगवान् शेषनाग की कुण्डली पर शयन करते हुए क्षीरसागर में विश्राम करते थे। भगवान् की नाभि से कमल उत्पन्न होता है, जिसके दल

चारों ओर फैले हुए हैं। भगवान् के नाभिकमल पर बैठे ब्रह्मा इस विचार में मग्न होते हैं कि मैं कौन हूँ, कहाँ हूँ और किसलिए आया हूँ? इतने में भगवान् के कानों के मैल से दो विशाल शरीरवाले दानव उत्पन्न होते हैं। ये दोनों दानव आपस में लड़ने लगते हैं और लड़कर दोनों मर जाते हैं। उनके शरीर का मैल उसी क्षीरसागर में बहता है और उसी से मेदिनी बनती है। कुछ काल पर्यन्त मेदिनी के पुत्र के रूप में मंगल नामक ग्रह जन्म लेता है। कालान्तर में मेदिनी के समुद्र-मन्थन से चन्द्रमा की उत्पत्ति होती है। ब्रह्मा ने मरीचि और भृगु नामक दो मानसिक पुत्र उत्पन्न किए। इनके द्वारा सूर्य आदि ग्रह उत्पन्न हुए।

पौराणिक और आधुनिक धारणाओं में साम्य

ऊपर जिन वैज्ञानिक सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है, उनमें तथा इस पौराणिक रूपक में बहुत-कुछ सामंजस्य है। अनन्त भगवान् को इस अनन्त ब्रह्माण्ड के रूप में माना जा सकता है। क्षीरसागर दूध-सरीखे उस चमकदार पदार्थ को कह सकते हैं, जो आकाशमण्डल में नीहारिकाओं और आकाश-गंगा में देख पड़ता है। शेषनाग की कुण्डली अनन्त ब्रह्माण्ड में पसरी हुई नीहारिकाओं की कुण्डली है। कान के मैल से दो दैत्यों का उत्पन्न होना अनन्त देश की किसी गुहा से दो मरे हुए बृहताकर पिण्डों का निकलना हो सकता है। दोनों का टक्कर खाना दोनों का लड़ना हैं। लड़ते-लड़ते दोनों नष्ट हो जाते हैं और उनके शरीर का मैल एक वायव्य पिण्ड के रूप में परिणत हो जाता है, जिसे मेदिनी के नाम से पुकारा गया है। इस मेदिनी के मंगल ग्रह नामक पुत्र हुआ। कौन जानता है कि जीन्स की गणना के अनुसार मंगल ग्रह कदाचित् पृथ्वी की नाशपाती-सी शक्ल का टूटा हुआ नुकीला भाग ही हो? चन्द्रमा के सम्बन्ध में तो सभी वज्ञानिक यह स्वीकार करते हैं कि वह पृथ्वी से टूटकर अलग हो गया है।

वास्तव में सौर मण्डल की उत्पत्ति कैसे हुई, यह अभी तक कोई प्रामाणिक रूप से सिद्ध करने में सफल नहीं हो सका है। सबने अपनी धारणाओं के अनुसार अपने सिद्धान्त बनाए हैं। हम यह नहीं कह सकते कि ये सिद्धान्त ठीक नहीं हैं, परन्तु तर्क और वास्तविकता की कसौटी पर अभी तक कोई सिद्धान्त पूर्ण रूप से अन्तिम नहीं हो पाया है। हमें इस संबंध में यह देखना है कि पृथ्वी की कथा, जो उसकी चट्टानों तथा उसके विभिन्न स्तरों आदि में प्रकृति की कलम द्वारा लिखी हुई है, इस संबंध में क्या कहती है। भू-विज्ञान तो मुख्यतः उसी बात को ग्रहण करने को तैयार होगा, जो उसे धरती स्वयं बताएगी। अतः भू-विज्ञान के खोजियों ने यही सिद्ध करने की चेष्टा की है कि पृथ्वी चाहे जैसे उत्पन्न हुई हो, पर एक समय उसकी दशा उत्तप्त लोहे के समान पिघले हुए पदार्थ की-सी अवश्य रही होगी। पृथ्वी जैसी आज हमें देख पड़ती है, ऐसी तो आरम्भ में वह कदापि न थी। उस समय न इस पर जीव-जन्तु थे, न मनुष्य। वृक्ष आदि का होना भी उस समय असम्भव ही था। पर्वत, समुद्र, मैदान, घाटियाँ आदि का भी पता न था। वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि जन्म के समय पृथ्वी पिघले हुए पदार्थों का एक पिण्डमात्र थी, जिसको धातु, पत्थर आदि पदार्थों की घनी वाष्प चारों ओर से घेरे हुए थी। इसलिए यह पिण्ड बादल के महापिण्ड के रूप में अनन्त देश में भयानक वेग से नाचते हुए सूर्य की परिक्रमा करता देख पड़ता होगा। सूर्य के चारों ओर वेग से घूमने के कारण इस पिण्ड की उष्णता ब्रह्माण्ड में फैलती जाती होगी और यह अत्यन्त उत्तप्त धधकता बादल धीरे-धीरे घनीभूत होकर सिमटता जाता होगा।

कहते हैं कि ज्यों-ज्यों इस पिण्ड का पदार्थ घनीभूत होता गया, इसका आकार एक गोले के आकार-सा होता गया। जैसे-जैसे इस उत्तप्त महापिण्ड की आँच अनन्त देश में बिखरती जाती थी, यह ठंडा होता जाता था। पत्थर, धातुएँ आदि, जो गैस के रूप में इस पिण्ड को आच्छादित किए हुए थे, अब द्रव रूप में परिणत होकर इस पर बरसते थे। यह द्रव रबड़ी के समान आधी पिघली धातुओं का मिश्रण था।

चन्द्रमा का जन्म

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, गणितज्ञों ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि इस प्रकार से घूमनेवाला पिण्ड धीरे-धीरे नाशपाती की-सी शक्ल का हो जायगा। इस नाशपाती का नुकीला भाग नाचने की तेजी में शेष भाग का साथ न दे सकने के कारण टूटकर अगल हो जायगा। जिस प्रकार नाशपाती के नुकीले भाग के रूप में पृथ्वी सूर्य से अलग हो गई, उसी प्रकार पृथ्वी भी घूमते-घूमते जब नाशपाती की-सी शक्ल की हो गई, तो इसका नुकीला भाग भी इससे टूटकर अलग हो गया। यही टूटा हुआ भाग चन्द्रमा के रूप में अब भी पृथ्वी से सम्बन्धित है। वैज्ञानिकों का विश्वास है कि चन्द्रमा को पृथ्वी से अलग हुए भगभग एक अरब वर्ष हो गए। पृथ्वी के इतिहास में यह घटना बड़े महत्व की हुई। चन्द्रमा पृथ्वी का ही अंश होने के कारण आज भी पृथ्वी के आकर्षण से बँधा हुआ है और स्वयं भी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृथ्वी को अपनी ओर आकर्षित किए रहता है। ज्वार-भाटा इसी का फल है।

जिस समय चन्द्रमा पृथ्वी से अलग हुआ, उस समय पृथ्वी भयानक वेग से घूम रही थी। सूर्य की परिक्रमा भी वही उन दिनों बड़े वेग से लगाती थी। उन दिनों पृथ्वी पर बड़ी-छोटी रातें और दिन होते होंगे। साथ-साथ चन्द्रमा भी पृथ्वी से बँधकर ब्रह्मांड में घूमता-फिरता था। चन्द्रमा के पृथ्वी से अलग हो जाने से पृथ्वीपिण्ड में लगभग २७ मील गहरा गड्ढा हो गया। कहते हैं कि कालान्तर में इसमें जल भरने लगा, जिससे यह गड्ढा गहरे सागर के रूप में परिणत हो गया, चन्द्रमा के आकर्षण से पृथ्वी पर भयानक ज्वार आते थे, कारण पृथ्वीपिण्ड का पदार्थ उस समय तक भी घनीभूत नहीं हो पाया था। वह अर्द्ध-द्रव धातुओं और पत्थरों का एक भीषण समुद्र-सा था। इस सागर में भयानक वेग से उबाल आते थे और इस उत्तप्त रबड़ी-जैसे पदार्थ को मीलों तक ऊपर उछाल देते थे। चन्द्रमा के कारण जब पृथ्वी पर ज्वार आते थे, तो यह उत्तप्त पदार्थ भीषण लम्बाई-चौड़ाई और ऊँचाई की लहरों में विचलित हो जाता था। यही दशा चन्द्रमा की भी रही होगी। परन्तु चन्द्रमा की यह दशा शीघ्र ही समाप्त हो गई। चूँकि उसका पिण्ड छोटा था, इसलिए वह शीघ्र ही ठंडा हो गया था।

पृथ्वी की आरंभिक दशा

चन्द्रमा के अलग हो जाने से पृथ्वी के नाचने के वेग में काफी सुस्ती आ गई। पृथ्वीपिण्ड के पदार्थ में उस समय भीषण ज्वार आते थे। इसका भी पृथ्वी की नाचने की गति पर प्रभाव पड़ा और उसका वेग धीरे-धीरे कम होने लगा। पृथ्वी का पिण्ड ठंडा होने से पिघले हुए पदार्थ गाढ़े होकर जमने लगे। जिस प्रकार कढ़ाई में धीमी आँच में औटनेवाले दूध पर धीरे-धीरे मलाई पड़ने लगती है और वह धीरे-धीरे गाढ़ी और मोटी होती जाती है, उसी प्रकार पृथ्वीपिण्ड के खौलते पदार्थ के ठंडे होने और गाढ़ा होने से उस पर भी मलाई-सी जमना आरम्भ हुई। यह मलाई की पपड़ी, जैसे-जैसे पृथ्वी ठंडी होती जाती थी, अधिकाधिक मोटी होती जाती थी। परन्तु आँच की भयानकता के कारण यह पपड़ी एकदम जमकर कड़ी नहीं हो पाई। ऐसा होने के लिए अभी लाखों बरस का समय चाहिए था।

पृथ्वी की आरम्भिक दशा ठीक उसी प्रकार की थी, जिस

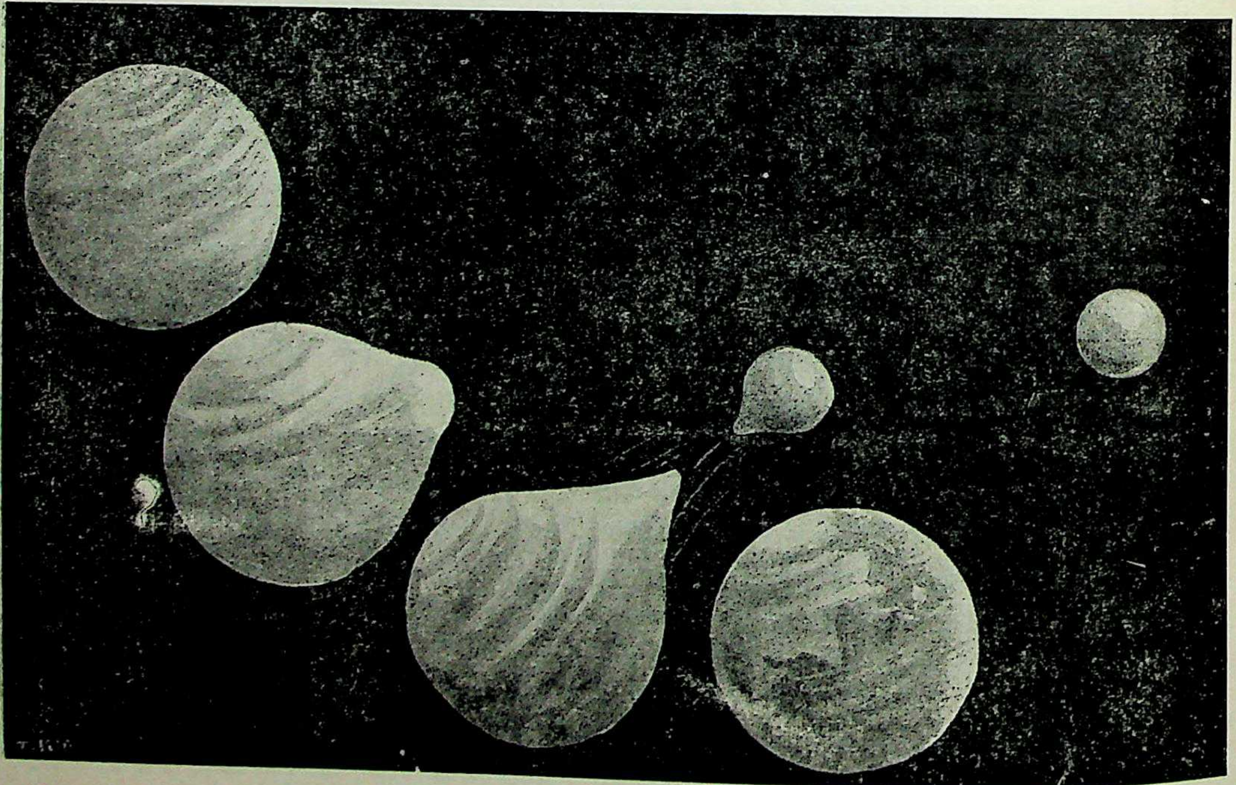

वैज्ञानिकों के अनुसार पृथ्वी से ही चन्द्रमा का जन्म हुआ है। लगभग एक अरब वर्ष पूर्व पृथ्वी का उत्तप्त गोला घूमते-घूमते नाशपाती की शक्ल का होने लगा। तभी उसका उभरा हुआ अंश टूटकर अलग हो गया और उसके आसपास चक्कर लगाने लगा। यही हमारा चन्द्रमा है। चित्र में यही धारणा दिग्दर्शित की गई है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकार इस्पात गलाने की भट्ठी में इस्पात की होती है। इस्पात जब पिघलकर पानी-सा हो जाता है, तो उसमें भीषण उबाल आते हैं और तब धातु बड़ी उछाल लेने लगती है। धीरे-धीरे यह उबाल आने बन्द होते हैं और तब ऊपर मैल आने लगता है। मैल हलका होने के कारण ऊपर आकर तैरता रहता है। भट्ठी की आँच इतनी भीषण होती है कि यह मैल भी पिघली हुई दशा में रहता है, परन्तु इस्पात की अपेक्षा इसमें बहने की शक्ति कम होती है। यदि भट्ठी को धीरे-धीरे ठंडा किया जाय तो मैल जमकर मलाई के रूप में पिघले हुए इस्पात को ढक लेता है। मैल की वह पपड़ी, जैसे-जैसे भट्ठी ठंडी होती जाती है, अधिकाधिक छोटी और घनी होती जाती है। परन्तु भीतर की धातु की गरमी और दबाव के कारण इस पपड़ी में दरारें-सी पड़ जाती हैं और उन दरारों में नीचे से इस्पात आकर भर जाता है।

यदि भट्ठी और अधिक ठंडी कर दी जाय, तो पिघला हुआ इस्पात धीरे-धीरे ठंडा होकर जमने लगेगा। इस्पात के पूर्व ही मैल जमकर कड़ा हो जायगा और ठंडा भी हो जायगा। परन्तु मैल की कड़ी पपड़ी के भीतर इस्पात पिघला हुआ होने के कारण, यदि कहीं पपड़ी टूट जाय तो पिघला इस्पात ऊपर आ जाता है। इस भट्ठी के इस्पात को ठंडा होने और जमने में कई दिन लगेंगे। धीरे-धीरे मैल तो इतना ठंडा हो जायगा कि आप उस पर आसानी से हाथ रख सकते हैं और उस पर चढ़कर घूम भी सकते हैं, परन्तु इसको खोदने पर भीतर गरमी रहेगी और अधिक खोदने पर बहुत सम्भव है कि किसी स्थान पर, यदि इस्पात अभी ठंडा न हो पाया हो, तो वह भी धधकता-सा दिखाई पड़ेगा।

वैज्ञानिकों का विश्वास है कि पृथ्वी भी इसी प्रकार धीरे-धीरे ठंडी होकर वर्तमान रूप को प्राप्त हो गई है। आरम्भ में यह भी पिघली हुई धातुओं और पत्थरों का एक भीषण-कड़ाहा-सा था। इस धातुपिण्ड का मैल ऊपर आकर धीरे-धीरे जमकर कठोर हो गया। यही पृथ्वी के चिप्पड़ के रूप में हमें दिखाई देता है। धातुएं आदि अधिक समय तक पिघली दशा में रहीं और इसीलिए उनके ठंडे होने में देर लगी। पृथ्वी के गर्भ में सम्भवतः अब भी ऐसी दशा हो कि यह पिघला हुआ पदार्थ अभी पूर्णतया ठंडा न हो पाया हो और धीरे-धीरे ठंडा होकर जमकर कठोर बन रहा हो। वैज्ञानिकों ने खोज से यह सिद्ध किया है कि पृथ्वी के चिप्पड़ का घनत्व पृथ्वी के गर्भ के पदार्थ की अपेक्षा कम है, अर्थात् पृथ्वी का चिप्पड़ गर्भ के पदार्थ से हलका है। इस विषय का पूर्ण विवेचन हम आगे के किसी अध्याय में करेंगे। यहाँ यह कह देना पर्याप्त है कि पृथ्वी के गर्भ का घनत्व बहुत-कुछ लोहा, इस्पात, निकिल, प्लैटिनम आदि धातुओं के समान है और पृथ्वी के चिप्पड़ का घनत्व लगभग उतना ही है, जितना धातुओं के मैल का अधिकांश होता है। एक उल्लेखनीय बात यह भी है कि पृथ्वी के चिप्पड़ के पदार्थ में जो तत्त्व पाए जाते हैं, वे अधिकांश में वही हैं, जो कि धातुओं के गलाने से जो मैल बनता है, उनमें पाए जाते हैं। ये बातें इस सिद्धान्त की पुष्टि करती हैं कि आरम्भ में पृथ्वी की दशा किसी बड़ी भट्ठी में पिघलती हुई धातु के समान ही थी।

चिप्पड़ का निर्माण

हम ऊपर बता चुके हैं कि जब धातु के मैल की पपड़ी जम जाती है, तो वह एकदम चिकनी सपाट नहीं होती। भीतर धातु के बराबर खौलने से पपड़ी में जगह-जगह फफोले और दरारें भी पड़ जाती हैं। ये फफोले और दरारें आदि पपड़ी के ठंडी होने और कड़ी होने पर बाद में वैसे ही बने रहते हैं। दरारों के भीतर धातु आकर जम जाती है। वैज्ञानिकों का विश्वास है कि पृथ्वी पर जो निचाई-ऊँचाई, पर्वत-घाटियाँ तथा सागर और मैदान दिखाई देते हैं, ये सब मैल की पपड़ी के फफोले और दरारों के समान ही बने होंगे। पृथ्वी का चिप्पड़ बिल्कुल मैल के समान ही धीरे-धीरे जमकर कड़ा हुआ है, इसलिए इसमें भी उसी के समान आरंभिक फफोले और दरारें आदि बन गए। कालान्तर में ये फफोले बड़े-बड़े पर्वतों के रूप में परिवर्तित हो गए और दरारों में जल भर गया, जिससे नदियों, झीलों और सागरों तथा महासागरों की उत्पत्ति हुई। परन्तु इस अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते पृथ्वी पर जो अजीब विपत्तियाँ आईं, वे भी उल्लेखनीय हैं।

जब पृथ्वी का पिण्ड इतना ठंडा हो गया कि उसके ऊपरी तल पर १२००° की आँच रह गई, तो ऊपर की पपड़ी जमकर कठोर होना आरम्भ हुई। जब आँच घटते घटते ३७०° तक पहुँची, तो भयानक दबाव के कारण उस समय के वायुमण्डल के जल की वाष्प कुछ-कुछ घनी होने लगी और पानी बनने लगा। ये दिन बड़े ही भीषण थे। सारी धरती गली हुई धातुओं आदि का एक भीषण महासागर-सा था, जिसकी धधकती हुई आँच आकाश में बहुत ऊँचे तक पहुँचती थी। बिजली कौंध रही थी। बादल कड़क रहे थे। धरती काँप रही थी। ज्वालामुखी उबले पड़ते थे। ज्यों-ज्यों आँच घटती जाती थी, त्यों-त्यों धातुओं के बादल द्रव बनकर बरसने लगते थे। उस समय धरती का पदार्थ आधे गले हुए

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृथ्वी के शैशवकाल का प्रलयंकर दृश्य कदाचित् ऐसा ही रहा होगा ! जन्म के लाखों वर्ष बाद जब पृथ्वी के ऊपर की पपड़ी जमने लगी, तब उस पर प्रकृति का भीषण ताण्डव आरम्भ हुआ। गली हुई धातुओं के उस धधकते महासागर में ज्वालामुखियों के भयानक उबाल आते थे ! ऊपर से पिघली हुई धातुओं और पत्थरों की अग्निवर्षा होती थी !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्थरों और चट्टानों का बना था और उन्हीं के उपर पिघली हुई धातुओं और पत्थरों की भयानक अग्निवर्षा होती थी। इस आँच के कुछ नरम होने पर धरती पर मूसलाधार जलवर्षा शुरू हुई।

लाखों वर्ष तक धुँआधार वर्षा

वह जल बरसते ही भाप बन जाता था और उड़ जाता था। धीरे-धीरे चन्द्रमा के स्थान पर जो गड्ढा हो गया था, उसमें जल एकत्र होकर भरने लगा। वह जल भयानक रीति से खौलता था। उसका तापक्रम १५०° से कम न रहा होगा। परन्तु उस समय का वायुमण्डल अत्यन्त घना था और उसके भीषण दबाव के कारण पानी आजकल के १००° के बदले लगभग २००° पर उबलकर भाप बनता था। जल से वह गड्ढा भर जाने पर उसमें खौलते हुए पानी का भीषण सागर लहराने लगा। बढ़ते-बढ़ते इस सागर ने सारी धरती को ढक लिया। यह जल अत्यन्त उत्तप्तावस्था में था। इधर भीषण उछाल और लहरें खाता हुआ यह जल पृथ्वी को पीड़ित किये था, उधर आसमान में मेघ निरन्तर छाये रहते थे। लगातार धुँआधार वर्षा होती थी। लाखों वर्ष तक इसी तरह जल के उबलने और बरसते रहने से अंत में आँच धीरे-धीरे घटती गई।

सागर कैसे बने ?

धरती के ऊपर चारों ओर जल-ही-जल था। यह जल धरती के बहुत-से पदार्थों को अपने में घुलाता जाता था। बहुत-से नए पदार्थ भी जमा होते जाते थे। इस प्रकार धरती के पिण्ड के बहुतेरे भाग का पदार्थ जल में घुल जाने से उनका स्थान खाली हो गया और वहाँ जल भर गया। परन्तु बहुत-सी जगह जल में घुल न सकी, इसलिए वह ऊँची रह गई। उस समय धरती की आंच अनन्त देश में बड़ी तेजी से बिखरती जाती थी। परन्तु साथ ही सिकुड़ने के कारण धरती के भीतर की आँच पहले से अधिक प्रचण्ड भी होती जाती थी। यह क्रिया आज तक जारी है। परन्तु ये दोनों क्रियाएँ उन दिनों की उग्र अवस्था के मुकाबले में आज परिमाणतः बहुत घटी हुई हैं।

इस प्रकार धीरे-धीरे जल के ऊपर थल दिखाई देने लगा। उस समय बादल तो धरती पर निरन्तर छाए ही रहते थे और मूसलाधार वर्षा भी होती थी, साथ ही आँधी और तूफान भी बड़े वेग से चलते थे। भूकम्प और ज्वालामुखी अलग पृथ्वी को पीड़ित करते थे। धीरे-धीरे भूकम्प, ज्वालामुखी और जलवर्षा घटी और सूखी भूमि निकलने लगी और वह कड़ी पड़ने लगी। धरती के निरन्तर सिकुड़ने और जल में अनेकों पदार्थों के घुल जाने से पृथ्वी नीची-ऊँची और ऊबड़-खाबड़ हो गई। दूध पर की मलाई की तरह का चिप्पड़ कुछ मोटा हो गया। उसके भीतर दहकती हुई आग, पिघली हुई चट्टानें और गर्भ के भीतर की अत्यन्त घनी और उत्तप्त लोहे की वायु भरी हुई रह गई। इसमें अब भी महाभयानक तूफान उठते रहते हैं, जिनसे धरती का ऊपरी चिप्पड़ कभी-कभी आजकल भी कहीं-कहीं काँप जाता है।

जल और स्थलभागों का विभाजन

सूखी धरती धीरे-धीरे बढ़ने लगी। जो भाग जल में घुल नहीं सका, वह जमकर कड़ी चट्टानों के रूप में रह गया। इन चट्टानों पर निरन्तर वर्षा होने से जल की धाराएँ बड़े वेग से नीचे की ओर बहती थीं और उसी के साथ-साथ चट्टानें कट-कटकर बालू और मिट्टी के रूप में समुद्र में पहुँच जाती थीं। कालान्तर में मिट्टी और बालू के ये अंबार फिर कड़ी चट्टानों के रूप में जल के बाहर पर्वत बनकर निकल आते थे। ये क्रियाएँ आज भी जारी हैं। आगे के प्रकरणों में हम बताएँगे कि किस प्रकार वायु, नदियाँ, झीलें, सागर, आदि पृथ्वी के चिप्पड़ को निरन्तर बनाने और बिगाड़ने की क्रिया में संलग्न हैं, जिससे जलस्थल का उलटपुलट निरन्तर होता रहता है। क्यों भूचाल आते हैं तथा ज्वालामुखी पहाड़ क्या हैं; नदियाँ कब और कैसे बनीं तथा वे किस क्रिया में संलग्न हैं, आदि-आदि। इन बातों का पता भू-विज्ञान की सहायता से इसी सिद्धान्त पर लगाया गया है कि 'जो आज हो रहा है, वैसा ही कल भी हो चुका होगा।' इसी सिद्धान्त, कल्पना और तर्क के बल पर मनुष्य ने अपनी पृथ्वी-सम्बन्धी जिज्ञासा को शान्त करने की चेष्टा की है। यह आगे चलकर मालूम होगा कि वह सत्य के कितने निकट पहुँच गया है।

धरातल का विकास बहुत धीरे-धीरे और अत्यन्त सुदीर्घ काल में हुआ है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि पृथ्वी पर एशिया या जम्बूद्वीप ही सबसे प्राचीन महाद्वीप है, जिस पर जीवन की सृष्टि आरम्भ हुई। पृथ्वी की जीवनी की लम्बी कहानी को प्रकृति स्वयं चट्टानों पर अंकित करती जाती है। इसी से हमें उसका कुछ पता लगता है। इन चट्टानों पर अंकित कथा को पढ़ने के लिए उनकी बनावट आदि का ज्ञान होना आवश्यक है। यही अध्ययन भू-शास्त्र की सबसे पहली सीढ़ी है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धरातल की रूपरेखा :: पुरानी और नई दुनिया

आइए, अब पृथ्वी की सतह पर के जल और स्थल के उस विशाल क्षेत्र की भौगोलिक रूपरेखा का दिग्दर्शन करें, जिसे हम अपनी 'दुनिया' कहकर पुकारते हैं और जिसे पुरानी और नई दुनिया के नाम से पुकारे जाने वाले पूर्वी और पश्चिमी नामक दो गोलार्द्धों के रूप में चित्रित किया जाता है।

अपने निवासस्थान भूपृष्ठ अथवा पृथ्वी के धरातल के विषय में मनुष्य ने जो ज्ञान प्राप्त किया है, उसे 'भूपृष्ठ-विज्ञान' अथवा 'भूगोल' के नाम से पुकारा जाता है। भूगोल के अध्ययन से हमें धरातल की प्राकृतिक बनावट का ज्ञान प्राप्त होता है। इस शास्त्र के अध्ययन से हमें यह विदित होता है कि धरातल का कितना अंश जलमग्न है और कितना सूखा; कौन-सा भाग चौरस मैदान है और कहाँ पर विशाल पर्वत-शृङ्खलाएं हैं; किस प्रकार ऋतु-परिवर्तन होता है और कैसे वर्षा होती है; कौन-से भाग शीतप्रधान हैं और कहाँ पर भीषण गरमी पड़ती है; साथ ही हम इसके द्वारा यह भी जान सकते हैं कि भूपृष्ठ की प्राकृतिक अवस्था में ये सब विभिन्नताएँ क्यों हैं ? सर्वत्र एक ही सी पैदावार, एक-सी वनस्पति तथा एक ही जैसे पशु-पक्षी और मनुष्य क्यों नहीं पाए जाते ? कहीं पर शीतलता, तो कहीं पर उष्णता की पराकष्ठा क्यों मिलती है ? समस्त भूपृष्ठ पर एक ही सी वायु क्यों नहीं चलती और कहीं पर कम और कहीं पर अधिक वर्षा क्यों होती है ?

पृथ्वी एक विशाल गोला है

भूपृष्ठशास्त्र के अध्ययन करनेवालों ने यह सिद्ध कर दिया है कि हमारी पृथ्वी दरअसल एक बड़ा गोला है। जब हम जल या स्थल पर यात्रा करते हैं, तो ऐसा जान पड़ता है कि पृथ्वी एकदम सपाट है। पर अब से कई हजार वर्ष पहले ही लोग समझ गए थे कि पृथ्वी चपटी नहीं है। यह हमें चपटी केवल इसलिए मालूम होती है कि एक समय में हम इसका बहुत ही थोड़ा भाग देख पाते हैं। पृथ्वी का व्यास इतना विशाल है कि उस पर हमारी स्थिति दरअसल आधे मील व्यासवाली किसी एक विशाल गेंद पर रेंगनेवाली मक्खी के समान है। ऐसे विशाल गोले का ज्ञान भला एक नन्हीं-सी मक्खी को कैसे होगा !

एक समय था जब लोगों की दृढ़ धारणा थी कि पृथ्वी चपटी है। उन दिनों लोग अपनी धारणाओं पर इतना अधिक विश्वास करते थे कि किसी प्रकार भी वे उनका विरोध सहन नहीं कर सकते थे। जब पृथ्वी के आकार-प्रकार के विषय में कुछ विद्वानों ने प्रचलित मत के विरुद्ध यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि पृथ्वी गोल है, तब लोगों ने उनका बड़ा तिरस्कार किया। कुछ लोगों को इसी कारण बड़ी यन्त्रणाएँ और कष्ट झेलने पड़े। परन्तु धीरे-धीरे लोगों के विश्वास में परिवर्तन हुआ और अन्त में उन्हें भी यह विश्वास हो गया कि वास्तव में पृथ्वी गोल है।

ध्रुवों पर पृथ्वी कुछ-कुछ चपटी है

आधुनिक खोज और आविष्कारों के युग में लोगों का ज्ञान उतना परिमित नहीं है, जितना उन दिनों था जब यात्राओं के साधन नहीं थे। उन दिनों लोगों का ज्ञान केवल देश के उसी भाग तक सीमित था, जहाँ तक वे आसानी से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आ-जा सकते थे। आजकल तो लोगों ने सारी पृथ्वी की परिक्रमा कर डाली है और यह सिद्ध कर दिया है कि पृथ्वी का आकार नारंगी से मिलता-जुलता है। ज्योतिष-विज्ञान की सहायता से मनुष्य ने यह सिद्ध कर दिया है कि पृथ्वी आकाश के अन्य ग्रहों के समान ही एक ग्रह है और सब ग्रहों की भाँति वह भी गोले के आकार की है। परन्तु इसका आकार पूर्णतया गोले के समान नहीं है। इसका कारण यह नहीं है कि उसके धरातल को ऊँचे-ऊँचे पर्वत, गहरी घाटियाँ, सागर आदि ऊबड़-खाबड़ बनाए हुए हैं। पृथ्वी के गोले के विशाल आकार के सामने यह ऊँचाई-नीचाई नगण्य-सी है। इसलिए धरातल की इस ऊँचाई-नीचाई का पृथ्वी के आकार पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता। जिस प्रकार नारंगी गोल होते हुए भी ऊपर और नीचे के सिरों पर कुछ चपटी होती है तथा उसके पेटे का भाग कुछ अधिक गोलाई लिए हुए रहता है, उसी प्रकार हमारी पृथ्वी भी नीचे और ऊपर के सिरों पर नारंगी के समान ही कुछ-कुछ चपटी है और इसके पेटे का भाग भी कुछ अधिक गोलाई लिए हुए है। यदि पृथ्वी की परिधि नापी जाय, तो पेटे की परिधि शेष भाग की परिधि की अपेक्षा कुछ अधिक और ऊपर-नीचे के चपटे भागों पर नापी गई परिधि शेष परिधि की अपेक्षा कुछ कम होगी। ध्रुवों पर पृथ्वी की परिधि २४,९०२ मील और विषुवत्‌रेखा पर वही २४,८६० मील है।

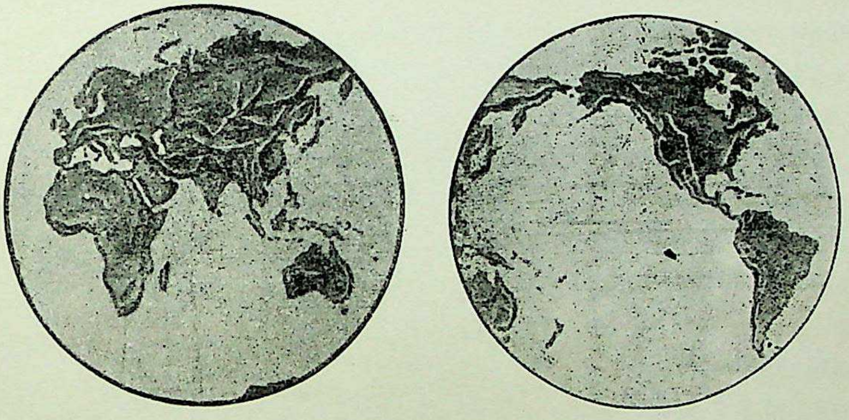

पृथ्वी के दो गोलार्द्ध, जो पुरानी और नयी दुनिया के नाम से विख्यात हैं। बाईं ओर पूर्वीय गोलार्द्ध है, जिसमें एशिया, योरप और अफ्रीका महाद्वीप सम्मिलित हैं। दाहिनी ओर पश्चिमी गोलार्द्ध है, जिसमें केवल उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका महाद्वीप हैं।

पृथ्वी की गोलाई के विविध प्रमाण

पृथ्वी का धरातल चपटा नहीं है। यह कई प्रकार से सिद्ध किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, यदि हम समुद्र के किनारे पर खड़े होकर सामने की ओर जाते हुए जहाज को देखें, तो पता चलेगा कि पहले केवल जहाज का तलभाग हमारी आँखों से ओझल होने लगता है। तलभाग के बाद जहाज के बिचले हिस्से की बारी आती है और अन्त में ऊपरी सिरा या मस्तूल भी क्षितिज में मिलकर अदृश्य हो जाता है। यदि पृथ्वी का धरातल गोल न होकर चपटा होता, तो पहलेपहल जहाज का तलभाग हमारी नजर से गायब न होना चाहिए था। वैसी हालत में सबसे पतला हिस्सा होने के कारण पहले जहाज का मस्तूल ही आँखों से ओझल होता और तले की बारी अन्त में आती। जहाज का तलभाग अदृश्य हो जाने के बाद किसी चट्टान या टीले के सिरे पर चढ़कर देखने से वह फिर दिखाई पड़ता है। ये बातें तभी हमारी समझ में ठीक-ठीक आती हैं, जब कि हम यह मान लेते हैं कि जहाज को जिस धरातल से होकर गुज़रना पड़ता हैं, उसका स्वरूप सपाट नहीं बल्कि वर्त्तुलाकार है। पृथ्वी के धरातल के वर्त्तुलाकार होने का अन्य एक प्रमाण यह है कि धरातल से हम जितना ही अधिक ऊँचा उठते हैं, हमारा क्षितिज भी उतना ही अधिक विस्तृत होता जाता है। यदि हम समुद्र के किनारे खड़े होकर अपनी आँखों को पृथ्वी की सतह से ६ फीट की ऊँचाई पर रखते हुए देखें, तो हम सामने तीन मील तक देख सकते हैं; परन्तु यदि हम किसी ऐसे टीले पर चढ़ जाएँ, जो पृथ्वी के धरातल से ९६ फीट की ऊँचाई पर हो तो हमें १० मील तक दिखाई दे सकता है। फिर यदि हम और भी ऊँचे चढ़कर समुद्र के किनारे के धरातल से १८६ फीट ऊँचे किसी प्रकाशस्तम्भ पर खड़े होकर सामने नजर दौड़ाएँ, तो क्षितिज की दूरी १५ मील की मालूम होगी। अधिक ऊँचाई पर चढ़कर देखने से क्षितिज का बढ़ते जाना वर्त्तुलाकार धरातल में ही सम्भव है, समतल में नहीं।

पृथ्वी की सतह के गोलाकार होने का तीसरा प्रमाण हमें जल की सतह पर किए गए निम्नलिखित प्रयोग में मिलता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। तीन खम्भों को आपस में एक-एक मील का अंतर देकर जल में एक पंक्ति में इस प्रकार रखिए कि जल के ऊपर निकले हुए उनके सिरे लम्बाई में बराबर हो। अब यदि एक दूरबीन के सहारे इन्हें इस तरह देखा जाय कि पहले और तीसरे खम्भे के सिरे ठीक एक सीध में हों, तो हमें मालूम होगा कि बीच का खम्भा इन दोनों से बड़ा है इसका कारण यही है कि पानी की जिस पट्टी पर ये खम्भे खड़े किए गए हैं, उसका धरातल एकदम समतल नहीं बल्कि वर्त्तुलाकार है। दूसरी कोई बात इस शंका का समाधान नहीं कर सकती।

पृथ्वी के धरातल की गोलाई का एक सबूत यह भी है कि जब कभी भी चन्द्रग्रहण होता है, तो चन्द्रमा के ऊपर पृथ्वी का जो प्रतिबिम्ब पड़ता है वह हमेशा गोलाकार होता है। यदि पृथ्वी का आकार गोल न होकर किसी दूसरे ढंग का होता, तो चन्द्रमा पर पड़नेवाली उसकी छाया भी गोलाकार न दिखलायी पड़ती।

प्रायः पृथ्वी के गोलाकार होने के सम्बन्ध में यह दलील

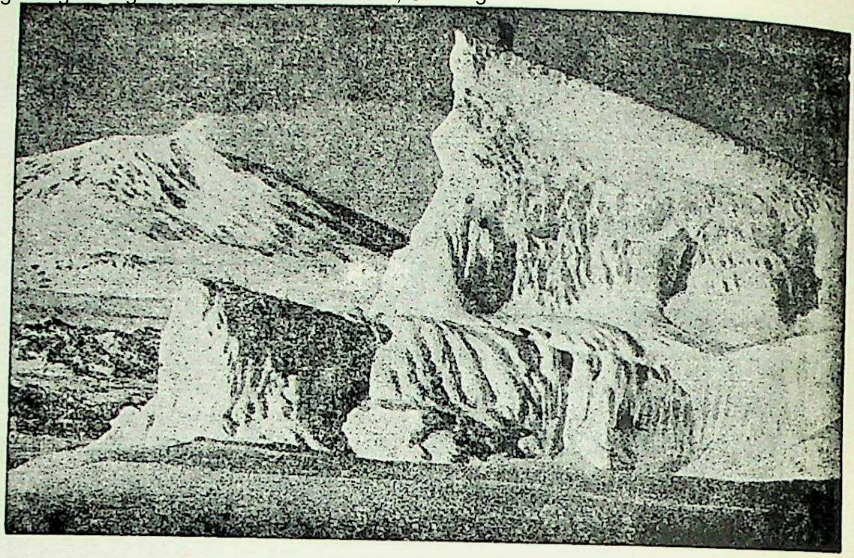

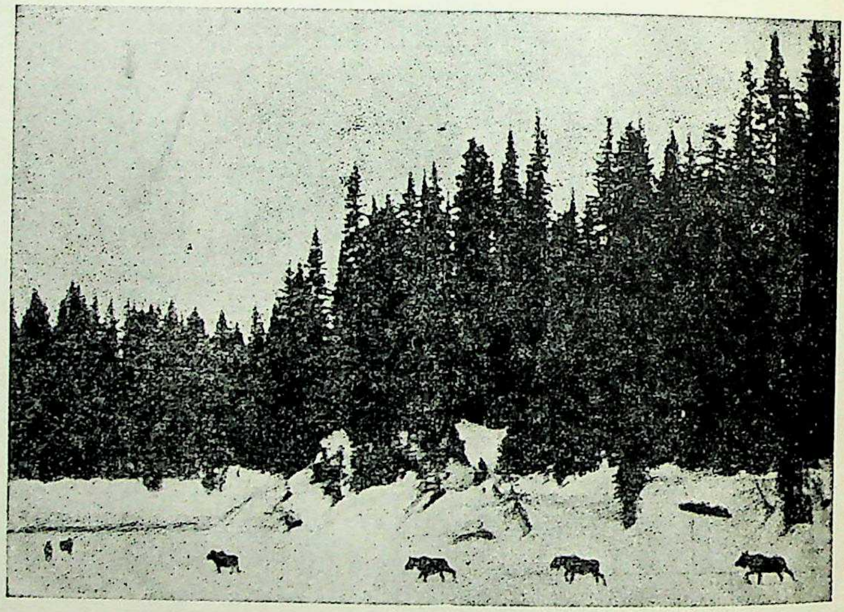

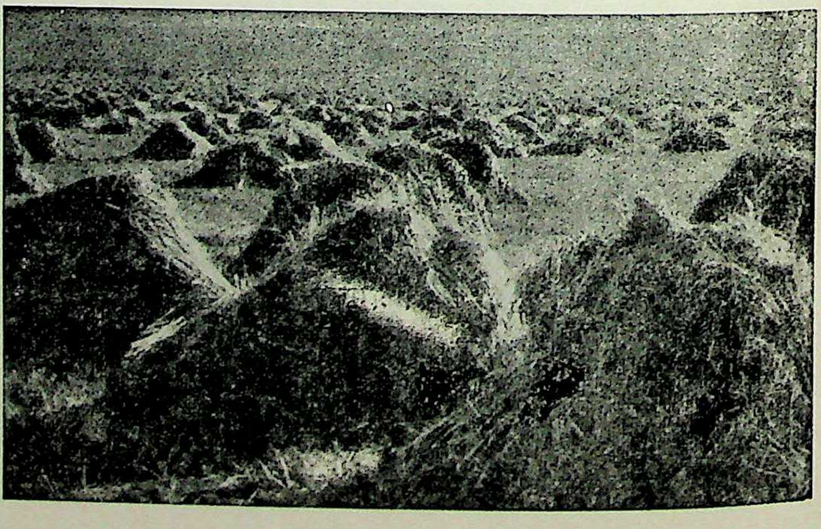

धरातल के विभिन्न प्राकृतिक प्रदेशों की झाँकियाँ—(१) (ऊपर) ध्रुवों के आसपास का शीतकटिबन्ध का वीरान प्रदेश, जहाँ केवल बर्फ-ही-बर्फ छाई दिखाई देती है। (बीच में) चीड़ के वनवाला प्रांत, जहाँ जाड़ों में भीषण सर्दी रहती हैं। (नीचे) घास के मीलों लम्बे मैदान, जहाँ वृक्ष नाममात्र को भी नहीं हैं, किंतु अच्छी खेती होने लगी है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

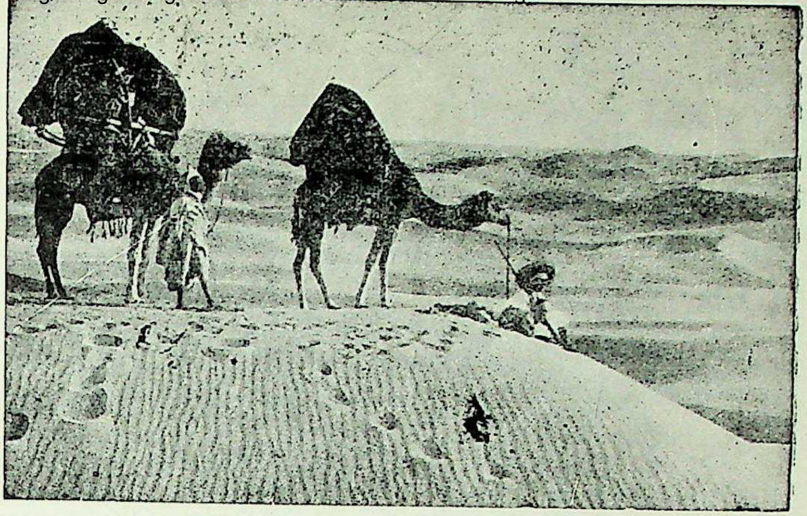

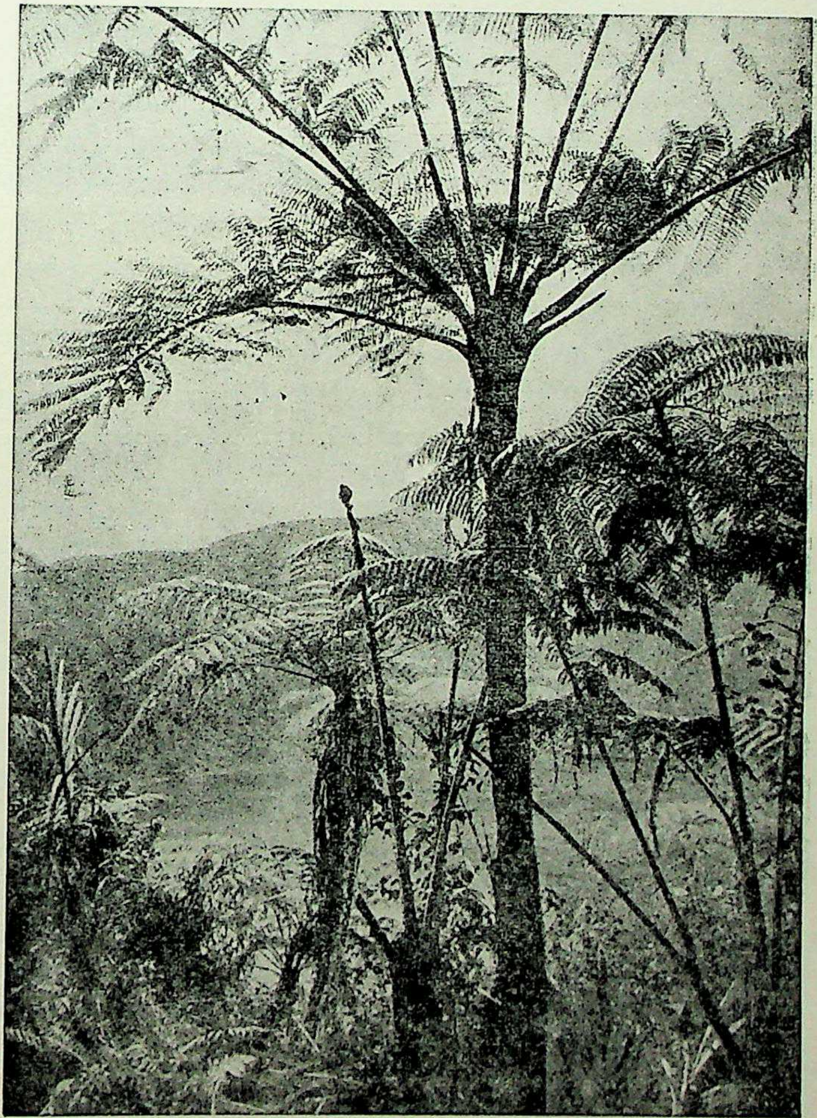

भी दी जाती है कि कोई आदमी पृथ्वी के किसी भी बिन्दु से रवाना हो और सीधा चलता चला जाय, तो वह पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ फिर उसी स्थान-बिन्दु पर पहुँच जायगा। परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि पृथ्वी का धरातल नारंगी की तरह गोल अर्थात् वृत्ताकार है। इससे केवल इतना ही साबित होता है कि यह चपटी न होकर वर्त्तुलाकार है। यदि पृथ्वी को लौकी की शक्ल का मान लें, तो भी यह सम्भव है कि एक निश्चित बिन्दु से यात्रा आरम्भ करके सीधे चलता हुआ व्यक्ति फिर निश्चित बिन्दु पर ही लौट आएगा।

पृथ्वी के धरातल के गोल होने का सबसे सरल और सबसे बढ़िया प्रमाण तो यह है कि क्षितिज के धरातल में हमेशा उतने अंश के कोण का परिवर्तन होता है, कितना कि हमें पृथ्वी के धरातल पर एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा में लगता है! चाहे हम किसी भी दिशा में या किसी भी स्थान से चलना आरम्भ करें, जितनी दूर हम पृथ्वी की सतह पर चलेंगे क्षितिज में कोण का

धरातल के विभिन्न प्राकृतिक प्रदेशों की झाँकियाँ—(२) (ऊपर) उजाड़ मरुप्रदेश का दृश्य, जहाँ खजूर के वृक्षों को छोड़कर कोई पेड़-पौधा नहीं होता। आँधी के कारण यहाँ बालू के बड़े-बड़े टीले रोज बनते-बिगड़ते रहते हैं (नीचे) उष्ण कटिबंध का प्रदेश, जहाँ प्रायः साल भर वर्षा होती रहती है और घने वन पाये जाते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिवर्तन ठीक उसी के हिसाब से होगा। जहाज से यात्रा करने पर इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है।

चूँकि तारे हमारी पृथ्वी से बहुत ही अधिक दूरी पर हैं, इसलिए यदि पृथ्वी गोल न होकर सपाट होती, तो हमारे यात्रा करते समय तारे हमेशा एक ही दिशा में बने रहते। पर चाहे जिस किसी दिशा में भी हम यात्रा क्यों न करें, हम देखेंगे कि नए-नए तारे लगातार हमारी आँखों के सामने आएँगे। यह पृथ्वी की गोलाई का श्रेष्ठ प्रमाण है। अंत में रिक्को नामक विद्वान् ने समुद्र पर गोल सूर्य के अण्डाकार प्रतिबिम्ब को देखकर गणित द्वारा अन्तिम रूप से प्रमाणित कर दिया है कि पृथ्वी का धरातल गोल है; क्योंकि ऐसा होना वर्त्तुलाकार धरातल पर ही संभव है।

पृथ्वी का परिमाण

पृथ्वी की सम्पूर्ण परिक्रमा करने से ही उसकी नाप की जा सकती है। परन्तु प्राचीन काल में पृथ्वी की परिक्रमा करना सर्वथा असम्भव था। इसलिए लोग पृथ्वी के आकार और परिमाण के विषय में बहुत दिनों तक अनभिज्ञ रहे। २,००० वर्ष से ऊपर हुए इराटस्थनीज नामक एक यूनानी विद्वान् ने सर्वप्रथम पृथ्वी के परिमाण की गणना की थी। उसकी गणना के अनुसार पृथ्वी की परिधि की लम्बाई ३,००० मील आँकी गई थी। परन्तु आधुनिक वैज्ञानिकों ने लगभग सम्पूर्ण पृथ्वीतल को कई बार नाप डाला है। उनके अनुसार पृथ्वी की परिधि की लम्बाई लगभग २५,००० मील (ध्रुवों पर लगभग २४,८६० तथा विषुवत् रेखा पर २४,९०२ मील) है।

पृथ्वी के दोनों चपटे सिरों का नाम ध्रुव है। ऊपर का सिरा 'उत्तरी ध्रुव' और नीचे का सिरा 'दक्षिणी ध्रुव' कहलाता है। ध्रुवों के बीच पृथ्वी के व्यास की लम्बाई ७,८९९ मील है। मध्य में उसकी लपेट पर पूर्व-पश्चिम का व्यास ७,९२६ मील के लगभग है। सम्पूर्ण धरातल का क्षेत्रफल १९ करोड़ ७० लाख वर्गमील है। धरातल का दो-तिहाई से अधिक भाग जलवेष्ठित है, शेष स्थलभाग है।

महाद्वीप और महासागर

आधुनिक काल में धरातल के स्थलभाग को कई विशाल भूखण्डों में विभाजित किया गया है। इन भूखण्डों या महाद्वीपों के नाम और क्षेत्रफल आगे की तालिका से स्पष्ट हैं।

स्थलखंड		क्षेत्रफल
एशिया		१,६३,६८,५०० वर्गमील
योरप		३६,७०,००० ,,
अफ्रीका		१,१०,९२,००० ,,
उत्तरी अमेरिका		७६,२३,०५० ,,
दक्षिणी अमेरिका		६८,६१,००० ,,
ऑस्ट्रेलिया		३०,१४, ०५० ,,
पॉलीनेशिया	लगभग	५,००,००० ,,
अटलाण्टिक तथा हिन्द महासागर के द्वीप	,,	२,५०,००० ,,
ध्रुव-प्रदेश	,,	२०,००,००० ,,
सम्पूर्ण स्थल का क्षेत्रफल		५,१३,७८,६०० वर्गमील

जिस प्रकार स्थलभाग के विशाल खण्डों का नाम 'महाद्वीप' रख लिया गया है, उसी प्रकार धरातल के जलमण्डित

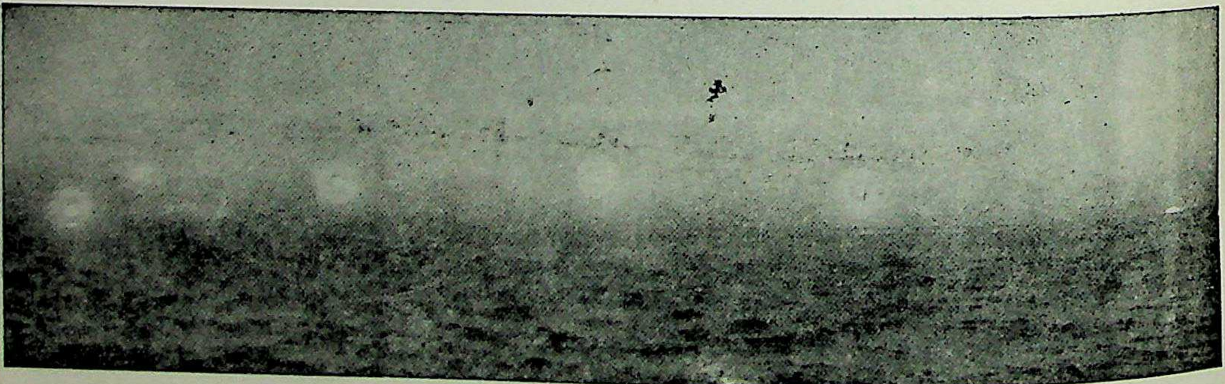

हमें सूर्य के परिभ्रमण की जो भ्रान्ति होती है, वह केवल इसलिए कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूम रही है। यह अद्भुत फोटोग्राफ उत्तरी ध्रुवप्रदेश में लिया गया था। फोटो-यंत्र का रुख दक्खिन की ओर था और चार घंटे तक वह एक ही स्थान में रक्खा गया था। एक ही निगेटिव प्लेट पर क्रमश: १०, ११, १२ १ और २ बजे दिन को ५ फोटो लिए गया थे। इस फोटो में स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि किस प्रकार सूर्य का उदय हुआ और धीरे-धीरे आकाश में चढ़कर अंत को वह अस्त हो गया। वास्तव में सूर्य एक स्थिर नक्षत्र है। हमें उसके परिभ्रमण का जो भ्रम होता है, वह केवल पृथ्वी के आवर्त्तन के कारण ही है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

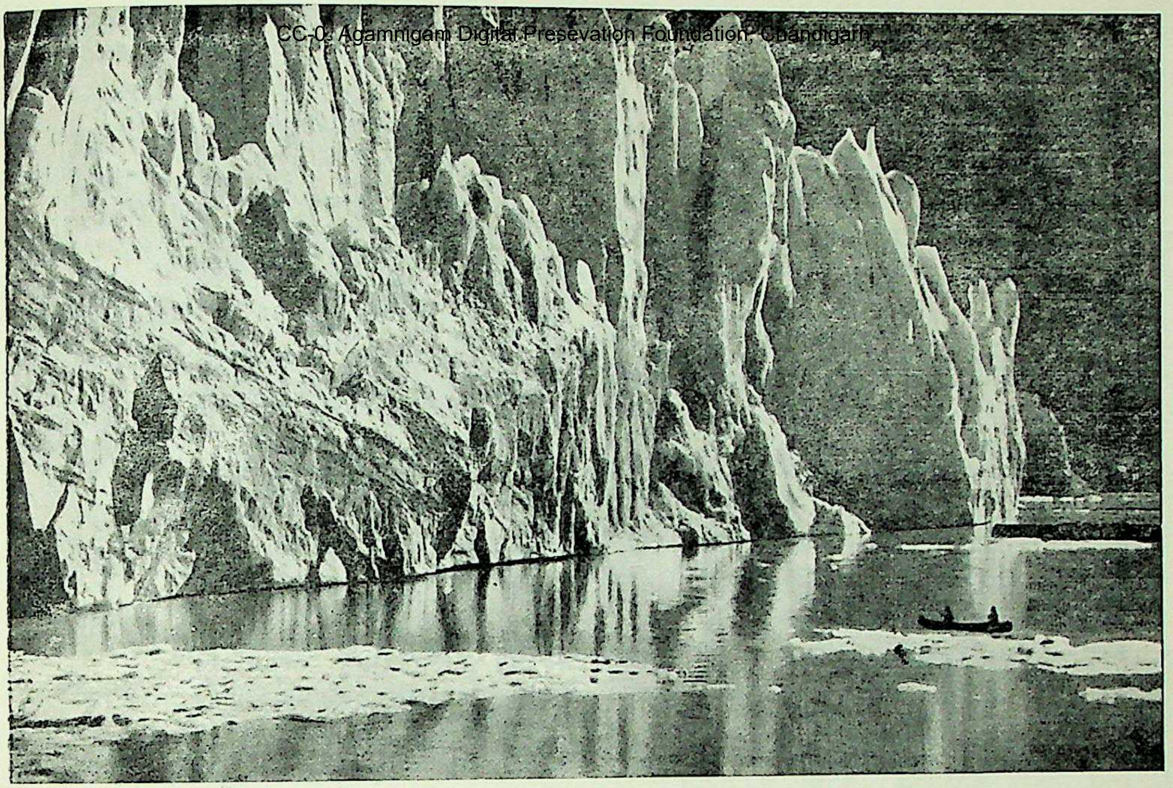

भूपृष्ठ के धुर उत्तरी और दक्षिणी-ध्रुव-प्रदेशों में विस्तृत हिमक्षेत्रों का चिरन्तन साम्राज्य है। प्रस्तुत चित्र में उत्तरी ध्रुव-प्रदेश की एक झाँकी दिग्दर्शित है। दक्षिणी ध्रुवक्षेत्र की एक झलक पृष्ठ ५६० पर देखिए।

भाग के भी कई महान् खण्ड किए गए हैं और प्रत्येक को 'महासागर' के नाम से पुकारा जाता है। ये पांच हैं:—

प्रशान्त (पैसिफिक) महासागर	६,३९,८६,०००	वर्गमील
अटलाण्टिक महासागर	३,१५,३०,०००	,,
हिन्द महासागर	२,८३,५०,०००	,,
आर्कटिक या उत्तरी महासागर	५५,४१,६००	,,
अण्टार्क्टिक या दक्षिणी महासागर	२०,००,०००	,,
सम्पूर्ण क्षेत्रफल	१३,१४,०७,६००	वर्गमील

इन विशाल जलखण्डों के अलावा पृथ्वीतल पर 'सागर', 'झील' आदि अनेकों छोटे जलखण्ड भी हैं। इसी प्रकार महाद्वीपों के अतिरिक्त अनेकों छोटे स्थलखण्ड भी हैं, जो 'द्वीप' या 'टापू' के नाम से पुकारे जाते हैं।

पूर्वीय और पश्चिमी गोलार्द्ध

सम्पूर्ण भूपृष्ठ अथवा भूमंडल को आज दो भागों में विभाजित समझा जाता है। एक में एशिया, योरप, अफ्रीका और ऑस्ट्रेलिया हैं। दूसरे भाग में उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका हैं। प्रथम विभाग के दक्षिण में हिन्द और पूर्व तथा पश्चिम में क्रमशः प्रशान्त तथा अटलांटिक महासागर हैं। दूसरे विभाग के पूर्व में अटलांटिक और पश्चिम में प्रशान्त महासागर हैं। दोनों के धुर दक्षिण में दक्षिणी हिम-महासागर और उत्तर में उत्तरी हिम-महासागर हैं। ऑस्ट्रेलिया के ईशान कोण में पैसिफिक महासागर के विशाल वक्षःस्थल पर मान-चित्र में कई नन्हें-नन्हें टापू देखे जाते हैं। इन सबके समूह को 'पॉलीनेशिया' कहते हैं। दक्षिणी ध्रुव-क्षेत्र का विशाल स्थलखंड 'अण्टार्क्टिका के नाम से पुकारा जाता है।

एक समय था जब पूर्वीय गोलार्द्ध के लोगों का भूगोल-विषयक ज्ञान केवल एशिया, योरप तथा अफ्रीका महाद्वीपों तक ही सीमित था। अतः इस पूर्वीय गोलार्द्ध के लोगों को जब अमेरिका आदि का ज्ञान हुआ, तब उन्होंने उनको 'नई दुनिया' के नाम से पुकारना आरम्भ किया। तभी से पूर्वीय गोलार्द्ध 'पुरानी दुनिया' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

पृथ्वी का स्थल और जल के अतिरिक्त एक तीसरा महत्वपूर्ण भाग और भी है। इसे हम 'वायुमण्डल' के नाम से पुकारते हैं। वायुमण्डल पृथ्वी को दो सौ मील की ऊँचाई तक मण्डित किए हुए है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृथ्वी की दैनिक और वार्षिक गतियाँ :: आवर्त्तन और परिभ्रमण

हम इस बात की चर्चा कर चुके हैं कि पृथ्वी गोल है। अब हम आपको यह महत्वपूर्ण तथ्य बतलाना चाहते हैं कि वह स्थिर नहीं है, बल्कि लट्टू की तरह अपनी धुरी पर घूमते हुए एक नियत कक्षा में सूर्य की परिक्रमा करती रहती है। भूगोल के अध्ययन के लिए पृथ्वी की इन दोनों प्रकार की गतियों का हाल जानना आवश्यक है। ये गतियाँ क्रमशः 'आवर्तन' और 'परिभ्रमण' कहलाती हैं।

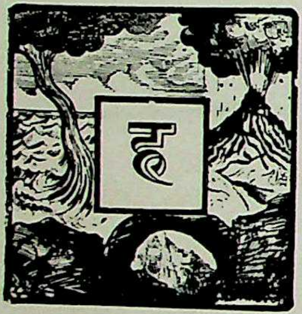

हमारी पृथ्वी स्थिर नहीं है। वह सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण किया करती है। सूर्य की परिक्रमा के साथ-ही-साथ पृथ्वी अपनी काल्पनिक धुरी पर भी सदैव घूमती रहती है। पृथ्वी के लट्टू की तरह घूमने की चाल को 'आवर्त्तन' अथवा उसकी 'दैनिक गति' कहते हैं। इस प्रकार अपने चारों ओर घूमने में वह एक दिन और रात का समय लेती है। उसके सूर्य के चारों ओर घूमने की गति को 'परिभ्रमण' या 'वार्षिक गति' कहते हैं, क्योंकि इस परिक्रमा को पूरा करने में पृथ्वी को एक वर्ष लगता है।

एक समय था, जब कि लोगों को दृढ़ विश्वास था कि पृथ्वी स्थिर है और सूर्य तथा आकाश का सारा नक्षत्रमण्डल ही पृथ्वी के चारों ओर घूमता है, इसी कारण रात और दिन होता है। परन्तु धीरे-धीरे लोगों की यह धारणा बदल गई। उनकी समझ में आ गया कि जिस प्रकार चलती हुई रेलगाड़ी में बैठे मनुष्य को रेलगाड़ी के बदले किनारे की भूमि चलती हुई प्रतीत होती है, उसी प्रकार पृथ्वी के चलते रहने पर भी प्रतीत यही होता है कि सूर्य चलता है। पृथ्वी का घूमना सिद्ध करने के लिए अब 'जायरोस्कोप' नामक अद्भुत यंत्र की सहायता ली जाती है। इस यंत्र की यह विशेषता है कि यदि उसकी कीली किसी तारे की ओर साध दी जाय और उसी की सीध में पृथ्वी के दूसरे पदार्थ रक्खे जायँ तो पृथ्वी के घूम जाने से इन पदार्थों की दिशा बदल जायगी, परन्तु कीली बराबर उसी तारे की ओर सधी रहेगी।

पृथ्वी की धुरी

देखने में सूर्य पूर्व में निकलते और पश्चिम में अस्त होते प्रतीत होता है, परन्तु वास्तव में पृथ्वी ही अपनी धुरी पर पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है। पृथ्वी की यह धुरी एक काल्पनिक रेखा मानी जाती है, जो पृथ्वी के केन्द्र से होकर उसके उत्तरी और दक्षिणी चपटे सिरों को मिलाती है। पृथ्वी का प्रतीक 'ग्लोब' इसी कल्पित धुरी पर घूमता दिखाया जाता है। पृथ्वी समान गति से इसी धुरी पर निरंतर घूमती है। परन्तु गोलकार होने के कारण उसके सब भागों के घूमने की गति की तेजी एक-सी नहीं है। धुरी के निकटवाले भागों की अपेक्षा धुरी से दूरवाले भाग कहीं अधिक वेग से घूमते हैं। पृथ्वी के मध्य के धरातल पर घूमने का वेग सबसे अधिक अर्थात् १,००० मील प्रति घंटे से कहीं ऊपर है। मध्य के उत्तर या दक्षिण के भागों में यह वेग धीरे-धीरे कम होता जाता है, यहां तक कि ठीक उत्तरी और दक्षिणी सिरों पर पृथ्वी स्थिर प्रतीत होती है, क्योंकि उन स्थानों में घूमने का वेग नहीं के बराबर है। किसी लट्टू अथवा ग्लोब को उसकी धुरी पर घुमाने से उपर्युक्त बातें समझने में सहायता मिलती है।

ग्लोब को देखने से एक विशेष बात यह मालूम होती है कि उसकी धुरी लंबवत् खड़ी नहीं है, वरन् एक ओर को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

झुकी हुई है। वास्तव में पृथ्वी की काल्पनिक धुरी भी इसी भाँति एक ओर को झुकी रहती है। पृथ्वी की धुरी का उसके परिक्रमा-पथ से सदैव ६६·२५° कोण का झुकाव रहता है। यदि वह झुकी न होती, तो परिभ्रमण के मार्ग से सदैव समकोण बनाती।

आवर्त्तन और परिभ्रमण

पृथ्वी और सूर्य का सम्बन्ध बड़े महत्व का है। पृथ्वी सूर्य की निरन्तर परिक्रमा किया करती है। पृथ्वी की इस परिक्रमा का मार्ग निश्चित है। इस मार्ग पर पृथ्वी यद्यपि सूर्य के चारों ओर घूमती है तथापि उसकी यात्रा का मार्ग पूर्ण वृत्त नहीं है। वह एक प्रकार का दीर्घवृत्त बनाती है। इस पथ की यात्रा पूरी करने में पृथ्वी को ३६५.२५ दिन लगते हैं। इस काल को हम वर्ष कहते हैं। परन्तु वर्ष में ३६५ दिन ही माने जाते हैं। शेष .२५ दिन जोड़कर प्रति चौथे वर्ष में एक दिन बढ़ा दिया जाता है और वह वर्ष ३६६ दिन का माना जाता है। ऐसा वर्ष 'लीप ईयर' कहलाता है।

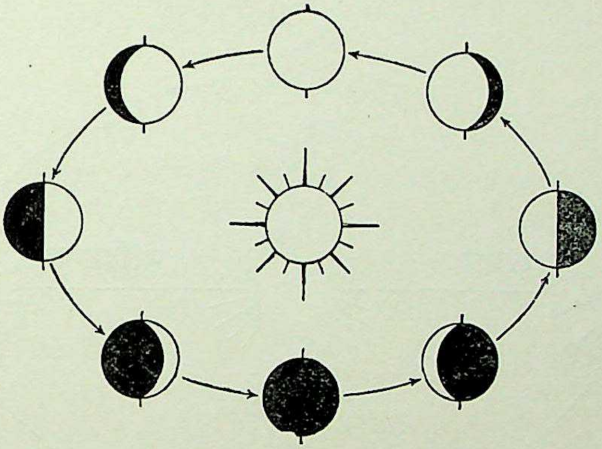

यदि पृथ्वी की धुरी झुकी हुई न होती तो क्या होता? उस दशा में सूर्य पृथ्वी के अपने सामने पड़नेवाले पृष्ठ, अर्थात् आधे भाग को संपूर्णतया उत्तर से दक्षिणी ध्रुव तक समान रूप से प्रकाशित करता। फलतः पृथ्वी पर सदैव हर स्थान पर दिन-रात बराबर ही होते!

पृथ्वी को गरमी और प्रकाश दोनों सूर्य से ही मिलते हैं। परन्तु उसकी गति और झुकाव के कारण धरातल के विभिन्न भागों में प्रकाश और गरमी दोनों की परिस्थित सदैव बदलती रहती है। सूर्य स्थिर है, इसलिए प्रकाश और गरमी का मार्ग भी स्थिर है। परन्तु पृथ्वी के निरन्तर घूमते रहने के कारण धरातल के किसी भी भाग में न तो सदैव प्रकाश रहता है और न सदैव अंधकार। जो भाग सूर्य के सामने आ जाता है, अर्थात् जहाँ सूर्य का प्रकाश पड़ता है, वहाँ तो 'दिन' और जो भाग सूर्य के सामने नहीं होता, वहाँ 'रात' होती है।

पृथ्वी अपनी धुरी पर २४ घंटे में पूरा चक्कर लगा लेती है। इस काल में धरातल के प्रत्येक भाग को एक बार सूर्य के सामने आकर फिर छिप जाना चाहिए अर्थात् धरातल पर एक बार दिन और एक बार रात होगी। रात और दिन दोनों को मिलाकर २४ घंटे का समय होता है। परन्तु रात और दिन सदा बराबर नहीं होते। वे घटते-बढ़ते रहते हैं। हम जानते हैं कि हमारे देश में जाड़ों में रात बड़ी और दिन छोटा होता है। फिर जैसे-जैसे गरमी आती जाती है, दिन बढ़ने लगता और रात छोटी होने लगती है। यह क्यों? रात और दिन तो पृथ्वी के आवर्त्तन के कारण होते हैं, परन्तु उनके घटने-बढ़ने का कारण वस्तुतः पृथ्वी की परिक्रमा और उसकी धुरी का झुकाव ही है। परिक्रमा-मार्ग पूर्ण वृत्त नहीं है, इससे इस मार्ग में दो स्थान ऐसे हैं, जहाँ आने पर पृथ्वी सूर्य के सबसे अधिक समीप हो जाती है, और दो स्थान ऐसे हैं, जो सूर्य से परिक्रमा-मार्ग के अन्य स्थानों की अपेक्षा सबसे अधिक दूर हैं। २१ मार्च और २३ सितम्बर को पृथ्वी सूर्य के सबसे निकट तथा २१ जून और २१ दिसम्बर के दिन सबसे अधिक दूर की स्थिति में होती है। अगले पृष्ठ के चित्र से यह तथ्य पूर्णतया स्पष्ट है।

पृथ्वी की इन स्थितियों के फलस्वरूप धरातल पर सूर्य से आनेवाले प्रकाश और गरमी में अन्तर पड़ जाता है। जब पृथ्वी सूर्य की निकटवाली स्थिति में आ जाती है, उस समय (अर्थात् २१मार्च और २३ सितम्बर को) पृथ्वी का प्रत्येक भाग २४ घंटे में सूर्य के सामने आ जाता है और सूर्य ठीक भूमध्य-रेखा के ऊपर होता है। इन अवस्थाओं में पृथ्वी के प्रत्येक भाग में दिन और रात बराबर होते हैं। इन स्थितियों को क्रमशः 'वसंत संपात' और 'शरद् संपात' कहते हैं।

उधर पृथ्वी की परिक्रमा के मार्ग के दो स्थान सबसे अधिक दूर हैं, उन पर वह क्रमशः २१ जून और २१ दिसम्बर को पहुँचती है। ये स्थान ऐसे हैं कि जहाँ पृथ्वी की धुरी के झुकाव के कारण उसका कुछ भाग तो बराबर २४ घंटे तक सूर्य के प्रकाश में रहता है और कुछ भाग पूर्ण अंधकार में! उदाहरणार्थ २१ जून को पृथ्वी का उत्तरी सिरा बराबर सूर्य के प्रकाश में रहता है, इसलिए वहाँ उस समय चौबीसों घंटे दिन रहता है। परन्तु इस दिन पृथ्वी का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दूसरा छोर इस प्रकार पीछे की ओर झुका रहता है कि वहाँ पर सूर्य की किरणें पहुँच ही नहीं पातीं। अतः वहाँ पूर्ण अंधकार अर्थात् चौबीसों घंटे रात होती है।

पृथ्वी की इस स्थिति में धरातल के जिन स्थानों पर सूर्य ठीक सिर पर चमकता है, यदि उनको एक रेखा के द्वारा मिलाया जाय, तो जो वृत्त बनेगा उसे 'कर्क-रेखा' का नाम दिया गया है। कर्क-रेखा के पृथ्वी के उत्तरी छोर की ओर ज्यों-ज्यों जाएँ, त्यों-त्यों दिन बड़ा होता जाता है और ठीक छोर पर पहुँचने पर २४ घंटे का दिन होता है। यदि कर्क-रेखा से दक्षिणी छोर की ओर चला जाय, तो दिन छोटा और रात बड़ी होती है। भूमध्य-रेखा पर पहुँचने से रात और दिन बराबर हो जाते हैं। इस समय अर्थात् २१ जून के लगभग दक्षिणी छोर पर रात २४ घंटे की होती है।

२१ दिसम्बर को पृथ्वी का उत्तरी छोर बिल्कुल अँधेरे में रहता है और वहाँ पर २४ घंटे की रात होती है। इस स्थिति में जिन स्थानों पर सूर्य ठीक ऊपर होता है, उनको मिलानेवाली रेखा को 'मकर - रेखा' कहते हैं। इस समय दक्षिणी छोर पर २४ घंटे का दिन होता है, क्योंकि उस समय वह भाग बराबर सूर्य के सामने रहता है। पृथ्वी की इस दशा में हम दक्षिणी छोर से जितना ही उत्तर की ओर हटते जायँगे, दिन उतना ही छोटा और रात बड़ी होती जाएगी। परन्तु पृथ्वी के मध्यभाग पर इस समय भी दिन और रात बराबर होंगे। २१ दिसम्बर और २१ जून की पृथ्वी की स्थिति को क्रमशः 'शीत-अयन-बिन्दु' तथा 'ग्रीष्म-अयन-बिन्दु' कहते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पृथ्वी की धुरी के झुके होने से रात और दिन छोटे और बड़े होते हैं। यदि हम आकाश में सूर्य के निकलने और अस्त होने की जगहों को कई दिन तक ध्यान से देखें, तो हमें यही पता चलेगा कि वे जगहें दिन-प्रति-दिन बदलती हैं। ज्यों ज्यों गरमी की ऋतु आती है और दिन बड़े होने लगते हैं, त्यों-त्यों सूर्योदय का स्थान धीरे-धीरे उत्तर-पूर्व की ओर हटता जाता है। जाड़े में इसके विपरीत दक्षिण-पूर्व की ओर सूर्योदय होता है। इसका कारण यही है कि पृथ्वी अपना स्थान प्रति दिन बदलती रहती है। जिस स्थान से सूर्य हमें पिछले दिन दिखाई दिया था, दूसरे दिन उस स्थान से पृथ्वी आगे बढ़ जाती है।

पृथ्वी की दैनिक और वार्षिक गति के परिणाम-स्वरूप पृथ्वी पर सूर्य की किरणों द्वारा आनेवाली गरमी में भी हेर-फेर होता है। पृथ्वी की धुरी का झुकाव भी इस हेर-फेर में बहुत अधिक सहायता पहुँचाता है। जब रात से दिन अधिक बड़ा होता है, तब सूर्य की किरणों से हमें अधिक गरमी मिलती है। उस समय को हम 'ग्रीष्म ऋतु' कहते हैं। इसके विपरीत जब दिन छोटा और रात बड़ी होती है, तब सूर्य से हमें कम गरमी मिलती है और रात में ठंडक होने लगती है। इस समय को हम 'शीत ऋतु' या 'जाड़ा' कहते हैं।

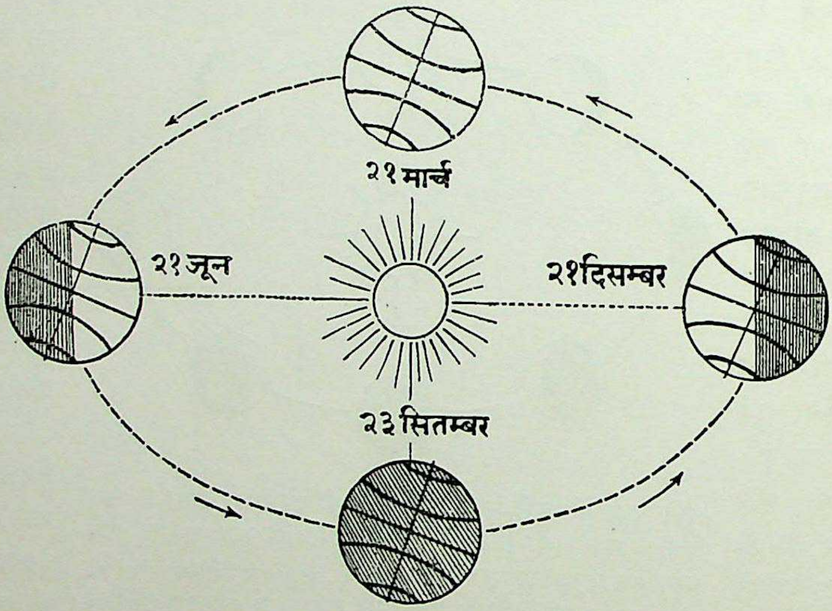

प्रस्तुत चित्र में सूर्य के आसपास पृथ्वी के परिभ्रमण-पथ की विभिन्न स्थितियाँ दिखाई गई हैं। ग्रीष्म एवं शीत-अयन-बिन्दु (२१ जून और २१ दिसंबर) और वसन्त एवं शरद् संपात (२१ मार्च और २३ सितंबर) की स्थिति दिग्दर्शित है।

पृथ्वी के सिरों के निकटवाले स्थानों पर गरमी में दिन अधिक बड़ा और जाड़े में रात अधिक बड़ी होती है। इसलिए उन स्थानों पर ताप का बेहद उतार-चढ़ाव होता रहता है।

पृथ्वी की धुरी के झुकाव एवं उसकी दीर्घवृत्ताकार कक्षा का उसकी जलवायु के निर्माण में गहरा हाथ है। इन्हीं की बदौलत हमारे ऋतु-चक्र की सृष्टि हुई है, जिसके संबंध में आगे चलकर अधिक जानकारी आप पाएँगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भौगोलिक स्थितिसूचक रेखाएँ :: 'अक्षांश' और 'देशान्तर'

धरातल के विभिन्न भागों की स्थिति का निर्णय करने के लिए ऐसे किसी साधन का होना आवश्यक है, जिसका हवाला दे कर हम यह बता सकें कि अमुक स्थान अमुक जगह पर है । आइए, देखें इस संबंध में भूगोल के पंडितों ने क्या युक्ति निकाली है ।

भूगोल के अध्ययन के लिए हमें यह जान लेना चाहिए कि विभिन्न देश कहाँ स्थित हैं। धरातल पर कोई ऐसा स्थान होना आवश्यक है, जिसका हवाला देकर हम यह बता सकें कि अमुक देश उस स्थान से इतनी दूर उत्तर या दक्षिण और इतनी दूर पूरब या पश्चिम में है ।

उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव तथा भूमध्य रेखा

हमारी पृथ्वी गोल है; इस कारण इसका कोई किनारा नहीं है, जिससे हम दूरी की नाप बता सकें । इसलिए हमें धरातल पर किसी ऐसे स्थान को खोजना पड़ता है, जो सदैव स्थिर रहे। पृथ्वी एक कल्पित धुरी पर निरन्तर घूमती रहती है । जहां इस धुरी के दोनों छोर पृथ्वी को छूते हैं, वे स्थान धरातल के अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक स्थिर प्रतीत होते हैं। भाग्य से इन दोनों स्थानों में से उत्तर-वाला प्रदेश आकाश में चमकनेवाले ध्रुवतारे के ठीक नीचे रहता है। ध्रुवतारे की यह स्थिति सदैव एक-सी रहती है। इसलिए इस प्रदेश का नाम 'उत्तरी ध्रुव-प्रदेश' रख लिया गया है । दक्षिणवाले स्थान का नाम भी इसी के अनुसार 'दक्षिणी ध्रुव-प्रदेश' रक्खा गया है । दक्षिणी ध्रुव पर 'सदर्न क्रास' नामक तारा-समूह सदैव ठीक सिर पर चमकता है। इस प्रकार ध्रुव-प्रदेशों की स्थिति स्थिर-सी हो जाती है ।

इन दोनों ध्रुवों के बीच में पृथ्वी पर एक ऐसी रेखा मान ली गई है, जो सारे धरातल को दो बराबर भागों में बाँटती है। इसे 'भूमध्य रेखा' या 'विषुवत् रेखा' कहते हैं । यह रेखा भी कल्पित है । यह पृथ्वी को जिन दो खण्डों में विभाजित करती है, उन्हें उत्तरी और दक्षिणी गोलार्द्ध के नाम से पुकारा जाता है । विषुवत् रेखा पृथ्वी के बीचोबीच उसके चारों ओर जाती है । इस प्रकार यह रेखा पृथ्वी की परिधि की नाप का एक पूर्ण वृत्त बनाती है । इस वृत्त की लंबाई करीब २५,००० मील है ।

अक्षांश और देशान्तर

विषुवत् रेखा की सहायता से किसी स्थान की भौगोलिक स्थित का पता लगाया जाता है। इसलिए इस रेखा को 'शून्य रेखा' माना गया है । उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव इस रेखा के किसी बिन्दु से पृथ्वी के केन्द्र पर ९०° का कोण बनाते हैं। यदि प्रत्येक अंश के कोण पर विषुवत् रेखा के समानान्तर रेखाएँ खींची जाएँ, तो उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव तक प्रत्येक गोलार्द्ध में ९० रेखाएँ होंगी। इन रेखाओं को 'अक्षांश' के नाम से पुकारा जाता है । अक्षांश रेखा की सहायता से किसी स्थान की विषुवत् रेखा के उत्तर या दक्षिण की स्थिति मालूम हो जाती है। यदि कोई स्थान विषुवत् रेखा के उत्तर में २५ वीं रेखा पर है, तो उसके अक्षांश को २५° उत्तरी अक्षांश कहते हैं। इसी प्रकार दक्षिण गोलार्द्ध में स्थित ऐसे ही स्थान के लिए २५° दक्षिणी अक्षांश का उल्लेख किया गया है । प्रत्येक दो अक्षांश के बीच के भाग को ६० बराबर भागों में विभाजित कर लिया जाता है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐसे प्रत्येक भाग को 'पल' या 'मिनट' कहते हैं। पल को भी ६० भागों में बांटा जाता है। ऐसे प्रत्येक भाग को 'विपल' अथवा 'सेकंड' कहते हैं। इस प्रकार उत्तर-दक्षिणी दोनों गोलार्द्धों में कुल १८० अक्षांश माने गए हैं। ध्रुव-प्रदेशों में ९०° सूचक अन्तिम अक्षांश रेखाएँ शून्य बिन्दु को सूचित करती हैं।

विषुवत् रेखा को यदि ३६० बराबर भागों में विभाजित किया जाय, तो प्रत्येक भाग पृथ्वी के केन्द्र पर एक-एक अंश का कोण बनाएगा। विषुवत् रेखा के इन बिन्दुओं को यदि ९० अंश उत्तरी और दक्षिणी अक्षांशवाले बिन्दुओं अर्थात् ध्रुव-प्रदेशों से रेखाओं द्वारा मिलाया जाय, तो धरातल पर ३६० रेखाएँ उत्तर-दक्षिणी ध्रुवों को मिलाती हुई खिंच जायेंगी। ये रेखाएँ उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों पर तो एक बिन्दु में मिल जाती हैं, परन्तु विषुवत् रेखा पर सबसे अधिक अन्तर पर होती हैं। इन रेखाओं को 'देशान्तर रेखाएँ' कहते हैं। इन पर भी अंक डाल दिए गए हैं और किसी एक को शून्य मानकर उसी के क्रम से अन्य रेखाओं के अंक पढ़े जाते हैं।

जिस तरह अक्षांश रेखा विषुवत् रेखा से उत्तर-दक्षिण की स्थिति बताती है, उसी प्रकार देशान्तर रेखाएं विषुवत् रेखा के किसी भी बिन्दु से किसी स्थान की पूर्वीय अथवा पश्चिमी स्थिति बताती हैं। अक्षांश रेखाएँ धरातल पर पूर्ण वृत्त बनाती हैं। परन्तु अक्षांश रेखाओं के वृत्त, जैसे-जैसे विषुवत् रेखा से उत्तर या दक्षिण को हम चलें, छोटे होते जाते हैं। ये वृत्त समानान्तर होते हैं। देशान्तर रेखाएँ सब बराबर होती हैं तथा वे अर्द्ध-वृत्त बनाती हैं। सब देशान्तर रेखाएँ लम्बाई में बराबर होती हैं परन्तु वे समानान्तर नहीं होतीं। भूमध्य अथवा विषुवत् रेखा के पास उनके बीच सबसे बड़ा अन्तर होता है। उत्तर या दक्षिण की ओर यह अन्तर घटता जाता है। ध्रुवों के पास ये सब रेखाएँ एक बिन्दु में मिल जाती हैं। देशान्तर रेखाओं की संख्या ३६० है, परन्तु पृथ्वी के पूर्वीय तथा पश्चिमीय गोलार्द्धों में विभक्त होने के कारण प्रत्येक गोलार्द्ध में केवल १८० देशान्तर रेखाएँ होती हैं।

इन रेखाओं की उपयोगिता

अक्षांश और देशान्तर रेखाओं की सहायता से किसी भी स्थान का पता ठीक-ठीक लगाया जा सकता है। किसी स्थान को केवल अक्षांश या केवल देशान्तर रेखा से उसका पता लगाना असम्भव होगा। यदि यह कहा जाय कि अमुक स्थान २५° उत्तरी अक्षांश पर है, तो उस स्थान का पता लगाना असम्भव है; क्योंकि २५° उत्तरी अक्षांश रेखा भूमध्य रेखा से २५° उत्तर की ओर पृथ्वी के चारों ओर फैली है। परन्तु यदि यह कहा जाय कि वह स्थान २५° उत्तरी अक्षांश और ८०° पश्चिमी देशान्तर पर है, तो उस स्थान को ढूँढने में तनिक भी कठिनाई न होगी। ये दोनों रेखाएँ जहाँ पर एक दूसरे को काटती हैं, वही अभीष्ट स्थान होगा।

अक्षांश और देशान्तर रेखाओं का महत्त्व सबसे अधिक समुद्र-यात्रा करनेवाले जलयानों के लिए है। अपार जलराशि पर यात्रा करते हुए नाविक अक्षांश और देशान्तर रेखाओं की सहायता से यह पता लगा लेते हैं कि वे कहाँ पर हैं। इन रेखाओं की सहायता से वे किसी भी देश का सबसे सुगम और कम लम्बा मार्ग भी हम जान सकते हैं। किसी अज्ञात स्थान पर पहुँचने पर उसकी स्थिति अक्षांश और देशान्तर रेखाओं की सहायता से मालूम की जा सकती है; परन्तु ऐसे स्थान की अक्षांश और देशान्तर रेखाएँ कैसे मालूम हो सकती हैं? आइए, इसकी भी युक्ति हम आपको बताएँ।

अक्षांश का पता कैसे लगाया जा सकता है

किसी स्थान का अक्षांश निश्चित करने के लिए उत्तरी गोलार्द्ध अथवा विषुवत् रेखा के उत्तरी प्रदेशों में ध्रुवतारे से बड़ी सहायता मिलती है। उत्तरी ध्रुव पर यह तारा क्षितिज रेखा से समकोण बनाता हुआ ठीक सिर के ऊपर दिखाई देता है। भूमध्य रेखा पर यह तारा क्षितिज पर दिखाई देता है। दक्षिणी गोलार्द्ध में यह तारा अदृश्य हो जाता है। इस प्रकार उत्तरी गोलार्द्ध में किसी स्थान पर, ध्रुवतारा क्षितिज के साथ जितने अंश का कोण बनाता है वही उस स्थान का अक्षांश होता है। ध्रुवतारे की स्थिति नापने के लिए ऊँचाई तथा कोण नापने के 'सेक्स्टेन्ट' नामक यन्त्र की सहायता ली जाती है। यन्त्र के अभाव में कुछ अनुमान से भी काम लिया जा सकता है। जो स्थिति उत्तरी ध्रुव पर ध्रुवतारे की है, वही स्थिति दक्षिणी ध्रुव पर सदर्न क्रास नामक तारा-समूह की है। इसलिए दक्षिणी गोलार्द्ध में सदर्न क्रास की सहायता से अक्षांश का पता लगाया जा सकता है।

अक्षांश का पता सूर्य की सहायता से भी लगाया जा सकता है। २१ मार्च और २३ सितम्बर को दोपहर के समय सूर्य विषुवत् रेखा के ठीक ऊपर होता है, और ध्रुवों पर क्षितिज को छूता है। इसलिए इन दिनों सूर्य की ऊँचाई के कोण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

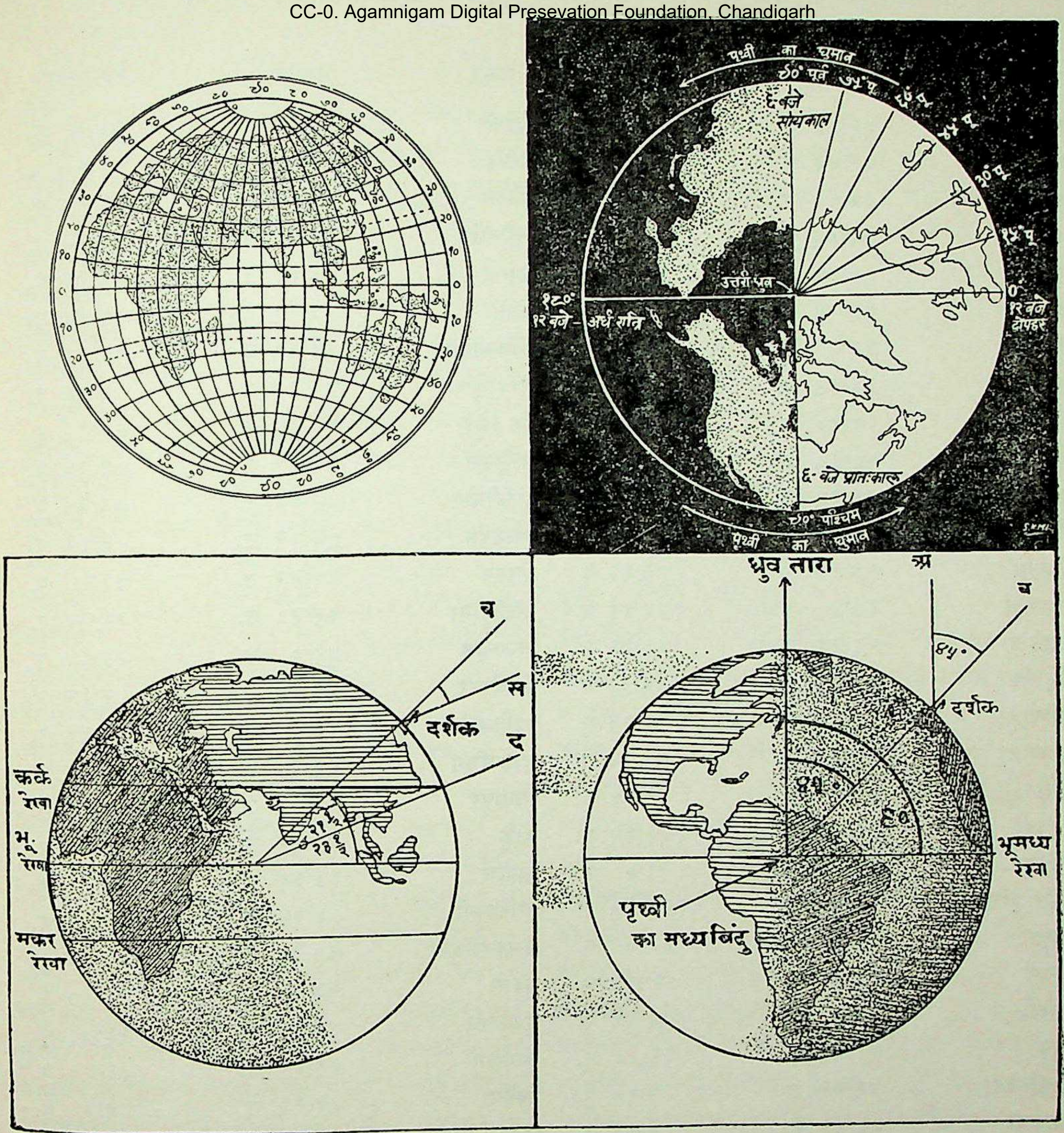

ठीक-ठीक अक्षांश और देशान्तर जानने की विधि (ऊपर बाईं ओर)—समानान्तर आड़ी रेखाएँ 'अक्षाँश' और असमानान्तर खड़ी रेखाएँ 'देशान्तर' हैं। दाहिनी ओर—पृथ्वी पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है, अतएव०° देशान्तर के स्थानों में जब दिन में १२ बजेंगे, उस समय ९०° पूर्वीय देशान्तर पर शाम के ६, ९०° पश्चिमी देशान्तर पर सुबह के ६, और १८०° देशान्तर पर रात के १२ बज रहे होंगे (बाईं ओर) द दोपहर को कर्करेखा पर सूर्य के ठीक सिरे पर होने की वास्तविक स्थिति और स दर्शक को अपनी जगह से दिखाई दे रही सूर्य की स्थिति है। सेक्स्टेन्ट द्वारा दर्शक की शिरोबिन्दु-रेखा ब और सूर्य की स्थिति रेखा का कोण २१½° निकलता है। इसमें विषुवत् रेखा और कर्क रेखा के कोण का अंश २३½° जोड़ने से दर्शक को अपने स्थान का ठीक अक्षांश ४५° मिल जाता है। (दाहिनी ओर) रात को सूर्य के बदले ध्रुव तारे (या सदर्न क्रास) की स्थिति द्वारा अक्षांश जाना जा सकता है। अ दर्शक को अपने स्थान से दिखाई दे रही ध्रुव की स्थिति और ब उसका शिरोबिन्दु है। अ और ब के बीच का कोण ४५° है। इसको विषुवत् रेखा और ध्रुव के बीच के कोण ९०° में से घटाने पर दर्शक के स्थान का ठीक अक्षांश ४५° मिल जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संसार के प्रमुख नगरों के अक्षांश और देशान्तर

नगर	अक्षांश	देशान्तर	नगर	अक्षांश	देशान्तर
लन्दन	५१·३० उ.	०·५ पू.	दिल्ली	२८·३८ उ.	७७.१२ पू.
न्यूयार्क	४०·४३ उ.	७३·२ प.	मार्सेइ	४२·२० उ.	३·३० पू.
टोकियो	३४·४० उ.	१३८·४५ पू.	ब्रूसेल्स	५०·५२ उ.	४·२२ पू.
बर्लिन	५२·३२ उ.	१३·२५ पू.	क्लीवलैंड	४१·२८ उ.	८१ ४० प.
मॉस्को	५५·४५ उ.	३७·३७ पू.	नेपल्स	४०·५१ उ.	१४·२६ पू.
शंघाई	३५·१५ उ.	१२१·२६ पू.	कैंटन	२३.११ उ.	१३३·१४ पू.
शिकागो	४२·० उ.	८७·४० प.	कोपनहेगन	५५·४० उ.	१२·३० पू.
ओसाका	३४·३६ उ.	१३५·२७ पू	लीवरपूल	५३.२४ उ.	२·५८ प.
पेरिस	४८·५० उ.	२·२० पू.	सेंट ल्युई	३८·३६ उ.	६०·१३ प.
लेनिनग्राड	५६·५७ उ.	३२·२० पू.	मांट्रियल	४५·३१ उ.	७३·३४ प.
ब्यूनस आयर्स	३४·३५ द.	५८·२० प.	बाल्टीमोर	३६·१८ उ.	७६·३७ प.
फिलेडेल्फिया	३६·५७ उ.	७५·१० प.	एम्स्टर्डम	५२.२२ उ.	४·५३ पू.
वियना	४८·१२ उ.	१६·२२ पू.	बोस्टन	४२·२२ उ.	७१·२ प.
मैलबोर्न	३७·५० द.	१४४·५६ पू.	यॉकोहामा	३५·२५ उ.	१३६·३६ पू.
रायो द जेनिरो	२२·५५ द.	४३·१२ प.	इस्तम्बूल	४१·० उ.	२६·० पू.
डेट्रायट	४२·२१ उ.	८३·३ प.	मैनचैस्टर	५३·२८ उ.	२·१२ प.
पेकिंग	३६·५५ उ.	११६·२४ पू.	म्यूनिख	४८·८ उ.	११·३५ प.
कलकत्ता	२२·३४ उ.	८८·२४ पू	लाइपजिग	५१·२० उ.	१२·२३ पू.
कैरो	३०·२ उ.	३१·१५ पू.	सिंगापुर	१·१७ उ.	१०३·५१ पू.
सिडनी	३३·५२ द.	१५१·१२ पू.	बाकू	४०·२२ उ.	४६·५० पू.
वॉरसा	५२·१२ उ.	२१·० पू.	सियोल	३७·३१ उ.	१२७·६ पू.
लॉस एंजिल्स	३४ ३ उ.	११८·१७ प.	सांटियागो	३३·२४ द.	७०·४५ प.
हाम्बर्ग	५३·३५ उ.	१०·० पू.	अलैक्जांड्रिया	३६·३६ उ.	३६·१० पू.
बम्बई	१८·५५ उ.	७२·५४. पू.	मद्रास	१३·४ उ.	८०·१७ पू.
क्योटो	३५·१ उ.	१३५·४५ पू.	बुखारेस्ट	४४·२५ उ.	२६·७ पू.
रोम	४१·५५ उ.	१२·२८ पू.	चुंगकिंग	२६·२२ उ.	१०६·५० पू.
बार्सीलोना	४१·२२ उ.	२·१० पू.	जिनेवा	४६.१३ उ,	६·७ पू.
ग्लासगो	५५·५२ उ.	४·१५ पू.	सेनफ्रांसिस्को	३७·४८ उ.	१२२ २५ प.
साँ पॉलो	२३·३८ द.	४६·३७ प.	टोरंटो	४३·३६ उ.	७६·२० प.
मिलान	४५·२७ उ.	६·१० पू.	लिस्बन	३८·४४ उ.	६·६ प.
बुडापैस्ट	४७·२६ उ.	१६·३ पू.	स्टॉकहॉम	५६·२० उ.	१८·० पू.
मैड्रिड	४०·२४ उ.	३·४२ पू.	हैग	५२·६ उ.	४·२० पू.
बर्मिंघम	५२·२८ उ.	१·५५ पू.	वॉशिंगटन	३८·५५ उ.	७७·४ प.
मैक्सिको	३४·४१ उ.	१२५·१२ प.	एडिनबर्ग	५५·५६ उ.	३·१२ प.
रंगून	१६·४५ उ.	६६·१३ पू.	डब्लिन	५३·२१ उ.	६·१६ प.
प्रॉग	५०·५ उ.	१४·२५ पू.	हैदराबाद	१७·२० उ.	७८·३० पू.
बंकॉक	१३·४२ उ.	१००·३० प.	कोलंबो	६·५६ उ.	७६·५६ पू.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारत के प्रमुख नगरों के अक्षांश और देशान्तर

नगर	अक्षांश	देशान्तर	नगर	अक्षांश	देशान्तर
बम्बई	१८·५५ उ.	७२·५४ पू.	देहरादून	३०·२८ उ.	७८·४ पू.
कलकत्ता	२२·३४ उ.	८८·२४ पू.	अलीगढ़	२७·५४ उ.	७८·६ पू.
दिल्ली	२८·३७ उ.	७७·१२ पू.	भावनगर	२१·४६ उ.	७२·११ पू.
नई दिल्ली	२८·३८ उ.	७७·१२ पू.	कोल्हापुर	१६·४२ उ.	७४·१६ पू.
मद्रास	१३·४ उ.	८०·१७ पू.	भाटपाड़ा	२२·५४ उ.	८८·२५ पू.
हैदराबाद	१७·२० उ.	७८·३० पू.	रामपुर	२८·४८ उ.	७९·५ पू.
अहमदाबाद	२३·२ उ.	७२·३८ पू.	गया	२४·४८ उ.	८५·१ पू.
बंगलोर	१२·५८ उ.	७७·३८ पू.	वारंगल	१७·५८ उ.	७९·४० पू.
कानपुर	२४·२८ उ.	८०·२४ पू.	गोरखपुर	२६·४५ उ.	८३·२४ पू.
लखनऊ	२६·५५ उ.	८०·५९ पू.	राजकोट	२२·१८ उ.	७०·५९ पू.
पूना	१८·१३ उ.	७३·५५ पू.	उज्जैन	२३·९ उ	७५·४३ पू.
नागपुर	२१·९ उ.	७९·९ पू.	हुबली	१५·२० उ.	७५·१२ पू.
हावड़ा	२२·३५ उ.	८८·२३ पू.	झाँसी	२५·२७ उ.	७९·३७ पू.
आगरा	२७·१० उ.	७८·५ पू.	गुंटूर	१६·१८ उ.	८७·२९ पू.
मदुरा	९·५८ उ.	७८·१० पू.	बीकानेर	२८·१ उ.	७३·२२ पू.
वाराणसी	५०·२० उ.	८३·० पू.	मंगलोर	१२·५२ उ.	७४ ५३ पू.
इलाहाबाद	२५·२८ उ.	८१·५४ पू.	अलेप्पि	९·३० उ.	७६·२३ पू.
अमृतसर	३१·३७ उ.	७४·५५ पू.	भागलपुर	२५·१५ उ.	८७·२ पू.
इंदौर	२२·४४ उ.	७५·५० पू.	विशाखापट्टम	१७·४२ उ.	८३·२० पू.
जयपुर	२६·५५ उ.	९२·२६ पू.	राँची	२३·२३ उ.	८५·२३ पू.
पटना	२५·३७ उ.	८५·१३ पू.	मथुरा	२७·२८ उ.	७७·४१ पू.
शोलापुर	१७ ४० उ.	७५·५६ पू.	शाहजहाँपुर	२७·५४ उ.	७९·५७ पू.
जबलपुर	२३·१० उ.	७९·५९ पू.	भोपाल	२३·१६ उ.	७७·३६ पू.
मैसूर	१२·१८ उ.	७६·४४ पू.	मंसूरी	७०·२३ उ.	७८·६ पू.
ग्वालियर	२६·१४ उ.	७८·१० पू.	नैनीताल	२९·२६ उ.	७६·३० पू.
सूरत	२२·१२ उ.	७२·५२ पू.	शिमला	३१·६ उ.	७७·२३ पू.
तिरुचिरापल्ली	१०·५० उ.	७५·४६ पू.	उटकमंड	११·२४ उ.	७६·४४ पू.
जमशेदपुर	२२·५० उ.	८६·१० पूः	रामेश्वरम्	९·१७ उ.	७९·२२ पू.
बड़ौदा	२२·० उ.	७३·१६ पू.	मंगेर	२५·२३ उ.	८६·३० पू.
बरेली	२८·२९ उ.	७९·२७ पू.	शिलाँग	४५·३४ उ.	९१·५६ पू.
सेलम	११·३९ उ.	७८·१२ पू.	रानीखेत	२९·४० उ.	७९·३२ पू.
कोयंबटूर	११·० उ.	७७·० पू.	हरिद्वार	२९·५८ उ.	७८·१३ पू.
अजमेर	२६·२७ उ.	७४·४२ पू.	श्रीनगर	३४·६ उ.	७४·५१ पू.
जोधपुर	२६·१८ उ.	७३·४ पू.	दार्जिलिंग	२७·३ उ.	८८·१८ पू.
कोचीन	९·५८ उ.	७६·१७ पू.	जैसलमेर	२६·५५ उ.	७०·५७ पू.
कालीकट	११·१५ उ.	७५·४९ पू.	जालंधर	३१·१९ उ.	७५·१८ पू.
सहारनपुर	२९·५८ उ.	७७·२३ पू.	जम्मू	३२·४४ उ.	७४·५४ पू.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को ९० से घटाने से किसी भी स्थान का ठीक अक्षांश निकल सकता है। २१ जून को दोपहर के समय २३·५° उत्तरी अक्षांश पर सूर्य की स्थिति ठीक सिर के ऊपर होती है। इसलिए इस दिन सूर्य की ऊँचाई में २३·५° जोड़कर ९० से घटाने पर उत्तरी गोलार्द्ध के किसी स्थान का अक्षांश निकालने के लिए उक्त दिन की सूर्य की ऊँचाई के अंश में से पहले २३·५° घटाकर शेष को ९० से घटना चाहिए। २२ दिसम्बर के दोपहर को सूर्य २३·५° दक्षिण अक्षांश पर ठीक सिर पर चमकता है, इसलिए इस दिन अक्षांश निकालने के लिए विपरीत क्रम रहता है। जहाजी पंचांगों में ऐसी सारिणी दी जाती है, जिनसे पता लगाया जा सकता है कि किस तिथि को सूर्य किस अक्षांश पर ठीक सिर पर रहता है। उत्तरी या दक्षिणी गोलार्द्ध के अनुसार उस अक्षांश के अंशों को अज्ञात स्थान के सूर्य की ऊँचाई के अंशों में जोड़कर या काटकर फल को ९० में से घटा देने पर उस स्थान का अक्षांश ज्ञात हो जायगा।

देशान्तर निश्चत करने की विधि

देशान्तर रेखाओं का पता लगाने के लिए सूर्य की स्थिति से सहायता ली जाती है। देशान्तर रेखा को 'मध्याह्न रेखा' भी कहते हैं, क्योंकि इस रेखा पर स्थित सभी स्थानों पर एक ही समय पर दोपहर होता है। पृथ्वी के घूमते रहने के कारण प्रत्येक देशान्तर रेखा बारी-बारी से सूर्य के ठीक सामने आ जाती है। परन्तु विभिन्न देशान्तर रेखाएँ भिन्न-भिन्न समय पर सूर्य के सामने आती हैं। इसलिए उन पर सूर्योदय और दोपहर भिन्न-भिन्न समय पर होंगे। इस प्रकार भिन्न-भिन्न देशान्तर पर प्रातः और मध्याह्न का समय भिन्न हुआ। घड़ी का आविष्कार होने पर इस बात की आवश्यकता हुई कि किसी एक देशान्तर रेखा के समय के अनुसार सारे संसार की घड़ियों का समय रक्खा जाया करे। ऐसी मध्याह्न रेखा को 'आदि मध्याह्न रेखा' कहते हैं। प्रायः सारे संसार में लन्दन के ग्रीनिच नामक स्थान से गुजरनेवाली रेखा ही 'आदि मध्याह्न रेखा' मान ली गई है और इसी के अनुसार सारे संसार भर की घड़ियों का समय मिलाया जाता है। इस रेखा को 'ग्रीनिच देशान्तर रेखा' कहते हैं। इसका नाम ग्रीनिच की वेधशाला से पड़ा है। यह वेधशाला लन्दन के बाहरी भाग में बनी है।

पृथ्वी पर ३६० देशान्तर रेखाएँ खींची गई हैं। पृथ्वी अपना पूरा चक्कर २४ घंटे में लगा लेती है, इसलिए प्रत्येक देशान्तर रेखा को सूर्य के सामने आने में ४ मिनट लगते हैं। चूंकि पृथ्वी पश्चिम से पूर्व की ओर चलती है, इसलिए पहले सूर्य पूर्व की ओर के स्थानों में निकलता है, अर्थात् किसी पूर्वस्थित मध्याह्न रेखा पर उससे पश्चिमस्थित रेखा की अपेक्षा चार मिनट पहले सूर्य निकलेगा, और ४ मिनट पहले दोपहर तथा सूर्यास्त होगा। इसी प्रकार प्रत्येक १५° के पश्चात् देशान्तर रेखाओं के पूर्व या पश्चिमस्थित होने के अनुसार सूर्योदय, मध्याह्न तथा सूर्यास्त १ घंटा पहले या पीछे होगा। किसी नए स्थान का देशान्तर जानने के लिए ग्रीनिच के समय की आवश्यकता होती है। बहुत-से जहाज ग्रीनिच का समय बतानेवाली घड़ी (क्रोनोमीटर) रखते हैं। सूर्य की सहायता से प्रत्येक स्थान का मध्याह्न जाना जा सकता है। स्थानीय मध्याह्न और ग्रीनिच के समय में जितने घंटे या मिनट का अन्तर हो, उन सबके मिनट बनाकर एवं मिनटों की संख्या को ४ से भाग देने पर देशान्तर निकल आयगा। यदि ग्रीनिच का समय पीछे है, अर्थात् वहाँ अभी दिन के १२ नहीं बजे हैं, तो निकाला हुआ देशान्तर ग्रीनिच के पूर्व में होगा। यदि ग्रीनिच का समय आगे है, अर्थात् वहाँ की घड़ी में दिन के बारह बज चुके हैं, तो निकाला हुआ देशान्तर पश्चिम में होगा।

प्रामाणिक समय या 'स्टैण्डर्ड टाइम'

प्रत्येक देशान्तर का भिन्न समय होने से किसी देश में जितने ही देशान्तर होंगे, उतने समय होंगे। पर यदि भिन्न-भिन्न नगर अपने-अपने स्थानीय समय को ही प्रामाणिक मानने लगें, तब तो रेल आदि का कोई सार्वजनिक काम ही न हो सके। इसलिए देश की किसी मध्यवर्त्ती मध्याह्न रेखा का समय प्रामाणिक मान लिया जाता है। रेल, आदि सभी सार्वजनिक विभागों में इसी मध्यवर्त्ती मध्याह्न रेखा के समय से काम लिया जाता है। भारत में मद्रास के समय को ही प्रामाणिक मानते हैं। सभी रेलवे-स्टेशनों और नगरों की घड़ियों में मद्रास का समय रक्खा जाता है। केवल कलकत्ते में इस प्रामाणिक समय के साथ-साथ स्थानीय समय का भी प्रयोग होता है। पर कनाडा आदि कुछ देशों का पूर्वी-पश्चिमी विस्तार इतना अधिक है कि उनके पूर्वी और पश्चिमी तट के स्थानीय समय में प्रायः ५ घंटे का अन्तर रहता है। ऐसे देशों में प्रामाणिक समय के कई कटिबन्ध मान लिए जाते हैं, जिससे स्थानीय समय और प्रामाणिक समय में कहीं भी आधे घंटे से अधिक अन्तर नहीं रहता है। एक महाशय ने सुविधा के लिए संसार को २४ भागों में बाँटा है। इनके अनुसार दो पासवाले भागों में ठीक एक

घंटे का अन्तर रहेगा। यदि सारे संसार में यही समय-विभाग मान लिया जाय, तो भिन्न-भिन्न भागों का समय जानने में बड़ी आसानी होगी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तिथि-रेखा

जिस प्रकार किसी देश में स्थानीय समयों की गड़बड़ी मिटाने के लिए प्रामाणिक समय मानने की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न राष्ट्रों में तिथि-सम्बन्धी गड़बड़ी को दूर करने के लिए 'तिथि-रेखा' का निश्चित करना भी आवश्यक है। प्रति १५° देशान्तर की यात्रा में १ घंटे का अन्तर पड़ते-पड़ते ३६०° की परिक्रमा में २४ घंटे का अन्तर हो जाता है। ग्रीनिच से पश्चिम की ओर जानेवाला जहाज प्रति १५° देशान्तर की यात्रा के बाद १ घंटा घटाता जाता है। इसलिए पूरी परिक्रमा (३६० अंश) में उसका १ दिन घट जाता है। पूर्व की ओर जानेवाला जहाज प्रति १५° देशान्तर की यात्रा में १ घंटा बढ़ा लेता है। इसलिए पूरी परिक्रमा (३६० अंश) में उसका १ दिन बढ़ जायगा। इस गड़बड़ी को दूर करने के लिए प्रायः १८०° देशान्तर रेखा अन्तर्राष्ट्रीय तिथिरेखा मान ली गई है। पश्चिम की ओर जानेवाले जहाज इसी रेखा तक अपना समय प्रति १५° देशान्तर में एक घंटा घटाते हैं। इस रेखा को पार करने पर वे एक तिथि बढ़ा लेते हैं।

मान लो, २६ जून रविवार को यह रेखा पार की, तो रेखा के दूसरी ओर पहुँचते ही वे २७ जून सोमवार कर लेंगे। इसके विपरीत पूर्व की ओर आनेवाले जहाज १८०° देशान्तर को पार करते समय एक दिन घटा लेते हैं। अगर १८०° देशान्तर के पश्चिम से उन्होंने २७ जून सोमवार को प्रस्थान किया, तो इस रेखा के पूर्व में वे २६ जून रविवार को पहुँचेंगे, चाहे मार्ग में उनको एक मिनट भी न लगा हो! इस रेखा को एक दिन में कई बार पार करनेवाले जहाज एक ही दिन में कई बार अपनी तारीख बदलते हैं। इस प्रकार बीच में तिथि बदल लेने से घर पहुँचने पर यात्रियों को वही तिथि मिलती है, जो उनके जहाज पर रहती है। पर उत्तर में एल्यूशियन द्वीप के लोग राजनीतिक कारणों से वही तिथि रखना पसन्द करते हैं, जो एलास्का में रहती है। इसी प्रकार दक्षिण में फिजी और चैथम द्वीप भी न्यूजीलेंड का ही दिन रखना पसन्द करते हैं। इसलिए उत्तर और दक्षिण में अन्तर्राष्ट्रीय तिथि-रेखा कुछ टेढ़ी हो गई है, और फलतः वह १८०° देशान्तर से दूर भी हो गई है। इस प्रकार अक्षांश और देशांतर की सहायता से यात्री महासागरों और निर्जन वनों में भी अपनी ठीक-ठीक स्थिति निश्चित कर लेता है। जिन प्रदेशों में पैमायश न हो सकी, वहाँ अक्षांश और देशान्तर रेखाओं से राजनीतिक सीमा का भी काम लिया गया है। उदाहरण के लिए, संयुक्त राष्ट्र (अमेरिका) और कनाडा के बीच में ४९ वीं उत्तरी अक्षांश बहुत दूर तक राजनीतिक सीमा बनाती है।

देशान्तर के बीच का अन्तर समान नहीं है

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, अक्षांश रेखाएँ एक दूसरे के समानान्तर हैं। अतएव प्रति अक्षांश के बीच का अन्तर हर जगह लगभग ६९ मील है। हाँ, चूँकि पृथ्वी बिल्कुल गोल नहीं है और ध्रुवों पर कुछ-कुछ चपटी है, इसलिए कहीं-कहीं इस नाप में थोड़ा-बहुत फर्क भी है। इसके विपरीत, देशान्तर रेखाएँ असमानान्तर रेखाएँ हैं। अतएव उनके बीच का अन्तर एकसाँ नहीं है। विषुवत् रेखा पर, जहाँ पर आकर देशान्तर रेखाओं के बीच का अंतर सबसे ज्यादा हो गया है, इस अंतर की लंबाई प्रति डिग्री लगभग ६९ मील है। किन्तु ज्यों-ज्यों हम उत्तर या दक्षिण की ओर बढ़ते हैं, त्यों-त्यों यह अंतर कम होता जाता है। ध्रुवों पर जाकर, जहाँ सब देशान्तर रेखाएँ मिलती हैं, वह अन्तर कुछ भी नहीं रह जाता। देशान्तर रेखाओं के बीच के इस अंतर के साथ ज्यों-ज्यों हम उत्तर-दक्षिण में ध्रुव-प्रदेशों की ओर जाएँ, त्यों-त्यों दिन और रात के परिमाण में भी अंतर पड़ता जाता है। यह अन्तर प्रति १० अक्षांश पर क्रमशः कितना कम होता जाता है, तथा उन-उन अक्षांशों का सबसे बड़ा तथा सबसे छोटा दिनमान क्या हैं, यह नीचे की तालिका में दिया जा रहा है:--

अक्षांश	देशान्तर का अंतर	सबसे बड़ा दिन		सबसे छोटा दिन	
(डिग्री)	मील	घं०	मि०	घं०	मि०
०	६९·२	१२	६	१२	
१०	६८·१	१२	३८	११	३०
२०	६५·०	१३	१८	१०	५२
३०	६०·०	१४	०	१०	१०
४०	५३·१	१४	५८	९	१६
५०	४४·६	१६	१८	८	०
६०	३४·७	१८	४४	५	४४
७०	२३·७	२४	०	०	०
८०	१२·५	२४	०	०	०
९०	०	२४	०	०	०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नक्शे द्वारा भौगोलिक परिस्थितियों का अध्ययन

घर बैठे भूगोल का अध्ययन करने के लिए सर्वोत्तम साधन पृथ्वी के विभिन्न भागों के विभिन्न प्रकार के नकशे या मानचित्र हैं। ये नकशे क्या और कैसे होते हैं, तथा किस तरह बनाए जाते हैं, इनका व्योरा इस प्रकरण में दिया जा रहा है।

रातल के किसी भाग का भौगोलिक ज्ञान प्राप्त करने का सर्वोत्तम साधन है उस प्रदेश की यात्रा करना और उसके ऊँचे-नीचे प्रदेशों, नदियों और घाटियों, झीलों और समुद्र-तटों, आदि का स्वयं अपनी आँखों से निरीक्षण करना। उस प्रदेश में जाकर, उसके जंगलों और मैदानों में घूमकर, नगरों और देहातों तथा कारखानों और खानों में काम करनेवालों को देखकर, यह पता लगाया जा सकता है कि देश कैसा है, उसमें कैसे लोग बसते हैं, तथा उनका रहन-सहन कैसा है। यात्रा करने के लिए आज हमारे पास अनेकों साधन भी हैं। न केवल पैरों चलकर बल्कि गाड़ी, बाइसिकिल, मोटर, रेल आदि में बैठकर या वायुयानों द्वारा उड़कर भी आज यात्रा की जा सकती है। इन्हीं साधनों की सहायता से मनुष्य ने धरातल के विषय में बहुत-कुछ ज्ञान प्राप्त किया है। पर इस प्रकार यात्रा करनेवाले जिन-जिन प्रदेशों में जाते हैं, उनके सम्बन्ध में अपने निजी अनुभव तथा वहाँ के निवासियों की प्रकृति, रहन-सहन आदि का वर्णन प्रकाशित करते हैं। चूँकि हर व्यक्ति ऐसी यात्राएँ करने में असमर्थ नहीं होता, इसलिए बहुतेरे लोगों को धरातल का भौगोलिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन यात्रियों तथा अनुसंधानकर्त्ताओं के अनुभव और ज्ञान संबंधी विवरण को पुस्तकों में पढ़कर ही संतोष कर लेना पड़ता है। इस प्रकार की भौगोलिक ज्ञान-सामग्री में एक महत्वपूर्ण स्थान धरातल के अभिन्न भागों के भाँति-भाँति के नकशों या मानचित्रों को प्राप्त है। ये नकशे क्या हैं और कैसे बनाये जाते हैं, आइए देखें।

नक़शे या मानचित्र क्या हैं और क्यों बनाये जाते है ?

नकशा धरातल के किसी भाग का ऐसा चित्र है, जिसमें उस भाग सम्बन्धी अनेक भौगोलिक बातों का संकेतों द्वारा निदर्शन होता है। अतएव यह जानना जरूरी है कि ये संकेत क्या हैं तथा ये भौगोलिक मानचित्र या नकशे कैसे बनाये जाते हैं। प्रायः नकशे के एक किनारे पर एक तालिका आपने देखी होगी। इस तालिका में प्रत्येक चिह्न या संकेत के अर्थ दिये जाते हैं। परन्तु नकशे में बहुत-सी बातें ऐसी भी होती हैं, जिनको साधारणतः बिना चिह्नों या संकेतों के भी समझा जा सकता है। जल और स्थल, पर्वत, नदियाँ, झीलें आदि का पता नकशों में साधारणतः बिना चिह्न के भी लग जाता है, क्यों उनके लिए अलग रंग प्रयुक्त होते हैं। कुछ नकशों में स्थाल की नीचाई-ऊँचाई दिखाने के लिए उन्हें एक ही प्रकार के रंग से हलका और गहरा दिखाते हैं। पृथ्वी के इस प्रकार के नकशों से हम बड़ी आसानी से पता लगा सकते हैं कि धरातल पर कहाँ ऊँची पर्वत-श्रेणियाँ हैं, कहाँ समतल मैदान हैं, और कहाँ पर पठार हैं। इस प्रकार के नकशों से यह भी पता चलता है कि समुद्र कहाँ पर कितना गहरा है। अलग-अलग गहराई के लिए एक ही प्रकार के रंग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की क्रमशः अधिक हलकी या गहरी श्रेणियों का प्रयोग किया जाता है। समुद्र की विभिन्न गहराइयों को दिखानेवाले ऐसे नकशों को "चार्ट" कहते हैं। चार्ट में गहराई के साथ-ही-साथ समुद्र की लहरों का रुख भी दर्शाया जाता है। इनमें बन्दरगाहों, टापुओं तथा प्रकाशस्तम्भों आदि की स्थिति का भी ज्ञान कराया जाता है। इन्हीं चार्टों की सहायता से जहाज चलानेवाले अपने मार्ग में आनेवाली बाधाओं से सचेत होकर दुर्घटनाओं से बचते हैं।

भाँति-भाँति के मानचित्र

हमारी पृथ्वी गोल है, इसलिए इसका सच्चा नकशा गोले के रूप में ही बनाया जा सकता है। ऐसे गोले को, जिस पर पृथ्वी के धरातल का नकशा बनाया जाता है, ग्लोब कहते हैं (देखिए इसी पृष्ठ का चित्र)। इस गोले के धरातल पर सब भौगोलिक परिस्थितियाँ उसी प्रकार अंकित की जाती हैं, जैसी वे पृथ्वी के धरातल पर हैं।

कुछ नकशे ऐसे होते हैं, जिन पर विभिन्न प्रदेशों की ऊँचाई-नीचाई का ज्ञान इस प्रकार अंकित किया जाता है कि हम अपने हाथ से छूकर साथ ही आँखों से देखकर भी यह बता सकते हैं कि कहाँ पर ऊँचे-ऊँचे पर्वत हैं, कहाँ गहरी घाटियाँ हैं, कहाँ-कहाँ नदियाँ बहती हैं और कहाँ मैदान हैं। इस प्रकार के नकशे 'रिलीफ' नकशे कहलाते हैं। रिलीफ नकशे अधिकतर मिट्टी या गोंद से चिपकाये हुए कागजों को उभारकर बनाए जाते हैं।

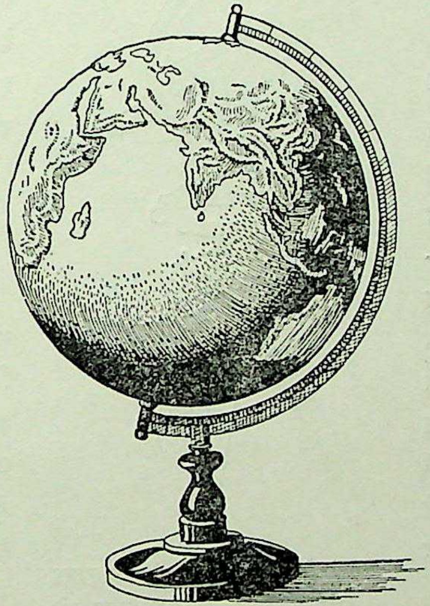

पृथ्वी का गोला या ग्लोब, जो पाठशालाओं में प्रयुक्त होता है।

कुछ नकशे ऐसे होते हैं, जिनमें विविध देशों का विस्तार और उनकी सीमाएँ बनी होती हैं। ऐसे नकशों को 'राजनीतिक' नकशे कहते हैं, क्योंकि इनमें राष्ट्रों की राजनीतिक रूपरेखा दिग्दर्शित होती है। विभिन्न प्रकार के नकशों में विभिन्न प्रकार की बातें दर्शाई जाती हैं। किसी नकशे में वर्षा का वर्णन होता है, अर्थात् कहाँ पर कम और कहाँ पर अधिक वर्षा होती है। किसी में धरातल के ठण्डे और गरम प्रदेशों का विस्तार दिखाया जाता है। किसी में हवाओं के वेग और उनकी दिशाओं आदि का वर्णन होता है। किसी में स्थल, जल और नभ तीनों क्षेत्रों के यातायात के मार्गों का ही मोटे तौर पर निर्देश होता है। कुछ नकशों में धरातल पर होनेवाली वनस्पतियों का हाल रहता है, जैसा कि कहाँ पर घने वन हैं; कहाँ पर उपजाऊ देश और कहाँ पर वीरान प्रदेश हैं; कहाँ पर गेहूँ उत्पन्न होता है; कहाँ पर चावल, और कहाँ पर कपास या तिलहन की पैदावार होती है, आदि आदि। कुछ ऐसे भी नकशे बनाये जाते हैं, जिनमें विभिन्न स्थलों की आबादी का हाल अंकित होता है। इनमें दिखाया जाता है कि किस स्थल में कौन जाति के मनुष्य बसते हैं और किस प्रदेश की आबादी सबसे घनी तथा किस की सबसे कम है। कुछ नकशों में खनिज पदार्थों ही की उपज का हाल अंकित रहता है। इन नकशों से यह मालूम होता है कहाँ से लोहा निकलता है, और कहाँ से कोयला; कहाँ तेल पैदा होता है और कहाँ सोना-चाँदी। इस प्रकार के नकशों के अध्ययन से एक ही निगाह में हम इतनी अधिक बातें ज्ञात कर लेते हैं, जिन्हें हम या तो अनेकों पुस्तकें पढ़कर या फिर लम्बी-लम्बी यात्राओं के पश्चात् ही जान पाते हैं।

इनके अलावा एक प्रकार के नकशे और भी होते हैं, जिनमें किसी प्रदेश की आकार-रेखाएं खिंची होती हैं। ये आकार-रेखाएँ ऐसी होती हैं, जो एक प्रदेश के समान ऊँचाईवाले स्थानों को जोड़ती हुई बनाई जाती हैं। इनके लिए ऊँचाई का आधार समुद्रतल माना जाता है। समान ऊँचाईवाली रेखाओं द्वारा पृथ्वी की ऊँचाई दिखलाना बड़ा सुगम है। आकार-रेखाओं के नकशे को देखने से किसी स्थल की ऊँचाई-नीचाई का बोध हो जाता है।

पैमाना

नकशे में पृथ्वी के बहुत बड़े भाग को एक छोटे से आकार में दिखाना पड़ता है। इस प्रकार किसी प्रदेश के असली आकार और नकशे में दिखाए गए आकार में जो अनुपात होता है, वह पैमाना कहलाता है। यदि किसी नकशे में पाँच मील की लम्बाई पाँच इंच से दिखाई गई है, तो उस नकशे का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पैमाना १ इंच प्रति मील हुआ। नक्शे में दिए हुए प्रदेश का वास्तविक आकार जानने के लिए हमें सबसे पहले उस नक्शे का पैमामा देखना चाहिए। नगर, प्रान्त आदि पृथ्वी के छोटे भागों के नक्शे बड़े पैमानों पर बनाए जाते हैं, पर महाद्वीप आदि बड़े क्षेत्रों के नक्शे छोटे पैमानों पर ही बनाना सुगम होता है।

भारतवर्ष का सबसे बड़ा नकशा प्रति मील एक इंच के पैमाने पर बना है। सैनिक विभाग के कुछ विशेष नक्शे प्रति मील तीन इंच के पैमाने पर भी बनाये गए हैं। छोटे पैमानों के नकशों में केवल मुख्य-मुख्य बातें ही दिखाई जाती हैं। परन्तु बड़े पैमाने के नकशों में छोटे-छोटे स्थान, जैसे कुआँ, बाग आदि भी दिखाए जा सकते हैं।

किसी भी देश की लम्बाई-चौड़ाई दिखलानेवाला पैमाना क्षितिज के समानान्तर होता है। उसे हम धरातलीय पैमाना भी कह सकते हैं। परन्तु पहाड़ों, आदि की ऊँचाई दिखाने के लिए धरातलीय पैमाने से पता नहीं चल सकता। पहाड़ों की ऊँचाई दिखाने का सबसे सुगम उपाय आकार-रेखाओंवाला नकशा है। भिन्न-भिन्न ऊँचाई दिखाने के लिए भिन्न-भिन्न रंगों का प्रयोग करने से धरातलीय पैमाने पर बनाए गए नकशों में भी ऊँचाई का ज्ञान हो सकता है। कुछ धरातलीय पैमाने के नकशों में भिन्न-भिन्न स्थानों की ऊँचाई उनके सामने ही लिख दी जाती हैं। पर आकार-रेखाओं द्वारा ऊँचाई-निचाई प्रदर्शित करना सर्वोत्तम माना जाता है। इन आकार-रेखाओं को 'कंटूर' या 'समुच्च रेखाएँ' कहते हैं।

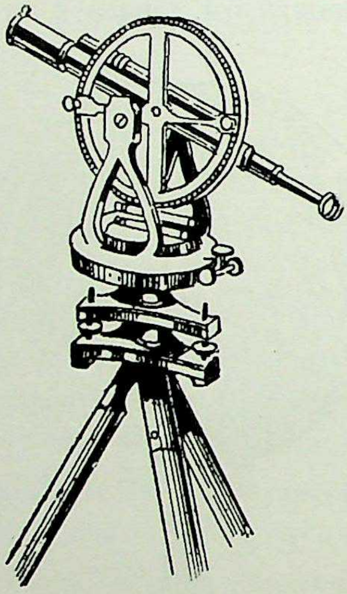

थियोडोलाइट यंत्र, जिसके द्वारा किसी जगह से दूर-दूर तक की नाप की जा सकती है।

समुच्च रेखाएँ जितनी दूरी के बाद स्थित होती हैं, उसे धरांश कहते हैं। जहां ढाल सपाट होता है, वहां ये रेखाएँ पास-पास होती हैं। इन रेखाओं से ढाल पहाड़ी, घाटी आदि की स्थिति का ठीक-ठीक पता चल जाता है। दो समुच्च रेखाओं के बीच में जो अन्तर हो, ढाल के क्रम से भाग देने से ढाल का अंश निकल आता है।

दिशा-ज्ञान और धरातल की नाप

नकशा बनाने में दिशा का ज्ञान होना बहुत ही आवश्यक है। एक स्थान से दूसरा स्थान किस दिशा में है, यह बात नक्शे में ठीक उसी प्रकार अंकित होना चाहिए जैसी वास्तव में है। इसलिए दिशा का ठीक-ठीक पता होना चाहिए। दिशाएँ जानने के लिए सूर्य की सहायता ली जाती है। रात में ध्रुवतारे की सहायता से दिशाओं का ज्ञान किया जाता है। दिक्सूचक यंत्र या कुतुबनुमा की सहायता से भी दिशा जानी जाती है।

पृथ्वी के विभिन्न भागों का नकशा बनाने के लिए धरातल की नाप करनी पड़ती है। इस नाप-जोख के लिए यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक क्षेत्र में जाकर हाथ से नाप-जोख की जाय। इसके लिए थियोडोलाइट नामक यंत्र की सहायता ली जाती है। इस यंत्र के द्वारा किसी एक ही स्थान से दूर-दूर तक नाप की जा सकती है। पहले किसी ऊंचे स्थान को चुन लिया जाता है और वहाँ से इस यंत्र के द्वारा जितने स्थान दिखाई देते हैं, उनके कोण नाप लिए जाते हैं। इन कोणों के द्वारा बहुत बड़े भूभागों की नाप कर ली जाती है। इस रीति को 'ट्रेंगुलेशन' कहते हैं।

प्रोजेक्शन या प्रक्षेप

हम ऊपर कह आए हैं कि पृथ्वी गोलाकार है। इसलिए इसका सच्चा चित्र ग्लोब ही है। पर जब चौकोर कागज पर पृथ्वी का मानचित्र खींचा जाता है, तो गोले का सच्चा चित्र बन ही नहीं सकता। फिर भी काम चलाने के लिए किसी न किसी प्रकार पृथ्वी के गोले का आकार चौकोर कागज पर बनाया ही जाता है।

कागज पर पृथ्वी का नकशा बनाते समय सबसे पहले अक्षांश-देशान्तर रेखाओं का जाल इस प्रकार से बनाया जाता है कि वह ग्लोब पर बने हुए अक्षांश और देशान्तर रेखाओं के जाल से मिलता-जुलता रहे। इस जाल के बनाने के ढंग को 'प्रोजेक्शन' अथवा फैलाव कहते हैं। प्रोजेक्शन के द्वारा गोलाकार ग्लोब चपटे कागज पर फैलाया जाता है। ग्लोब पर बने हुए अक्षांश और देशान्तर रेखाओं के जाल के देखने से मालूम होता है कि अक्षांश और देशान्तर रेखाएँ एक दूसरे से नियत दूरी पर खिची हुई हैं और वे एक दूसरे को समकोण बनाती हुई काटती हैं। सब देशान्तर रेखाएँ ध्रुवविन्दु पर मिल जाती हैं। कोई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

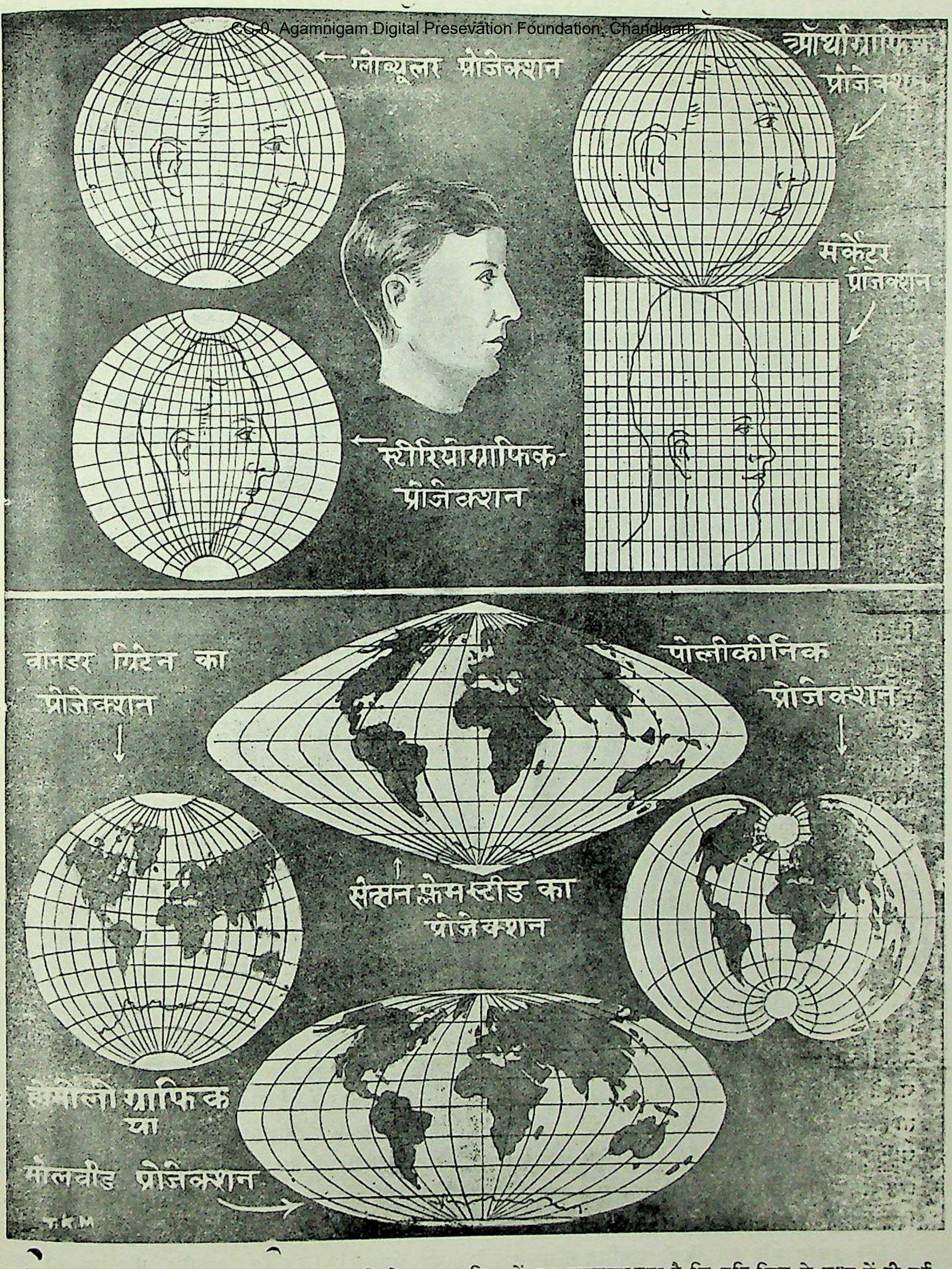

(ऊपर) भिन्न-भिन्न प्रक्षेपों में होनेवाला आकृति-भेद। इस चित्र में यह समझाया गया है कि यदि चित्र के मध्य में दी गई मनुष्याकृति को विभिन्न प्रक्षेपों द्वारा सपाट कागज पर उतारा जाय, तो उसका हर प्रक्षेप में कैसा रूप होगा। यही बात पृथ्वी के मानचित्र के संबंध में भी लागू होती है। (नीचे) पृथ्वी के मानचित्र के कुछ प्रसिद्ध प्रक्षेप।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी प्रोजेक्शन ऐसा नहीं है, जिसके द्वारा चपटे कागज पर बनाए हुए जाल में उल्लिखित ग्लोब की सभी बातें आ जाएँ। इनमें से प्रत्येक बात दिखाने के लिए अलग-अलग प्रोजेक्शन हैं। अब तक लगभग ३० प्रकार के प्रोजेक्शन बन चुके हैं। उनमें से कुछ का वर्णन हम आगे करेंगे।

पृथ्वी के मानचित्रों के विविध प्रक्षेप

अगर हम रबड़ की गेंद या नारंगी के छिलके को बिना तोड़े एक चपटे धरातल पर रखने का प्रयत्न करें तो हम देखेंगे कि उनके किनारे और सिरे ऊपर उठ आते हैं। केवल बीच का कुछ भाग धरातल पर स्थित हो पाता है। यदि हम किनारों को दबाकर चपटा करने का प्रयत्न करें तो या तो किनारे फट जाते हैं या तन जाते हैं। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि गोले के धरातल को चपटे धरातल पर इस प्रकार फैलाना कि प्रत्येक स्थान की स्थिति ठीक रहे, असम्भव है।

भूमण्डल के मानचित्र के प्रक्षेप या प्रोजेक्शनों के बनाने के जितने भी प्रयत्न किए गए हैं और जितनी भी विधियाँ हैं, उन सबमें किसी-न-किसी तरह का दोष अवश्य रहता है। किसी में देशों का आकार बदल जाता है, किसी में क्षेत्रफल अशुद्ध हो जाता है और किसी में दूरी ठीक नहीं रहती। धरातल के छोटे-छोटे अंशों जैसे लंका, इंगलैंड अथवा न्यूजीलैण्ड का मानचित्र चपटे धरातल पर बनाना कठिन नहीं है और न इसमें अधिक अशुद्धियाँ होने की आशंका है। परन्तु सम्पूर्ण भूमण्डल के धरातल का चपटे कागज पर शुद्ध रूप से प्रक्षेप करना अति कठिन है।

शुद्ध मानचित्र में आकार, क्षेत्रफल और स्थिति का ठीक-ठीक होना आवश्यक है। परन्तु चपटे नक्शे में तीनों बातों का एक साथ शुद्ध होना असम्भव है। इसीलिए इनमें से एक-न-एक का त्याग किए बिना शेष दोनों का शुद्ध होना सम्भव नहीं है। इनमें से किसका त्याग करके किसको ग्रहण किया जाता है, यह बात मानचित्र जिस उपयोग के लिए बनाया जाता है, उस पर निर्भर है। यदि हम ऐसा नकशा चाहते हैं, जिसमें केवल क्षेत्रफल की शुद्धता का महत्व है, तो हमें आकार शुद्ध होने की विशेष चिन्ता नहीं होनी चाहिए। इसलिए ऐसे मानचित्रों में, जिनमें भूमण्डल का शुद्ध क्षेत्रफल दिखाया गया है, यदि देशों के आकार विचित्र दिखाई पड़ें, तो आश्चर्य नहीं।

इसी प्रकार यदि हम किसी मानचित्र में भूमण्डल के देशों के आकारों की शुद्धता चाहते हैं, तो हमें नकशों के विभिन्न भागों में विभिन्न पैमानों का उपयोग करना पड़ेगा, क्योंकि एक ही पैमाने पर गोले के विभिन्न भागों का आकार शुद्ध रूप से कागज पर नहीं बनाया जा सकता। देशों का शुद्ध आकार दिखानेवाले नकशों का रूप ग्लोब पर दिखाए गए रूप से सर्वथा भिन्न होता है।

नकशा बनाते समय किस प्रणाली का प्रयोग किया जाय इसके लिए यह सदैव ध्यान रहे कि नकशा किस काम के लिए बनाया जाता है। यदि हम नकशे के प्रत्येक भाग का क्षेत्रफल शुद्ध चाहते हैं, तो हमें देशों के आकार की शुद्धता को भूलना होगा। यदि हम प्रत्येक स्थल के छोटे-छोटे अंशों के आकार की शुद्धता चाहते हैं, तो हमें नकशों के विभिन्न भागों की लम्बाई-चौड़ाई में विभिन्नता लानी पड़ेगी और बड़े स्थलों के आकार की शुद्धता त्यागनी पड़ेगी। हम ऐसा भी कर सकते हैं कि कुछ अंशों में देशों के आकार और क्षेत्रफल दोनों ही शुद्ध रहें।

वायुयानों और जलयानों के चलानेवालों के लिए जिन नकशों की आवश्यकता होती है, उनमें दिशाओं की शुद्धता आवश्यक है। इस प्रकार के नकशे के केन्द्र से अन्य स्थानों की दिशा का निर्देश ठीक-ठीक होना चाहिए। यहाँ पर हम कुछ उन प्रमुख प्रणालियों का उल्लेख करेंगे, जिनके द्वारा पृथ्वी के मानचित्रों के प्रक्षेप बनाए जाते हैं।

ढोल-प्रणाली

इस प्रणाली में ग्लोब पर कागज का एक ढोल इस प्रकार चढ़ा दिया जाता है कि सब-की-सब भूमध्य रेखा ढोल को छूती रहती है। गोले के शेष भागों को इतना फैलाया जाता है कि वे सब ढोल को छूने लगते हैं। फिर ढोल को खोल देते हैं। इस ढोल पर अक्षांश और देशान्तर रेखाएँ समकोण बनाती हुई समानान्तर रहती हैं। ध्रुव को एक बिन्दु द्वारा न दिखाकर एक सीधी रेखा द्वारा दिखाया जाता है। इससे किन्हीं दो देशान्तर रेखाओं के बीच का क्षेत्रफल वास्तविक से अधिक दिखाई देता है। इस प्रणाली में दो प्रकार के प्रक्षेप मुख्य हैं—(१) मर्केटर (२) मोलवीड।

१—मर्केटर-प्रोजेक्शन—इसका सिद्धान्त काफमैन नामक एक जर्मन ने निकाला था। इस प्रणाली से बने नकशों के उत्तरी भाग अपने वास्तविक विस्तार से कहीं अधिक बढ़ जाते हैं, जैसे ग्रीनलैंड देखने में अफ्रीका के बराबर और भारत से आठ गुना बड़ा लगता है। परन्तु वास्तव में भारत का क्षेत्रफल १७,६६,६५० वर्गमील, ग्रीनलैण्ड का केवल ८,५०,००० वर्गमील तथा अफ्रीका का १,१५,००,०००

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वर्गमील अर्थात् अफ्रीका का क्षेत्रफल ग्रीनलैण्ड के वास्तविक क्षेत्रफल से लगभग १४ गुना अधिक है।

इस तरह के प्रक्षेप में ज्यों-ज्यों अक्षांश ऊँचा होता जाता है, त्यों-त्यों पूर्व-पश्चिम की दूरी यथार्थ दूरी से कहीं अधिक होती जाती है। ८०° अक्षांश के आगे के भाग ऐसे प्रक्षेप में इतने अधिक असत्य प्रतीत होते हैं कि वे इस नकशे में दिखाए ही नहीं जाते। परन्तु भूमध्य रेखा के पासवाले प्रदेशों के आकार में अधिक अन्तर नहीं पड़ता है। इसमें एक विशेष बात यह है कि किन्हीं दो स्थानों के बीच में एक सीधी रेखा खींच दी जाय, तो वह सभी देशान्तर रेखाओं को एक ही कोण पर काटेगी। इस प्रकार यदि जहाज का कप्तान इस कोण को नाप ले और उसी के अनुसार अपना रास्ता पकड़े, तो उसे अपनी दिशा के बदलने की आवश्यकता न पड़ेगी। दो स्थानों को जोड़नेवाली इस रेखा को 'दिशासूचक' रेखा कहते हैं। स्पष्ट है कि स्थल-भागों के नकशे बनाने के लिए यह प्रक्षेप उपयुक्त नहीं है, क्योंकि इससे स्थल-भागों के आकार बिगड़ जाते हैं और क्षेत्रफल तथा पूर्व-पश्चिम की दूरी का ठीक ज्ञान नहीं हो पाता। इस प्रोजेक्शन का उपयोग प्रायः जहाजों के मार्ग, समुद्र-धाराओं तथा हवा का मार्ग दिखाने के लिए ही होता है।

२—मोलवीड-प्रणाली—यह प्रणाली मर्केटर-प्रोजेक्शन से बिलकुल उल्टी है। इसमें यद्यपि भिन्न-भिन्न भागों के क्षेत्रफल ठीक दिखाई पड़ते हैं, तथापि उनके आकार बिगड़ जाते हैं। इसमें पृथ्वी को अंडाकार नकशे से दिखाया जाता है। अक्षांश रेखाएँ सब सीधी रहती हैं। मध्यवर्ती देशान्तर रेखा भी सीधी रहती है। शेष सब देशान्तर रेखायें दीर्घ वृत्ताकार होती हैं और भूमध्य रेखा को समान भागों में विभाजित करती हैं। केवल ९०° पूर्वी और पश्चिमी

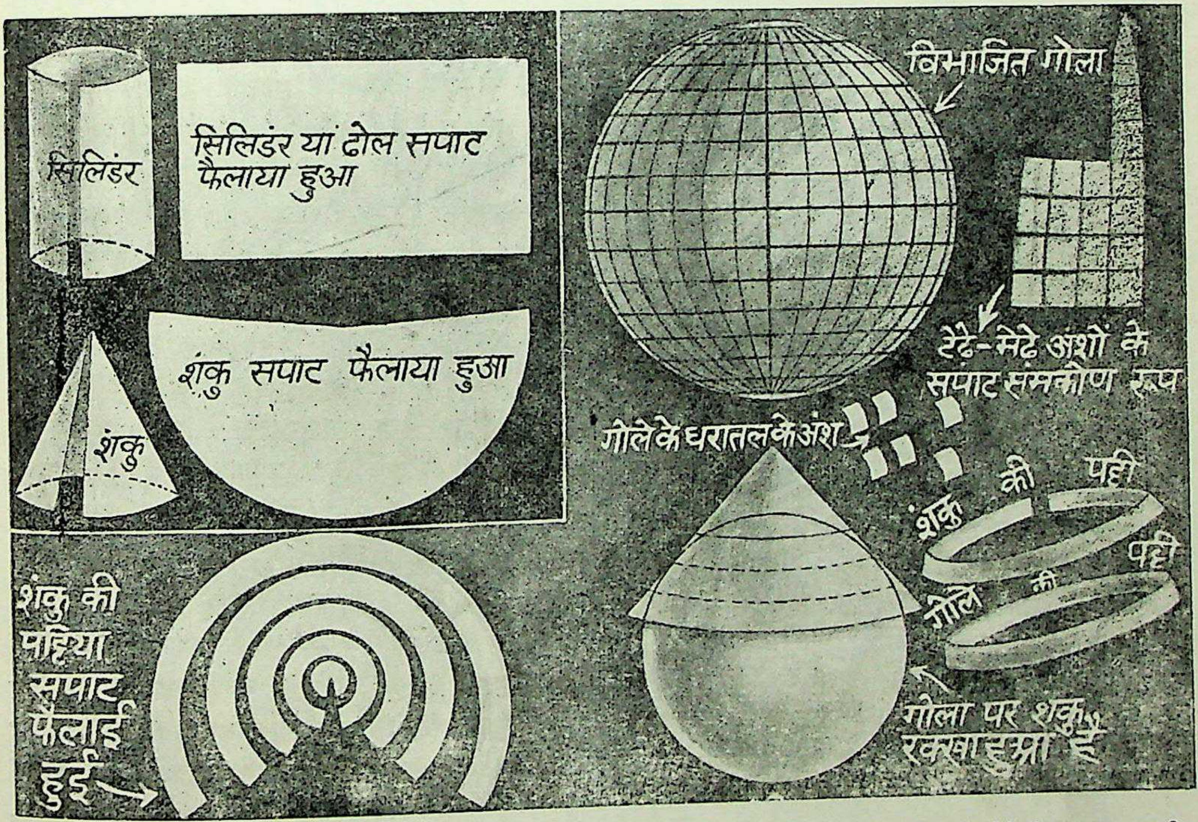

शंकु-प्रक्षेप के सिद्धान्त में, गोलाकार पृथ्वी के धरातल को सपाट कागज पर चित्रित करने में कठिनाई होने के कारण, पृथ्वी एक शंकु (कोन) या सिलिंडर (ढोल) की भीतरी सतह पर फैली हुई कल्पित की जाती है। शंकु अथवा सिलिंडर को सपाट फैलाने पर जो रूप मिलेगा वह ऊपर दिखाया गया है। यदि गोले को छोटे-छोटे समान आकार के चतुर्भुजों में विभाजित किया जाय तो वे टुकड़े सपाट फैलाए जा सकेंगे। किंतु यदि ऐसे ही सपाट चतुर्भुज टुकड़े जोड़े जाएँ, तो उनसे गोला नहीं बन पायगा। इसी तरह शंकु से काटी गई पट्टियाँ गोले से काटी गई पट्टियों जैसी तो होंगी, पर शंकु की पट्टियाँ जहाँ सपाट फैलाई जा सकती हैं, वहाँ गोले की नहीं; और न शंकु की पट्टियाँ जोड़कर गोला ही बनाया जा सकता है। प्रस्तुत चित्र में शंकु और सिलिंडर दोनों के आधार पर पृथ्वी के मानचित्र के प्रक्षेप का सिद्धान्त समझाया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देशान्तर रेखाएँ एक पूरा वृत्त बनाती हैं। १८०° पूर्वी और पश्चिमी देशान्तर रेखाएँ विशाल दीर्घ वृत्त बनाती हैं। इस प्रक्षेप में गोला उत्तर-दक्षिण की दिशा में जितना दब गया होता है, उतना ही पूर्व-पश्चिम की दिशा में वह बढ़ गया होता है। इस प्रकार सब प्रदेशों का क्षेत्रफल समान रहता है। ग्रीनलैंड और अफ्रीका का क्षेत्रफल भी वास्तविक दिखाई देता है। खनिज, वनस्पति, जाति, राज्य, आदि के दिग्दर्शन में देशों का असली क्षेत्रफल दिखाया जाना बड़ा आवश्यक होता है। इसलिए इस प्रकार के नकशों में यह समक्षेत्र-फल-दर्शक अंडाकार प्रक्षेप बड़ा उपयोगी है। इससे दूरी और दिशा में बहुत अन्तर आ जाता है।

शंकु-प्रक्षेप

पृथ्वी का नकशे बनाने का दूसरा प्रमुख साधन शंकु-प्रक्षेप है। इसमें कागज की एक कोनेवाली टोपी ग्लोब को पहना दी जाती है, जो उसे ४५° अक्षांश पर चारों ओर छूती है। इसी टोपी पर नकशे का जाल फैलाया जाता है। इस प्रणाली में यह विशेषता है कि जिस अक्षांश को यह टोपी छूती है, वह तथा उसके आस-पास के स्थान इस पर ठीक-ठीक दिखाए जा सकते हैं। इस प्रणाली में देशान्तर रेखाएँ सीधी रहती हैं, जो ऊपर या नीचे बढ़ाने से एक बिन्दु पर मिल जाती हैं और अक्षांश रेखाएँ वृत्त के हिस्से होती हैं, जो उस बिन्दु को केन्द्र मानकर खींचे जाते हैं। इस प्रणाली में भी दो प्रकार के प्रक्षेप मुख्य हैं—(१) साधारण शंकु-प्रणाली; और (२) बोनकृत परिष्कृत शंकु-प्रणाली।

साधारण शंकु-प्रणाली पृथ्वी के छोटे-छोटे भागों के नकशे बनाने के काम में अधिक आती है। किन्तु बहुत बड़े-बड़े भागों के नकशे बनाने में इससे सहायता नहीं ली जाती। इस प्रोजेक्शन में ध्रुव के निकटवर्ती ऊँचे अक्षांशों का ठीक नकशा नहीं बनता, क्योंकि इसमें ध्रुव को बिन्दु के रूप में नहीं दिखलाया जा सकता, उसे वृत्त के एक भाग के रूप में दिखाया जाता है।

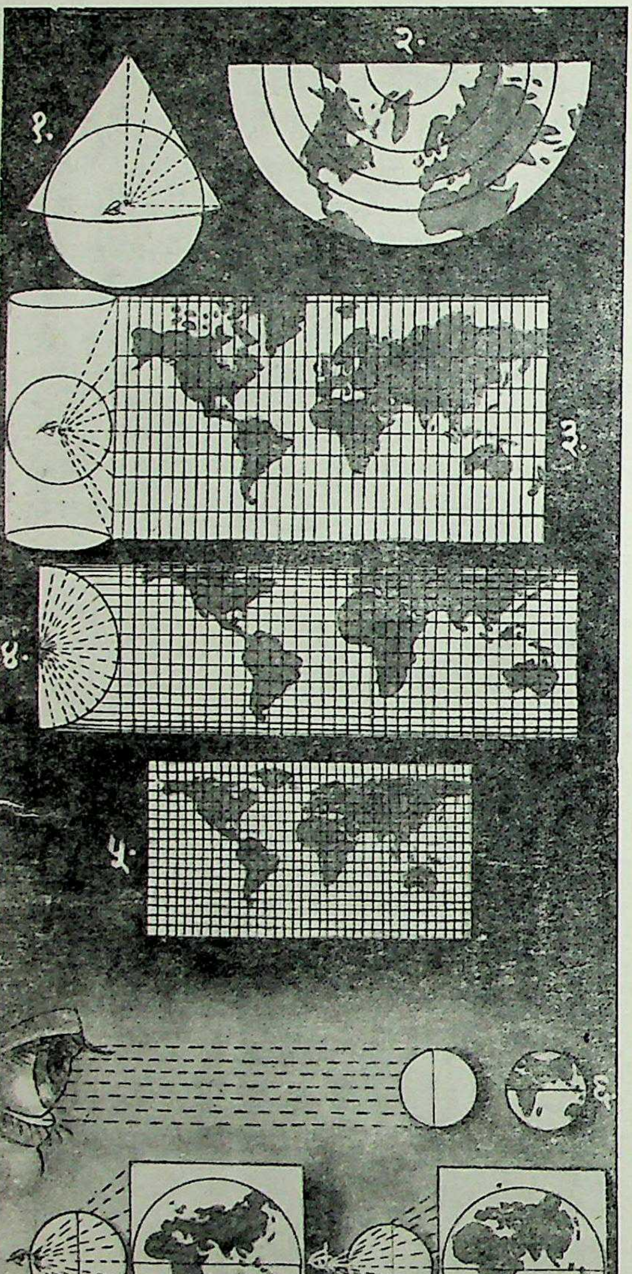

पृथ्वी के मानचित्रों में प्रयुक्त कुछ प्रसिद्ध प्रक्षेप और उनके सिद्धान्त। १-२. शंकुप्रक्षेप या कोनीकल प्रोजेक्शन; ३. ढोलनुमा मर्केटर प्रोजेक्शन; ४. सम-क्षेत्रफलवाला प्रोजेक्शन; ५.समानांतर प्रोजेक्शन; ६.आरथोग्राफिक प्रोजेक्शन; ७. स्टीरिओग्राफिक प्रोजेक्शन; ८. ग्लोब्यूलर प्रोजेक्शन ९. केन्द्रीय प्रोजेक्शन; १०. दो-तिहाई प्रक्षेप।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बोनकृत परिष्कृत शंकु-प्रोजेक्शन में देशान्तर रेखाएँ सीधी न खींची जाकर गोलाई लिए हुए खींची जाती हैं, जिससे न केवल अक्षांश ही ठीक-ठीक दिखाए जाते हैं, बल्कि देशान्तर भी। साधारण त्रिकोण की अपेक्षा इसमें अधिक दूर तक शुद्धता होती है। जिस प्रकार ढोल-प्रक्षेप में भूमध्य रेखा के आसपास के भाग का नकशा शुद्ध बनता है, उसी प्रकार इस प्रक्षेप में उन भागों का नकशा शुद्ध बनता है, जो शंकु को ग्लोब पर पहनाने से छूते हैं। इस प्रक्षेप की सहायता से नकशे बड़ी सरलता से बनते हैं। किसी एक महाद्वीप या देश का नकशा बहुधा इसी की सहायता से बनाया जाता है। नकशा बनाने की इस प्रणाली में ध्रुव की ओर तथा किनारों की देशान्तर रेखाओं के निकट त्रुटियाँ आ जाती हैं। इसलिए यह ध्रुव-प्रान्त तथा बहुत अधिक दूर की देशान्तर रेखाओंवाले भागों के नकशों के बनाने के लिए उपयुक्त नहीं है। वस्तुतः इस प्रणाली का उपयोग लम्बे आकार के देशों के नकशे बनाने में तो अधिक किया जाता है, परन्तु चौड़े देशों के नकशे बनाने में कम।

इस प्रोजेक्शन की मुख्य त्रुटि यह है कि इसमें ध्रुव की ओर तो पृथ्वी के भाग एक दूसरे के बहुत निकट हो जाते हैं और भूमध्य रेखा की ओर एक दूसरे से बहुत दूर।

आरथोग्राफिक प्रक्षेप

एक तीसरी प्रणाली आरथोग्राफिक प्रोजेक्शन कहलाती है। यदि हम पृथ्वी के गोले को बहुत दूर से देखें और यह समझें कि हमारे नेत्रों से ज्योति की रेखाएँ तिरछी न पड़कर गोलार्द्ध पर सीधी पड़ती हैं, तो एक विशिष्ट प्रकार का प्रक्षेप बनेगा। उसे 'सीधा खींचा हुआ' अथवा 'आरथोग्राफिक प्रोजेक्शन' कहते हैं। इस प्रक्षेप के नकशों में जो भाग नेत्रों के सामने पड़ता है, वह आकार और विस्तार में लगभग शुद्ध बनता है, परन्तु जो भाग ऊपर-नीचे अथवा इधर-उधर पड़ता है, वह त्रुटिपूर्ण रहता है और वहाँ का क्षेत्रफल यथार्थ क्षेत्रफल से छोटा होता है। ध्रुव-प्रदेशों के नकशे बनाने के लिए यह सर्वोत्तम प्रक्षेप है। इस प्रक्षेप से ऐसा मालूम होता है, जैसे कि किसी बड़ी दूरबीन की सहायता से बड़ी दूर से पृथ्वी के गोलार्द्ध का फोटो खींचा गया हो।

अजिम्युथल प्रक्षेप

आरथोग्राफिक प्रोजेक्शन से कुछ विभिन्नता लिए हुए एक प्रोजेक्शन है, जो 'अजिम्युथल प्रोजेक्शन' कहलाता है। इस प्रक्षेप में ध्रुव को केन्द्र मानकर अक्षांशों के वृत्त समान दूरी पर खींचे जाते हैं और समान दूरी पर ही देशान्तर रेखाएँ भी इस प्रकार से खींची जाती हैं कि वे सब ध्रुव पर मिलती हैं और बाहर की ओर समान दूरी पर फैली रहती हैं।

स्टीरिओग्राफिक प्रक्षेप

आरथोग्राफिक प्रोजेक्शन में केवल नकशों का मध्य भाग ही लगभग यथार्थ बनता है और किनारे के भाग बहुत घने हो जाते हैं, इसलिए एक नई प्रणाली का आविष्कार हुआ। इस प्रणाली को 'स्टीरिओग्राफिक प्रोजेक्शन' कहते हैं। इसका भी प्रयोग गोलार्द्धों के नकशे बनाने के काम में होता है। पहले इसका व्यवहार एटलस में देशों के नकशे बनाने में अधिक होता था, किन्तु अब ऐसा नहीं होता। इस प्रोजेक्शन में अक्षांश और देशान्तर रेखाएँ तथा उनके कोण ठीक-ठीक बनते हैं, जिससे नकशे की रूपरेखाएँ भी इससे ठीक बन सकती हैं। किन्तु छोटे-छोटे पैमाने के ही नकशे इससे बन सकते हैं। इससे बड़े पैमानों के नकशों का बनाना कठिन हैं, क्योंकि उस दशा में अक्षांशों और उनके कोणों के शुद्ध बनने के कारण बहुत बड़े कागज की आवश्यकता पड़ेगी। इसमें किनारे की ओर का क्षेत्रफल यथार्थ क्षेत्रफल से अधिक बढ़ जाता है।

नकशे बनाने के काम में पिछले दिनों एक बिल्कुल नए और अत्यधिक उपयोगी साधन का प्रयोग होने लगा है, जिसकी बदौलत विशाल और दुर्गम क्षेत्रों के मानचित्र आश्चर्यजनक कम समय में बनाना संभव हो गया है। यह साधन है वायुयान द्वारा धरातल का सर्वेक्षण, जो फोटोग्राफी की मदद से किया जाता है। इस कार्य के लिए अभीष्ट क्षेत्र को सुविधानुकूल पट्टियों में विभाजित करके, विशेष प्रकार के स्वयंक्रिय कैमरा (फोटो लेने के यंत्र) से सुसज्जित वायुयान को ऊपर से उड़ाया जाता है और ऊपर आसमान से उस क्षेत्र के फोटो-चित्र ले लिए जाते हैं। पूरे क्षेत्र के सर्वेक्षण के लिए कई उड़ानें भरनी पड़ती हैं, कारण एक ही उड़ान में समूचे क्षेत्र का फोटो नहीं लिया जा सकता। इस प्रकार जब कई फोटो सिलसिलेवार ले लिए जाते हैं, तब उन्हें जोड़कर उक्त क्षेत्र की एक विधिवत् सम्पूर्ण झाँकी प्राप्त कर ली जाती है। इन्हीं फोटोचित्रों के आधार पर सामान्य विधि से क्षेत्र के अभीष्ट पैमाने के मानचित्र बना लिए जाते हैं। ये फोटो दो प्रकार के उतारे जा सकते हैं—एक तिरछा और एक सीधा। प्रथम प्रकार के फोटो बड़े पैमाने के नकशे बनाने के लिए और दूसरी तरह के छोटे पैमाने के नकशे बनाने के लिए उपयोगी होते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भूपृष्ठ और उसका निर्माण करनेवाली चट्टानें

पिछले पृष्ठों में हम कह चुके हैं कि पृथ्वी के अध्ययन की पहली सीढ़ी उसके ऊपरी पृष्ठ अथवा चिप्पड़ का अध्ययन है। यह भूपृष्ठ जिस पदार्थ से बना है, भूविज्ञान की भाषा में उसे 'चट्टान' कहकर पुकारा जाता है। इस अध्याय में इसी चिप्पड़ और उसको बनानेवाली चट्टानों का वर्णन आरंभ किया जा रहा है।

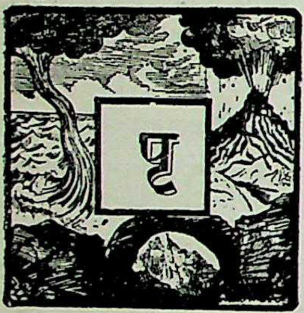

पृथ्वी के ऊपरी पृष्ठ को जिस पर हम सब रहते हैं, भूपृष्ठ अथवा पृथ्वी का 'चिप्पड़' कहते हैं। ८,००० मील व्यास-वाली पृथ्वी के इस चिप्पड़ की गहराई ५० मील से अधिक नहीं है। पृथ्वी का यह ऊपरी आवरण उसके गोले के ऊपर नारंगी के छिलके के समान चढ़ा हुआ है और इसीलिए यह उसका 'चिप्पड़' कहलाता है। भूपृष्ठ के भीतर क्या है, वह हम आगे के पृष्ठों में बताएँगे, परन्तु यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि भीतर के पदार्थ की अपेक्षा चिप्पड़ का घनत्व हल्का है। वह सम्पूर्ण पृथ्वी के घनत्व की अपेक्षा आधे के लगभग है।

शिला या चट्टान

चिप्पड़ जिस पदार्थ से बना है, उसे 'शिला' या 'चट्टान' कहते हैं। आम तौर पर चट्टान पत्थर-जैसे कड़े या कठोर प्राकृतिक पदार्थ को कहते हैं, परन्तु भूविज्ञान की भाषा में मिट्टी और बालू की तहों को भी चट्टान कहते हैं। चट्टान जिस पदार्थ से निर्मित हो, उसे 'खनिज' के नाम से पुकारते हैं। एक या अनेक खनिजों के सम्मिश्रण से ही चट्टान की रचना होती है। अधिकतर चट्टानों में एक से अधिक खनिज सम्मिश्रित रहते हैं, परन्तु कभी-कभी केवल एक ही खनिज भी चट्टान का अवयव होता है, जैसे चूने का पत्थर'। चट्टानों की रासायनिक रचना विशेषतया निश्चित नहीं होती। खनिजों के किसी भी अनुपात के मिश्रण से चट्टान बन जाती है। प्रायः ऐसा भी होता है कि एक ही चट्टान के विभिन्न भागों में खनिजों के अनुपात में विभिन्नता पाई जाती है। विभिन्न खनिजों के विभिन्न अनुपातों के मिश्रण से बनी लगभग समान गुण-वाली चट्टानें भी पाई जाती हैं। चट्टानों के गुण उनमें मिश्रित खनिजों के अनुपात पर निर्भर रहते हैं। खनिजों की रासायनिक रचना, आकृति और गुण सभी निश्चित रहते हैं। चट्टानों की रचना में जिन विशेष खनिजों की अधिकता पाई जाती है, उन्हें 'शिलानिर्माणकारी खनिज' कहते हैं।

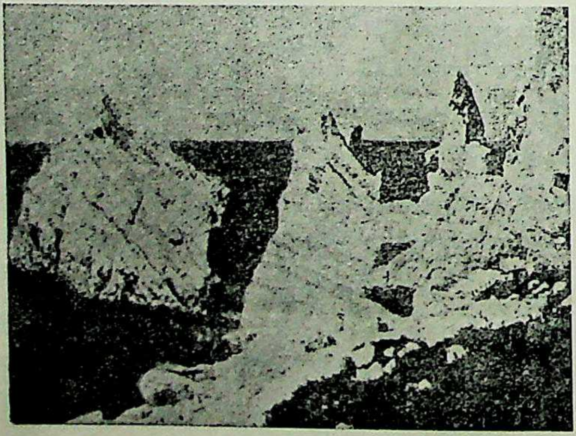

इस चित्र में दिखाई दे रही परतीली चट्टानें खड़िया मिट्टी की चट्टानें हैं, जो किसी सुदूर अतीत में जलाशय की तलहटी में जल द्वारा लाई हुई बालू, मिट्टी, पत्थर आदि के कणों की तलछट तथा अति सूक्ष्म क्षारीय जलचरों के प्रस्तर-विकल्पों के मिश्रण से बनी हैं। समुद्र की सतह के ऊँचे-नीचे हो जाने के कारण कालान्तर में ये चट्टानें ऊपर उठ आई हैं,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तीन प्रकार की चट्टानें

चिप्पड़ की रचना में जो चट्टानें पाई जाती हैं, वे तीन श्रेणियों में विभक्त की गई हैं। चट्टानों का यह विभाजन उनकी उत्पत्ति के अनुसार किया गया है। इसका कारण यह है कि उनके गुण उत्पत्ति के ढंग पर निर्भर हैं। चट्टानों के ये तीन भेद 'आग्नेय' (इग्नियस), 'प्रस्तरीभूत' (सेडिमेंटरी) और 'रूपान्तरित' (मेटामार्फिक) नाम से प्रसिद्ध हैं।

आग्नेय चट्टानें

आग्नेय चट्टानें वे हैं, जो पृथ्वी के भीतर से तप्त द्रवित रूप में निकलकर एवं जमकर ठंडी और कठोर हो गई हैं। पृथ्वी के बचपन के दिनों में जब चिप्पड़ धीरे-धीरे बनना आरम्भ हुआ था और जमकर कठोर हो रहा था, उन दिनों यदि चिप्पड़ में कहीं भी किसी कारण से कोई रास्ता मिल जाता था, तो पृथ्वी के भीतर का द्रवित पदार्थ (जो अभी ठंडा होकर कठोर नहीं हो पाया था) बाहर की ओर फूट पड़ता था और बह निकलता था। आजकल भी पृथ्वी के भीतर से जो तप्त द्रवित पदार्थ ज्वालामुखी के मुख से निकलता है, वह जमकर कठोर होने पर आग्नेय चट्टानों के सदृश्य गुणवाला ही पाया गया है।

आग्नेय चट्टानें तहों या परतों के रूप में नहीं पाई जातीं, वरन् अव्यवस्थित ढूहों अथवा पिण्डों के रूप में मिलती हैं। इन चट्टानों के बनते समय जो पदार्थ पृथ्वी के बाहर बह निकला, वह इतनी शीघ्रता से ठंडा हुआ कि उसके खनिज स्फटिक रूप धारण नहीं कर पाए। परन्तु जो द्रवित पदार्थ पृथ्वी के बाहर न निकल पाया, वरन् चिप्पड़ के भीतर ही रुक गया (और आजकल चिप्पड़ के घिस जाने से बाहर निकल आया है), वह धीरे-धीरे और देर में ठंडा हुआ। इस प्रकार की चट्टानों के अवयव खनिजपूर्ण स्फटिक रूप में विकसित हो सके। इसीलिए ये चट्टानें अधिक कड़ी हैं। बिल्लौरी पत्थर की चट्टानें पृथ्वी के भीतर ठंडी हुई हैं और गंधकादि की चट्टानें, जो मुलायम हैं, सूपृष्ठ के ऊपर। इसमें संदेह नहीं कि पृथ्वी पर सबसे पहले आग्नेय चट्टानें बनीं। इसीलिए ये 'आदि चट्टानें' भी कहलाती हैं।

आगे हम देखेंगे कि शेष दोनों प्रकार की अर्थात् 'प्रस्तरीभूत' और 'रूपान्तरित' चट्टानें भी आग्नेय चट्टानों के ही पदार्थों से बनी हैं। चिप्पड़ की तह में सदैव आग्नेय चट्टानें ही मिलती हैं, ऊपर चाहे जैसी चट्टानें हों। पुराने पहाड़ों पर आग्नेय चट्टानें ही पाई जाती हैं।

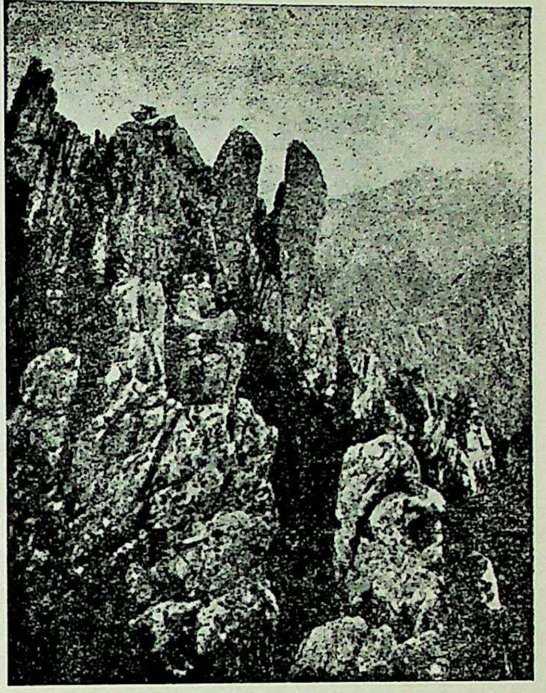

प्रस्तुत चित्र में दिखाई दे रही चट्टानें 'आग्नेय' चट्टानें हैं, जो पृथ्वी के भीतर पिघले हुए तप्त पदार्थ के जम जाने से बनी हैं! आरम्भ में ये चट्टानें पृथ्वी के चिप्पड़ में ही दबी थीं, किन्तु बाद में संतुलन या अन्य भौगर्मिक क्रिया के फलस्वरूप पर्वतों के रूप में बाहर निकल आई हैं।

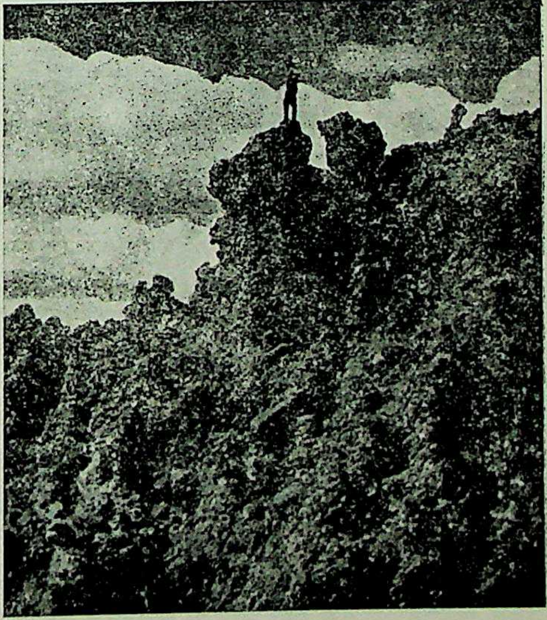

ज्वालामुखियों द्वारा लावा के रूप में उगला गया पदार्थ भी आग्नेय चट्टानों के सदृश गुणवाला होता है। प्रस्तुत चित्र में लावा के जमने से बने हुए एक टीले का दृश्य है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

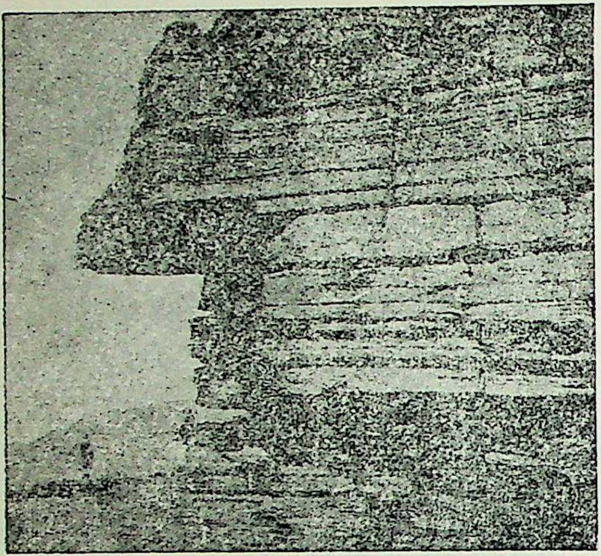

परतीली चट्टानों की झाँकी देखिए। किस प्रकार शिलाओं की परतें एक के ऊपर एक तह की तरह जमी हुई हैं। इस प्रकार के शिला-पर्त पुराकाल में आग्नेय चट्टानों के छीलन से प्राप्त खनिज द्रव्य की जमावट एवं जल की प्रक्रिया से उनके प्रस्तरीभूत हो जाने से बन गए हैं।

परतीली चट्टानें

परतीली चट्टानें वे हैं, जो तह के ऊपर तह के रूप में जमकर बनी दिखाई देती हैं। ये चट्टानें जलाशय की तलहटी में जल के द्वारा लाई हुई बालू, मिट्टी, पत्थर आदि के कणों के जमने से बनी हैं। इन चट्टानों के बनने में लाखों वर्ष लगे होंगे। जिस स्थान में ये जमी होंगी, वह किसी आन्तरिक घटना अथवा पृथ्वी के भीतर की संतुलन-क्रिया के कारण बाहर निकलकर पर्वत के आकार में दिखाई देने लगा है। पानी के नीचे जमनेवाली इनकी तहें दबाव एवं ताप के फलस्वरूप कठोर हो गई हैं।

प्रस्तरीभूत चट्टानों के टुकड़ों की यदि बहुत निकट से अथवा अभिवर्द्धक ताल द्वारा परीक्षा की जाय, तो मालूम होगा कि ये चट्टानें बालू, मिट्टी अथवा चूने के पत्थर के कणों से बनी हैं। इन चट्टानों के कण या तो बहुत ही सूक्ष्म और गोल-मटोल होंगे या कुछ-कुछ बड़े और टेढ़े-मेढ़े आकार के होंगे। इन शिलाओं का प्रस्तरीभूत होना और छोटे-छोटे कणों से बनना, ये दोनों ही बातें इस बात की द्योतक हैं कि इनकी उत्पत्ति किसी जलाशय की तह में हुई है। इनमें जिन खनिजों के कण पाए जाते हैं, वे वही हैं जो आग्नेय शिलाओं की रचना में पाए जाते हैं।

पुरानी अग्नेय शिलाओं को ही काट-काटकर नदियों और नालों ने अपना मार्ग बनाया है। जल के वेग से शिलाओं की यह छीलन उसके साथ बहती, घिसती और रगड़ती हुई सागर-तल तक पहुँचती है। वहाँ पहुँचते-पहुँचते शिलाओं के बड़े-बड़े ढोके महीन बालू और मिट्टी के रूप में बदल जाते हैं। सागर में जमा होनेवाली ये तहें कालान्तर में कठोर बनकर शिला बन जाती हैं।

यों तो परतीली शिलाएँ सीधी-सीधी तहों में पाई जाती हैं, परन्तु कभी-कभी पृथ्वी पर होनेवाली अदृश्य घटनाओं के फलस्वरूप इन शिलाओं पर दबाव पड़ता है और ये मुड़ जाती हैं अथवा लहरदार बन जाती हैं। ऐसी तहों को 'पुटीकृत' चट्टानें कहते हैं। यदि हम चिप्पड़ की खड़ी काट करें, तो हमें चट्टानों की विभिन्न तहें दिखलाई पड़ेंगी। रेल की पटरी के किनारे की कटी हुई चट्टानों की दीवार में हमें कभी-कभी पुटीकृत तहें दिखाई पड़ती हैं।

चिप्पड़ की रचना में कहीं-कहीं परतीली चट्टानों के ऊपर व बीच में आग्नेय चट्टानें पाई जाती हैं। परतीली चट्टानों के बीच में या ऊपर पाई जानेवाली ये आग्नेय चट्टानें अन्य आग्नेय चट्टानों की भाँति आदि चट्टानें नहीं हैं, वरन् ये प्रस्तरीभूत परतीली चट्टानों के बन चुकने पर पृथ्वी के भीतर से द्रवित रूप में निकलकर जम गई हैं।

प्रस्तरित होने के अतिरिक्त परतीली चट्टानों की एक और विशेषता यह है कि स्थान-स्थान पर इन शिलाओं में क्षारीय जलचरों तथा वनस्पतियों के अगणित प्रस्तर-विकल्प या प्राचीन जीवों के शिलीभूत अवशेष मिलते हैं। ये अवशेष भी इस बात की पुष्टि करते हैं कि प्रस्तरित परतीली चट्टानों का जन्म जलाशय में हुआ है।

कुछ प्रस्तरित चट्टानें, जैसे एक प्रकार के चूने के पत्थर अथवा मूँगे की चट्टानें, बिलकुल सूक्ष्म जीवसमूहों के प्राणि-अवशेषों का ही एकत्र पदार्थ है।

रूपान्तरित चट्टानें

तीसरे प्रकार की चट्टानें, जिन्हें 'रूपान्तरित चट्टानें' कहते हैं, आग्नेय और परतीली चट्टानों का ही परिवर्तित रूप हैं। स्थानान्तरित हुए बिना ही पृथ्वी की आन्तरिक गरमी, दबाव अथवा अन्य उथल-पुथल के कारण, आग्नेय या प्रस्तरीभूत चट्टानों के रूप, गुण और आकृति में परिवर्तन होने से जो चट्टानें बनती हैं, वे पहले की चट्टानों से एकदम भिन्न होने के कारण 'रूपान्तरित' चट्टानें कहलाती हैं। प्रारम्भिक चट्टानों की अपेक्षा इन चट्टानों की कठोरता बहुत अधिक बढ़ जाती है। इन चट्टानों की कठोरता ही नहीं वरन्

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अवयव भी बदल जाते हैं, यहाँ तक कि परतीली चट्टानों की रूपान्तरित रचना में पाए जानेवाले खनिज आग्नेय चट्टानों के खनिजों से अधिक भिन्न नहीं होते। यहाँ यह कहना आवश्यक है कि चट्टानों के रूपान्तरित होने का प्रधान कारण ऊष्मा या गरमी है।

चिप्पड़ का प्रायः ७५ प्रतिशत भाग प्रस्तरीभूत परतीली चट्टानों से ढका हुआ है। शेष २५ प्रतिशत में आग्नेय और रूपान्तरित चट्टानें हैं। यद्यपि स्थल पर ७५ प्रतिशत प्रस्तरीभूत चट्टानें हैं, तथापि इनकी गहराई एक मील से अधिक नहीं हैं। इनके नीचे फिर आग्नेय चट्टानें ही मिलेंगी, क्योंकि ये ही आदि चट्टानें हैं, जिन पर पृथ्वी का चिप्पड़ बना है।

उपर्युक्त तीन प्रकार की चट्टानों के अतिरिक्त पृथ्वी के चिप्पड़ पर 'भूमि' नामक एक प्रकार का आवरण-सा है, जो नीचे की चट्टानों पर चढ़ा है। यह भूमि-आवरण कहीं तो दो-चार इंच और कहीं हजारों फीट मोटा है। यह भूमि कहीं-कहीं तो कंकड़, पत्थर और बालू के कणों से मिलकर बनी है और कहीं चिकनी मिट्टी, धूल और रेती से। इसकी रचना चट्टानों की अपेक्षा नरम या कम कठोर है। भूगर्भशास्त्र की दृष्टि से यद्यपि भूमि का महत्व बहुत कम है तथापि हमारे जीवन में जितना महत्व इस तह का है, उतना और किसी चट्टान का नहीं, कारण इसी मिट्टी की तह से हमारे खाद्य पदार्थों की उत्पत्ति होती है। चट्टानों के ही विभिन्न अंशों से भूमि की रचना होती है। आगे के अध्यायों में हम देखेंगे कि पृथ्वी के चिप्पड़ के घिसने में कौन-कौन सी शक्तियाँ कार्यान्वित हैं और किस प्रकार भूमि का जन्म होता है।

यहाँ पर हम इतना और बता देना चाहते हैं कि वैज्ञानिकों की गणना के अनुसार पृथ्वी के चिप्पड़ की रासायनिक रचना में जिन तत्त्वों का समावेश है, उनका प्रतिशत अनुपात निम्न तालिका के अनुसार है:—

ऑक्सिजन	४९.८५	सिलिकन	२६.०३
अल्युमिनियम	७.२८	लोहा	४.१२
कैल्शियम	३.१८	सोडियम	२.३३
पोटेशियम	२.३३	मैग्नेशियम	२.११

शेष १.५५ प्रतिशत भाग में टिटैनियम, फास्फोरस, कार्बन, हाइड्रोजन, मैंगनीज, गन्धक, क्लोरीन और बेरीयम नामक तत्त्व हैं। बचा हुआ ०.०६ प्रतिशत भाग सोना, चाँदी, जस्ता, ताँबा आदि तत्त्वों से मिलकर बना है। उपर्युक्त सभी तत्त्व रासायनिक यौगिकों के रूप में हैं, मूल तत्त्वों के रूप में नहीं।

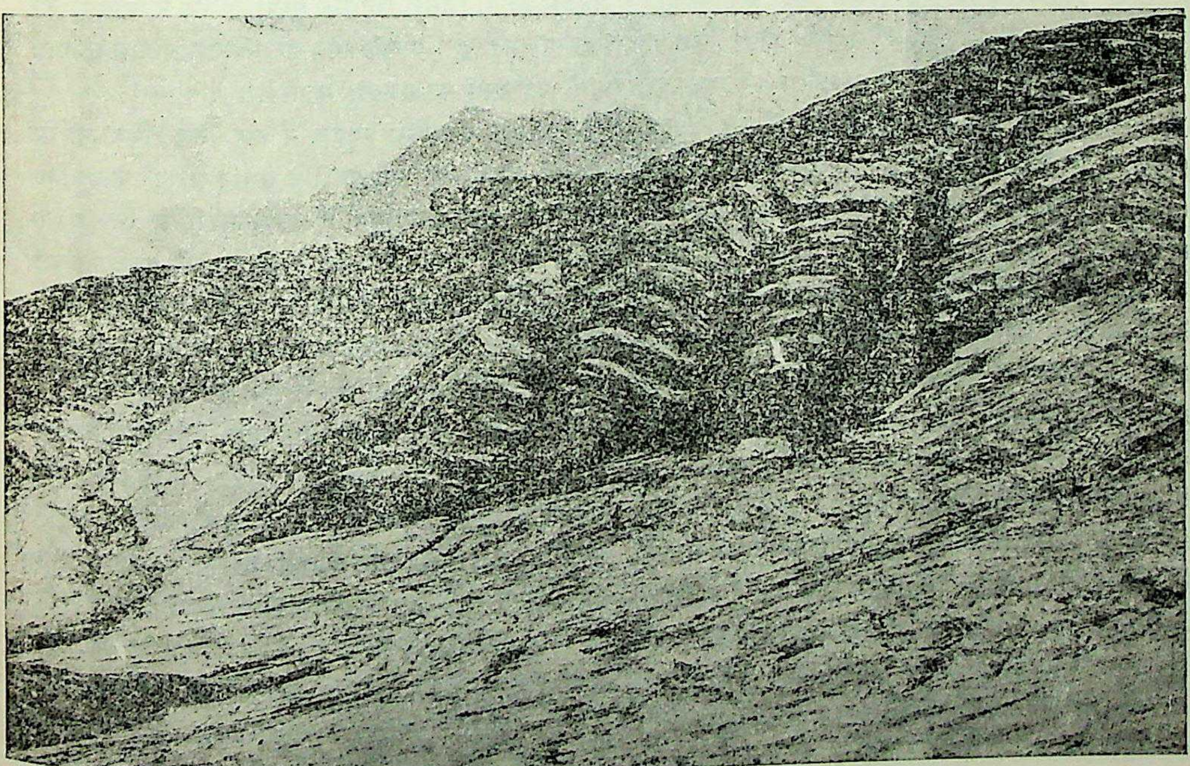

पुटीकृत शिलाओं का एक नमूना। नीचे आग्नेय चट्टानें दिखाई दे रही हैं। चट्टानों की परतों के इस प्रकार मुड़कर लहरदार बन जाने का कारण अदृश्य घटनाओं के फलस्वरूप उन शिलाओं पर पड़नेवाला दबाव आदि होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृथ्वी का अन्तराल :: भूगर्भ की झाँकी

पृथ्वी का सबसे रहस्यमय भाग उसका गर्भभाग है, जो अभी तक मनुष्य के लिए अज्ञात है । पृथ्वी के अंतराल की रचना अथवा वहाँ की लीलाओं के सम्बन्ध में आधुनिक विज्ञान अनुमान द्वारा क्या-क्या बातें निश्चय कर पाया है, आइए, इनका ब्योरा इस प्रकरण में आपको सुनाएँ ।

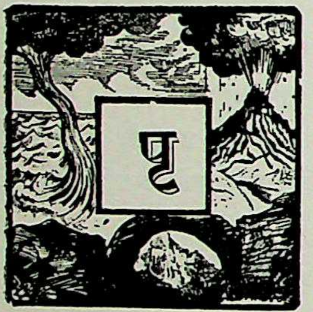

पृथ्वी-सम्बन्धी मनुष्य की आदि जिज्ञासा की एक पहेली यह भी थी कि पृथ्वी के भीतर क्या है ? यदि पृथ्वी के केन्द्र तक एक छेद कर सकना सम्भव होता, अथवा एक्स-किरण-सदृश कोई ऐसा साधन होता, जो हमें पृथ्वी के गर्भ की झाँकी दिखा सकता, तो क्या-क्या भेद खुलते ? ऐसा साधन न होते हुए भी मनुष्य ने भूगर्भ के रहस्यों का कैसे और कहाँ तक उद्-घाटन किया है, आइए देखें ।

पृथ्वी की आन्तरिक रचना का ज्ञान प्राप्त करने में हमें जितनी सहायता उन संदेशों से मिलती है, जो समय-समय पर पृथ्वी के गर्भ से आते रहते हैं, उतनी और किसी बात से नहीं । भूकम्प, ज्वालामुखी का उद्गार, गाइसर (गरम पानी के प्राकृतिक फव्वारे), पृथ्वी के चिप्पड़ का नीचे-ऊपर उठना, आदि घटनाएँ पृथ्वी के गर्भ में होनेवाली अदृश्य घटनाओं के वे सन्देश हैं, जो हमें मिलते हैं । हम किस प्रकार उन संदेशों को पढ़ें, यह हमारी योग्यता और ज्ञान पर निर्भर है । इसमें संदेह नहीं कि कल्पना के बिना इन संदेशों को पढ़ने की चेष्टा करना व्यर्थ है । वास्तव में, भूगर्भ-सम्बन्धी सभी सिद्धान्त और धारणाएँ अप्रत्यक्ष प्रमाणों पर अवलम्बित हैं, क्योंकि प्रत्यक्ष रूप से पृथ्वी के गर्भ की झांकी पाना असम्भव है । इन सीमित साधनों द्वारा ही वैज्ञानिकों ने भूगर्भ का जो चित्र हमारे आगे प्रस्तुत किया है, वह कमाल की सिद्धि है ।

पृथ्वी ठोस है या पोली ?

वैज्ञानिकों ने इस सम्बन्ध में तरह-तरह की अटकलें लगाई हैं, जिनका हाल हम पिछले एक प्रकरण में बता चुके हैं । इनमें सबसे महत्व का सिद्धान्त स्वीडन के वैज्ञानिक अरीनिउस का है, जिसके अनुसार पृथ्वी के गर्भ में धातुओं का खजाना भरा है । अरबी और फारसी सभ्यतावाले संभवतः इसी को 'कारूँ का खजाना' कहते थे ।

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन ने यह सिद्ध किया था कि सम्पूर्ण पृथ्वी का भार पृथ्वी के समान आकार के जलपिंड की अपेक्षा पांच या छः गुना है, जबकि पृथ्वी के चिप्पड़ के पदार्थ का भार उसके बराबर के जलपिंड की अपेक्षा केवल ढाई गुना है । न्यूटन के हिसाब से पृथ्वी का भार उसके वर्तमान भार से आधा होता, यदि सम्पूर्ण पृथ्वी उसी पदार्थ की बनी होती, जिससे उसका चिप्पड़ बना है ।

१७७४ ई० में पृथ्वी को तौला गया—तराजू में रखकर नहीं, वरन् वैज्ञानिक सिद्धान्तों द्वारा । ये सिद्धान्त, गुरुत्वाकर्षण शक्ति पर अवलम्बित हैं । इनके अनुसार सम्पूर्ण पृथ्वी का घनत्व ५.५ और चिप्पड़ का २·७ सिद्ध हुआ । इससे यह निष्कर्ष निकाला गया कि भूगर्भ का पदार्थ चिप्पड़ के पदार्थ की अपेक्षा कहीं अधिक भारी है । भूगर्भ के पदार्थ के भारी होने के दो कारण बताए जाते हैं । एक मत के अनुसार भूगर्भ का पदार्थ चिप्पड़ के पदार्थ से रचना में भिन्न नहीं है । केवल अन्तर इतना है कि भीतर का पदार्थ बाहर के पदार्थ के बोझ और दबाव से अधिक सघन और ठोस हो गया है और इसीलिए वह चिप्पड़ के पदार्थ से भारी है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लाप्लास ने गणना की थी कि पृथ्वी के केन्द्रीय पिण्ड का घनत्व दबाव के कारण जल की अपेक्षा पौने ग्यारह गुना होना चाहिए। इस मत की पुष्टि शिलिष्टर नामक विद्वान् ने भी की है, जिसका कथन है कि बाहर-वाले पदार्थ का दबाव केन्द्रीय पिण्ड के पदार्थ को अधिक घना करने के लिए पर्याप्त है।

दूसरे सिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी का पिण्ड कई पर्तों से मिलकर बना है। केन्द्रीय पिण्ड जिस पदार्थ से बना है, वह चिप्पड़ के पदार्थ की अपेक्षा न केवल भारी है, वरन् रचना में भी भिन्न है। चिप्पड़ का पदार्थ हल्के पत्थरों और चट्टानों का बना है। इस हल्के पदार्थ की गहराई १०० मील से अधिक नहीं है। इस पर्त के नीचेवाले पर्त की रचना बराबर एक-सी है और इसका पदार्थ भारी है। इसका घनत्व ६ है। इस सिद्धान्त के अनुसार एक और अनुमान भी निर्धारित किया जा सकता है। वह यह है कि चिप्पड़ के पदार्थ से केन्द्र तक का पदार्थ धीरे-धीरे भार में बराबर बढ़ता गया है, यहाँ तक कि ठीक केन्द्र के पदार्थ का घनत्व ९ या १० के लगभग है। ऊपर के दोनों ही सिद्धान्तों के अनुसार पृथ्वी पिण्ड का औसत घनत्व ५.५२ ही निकलता है।

ऊपर की दोनों ही धारणाओं के अनुसार यह सिद्ध हो जाता है कि पृथ्वी भीतर से पोली नहीं, वरन् ठोस है, और भीतर का पदार्थ छिलके या चिप्पड़ के पदार्थ की अपेक्षा कहीं भारी है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या भीतर के पदार्थ का भारी होना बाहर के विशाल पिण्ड के बोझ और दबाव पर निर्भर है, अथवा क्या पृथ्वी

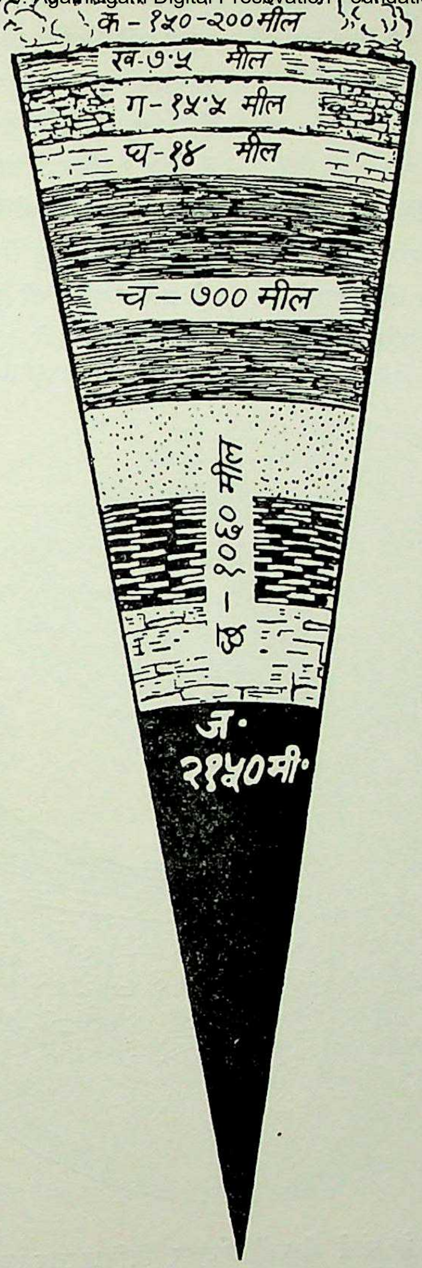

प्रस्तुत मानचित्र में पृथ्वी के गोले की एक फाँक दिखाकर विभिन्न पर्तों को स्पष्ट किया गया है—**क**—पृथ्वी का वायुमंडल; ख—चिप्पड़ या खोल, जो 'ग्रेनाइट' नामक आग्नेय पत्थर का बना है; ग—'बेसाल्ट' नामक आग्नेय चट्टानों का स्तर; घ—अति आग्नेय चट्टानें, **च**—सिलिकन-मैग्नेशियम का स्तर; छ—लोह-मिश्रित सिलिकन की पर्तें, **ज**—लोह निकिल के तप्त पदार्थ द्वारा निर्मित मध्य पिण्ड।

के भीतर के पदार्थ का अधिक घनत्व भारी धातुओं के केन्द्र की ओर घनीभूत होने के कारण है? इस समस्या को हल करनेवाले कुछ विद्वानों का विचार है कि चिप्पड़ के पदार्थ का दबाव और बोझ ही पृथ्वी के भीतर से भारी होने का कारण है। आइए, देखें कि यह भार कितना है।

भूगर्भ पर बाह्य पृष्ठ का भार

भूपृष्ठ से एक मील नीचे की चट्टानों पर प्रति वर्ग फुट १२,६०० मन का बोझा लदा है। ज्यों-ज्यों हम अधिक गहराई तक पहुँचते जायँगे, यह बोझा बढ़ता ही जायगा। बढ़ने की चाल प्रति मील के पश्चात् ऊपर की संख्या से भी अधिक होती जायगी, क्योंकि नीचे की चट्टानें दबाव और बोझ के कारण और अधिक घनी होती जाएँगी और इस कारण प्रति वर्ग फुट इनका भार भी ऊपर की हल्की चट्टानों की अपेक्षा अधिक होगा, यहाँ तक कि पृथ्वी के केन्द्र के पदार्थ पर प्रति वर्ग फुट लगभग ६,००,००,००० या ८,००,००,००० मन बोझ लदा होगा।

इतने विशाल बोझे के दबाव से अवश्य ही भूगर्भ का पदार्थ संकुचित होगा। इसमें संशय करने की कोई गुंजाइश नहीं है। परन्तु इतने बोझ से चट्टानें कितनी संकुचित हो सकती हैं, इस बात को जान सकना मनुष्य के लिए अभी तक संभव नहीं हो सका है। क्योंकि किसी भी प्रयोग-शाला में मनुष्य अभी तक इतना अधिक दबाव उत्पन्न करने में सफल नहीं हो सका है, जितना पृथ्वी के केन्द्र पर होने का अनुमान किया जाता है। प्रश्न यह है कि क्या चिप्पड़ की साधारण चट्टानें इतने अधिक बोझ के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दबाव से इतनी अधिक संकुचित हो सकती हैं कि उनका घनत्व ऊपर की चट्टानों की अपेक्षा दूना हो जाय ? मनुष्य के प्रयोगों से तो यह बात असम्भव ही सिद्ध हुई है, अन्य कारणों तथा दलीलों से भी इसकी सत्यता में संशय होता है।

भू-तरंगें

इस सम्बन्ध में भूचाल की तरंगों की गति की नाप-जोख से विशेष सहायता मिली है। सीस्मोग्राफ नामक यंत्र से यह मालूम हो जाता है कि भूचाल के कंपन की सूचनाएँ उस यंत्र तक कब और किस वेग से पहुँचीं। गति, वेग और समय जान लेने से यह जाना जा सकता है कि भूचाल किस केन्द्र से प्रारम्भ हुआ। जिस स्थान पर भूचाल उत्पन्न करनेवाली घटना घटित होती है, उस स्थान से भूपृष्ठ को विचलित करनेवाली तरंगें ठीक उसी प्रकार उठती हैं, जैसे शान्त जल में पत्थर डालने से तरंगें उठती हैं। जल में जैसे एक बार खलबली हो जाने पर लगातार तरंगें आती रहती हैं, फिर धीरे-धीरे उनका वेग कम होता जाता है, और अन्त में वे विलीन हो जाती हैं, उसी प्रकार भूचाल की तरंगें भी बड़े वेग से आती हैं और फिर धीरे-धीरे कम होती हुई वे विलीन होती हैं।

इन्हीं तरंगों की गति और वेग ने भूगर्भ की बनावट पर प्रामाणिक प्रकाश डाला हैं। सीस्मोग्राफ पर अंकित भूचाल-तरंगों के चित्रों से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि पृथ्वी के ठोसपन और लचीलेपन के कारण भूचाल का कंपन पृथ्वी के भीतर बड़े तीव्र वेग से दौड़ता है। सीस्मोग्राफ यंत्र पर पहले इसी कंपकंपी का वेग अंकित होता है। इसके साथ-ही-साथ भूचाल की तरंगें पृथ्वी-पृष्ठ के ऊपर भी चलती हैं, परन्तु इनका वेग अभ्यन्तर की तरंगों से बहुत कम होता है और इसलिए ये तरंगें अभ्यन्तर की तरंगों के अंकित होने के उपरान्त अंकित होती हैं।

हमारे लिए पृथ्वी के भीतर से होकर आनेवाली तरंगें ही अधिक महत्व की हैं, क्योंकि इन्हीं तरंगों के अध्ययन और अनुसन्धान से हमें पृथ्वी के गर्भ का हाल मालूम होता है। वैज्ञानिकों ने इन तरंगों की कुछ निम्नलिखित महत्वपूर्ण विशेषताएँ ज्ञात की हैं:—

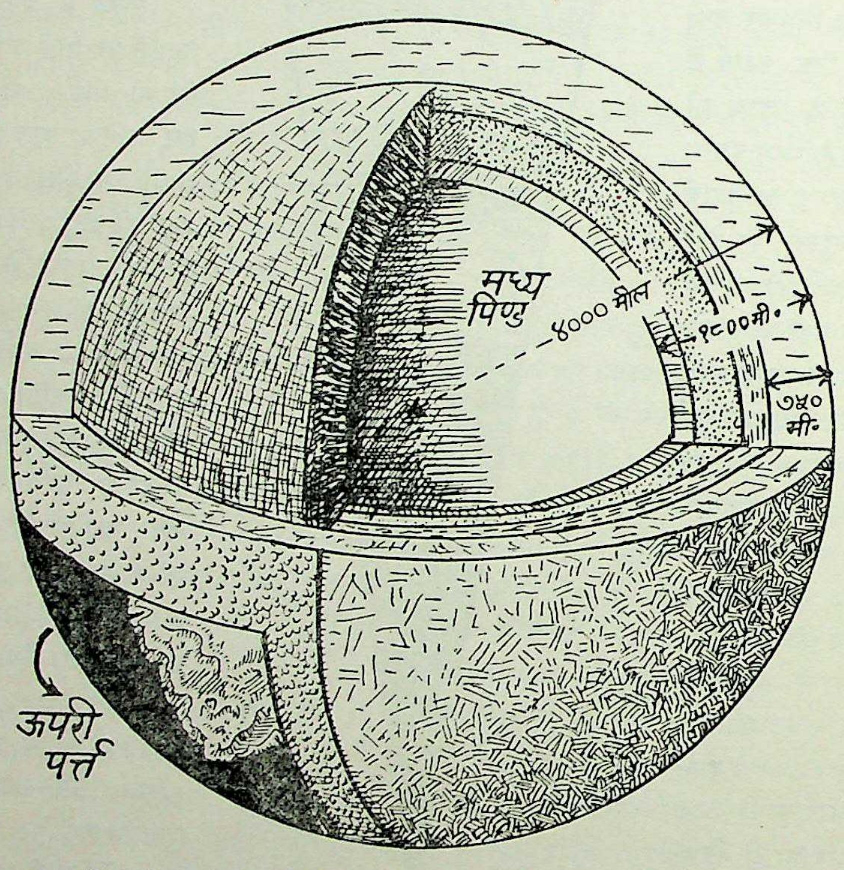

इस मानचित्र में पृथ्वी के गोले की पर्तें काटकर विभिन्न स्तर एवं उनकी गहराई (मीलों में) दिग्दर्शित की गई है।

पृथ्वी-पिंड के भीतर इन तरंगों की चाल गहराई के साथ-साथ बराबर बढ़ती जाती है। १,८०० मील की गहराई तक तो तरंगों की गति तीव्रता से बढ़ती है, परन्तु उसके पश्चात् उनका वेग बढ़ने के स्थान पर एकदम कम होना आरम्भ हो जाता है। यहाँ तक कि ४,००० मील व्यासवाले केन्द्रीय पिण्ड के भीतर होकर जाना इन तरंगों के लिए असंभव हो जाता है, और वे वहाँ से मुड़कर बाहर निकल आती हैं। इस सम्बन्ध में एक और ध्यान देने योग्य बात यह है कि तरंगों की गति के बढ़ने का वेग ऊपर से ७५० मील की गहराई तक तीव्रता से बढ़ता है और ७५० से १,८०० मील तक बढ़ता तो है, परंतु उसकी तीव्रता कम हो जाती है। इसी प्रकार

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पृथ्वी के चिप्पड़ से होकर आनेवाली तरंगों की गति और उसके भीतर होकर आनेवाली तरंगों की गतियों में जो महान् अन्तर है।

भूचाल की इन तरंगों के वेग से वैज्ञानिकों ने जो निष्कर्ष निकाला है, वह इस प्रकार है--

(१) पृथ्वी के चिप्पड़ की गहराई अधिक-से-अधिक १०० मील है और यह पृथ्वी का सबसे हल्का पदार्थ है।

(२) चिप्पड़ के नीचे का पदार्थ केन्द्र की ओर शनैः-शनैः भारी और सघन होता जाता है। केन्द्र के निकटवाला पदार्थ चिप्पड़ के निकटवाले पदार्थ की अपेक्षा अधिक सघन और भारी है।

(३) ७५० से १,८०० मील की गहराई तक का पदार्थ ऊपर से ७५० मील तक की गहराई के पदार्थ से बनावट में सर्वथा भिन्न है (यदि ये पदार्थ भिन्न न होते, तो भूचाल-तरंगों की बढ़ने की गति निरन्तर बढ़ती जाती, पर वास्तव में यह बढ़ती नहीं, वरन् कम हो जाती है)।

(४) १,८०० मील की गहराई के उपरान्त पृथ्वी का पिण्ड ऊपर के तीनों प्रकार के पदार्थों से भिन्न है और अधिकांश वैज्ञानिकों के मतानुसार यह धातुओं का बना है।

भूपिण्ड की रचना

इस प्रकार पृथ्वी की बनावट के विषय में वैज्ञानिकों ने जो धारणा बनाई है, उसके अनुसार पृथ्वी के केन्द्र में लगभग ४,००० मील व्यास का धातुओं का एक गोला है, जिसके ऊपर १,०६० मील मोटाई का चट्टानों का वेष्ठन चढ़ा है। इसके ऊपर कुछ हल्की चट्टानों का लगभग ७५० मील मोटा दूसरा वेष्ठन है और इसके ऊपर १०० मील मोटा भूपृष्ठ या चिप्पड़ है। इस धारणा के अनुसार पृथ्वी के भीतर कहीं भी पिघला हुआ द्रव पदार्थ नहीं है। जो पदार्थ उसके केन्द्र में है, वह तो भीषण ताप एवं दबाव के कारण इतना ठोस और भारी है कि वह फौलाद जैसा कठोर है। केन्द्रीय पिण्ड के बारे में वैज्ञानिकों का विश्वास है कि वह लोहा और निकिल-जैसी भारी धातुओं से विरचित है। उल्का-पिण्डों की बनावट में दो प्रकार के पदार्थ पाए जाते हैं—एक तो लोहा और निकिल-सरीखी धातुएँ और दूसरे चट्टानों के पदार्थ। पृथ्वी भी सूर्य से उल्का-पिण्डों के समान ही अलग हुई है, इसलिए इसमें भी यही धातुएँ पाई जाने की आशा की जा सकती है। इसी सिद्धान्त पर केन्द्रीय पिण्ड के संबंध में यह धारणा की जाती है कि वह लोहा और निकिल धातुओं से बना हुआ है और उसका औसत घनत्व ८ के लगभग होगा।

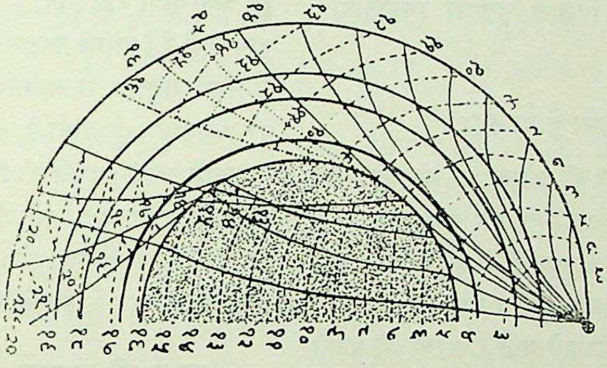

पृथ्वी का मध्यपिण्ड लौह-निर्मित है, इस बात के अनुमान में वैज्ञानिक यों कहते हैं कि भूकंप की लहरें एक निश्चित गहराई पर पहुँचकर सीधे न जाकर मुड़ जाती हैं, मानों पृथ्वी के आंतरिक पिण्ड के कठोर पदार्थ में प्रवेश करना उनकी शक्ति के बाहर हो। ऊपर के चित्र में यह दर्शाया गया है कि किस प्रकार एक विशेष केन्द्र से उठकर तरंगें चारों ओर व्यवस्थित रूप से फैलती हैं, परंतु एक विशेष गहराई पर पहुँचने पर वे अनोखे ढंग से मुड़ जाती हैं और इस कारण धरातल से मध्यपिण्ड तक का एक विशेष भाग अछूता छूट जाता है, जहाँ से कि ये तरंगें नहीं निकलतीं। गणित द्वारा हिसाब लगाने पर यह पाया गया है कि इसका कारण सिवा इसके कुछ नहीं हो सकता कि पृथ्वी का मध्यपिण्ड ऐसी धातु का है, जो लोहे से भी कठोर है।

पृथ्वी की बनावट के विषय में हमने बताया कि उसके ऊपर का पदार्थ हल्का है और भीतर का भारी। यह बात हमारी उस धारणा की पुष्टि करती है, जो हमने पृथ्वी के बचपन के संबंध में बना रक्खी है। वह धारणा यह है कि पृथ्वी का पदार्थ एक दिन अवश्य द्रवित अवस्था में था। उस समय इसकी अवस्था किसी भट्ठी में पिघली हुई धातुओं की भाँति थी। पिघले हुए पदार्थ में से धातु का अंश भारी होने के कारण नीचे बैठ जाता है और गन्धक और ऑक्सिजन-युक्त पदार्थ उसके ऊपर आ जाता है (क्योंकि वैसे भारी होते हुए भी ये पदार्थ धातु की अपेक्षा हल्के ही होते हैं)। इसके ऊपर मैल की पपड़ी जम जाती है, क्योंकि यह सबसे हल्का पदार्थ होता है। धातु शोधित करने की भट्ठी के समान ही हमारी पृथ्वी का पदार्थ भी धीरे-धीरे ठण्डा होता हुआ इस प्रकार जम गया कि केन्द्रीय ४,००० मील व्यास और ८ घनत्ववाले धातु-पिण्ड के ऊपर १,०६० मील मोटा पर्त ऑक्साइड और सल्फाइड (ऑक्सिजन और गंधकयुक्त) चट्टानों का बन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गया। इस पदार्थ का घनत्व ९·६ के लगभग है। उपर्युक्त धारणा का कारण यह भी है कि उल्कापिण्डों में भी ये ही अवयव पाए जाते हैं। संभवतः इन्हीं पदार्थों के कारण ७५० मील की गहराई के उपरान्त भूचाल-तरंगों की गति की तीव्रता का वेग बढ़ते-बढ़ते कम होने लगता है।

चिप्पड़ की बनावट के विषय में भूचाल-तरंगों की चाल से यह प्रतीत होता है कि भूपृष्ठ से ७५० मील की गहराई तक बराबर चट्टानों का वेष्ठन चढ़ा हुआ है। इस भाग का घनत्व ४ के लगभग है। इसके ऊपर १० मील मोटा पर्त उन चट्टानों का चढ़ा है, जिनसे हम साधारणतः परिचित हैं और जिनसे धरती के विशाल भूखण्डों (महाद्वीपों) की रचना हुई है।

अभ्यन्तर उत्तप्त है या ठंढा ?

अभी तक हमने अभ्यन्तर की बनावट की ओर ही ध्यान दिया है, वह उत्तप्त है अथवा शीतल, इस बात का उत्तर हमें नहीं मिला। जब हम गहरी खानों के अन्दर जाने लगते हैं, तो हमें ऊपर की अपेक्षा अधिक गरमी प्रतीत होती है। ज्यों-ज्यों हम गहराई में उतरते जाते हैं, गरमी भी बढ़ती जाती है। साधारणतः प्रति ५० फीट की गहराई के पश्चात एक अंश फारेनहाइट की अधिकता से ताप बढ़ जाता है। कहीं-कहीं गरमी इससे भी अधिक तीव्रतापूर्वक बढ़ती है और कहीं पर इससे कम। परन्तु इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि अधिक गहरी खानों का ताप भूपृष्ठ के ताप की अपेक्षा कहीं ज्यादा होता है।

उपर्युक्त अनुभव से यही प्रतीत होता है कि पृथ्वी के भीतर की चट्टानें अवश्य ही उष्ण अवस्था में हैं। वैज्ञानिकों का विश्वास है कि चट्टानों की गरमी का कारण चट्टानों में यूरेनियम और थोरियम नामक तत्त्वों का पाया जाना है। ये तत्त्व रेडियमधर्मी तत्त्व कहलाते हैं। इनके निरन्तर विकिरण और विच्छेद की क्रिया से गरमी उत्पन्न होती है। चट्टानें ऊष्मा की अच्छी चालक नहीं हैं। इसलिए यह गरमी फैल नहीं पाती और यदि भूगर्भ के किसी भाग में यूरेनियम आदि की अधिकता हुई, तो उस स्थान पर इतनी अधिक गरमी उत्पन्न हो सकती है कि चट्टानों को पिघला दे।

३,५०,०००° का भीषण ताप

ऊपर हमने बताया है कि ज्यों-ज्यों हम पृथ्वी के केन्द्र की ओर जायंगे, त्यों-त्यों गरमी अधिक होती जायगी। इस हिसाब से केन्द्र पर पहुँचते-पहुँचते अभ्यन्तर का ताप ३,५०,००० अंश होना चाहिए। इतने भयंकर ताप में कोई भी पदार्थ बिना पिघले नहीं रह सकता। तब क्या पृथ्वी के भीतर का पदार्थ द्रवित और पिघली हुई दशा में है ? जब हम केन्द्र के ऊपर पड़नेवाले असाधारण दबाव का ध्यान करते हैं, तब हमारी समझ में आ जाता है कि इतनी उष्णता होते हुए भी भयंकर दबाव के कारण यह सम्भव नहीं है कि धातुएँ वहाँ पिघली हुई दशा में रह सकें।

ज्वालामुखी पर्वतों के द्वारा जो पिघला हुआ लावा तथा अन्य पदार्थ भूगर्भ से आता है, उसे देखकर हमें यह अनुमान करना पड़ता है कि यह पदार्थ पृथ्वी के भीतर भी पिघली हुई अवस्था में रहा होगा। पर हमारा यह अनुमान करना सत्य नहीं है। इसका कारण हम ऊपर बता चुके हैं। पृथ्वी के भीतर संतुलन या अन्य किसी कारण से जब किसी स्थान पर दबाव कम हो जाता है, तो यूरेनियम आदि के विकिरण से उत्पन्न गरमी चट्टानों को पिघलाकर बाहर की ओर ढकेलती है। चिप्पड़ का पर्त यदि उस स्थान पर कमजोर होता है, तो अन्दर का पिघला हुआ पदार्थ चिप्पड़ तोड़कर ज्वालामुखी के उद्गार के रूप में बह निकलता है।

भूगर्भ की हलचल का चिप्पड़ पर प्रभाव

आगे चलकर आप देखेंगे कि प्रकृति धरती के अंचल में पैदा होनेवाली किसी भी तरह की असंतुलन की अवस्था को ठीक करने के लिए प्रयत्नशील रहती है। इस प्रयास के दौरान में पृथ्वी के भीतर काफी उथल-पुथल होती रहती है, जिसके फलस्वरूप भूपृष्ठ पर बहुत प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, जैसे-जैसे किसी उच्च प्रदेश की धरती घिसकर कांप के रूप में किसी निचले प्रदेश में इकट्ठी होती है, वैसे-वैसे कांप के नीचे की जमीन बोझ से दबती जाती है। ऊंचा प्रदेश अथवा पहाड़ घिसता जाता है। कांप से दबे प्रदेश का बोझ भीतर के पदार्थ को हलके पहाड़ के नीचे जाने को दबाता है और यह घना पदार्थ दबाव के कारण द्रव की भांति बहकर पर्वत के नीचे जाकर उसको ऊंचा उठाए रखने की चेष्टा करता है। पर ऊपर की घिसी हुई मिट्टी की अपेक्षा नीचे का पदार्थ अधिक भारी होता है, इसलिए पर्वतीय प्रदेश लगातार नीचे होते रहते हैं और अन्त में समतल मैदान बन जाते हैं। इन क्रियाओं के अतिरिक्त ज्वालामुखी की हलचलों, भूचाल आदि गुप्त घटनाओं के कारण भी धरती के ऊपरी अंचल में गहरा परिवर्तन प्रस्तुत होता रहता है। इस प्रकार भूगर्भ के कारण पृथ्वी के ऊपर की रूपरेखा पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृथ्वी का अनवरत रूप-परिवर्तन ::
भूपृष्ठ पर होनेवाली घटनाएँ

पृथ्वी का इतिहास युग-युगादिकाल से उसके रूप और आकार-प्रकार में होनेवाले परिवर्तनों का इतिहास है। ये परिवर्तन क्या हैं, आइए, इस प्रकरण में संक्षेप में देखें।

जन्म से लेकर आज तक पृथ्वी इतनी अधिक बदल चुकी है कि वर्तमानकालीन मनुष्य उसके आरम्भिक रूप की कल्पना करने के लिए सहज ही तैयार नहीं होगा। वास्तव में पृथ्वी का परिवर्तन इतना शनैः शनैः हुआ करता है कि मनुष्य अपने जीवनकाल में इसका बोध नहीं कर पाता, इसका बोध तो युगों के पश्चात् हो पाता है। यद्यपि हमारी दृष्टि के सामने नित्य ऐसी कुछ घटनाएँ होती रहती हैं, जिनसे पृथ्वी की रचना में उलट-फेर होता रहता है और हम इन घटनाओं को निरन्तर देखते हैं, परन्तु देखते-देखते हम उनके ऐसे आदी हो गए हैं कि उनके महत्व को समझने की चेष्टा नहीं करते। इन निरन्तर होनेवाली घटनाओं के प्रभाव का यदि हम गूढ़ अध्ययन करें, तो आश्चर्य के साथ हम यह देखेंगे कि इन सब घटनाओं के कारण ही पृथ्वी का रूप निरन्तर बदलता रहता है।

परिवर्तनकारी घटनाओं के तीन प्रकार

पृथ्वी की रचना पर प्रभाव डालनेवाली घटनाओं को हम तीन श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम तो वे साधारण-सी घटनाएँ हैं, जो नित्य घटित होती रहती हैं। इनका प्रभाव अदृष्टिगोचर होने पर भी इतना महत्वपूर्ण है कि पृथ्वी की रचना में परिवर्तन लाने का अधिकांश श्रेय इन्हीं को प्राप्त है। रात और दिन का होना ऋतुओं का परिवर्तन, दिन में गरमी और रात में सर्दी का पड़ना, वर्षा का होना, नदी-नालों का बहना, झीलों और झरनों का बनना, बर्फ का गिरना, ग्लेशियरों का बहना, आँधियों का चलना, नदियों का समुद्र में गिरना, नदियों में बाढ़ आना, पृथ्वी में पानी का सोखा जाना, वनस्पतियों की उत्पत्ति, सागर का विस्तार, जीवों की उत्पति और विनाश, मूंगे आदि जीवों की प्रक्रिया, आदि-आदि हजारों घटनाएँ ऐसी हैं, जो हमारे लिए यद्यपि साधारण हैं तथापि उनका प्रभाव अत्यन्त गम्भीर है।

पृथ्वी के पृष्ठ पर होनेवाली दूसरे प्रकार की घटनाएँ वे हैं, जिन्हें हम 'आकस्मिक घटनाओं' के नाम से पुकार सकते हैं। इस श्रेणी के अन्तर्गत वे घटनाएँ आती हैं, जो पृथ्वी पर कभी-कभी घटित होती हैं और अपना गहरा प्रभाव सदैव के लिए छोड़ जाती हैं। भूकम्प, ज्वालामुखी का विस्फोट, भीषण तूफान और आँधियों का आना, आदि इस श्रेणी की घटनाओं में सम्मिलित हैं।

तीसरी श्रेणी की घटनाएँ वे हैं, जिन्हें हम 'गुप्त घटनाओं' के नाम से पुकार सकते हैं। ये घटनाएँ अधिकतर पृथ्वी और समुद्र के गर्भ में घटित होती हैं और इसलिए हम इन्हें प्रत्यक्षतः देख सकने में असमर्थ हैं। परन्तु इनका प्रभाव इतना भीषण होता है कि उससे पृथ्वी के चिप्पड़ का रूप ही बदल जाता है। इन घटनाओं के प्रभाव से पृथ्वी पर समुद्र के स्थान में आकाशचुम्बी पर्वतों का उठ खड़ा होना और सूखी भूमि के स्थान पर गहरे जल-गर्त बन जाना एक साधारण-सी बात है।

इन तीनों प्रकार की घटनाओं के फलस्वरूप ही पृथ्वी पर निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। ये परिवर्तन कई प्रकार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

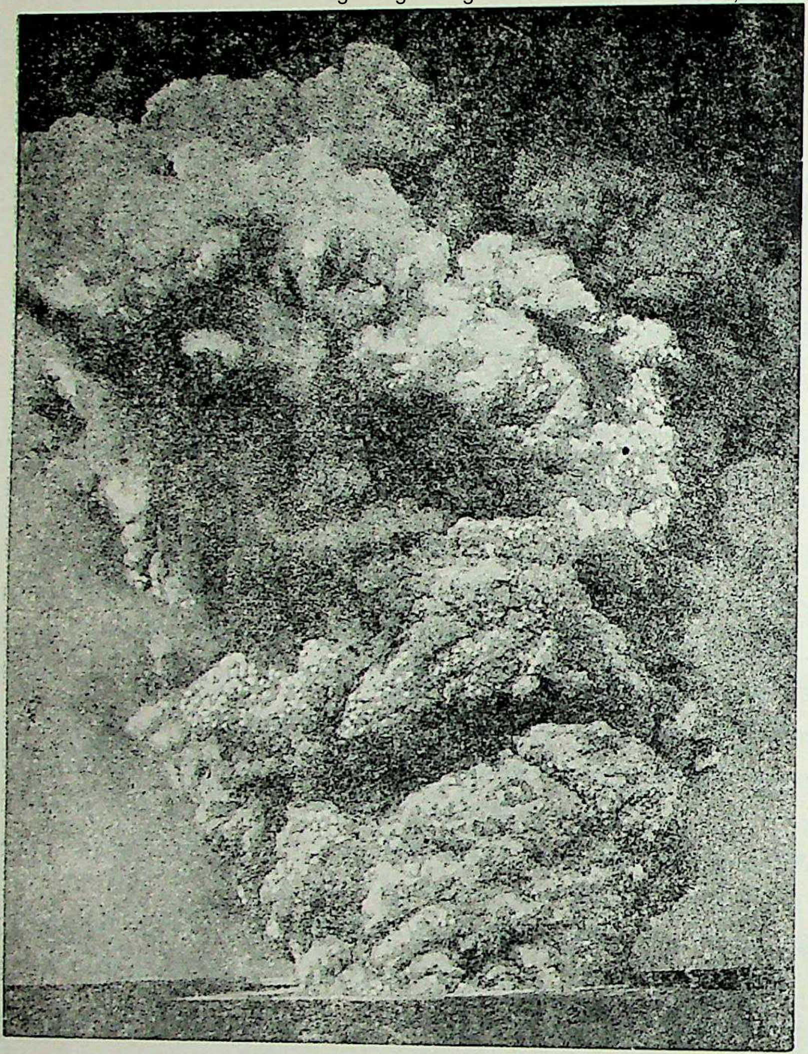

यह पृथ्वी के गर्भ-प्रदेश में स्थित प्रकृति के कारखाने की चिमनी-रूपी एक जाग्रत ज्वालामुखी का फोटो है। ये ज्वालामुखी गरम लावा, धुआँ और गैसें उगलकर पृथ्वी के अंतराल में होनेवाली 'गुप्त क्रिया' का संकेत दिया करते हैं।

के होते हैं। प्रथम प्रकार की घटनाओं का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव है 'पृथ्वी के चिप्पड़ घिसना'। जल इसका प्रमुख कार्यकर्त्ता है। जल के विभिन्न रूपों द्वारा पृथ्वी निरन्तर घिसती जाती है। वर्षा के रूप में जल पृथ्वी पर आता है, और फिर नदी-नालों, झीलों, झरनों, सोतों, गरम पानी के प्राकृतिक फव्वारों, आदि के रूप में अथवा बर्फ, ओस, पाला, आदि के रूप में परिवर्तित होकर अपनी लीला आरम्भ करता है। जल की लीला का पूरा दिग्दर्शन हम आगे चलकर विस्तारपूर्वक कराएँगे, यहाँ तो हम केवल उसके प्रभाव का आभास-मात्र दे रहे हैं। अपने प्रत्येक रूप में जल पृथ्वी पर दो कार्य करता दिखाई देता है। एक तो वह पृथ्वी को घिसता है और फिर उस छीलन को ले जाकर समुद्र में जमा करता है। इसके फलस्वरूप बड़े-बड़े पर्वत कट-कटकर समुद्र में जमा होते जाते हैं, और समुद्र की तह में इस छीलन द्वारा नई शिलाओं का निर्माण होता है। जल के द्वारा पृथ्वी पर जो परिवर्तन होते हैं, उनमें नदियों की उत्पत्ति, घाटियों का निर्माण, पर्वतों का छिन्न-भिन्न होना, वनस्पति और चट्टानों का विध्वंस, आदि सम्मिलित हैं।

जल की भाँति प्रथम श्रेणी की अन्य घटनाओं का भी प्रभाव पृथ्वी की रचना पर दो प्रकार का पड़ता है--एक तो वर्तमान चिप्पड़ का विनाश और दूसरा चिप्पड़ के नए अवयवों का निर्माण। विनाश और निर्माण की यह क्रिया निरन्तर साथ-साथ चलती रहती है। जब हम इन घटनाओं के विनाशकारी प्रभाव का अध्ययन करते हैं, तब उनके निर्माणकारी प्रभाव का भी ध्यान रखना पड़ता है।

दूसरी श्रेणी की घटनाएँ, जिन्हें हम 'आकस्मिक घटनाओं' के नाम से ऊपर पुकार चुके हैं, वास्तव में तीसरी श्रेणी की घटनाओं अर्थात् 'गुप्त घटनाओं' का प्रत्यक्ष रूप हैं। गुप्त घटनाएँ पृथ्वी और समुद्र के गर्भ में होती हैं, परन्तु आकस्मिक घटनाएँ पृथ्वी के ऊपर दिखाई पड़ती हैं। कोई दिन ऐसा नहीं जाता, जिस दिन पृथ्वी के किसी न किसी भाग में भूकम्प का धक्का न लगता हो! भूकम्प कैसे और क्यों आते हैं, इसका वर्णन हम आगे विस्तारपूर्वक करेंगे। भूकम्प और ज्वालामुखी द्वारा पृथ्वी पर कैसे-कैसे अनर्थ होते हैं, यह प्रत्येक मनुष्य जानता है। इन घटनाओं के फलस्वरूप पृथ्वी की रचना में भी महान् परिवर्तन हो जाते हैं। नदियों का मार्ग बदल जाना, भूमि का नीचा-ऊंचा हो जाना, समुद्र के स्थान पर सूखा देश और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पहाड़ों के स्थान पर सागर का हो जाना, आदि परिवर्तन इन्हीं घटनाओं के फलस्वरूप होते हैं।

डायस्ट्राफिज्म

गुप्त रूप से होनेवाली घटनाएँ पृथ्वी की रचना में क्रान्ति उत्पन्न करती हैं। ये घटनाएँ अदृश्य हैं, परन्तु इनका प्रभाव महान् है। इनमें भी हम तीन श्रेणी बना सकते हैं। इनमें एक तो वे हैं, जिनके फलस्वरूप ज्वालामुखी भड़कते हैं, भूचाल आते हैं और पृथ्वी के गर्भ से आग्नेय शिलखण्डों की उत्पत्ति होती है। पृथ्वी के गर्भ से निकलनेवाली खनिज सम्पत्ति इन्हीं के फलस्वरूप जन्म लेती है!

गुप्त घटनाओं की दूसरी श्रेणी वह है, जो पृथ्वी की रचना में भूमि और सागरतल को नीचे-ऊँचे या दायें-बायें उठाती-बैठाती और हटाती रहती है। इस क्रिया का नाम 'डायस्ट्राफिज्म' है। इस क्रिया का परिणाम हमें पृथ्वी की रचना के इतिहास में कई स्थलों पर दिखाई पड़ता है पृथ्वी की रचना का इतिहास बताता है कि लगभग सभी महाद्वीप (भूमिखण्ड) एक न एक समय सागर के भीतर डुबकी लगा चुके हैं। सागर में डूबना और डूबकर फिर भूमिखण्ड के रूप में निकल आना यह अधिकतर भूमिखण्ड के दबने और उठने के परिणामस्वरूप हुआ है, समुद्र की सतह के घटने-बढ़ने से नहीं। भूमि का यह उठना और दबना आज भी निरन्तर होता रहता है। ये घटनाएँ ऐसी हैं, जिनका प्रभाव महाक्रान्तिकारी होता है तथापि इनको हम देख नहीं सकते।

डायस्ट्राफिज्म अर्थात् असमतल भू-खण्डों का उठना और बैठना तथा इधर-उधर खिसकना दो प्रकार का होता है। एक तो पर्वत-निर्माण-कारी और दूसरा भूखण्ड-निर्माणकारी। प्रथम में प्रस्तरशिलाएँ दबाब पड़ने से टूट या मुड़ जाती हैं और ऊपर बैठ जाती हैं। इस दबाव का प्रभाव शिलाओं के पतले पर्तों पर अधिक पड़ता है। दूसरी भूखण्ड-निर्माणकारी प्रक्रिया का अर्थ है पृथ्वी के भूखण्डों का सागर के जल में विलुप्त हो जाना अथवा सागर से निकलकर नए भूखण्डों के रूप में प्रकट होना। बड़े-बड़े भूखण्डों का कई भूखण्डों में विभाजित होना और छोटे भूखण्डों का मिलकर एक विशाल भूखण्ड बन जाना भी इसी प्रकार की घटना के अन्तर्गत आता है। पर्वत-निर्माणकारी घटनाओं के फलस्वरूप पृथ्वी पर न केवल नए पर्वत बनते हैं, वरन् पुराने पर्वतों की शिलाओं की श्रेणियाँ भी विशृंखल हो जाती हैं, टूट-फूट जाती हैं, मरोड़ खा जाती हैं अथवा लचक जाती हैं। भूखंड-निर्माणकारी घटनाओं के फलस्वरूप न केवल भूखण्ड ही स्थिर हैं, वरन् समुद्रतल अथवा समुद्र की सीमा भी स्थिर-सी रहती है। एक विशेष बात इन घटनाओं के सम्बन्ध में भी यही है कि इनका परिणाम अथवा प्रभाव वर्ष दो वर्ष के भीतर तनिक भी नहीं ज्ञात हो सकता। युग बीत जाते हैं और इन घटनाओं के प्रभाव को लोग समझ नहीं पाते। जब पृथ्वी की रचना में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन होता है, तभी हमारा ध्यान उनके कारण की ओर जाता है।

पृथ्वी की रचना में डायस्ट्राफिज्म का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव यह पड़ता है कि पृथ्वी की सतह सदैव अनियमित बनी रहती है तथा भूखण्ड पृथ्वी से नष्ट नहीं हो पाते। अन्यथा भूखण्डों को सागर का जल आज तक कभी का रगड़-रगड़कर मिटा चुका होता और आज भूपृष्ठ पर एक

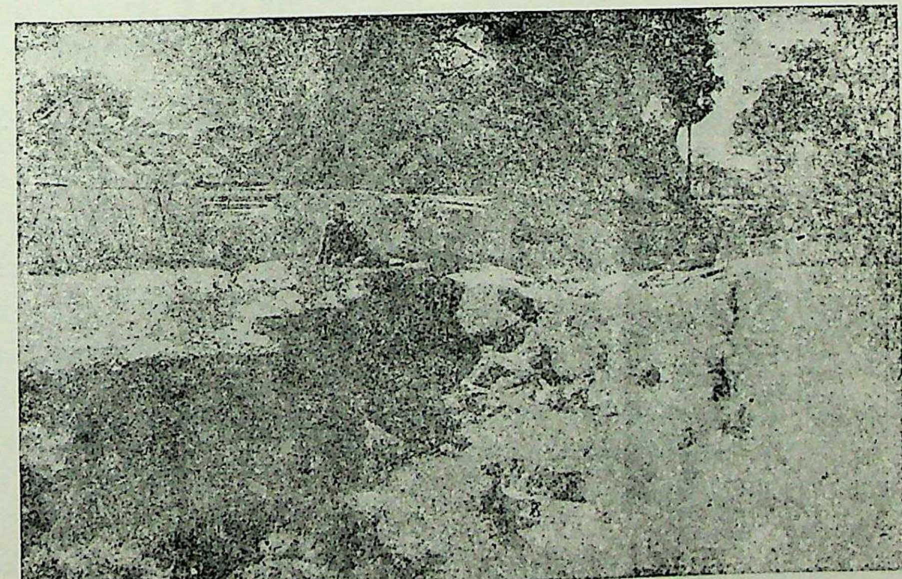

भूकंप द्वारा होनेवाले परिवर्तन की एक झाँकी। यह मुजफ्फरपुर के जिलाधीश के बंगले का हाता है, जो १९३४ के महान् बिहार-भूकंप में ७ फीट नीचे धँस गया था!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

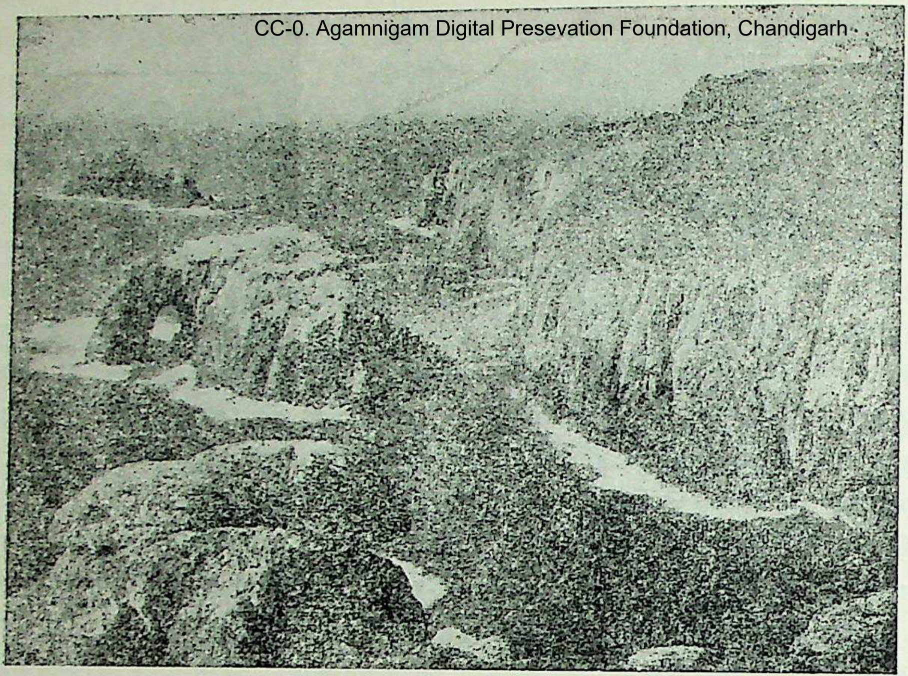

भूपृष्ठ के परिवर्तन में समुद्र का क्रान्तिकारी प्रभाव । समुद्रतट की भूमि को लहरों द्वारा काट-काटकर लगातार अपना विस्तार बढ़ाने में प्रयत्नशील रहता है । चित्र में प्रदर्शित पानी के बीच के भूखण्ड इसी क्रिया के फलस्वरूप मुख्य भूभाग से अलग हो गए हैं ।

सर्वव्यापक असीमित सागर की चादर फैली हुई लहराती दिखाई देती ।

आइसोस्टेसी

पृथ्वी की रचना पर प्रभाव डालनेवाली गुप्त घटनाओं में एक महत्वपूर्ण क्रिया वह है, जिसे 'आइसोस्टेसी' अथवा 'समतुलन' के सिद्धान्त द्वारा समझाया जाता है । इस सिद्धान्त के अनुसार पृथ्वीतल के असमतल भाग, अर्थात् बड़े-बड़े भूखण्ड, आदि अनियमित और स्वतंत्र क्रियाओं के फलस्वरूप नहीं बन गए हैं, वरन् नियमानुकूल सिद्धान्तों के अनुसार बने हैं और इसी के कारण टिके हैं । पृथ्वी के ये असमतल भाग उसके चिप्पड़ के साथ जुड़े हुए नहीं हैं और न उसके कारण ये टिके हैं । वरन् ये भाग पृथ्वी के चिप्पड़ के नीचे के पदार्थ पर उसी प्रकार तैरते हैं, जैसे शहद में मक्खी । चिप्पड़ के नीचे का पदार्थ इस्पात की भाँति कठोर है तथापि भूगर्भ की क्रियाओं के फलस्वरूप उसको भी विचलित होना पड़ता है ।

इस सिद्धान्त के अनुसार पर्वतों के नीचे का पदार्थ समुद्र-तल के नीचे के पदार्थ की अपेक्षा हलका है । भूतल के नीचे ४० मील की गहराई के ऊपरवाले समान क्षेत्रफल के भूखण्डों का भार बराबर है, चाहे ऊँचाई नीचाई में उनमें मीलों का अन्तर क्यों न हो । पृथ्वी पर भूखण्ड के दो पड़ोसी टुकड़ों में एक पर चाहे विशाल पर्वत खड़ा हो और दूसरे में गहरी खाई हो, पर यदि दोनों बराबर क्षेत्रफल के टुकड़ों पर बने हैं, तो उनका भार समान होगा, यही आइसोस्टेसी का सिद्धांत है । 'समतुलन' के इस सिद्धान्त से भूखण्डों का नीचे-ऊपर बैठना-उठना तथा सागर के स्थान में पर्वतों का निकलना हमारी समझ में बड़ी सरलता से आ जाता है । पृथ्वी का जो भाग घिस-घिसकर हलका हो जायगा, वह ऊपर उठता जाएगा और जहां पर सदैव पृथ्वी के चिप्पड़ की छीलन जमा होगी, वह भारी होकर नीचे बैठ जाएगा । यही कारण है कि समुद्र में ठोस पदार्थों का करोड़ों मन बोझा महीन छीलन के रूप में जाकर नित्य जमा होने पर भी वह भरने नहीं पाता । जो पदार्थ उसकी तलहटी में जमा होते हैं, वे अपने भार से तलहटी को नीचे दबाते जाते हैं । इसी सिद्धान्त पर, कहते हैं, हिमालय आज भी ऊपर उठ रहा है ।

भूपृष्ठ के रूप-परिवर्तन के अनुष्ठान में जल, वायु, सूर्य-ताप आदि विभिन्न प्राकृतिक शक्तियों के अतिरिक्त वनस्पति, जीव-जन्तु एवं स्वयं मनुष्य भी न्यूनाधिक रूप में सहायक हैं । उदाहरण के लिए, पुराकाल के वृक्षों के अवशेषों से निर्मित कोयले के स्तर, सूक्ष्म समुद्री जीवों के अवशेषों से निर्मित खड़िया अथवा मूंगे की चट्टानों आदि की मिसाल पेश की जा सकती है । और मनुष्य तो क्या भूमि पर हल चलाकर, और क्या नहरों, सड़कों, खनिजों आदि के लिए बड़े-बड़े पहाड़ों को धराशायी करके भूपृष्ठ का रूप दिन प्रतिदिन बदलता चला जा रहा है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृथ्वी के चिप्पड़ के उलट-फेर में न केवल जड़ प्रकृति प्रत्युत चेतन जीव-जन्तुओं का भी गहरा हाथ है। मूंगे नामक जंतु ही को लीजिए। इस सूक्ष्म जल-जंतु की करामात से समुद्र में कई नवीन टापू बन गए हैं। इस चित्र में आॅस्ट्रेलिया के पूर्वी तट के समानांतर फैले हुए इसी प्रकार के द्वीपों की हजारों मील लंबी शृंखला का एक भाग दिखाया गया है।

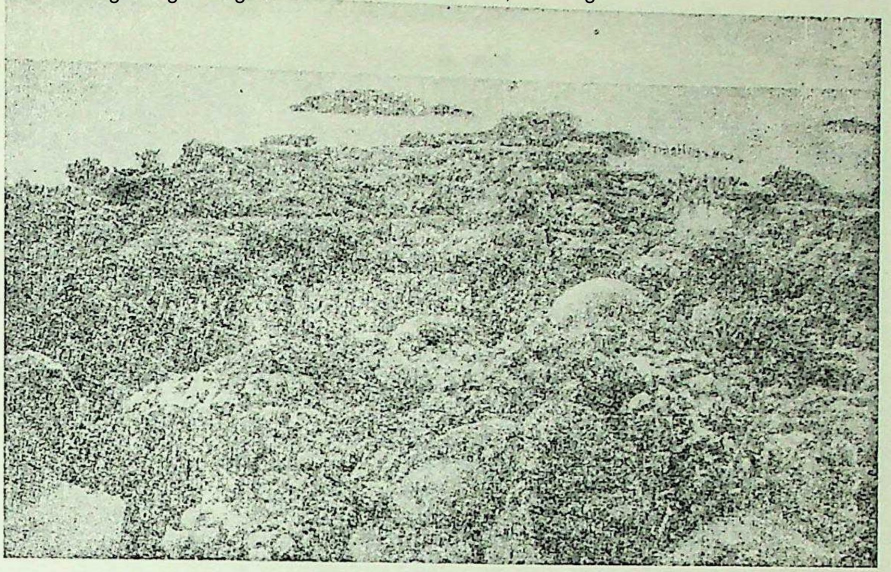

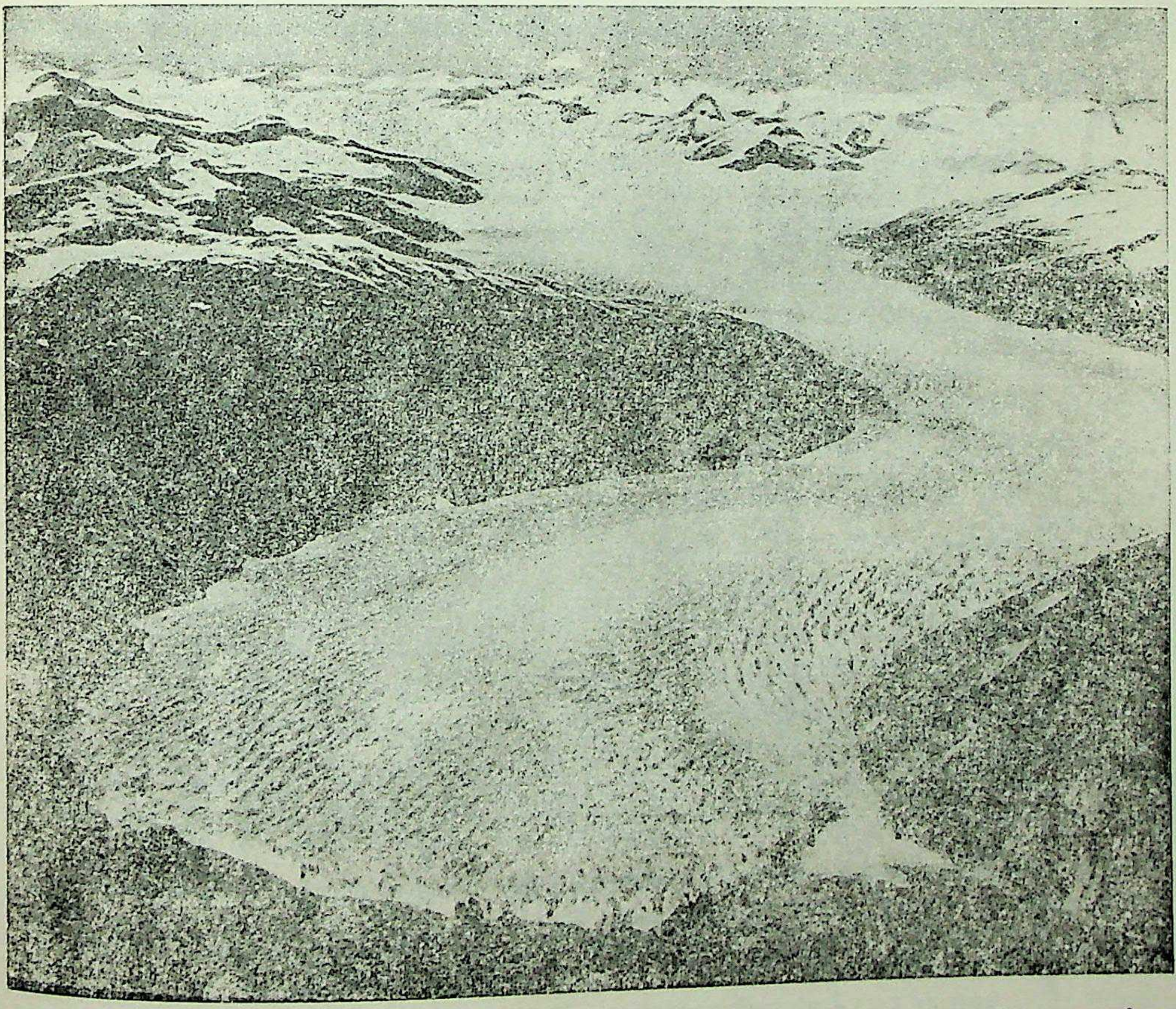

हिमानी या ग्लेशियर का भी भूपृष्ठ के रूप-परिवर्तन में महत्वपूर्ण हाथ है। बर्फीली शिलाओं का यह भीषण नद पर्वत-शिखरों से धीरे-धीरे खिसकता हुआ नीचे की ओर बढ़ता जाता है और राह की कठोर शिलाओं को चकनाचूर करता एवं बहाता हुआ आसपास की सारी झांकी बदल देता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

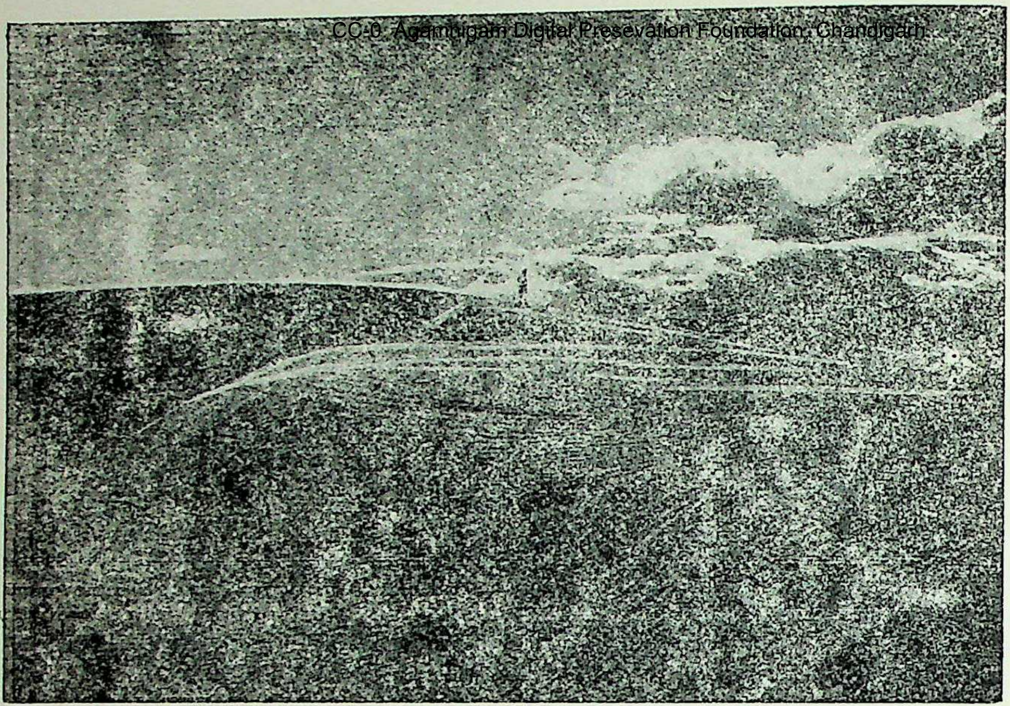

धरातल के रूप-परिवर्तन में वायु भी कोई कम योगदान नहीं देती । प्रस्तुत चित्र में रेगिस्तान का एक दृश्य है, जहाँ आँधी के कारण बालू एक स्थान से दूसरे स्थान को उड़ती रहती है, जिसके कारण वहाँ रेत के बड़े-बड़े टीले वन जाते हैं ।

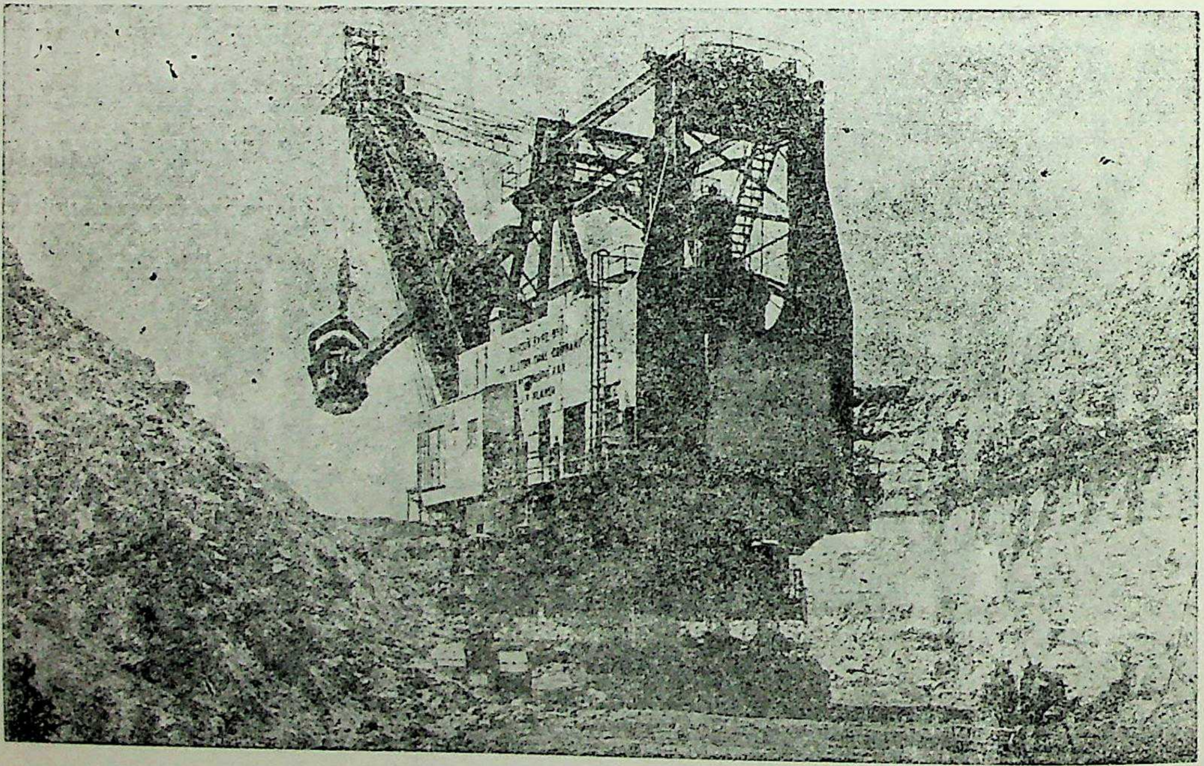

यह चित्र धरातल के परिवर्तन में मनुष्य के योगदान का परिचायक है । कृषि-कार्य, खानों की खुदाई, नहरों की रचना, सड़कों के निर्माण, आदि द्वारा मनष्य भी निरंतर भूपृष्ठ के मुखमंडल की झाँकी को बदलता रहता है । अपने इस कार्य में मदद देने के लिए उसने भाँति-भाँति के अचरजभरे यंत्रों का आविष्कार किया है, जो कि दानवों का-सा काम कर दिखाते हैं । वे बात की बात में टनों वजन की चट्टानों को तोड़-फोड़कर कंकड़-पत्थर के ढेर में परिणत कर देते और तब अपने दैत्याकार हाथों से उस मलवे को समेटकर तथा उठाकर यहाँ से वहाँ रख देते हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भूपृष्ठ के साधारण खनिज और उनकी पहचान

भूपृष्ठ या पृथ्वी का चिप्पड़ जिन अवयवों से बना है, वे विविध रासायनिक तत्त्वों के यौगिकों के रूप में पाए जाते हैं। यही 'खनिज' कहलाते हैं। भूविज्ञान की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि हमारे आर्थिक जीवन के लिहाज से भी इनका अध्ययन अति महत्वपूर्ण है।

यद्यपि धरातल पर १०१ मूल तत्त्व पाए जाते हैं, तथापि भूपृष्ठ की रचना में जिन मूल तत्त्वों की बाहुल्यता है, वे वस्तुतः केवल २१ ही हैं। इन्हीं २१ तत्त्वों को लेकर ही भूपृष्ठ के ९९ प्रतिशत भाग का निर्माण हुआ है—शेष मूल तत्त्व भूपृष्ठ के १ प्रतिशत भाग के ही अधिकारी हैं। इन २१ तत्त्वों में भी केवल ८ ही ऐसे हैं, जो महत्व के हैं। स्वतंत्र रूप में मूल तत्त्व बहुत कम पाए जाते हैं। सोना, गन्धक, कार्बन, प्रभृति दो-चार तत्त्व तो मूल तत्त्व के रूप में पाए जाते हैं, शेष सब एक दूसरे के साथ रासायनिक रूप में सम्मिलित रहते हैं। मूल तत्त्वों के इन रासायनिक सम्मेलनों को, जिनकी रासायनिक रचना, प्राकृतिक रूप-रंग, आकार-प्रकार आदि भौतिक गुण निश्चित होते हैं, 'खनिज' कहते हैं।

खनिज प्रायः निरे मूल तत्त्व के भी हो सकते हैं, जैसे हीरा, गन्धक, कोयला, सोना, चांदी आदि। परंतु बहुधा एक से अधिक मूल तत्त्वों के योग से खनिज की रचना होती है। ऐसे खनिजों की रचना में जिन मूल तत्त्वों का समावेश होता है, उनका अनुपात सदैव एक ही सा रहता है। रासायनिक विश्लेषण द्वारा खनिज के अवयवों का अनुपात निर्धारित होते ही खनिज की पहचान करने में सरलता हो जाती है। उदाहरणार्थ, बिल्लौरी पत्थर की रासायनिक रचना सिलिकन और ऑक्सिजन नामक दो तत्त्वों के योग से होती है। अब चाहे किसी प्रकार का भी बिल्लौरी पत्थर क्यों न हो, उसमें सिलिकन के एक अणु के साथ ऑक्सिजन के दो अणुओं का अवश्य योग होगा। जब हम किसी खनिज का रासायनिक विश्लेषण करें और उसमें सिलिकन और ऑक्सिजन के अणुओं का उपर्युक्त अनुपात पाएं, तब हम सहज ही यह समझ सकते हैं कि यह खनिज या तो बिल्लौर है अथवा उसी का कोई दूसरा रूप है।

परन्तु रासायनिक विश्लेषण की सुविधा हमें प्रत्येक स्थान पर मिलना असम्भव है। इसलिए यदि इसी के भरोसे हम रहें, तो खनिजों की पहचान करने में हम बड़ी असुविधा का अनुभव करेंगे। इसके विपरीत खनिजों की प्राकृतिक (स्वाभाविक) अवस्था तथा उनके भौतिक गुणों द्वारा हम प्रत्येक स्थान में उनकी जांच कर सकते हैं। इसलिए यह जानना परम आवश्यक है कि खनिजों के किन भौतिक और स्वाभाविक गुणों द्वारा उनकी पहचान की जा सकती है।

भौतिक गुण

(१) खनिजों का केलासीय या रवादार होना—लगभग सभी खनिज रवादार होते हैं और विभिन्न खनिजों के रवे विभिन्न आकार-प्रकार के होते हैं, क्योंकि प्रत्येक खनिज के अणुओं की एक निश्चित आन्तरिक रचना होती है, जिसके अनुसार खनिजों के निम्नतम अंश चिकने समतल फलकों से घिरे रवों के रूप में पाए जाते हैं। रवों के फलक सरल रेखाओं से सीमित होते हैं। जहां दो फलक मिलते हैं, वहां एक धार बन जाती है। रवों में सबसे सुन्दर और पूर्ण रवा स्फटिक (क्वार्ट्ज) या बिल्लौर का होता है, जिसे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्फटिक मणि के नाम से भी पुकारा जाता है। स्फटिक मणि में छः चतुर्भुजाकार समपार्श्व होते हैं और प्रत्येक पार्श्व के दोनों सिरों पर एक-एक त्रिभुजाकार पार्श्व पाया जाता है। उन छहों त्रिभुजाकार पार्श्वों के एक बिन्दु में मिलने से रवे के दोनों सिरों पर छः फलकवाले दो शंकुओं की रचना हो जाती है। स्फटिक मणि का कोई भी रवा आप लें, प्रत्येक की रचना इसी प्रकार की होगी। इसी प्रकार कैलसाइट नामक खनिज का रवा भी एक आदर्श रवा है। इस खनिज के रवों की एक और विशेषता यह है कि प्रत्येक रवे का चूर्ण करने पर वह वैसे ही असंख्य छोटे रवों में बिखर जाता है और ऐसे प्रत्येक छोटे रवे का आकार-प्रकार उसी बड़े रवे के समान होता है, जिसका कि वह खण्ड होता है।

रवे विभिन्न आकार के और असंख्य होते हैं। परंतु प्रत्येक खनिज के रवे सदैव एक ही आकार-प्रकार के होते हैं। इस प्रकार रवों द्वारा खनिजों की पहचान बड़ी सरलता से की जा सकती है। कुछ ऐसे भी खनिज हैं, जिनके रवे नहीं होते। ये रवाहीन (एमार्फस) खनिज कहलाते हैं। परन्तु ऐसे खनिज कम ही हैं और अनुकूल अवस्था में इनके भी रवे बन जाते हैं।

(२) खनिजों के रवों की तड़कन—ऊपर हमने कैलसाइट के रवे के जिस विशेष गुण का वर्णन किया है, अन्य खनिजों में भी उसी तरह एक विशेष प्रकार से खण्डित होने का गुण होता है। इस गुण को रवों की तड़कन कहते हैं। रवों की इस विशेषता के कारण खण्डित होने पर भी उनके खण्ड रवों के रूप में पहचाने जा सकते हैं। कैलसाइट के रवे समबाहुविषमकोणीय छः चतुर्भुजों से घिरे ठोस होते हैं। खण्डित होने पर उन रवों का पैत्रिक रूप बना ही रहता है। इसी प्रकार साधारण लवण के रवे घनाकार होते हैं। इन रवों की तड़क परस्पर समकोण पर झुकी तीन दिशाओं में होती है और प्रत्येक दिशा घनाकार रवे के एक फलक के समानान्तर होती है। अबरक के रवों की तड़क एक फलक के समानान्तर की दिशा में होती है। फलस्वरूप अबरक सदैव पतले-पतले पर्तों के रूप में चीरा जा सकता है। यह अबरक की एक अनोखी विशेषता है।

(३) खनिजों और उनकी लकीरों के रंग—खनिजों के रंग भी बहुधा निश्चित होते हैं। एक प्रकार का खनिज सदैव एक ही रंग का होता है और उसका रंग बहुधा दूसरे खनिजों के रंगों से विभिन्न होता है। परन्तु कभी-कभी एक ही खनिज कई रंग की जातियों में भी पाया जाता है, जैसे साधारणतः स्फटिक रंगविहीन अथवा दूधिया रंग का होता है, परन्तु इसके हल्के गुलाबी, हरे, भूरे तथा कत्थई रंग के भी नमूने मिलते हैं। यह तो हुई खनिजों के ऊपरी रंग की बात। पर बहुधा ऐसा भी होता है कि ऊपर से देखने में खनिज जिस रंग का प्रतीत होता है, उसका चूर्ण उससे विभिन्न रंग का होता है। सोनामाखी (चाल्कोपाइराइट) नामक तांबे के गंधकमिश्रित खनिज का रंग ऊपर से सोने जैसा पीला होता है, परन्तु उसका चूर्ण काला होता है। इसी प्रकार काले रंग के लौह पाषाण (हैमेटाइट) का चूर्ण लाल रंगवाला होता है। चूर्ण का रंग जांचने के लिए खनिज द्वारा खींची गई लकीर का रंग जांचा जाता है। यह लकीर चीनी मिट्टी की एक खुरदरी पटिया की कसौटी पर खनिज को खुरेंचकर बनाई जाती है।

(४) खनिजों की आभा—कुछ खनिजों में एक विशेष प्रकार की आभा होती है, जो अन्य खनिजों में नहीं होती। कुछ खनिज एकदम आभाविहीन भी होते हैं। जिन खनिजों में आभा होती है, उनमें से कुछ तो हीरे के समान दमकते हैं, और कुछ मोतियों के समान चमकते हैं। कुछ खनिजों की चमक कांच के भग्न खण्ड की-सी होती है और कुछ की रेशम के समान! किसी-किसी में मोरपंख जैसी चमक होती है। पर हर हालत में प्रत्येक खनिज की आभा भिन्न होती है।

(५) खनिजों की कठोरता—कठोरता द्वारा भी खनिजों की पहचान की जाती है। प्रत्येक खनिज की कठोरता भिन्न होती है। कुछ इतने नरम होते हैं कि हाथ के नाखून से खुरेंचे जा सकते हैं और कुछ इतने कठोर कि उन पर लोहे की धार भी नष्ट हो जाती है। खनिजों की कठोरता की जांच के लिए विभिन्न कठोरतावाले १० खनिजों को उनकी कठोरता के क्रम से रखकर एक मान निर्धारित कर लिया गया है। उदाहरणार्थ, सबसे कम कठोरतावाले खनिज सेलखरी की कठोरता को एक के बराबर और सबसे कठोर खनिज हीरे की कठोरता को दस के बराबर माना जाता है। बीच की कठोरताओं के लिए अन्य खनिजों के मान का उपयोग किया जाता है। उपर्युक्त १० खनिज क्रमानुसार ये हैं:—

१—सेलखरी (टाल्क); २—हरसोठ (जिप्सम); ३—कैलसाइट; ४—फ्लुओराइट; ५—एपेटाइट; ६—फैलस्पार; ७—स्फटिक (क्वार्ट्ज); ८—पुखराज; ९—कुरंद; १०—हीरा।

उपर्युक्त सूची में से प्रत्येक खनिज क्रमानुसार अपने पूर्ववर्ती खनिज को खुरेंच सकता है, और अपने से अधिक कठोर आगेवाले खनिज से खुरेंचा जा सकता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(६) खनिजों का भारीपन—कुछ खनिज हलके और कुछ भारी होते हैं। बहुधा धातुमिश्रित खनिज भारी होते हैं। प्रत्येक खनिज का आपेक्षिक घनत्व निश्चित होता है, जिसके कारण अन्य खनिजों से वह अलग किया जा सकता है। किसी खनिज का घनत्व २ और किसी का २० तक होता है। साधारणतः खनिजों के छोटे-छोटे खण्डों को हाथ में तौलकर ही उनके भारीपन का अन्दाजा लगाया जाता है। परन्तु खनिजों के आपेक्षिक घनत्व की जांच सरलतापूर्वक 'वाकर्स बैलेन्स' नामक यंत्र से की जा सकती है। यह एक लम्बी तराजू-सा यंत्र होता है, जो एक धुरी पर एक किनारे के पास सधा रहता है। इसके छोटे पलड़े में एक निश्चित वजन बंधा रहता है और बड़े पलड़े में खनिज के अंश को आगे-पीछे खिसकाकर पैमाने को समतल रखते हुए लटकाया जाता है। पहले खनिज को हवा में लटकाया जाता है और फिर जल में डुबाकर। दोनों बार की माप से खनिज का आपेक्षिक घनत्व सरलतापूर्वक निकाला जा सकता है।

उदाहरणार्थ, यदि पैमाने को समतल रखने के लिए पहले खनिज को 'अ' स्थान पर लटकाया गया था और जल में डुबाकर फिर उसको समतल करने के लिए पुनः 'ब' स्थान पर लटकाया गया, तो खनिज का आपेक्षिक घनत्व निम्न-लिखित अनुसार होगा :—

$$\text{आपेक्षिक घनत्व} = \frac{\text{ब}}{\text{ब—अ}}$$

खनिजों के उपर्युक्त भौतिक गुण ऐसे हैं, जिनकी जांच के लिए किसी प्रकार के यंत्रों आदि की आवश्यकता नहीं पड़ती और इन गुणों की पहचान करने से खनिजों की पहचान सरलता से की जा सकती है। परन्तु जब तक खनिजों की पहचान का अभ्यास खनिजों के नमूनों को स्वयं अपने हाथ में लेकर न किया जाए, तब तक केवल पुस्तकों के आधार पर उनकी पहचान नहीं की जा सकती, चाहे उन पुस्तकों में इन खनिजों का कितने ही विस्तार से वर्णन क्यों न किया जाय।

अब हम भूपृष्ठ के कुछ ऐसे उपयोगी और महत्वपूर्ण खनिजों का वर्णन करेंगे, जो प्रचुरता से पाए जाते हैं तथा चट्टानों की रचना में जो विशेष रूप से काम आते हैं।

भूपृष्ठ की रचना में जिन तत्त्वों का समावेश है, उनमें ऑक्सिजन, सिलिकन, अल्युमिनियम तथा लोहा नामक चार तत्त्वों का बाहुल्य है। यही कारण है कि भूपृष्ठ के खनिजों में भी इन्हीं तत्त्वों से बने खनिजों की प्रचुरता है। ये तत्त्व अधिकांश ऑक्साइडों के रूप में मिलते हैं। कुछ गन्धक-सम्मिलित सल्फाइडों के रूप में भी पाए जाते हैं, परन्तु ऐसे खनिजों का बाहुल्य नहीं है। अकेले एक तत्त्व के रूप में मिलनेवाले खनिज (सोना, गन्धक प्रभृति) अत्यन्त ही अल्प मात्रा में मिलते हैं। पहले हम भूपृष्ठ के ऑक्सिजन-प्रधान खनिजों का अध्ययन करेंगे।

ऑक्साइड अथवा ऑक्सिजन-प्रधान खनिज

स्फटिक (क्वार्ट्ज)—यह सिलिकन का ऑक्साइड है और धरातल पर प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इसका आपेक्षिक घनत्व २·६५ है और यह रवादार होता है। इसके रवे यदि पूर्ण होते हैं, तो दर्शनीय होते हैं। स्वच्छ निर्मल रवे को 'स्फटिक मणि' अथवा 'बिल्लौर' कहते हैं। स्फटिक एकदम पारदर्शक काँच की भाँति होता है और बहुधा रंग-विहीन होता है, परन्तु कभी-कभी उसके रंगीन रवे भी पाए जाते हैं। रंगीन स्फटिक गुलाबी, पीला, लाल, हरा, भूरा, कत्थई और काला आदि कई रंगों का होता है। जो स्फटिक सिलिकन का विशुद्ध ऑक्साइड होता है, वह सदैव रंगविहीन ही होता है। अन्य तत्त्वों की मिलावट से रंगीन स्फटिक की रचना होती है। बैंजनी रंगवाले स्फटिक को 'याकूत' (एमेथिस्ट) कहते हैं। काले रंग के अपारदर्शक खनिज को 'सूर्य-कांत' (जैस्पर) मणि के नाम से पुकारते हैं। 'गोमेदक' (एगेट) भी इसी खनिज की एक जाति है। इस खनिज की 'ओपल' आदि अन्य कई बहुमूल्य जातियाँ हैं, जो कीमती मणियों की श्रेणी में गिनी जाती हैं।

स्फटिक की पहचान करना कठिन नहीं है। इसकी चमक काँच के सदृश्य होती है और कठोरता काँच से भी अधिक। इसकी नोक से काँच पर खरोंचा जा सकता है और चाकू की नोक द्वारा इस पर खरोंच नहीं होती। साधारण अम्लों में यह घुलनशील नहीं है। यह खनिज अधिकांश चट्टानों का आवश्यक अंग है। जल की प्रक्रिया से यह प्रायः ठोस चट्टानों की दरारों में भर जाता है। चट्टानों में यह बहुधा धारियों के रूप में पाया जाता है।

लोहे के ऑक्साइड खनिज—भूपृष्ठ पर सिलिकन के उपर्युक्त खनिज के अतिरिक्त लोहे के ऑक्साइड खनिजों का भी बाहुल्य है। लोहे के ऑक्सिजन-मिश्रित तीन खनिजों के नाम महत्व के हैं—लाल गेरू या हेमेटाइट, रामरज अथवा पीला गेरू या लिमोनाइट, तथा चुम्बक पत्थर या मैग्नेटाइट। लाल गेरू में ७० प्रतिशत भाग लोहा तथा २० प्रतिशत भाग ऑक्सिजन का होता है। अन्य तत्त्वों के मिश्रण से बहुधा इस अनुपात में अन्तर पड़ जाता है। इसके रवे विषमकोण-समचतुर्भुजाकारी फलकवाले होते हैं। चाकू की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नोक द्वारा इस खनिज पर खरोंच करना कठिन है। रवादार गेरू बहुत कम पाया जाता है। बहुधा यह पिण्डाकार तथा पर्तों के रूप में मिलता है। इसका आपेक्षिक घनत्व ५·१६ से ५·२८ तक होता है। रंग में यह लाल, भूरा तथा इस्पात के समान काला होता है। इसका चूर्ण तथा इस पर खरोंच की लकीर सदैव लाल होती है। कभी-कभी इस खनिज का अबरक के समान चमकदार और परतीला रूप भी पाया जाता है। रेशेदार गेरू भी कभी-कभी देखने में आता है। इस खनिज का उपयोग लोहे के उत्पादन में सर्वत्र होता है। साधारण चट्टानों में लाल रंग बहुधा इसी खनिज के कारण पाया जाता है। गेरू का उपयोग रंग बनाने में बहुत होता है। भारत में यह मयूरभंज में मिलता है।

पीला गेरू अथवा रामरज खनिज गेरू की ही एक जाति है। जल की प्रतिक्रिया द्वारा लोहे के अन्य खनिजों के परिवर्तन से इस खनिज की रचना होती है। इस खनिज में ६० प्रतिशत भाग लोहा, २५ प्रतिशत भाग ऑक्सिजन और शेष भाग जल होता है। इसकी रचना जलाशयों, कन्दराओं आदि के तले पर होती है। कन्दराओं में स्टैलैक्टाइट और स्टैलेग्माइट नामक विचित्र रचनाओं के रूप में भी यह खनिज पाया जाता है। इसका रंग पीला परन्तु बहुधा भूरापन लिए हुए होता है। वार्निश और पेंट बनाने के उद्योग में यह बहुत काम आता है। इसका भारीपन अधिक नहीं है और आपेक्षिक घनत्व ३·६४ होता है। कठोरता भी लाल गेरू की अपेक्षा कम होती है। यह भुरभुरा होता है और बहुधा पिण्डाकार मिलता है। इसकी खरोंच पीली अथवा भूरी होती है और चूर्ण मटीला अथवा पीला। हमारे देश में इसे 'रामरज' कहते हैं और यह दीवालों को पीला करने तथा पीले रंग के कपड़े रंगने के काम आता है।

चुम्बक पत्थर, जिसे अंगरेजी में 'मैग्नेटाइट' कहते हैं, लोहे का ऑक्सिजन-मिश्रित तीसरा महत्वपूर्ण खनिज है। इसमें लोहे का अंश ७२·४१ प्रतिशत तथा शेष भाग ऑक्सिजन होता है। चुम्बक पत्थर रवादार जाति का भी पाया जाता है तथा रवाहीन पिण्ड के रूप में भी। इसका रंग लोहे के समान होता है। खरोंच भी लोहे के समान काली होती है और चूर्ण भी वैसा ही। चुम्बकत्व इस खनिज की विशेषता है। इसीलिए इसका नाम चुम्बक पत्थर पड़ा है।

सिलिकेट-प्रधान खनिज

भूपृष्ठ पर लोहे के खनिजों के अतिरिक्त अल्युमिनियम और सिलिकन के खनिजों की भी बहुतायत है। इन तत्वों के खनिजों में सबसे महत्वपूर्ण फैल्स्पार है, जिसकी कई जातियां हैं। सिलिकेट-प्रधान खनिजों में दूसरा महत्वपूर्ण खनिज अबरक है। फैल्स्पार कई प्रकार के होते हैं और वे बहुतायत से पाए जाते हैं। नीचे इन्हीं खनिजों का वर्णन हम करने जा रहे हैं।

फैल्स्पार—यह खनिज-परिवार मुख्यतः पोटेशियम, सोडियम आदि क्षार तथा अल्युमिनियम धातु के संयुक्त सिलिकेटों के रूप में पाए जानेवाले खनिजों से मिलकर बना है। इस परिवार में सेलसियन, हायलोफेन, आर्थोक्लेज, माइक्रोक्लाइन, एनआर्थोक्लेज, सोडा आर्थोक्लेज, अल्बाइट, आलीगोक्लेज, एँडेसाइन, लेब्रेडोराइट तथा अनार्थाइट आदि खनिज सम्मिलित हैं। इस विशद फैल्स्पार परिवार को तीन प्रमुख श्रेणियों में विभक्त किया जाता है:—

(१) आर्थोक्लेज, जो पोटेशियम-अल्युमिनियम का सिलिकेट है (इसका सूत्र $KAlSi_3O_8$ है)।

(२) माइक्रोक्लाइन, जो रासायनिक रचना में आर्थोक्लेज के समान ही होता है, परंतु अणुरचना के भेद के कारण जिसके रवों की रचना उससे भिन्न होती है।

(३) प्लेजियोक्लेज, जो सोडियम-अल्युमिनियम-सिलिकेट तथा कैल्शियम-अल्युमिनियम-सिलिकेट का संयुक्त रूप है। (इसका सूत्र $NaAlSi_3O_8—CaAlSi_3O_8$ है)।

फैल्स्पार की कठोरता ६ है। आपेक्षिक घनत्व पोटाश फैल्स्पार का २·५४ से २·५७ तक और सोडा फैल्स्पार का २·६२ से २·७६ तक होता है। इसके रवों में दो दिशाओं में तड़क होती है। तड़क की दिशा एक-दूसरे के समकोण होती है। फैल्स्पार के रवे स्फटिक के रवों के ही समान होते हैं, फिर भी अपनी कठोरता और तड़क की विशेषता के कारण वे शीघ्र ही पहचाने जाते हैं। साधारण अम्लों में यह खनिज घुलनशील नहीं है।

आर्थोक्लेज फैल्स्पार ग्रेनाइट नामक शिला का विशेष अंश है। अन्य आग्नेय तथा परिवर्तित शिलाओं में भी यह पाया जाता है। इसका रंग सफेद, लाल, गुलाबी और भूरा होता है। कभी-कभी, परन्तु बहुत कम, हरे रंग का भी आर्थोक्लेज मिलता है। खरोंच सभी रंग के प्रतिरूपों की सफेद होती है। विशेष आभा अथवा रंग के कारण भी इस वर्ग के किसी-किसी प्रतिरूप का विशेष नाम रख लिया गया है। एक विशेष रंगविहीन जाति के फैल्स्पार को अडुलेरिया कहते हैं। मोती के सदृश आभावाले खनिज को चन्द्रमणि या मूनस्टोन कहते हैं। एक अनोखी सुनहरी आभावाले लाल रंग के आर्थोक्लेज फैल्स्पार को मर्चिसोनाइट कहते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

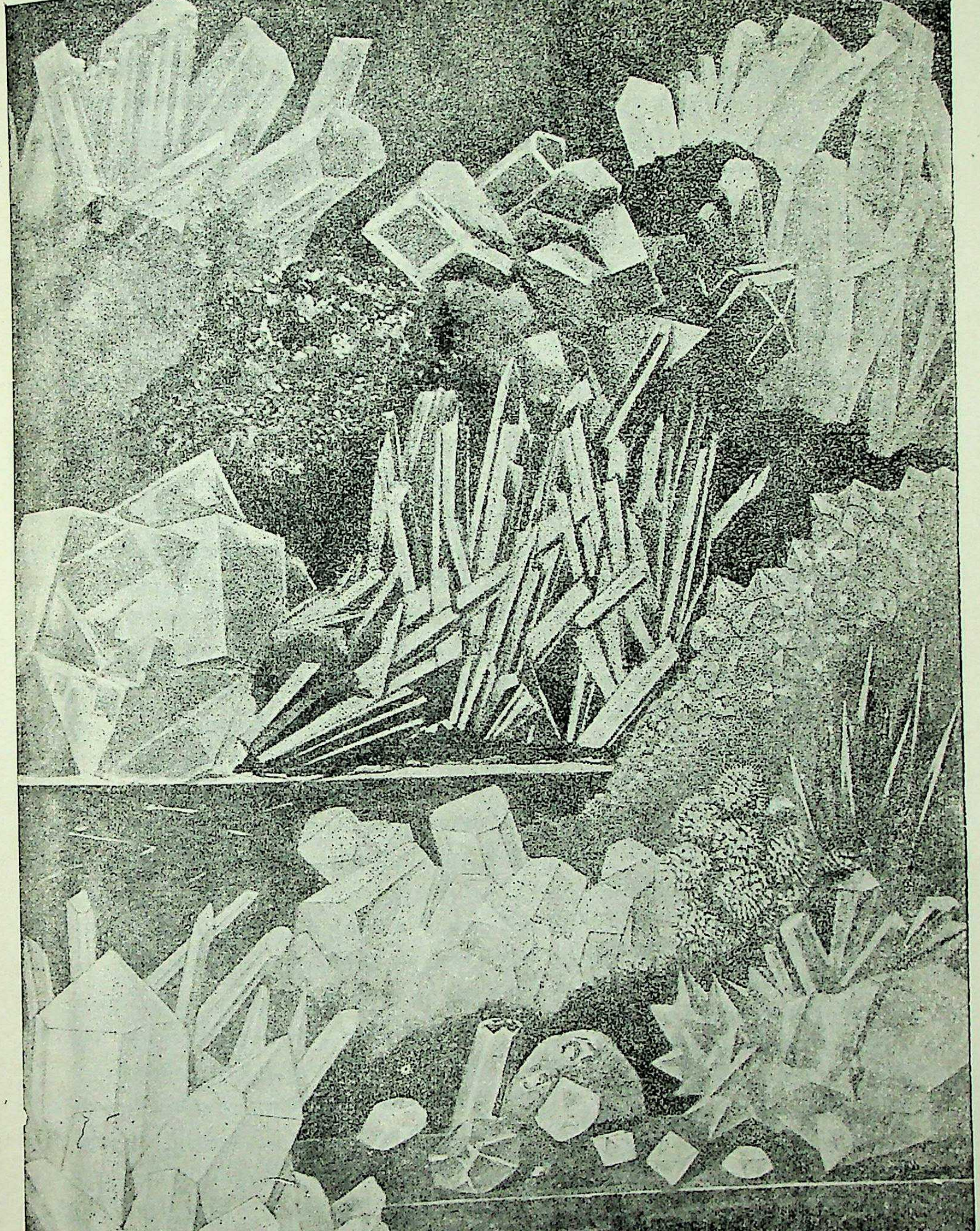

भिन्न-भिन्न जाति के खनिजों के रवे या केलास (कृपया पंक्तिवार ऊपर से बाईं ओर से दाहिनी ओर को देखिए) प्रथम पंक्ति—टूर्मलीन सेलेनाइट; द्वितीय पंक्ति--सोनामाखी के दो रूप; गंधक; तृतीय पंक्ति--फ्लुओरस्पार; ऐंटीमनी सल्फाइड; याकूत; चतुर्थ पंक्ति—फैल्स्पार; आर्गेनाइट; पाँचवी पंक्ति--स्फटिक; नीलम; पन्ना; पुखराज, हीरा आदि कुछ प्रधान मणियाँ; कैल्साइट।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माइक्रोक्लाइन और आर्थोक्लेज के गुणों में बहुत अधिक समानता है। इसका आपेक्षिक घनत्व २·५५ तथा कठोरता ६ से ६·५ तक होती है। इसका रंग गहरा हरा होता है, परन्तु सफेद, गुलाबी और भूरे रंग के प्रतिरूप भी पाए जाते हैं।

प्लेजियोक्लेज साधारणतः मटियाले अथवा सफेद रंग के रवों के रूप में पाए जाते हैं। इनके रवों की सतह सदैव सूक्ष्म रेखांकित होती है। इस गुण के कारण प्लेजियोक्लेज के रवे आर्थोक्लेज तथा माइक्रोक्लाइन के रवों से विभिन्न पहचाने जाते हैं। अल्बाइट, आलीगोक्लेज, एंडेसाइन, लेब्रेडोराइट, बाइटोनाइट तथा अनार्थाइट आदि खनिज प्लेजियोक्लेज की ही जातियां हैं। इनकी रचनाओं में सोडा तथा चूनेदार अणुओं की न्यूनाधिकता है।

फैल्सपार खनिज जल और वायु की प्रतिक्रिया से केओलिन नामक मिट्टी में परिवर्तित होते रहते हैं। इसी मिट्टी को 'चीनी मिट्टी' भी कहते हैं।

नैफलीन—यह खनिज भी फैल्सपार के समान ही रासायनिक रचना में सोडा-अल्युमिनियम-सिलिकेट ($NaAlSiO_4$) है। परन्तु इसमें सिलिका का अंश कम होता है। कभी-कभी पोटेशियम का अंश भी इसमें रहता है। यह खनिज अधिक नहीं पाया जाता। इसका प्राप्तिस्थान आग्नेय शिलाएँ हैं। परन्तु नैफलीनदार आग्नेय शिलाएँ भूपटल पर अधिक नहीं पाई जातीं। नेफलीन का रंग फैल्सपार के समान सफेद मटियाला या लाल होता है। स्फटिक के समान इसमें भग्न काँच की-सी चमक होती है। इसकी कठोरता ५·५ से ६ तक होती है और आपेक्षिक घनत्व २·५५ से २·६५ तक। इस वर्ग के खनिज भी स्फटिक के साथ किसी आग्नेय शिला में नहीं मिलते, क्योंकि सिलिका का बाहुल्य होने पर उस आग्नेय पिण्ड से नैफलीन के स्थान पर फैल्सपार का बनना अधिक सम्भव है। काँच बनाने में इस खनिज का उपयोग हो सकता है। किशनगढ़, जूनागढ़ तथा मद्रास में यह खनिज आग्नेय शिलाओं में पाया जाता है।

अबरक—फैल्सपार के समान ही खारों और अल्युमीनियम धातु के सिलिकेटों का एक और खनिज-परिवार है, जिसे 'अबरक' या अभ्रक' के नाम से पुकारा जाता है। अबरक के चमकीले पारदर्शी परतीले रूप से बहुधा सभी परिचित होंगे। इसी का चूरा अबीर के रूप में देखने में आता है। इस खनिज-परिवार में भी कई सदस्य हैं। परन्तु बायोटाइट नामक काला अबरक तथा मस्कोवाइट नामक सफेद अबरक ही अधिक प्राप्य हैं। मस्कोवाइट तथा बायोटाइट के अतिरिक्त फ्लोगोपाइट नामक एक तीसरा अबरक भी पाया जाता है। यह पीतवर्ण होता है। आजकल अबरक का उपयोग बिजली के यंत्रों में बहुत होता है। इस कार्य में सफेद और पीला अबरक ही उपयोगी होता है। काला अवरक केवल आयुर्वेदिक औषधियों के उपयोग में आता है। सोडियम, पोटेशियम और लीथियम के अबरक बहुधा सफेद होते हैं। रंगदार अबरकों में लोहा, मैग्नीशियम आदि धातुओं का योग रहता है। सभी अबरक सोडियम, पोटेशियम, लीथियम तथा अल्युमिनियम के सिलिकेट हैं। फैल्सपार से इनकी रासायनिक रचना में यही विभिन्नता होती है कि इनमें जल के अणु भी मिले होते हैं। उदाहरणार्थ, मस्कोवाइट नामक पोटेशियम के अबरक का सूत्र है–$2H_2O.K_2O\,3Al_2O_3$-$6SiO_2$।

अबरकों की पहचान उनकी तड़क की विशेषता से की जा सकती है, जो अन्य खनिजों में नहीं पाई जाती। अबरक की तड़क सदैव एक ही दिशा में होती है, जिसके कारण उसको महीन परतों में चीरा भी जा सकता है। अबरक की महीन परत भी लचकीली और नरम होती है। पारदर्शक होना इस खनिज-परिवार का दूसरा विशेष गुण है। मस्कोवाइट अबरक की कठोरता २ से २·५ तक तथा बायोटाइट की २·५ से ३ तक होती है। सभी अबरक वजन में हल्के होते हैं।

अबरक की गिनती साधारण शिलानिर्माणकारी खनिजों में की जाती है और ग्रेनाइट तथा पेगमेटाइट शिलाखण्डों में स्फटिक तथा फैल्सपार के साथ यह बहुधा पाया जाता है। इसकी परतीली रचना तथा परतों की तड़क की विशेषता से ही इसकी मोटी-मोटी तहोंवाली चट्टानों को 'माइका-शिष्ट' कहते हैं। बिहार, उड़ीसा, मद्रास तथा राजस्थान में अबरक के काफी शिलाखण्ड पाए जाते हैं।

क्लोराइट—यह अबरक से मिलता-जुलता खनिज है। रासायनिक रचना में भी यह अबरक के समान है। यह मग्नीशियम और अल्युमिनियम का सिलिकेट हैं। इसका रंग हरा होता है और इसकी तड़क अबरक के समान होती है, परन्तु इसके परत उतने लचकीले और नरम नहीं होते। कठोरता २ से २·५ तक होती है और आपेक्षिक घनत्व २·६५ से २·८५ तक होता है। बहुधा इस खनिज की रचना बायोटाइट तथा अन्य खनिजों के विनाश से होती है। शिलाखण्डों में हरा रंग मुख्यतः इसी खनिज के कारण होता है। इस खनिज की शिलाएँ बिहार और मद्रास राज्य में मिलती हैं।

उपर्युक्त सिलिकेट-प्रधान खनिजों के अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण शिलानिर्माणकारी खनिज ऑगाइट (जिसे पायरोक्जीन भी कहते हैं), हार्नब्लेण्ड, ओलीवाइन, जहरमोहरा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

या सरपैण्टाइन, तामरा या गार्नेट तथा टूर्मलीन आदि हैं। ये सब सिलिकेट खनिज हैं।

ऑगाइट--इस खनिज को पायरोक्जीन भी कहते हैं। इसकी रचना कैल्शियम, मैग्नीशियम तथा लोहे के सम्मिलित सिलिकेट के रूप में होती है। इसमें कुछ अंश अल्युमीनियम का भी रहता है। इसका रंग प्रायः काला होता है, परन्तु लकीर या खरोंच रंगहीन होती है। इसके रवे आठ सीधे पहलवाले प्रिज्म के रूप में पाए जाते हैं। इसकी तड़क दो दिशाओं में होती है और दोनों के बीच ९०° का कोण होता है। तड़क की दिशाएँ फलकों के समानान्तर होती हैं। इस खनिज की कठोरता ५ से ६ तक होती है और आपेक्षिक घनत्व २·९ से ३·४ तक। इन गुणों में यह खनिज हार्नब्लैण्ड नामक खनिज से मिलता है। परन्तु हार्नब्लैण्ड के रवे चमकदार होते हैं। ऑगाइट के रवों में विशेष चमक नहीं होती।

पायरोक्जीन से रासायनिक रचना में मिलता-जुलता परन्तु अन्य गुणों में भिन्न एक और खनिज-परिवार होता है, जिसे एम्फीबोल कहते हैं। यह कैल्शियम-मैग्नीशियम, लोहा और सोडियम का सिलिकेट हैं। इस परिवार के दो सदस्य ही महत्व के हैं--(१) हार्नब्लैण्ड और (२) एसबेस्टॉस। ये खनिज आग्नेय तथा परिवर्तित शिलाओं में पाए जाते हैं। भारत में ये शिलाएँ बहुत हैं।

हार्नब्लैंड--यह खनिज काले रंग का होता है। पर कभी-कभी हरे रंग का भी पाया जाता है। रवे ६ सीधे फलकवाली प्रिज्म के रूप में पाए जाते हैं। तड़क दो-दो दिशाओं में होती है। ये दिशाएँ प्रिज्म के फलक के समानान्तर होती हैं और उनके बीच ५६° या १२४° का कोण होता है। इसकी कठोरता और खरोंच ऑगाइट के समान होती है और रवे चमकदार होते हैं तथा तड़कने पर भी इसके परत चमकदार ही निकलते हैं।

एसबेस्टॉस--यह भी एम्फीबोल परिवार ही का एक सदस्य है। यह रेशेदार होता है। यही इसकी सबसे बड़ी पहचान है और इसी कारण यह बहुमूल्य भी है। इसके रेशे साधारणतः लम्बे, पतले और लचकदार होते हैं और खनिज-खण्ड को अँगुली से खरोंचकर अलग किए जा सकते हैं। यह खनिज अग्नि-प्रतिरोधक होने के कारण बहुत उपयोगी है। इसके रेशों का उपयोग रस्सी बनाने, कपड़ा बुनने तथा मोटी चादरें बनाने के लिए किया जाता है। इस खनिज के कपड़ों का प्रयोग आग बुझानेवाले लोग करते हैं। भारत में यह खनिज मुंगेर जिले में बहुत पाया जाता है। दक्षिण में मैसूर राज्य में भी यह काफी पाया जाता है। यह खनिज परिवर्तित शिलाखण्डों में मिलता है। यह मैग्नीशियम का जलीय सिलिकेट है। इसी की भाँति जहरमोहरा नामक खनिज भी इस परिवार का एक सदस्य है, जिसके रूप और गुण इससे एकदम मिलते-जुलते हैं।

सेलखरी या टाल्क--यह खनिज अत्यधिक चिकना और नरम होता है। यह भी अबरक की भाँति परतदार होता है, परन्तु इसके परत अलग-अलग नहीं होते। साधारणतः यह सफेद रंग का होता है, परन्तु इसकी भूरी मटमैली तथा हरे रंग की जातियाँ भी पाई जाती हैं। खनिजों की कठोरता की इकाई का पैमाना इसी की कठोरता पर स्थापित है। यह नाखून से बड़ी सरलता से खरोंचा जा सकता है। इसका आपेक्षिक घनत्व २·७ होता है और रासायनिक रचना देखने से पता चलता है कि यह भी मैग्नीशियम का जलीय सिलिकेट है। इसका सूत्र $3Mg.\ H_2O.\ 4SiO_2$ है। इसकी सोपस्टोन और स्टेटाइड ये और भी दो जातियाँ हैं। एक और भी जाति इसकी होती है, जिसे पॉटस्टोन कहते हैं। इस किस्म की सेलखरी बर्तन और खिलौने बनाने के काम आती है। अच्छी किस्म की सेलखरी के चूरे से चेहरे तथा बदन पर लगाने का पाउडर बनता है, जिसे टाल्कम पाउडर कहते हैं। कागज बनाने में भी सेलखरी का उपयोग होता है। भारत में यह खनिज मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार और उड़ीसा में पाया जाता है।

जहरमोहरा या सरपैन्टाइन--यह भी सेलखरी से मिलता-जुलता एक चिकना और मोमी चमकवाला खनिज होता है। इसका रंग बहुधा अंगूरी हरा होता है। यह लाल, भूरा, पीला और चित्तीदार (धब्बोंवाला) भी होता है। जड़ाव के लिए इसकी शोभा निराली होती है। बहुधा इसी काम के लिए संगमरमर के साथ इसका प्रयोग होता है। इसकी रासायनिक रचना सेलखरी के समान होती है, परन्तु इसमें लोहे का अंश भी रहता है। इसकी उत्पत्ति ओलीवाइन नामक खनिज पर जल की प्रतिक्रिया होने से होती है। इसका आपेक्षिक घनत्व २·५ से २·६ तक होता है और कठोरता ३ से ४ तक होती है। मद्रास और राजस्थान में यह काफी पाया जाता है। यह खनिज एक प्रकार के एसबेस्टॉस के रूप में भी मिलता है।

चीनी मिट्टी या केओलीन—हम ऊपर बता चुके हैं कि फैल्स्पार नामक खनिज-परिवार पर जल और वायु की प्रतिक्रिया से एक प्रकार की खनिज मिट्टी की उत्पत्ति होती है। यह अल्युमिनियम का जलीय सिलिकेट होती है

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और हम इसे चीनी मिट्टी कहते हैं। यह खनिज प्रायः सफेद रंग का होता है। पीले और भूरे रंगवाली चीनी मिट्टी भी पाई जाती है। कभी-कभी सफेद में लाल रंग की छींट-सी मिली होती है। इसकी कठोरता २ से २·५ तक होती है और आपेक्षिक घनत्व २·६। चीनी मिट्टी के बर्तन और खिलौने बनते हैं तथा कागज और कपड़े बनाने में भी वह काम आती है।

तामरा या गारनेट—यह भी लोहे और अल्युमिनियम का एक सम्मिलित सिलिकेट है। इसका सूत्र साधारणतः $Fe_3Al_2[SiO_4]_3$ होता है। लोहे और अल्युमिनियम के स्थान पर अन्य धातुएँ भी इसमें सम्मिलित रहती हैं। भिन्न-भिन्न धातुओं के सम्मिलन से विभिन्न रंगों का तामरा पाया जाता है। साधारणतः तामरा का रंग लाल होता है। इसके रवे १२ या २४ फलकवाले होते हैं। इसके पारदर्शक रवे बहुमूल्य होते हैं और रत्न माने जाते हैं। इसकी कठोरता ६·५ से ७·५ तक होती है। इसकी कठोरता का उपयोग इसके चूर्ण द्वारा अन्य खनिजों को घिसने और चमकाने में होता है। औजारों पर धार धरनेवाले सान देने के पत्थर इसी खनिज के चूरे से बनते हैं।

ओलीवाइन—इसका रासायनिक संगठन $(MgFe)_2SiO_4$ है। यह खनिज अंगूरी रंग का होता है, परन्तु कभी-कभी पीला भी देखने में आता है। इसकी खरोंच रंगविहीन होती है। रवे दानेदार होते हैं। कठोरता ६·५ से ७ तक होती है और आपेक्षिक घनत्व ३·२७ से ३·३७ तक होता है। यह आग्नेय शिलाओं में पाया जाता है। भारत में गिरनार पर्वत पर तथा अन्य कई स्थानों पर इसकी शिलाएँ मिलती हैं।

टूर्मलीन—रासायनिक संगठन के अनुसार इस परिवार के तीन वर्ग होते हैं—(१) अल्कली टूर्मलीन, जिनमें सोडियम, पोटेशियम या लिथियम के सिलिकेट होते हैं; (२) मैग्नीशियम टूर्मलीन, जो मैग्नीशियम धातु के सिलिकेट होते हैं, और (३) आयरन टूर्मलीन, जो लोहे के सिलिकेट होते हैं। उपर्युक्त तीनों प्रकार के टूर्मलीन में बोरोन तथा अल्युमीनियम धातु का सम्मिलन रहता है। टूर्मलीन का संगठन बड़ा पेचीदा है। इसका रंग काला होता है। इसके रवे प्रिज्म के समान ३, ६ अथवा ९ सीधे फलकवाले होते हैं। रवों के फलों पर सीधी महीन समानान्तर रेखाएँ पड़ी रहती हैं। इसकी कठोरता ७ से ७·५ तक और आपेक्षिक घनत्व २·९ से ३·२ तक होता है। इसमें तड़क तो होती ही नहीं। चूरा करने पर यह कोयले के समान प्रतीत होता है। नीले, लाल, और हरे रंग का होने पर यह पारदर्शक होता है। इस पारदर्शक टूर्मलीन की गणना रत्नों में की जाती है। अबरकदार पेग्मेटाइट नामक आग्नेय शिलाओं में यह अधिकता से पाया जाता है। परिवर्तित शिलाओं में भी यह काफी मात्रा में पाया जाता है।

कार्बोनेट खनिज

ऊपर जिन खनिजों का उल्लेख किया गया है, वे सिलिका-प्रधान हैं। अब हम कुछ ऐसे साधारण खनिजों का वर्णन करेंगे, जिनमें कार्बन का मिश्रण रहता है। मैग्नेसाइट, कैलसाइट और डालोमाइट इनमें प्रधान हैं। मैलाकाइट और अज़ूराइट नामक ताँबे के खनिज भी कार्बोनेट होते हैं।

मैग्नेसाइट—यह मैग्नीशियम का कार्बोनेट है। इसका सूत्र $MgCO_3$ है। यह सफेद, पीले और भूरे रंग का होता है। साधारणतः यह बर्फ के रंगवाला होता है। रवादार होते हुए भी इसके रवे इतने सूक्ष्म होते हैं कि इसे रवादार कहना कठिन होता है। इसका उपयोग मैग्नेशिया बनाने के लिए किया जाता है। यह मैग्नेशिया वास्तव में मैग्नेसाइट से कार्बन डाई-ऑक्साइड गैस निकल जाने से बनती है। यदि मैग्नेसाइट को १०००° सेण्टीग्रेड पर फूँका जाय, तो उसमें २-३ प्रतिशत गैस शेष रह जाती है। यह पदार्थ जल में भिगोकर वायु में रखने से बहुत कड़ा हो जाता है और अग्निप्रतिरोधक होने के कारण भट्टियों आदि के उपयोग में लाया जाता है। इसी मैग्नेसाइट को यदि १५००° सेण्टीग्रेड के ताप कर फूँका जाए, तो उसमें सम्मिलित कार्बोनिक एसिड गैस लगभग सारी की सारी अलग हो जाती है। यह अत्यन्त उपयोगी और बहुमूल्य अग्निप्रतिरोधक पदार्थ होता है। ऊँचे तापवाली भट्टियों के लिए इसी पदार्थ का उपयोग दीवालें और पेंदी आदि बनाने के लिए किया जाता है। ताँबा गलाने की भट्टियों तथा इस्पातशोधक भट्टियों में इसका उपयोग अत्यन्त आवश्यक है। मैग्नेसाइट रवादार कम पाया जाता है। इसकी कठोरता ३·५ से ४·५ तक होती है और घनत्व २·८ से ३ तक। इस खनिज की उत्पत्ति मैग्नीशियम सिलिकेटवाले खनिजों (ओलीवाइन, जहरमोहरा आदि) के परिवर्तन से होती है।

कैलसाइट—यह खनिज चूने का कार्बोनेट है। यह एक स्वच्छ खनिज है। इसके रवों की तड़क आदर्श होती है। सभी रवे समचतुर्भुजीय ६ फलकोंवाले होते हैं, जो चूर्ण हो जाने पर भी अपना आकार नहीं छोड़ते। परन्तु यह रवाहीन भी पाया जाता है। स्टैलेग्टाइट और स्टैलेग्माइट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नामक निक्षेपित पदार्थ बहुधा इसी खनिज से बने होते हैं। यह पदार्थ बहुधा सफेद या रंगविहीन पाया जाता है। कभी-कभी यह भूरा, पीला, नीला, लाल और मटमैला भी मिलता है। इसकी सफेद पारदर्शक जाति मूल्यवान् होती है। इसकी कठोरता ३ होती है और नाखून से यह खरोंचा जा सकता हैं। आपेक्षिक घनत्व २·७१ होता है। नमक के तेजाब के पड़ने से इस खनिज में कार्बोनिक एसिड गैस की उत्पत्ति होती है, जो बुदबुदों के रूप में उठती है। कैलसाइट की अनेक जातियाँ हैं। संगमरमर और चूने के पत्थर की चट्टानों में यह विशेष पाया जाता है। चूने का पत्थर तथा संगमरमर चूने के ही कार्बोनेट हैं। परन्तु वे कैलसाइट के समान स्वच्छ नहीं होते तथा उनकी जाति प्रायः रवाहीन होती है। नमक के तेजाब का प्रभाव इन खनिजों पर भी कैलसाइट के ही समान होता है।

डालोमाइट—यह खनिज कैल्शियम और मैग्नीशियम का सम्मिलित कार्बोनेट है। यह सम्मिलन रासायनिक है, अर्थात् कैल्शियम कार्बोनेट और मैग्नीशियम कार्बोनेट दोनों को मिलाकर यह खनिज नहीं बना है और न दोनों को अलग ही किया जा सकता है। इसके रवे भी होते हैं, परन्तु यह अधिकतर रवाहीन ही पाया जाता है। रंग सफेद होता है, पर कभी-कभी पीलापन, कालापन अथवा हल्का भूरापन लिए हुए होता हैं। कठोरता ३·५ से ४ और आपेक्षिक घनत्व २·८ से २·९ तक होता है। नमक का गरम तेजाब डालने से इस पर कार्बोनिक ऐसिड गैस के बुदबुदे उठते दिखाई देते हैं। ठण्डे तेजाब का इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यह संगमरमर और चूने के पत्थर के साथ पाया जाता है। इसका उपयोग अग्निप्रतिरोधक के रूप में होता है। बिहार, मध्यप्रदेश, छोटा नागपुर, पंजाब तथा राजस्थान में यह खनिज चट्टानों की धारियों में पाया जाता है।

उपर्युक्त खनिज पदार्थों के अतिरिक्त कुछ गन्धकमय खनिज भी हैं, जिनको उनसे निकलनेवाली धातुओं के कारण बहुत ही महत्वपूर्ण माना गया है। इन खनिजों में प्रधान खनिज ताँबे, लोहे, चाँदी, जस्ते और सीसे के मूल्यवान् सल्फाइड हैं। ताँबे के सल्फाइड को सोनामाखी और लोहे के सल्फाइड को रूपामाखी कहते हैं। चाँदी का गन्धकमय खनिज अर्जेन्टाइट, सीसा का गैलेना और जस्ता का स्फेलेराइट कहलाता है।

सोनामाखी या चाल्कोपाइराइट—यह ताँबे का मुख्य खनिज है। इसमें ताँबा, लोहा और गन्धक का सम्मिलन है। इसमें ३२·४ से ३५ प्रतिशत तक ताँबे का अंश रहता है। यह रवाहीन अधिक मिलता है, पर रवादार भी होता है। इसका रंग पीतल का-सा होता है, परन्तु कभी-कभी मोर के पर-सी आभा भी दिखाई पड़ती है। लकीर भूरापन लिए काली होती है। वह थोड़ी चमकदार भी होती है। इसमें धातु की-सी चमक होती है। इसकी कठोरता ३·५ से ४ तक और आपेक्षिक घनत्व ४·१ से ४·३ तक होता है। यह खनिज बिल्लौर की धारियों में अन्य धातु खनिजों के साथ अथवा परिवर्तित शिलाओं में पाया जाता है। इसका जमाव प्रायः उस गरम जल अथवा घोल द्वारा हुआ है, जो भूगर्भ से किसी समय भूपृष्ठ पर आते-आते रुक गया है। सोनामाखी को ही फूँककर तथा तपाकर ताँबा निकाला जाता है।

रूपामाखी या पाइराइट—यह लोहे और गंधक का सम्मिलित खनिज है। पर गन्धकमय होने के कारण इससे लोहा धातु निकालने का उपयोग नहीं किया जाता। हाँ, गन्धक का तेजाब बनाने तथा गन्धक बनाने के काम में यह खनिज आता है। रंग इसका भी पीतल जैसा होता है, परन्तु लकीर काली होती है। रवे प्रायः घनमूलीय आकार के होते हैं। इसकी कठोरता ६ से ६·५ तक और आपेक्षिक घनत्व ४·९५ से ५·०१ तक होता है।

रूपामाखी जलवायु के प्रभाव से भूरे गेरू में परिवर्तित हो जाती है और सोनामाखी ताँबे के कार्बोनेट में। ताँबे के कार्बोनेट दो रंग के होते हैं। हरे रंग के कार्बोनेट को (जिसमें जल भी सम्मिलित रहता है) मैलाकाइट और नीले रंगवाले को अजूराइट कहते हैं। ताँबे के ये भी उपयोगी खनिज हैं।

गन्धक का एक और उपयोगी खनिज होता है, जिसे हरसोठ (जिप्सम) कहते हैं। यह कैल्शियम का जलीय कार्बोनेट है। यह खनिज प्रायः सफेद रंग का होता है और रवादार पाया जाता है तथा इसके रवे प्रायः पारदर्शक होते हैं। इसके रवों की तड़क अबरक के समान एक दिशा में होती है। इसकी कठोरता २ होती है और आपेक्षिक घनत्व २·३२ के लगभग। हरसोठ बहुधा चूने के पत्थर के साथ पाया जाता है। इसका उपयोग आजकल गन्धक का तेजाब बनाने के लिए किया जाता हैं।

उपर्युक्त खनिजों के अतिरिक्त कोयला तथा सेंधा नमक ये दो साधारण खनिज ऐसे हैं, जिन्हें प्रायः प्रत्येक मनुष्य सरलता से पहचान सकता है। इसके अलावा अन्य कई असाधारण तथा विशेष खनिज भी हैं। परन्तु हमने जिन खनिजों का वर्णन किया है, प्रायः वे ही भूपटल के सब भागों में मिलते हैं और इन्हीं से मिलकर भूपृष्ठ की मुख्य-मुख्य चट्टानों की रचना हुई है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भूपृष्ठ के प्रधान खनिज

१. प्राकृतिक मूल तत्त्वों के रूप में प्राप्त:

(क) अधातु—**हीरा, ग्रैफाइट, गंधक।**

(ख) अर्द्ध-धातु--**आर्सेनिक (संखिया), एण्टीमनी (सुरमा) बिस्मथ।**

(ग) धातु--**सोना, चाँदी, ताँबा, प्लैटिनम।**

२. सल्फाइड, आर्सेनाइड आदि के रूप में प्राप्त:

(क) अर्द्ध-धातुओं के--**रीलगर, स्टिब्नाइट, बिस्मथाइट, टेट्राडायमाइट, मोलिब्डेनाइट।**

(ख) धातुओं के--**अर्जेण्टाइट, गैलेना, कॉपरग्लान्स, ब्लैण्ड, सिनाबार (रक्तपारद), कोवेलाइट, ग्रीनोकाइट, मिलेराइट, निकोलाइट, पायरोटाइट, इरूबेसाइट, चाल्कोपाइराइट (सोनामाखी), पाइराइट्स (रूपामाखी), स्मालटाइट, कोबाल्टाइट, मार्केसाइट, मिस्पिकेल, सिल्वेनाइट।**

३. गंधकीय नमकों के रूप में प्राप्त:

फ्रिज्लेवेनाइट, बोर्नोनाइट, पायरार्जाइराट, प्राउस्टाइट, टेट्राहेड्राइट, स्टीफेनाइट, स्टेनाइट, आर्जायरोडाइट।

४. हेलाइडों के रूप में प्राप्त:

सेंधानमक, फ्लग्रोरस्पार, सिल्वाइट, क्रायोलाइट, एटेकेमाइट।

५. ऑक्साइडों के रूप में प्राप्त:

(क) सिलिकन के ऑक्साइड—**स्फटिक या बिल्लौरी पत्थर [इसमें एगेट (गोमेदक), एमेथिस्ट (याकूत), एवेन्यूराइन, ब्लडस्टोन, कार्नीलियन, केट्सग्राइ, चालसीडोनी, क्राइसोप्रेज, हीलियोट्रोप, जैस्पर (सूर्यकान्त), मोकास्टोन, ग्रोनिक्स, रॉकक्रिस्टल, सार्ड, सार्डोनिक्स ग्रादि कीमती मणियाँ सम्मिलित है], ट्रायडाइमाइट, ग्रोपेल।**

(ख) अर्द्ध-धातुओं के ऑक्साइड

(ग) धातुओं के ऑक्साइड—**क्यूप्राइट, जिंकाइट, मेलाकोनाइट, कोरंडम (कुरंद, जिसके ग्रन्तर्गत एस्टीरिया, एमेरी, माणिक्य, नीलम आदि सम्मिलित हैं), हेमेटाइट (लाल गेरू), इल्मेनाइट, स्पाइनेल, मेग्नेटाइट, फ्रेंक्लीनाइट, क्रोमाइट, क्राइसोबेरिल, केसिटेराइट, रूटाइल, ऐनाटेज, ब्रुकाइट, पायरोल्यूसाइट, पिचब्लेण्ड, डायस्पोर, गोएटाइट, मेंगेनाइट, लिमोनाइट, बॉक्साइट, ब्रूसाइट, प्सिलोमिलेन।**

६. ऑक्सिजन साल्टों के रूप में प्राप्त:

(१) कार्बोनेट--**कैल्साइट, डोलोमाइट, एङ्केराइट, मेग्नेसाइट, चैलीबाइट, रोडोक्रोसाइट, केलेमाइन, ग्ररागोनाइट, ग्रल्स्टोनाइट, विदेराइट, स्ट्रोन्टीएनाइट, केरुसाइट, बेरिटोकैल्साइट, पेरीसाइट, फोस्जेनाइट, मेलेकाइट, ग्रजूराइट।**

(२) सिलिकेट

(क) **फैल्सपार [जिसके ग्रार्थोक्लेज, माइक्रोक्लाइन, प्लेजियोक्लेज ये तीन वर्ग हैं; प्लेजियोक्लेज के उपवर्ग हैं--ग्रलबाइट, आलिगोक्लेज, ऐंडेसाइन, लेब्रेडोराइट, बायटोनाइट, ग्रनार्थाइट]।**

(ख) **ल्यूसाइट, पोलक्स, पायरोक्जीन वर्ग (जिसमें एन्स्टेटाइट, हाइपरस्थीन, डायोप्साइड, ग्रॉगाइट, एक्माइट, स्पोड्यूमीन, जेडाइट, वोलेस्टोनाइट और रोडोनाइट नामक उपवर्ग हैं), एम्फीबोल वर्ग (जिसमें एसबेस्टॉस, नेफ्राइट, हार्नब्लेण्ड, क्रोसीडोलाइट उपवर्ग हैं), बेरिल, ग्रायोलाइट।**

(ग) **नैफलीन, सोडालाइट या लैपिसलेजूली (वैदूर्य), जिरकॉन (हायेसिंथ, जेसिथ ग्रौर जार्गून), थोराइट, डनब्यूराइट, टोपाज (पुखराज), एंडेलूसाइट, सिलिमेनाइट, सायनाइट, डेटोलाइट, यूक्लेज, आदि [इस वर्ग में ३० जातियाँ हैं]।**

(घ) **ह्यूमाइट, हेमीमार्फाईट, टूर्मलीन, स्टॉरोलाइट।**

(ङ) **जियोलाइट वर्ग (स्टिल्बाइट आदि), ग्रबरक (इसकी मस्कोवाइट, लेपिडोलाइट, बायोटाइट, फ्लोगोपाइट ये ४ जातियाँ हैं), क्लिटोनाइट, क्लोराइट, सर्पेण्टाइन (जहरमोहरा), टाल्क (सेलखरी), केओलीन (चीनी मिट्टी), पायरोफाइलाइट, एलोफेन ग्रादि [इसमें कुल मिलाकर २४ उपवर्ग हैं]।**

(३) फास्फेट, आर्सेनेट, नाइट्रेट, बोरेट आदि—**इसमें मोनाजाइट, बेरिलोनाइट, टरक्वाइज, बोरेक्स, नाइटर (शोरा), ग्रादि उल्लेखनीय खनिज हैं—कुल मिलाकर २४ उपवर्ग इसमें सम्मिलित किए जाते हैं।**

(४) सल्फेट, क्रोमेट आदि—**इसमें ११ उपवर्ग हैं, जिनमें सबसे उल्लेखनीय खनिज जिप्सम (हरसोठ) है।**

७. हायड्रो-कार्बन यौगिकों के रूप में प्राप्त:

इस वर्ग में १६ खनिज हैं, जिनमें उल्लेखनीय हैं—ग्रंबर, पेट्रोलियम, एस्फाल्ट, बिट्यूमेन, कोयला, ऐन्थ्रसाइट, जेट ग्रौर लिग्नाइट।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वनस्पतियों के जीवन-संग्राम की एक झाँकी

बीच में दिखाई दे रहे मनोहर बैजनी पुष्प-व्यूहवाले पौधे—गँठवा—को देखकर भला कौन अनुमान कर सकता है कि यह छिपे-छिपे अपने पड़ौसी लाल फूलवाले पौधे—नागकेसर—का सर्वनाश करने में तत्पर है ! इसका वास्तविक भेद जानने के लिए इनकी जड़ों को खोदकर देखना पड़ेगा (देखिए पृष्ठ ६८१ का विवरण)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सजीव सृष्टि ::
पेड़-पौधों की दुनिया

जिसके बिना हमारी यह पृथ्वी एक विशाल मरुप्रदेश के समान होती और किसी भी प्राणी का उस पर पैदा होना या जीवित रहना असंभव होता, उन पेड़-पौधों का परिचय।

संसार में दो प्रकार के पदार्थ हैं--एक सजीव और दूसरे निर्जीव। मनुष्य, पशु, पक्षी, पतिंगे, वृक्ष, लता, घास, काई, फफूंद आदि की गणना सजीव सृष्टि में और मिट्टी, पत्थर, सोना, लोहा, और अन्य अनेक धातु-उपधातु आदि की निर्जीव में होती है। इसी प्रकार जितनी भी वस्तुएँ हैं, चाहे वे जिस काल या अवस्था की हों, वे या तो सजीव होंगी या निर्जीव।

सम्भव है, इस विषय पर लोगों में कुछ मतभेद भी हो, कारण प्रायः इस सम्बन्ध में हमारा अनुमान यथार्थ नहीं होता। हममें से कुछ लोग शायद मनुष्य तथा अन्य साधारण पशुओं को ही जीवधारी समझते हैं और अन्य अनेक छोटे-छोटे जीवों को सजीव सृष्टि में सम्मिलित करने में सहमत नहीं होते। पेड़-पौधों के विषय में तो बहुतों की यही धारणा है। परन्तु यह हमारा भ्रम है। क्योंकि सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने से पता चलता है कि वृक्षों में केवल प्राण ही नहीं है, प्रत्युत इनकी भी जीवनी उतनी ही रहस्यपूर्ण है, जितनी हमारी अथवा अन्य किसी भी जीव की। इनमें भी आहार, विहार, तन्द्रा, निद्रा, संतति-संवर्धन आदि की विशेषताएँ मौजूद हैं। इनके भी शत्रु, मित्र, सहचर, सहायक आदि होते हैं। इनमें भी अपने जीवन-संग्राम तथा आपदकाल के अनुरूप प्रबंध करने और देशकालानुसार परिवर्तित होने की योग्यता है। ये भी गरमी और सरदी का अनुभव करते तथा इनसे बचने का प्रयत्न करते हैं। इनमें भी हम सबकी भाँति उत्तेजना-शक्ति और प्रतिक्रियाशीलता पाते हैं। लज्जावती के पौधे से कौन नहीं परिचित है? 'यथा नाम तथा गुणम्।' इसकी पत्ती को तनिक स्पर्श करके देखिए! आपका हाथ छू जाने की ही देर है। एक-एक करके अनेकों पत्तियाँ संकुचित हो जाती हैं। और यदि कहीं आघात कठोर हुआ, तब तो कई डालें मूर्छित हो जायँगी। थोड़ी देर तक इस दशा में रहने के पश्चात् वे पुनः पूर्ववत् दशा को प्राप्त हो जायँगी। आप लोगों ने 'चकवड़' नामक एक सामान्य पौधा तो अवश्य ही देखा होगा। यह वर्षा ऋतु में हमारे बागों तथा खेतों में उपजता है। पर कदाचित् आपने इसकी विचित्रता की ओर ध्यान न दिया हो। यदि अब कभी अवसर मिले, तो जिस स्थान पर इसके पौधे हों, वहाँ सूर्यास्त होने पर अवश्य जाइए। उस समय यह आपको निद्रित दशा में मिलेगा। इसके पत्रकों को, जो आमने-सामने होते हैं, आप सुषुप्तावस्था में एक-दूसरे के बाहुपाश में बद्ध देखेंगे। पर सुबह होने पर प्रकाश फैलते ही ये निद्रा छोड़ पुनः अपनी दिनचर्या में लग जाते हैं!

कितने ही पौधे तो ऐसे हैं, जो कपट से शिकारियों की तरह जीवों का आखेट भी करते हैं। तुंबिलता या 'नेपेंथिस' नाम की लता, जो भूमध्यरेखा के निकटवर्ती जंगलों में होती है, इनमें से एक है। पृष्ठ ६१२ पर इसका चित्र दिग्दर्शित है। इस लता की तुंबिकाकार बहुरंगी पत्तियों में एक प्रकार का रस भरा रहता है। बेचारे पतिंगे इन पत्तियों के रूप से आकर्षित होकर दुर्भाग्यवश यहाँ आ पहुँचते हैं और तुंबी में प्रवेश करते ही अपनी जान से हाथ धो बैठते हैं। इन तुंबियों के मुख पर एक प्रकार का ढक्कन होता है, और उनके गले में अन्दर की ओर रोयें होते हैं। अंदर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की वह दीवार लसलसी होती है इस कारण पतिंगे का बाहर निकलना असम्भव हो जाता है। साथ-ही साथ ज्यों ही शिकार अन्दर पहुँचा कि पत्ती से एक प्रकार के द्रव पदार्थ का संचार होता है, जैसे हमारे मुंह में किसी स्वादिष्ट पदार्थ के सामने आने पर होता है। यह रस आगंतुक कीड़े को हज्म करके तुंबिलता के उदर में पहुँचाता है। इस प्रकार वह पौधा अपना निर्वाह करता है।

इस प्रकरण में हम पौधों-सम्बन्धी कुछ प्रश्नों पर विचार करेंगे। परन्तु इस विषय का उल्लेख करने से पहले सजीव और निर्जीव प्रकृति की विवेचना तथा पौधों और पशुओं के अन्तर तथा उनकी समानता की आलोचना करना भी अत्यंत आवश्यक है।

सजीव और निर्जीव पदार्थों का अन्तर

जीवन अथवा प्राण क्या है, यह एक ऐसी गूढ़ समस्या है, जिसको आज तक कोई सुलझा नहीं सका। यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसकी ओर मनुष्य का ध्यान परम्परागत चला आता है, परंतु फिर भी इसका यथार्थ उत्तर नहीं मिल सका। इस प्रश्न के अन्तर्गत उठनेवाले अनेकों वाद-विवाद, कल्पनाओं और सिद्धान्तों पर तभी विचार किया जा सकता है, जब कि हम सजीव पदार्थों की विशेषता अथवा इनकी जीवनी और रहस्य से भली भाँति परिचित हों। अतः हमें सर्वप्रथम इसी ओर ध्यान देना चाहिए।

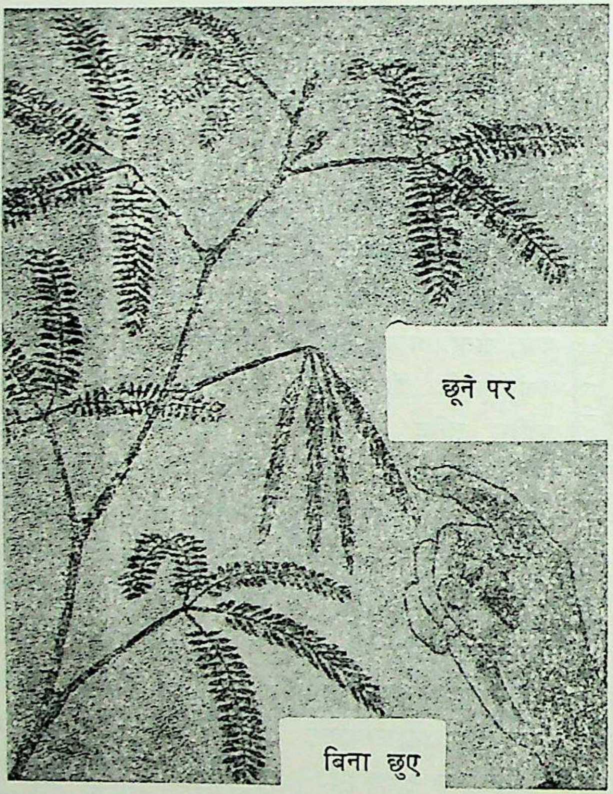

लज्जावती या छुईमुई का पौधा, स्पर्श से मूर्छित होने की जिसकी विशेषता से सभी परिचित हैं।

यद्यपि हम प्राण की यथार्थ व्याख्या नहीं कर सकते, तब भी हमें साधारण सजीव वस्तुओं को निर्जीव वस्तुओं से पृथक् करने में विशेष कठिनाई नहीं होती। इसका कारण यह है कि सजीव प्रकृति में कुछ विशेषताएँ हैं। उसमें कुछ बातें तो ऐसी हैं, जिनका सादृश्य निर्जीव जगत् में भी रासायनिक क्रियाओं द्वारा होता रहता है और कुछ ऐसी हैं, जिनका आधार प्रकृति-विज्ञान के नियमों से बद्ध है। परन्तु कुछ ऐसी बातें भी हैं, जो इन दोनों से पृथक् हैं।

यदि हम अपने चारों ओर विद्यमान सजीव वस्तुओं पर विचार करें तो सबसे पहले हमारा ध्यान उनके आकार और आकृति की ओर आकर्षित होगा। भाँति-भाँति के पशु, पक्षी, वृक्ष, लता, कीड़े-मकोड़े, घास-पात आदि, जितनी भी सजीव वस्तुएँ हम देखते हैं, उन सबका रूप और आकार निश्चित है। बीज बोने के पहले हम जानते हैं कि गेहूँ का पौधा किस प्रकार का होगा अथवा सारस या मुर्गी किस प्रकार के अंडे देगी और उनमें से किस रूप के बच्चे उत्पन्न होंगे। इसी प्रकार हिरन, मोर, बिल्ली, या आम, करौंदा, नींबू, गुलाब, बेला, चमेली आदि के नाम लेते ही आपके सामने इनके चित्र अंकित हो जाते हैं। यही बात तमाम सजीव कृतियों के सबंध में है, चाहे वे जंतु हों या पौधे। इनके आकार और आकृति सुनिर्णित हैं। परन्तु निर्जीव वस्तुओं के विषय में ऐसा नहीं है। 'मिट्टी' कहने से हमें एक वस्तु-विशेष का ज्ञान अवश्य होता है, परन्तु हम उसके आकार या आकृति के विषय में कुछ निश्चय नहीं कर सकते। सड़क की धूल, मकानों की दीवालें अथवा कुम्हार के बनाये खिलौने आदि जैसी अनेकों वस्तुएँ मिट्टी की हैं। यही बात पत्थर, चीनी, कांच, तांबा, चांदी, सोना आदि के विषय में भी है। सारांश यह है कि रवा, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र जैसी कुछ निर्जीव वस्तुओं को छोड़कर अधिकांश की आकृति या आकार परिवर्तनीय है, परन्तु जीवधारियों के रूप और आकृति अपरिवर्तनीय हैं।

संवर्धन भी जीवधारियों की एक विशेषता है। एक छोटा-सा बालक हमारे देखते ही देखते बढ़कर पूरे डील-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

डील का मनुष्य हो जाता है। उधर आम की गुठली अथवा नीम की निबौरी भी अंकुरित होकर विशाल वृक्ष का रूप धारण करती है। इसी प्रकार पृथ्वी पर जितने भी जीव हैं, सबमें एक न एक समय बढ़ने की शक्ति होती है। आप कहेंगे कि इस क्रिया की

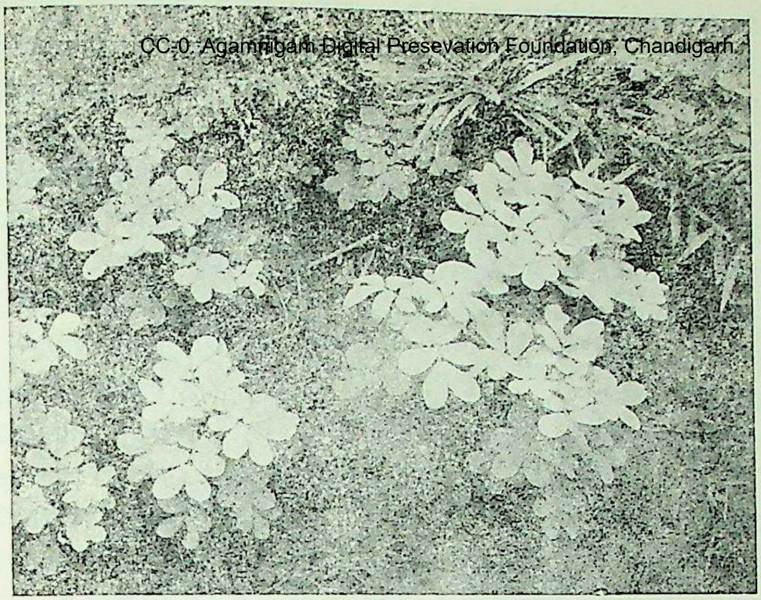

यह बात यथार्थ है कि जीवधारियों के शरीर के अन्दर ऐसी अनेकों क्रियाएँ होती रहती हैं, परन्तु आज से कुछ वर्ष पहले तक तो यही समझा जाता था कि ये क्रियाएँ सजीव सृष्टि की ही विशेषता हैं। परन्तु प्रेरक रसों (एनजाइम्स) की खोज के बाद से

पुनरावृत्ति तो निर्जीव पदार्थ में भी रासायनिक क्रियाओं द्वारा हो सकती है। यदि हम पोटैशियम डाइक्रोमेट के डले को तूतिया के घोल में रक्खें, तो चन्द मिनटों में ही डले के ऊपर तूतिया का एक छोटा खोल बन जायगा, जो धीरे-धीरे बढ़कर बड़ा हो जायगा। यदि यह आवरण किसी प्रकार फट जाय, तो स्वयं इसकी मरम्मत भी हो जायगी। इसी प्रकार नमक, फिटकरी अथवा अन्य रवे भी बढ़ते हैं। ऐसी दशा में हम बड़ी अड़चन में पड़ जाते हैं। हम भली भाँति जानते हैं कि कृत्रिम खोल अथवा रवे में जीवन का नाम भी नहीं, परन्तु फिर भी इनमें बढ़ने और घाव भरने का गुण उपस्थित है। यहां तर्क किया जा सकता है कि इस आवरण की बाढ़ में आहार के पाचन आदि की वे क्रियाएँ नहीं होतीं, जिनके द्वारा शरीर की रचना और अन्य कार्य करने के लिए शक्ति प्राप्त करना सजीव सृष्टि की प्रधानता है।

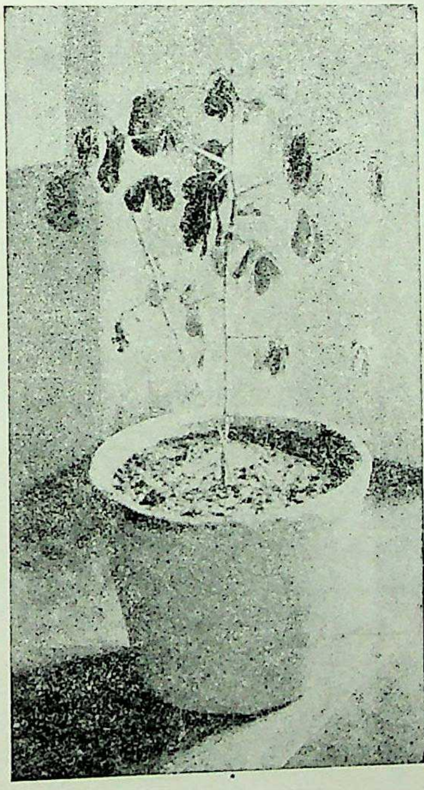

चकवड़ का पौधा। (ऊपर) दिन के समय, जब उसके पत्रक जाग्रत रहते हैं; (नीचे) रात के समय, जब पत्रक निद्रित अवस्था में होते हैं। उस समय आमने-सामने के पत्रक आपस में मानो चिपट-से जाते हैं!

अब हम जानते हैं कि इनमें से अधिकांश क्रियाएँ शरीर के बाहर भी इन द्रव्यों द्वारा की जा सकती हैं। इससे यह स्पष्ट है कि भोजन के पचाने की क्रियाएँ कुछ प्राकृतिक तथा रासायनिक नियमों के अनुसार ही होती हैं। वे सजीव सृष्टि ही की विशेषता नहीं कही जा सकतीं।

आप सुझा सकते हैं कि जीवों का एक विशेष लक्षण संतानोत्पादन की क्षमता है। इसमें संदेह नहीं कि जीवों का एक मुख्य ध्येय संतानोत्पादन ही है। उनमें भाँति-भाँति की विलक्षणता प्रायः वंशवृद्धि के ही कारण होती है। फूलों का रंग-बिरंगा होना, उनकी अनोखी आकृति और भाँति-भाँति के उनके परिवर्तन, उनमें गंध का प्रसार अथवा मधु का संचार आदि क्रियाओं का अभिप्राय संतान की उत्पत्ति ही है। पौधों की भाँति पशुओं में भी संतान-वृद्धि के अनेकों साधन वर्तमान हैं। परन्तु सभी प्राणी तो संतान

उत्पन्न नहीं कर सकते । खच्चर-जैसे कितने ही जीव ऐसे हैं, जिनमें यह सामर्थ्य नहीं होती, फिर भी इस क्षमता का अभाव उन्हें जीवधारी होने से वंचित नहीं करता । अतः संतानोत्पादन की क्षमता सजीव वस्तुओं का कोई सार्वभौम लक्षण नहीं माना जा सकता ।

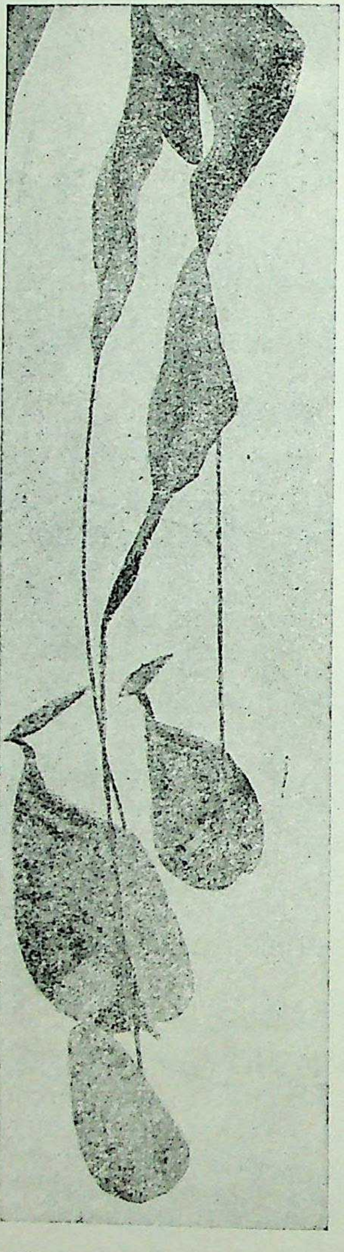
'नेपेंथिस' या तुंबिलता, जो एक मांसाहारी पौधा है !

प्राणियों में एक और विशेषता है, जिसे हम गति कहते हैं । आप देखते हैं कि पशु, पक्षी, मछली, मेंढक, कीड़े-मकोड़े आदि जहाँ चाहते हैं, स्वच्छन्द विचरते हैं । आगे चलकर हम देखेंगे कि वृक्षों में भी यह शक्ति किसी सीमा तक विद्यमान है । इसके विपरीत निर्जीव पदार्थ, जैसे कुर्सी, मेज, पलंग, टोपी, पत्थर, आदि में यह शक्ति नहीं होती । यहां आप तर्क कर सकते हैं कि नदी अथवा समुद्र में जहाज और नाव, सड़क पर मोटरें, आकाश में विमान और बादल आदि भी तो चलते-फिरते हैं ! इसका उत्तर यह है कि इन निर्जीव वस्तुओं और प्राणियों की गति में बड़ा अंतर है । वस्तुतः आकाश में उड़नेवाली पतंग को उड़ानेवाला जिस समय वायु के सहारे उसे इधर-उधर घुमाता है, उस समय हम उसे आकाश में पक्षी की भांति मंडलाते अवश्य देखते हैं, परन्तु यदि डोर चरखी से टूट जाय अथवा उड़ानेवाले के हाथ से छूट जाय, तो पतंग के गिरने को कोई शक्ति नहीं रोक सकती। उसे हवा और पृथ्वी की आकर्षणशक्ति जिधर चाहेगी, खींच ले जायगी। परन्तु पतंग के साथ उसी आकाश में उड़नेवाले कबूतर या बाज की यह हालत नहीं होती । इनको आकाश में भ्रमण करने के लिए किसी डोर अथवा उड़ानेवाले की आवश्यकता नहीं पड़ती। ये हवा के अनुकूल या प्रतिकूल स्वच्छन्द उड़ सकते हैं। यही हाल रेल अथवा वायुयान का भी है । रेलगाड़ी पटरी के सहारे यों तो इंजिन की शक्ति पर और ड्राइवर की प्रेरणा से तेजी से चली जाती है, पर दुर्भाग्यवश यदि नदी का पुल कहीं टूटा है, तो फौरन् धड़ाके की आवाज हुई और आगे के कई डिब्बों समेत इंजिन नदी की धारा में जा गिरा और उसके पुर्जे-पुर्जे अलग हो गए। साथ ही अनेकों मनुष्य घायल हो गए और कितने ही के प्राण भी गए ! परन्तु उसी सड़क पर जानेवाले पैदल मुसाफिरों अथवा गाय-बैल की यह हालत नहीं होती । ये पुल को टूटा देखकर ठहर जाते हैं और उस रास्ते को छोड़ दूसरे मार्ग की शरण लेते हैं। इंजिन में चलने की शक्ति तो अवश्य है, परंतु दूसरे की प्रेरणा से ही वह है । वह अपने सामने उपस्थित भय को नहीं देख सकता और न उससे बचने का उपाय ही सोच सकता है। इसी प्रकार और भी अनेकों उदाहरण दिए जा सकते हैं। सारांश यह है कि जीवधारी जहाँ अपनी इच्छा और प्रेरणा से चलते हैं, वहाँ निर्जीव वस्तुएँ नितान्त पराधीन होती हैं ।

ऊपर वर्णन किया जा चुका है कि लज्जावती की पत्तियाँ स्पर्श करते ही मूर्छित हो जाती हैं। इसी तरह आप जानते हैं कि आकाश में बिजली कड़कने पर चरते हुए मृगों का झुंड भयभीत होकर तितर-बितर हो जाता है, वाटिका में विहार करते हुए पक्षियों में कोलाहल मच जाता है, और खाट पर सोता हुआ अबोध बालक तक चौंक पड़ता है । परंतु खेत की मेड़, वाटिका के फव्वारे अथवा बालक की खाट पर स्पष्टतया इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसा क्यों होता है ? क्या कभी आपने इस ओर ध्यान दिया है ? इन सारी घटनाओं की जड़ में एक ही रहस्य है और वह सजीव प्रकृति का एक मुख्य लक्षण है। यह लक्षण है जीवों की उत्तेजना शक्ति और उसमें प्रतिक्रिया का गुण । यह गुण लज्जावती, हरिण, पक्षी, बालक अथवा अन्य सभी जीवों और पौधों में उपस्थित है। किसी में वह कम है, किसी में अधिक । आघात के अतिरिक्त अन्य कारणों का भी प्राणियों पर प्रभाव पड़ता है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आप देखते हैं कि बीज बोते समय चाहे जैसे वे फेंके जाएँ, फिर भी उनकी जड़ सदैव नीचे को ओर शाखाएँ ऊपर को जाती हैं। इसी प्रकार पत्तियाँ वायु में फैलती हैं। आपने कदाचित् यह भी देखा होगा कि खिड़की में रक्खे हुए गमले में लगे हुए पौधे की पत्तियाँ और बाग में पत्थर अथवा अन्य वस्तु के नीचे दबी हुई घास की शाखाएँ बाहर को प्रकाश की ही ओर बढ़ती हैं। ऐसे अनेकों उदाहरण मिलते हैं। इस संबंध में भी तर्क किया जा सकता है कि हम सभी यह जानते हैं कि वर्षा ऋतु में शीशी में रक्खा हुआ नमक नम हो जाता है और केल्शियम क्लोराइड भी पिघलकर पानी हो जाता है। स्वर्गीय विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्र वसु के प्रयोगों द्वारा तो यहाँ तक प्रमाणित हो चुका है कि पत्थर तथा ताँबा, लोहा आदि पदार्थ भी उत्तेजित किए जा सकते हैं; वे थोड़ी देर तक बराबर उत्तेजित किए जाने के पश्चात् थक भी जाते हैं और कुछ काल तक आराम करने पर फिर से उत्तेजित किए जा सकते हैं। फिर भी जीवन का उनमें तृणवत् भी लगाव नहीं!

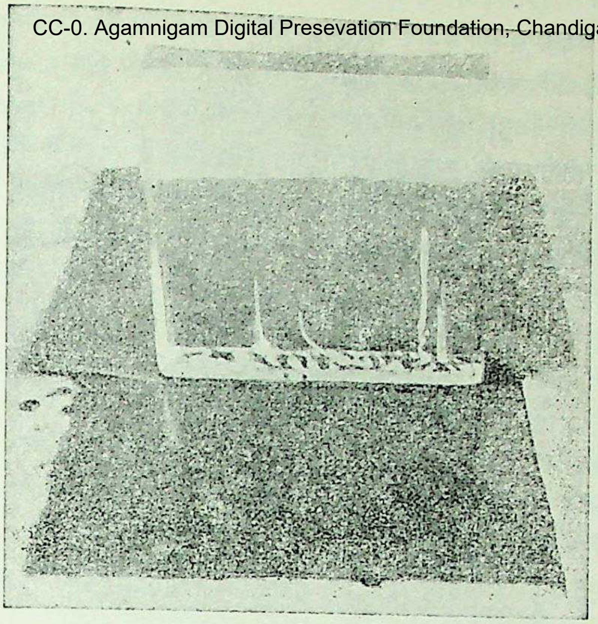

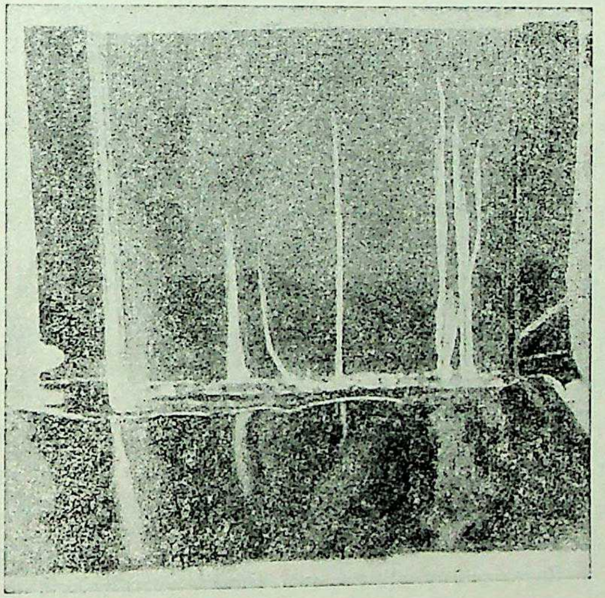

कृत्रिम उद्भिज-संबंधी एक प्रयोग। यह उद्भिज एक प्रकार के रासायनिक घोल में से आप ही आप पैदा कराया गया है। ऊपर का चित्र प्रयोग के दो-तीन मिनट बाद का है। नीचे का चित्र ऊपर के चित्र में प्रदर्शित प्रयोग आरम्भ होने से १० मिनट बाद का है। गौर करने की बात है कि कितने शीघ्र यह 'उद्भिज' अपने आप बढ़ जाता है। फिर भी सजीव पौधे की वृद्धि और इसकी बढ़ती में गहरा अंतर है। सजीव पौधा अपने आप ही अपने कलेवर के भीतर होनेवाली स्वाभाविक प्रक्रियाओं के फलस्वरूप बढ़ता है। इसके विपरीत इन चित्रों में प्रदर्शित जड़ पदार्थ से तैयार किया हुआ उद्भिज बाहरी क्रिया ही का परिणाम है।

उपर्युक्त वाद-विवाद से आप बड़ी अड़चन में पड़ गए होंगे। वास्तव में जीवों में कोई भी ऐसा लक्षण नहीं, जिसे हम प्राणि-मात्र की विशेषता कह सकें। क्योंकि कोई भी ऐसी प्रधानता नहीं, जो सभी जीवों में विद्यमान हो और सभी निर्जीव पदार्थों में जो न हो, या जिसकी प्रकृति-विज्ञान अथवा रसायन-शास्त्र द्वारा हम व्याख्या न कर सकें, अथवा जिसका अनुकरण प्रकृति-विज्ञान अथवा रासायनिक क्रियाओं द्वारा न किया जा सके। वस्तुतः सजीव वस्तुओं को निर्जीव पदार्थों से पृथक् करने के लिए हमें सभी बातों पर ध्यान देना पड़ता है और उनके सभी गुणों का विचार करना पड़ता है।

अतः सजीव वस्तु वही कही जा सकती है, जिसका निश्चित आकार और रूप हो; जिसमें बढ़ने की सामर्थ्य हो; जो गतिवान्, उत्तेजनीय और प्रतिक्रियाशील हो; जिसमें संतानोत्पादन की योग्यता हो और जो अपने शरीर की रचना अपने से भिन्न पदार्थों से कर सकती हो; जो परिवर्तनशील हो और अपनी स्थिति को जो परिस्थिति के अनुकूल परिवर्तित कर सके।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इसके अतिरिक्त (जैसा कि आप पिछले खंड में पढ़ चुके हैं) समस्त प्राणियों के शरीर एक अथवा अनेक सजीव कोशिकाओं (सेल्स) के बने हैं। ये कोशिकाएँ पूर्ववर्त्ती सजीव कोशिकाओं से ही उत्पन्न हो सकती हैं, और किसी प्रकार नहीं। इन कोशिकाओं में जीव-द्रव्य, जिसे 'प्रोटोप्लाज्म' कहते हैं, प्रवाहित रहता है, और प्राणियों की सारी विशेषताएँ इस विलक्षण वस्तु के ही गुण हैं। इस वस्तु का आज तक संश्लेषण नहीं हो सका और न इसका यथार्थ विश्लेषण ही हो सकता है। परन्तु यह अवश्य मानना पड़ेगा कि जीव और प्रोटोप्लाज्म अभिन्न हैं। जीव से पृथक् प्रोटोप्लाज्म और प्रोटोप्लाज्म से पृथक् जीव नहीं देखे गए।

वनस्पति-विज्ञान और जन्तु-विज्ञान

सजीव सृष्टि के ज्ञान-विषयक शास्त्र को हम प्राणिशास्त्र अथवा 'बायोलाजी' कहते हैं। प्राणियों के जीवन-सम्बन्धी सभी प्रश्नों पर इसमें विचार किया जाता है। जीवों के भेद, आकृति, आकार, प्रसार, उनका बाहरी जगत् से सम्बन्ध, उद्भव, विनाश, विकास आदि सभी बातों का इसमें उल्लेख है। इस शास्त्र के 'वनस्पति - विज्ञान' या 'बॉटनी' और 'जन्तु-विज्ञान' या 'ज़ुओलाजी' ये दो अंग हैं। जन्तु-विज्ञान के अन्तर्गत जानवरों की जीवन - शैली और वनस्पति-विज्ञान के अन्तर्गत पेड़-पौधों संबंधी बातों का अध्ययन किया जाता है। इन दोनों ही से हमारा घना संबंध है। पौधे और पशु सजीव सृष्टि के दो भाग हैं। संसार के सारे प्राणी इन्हीं दो भागों में विभाजित हैं। वैसे तो हम सभी जानते हैं कि आम वृक्ष है और उसकी शाखाओं पर विचरनेवाले वानर पशु हैं। परन्तु विश्व की सारी सृष्टि को इस प्रकार पृथक् करना सरल बात नहीं है। कुछ पौधे ऐसे हैं, जिनमें पशुओं के गुण विद्यमान हैं, और इसी प्रकार कुछ पशु भी ऐसे हैं, जिनमें पौधे के गुण मिलते हैं। इसी प्रकार की विलक्षण रचनाओं को वनस्पति-वैज्ञानिक पौधों में और जंतु-वैज्ञानिक जानवरों में सम्मिलित करते हैं। परन्तु इन जीवों के विषय में यह निर्णय करना अत्यन्त कठिन है कि ये जानवर हैं अथवा पौधे। कुछ विद्वानों का मत है कि ऐसी रचना को तीसरी श्रेणी में रक्खा जाय। उनके मतानुसार जीवों के तीन भाग हैं। ये तीन विभाग जानवर, वनस्पति और 'प्रोटिस्टा' हैं। इस तीसरे वर्ग प्रोटिस्टा में ऐसे छोटे-छोटे जीवों की गणना है, जिनमें जन्तु और वनस्पति दोनों के गुण विद्यमान हैं। परन्तु ऐसे विधान से भी हमारी कठिनाई का अन्त नहीं होता। जितनी कठिनाई हमें वनस्पतियों को जानवरों से पृथक् करने में होती है, प्रायः उतनी ही कठिनाई हमें प्रोटिस्टा को पौधों से और जीवधारियों से भिन्न करने में भी होती है। इसलिए ऐसा करने से कोई लाभ नहीं। अतः हम सजीव सृष्टि के वनस्पति और जानवर ये दो ही अंग मानकर उस पर विचार करेंगे। हाँ, एक बात और है। वह यह है कि यद्यपि हम जानते हैं कि सारे जीवधारी एक ही वंशवृक्ष की शाखाएँ हैं और इस नाते मनुष्य भी एक पशु है, परन्तु हम या आप कोई भी अपने को अन्य पशुओं में सम्मिलित करने में सहमत नहीं होंगे। हम स्वाभिमान और अहंकार के कारण अपने को अन्य पशुओं से पृथक् मानने के लिए विवश हैं। इसीलिए प्राणियों के तीन भेद हम मानेंगे। इस विभाग के अंतर्गत हम केवल वनस्पति-सम्बन्धी प्रश्नों पर ही विचार करेंगे।

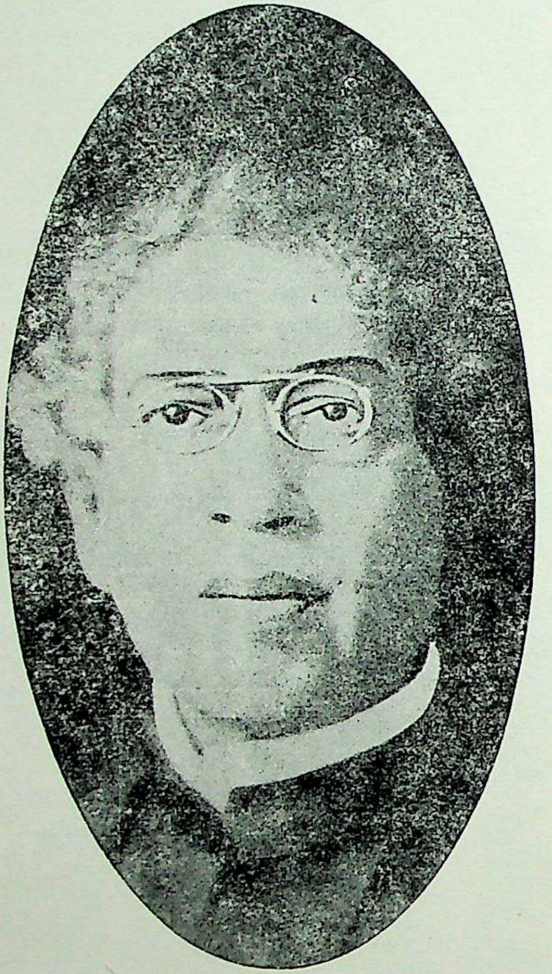

विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्र बसु, जिन्होंने वनस्पतियों की चेतनता सम्बन्धी अपनी खोजों से संसार के वैज्ञानिकों को चकित कर भारत का गौरव बढ़ाया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जानवरों और पेड़-पौधों में क्या भेद है ?

ऊपर वर्णन किया जा चुका है कि जानवर और पेड़-पौधे दोनों ही सजीव हैं और इस कारण दोनों ही में समानता है। परन्तु साधारण जीवों और पौधों की ओर ध्यान देने पर हम देखते हैं कि समानता होते हुए भी इनमें स्पष्ट विभिन्नता है। ऐसे वनस्पति एवं जानवरों को हम सुगमता से अलग कर सकते हैं। सभी जानते हैं कि आम वृक्ष है और उसकी शाखाओं पर विचरने-वाली गिलहरी जानवर है। दोनों ही में प्राण हैं। दोनों ही क्रियाशील हैं। दोनों ही को खाद्य पदार्थों की आवश्यकता है। दोनों ही साँस लेते हैं। दोनों ही संतान उत्पन्न करते हैं। सारांश यह कि सजीव सृष्टि की जितनी भी विशेषताएँ हैं, वे दोनों ही में विद्यमान हैं। परन्तु फिर भी दोनों में अन्तर है। सबसे प्रथम बात तो यह है कि आम का पेड़ स्थाई है, अर्थात् जिस स्थान पर वह पेड़ उगा है अथवा लगा दिया गया है, वहीं पर उसकी सारी लीलाओं का अन्त होगा। वस्तुतः उसे जहाँ हमने दस वर्ष पूर्व देखा था, वहीं आज भी वह है और जब तक जीवित है, वह वहीं रहेगा। परन्तु गिलहरी के विषय में यह बात नहीं है। यदि अभी यह इस डाली पर है तो पल भर में दौड़कर उस डाली पर चली जायगी। वह आम के पेड़ से जामुन के पेड़ पर और फिर मैदान में अथवा आपके मकान की छत पर भी पहुँच जायगी। यही बात अधिकांश जानवरों और पौधों के विषय में भी है। मनुष्य, घोड़ा, गाय, बैल, सारस, मोर, मछली, तितली, आदि एक स्थान से दूसरे स्थान पर सुगमता से स्वयं ही विचरण करते हैं।

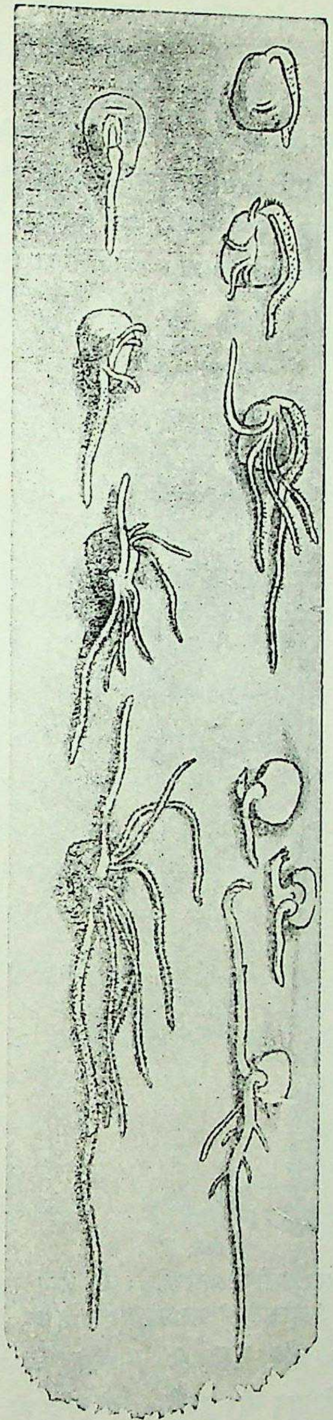

उगता हुआ बीज। बाईं ओर मक्का और दाहिनी ओर सेम के बीज हैं। ये क्रमशः अंकुरित होते दिखाए गए हैं। गौर कीजिए, इनकी जड़ें किस तरह नीचे ही की ओर जा रही हैं।

इसके विपरीत आम, जामुन, सन्तरा, अनार, कचनार, चना, मटर, आदि अधिकांश वनस्पति एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं जा सकते। परन्तु यह बात साधारण जीवों और पौधों के सम्बन्ध में ही कही जा सकती है, सर्वदा वह लागू नहीं होती। कारण कितने ही ऐसे जीव भी हैं, जो चट्टानों की भाँति स्थाई होते हैं। इसके विपरीत कुछ ऐसे पौधे भी हैं, जो स्वच्छन्द विचरते हैं। कितने ही छोटे-छोटे उद्भिज, जिन्हें हम सूक्ष्मदर्शक की सहायता के बिना नहीं देख सकते, जल में बड़ी कुशलता से तैरते रहते हैं। इसी प्रकार कुछ ऐसे जानवर भी हैं, जो चट्टानों से चिपटे हुए समुद्रों और नदियों में एक ही जगह पड़े रहते हैं।

पौधों और जीवों में दूसरी विभिन्नता इनकी भोजन-क्रिया में है। दोनों ही को खाद्य पदार्थों की आवश्यकता होती है। दोनों ही को बाढ़ के लिए अन्य पदार्थों के साथ कार्बन और नाइट्रोजन की भी आवश्यकता होती है। परन्तु इन दोनों तत्वों को प्राप्त करने की जानवरों और पौधों की रीतियाँ पृथक्-पृथक् हैं।

पौधे वायुमण्डल के कार्बन का उपयोग करते हैं। इनमें यह विशेषता इनके हरे रंग के कारण है, जो पर्णहरिम या 'क्लोरोफिल' नामक पदार्थ की उपस्थिति से है। यह द्रव्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसकी बदौलत पौधों ही की नहीं, वरन् समस्त संसार की स्थिति है। पौधों की अगणित पत्तियों में करोड़ों कारखानों से भी अधिक उद्योग-धंधे का फैलाव है। ये नन्हीं-नन्हीं हरित पत्तियाँ अपनी जड़ों द्वारा संचित जल और वायुमण्डल के कार्बन से सूर्य के प्रकाश में सारी जीव-सृष्टि के लिए भोजन तैयार करती हैं। साथ ही वे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वातावरण की वायु भी शुद्ध करते हैं। यदि ये हरित वन-स्पति न होते तो असम्भव नहीं कि संसार से जीवनलीला का लोप ही हो गया होता।

पौधों की नाइट्रोजन प्राप्त करने की रीति भी जानवरों से भिन्न है। पौधों की सूत्रवत् जड़ें पृथ्वी के अन्दर बहुत दूर तक फैली रहती हैं। इनके द्वारा ये मिट्टी में विद्यमान नमकों से नाइट्रोजन प्राप्त करते हैं। परन्तु मनुष्य तथा अन्य जीव सीधे वायु की कार्बन डाई-ऑक्साइड से कार्बन और पृथ्वी के नमकों से नाइट्रोजन नहीं प्राप्त कर सकते। ये इन पदार्थों के लिए पेड़-पौधों तथा अन्य पशुओं पर ही निर्भर हैं। इन्हें ये तत्त्व गेहूँ, चना, जौ, मटर आदि अनाजों से अथवा पत्तियों और फलों से या अन्य जीवों के मांस, अंडा, दूध-जैसे पदार्थों से ही प्राप्त हो सकते हैं। कुछ वनस्पति ऐसे भी हैं, जो हवा की कार्बन डाइ-ऑक्साइड अथवा नमकों की नाइट्रोजन का उपभोग नहीं कर सकते। इनको ये वस्तुएँ उसी रूप में मिलनी चाहिएँ, जैसे जानवरों को। इनमें से तुंबिलता के विषय में ऊपर बताया ही जा चुका है। 'अमरबेल' नामक पौधा भी इन्हीं में से एक है। प्रायः आपने इसको अन्य वृक्षों पर अपनी जाल फैलाए देखा होगा। न इसमें जड़ होती है, न पत्तियाँ; फिर भी इसे सब प्रयोजनीय वस्तुएँ मिल जाती हैं। ये वस्तुएँ इसे अन्य पेड़-पौधों से (जिन पर यह फैली रहती है) मिलती हैं। इसका उल्लेख आगे चलकर किया जायगा।

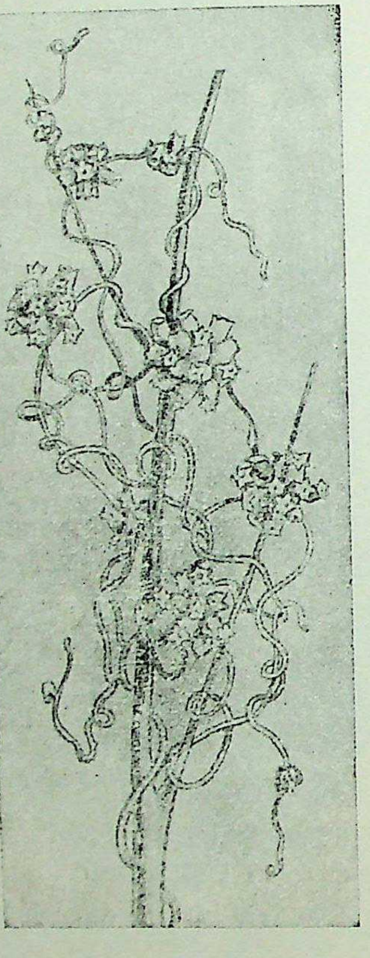

परोपजीवी अमरबेल, जो अन्य वृक्षों से आहार ग्रहण कर अपना निर्वाह करती है।

भोजन प्राप्त करने की रीति की विभिन्नता ही जानवरों और पेड़-पौधों के सारे भेदों की जड़ प्रतीत होती है। पौधों को खाद्य पदार्थ, वायु और पृथ्वी के नमकों से सीधे प्राप्त होते हैं, जो उन्हें सर्वत्र सुगमता से मिल सकते हैं। इसलिए इनको भोजन की खोज में इधर-उधर भ्रमण करने की आवश्यकता नहीं होती। इसके विपरीत जानवर कार्बनिक पदार्थों का ही उपयोग कर सकते हैं, जिनकी खोज में इन्हें इधर-उधर जाना पड़ता है। इसी कारण पेड़-पौधे स्थाई और जानवर भ्रमणशील होते हैं, इसी प्रकार जहाँ पौधों को फैलाव की आवश्यकता है, यहाँ जानवरों को नहीं। खाद्य पदार्थों को प्राप्त करने के लिए ही पृथ्वी के अन्दर पौधों की सूत्रवत् जड़ और वायुमंडल में उनकी शाखा, उपशाखा और पत्तियाँ दूर तक फैली रहती हैं। पौधों और जानवरों में एक और महत्वपूर्ण अंतर है, जो इनकी रचना से संबंध रखता है। समस्त जीवों के शरीर एक अथवा अनेक कोशिकाओं के बने होते हैं। साधारणतः जानवरों के शरीर की कोशिकाएँ भित्तिका से घिरी नहीं होतीं, जबकि पौधों की कोशिकाएँ निश्चित घेरे के अन्दर होती हैं। यद्यपि कुछ ऐसे जीव हैं, जिनमें अधिकांश गुण पौधों के ही होते हैं, तथापि उनकी शरीर-कोशिकाएँ घेरों से परिवेष्ठित नहीं होतीं।

जानवरों और पौधों की विशेषताओं पर विचार करने से हम भली भाँति देखते हैं कि यद्यपि अधिकांश जीवों के विषय में यह निर्णय करना कठिन नहीं है कि ये जानवर हैं या वनस्पति; फिर भी इनके बीच में कोई प्राकृतिक सीमान्त नहीं है। इनमें विभेद से कहीं अधिक समानता ही है। यही जीवमात्र की एकता का सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है।

इस आरम्भिक प्रकरण में हमने सामान्य रूप से इस पृथ्वी पर विद्यमान सजीव सृष्टि पर——जिसके वनस्पति और जन्तु ये दो मुख्य अंग हैं—एक विहंगम दृष्टि डालने का प्रयत्न किया है। इसके बाद हम विधिवत् वनस्पति-संसार का अध्ययन करेंगे। वनस्पति-संसार का अध्ययन न केवल ज्ञान-पिपासा की तृप्ति ही की दृष्टि से, वरन् उपयोगिता की दृष्टि से भी अत्यंत आवश्यक और महत्वपूर्ण है। भला कौन ऐसा होगा जिसे उन पेड़-पौधों के रहस्यमय जीवन के सम्बन्ध में जानने की उत्कंठा न होगी, जो हमें अन्न, फल, फूल, कंद-मूल, रस, पत्तियाँ, लकड़ी, रुई आदि जीवन की अनिवार्य आवश्यक वस्तुएँ प्रदान कर हमें सुखी बनाते हैं?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वनस्पति-जगत् का विस्तार :: परिवार और उप-परिवार

पिछले पृष्ठों में वर्णन किया जा चुका है कि दूसरे जीवों की भाँति पेड़-पौधे भी सजीव हैं। इस प्रकरण में आप देखेंगे कि जानवरों की भाँति इनमें भी अनेक जाति-उपजाति हैं—इनमें भी कुटुम्ब और परिवार हैं।

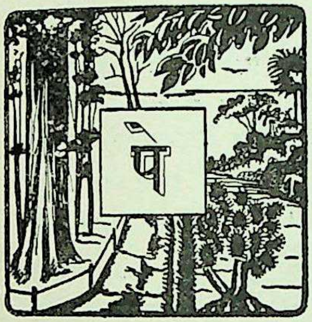

पेड़-पौधों की दुनिया का प्रसार अत्यन्त विस्तीर्ण है। पृथ्वी पर करोड़ों वनस्पति हैं। अब तक हमें लगभग तीन लाख जाति के पेड़-पौधों का पता लग चुका है और दिन पर दिन नए-नए पौधों का पता लगता जाता है। आकृति की समानता और विभिन्नता तथा अपनी-अपनी जीवन-प्रणाली के अनुसार इन्हें अलग-अलग परिवारों में पृथक् किया जाता है।

सबसे पहले लोगों का ध्यान साधारण पौधों की ओर ही आकर्षित हुआ। उन्होंने देखा कि कितने ही पेड़ हैं, जो अत्यंत दृढ़, बहुत ऊँचे और सैकड़ों ही नहीं बल्कि हजारों वर्ष तक जीवित रहनेवाले हैं। इसके विपरीत कितने ही पौधे अत्यंत कोमल, नन्हें और अल्पायु होते हैं। इसी अन्तर के आधार पर उन्होंने पौधों के 'बूटे', 'झाड़' और 'वृक्ष' ये तीन भेद माने।

बूटों की शाखाएँ कठीली नहीं होतीं और इनका आकार भी बहुधा कुछ इंचों से अधिक नहीं होता। इनमें से अधिक तो एक या दो मौसम के ही मेहमान होते हैं। कोई-कोई तो, जिन्हें 'अल्पायु बूटे' के नाम से पुकारा जाता है, मौसम में दो-तीन बार उगने और फूल-फल देने के बाद समूल नष्ट हो जाते हैं। वे कुछ सप्ताह ही टिकते हैं। कुछ बूटे 'वर्षीय' कहलाते हैं। ये मौसम में केवल एक बार उगते हैं और कई महीने तक जीवित रहने के बाद बीज और फल को छोड़ समाप्त हो जाते हैं। हमारी खेतीबारी के अनेक पौधे, जैसे गेहूँ, चना, तरोई, करेला, तथा बहारी पौधे जैसे 'फ्लॉक्स', 'पेटूनिया', गुलमेंहदी (देखो इसी पृष्ठ का चित्र) इत्यादि इसी भाँति के हैं। इसी तरह कुछ 'द्विवर्षीय' पौधे कहलाते हैं और कुछ ऐसे भी हैं, जो कई वर्ष तक जीवित रहते हैं। ये 'बहु वर्षीय' बूटे हैं। बहु-वर्षीय बूटों की वायु-वर्त्ती शाखें कोमल होती हैं, परन्तु जमीन के अन्दर के भाग, चाहे वे जड़ हों या तने, कठीले होते हैं। अदरक, हल्दी, कैना, जिमीकन्द (पृष्ठ ६१८ का ऊपरी चित्र) ऐसे ही पौधे हैं।

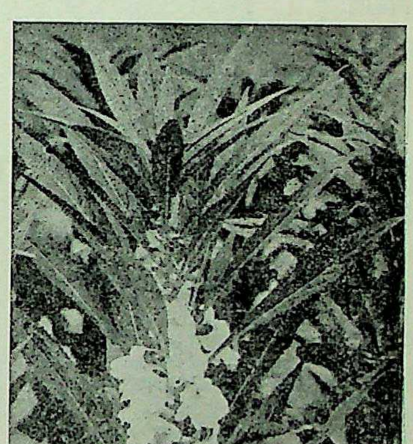

वर्षाऋतु का फुलवाड़ियों का प्रसिद्ध पौधा गुलमेंहदी, जो एक 'वर्षीय' बूटा है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

झाड़ और वृक्ष दोनों ही के तने और शाखें कटीली होती हैं और इसीलिए ये सर्दी-गरमी सहन कर सकते हैं। ऐसे पौधे वर्षों जीवित रहते हैं। झाड़ वृक्षों से छोटे परन्तु बूटे से बड़े होते हैं। चाँदनी, सावनी (देखो इसी पृष्ठ का निचला चित्र), गुलाब, अनार, अंगूर, मेंहदी जैसे पौधों की गिनती झाड़ों में हैं।

वृक्षों के सम्बन्ध में कदाचित् आपको अधिक बताने की आवश्यकता न होगी। आम, जामुन नीम, सागौन, देवदार, बरगद, सेमर, गुलमोहर या 'गोल्ड मोहर' (देखो पृ० ६२३ के चित्र) जैसे अनेक पेड़ों से आप परिचित हैं। इनमें से कई तो सैकड़ों फीट ऊँचे और हजारों साल जीनेवाले हैं! कैलीफोर्निया के 'सिकोया जायजैंशिया' (पृ०६१९का चित्र), (जो चीड़ और देवदार के भाई-बन्धुओं में है) की जाति के कुछ पेड़ चार हजार वर्ष से भी अधिक आयुवाले हैं! अमेरिका में इसी समूह का 'टैक्जोडियम म्यूक्रोनेटम' नामक पेड़ की आयु का अनुमान पाँच हजार वर्ष से भी अधिक किया जाता है। इस पेड़ के तने का घेरा ५० फीट से भी अधिक है। हमारे देश के वृक्षों में देवदार, बरगद, सेमर और सागौन बहुत आयुवाले होते हैं।

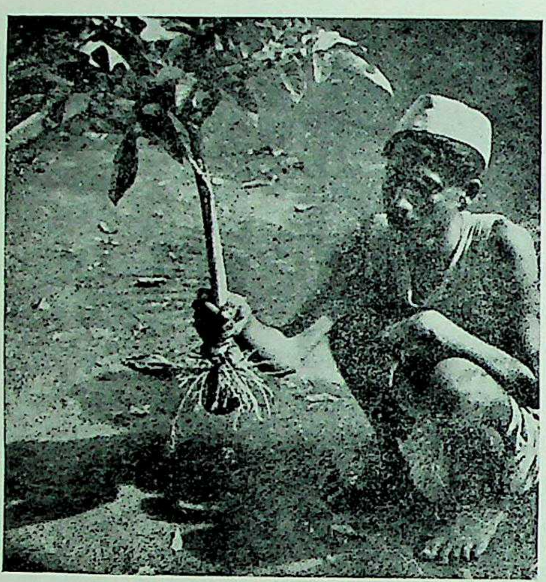

(बाईं ओर) जिमीकन्द या सूरन जो बहुवर्षीय बूटे का एक उत्तम उदाहरण है।

उद्भिजों के चार मुख्य भाग

पौधों का उपर्युक्त वर्गीकरण सबसे पुराना अवश्य है, परन्तु यह उनकी रचना तथा समानता आदि से कुछ सम्बन्ध नहीं रखता। इसकी नींव पेड़ों की आयु तथा डीलडौल पर ही है, उनके यथार्थ लक्षणों पर नहीं। इसलिए जैसे-जैसे वनस्पति-विज्ञान की उन्नति हुई, इस वर्गीकरण में दोष दिखाई देने लगे। अब दुनिया के तमाम पेड़-पौधों को इन तीन मनमाने खण्डों में विभक्त करके संतोष नहीं किया जा सकता। अतः भाँति-भाँति के पौधों की रचना और जीवन का अध्ययन करके उन्हें नीचे दिए हुए चार मुख्य भागों में वर्गीकृत किया गया।

सपुष्पक पौधे—नग्नबीज और गुप्तबीज

सबसे पहली श्रेणी में आम, गुलाब, सेब, मटर, घास, बाँस, चीड़, देवदार जैसे हजारों पेड़-पौधे हैं। इनमें जड़, तना, पत्ती, फूल, फल और बीज आदि सभी अंग स्पष्ट हैं। इन्हें 'सपुष्पक' अथवा फूलवाले पौधे कहते हैं। फूलों और बीजों का होना इनकी विशेषता है। पौधों के इस वर्ग के नग्नबीज या 'जिम्नोस्पर्म' और गुप्तबीज या छिपे बीज वाले अथवा 'एंजियोस्पर्म' ये दो भाग हैं। नग्नबीज के फल प्रायः शुण्डाकार होते हैं (देखो पृ० ६२४ का ऊपरवाला चित्र)। इनमें बीज खुले हुए रहते हैं (देखो उसी पृष्ठ का निचला चित्र)। इस समूह के प्रायः सभी पेड़-पौधे बहुवर्षीय, सदापत्री तथा कठीले होते हैं। इनकी लगभग ५०० जातियाँ हैं। चीड़, देवदार, चिलगोजा, सरो, सिकोया, टैक्जोडियम आदि इन्हीं में हैं (दे० पृ० ६१९-६२० के चित्र)। इस जाति के पौधों से लोबान, तारपीन

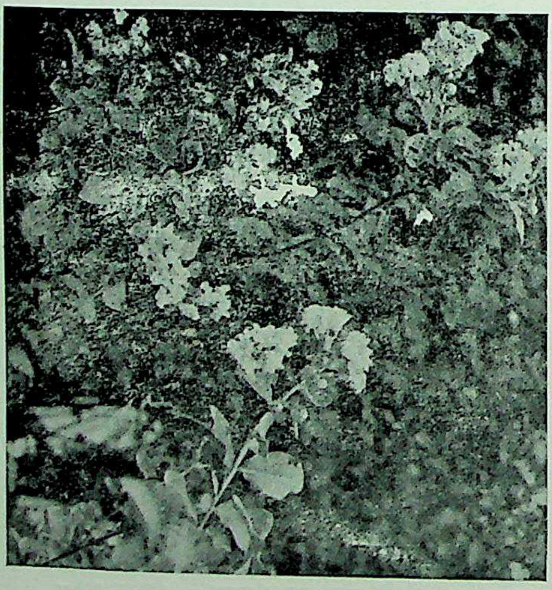

गुलाबी और सफेद फूलोंवाले इस पौधे को सावनी के नाम से पुकारते हैं। यह 'झाड़' वर्ग का नमूना है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

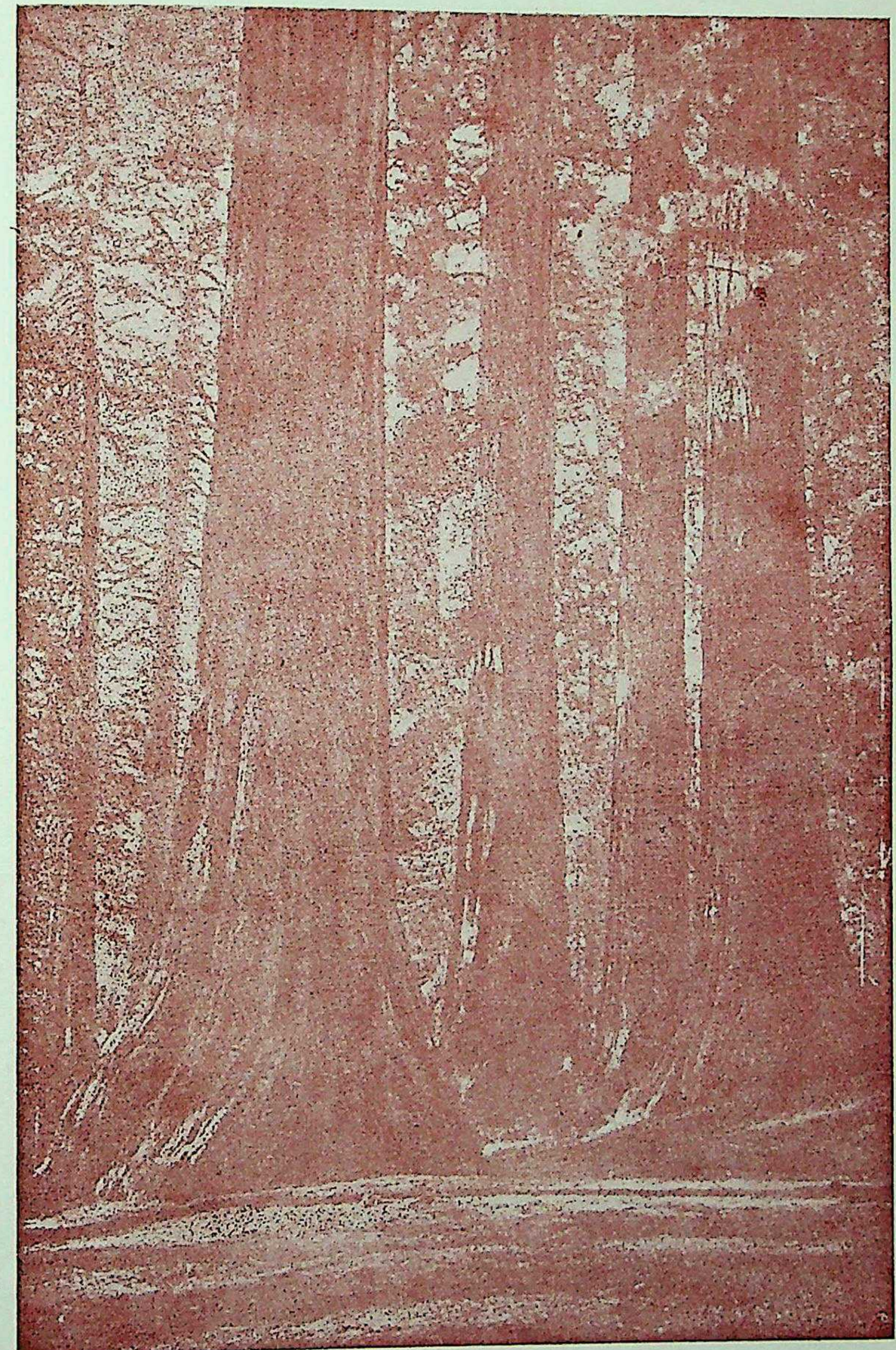

कैलीफोर्निया के 'सिकोया' नामक वृहद्‌कार वृक्षों की भव्य झांकी

ये वृक्ष तीन सौ फीट तक ऊँचे हैं और इनकी आयु चार हजार वर्ष से भी अधिक कूती जाती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

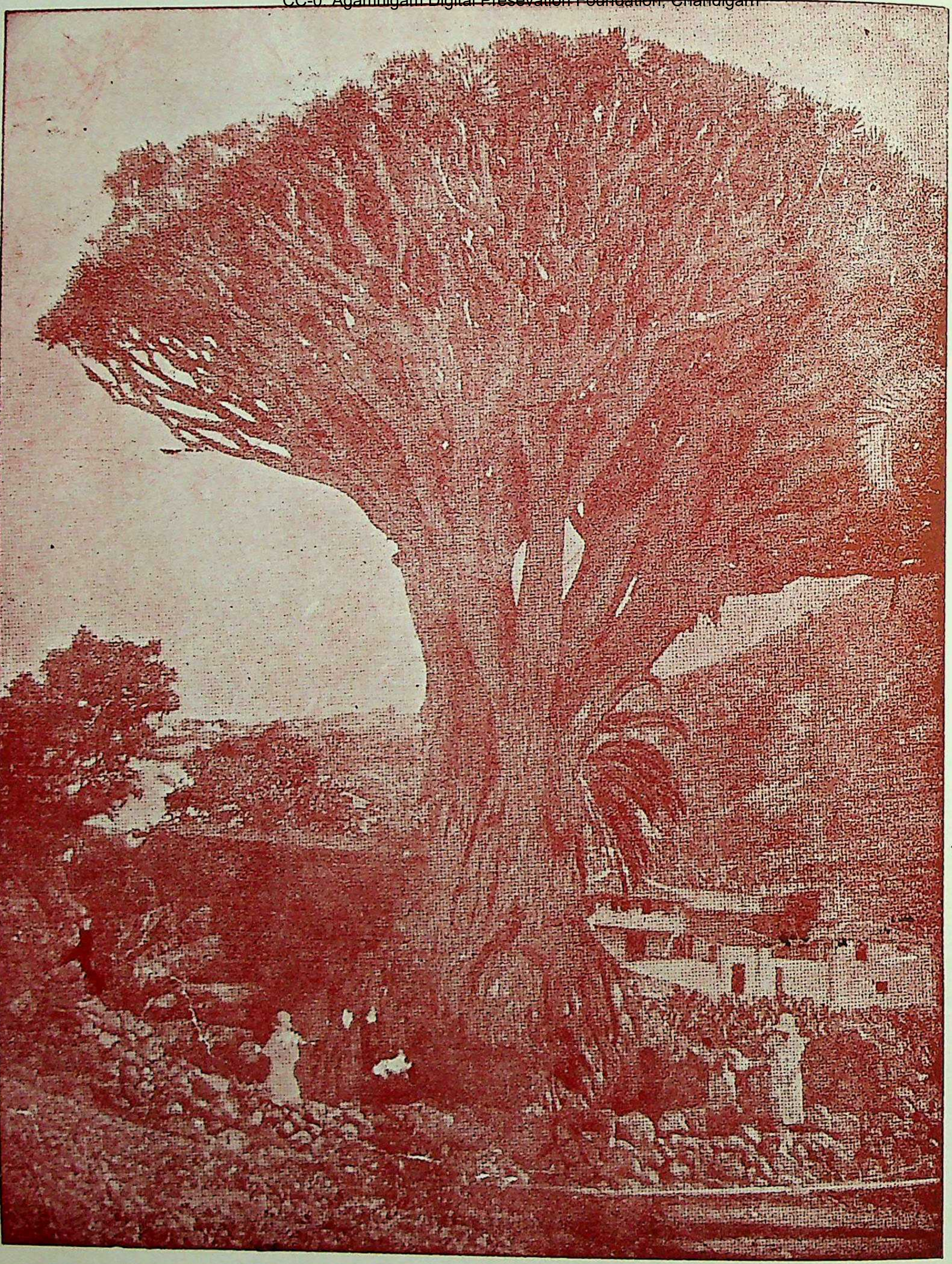

छः हजार वर्ष की आयुवाला एक दीर्घजीवी वृक्ष

यह कनारी द्वीपों में विद्यमान है वहाँ के लोग इसे 'ड्रेगन ट्री' के नाम से पुकारते हैं। जरा अनुमान कीजिए कि यह कितना प्राचीन है ! यह वृक्ष जिस समय उगा होगा, तब हमारे देश में कदाचित महाभारत-युग का उदय हो रहा था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऑस्ट्रेलियावासी इस वृक्षराज के तने का घेरा ६३ फीट है !

वृक्षों की ऊँचाई के लिहाज से उनके तने का आकार-प्रकार भी असाधारणतया बड़ा हो जाता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण ऑस्ट्रेलिया के मेलबोर्न नगर से ४० मील की दूरी पर वन में स्थित युकैलिप्टस की जाति का यह दैत्याकार वृक्ष है। इसकी ऊँचाई २६० फीट है और इसके तने की परिधि है ६३ फीट ! इस विशाल वृक्ष के तने को चारों ओर से बाँह से बाँह मिलाकर घेरने के लिए पंद्रह व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ती है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कतिपय वृक्षों के तने कितने बड़ेआकार के होते हैं, इसका अनुमान इस चित्र द्वारा सहज ही लगाया जा सकता है। इसमें अमेरिका के सिकोया जाति के एक जीवित वृक्ष के तने के बीच से काटकर निकाली गई सुरंग दिग्दर्शित है, जिसमें होकर मोटरें तक निकल सकती हैं।

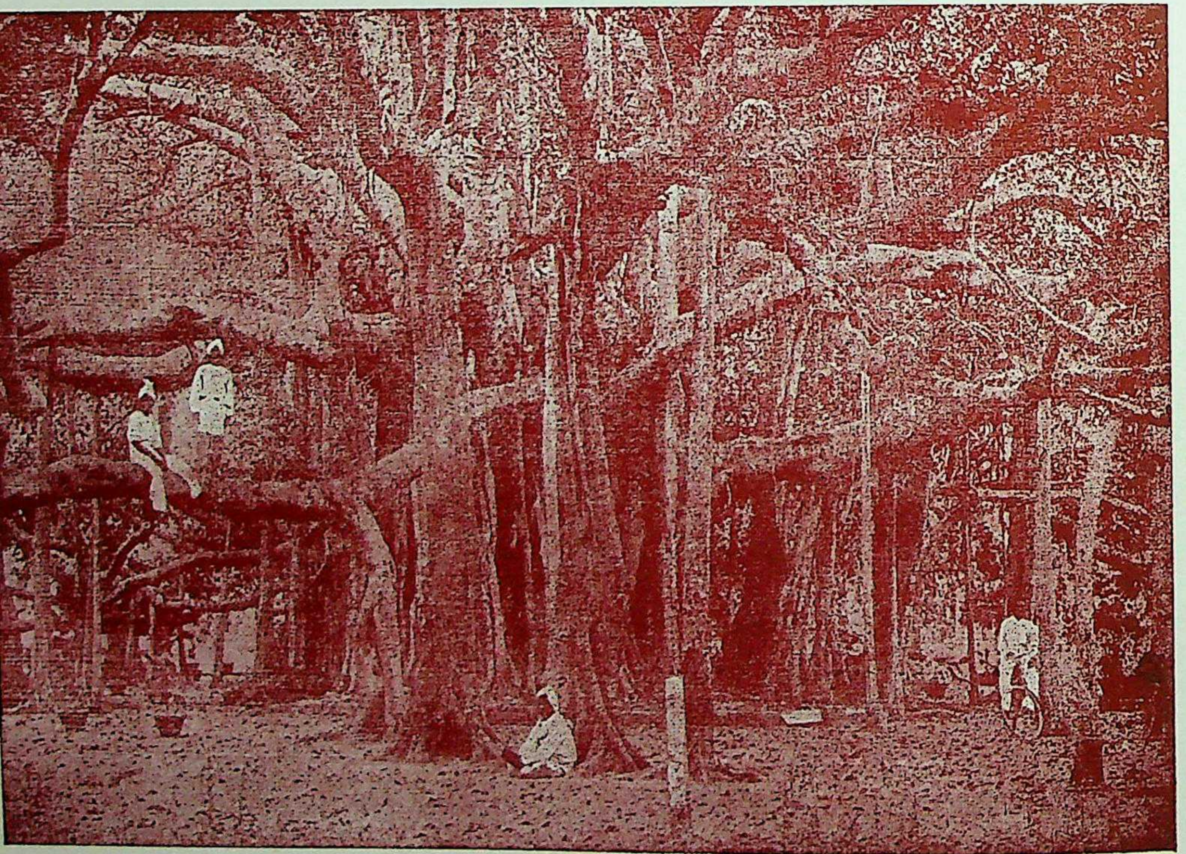

कलकत्ते के 'नेशनल बोटेनिकल गार्डेन्स' में अवस्थित बरगद का विशाल वृक्ष, जिसका फैलाव इतना विस्तृत है कि उसकी छाया में लगभग सात-आठ हजार व्यक्ति विश्राम कर सकते हैं। इस वृक्ष की बरोहियों की संख्या ३,२५० है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इमारती लकड़ी, आदि अनेक जरूरी चीजें हमें मिलती हैं। सपुष्पक पौधों के गुप्तबीज वर्ग में रजोविन्दु, जो पकने पर बीज हो जाते हैं, गर्भाशय में बन्द होते हैं (पृष्ठ ६२४ का निचला चित्र)। इनमें अनेक प्रकार के पौधे हैं। अब तक लगभग दो लाख जाति के गुप्तबीज पौधों का पता लग चुका है। बनावट और रहन-सहन के अनुसार इनमें कई भेद हैं। निःसन्देह इस जाति के पौधों से ही हमारा अधिक प्रयोजन रहता है। वन, उपवन, खेत, ऊसर, तड़ाग, मैदान, पर्वत, घाटी आदि सभी स्थानों में यही पौधे दिखाई देते हैं।

सच बात तो यह है कि वर्तमान काल में उपयोगिता तथा प्रधानता के विचार से वनस्पति-संसार में सबसे गौरवपूर्ण यही पौधे हैं। इस समूह के पौधों के डील-डौल में बड़ा अन्तर है। कुछ 'वुल्फिया' (पानी में रहनेवाली एक प्रकार की बूटी, जिसे हम 'काई' कहते हैं, और जो वर्षाऋतु में पोखरों में होती है) जैसे आलपीन के मत्थे से भी छोटे आकार के होते हैं। (देखो पृष्ठ ६२५ का निचला चित्र); और कुछ बरगद, सेमर, सागौन, यूकलिप्टस जैसे सैकड़ों फीट ऊँचे भी होते हैं (दे० पृष्ठ ६२१-६२२ के चित्र)।

टेरीडोफायटा, पर्णांग आदि

वनस्पति-जगत् की दूसरी श्रेणी में 'टेरीडोफायटा' वर्ग के पौधे हैं, जिन्हें आपने कदाचित् फुलवाड़ियों और पहाड़ों पर देखा होगा। इनमें पर्णांग या 'फर्न' (देखो पृष्ठ ६२६ का ऊपरी चित्र) और उनके भाई-बन्धु 'इक्वीजीटम', सिलैजीनेला (दे० पृ० ६२६ का निचला चित्र), लायकोपाड्स आदि हैं। पर्णांग निःसंदेह आपके बगीचों में होंगे। इनकी पत्तियाँ बड़ी सुन्दर और मनोहर होती हैं। इसी कारण लोग इन्हें वाटिकाओं में लगाते हैं। ये छाया और तरी के पौधे हैं। हिमालय एवं पश्चिमी घाट और नीलगिरि पर्वतमाला के जंगलों में ये अधिकता से होते हैं। दार्जिलिंग, शिलांग, नैनीताल और उटकमंड जैसे स्थानों पर तो आपने सैकड़ों जाति के पर्णांग देखे होंगे। मैदान की लू और गरमी ये नहीं सह सकते, इसलिए इन्हें यहाँ जीवित रखने के लिए इनकी ओर विशेष ध्यान देना पड़ता है। फलवाले पेड़ों की तरह इनमें भी जड़, तना और पत्ते स्पष्ट होते हैं, परन्तु इनमें फूल, फल या बीज नहीं होते। सम्भव है, आपको इस बात पर कुछ आश्चर्य हो कि जब इनमें बीज नहीं होते, तो भला बीजों का काम कैसे होता है और इन पौधों की उत्पत्ति कैसे होती है? इस विषय में इन पौधों की जीवन-लीला सचमुच ही अनोखी है। इनमें बीजों का काम रेणु या 'स्पोर'

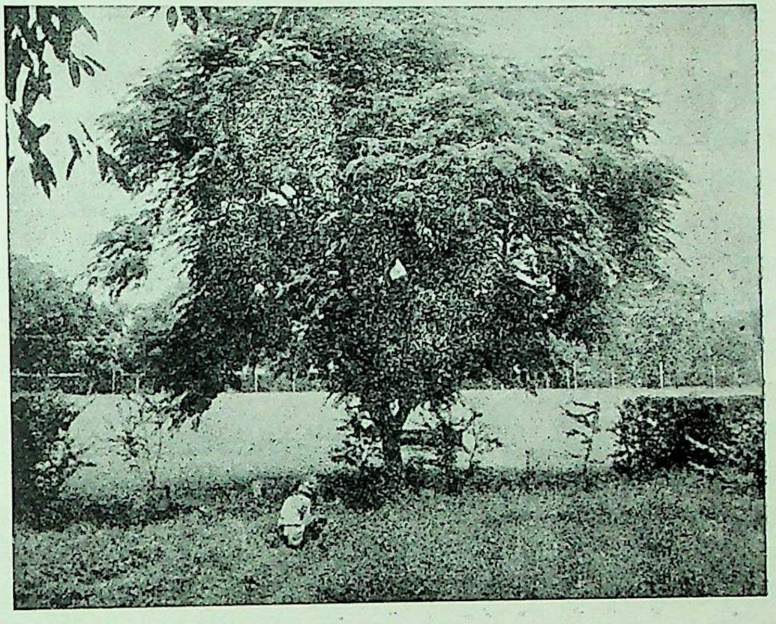

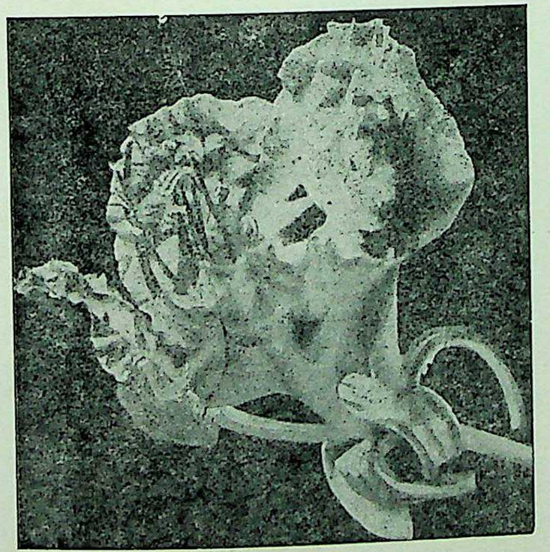

(ऊपर) गुलमोहर का वृक्ष (नीचे) उसका पुष्प। इस वृक्ष में लाल रंग के सुहावने फूल आते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से होता है। अगर आप किसी भी साधारण पर्णांग की पत्तियों को ध्यान से देखें, तो एक न एक समय इनकी पीठ पर आपको नन्हें-नन्हें भूरे या हल्के हरे रंग के बहुत-से दाने मिलेंगे (दे० पृ० ६२६ का निचला चित्र)। सूक्ष्म-दर्शक से देखने पर आपको यहाँ पर एक ढक्कन के नीचे छोटी-छोटी अनेक डिबियाँ—'स्पोरेंजिया'—मिलेंगी, जिनके अन्दर आपको एक प्रकार की धूल-सी वस्तु मिलेगी। यही धूलिकण या 'स्पोर्स (दे० पृ० ६२७ का चित्र) इन पेड़ों में बीज का काम देते हैं। पर्णांगों के अन्य भाई-बन्धुओं में भी स्पोरेंजिया और स्पोर होते हैं।

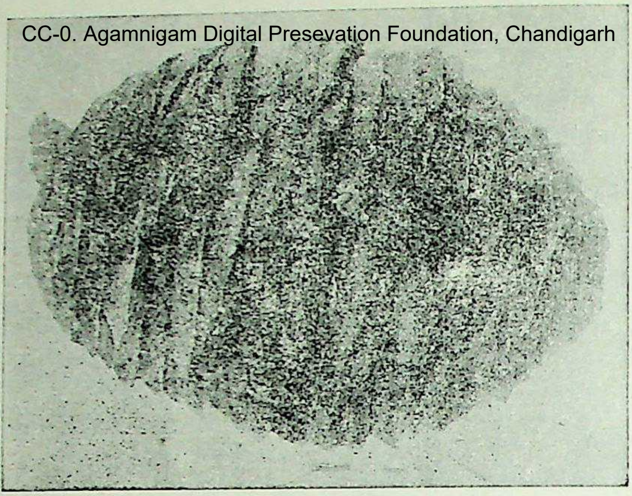

देवदार का शुण्डाकार फल। यह नग्नबीज पौधों के फल का एक उदाहरण है।

इस श्रेणी के पौधे वर्तमान काल में डील-डौल में बहुत छोटे होते हैं और कुछ वृक्ष-पर्णांगों को छोड़कर वे प्रायः तीन-चार फीट से अधिक ऊँचे नहीं होते; परन्तु आज से करोड़ों वर्ष पूर्व डेवोनियन काल में जब इस जाति के पेड़ों की संख्या अधिक थी, इनमें से कोई-कोई सैकड़ों फीट ऊँचे होते थे! उस समय पृथ्वी पर इन्हीं का राज्य था। कार्बन-काल में भी बहुत से पर्णांग थे और साथ-साथ पर्णांग जैसे और भी अनेक पौधे थे, जिनमें बीज होते थे। हमारी खानों में कोयला इन्हीं की बदौलत मिलता है। परन्तु अब ये पेड़ कहाँ हैं? विश्व परिवर्तनशील है। प्रकृति में दिन प्रतिदिन-परिवर्तन होते रहते हैं। करोड़ों वर्ष की बात है, पृथ्वी पर महान् परिवर्तन हुए। ये पेड़ अपनी रचना को परिस्थिति के अनुकूल न बना सके और इसीलिए जीवन-संग्राम में पराजित होकर असफल रहे। अब इनके केवल प्रस्तरीभूत जीवावशेष ही रानीगंज तथा अन्य स्थानों में रह गए हैं। 'लायकोपोडियम' और 'इक्वीजीटम' भी एक प्रकार से पतन की ओर ही जा रहे हैं। असम्भव नहीं कि समय के चक्र में ये भी विलीन हो जाएँ। इन पौधों की कहानी बड़ी रोचक है। आगे चलकर इनके संबंध में कुछ साधारण बातों का वर्णन किया जायगा।

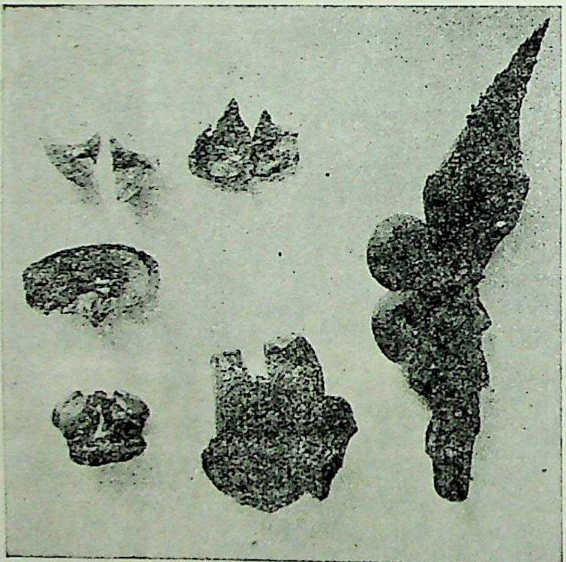

कुछ नग्नबीजी पौधों के बीज। इनमें बीज गर्भाशय के अन्दर बन्द नहीं हैं। चित्र में ऊपर की पंक्ति में बाईं ओर से पहला 'साइकस', दूसरा 'एनसिफैलार्टस' और तीसरा 'जेमिया' है। नीचे के तीन चित्रों में पहले देवदार के कोन-स्केल के साथ बीज दिखाए गए हैं, दूसरे में आधा कोन-स्केल तोड़ दिया गया है और तीसरे में बीज अलग से दिखाए गए हैं।

नलिकायुक्त और नलिकाहीन पौधे

आप देखते हैं कि पूर्व-कथित दोनों ही श्रेणी के पौधों में जड़, तना और पत्ती स्पष्ट होती हैं। इनके हर एक हिस्से में नसें अथवा नलिकाएँ हैं, जिनमें होकर खाद्यरस का संचार होता है। इन नसों को हम पत्तियों में सरलता से देख सकते हैं (पृ० ६२८ का ऊपरी चित्र)। यही नलिकाएँ इनको दृढ़ बनाती हैं और इनमें पशुओं की-सी नसों और ठठरियों का काम देती हैं। इन दोनों श्रेणी के पौधों को 'नलिकायुक्त पौध' कहते हैं। इनके अलावा आपने कुछ ऐसे पौधे भी देखे होंगे, जिनमें नसें नहीं होतीं।

इन्हें हम 'नलिकाहीन' या बिना नसों के पौधे कह सकते हैं। वनस्पति-जगत् में इनका वही स्थान है, जो जन्तु-जगत् में अपृष्ठवंशी अर्थात् बिना रीढ़वाले जन्तुओं का है। शेष के दो समूह—'ब्रायोफायटा' और 'थैलोफायटा'—इसी तरह के हैं। इनकी बनावट बड़ी सरल होती है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ब्रायोफायटा—मॉस और लिवरवर्ट

ब्रायोफायटा नामक वर्ग में मॉस (दे० पृष्ठ ६२८ के निचले चित्र) और लिवरवर्ट (दे० पृष्ठ ६२९ का ऊपरी चित्र) ये दो विभेद हैं। मॉस-समूह के समस्त जाति के पौधों में और कुछ लिवरवर्टों में भी पत्तियाँ होती हैं और जड़ों के स्थान पर महीन रोएँ होते हैं, परन्तु इनमें और साधारण पौधों की पत्तियों में बड़ा अन्तर होता है। कुछ लिवरवर्टों की बनावट में पत्तियों आदि का अन्तर नहीं होता। इनके पौधे फीते या पत्ती जैसे इंच दो इंच के या इससे भी छोटे होते हैं। एंजियोस्पर्म्स और टेरीडोफायटा की भाँति इस समूह के पौधे भी स्थलवासी होते हैं, परन्तु तरी और छाँह के बड़े प्रेमी। पर्णाङ्गों की भाँति इनके भी बीज नहीं होते और बीज का काम स्पोर से ही होता है। हमारे देश में ये बूटे अधिकतर पहाड़ों पर ही उगते हैं। वर्षा के दिनों में यहाँ पर ये सोतों और चश्मों के किनारे, पानी की धाराओं के निकट, पेड़ों की डालियों एवं चट्टानों पर अधिकता से मिलते हैं। इनमें से कोई-कोई, विशेषकर कुछ मॉस तो इतने घने उगते हैं कि जिस किसी स्थान पर ये उगते हैं, उसको अच्छी तरह से ढक लेते हैं। पूर्वीय हिमालय तथा पश्चिमी घाट के कई स्थानों पर, जहाँ साल में १०० इंच से भी अधिक वर्षा होती है, इस जाति के कुछ पौधे अन्य पेड़ों की पत्तियों पर भी उगते हैं। आर्थिक विचार से इस समूह के पौधे हमारे किसी भी काम के नहीं हैं, लेकिन विकासवाद की दृष्टि से या पौधों की गुप्त लीलाओं को जानने के हेतु इनका अत्यन्त महत्व है। समय आने पर इनके गोपनीय रहस्यों पर अधिक प्रकाश डाला जायगा।

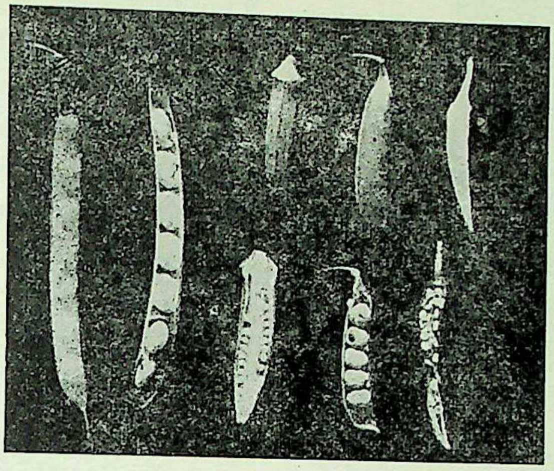

गुप्तबीज पौधों के कुछ फल। फल को बीच से फाड़कर साथ-साथ बीज भी दिखला दिए गए हैं। क्रमशः बाईं ओर से दाहिनी ओर को सेम, भिण्डी, मटर और लाल मिर्च तथा उनके बीज दिखाए गए हैं।

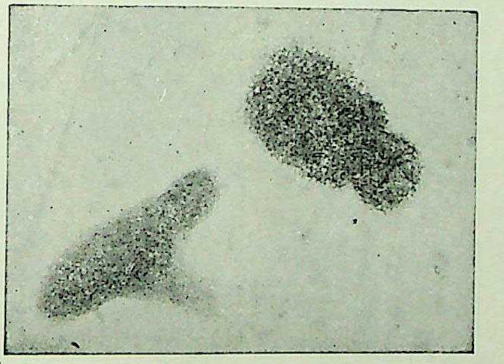

पानी का एक उद्भिज, वुल्फिया। यह चित्र सूक्ष्मदर्शक की सहायता से लिया गया कई गुना परिवर्द्धित चित्र है। पौधे का मूल आकार अति सूक्ष्म होता है।

थैलोफायटा – शैवाल, फफूँदवर्गीय और बैक्टीरिया

पेड़-पौधों की अन्तिम श्रेणी में 'थैलोफायटा' वर्ग के वनस्पति हैं। इस समूह के पौधों की बनावट बड़ी ही सरल होती है। इनमें न जड़ होती है न तना, न पत्ती अथवा फूल-फल। इनका कोई भी अंग स्पष्ट नहीं, फिर भी ये खाते-पीते और जीवों की सभी लीलाएँ करते हैं। समुद्री शैवाल या 'सी-वीड्स' (पृष्ठ ६३० का ऊपरी चित्र) तथा काई-वर्ग के अन्य पौधे और 'फफूँदवर्गीय' या 'फंगस' एवं 'बैक्टीरिया' इसी समूह के हैं।

शैवाल या काई-वर्ग

आप में से जिन्हें भी कभी समुद्र के किनारे घूमने का अवसर मिला होगा, उन्होंने यदा-कदा लाल, भूरे, हरे रंग के कुछ बूटे पानी के अन्दर चट्टानों से चिपटे अवश्य देखे होंगे। इनमें से अधिकतर शैवाल वर्ग के होते हैं। हमारे पास-पड़ोस के तालाबों एवं नदियों तथा नालियों में भी जो हरी-नीली जाले-आदि जैसी कितनी ही काइयां आप देखते हैं, वे भी इन्हीं में हैं (देखो पृष्ठ ६२९ के निचले चित्र)। वर्षा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

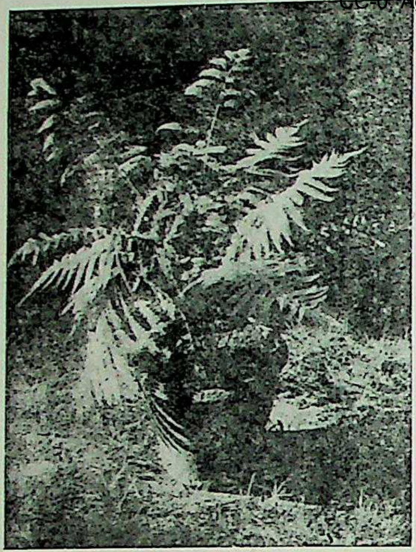

(बाईं ओर) एक जाति का साधारण पर्णांग 'नैफ्रोलीपिस', जो प्रायः हमारे बगीचों में देखने को मिलता है।

में तो आसपास की दीवालों, पेड़ों और गुसलखानों व गमलों अथवा सड़कों पर हरे-नीले रंग की अनेक काइयाँ जम जाती हैं। तालाबों और पोखरों में कभी-कभी हम जो हरा पानी देखते हैं, वह भी बहुधा इसी जाति के आँख से ओझल बहुत-से छोटे जीवों की उपस्थिति के ही कारण होता है। 'क्लैमाइडोमोनस' नाम का एक उद्भिज इनमें से एक प्रसिद्ध नमूना है (देखो पृ० ६३१ का ऊपरी चित्र)। यह इतना छोटा होता है कि आप आसानी से उसका अनुमान नहीं कर सकते। एक बूँद पानी में ये असंख्य तैरते रहते हैं। कैसी निराली यह रचना है! फिर भी इसकी जीवनलीला उतनी ही निपुणता से युक्त है, जितनी किसी अन्य पौधे की। आगे हम इस अनोखे वर्ग का कुछ अधिक बखान करेंगे।

फफूँद-वर्ग

ऊपर वर्णित काइयों के अलावा धरती के फूल (देखो पृ० ६३० के निचले चित्र), कुकुरमुत्ते, गुच्छी या 'मोरचेला', गगनधूलि, फफूँदी, यीस्ट आदि (जिनकी गिनती 'फंगस' या 'फफूँद-वर्ग' में होती है), तथा बैक्टीरिया भी थैलोफायटा समूह में हैं। बरसात में सड़ती हुई लकड़ी, फल एवं अन्य वस्तुओं पर अथवा मल या गोबर,

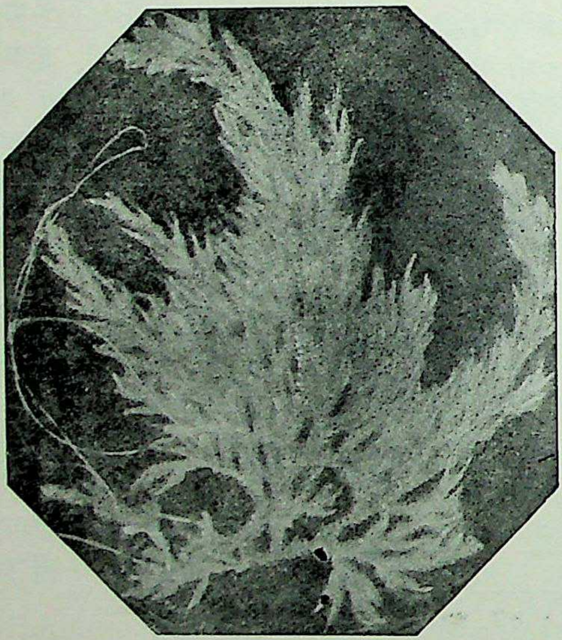

(दाहिनी ओर) 'टेरीडोफायटा' नामक वनस्पति-जगत् की द्वितीय श्रेणी का एक पौधा 'सिलैंजीनेला', जो पर्णांगों का एक नातेदार है।

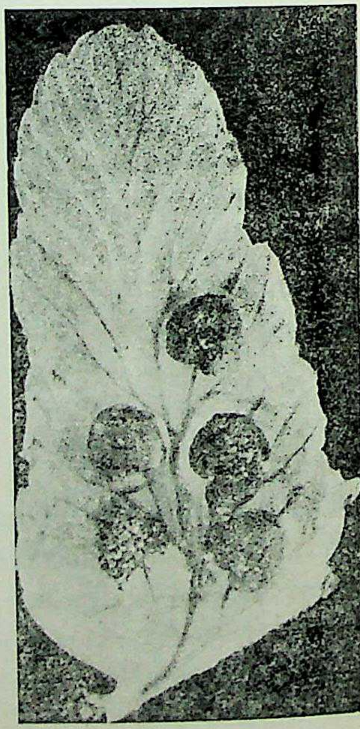

(दाहिनी ओर) यह फुलवाड़ी के एक साधारण पर्णांग 'नैफ्रोलीपिस' की पत्रक का पृष्ठ की ओर से लिया गया फोटोग्राफ है। इसमें नन्हें-नन्हें काले दाने स्पोरेंजिया का समूह है, जिसके अंदर ढक्कन से सुरक्षित स्पोरेंजिया होती हैं। बाईं ओर के सबसे नीचे के दाने से ढक्कन हटा दिया गया है, फलतः स्पोरेंजिया दिखाई दे रही है। पर्णांग-वर्ग के इन पौधों में ये स्पोर या नन्हें-नन्हें दाने ही बीज का काम करते हैं। इस विषय में निश्चय ही इन पौधों की जीवन-लीला विचित्र है।

आदि के ढेर पर आपने अनेक फफूँदवर्गीय देखे होंगे। इस जाति के बूटे बिना किसी के सहारे अपना जीवन-निर्वाह नहीं कर सकते--अन्य वृक्ष, जानवर, अथवा सड़ी-गली चीजों पर ही इनका जीवनाधार है। कितने ही परोपजीवी फफूँदवर्गीय हमारी खेती-बारी के पौधों पर धावा करते हैं। हमारे गेहूँ का 'पकसिनिया' और बाजरे का 'स्मट' नामक शत्रु इन्हीं में से हैं। पकसिनिया की करतूतों के कारण हमें अपनी कृषि में लाखों रुपये की हानि पहुँचती है। संयुक्त राज्य अमेरिका, में अखरोट की एक व्याधि से, जो एक प्रकार के फफूँदवर्गीय से होती है, लाखों रुपये का सालाना घाटा होता है। यह व्याधि न्यूयार्क के पास-पड़ोस में सबसे प्रथम १९०४ में शुरू हुई। थोड़े ही दिनों में इसका प्रकोप चारों ओर फैल गया और १९०९ तक वहाँ की सरकार के अनुमान के अनुसार इस रोग से लगभग सात करोड़ पचास लाख रुपए का नुकसान पहुँचा! अनेक फफूँदवर्गीय हमारी लकड़ी को नष्ट कर देते हैं। आप लोगों ने जंगलों में घोड़े की टाप अथवा डबल रोटी जैसे फफूँदवर्गीय कभी-कभी देखे होंगे (दे० पृ० ६३० का निचला बाँया चित्र)। ये इन पेड़ों को बड़ी हानि पहुँचाते हैं। इनका अदृश्य जाल तने और शाखों के अन्दर सारे पेड़ में फैला रहता है और भीतर-भीतर से उन्हें खोखला और निकम्मा करके सुखा-गलाकर मौत के घाट उतार देता है। परन्तु यही बात नहीं; सारे फफूँदवर्गीय हानि पहुँचानेवाले ही नहीं होते, कुछ उपयोगी भी हैं। कई जाति के धरती के फूल और गुच्छी, जो अधिकतर पंजाब और काश्मीर में होते हैं, स्वादिष्ट होते हैं। इसके अलावा 'यीस्ट' (दे० पृ० ६३१ का बिचला चित्र) शराब और अल्कोहाल बनाने के काम में आती है। रोटी तथा अन्य चीजें बनाने में जो खमीर काम में आता है, वह भी यीस्ट ही है।

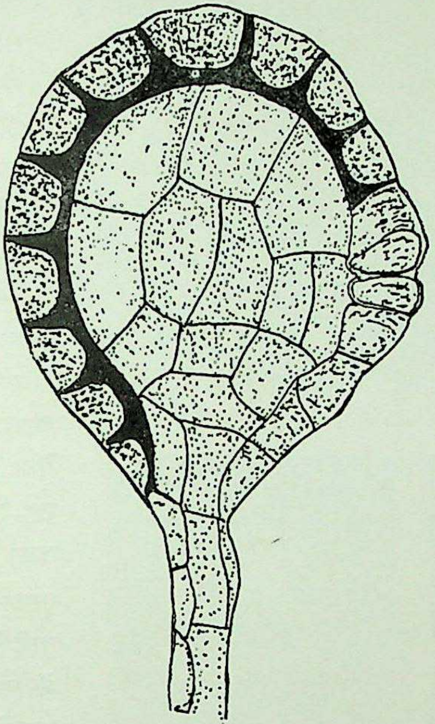

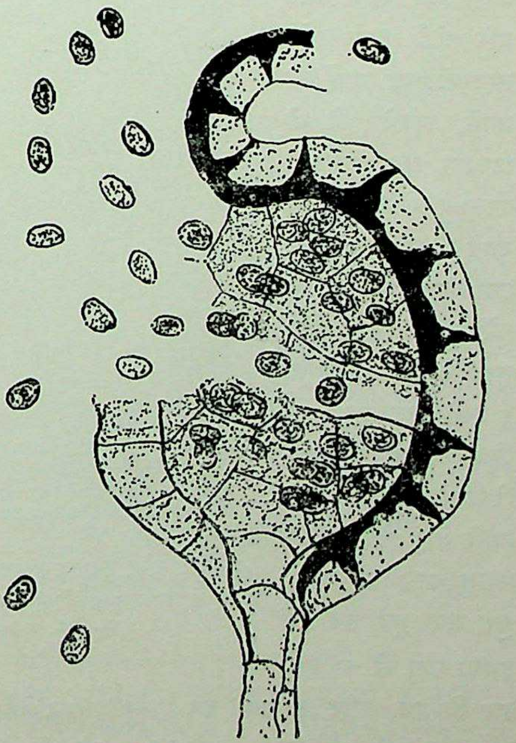

स्पोरेंजिया और उसके स्पोर्स। ऊपर परिपक्व स्पोरेंजियम है, जो अभी चिटकी नहीं है। नीचे चिटकी हुई स्पोरेंजियम का चित्र है। स्पोर्स या रेणु दूर-दूर तक विखर रहे हैं।

बैक्टीरिया

बैक्टीरिया के सम्बन्ध में तो आज हर एक व्यक्ति कुछ-न-कुछ अवश्य जानता है। ये जीव हमारे चारों ओर मौजूद हैं। कोई स्थान नहीं जहाँ इनकी पहुँच न हो। सभी जगह ये अनगिनत और नाना रूप में विराजमान हैं। हमारे पीने के पानी में, हवा में, दूध में, दही में, सभी चीजों में ये भरे रहते हैं। साधारण बाजारू दूध के तो एक घन सेंटीमीटर में एक लाख से दस लाख तक बैक्टीरिया हो सकते हैं। सौभाग्यवश ये सभी हानिकारक नहीं होते। हमारे दाँतों के मैल में तो हमें झुंड-के-झुंड बैक्टीरिया मिलेंगे। इन जीवों में सबसे निराली बात तो यह है कि ये पल भर में एक से अनेक हो जाते हैं और साधारण सर्दी-गरमी का इन पर कुछ भी असर नहीं पड़ता। ये एककोष्ठी जीव कितने छोटे होते हैं, इसका

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आप सुगमता से अनुमान भी नहीं कर सकते। इन्हें हम केवल सूक्ष्मदर्शक से ही देख सकते हैं, सो भी तब जब कि वह इतना शक्तिशाली हो कि हमारे सिर के बाल जैसी महीन चीज को लट्ठे के समान मोटा कर दिखाए। इनके डील-डौल के विषय में कल्पना करना भी सरल बात नहीं। इनकी आठ-दस हजार की पूरी पल्टन एक इंच लम्बे स्थान में एक ही कतार में आसानी से लम्बी-लम्बी लेट सकती है; फिर भी इनके बीच में आने-जाने के लिए जगह पड़ी रहेगी और यदि कोई इनके सगे-सम्बन्धी आ जाएँ तो उनके ठहरने को भी ठिकाना लग जायगा! परन्तु ये जितने छोटे हैं, उतने ही खोटे भी हैं। इनकी उपस्थिति का पता हमें प्राय: इनकी करतूतों से ही चलता है, (देखो पृष्ठ ६३१ का निचला चित्र)। बैक्टीरिया संसार में सृष्टि के आदि से ही विद्यमान हैं; परन्तु ढाई सौ वर्ष से कुछ समय पूर्व तक हमें इनका पता भी न था।

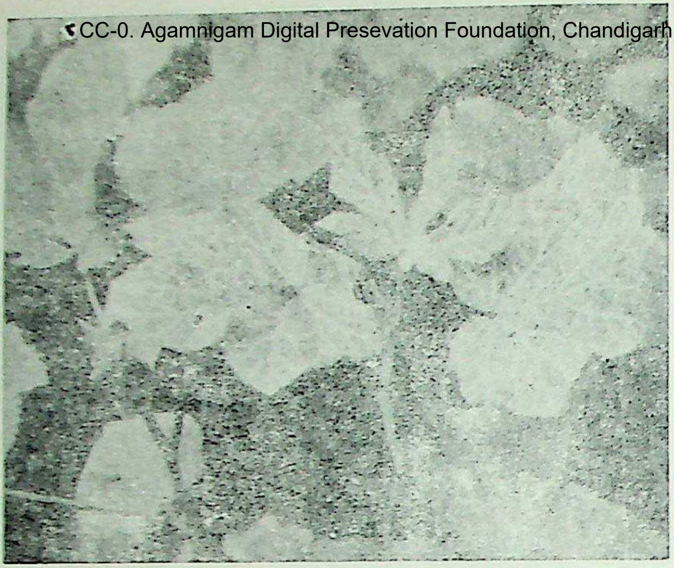

भिण्डी की पत्ती की नसें। ये नसें पत्तियों में साफ दिखाई देती हैं।

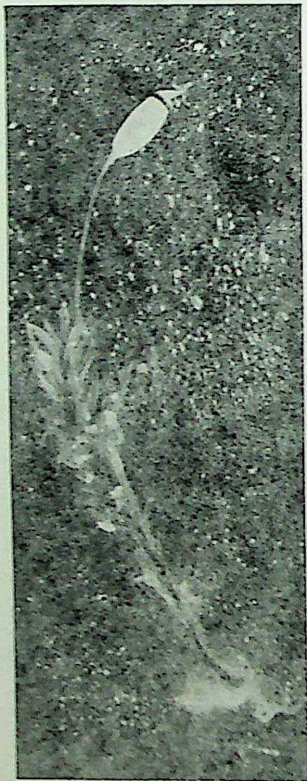

दाहिनी ओर साधारण मॉस है, जो वर्षा ऋतु में पुरानी दीवारों पर प्राय: उग आती है। बाईं ओर एक विशेष प्रकार की मॉस का चित्र है, जिसके सिरे पर स्पोरेंजिया हैं।

किया था। संसार में एक से एक आश्चर्यजनक अनुसंधान हुए। किसी ने नई दुनिया का पता लगाया, तो किसी ने आकाश में दूरदर्शक की सहायता से ग्रह और तारे ढूँढ़ निकाले, परन्तु हॉलैंड के इस बजाज लीवेनहुक के अनुसंधान के सामने इन सब की क्या तुलना! इसने उस अपूर्व सृष्टि का पता लगाया, जिसकी निशस्त्र सेना मानव जाति के संहार में उसके उत्पत्तिकाल से ही निरंतर तत्पर है; जिनकी करतूतों से कितने ही घरों में पानी का देवा नाम का लेवा न रह गया; जिनके प्रकोप से कितने ही गाँव उजड़ गए, कितनी ही बस्तियाँ वीरान हो गईं; जिनके कपट से कितने ही बादशाह तख्त पर बैठे-बैठे चुपचाप लुढ़क पड़े; पालने में झूलते-झूलते कितने ही बालकों की कली मुरझा गई; कितने ही राह चलते बटोही मौत की भेंट चढ़ गए! लीवेनहुक ने उन निर्दयी जीवों को खोज निकाला, जो हमारे बीच में आदि

इस विचित्र सृष्टि का सबसे प्रथम अनुसंधान हॉलैंडवासी अनुसंधानकर्त्ता लीवेनहुक (१६३२-१७२३ ई०) ने

काल से ही विद्यमान हैं; जिनमें हमारे कितने ही शत्रु और मित्र हैं; जिनसे कितनी ही बीमारियाँ और संक्रामक रोग,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जैसे हैजा आदि का जन्म होता है; जिनका हमारे कितने ही व्यवसायों और धन्धों में हाथ है; जिनकी करामात से ही दही, मट्ठा और पनीर तैयार होते हैं; जिनकी मदद से अल्कोहाल से सिरका तैयार करते हैं और सन को सड़ाते हैं।

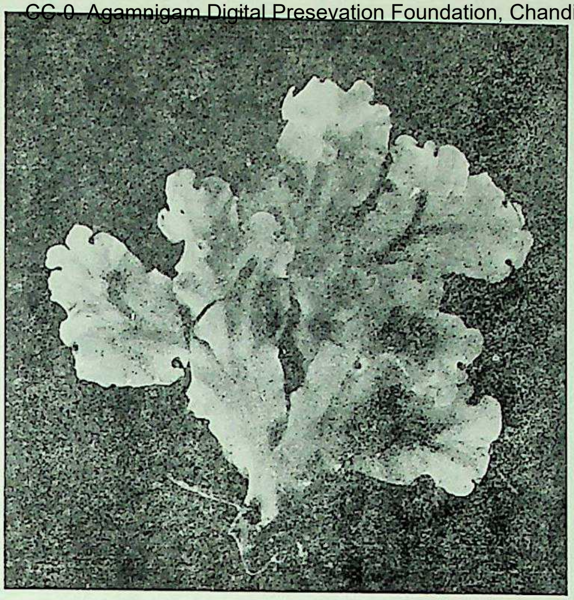

मारकैन्शिया का साधारण पौधा। यह लिवरवर्ट जाति के पौधों का एक नमूना है ।

वनस्पतियों से हमारा सम्बन्ध

इस वृहत् वनस्पति-जगत् से हमारा क्या सम्बन्ध है, इसकी शिक्षा विद्यालयों में क्यों दी जाती है, अनेक स्त्री-पुरुष इसकी धुन में क्यों लगे रहते हैं, आदि स्वाभाविक प्रश्न हैं, जो आपके हृदय में उठ रहे होंगे। आदि काल से ही मानव विचारमग्न है कि अमुक बात कैसे और क्यों हुई ? ऐसे सवालों को सुलझाने को आज छोटे-छोटे बालक भी उत्सुक रहते हैं। यथार्थ में वैज्ञानिक उन्नति की नींव इन्हीं प्रश्नों के सुमुचित उत्तर की खोज पर स्थापित है। पेड़-पौधों से हमारा बड़ा घना नाता है। पिछले प्रकरण में आप पढ़ चुके हैं कि पेड़ों की भोजन प्राप्त करने की अनोखी रीति ही की बदौलत हमारे वायुमंडल में ऑक्सिजन की मात्रा समान बनी रहती है। अगर ऐसा न होता तो थोड़े ही दिनों में जीवों के साँस लेने के कारण हवा दूषित हो जाती और किसी भी जीव का रहना असंभव हो जाता।

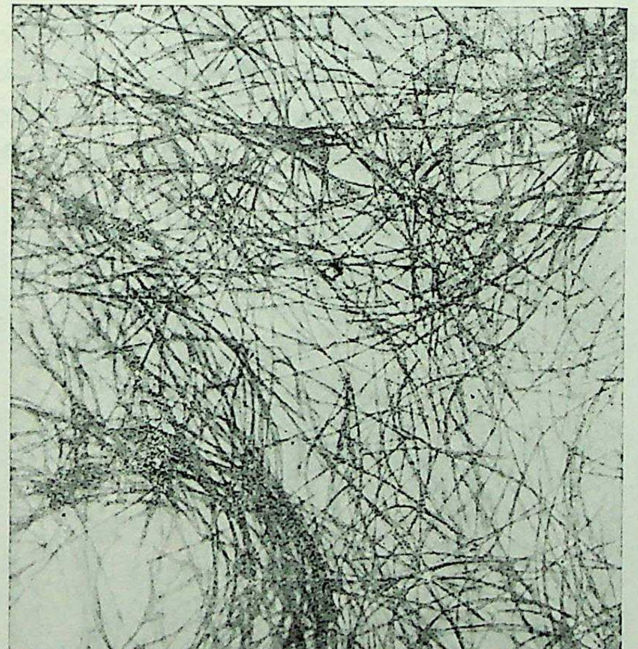

वर्षाऋतु में तालावों में पैदा होनेवाला बाल से भी महीन एक शैवाल, स्पायरोगायरा, दाहिनी ओर के चित्र में सूक्ष्मदर्शक द्वारा परिवर्द्धित इसकी झाँकी देखिए ।

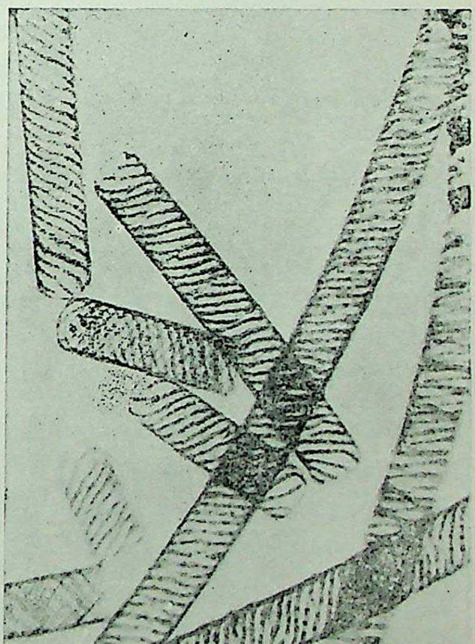

स्पायरोगायरा का यह चित्र सूक्ष्मदर्शक की सहायता से लिया गया है। इस चित्र में बाल से भी महीन रेशे परिवर्द्धित यहाँ लट्ठे जैसे देख पड़ते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तनिक विचार करने से पता चल जायगा कि जन्तु-जगत् की उत्पत्ति के पहले पेड़-पौधे जरूर रहे होंगे। पौधों के बिना हमारा जीवन कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है। यही प्राणि-जीवन का आधार है। यह बात शाकाहारी जीवों के लिए जितनी लागू है, उतनी ही मांसहारियों के लिए भी। कहते हैं कि आदि युग में, जब कि आदमी जंगलों में बिचरते थे, कंद-मूल-फल ही उनके भोजन की सामग्री थी। शीघ्र ही उन्हें जाड़े और धूप से बचने की जरूरत हुई। अतः वे पेड़-पौधों की पत्तियों तथा छालों से काम लेने लगे। इसी समय से मानों हमारे कपड़े बनाने के कारखानों की बुनियाद पड़ी। आज भी कितनी जंगली जातियाँ हैं, जो छाल व पत्तों से ही वस्त्रों का काम निकालती हैं। धीरे-धीरे लोगों ने कपड़ा बुनना सीखा, परन्तु फिर भी वस्त्रों के लिए हम पौधों के ही आश्रित रहे। आप जानते हैं कि आज हमारे अधिकतर कपड़े रुई और पाट से बनते हैं और ये दोनों हमें पौधों से ही मिलते हैं। लोगों ने धीरे-धीरे उपयोगी पौधों का लगाना और उनकी रक्षा करना सीखा। यहीं से हमारी खेती और बाग-वानी की नींव पड़ी। जैसे-जैसे इनमें उन्नति हुई बढ़िया से बढ़िया तरकारियाँ, अनाज, फल, फूल आदि उगने लगे। तुख्मी आमों की जगह अब दशहरी, सफेदे और लंगड़े; झरबेरी बेर की जगह पेंवदी बेर, और खट्टे नींबू की जगह नागपुर और सिलहट की नारंगियां और संतरे मिलने लगे। आज साधारण गांव के रहनेवाले भी जानते हैं कि अगर उन्हें गेहूँ, उर्द या दूसरे किसी अनाज की अच्छी फसल तैयार करनी है, तो उन्हें अमुक श्रेणी का ही बीज मँगाकर बोना होगा। यह सब कैसे हुआ? वनस्पतियों के अध्ययन और वनस्पति-विज्ञान की उन्नति में आज कितने ही लोग कटिबद्ध हैं। वे साधारण गेहूँ से बड़े दानेवाला, या थोड़े समय में पककर तैयार होने वाला और दूसरी बातों में बढ़िया गेहूँ उपजाने

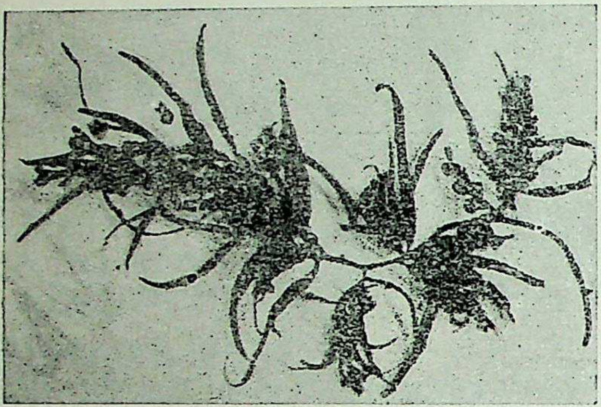

(ऊपर) एक प्रकार का भूरी जाति का समुद्री शैवाल—'सरसैगम'।

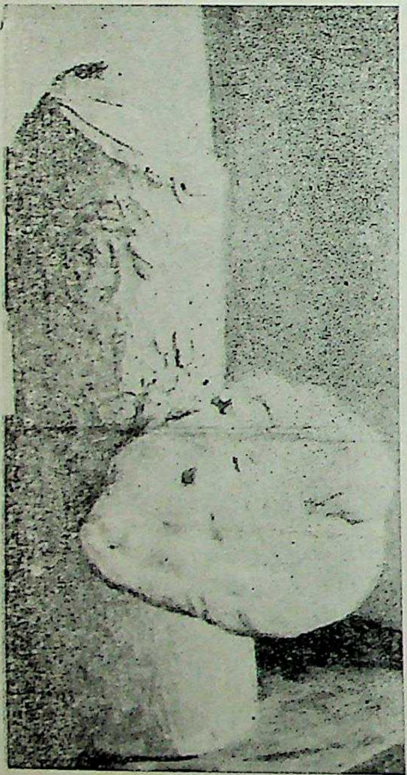

लकड़ी और पेड़ों पर उगनेवाला एक फफूंद-वर्गीय—'पालीपोरस'—जिससे वृक्षों को बड़ी हानि पहुंचती है।

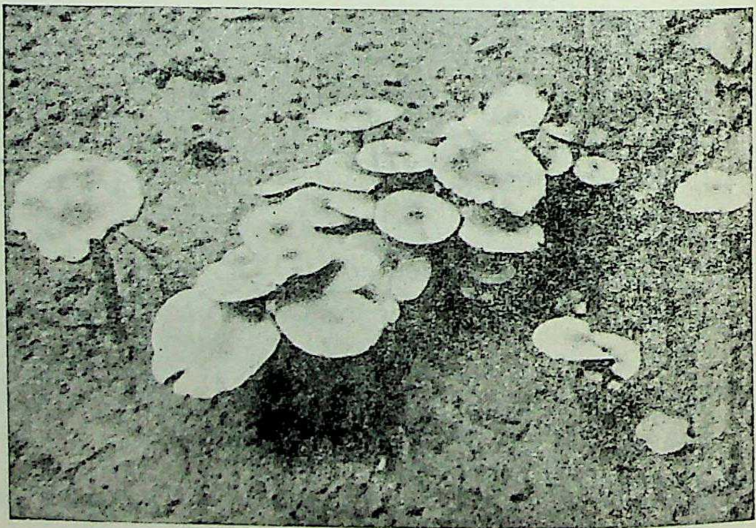

बगीचे में उगे हुए धरती के फूल। वनस्पति-जगत् के इन अनोखे सदस्यों को 'कुकुरमुत्ते,' 'छत्राक,' आदि कई नामों से पुकारा जाता है।

को कोशिश में लीन हैं। इसी तरह कोई गन्ने को तो कोई धान को सुधारने में जुटा हुआ है।

भोजन और कपड़ों के अलावा पेड़ों से हमें और भी अनेक जरूरी चीजें मिलती हैं। उदाहरणार्थ सब तरह के विटामिन (जिनका हमें पता लग चुका है, या आगे चलकर लगेगा), हमारी जटी-बूटियाँ, विभिन्न बीमारियों की सैकड़ों औषधियाँ, कितने ही पौष्टिक पदार्थ, मेवे और मसाले, मधु और मिश्री, कितने ही मादक और प्राण-घातक रस इन्हीं से तो मिलते हैं। अगर हम कमरे में बैठे-बैठे चारों ओर निगाह दौड़ाएँ, तो देखेंगे कि लगभग सभी चीजें वनस्पति ही से हमें मिलती हैं। हमारी कलम, मेज, कुर्सी, दरवाजे, किवाड़ सभी तो इन्हीं से बने हैं। हमारे लिखने का कागज भी पेड़ों ही से बनता है। जिस समय लोगों ने लिखना सीखा, वे भोजपत्र और ताड़-पत्र पर लिखने लगे। यही नहीं, आज कितने वर्ष बीत जाने पर भी हम लिखने के कागज के लिए पेड़-पौधों के ही अधीन हैं। हमारे बढ़िया-से-बढ़िया कागज भी फटे-पुराने चीथड़े और टाट तथा घास-बाँस से ही बनते हैं। तरह तरह के रंग, रबर, लाख, तेल, इत्र, सुगंध आदि भी इन्हीं से मिलते हैं। इसके अलावा

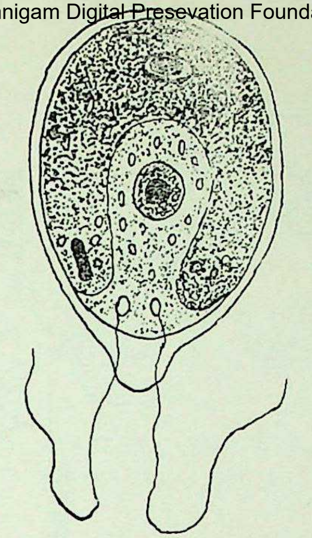

एक एककोष्ठी शैवाल 'क्लैमाइडोमोनस', जो हमारे यहाँ के तालाबों और पोखरों में होता है।

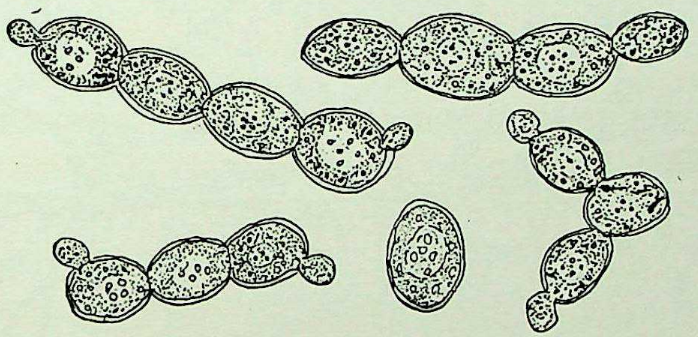

'यीस्ट', जिन्हें ताड़ी पीनेवाले करोड़ों की संख्या में हर घूँट के साथ अपने उदर में पहुँचाते हैं। ये अति सूक्ष्म होते हैं।

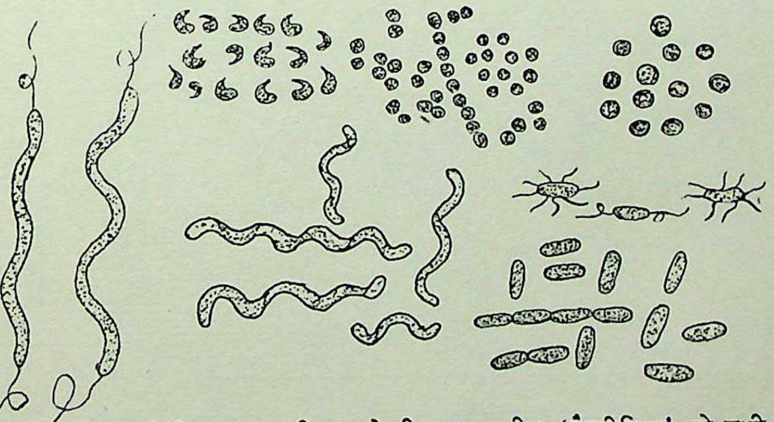

विविध रूपधारी एककोष्ठी अदृश्य जीव 'बैक्टीरिया', जो सभी जगह करोड़ों की संख्या में रहते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[illegible], नकली रेशम, नाइट्रो-सेलुलोज आदि पदार्थ भी पेड़ों से ही मिलते हैं। ऊपर कहा जा चुका है कि कितने ही पौधे हैं, जिनसे आदमी और दूसरे जानवरों की व्याधियाँ पैदा होती हैं और कितने ही ऐसे हैं, जिनका हाथ हमारे व्यवसायों में है। इसलिए ऐसी वनस्पतियों के जीवन और रहस्यों की जानकारी पाना हमारे लिए कितना जरूरी है, आप स्वयं ही अनुमान कर सकते हैं!

तो फिर आइए, आगे के कुछ प्रकरणों में पौधों का नजदीक से अध्ययन कर सूक्ष्म दृष्टि से इस विषय की छानबीन करने का प्रयत्न किया जाय। इसके लिए सबसे पहले आवश्यकता इस बात की है कि हम पौधों की सामान्य रचना एवं उनके अंग-विधान के बारे में सही-सही जानकारी प्राप्त कर लें। तदनन्तर अधिक गहरे पैठकर उस आधारभूत मूल तत्त्व का पता हमें लगाना होगा, जो कि सारी वनस्पति-सृष्टि की नींव में विद्यमान है तथा जिसे हम समस्त जीवन की इकाई की संज्ञा प्रदान कर सकते हैं। इसके उपरान्त पौधों के एक-एक अंग को लेकर विस्तार-पूर्वक उनका विशेष अध्ययन हमें करना होगा, साथ ही पौधों के रहन-सहन संबंधी विचित्रताओं, उनकी खाद्य-विधि, प्रजनन, आदि रोचक विषयों पर भी प्रकाश डालने का प्रयत्न हम करेंगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

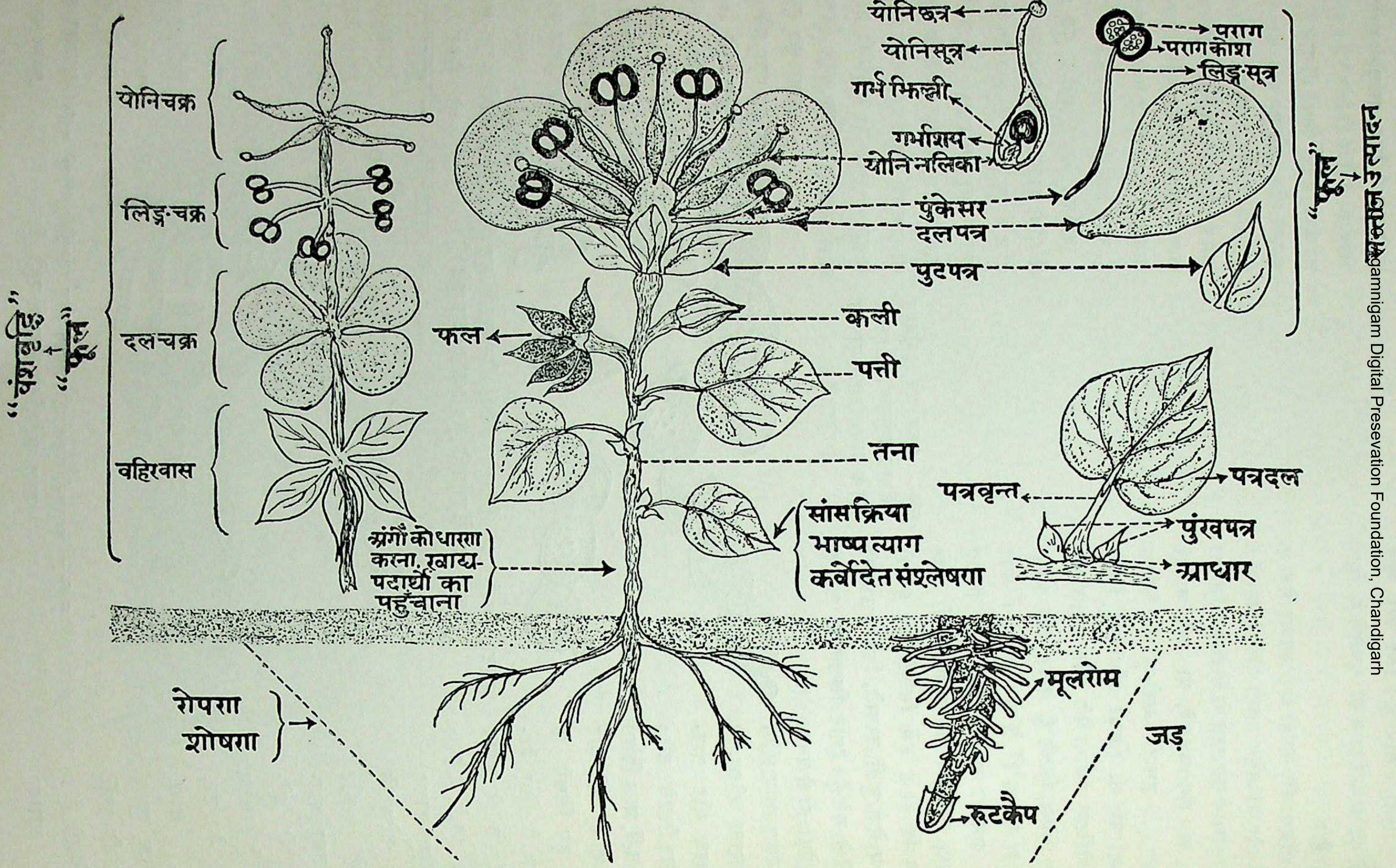

पौधे का अंग-विधान: प्रस्तुत मानचित्र में एक कल्पित उदाहरण लेकर पौधे के अलग-अलग अंगों की रचना समझाई गई है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पौधे की रचना और अंग-विधान

पिछले प्रकरण में हम वनस्पति-जगत् के विस्तार और उसके प्रधान परिवार-उप-परिवारों का संक्षेप में पर्यालोचन कर चुके हैं। इस लेख में पौधों की रचना और उनके अंगों का दिग्दर्शन कराया गया है।

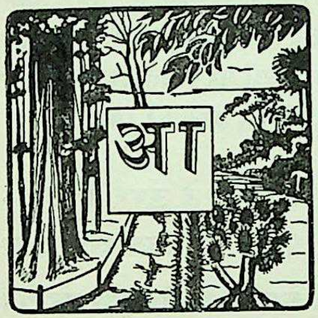

आपको विदित हो चुका है कि दुनिया में अनेक भाँति के उद्भिज हैं। इनकी बनावट और रहन-सहन के बारे में अधिक बातें जानने के लिए कदाचित् आप उत्सुक होंगे। इनके खान-पान और जीवन-मरण संबंधी कितने ही प्रश्न आपके हृदय में उठ रहे होंगे। फफूंदी में भी जीव है, यह सुनकर कौन विस्मित न होगा! अमरबेल और तुंबिलता के आचरण पर किसे घृणा न उत्पन्न हो रही होगी! परोपजीवी फफसिनिया और बैक्टीरिया के प्रकोप की सम्भावना पर किसका चित्त अधीर हो विचार-सागर में गोते न लगा रहा होगा! सारांश यह है कि पेड़-पौधों के विषय की कितनी ही बातें जानने के लिए आप उत्सुक होंगे। परन्तु इनकी विशेष चर्चा तभी की जा सकती है, जब हम पौधों की रचना और उनके अंग-विधान से भली भाँति परिचित हों। तो फिर आइए, पौधों की सामान्य बनावट, उनके विभिन्न अंग एवं उनके कर्त्तव्यों से परिचय पाने का यत्न करें।

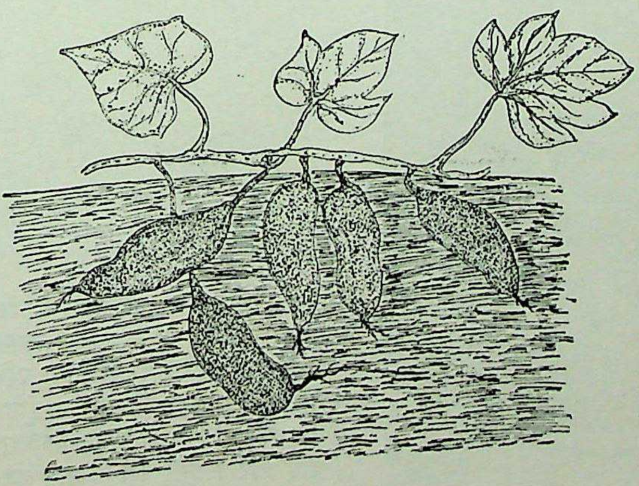

शकरकन्द, जिसकी जड़ गोदाम का काम देती है।

पौधे के अंग

हमारे हर काम के लिए शरीर में अलग-अलग अंग होते हैं। चलने-फिरने को पाँव, काम-काज के लिए हाथ, खाने-पीने के लिए मुँह और साँस लेने के लिए फेफड़े हैं। गाय-बैल, मोर-पपीहा, मेढक-मछली आदि के भी अलग-अलग अंग होते हैं; लेकिन आप देखते हैं कि कुछ जन्तु ऐसे भी हैं कि जिनमें अंग स्पष्ट नहीं होते। केंचुए को सभी ने देखा होगा। देखने में इसके नाक-कान और हाथ-पैर नहीं होते, लेकिन फिर भी इसके किसी भी काम में रुकावट नहीं होती। ऐसे ही और भी बहुत-से छोटे-छोटे जन्तु हैं, जिनमें अलग-अलग अंग दिखाई नहीं देते। पेड़-पौधों की भी ठीक यही दशा है। ऊँचे दरजे के पेड़ों में, जैसा कि आप देख चुके हैं, हर एक काम के लिए हमारे-आपके जैसे अंग हैं। इन्हें पृथ्वी में अंकुरित करके उसके बूँद-बूँद जल और कण-कण नमकों से आहार इकट्ठा करने को एक अंग है, तो इन अकार्बनिक वस्तुओं को हवा की कार्बोनिक ऐसिड गैस के कार्बन से मिलाकर सूर्य की किरणों की सहायता से माड़ी और शक्कर में बदलकर अपने ही लिए नहीं, वरन् सारी दुनिया के लिए आहार तैयार करने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के लिए दूसरा। इसी तरह इनकी जाति को चिरस्थाई बनाकर दूर-दूर देशों में फैलाने के लिए तीसरा अंग है। सारांश यह कि इनमें जड़, तना, पत्ती, फूल, फल और बीज होते हैं, जिनके अलग-अलग काम हैं (दे० पृष्ठ ६३२ का चित्र)। क्षुद्र जाति के जीवों की भाँति नीची कोटि के पेड़ों में भी प्रकट अंग नहीं होते। बैक्टीरिया तथा क्लैमा-इडोमोनस की भाँति के एककोष्ठी जीवों में तो आहार-विहार की सारी क्रियाएँ अति सूक्ष्म जीव-द्रव्य के बिन्दु के अन्दर ही होती हैं।

पौधे का पृथ्वी के अन्दर का भाग—'जड़' और उसके कर्त्तव्य

प्रायः सभी साधारण पौधों में कुछ भाग जमीन के अन्दर और कुछ ऊपर रहता है। जमीन के नीचे के भाग को 'जड़' कहते हैं। यह अन्दर-अन्दर दूर तक फैली रहती है (पृ० ६३२ का चित्र)। जड़ों के अंतिम भाग पर 'मूलरोम' होते हैं (दे० उक्त पृष्ठ का चित्र)। ये आसानी से दिखाई नहीं देते, सूक्ष्मदर्शक से ही देखे जा सकते हैं। जड़ों के सिरे पर दरजी की अँगूठी-जैसी एक ढकनी होती है, जिसे 'रूटकैप' या 'मूलछद' कहते हैं। यह जड़ के कोमल भाग की रक्षा करती है। मूलरोमों द्वारा जड़ें जमीन के अन्दर जल में घुले नमकों से आहार खींचती हैं। पौधे को जमीन में रोपना और उसके लिए खाद्य पदार्थों का संग्रह करना ही जड़ का मुख्य काम है। कभी-कभी जड़ें दूसरे काम भी करती हैं। इसीलिए इनमें परिवर्तन भी पाए जाते हैं। कोई-कोई जड़ें पेड़ों में गोदाम का काम देती हैं। मूली, शकरकन्द (दे० पृष्ठ ६३३ का चित्र) और शतावर की जड़ें इसी भाँति की हैं। जड़ों के और भी अनेक रूप-रूपान्तर हैं। जब हम जड़ों के संबंध में अन्य बातों पर विस्तारपूर्वक विचार करेंगे, तो इस ओर भी ध्यान देंगे।

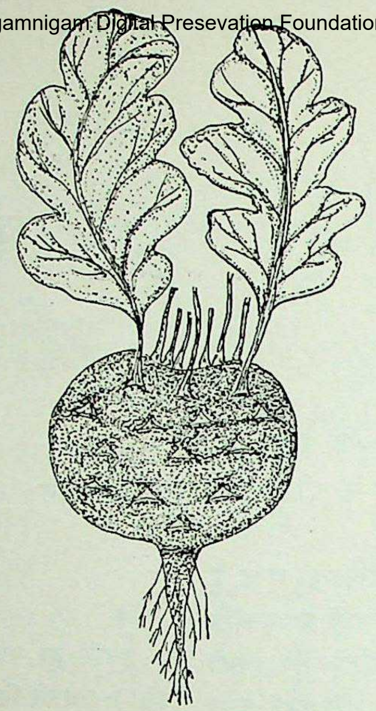

गाँठगोभी, जिसमें तना खाद्य-भांडार का काम देता है।

पौधे के पृथ्वी के ऊपर के भाग—तना, पत्ती, फूल, फल और बीज

पौधे के जमीन के ऊपर के भाग में तीन मुख्य अंग होते हैं—तना और शाखें जो कठीली और ऊपर उठी रहती हैं; पत्तियाँ, जो पतली और चपटी होती हैं और फूल, जो रंग-बिरंगे होते हैं। वास्तव में, फूल भी पत्तियों का ही

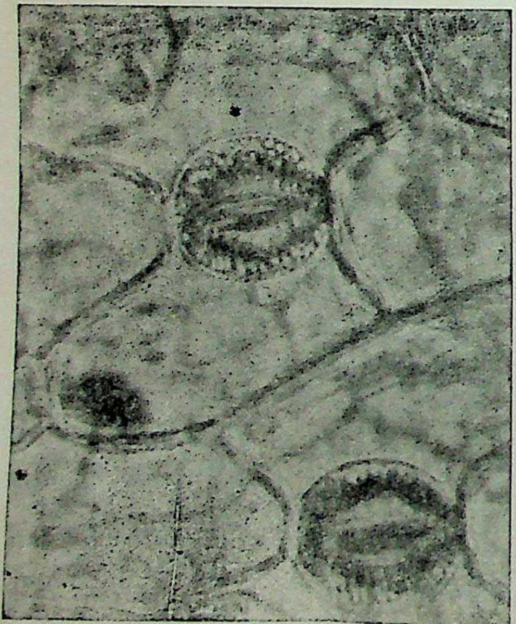

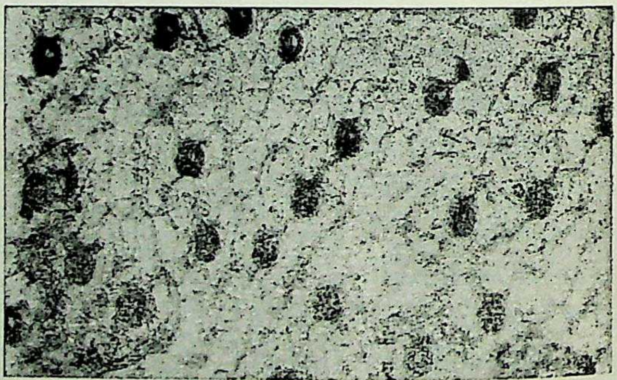

पत्तियों के रन्ध्र या स्टोमाटा। (दाहिनी ओर) सुदर्शन की पत्ती के ऊपरी पर्त्त का सूक्ष्मदर्शक से लिया गया फोटो। काले निशान स्टोमाटा हैं। इन्हीं रन्ध्रों द्वारा पत्तियों में हवा पहुँचती है और उनमें से जल बाहर निस्सारित होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि पत्तियाँ पौधे के लिए कितना महत्वपूर्ण कार्य करती हैं। (बाईं ओर) उसी पर्त्त के भाग का अधिक शक्तिशाली सूक्ष्म-दर्शक से खींचा गया फोटो।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूपान्तर है। तना और शाखें पत्तियों को धारण करती हैं और जड़ों द्वारा संचित घोलों को इनमें पहुँचाती हैं। यही इनका मुख्य काम है। इसके अलावा तने कभी-कभी अन्य काम भी करते हैं। गांठगोभी (पृष्ठ ६३४ का चित्र), अदरक और जिमीं-कन्द के तने खाद्य पदार्थों के लिए भांडार का काम देते हैं। जड़ की भाँति तने के भी अनेक भेद और रूप हैं। आगे चलकर जब हम तने के सम्बन्ध में विचार करेंगे, तब हमें बहुत-सी बातों का पता लगेगा।

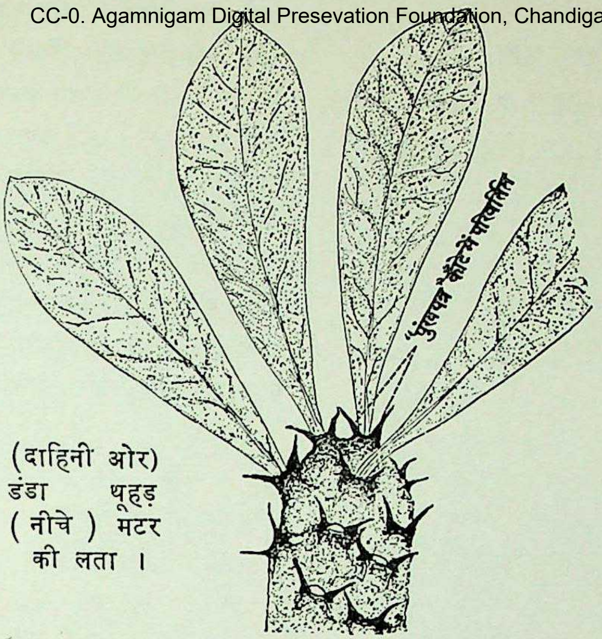

(दाहिनी ओर) डंडा थूहड़ (नीचे) मटर की लता।

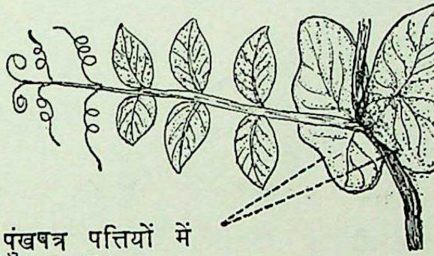

(पुंखपत्र पत्तियों में परिवर्तित)

पत्तियाँ क्या करती हैं?

पत्तियाँ पौधों में अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग हैं। ये पर्ण हरिम के द्वारा हवा की-कार्बोनिक ऐसिड गैस के कार्बन और पृथ्वी के जल से शक्कर और माड़ी बनाती हैं। पौधे के कलेवर की रचना और बाढ़ के लिए कार्बोहाइड्रेट के साथ-साथ दूसरी चीजों की भी जरूरत होती है। ये दूसरी वस्तुएँ कहाँ से आती हैं? हम सभी यह जानते हैं कि पौधों को खाद की आवश्यकता होती है। खेत बोने के पहले किसान खेत पाँसते हैं। माली भी समय-समय पर फुलवाड़ी के पौधों में खाद डालता रहता है। खाद में तरह-तरह के नमक रहते हैं। इन्हीं नमकों और कार्बोहाइड्रेटों से पौधे प्रोटीन तैयार करते हैं, जिनसे न केवल उनके शरीर ही की वृद्धि होती है, वरन् समस्त संसार के लिए मानों सामान तैयार होता है।

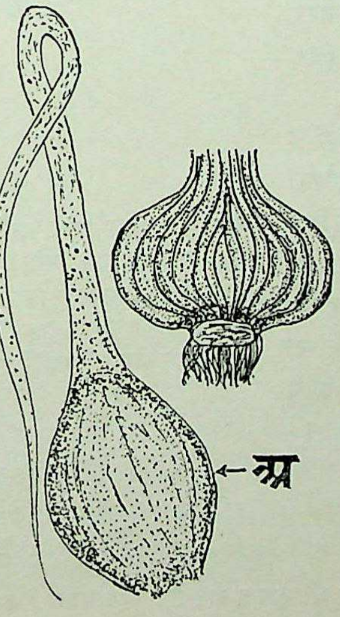

प्याज, जिसमें पत्ती का निचला भाग 'अ', गोदाम का काम देता है।

कैसी अनोखी बात है! मिट्टी में तो नमक बड़ी सूक्ष्म मात्रा में होते हैं--इतने कम कि शायद हम लोग मामूली तरीके से उनका पता भी न लगा सकें, केवल रासायनिक विश्लेषण द्वारा ही उनका पता चलता है। तब भला पौधे करोड़ों मन सामान--गेहूँ, चना, फल आदि--के लिए उपयुक्त प्रोटीन कैसे संचित कर पाते हैं? इस काम के लिए पौधों को अपने कलेवर में से होकर घड़ों पानी बाहर फेंकना पड़ता है, तब कहीं जाकर उन्हें यथेष्ट मात्रा में नमक मिलते हैं। विद्वानों ने अनुसन्धान द्वारा पता लगाया है कि एक एकड़ गेहूँ के खेत से फसल भर में लगभग ७,४२० मन पानी पौधों द्वारा हवा में जाता है। इसी प्रकार एक एल्म का पेड़, जिसमें अनुमानतः सत्तर लाख पत्तियाँ थीं और जिसकी ऊपरी-निचली सतह का क्षेत्रफल लगभग ५ एकड़ था, चमकते सूरज के प्रकाश में १२ घंटे में २०० मन पानी त्यागता था! पानी को बाहर निकालने का काम पत्तियों द्वारा ही होता है और इसी कारण से ये इतनी पतली होती हैं। पौधों में इतनी पत्तियाँ होने का यही कारण है। पत्तियों में नन्हें-नन्हें अनेक छेद ('स्टोमाटा' या 'रन्ध्र') होते हैं। इन्हें हम सूक्ष्मदर्शक से देख सकते हैं (पृ० ६३४ का निचला चित्र)। इन्हीं के द्वारा पत्तियों में हवा पहुँचती है और जल बाहर निकलता रहता है। आगे इनका अधिक परिचय आपको मिलेगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्ती के मुख्य भाग

सम्पूर्ण पत्ती के तीन भाग होते हैं—१. पत्रदल (ब्लेड), २. पत्रवृन्त (स्टाक), और आधार (बेस) (दे० पृ० ६३२ का चित्र)।

पत्तियाँ तरह-तरह की होती हैं। इनकी बनावट, अग्रक या शिखर(एपेक्स), सतह, किनारे और नाड़ीक्रम आदि के अनेक भेद हैं। किसी-किसी पत्ती में आधार के पास एक अंग होता है, जिसे पुंखपत्र (स्टिप्यूल) कहते हैं। ये दो होते हैं और आधार के अगल-बगल रहते हैं। इनके भी तरह-तरह के रूपान्तर हैं। बबूल और डंडा थूहड़ के काँटे इन्हीं के रूपान्तर हैं। मटर के पुंखपत्र पत्तियों का काम करते हैं। (दे० पृष्ठ ६३५ के ऊपरी चित्र)।

जल-त्याग, कार्बोनिक-संश्लेषण एवं पेड़ों के लिए आहार संचित करने के अलावा पत्तियाँ कभी-कभी अन्य काम भी करती हैं। नेपेंथिस नामक मांसभक्षी लता की तूँबी, जिसके संबंध में आप पढ़ चुके हैं, पत्ती ही का रूपान्तर है। प्याज में पत्ती का निचला भाग भांडार का काम देता है। प्याज का वह भाग जो खाने के काम में आता है, पत्तियाँ ही हैं (दे० पृ० ६३५ का निचला चित्र)।

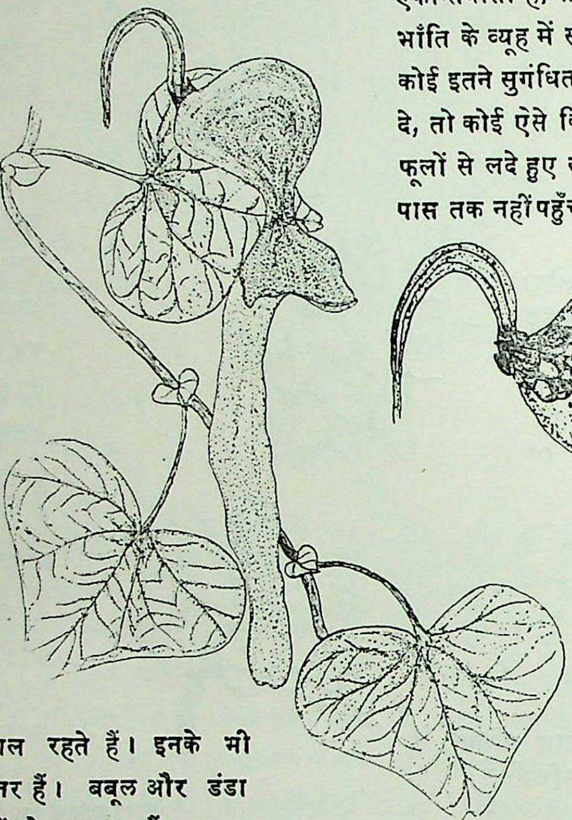

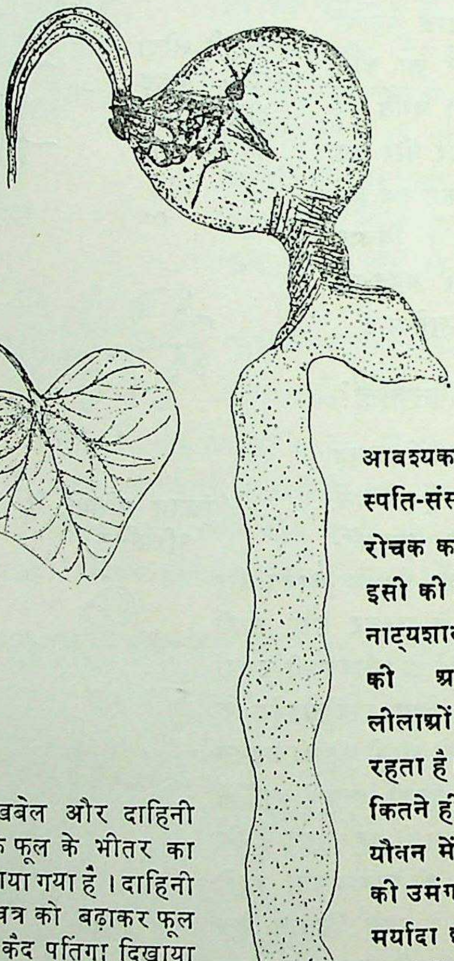

ऊपर बतखबेल और दाहिनी ओर उसके फूल के भीतर का दृश्य दिखाया गया है। दाहिनी ओर के चित्र को बढ़ाकर फूल के भीतर कैद पतिंगा दिखाया गया है।

फूल

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है फूल भी एक प्रकार से पत्ती ही का रूपान्तर है। फूलों के अनेक भेद हैं। आपने तरह-तरह के फूल देखे होंगे—लाल, पीले, नीले, गुलाबी, सफेद, रंग-बिरंगे! कोई सवन्त हैं, तो कोई अवृन्त। कोई छोटे, तो कोई बड़े। किसी की पुंखुड़ियाँ आपस में मिली हैं, तो किसी की अलग-अलग हैं, कोई घंटिकाकार हैं, तो कोई तुरही-जैसे। कोई अण्डाकार, कोई तितली जैसे। कोई एकान्तवासी हैं, तो कोई झुंड-के-झुंड एक ही अक्ष पर भाँति-भाँति के व्यूह में सज्जित। कोई सरस हैं, तो कोई नीरस। कोई इतने सुगंधित हैं कि एक ही फूल फुलवाड़ी को महका दे, तो कोई ऐसे कि जिनमें गंध छू तक नहीं गई है—करोड़ों फूलों से लदे हुए सैकड़ों पौधे होने पर भी इनकी वास हमारे पास तक नहीं पहुँचती। लेकिन अनेक भेद होने पर भी इनका ध्येय एक ही है। प्रकृति ने इनकी सृष्टि एक ही अभिप्राय से की है। फूल पौधों की सुन्दरता का ही सार नहीं, वरन् उनका एक परम आवश्यक अंग है। वनस्पति-संसार में सबसे रोचक कहानी निस्संदेह इसी की है। फूल वह नाट्यशाला है, जहाँ पौधों की अत्यन्त गोपनीय लीलाओं का अभिनय होता रहता है। इस रंगमंच पर कितने ही नट-नटी रूप-यौवन में मदमाते, मकरंद की उमंग में मदान्ध हो, मर्यादा छोड़ नाचते और किलोलें करते हैं। फूलों में दूसरों को आकर्षित करने की अद्भुत सामर्थ्य है। वसंत-ऋतु में मंद सुगंध से परिपूरित वाटिका की समीर किसके चित्त को चंचल नहीं कर देती? फूलों के अनुपम रूप-रंग पर कौन मोहित नहीं हो जाता? कमल, गुलाब, चम्पा, चमेली की कौन कहे, साधारण फूलों पर भी मनुष्य ही नहीं कीट-पतिंगे तक उन्मत्त हो झूम पड़ते हैं। कोई-कोई तो यहाँ तक उन पर आसक्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

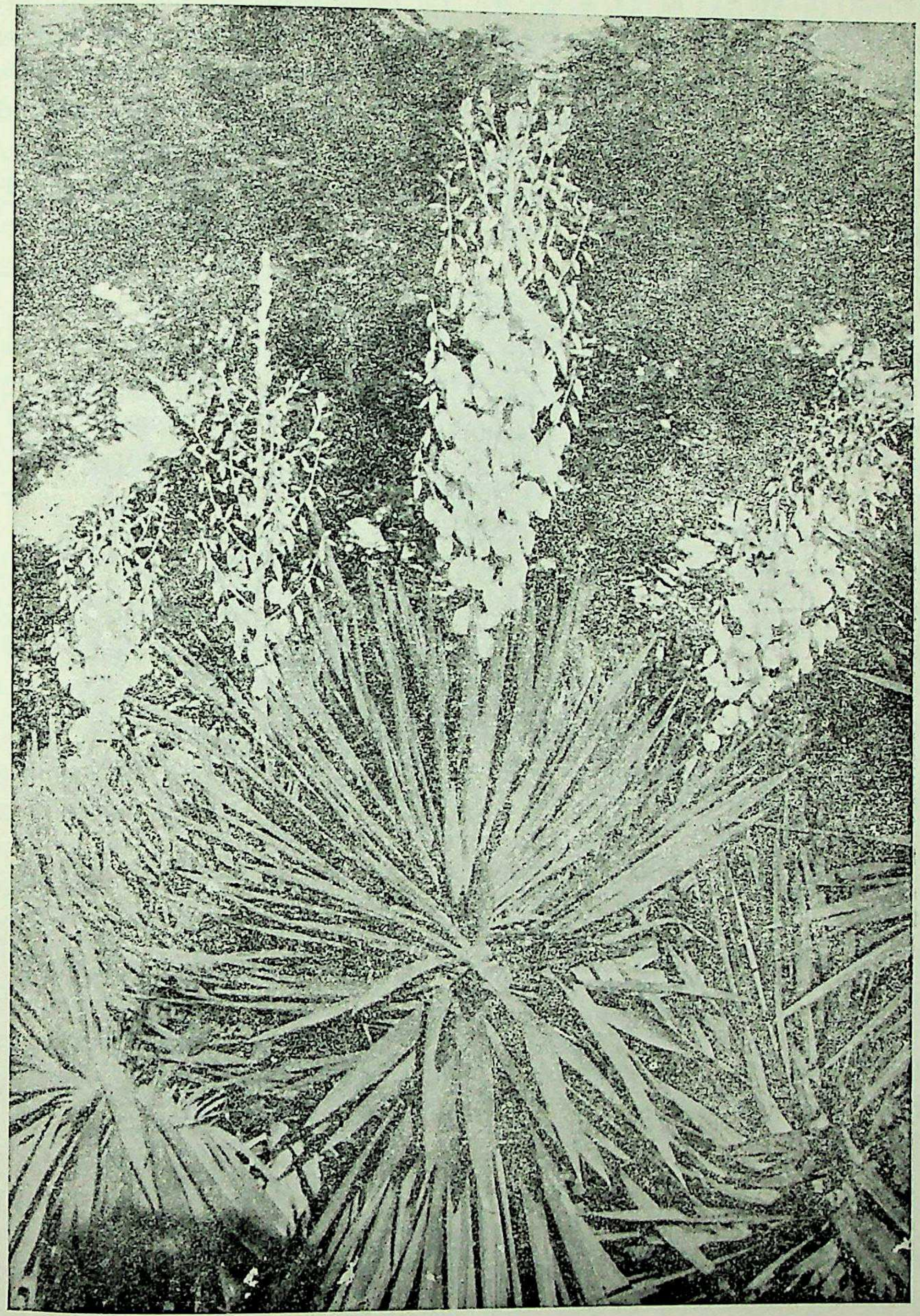

यक्का नामक पुष्पित पौधा, अपने गर्भाधान की क्रिया एक विशेष जाति के पतिंगे की सहायता से करता है

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो जाते हैं कि अनेक कष्ट पाने पर भी इन्हें घेरे रहते हैं। "भंवर न छोड़े केतकी, तीखे कंटक जान !" कभी-कभी तो ये अपनी जान तक की परवाह नहीं करते। बतखबेल (एरिस्टोलोकिया) (दे० पृष्ठ ६३६ का चित्र) के फूल में जाकर तो पतिंगे ऐसे फँस जाते हैं कि एक बार फूल के अंदर प्रवेश करते ही वे घण्टों तक के लिए कैदी बन जाते हैं, और फिर चाहे जितनी उछल-कूद वे करें और मचलें, कई पहर तक वहाँ से निकल ही नहीं पाते। लेकिन फिर भी इस अजीब आचरण से वे बाज नहीं आते ! क्योंकि एक फूल से निकलते ही पुनः दूसरे में जा घुसते हैं। मक्खी, तितली, भुनगे आदि को भी आपने फूलों को घेरे देखा होगा। कहाँ तक कहें, इन फूलों में ऐसा जादू है कि घोंघे तक इनके पीछे घोंघे बने फिरते हैं ! आप समझते होंगे कि हमारी तरह शायद अन्य जीव भी यहाँ सैर करने आते होंगे और विवश होकर फूलों के रूप-रंग में यों ही फंस जाते होंगे। परन्तु ऐसा नहीं है। वास्तव में इन बेचारों को इतनी फुरसत कहाँ, जो फूलों पर खेलने आएँ ? ये तो दिन-भर काम करनेवाले परिश्रमी जीव हैं। ये फूलों के पास जी बहलाने नहीं आते, बल्कि इसलिए कि इनको यहाँ भोजन मिलता है। यह फूलों में संचित मधु और मकरंद ही का लोभ है कि जिसके पीछे ये यहाँ आकर मँडराते हैं।

अब आपके सामने दूसरा ही प्रश्न उपस्थित हो गया। आप शायद और भी भ्रम में पड़े होंगे। माना कि कीड़े-मकोड़े फूलों पर इसलिए आते हैं कि यहां इनको भोजन मिलता है, परन्तु पौधे को इससे क्या लाभ ? यह मधु और मकरंद की वर्षा किसलिए ? क्या सात पर्त के अन्दर ग्रन्थियों में सुरक्षित यह मधु निष्प्रयोजन चोर और लुटेरों के मजा उड़ाने के लिए ही है ? हम या आप कोई भी इस राय से सहमत न होंगे। जिस पौधे की जड़ें धरती के रत्ती-रत्ती नमक और पाताल के बूंद-बूंद जल से खाद्य पदार्थों को इकट्ठा करने में इतनी कुशल हों; जिसकी पत्तियाँ वायुमंडल की विषैली कार्बन डाइ-ऑक्साइड से शक्कर और निशास्ता या माड़ी जैसी अमूल्य वस्तुएँ बनाती हैं; उसी पौधे के लिए यह धारणा करना कि इनमें मधु और मकरंद केवल इसीलिए हैं कि दूसरे निकम्मे जीव मौज उड़ाएँ और पौधे को इनसे कोई लाभ न हो, नितान्त असम्भव है। इनमें हो-न-हो कोई-न-कोई रहस्य है। इसमें अवश्य ही पौधों का कोई-न-कोई बड़ा भारी स्वार्थ होगा। यथार्थ में बात भी यही है और फूलों का रूप, रंग, मधु, पराग, आदि सारा माया-जाल इसी स्वार्थ-साधन के हेतु है। फूलों में पौधों की जननेन्द्रियाँ रहती हैं। इनमें भी नर और मादा होते हैं और जब तक इनका मेल नहीं होता, बीज पैदा नहीं हो सकते। ये जननेन्द्रियां अपना कर्त्तव्य दूसरों की सहायता के बिना नहीं कर सकतीं। इसीलिए इन्हें औरों को रिझा-फुसलाकर तथा किसी-न-किसी तरह फँसाकर अपना काम निकालना पड़ता है। चेतन साधनों की कौन कहे, इस काम को वे जल और पवन जैसे जड़ पदार्थों से भी करा लेते हैं।

फूल और पतिंगों का एक पारस्परिक व्यवहार है। फूलों से पतिंगों को मधु और पराग मिलते हैं और इसके बदले में पतिंगे इनके नर को मादा से मिलाते हैं। कोई-कोई पौधे तो पतिंगों के यहाँ तक अधीन हो गए हैं कि उनमें बिना विशेष जाति के पतिंगे के गर्भाधान ही नहीं हो सकता। जहाँ इस विशेष जाति के पतिंगे नहीं होते, वहाँ ऐसे पौधों में बीज ही नहीं उत्पन्न हो सकते। 'यक्का' इसी प्रकार का एक अनूठा पौधा है। इसमें सैकड़ों मनोहर रुपहले अण्डाकार पुष्प होते हैं (दे० पृ० ६३७ का चित्र)। परन्तु ये सब सुंदर पुष्प किस काम के ? जब तक 'यक्का-मॉथ' नामक पतिंगा इनमें परागण या सेचन (पॉलिनेशन) करने को न हो, ये सारे-के-सारे पुष्प मुरझाकर गिर जाते हैं। इनका सारा-का-सारा पराग धूल की भांति झड़कर नष्ट हो जाता है। पास ही उपस्थित 'स्त्रीकेसर' या योनिनलिका (कार्पेल) तक उसका एक कण भी नहीं पहुँच पाता। इसीलिए इसके सब-के-सब फूल सूखकर बिना बीज उत्पन्न किए ही नष्ट हो जाते हैं। कैसी विचित्र यह लीला है ! आगे चलकर जब इस विषय पर

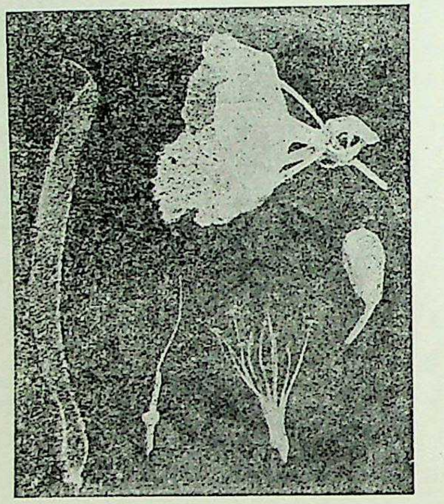

(५) (४) (३) (२) (१)
गुलमोहर के पुष्प के विभिन्न भाग। (१) वहिरवास से सुरक्षित पुष्प। (२) पूर्णतया खिला फूल—दल चक्र में ५ दल हैं। (३) वहिरवास और दलचक्र निकाल दिए गए हैं। पुष्पेंद्रिय में १० पुंकेसर हैं। (४) स्त्रीकेसर या योनिनलिका (५) फल।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हम विस्तारपूर्वक विचार करेंगे, तब आपको तत्संबंधी और भी कितनी ही रहस्यमय बातों का पता लगेगा ।

फूल के मुख्य भाग

साधारण फूल में चार भाग होते हैं। गुलमोहर (पृष्ठ ६३८ का चित्र), कोकाबेली (इसी पृष्ठ का चित्र), अलामंडा (चित्र पृ० ६४०), गुलाब या अन्य किसी पूर्ण फूल को लेकर हम इसकी जाँच कर सकते हैं। ऐसे फूल में सबसे बाहर 'वहरिवास' या ब्रह्मदल (केलिक्स) होता है (चित्र पृ० ६३२)। इसमें कई 'पुटपत्र' (सिपेल) होते हैं, जो अलग-अलग (चित्र पृ० ६३९) या एक में जुड़े (चित्र पृ० ६४०) होते हैं। इनकी अनुहार पत्तियों से बहुत मिलती-जुलती होती है। पत्तियों की तरह इनका रंग भी प्रायः हरा ही होता है, परन्तु आकार में 'पुटपत्र' पत्तियों से छोटे होते हैं। जब फूल कलिका के रूप में होता है, तब यही 'पुटपत्र' फूल के भीतरी कोमल अंगों की रक्षा करते हैं। वहिरवास के अन्दर 'दलचक्र' (कोरोला) होता है (दे० पृ० ६३८ तथा पृ० ६३२ के चित्र)। इसमें भी वहिरवास की भाँति 'दल' या पँखुड़ी होती हैं, जो अलग-अलग (पृ० ६३९ के चित्र) या आपस में जुड़ी (चित्र पृ० ६४०) होती हैं। दलपत्र पुटपत्र से बड़े और कोमल होते हैं। फूल का रूप, रंग, बनावट आदि इन्हीं पर निर्भर है। साधारण लोग दलचक्र को ही फूल समझते हैं। दल-चक्र के अन्दर और उससे कुछ ऊपर 'पुष्पेन्द्रिय' (एण्ड्रोशियम) होती है (चित्र पृ० ६३२ एवं ६३८)। इसमें कई पुंकेसर (स्टेमेंस) होते हैं। पुंकेसर में लिंगसूत्र (फाइलामेंट) और परागकोश (ऐंथर), ये दो भाग होते हैं। कोश के अन्दर एक धूल-सी वस्तु होती है, जिसे पराग (पोलेन) कहते हैं। यही पुष्प का नर-अंश है। फूल के बीचोबीच फूल का मादा भाग होता है। इसे 'गर्भकेसर' (पिस्टिल) कहते हैं। इसमें एक या कई 'योनिनलिकाएँ' (कार्पल) होती हैं (चित्र पृ० ६३२ एवं ६३८)। योनिनलिका के तीन हिस्से होते हैं--सबसे नीचे 'गर्भाशय' (ओवरी),

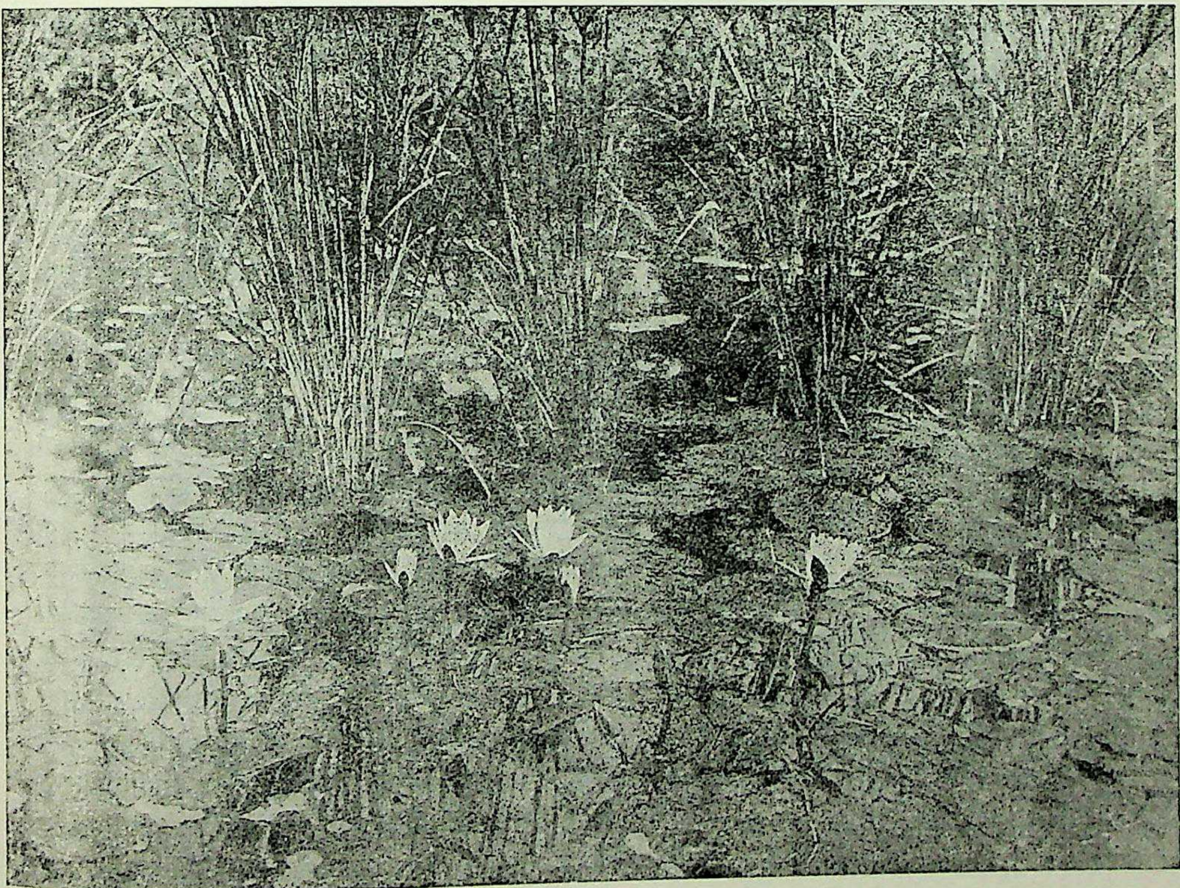

हमारे तालाबों और पोखरों में सुन्दर छटा निखराए रहनेवाले 'कोकाबेली' के फूल के पुटपत्र अलग-अलग होते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

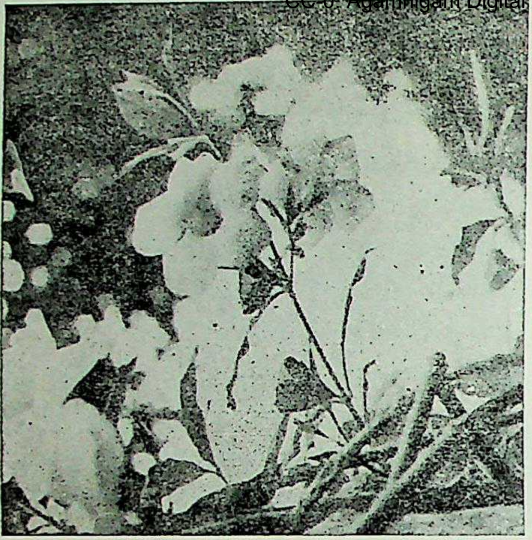

अलामंडा नामक पुष्प, जिसमें पंखुड़ियाँ (या पुटपत्र) आपस में जुड़ी हुई होती हैं।

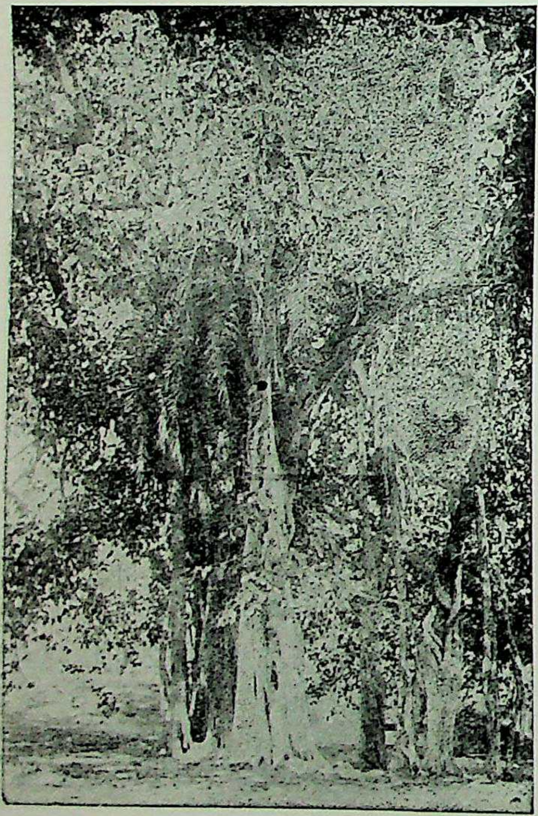

खजूर पर उगा हुआ बरगद। सम्भवतः किसी चिड़िया द्वारा इस खजूर पर जो बीज कभी रोपा गया था, वही आज विशाल बरगद का रूप धारण कर उसके इस आश्रयदाता को दबोचे हुए है!

उसके ऊपर एक महीन सूत-सी पोली डंडी 'गर्भसूत्र' (स्टाइल) और सबसे ऊपर कुछ उभरा हुआ भाग 'योनिछत्र' (स्टिग्मा) (दे० चित्र पृ० ६३२ तथा ६३८)। गर्भाशय में नन्हें-नन्हें कण या 'रजोविन्दु' (ओव्यूल) होते हैं। रजोविन्दु गर्भाशय में 'गर्भ-झिल्ली' (प्लेसेंटा) पर होते हैं।

सम्पूर्ण फूल की रचना पर विचार करने से हमें भली भाँति ज्ञात हो गया कि उसमें नर और मादा दोनों ही अंग हैं। किसी-किसी फूल में नर और मादा के अंग पृथक्-पृथक् फूलों में होते हैं और कभी-कभी तो ये पृथक्-पृथक् पौधों में भी होते हैं। जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, नर और मादा अंशों के मेल से ही बीज उत्पन्न होते हैं, अन्यथा नहीं। एक ओर परागकोश के अन्दर हजारों नन्हें-नन्हें परागकण हैं और दूसरी ओर गर्भाशय में सुरक्षित गर्भ-झिल्ली पर अनेक रजोविन्दु (देखो पृष्ठ ६३२ का चित्र)। बीज-उत्पत्ति के लिए इन दोनों का संयोग होना आवश्यक है। इसीलिए परागकणों को योनिछत्र तक पहुँचना चाहिए। इस क्रिया को परागण या सेचन (पोलिनेशन) कहते हैं और पानी, हवा, पतिंगे अथवा अन्य जीव इसके मुख्य साधन हैं। इसीलिए फूलों को पतिंगों को आकर्षित करना पड़ता है। इसी अभिप्राय से फूल पतिंगों को मधु और कभी-कभी पराग तक देते हैं।

फल, बीज और प्रसारण

योनिछत्र पर पहुँचने पर परागकण में परिवर्तन होने लगते हैं और अन्त में नर एवं मादा अंशों का मेल हो जाता है, जिसे गर्भाधान (फर्टिलाइजेशन) कहते हैं। तदनंतर गर्भ-पिण्ड की रचना होती है। यही समय पाकर बीज हो जाता है। अब गर्भाशय कुछ बढ़कर मोटा हो जाता है। यही पकने पर फल बन जाता है। फल में केवल बीज ही नहीं होता, वरन् बीज को दूर-दूर देशों में फैलाने का साधन भी। आप लोगों ने कभी-कभी बरगद या पीपल को आम, जामुन, खजूर (देखो इसी पृष्ठ का निचला चित्र) या अन्य पेड़ पर अथवा मकान की छतों व दीवालों पर उगा हुआ देखा होगा। इनके बीज यहाँ कैसे पहुँचे? अगर आप विचार करें, तो पता लग जायगा कि ये बीज यहाँ चिड़ियों द्वारा पहुँचे। इन पेड़ों के पके फलों को चिड़ियाँ बड़े चाव से खाती हैं, परन्तु इनके बीज को हजम नहीं कर पातीं। इसलिए इनकी बीट के साथ बीज जैसे-के-तैसे बाहर निकल आते हैं, और जहाँ कहीं इनका यह बीट पहुँचता है, उसमें इन पेड़ों के सैकड़ों बीज सम्मिलित रहते हैं, जो अनुकूल परिस्थिति पाकर उग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आते हैं। पृष्ठ ६४० के चित्र में आप जो बरगद का पेड़ देखते हैं, वह आज से कई वर्ष पहले संभवतः इन्हीं चिड़ियों द्वारा खजूर के पेड़ पर बीजरूप में आया था। अब इसने बढ़कर विशाल रूप धारण कर लिया है, और बेचारे खजूर को, जो इसका आश्रयदाता है, यह आज मौत के घाट उतारने पर तत्पर है!

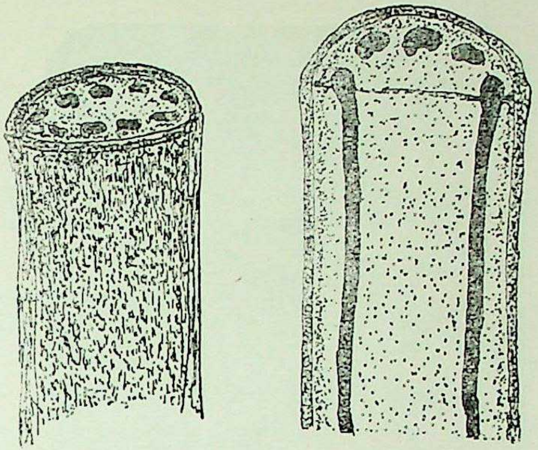

पेड़ की टहनी। (दाहिनी ओर) वही बीच से दो फांक करके दिखाई गई है। काली लकीरें नसें हैं।

चिड़ियों के अतिरिक्त अन्य प्रकार से भी पृथ्वी पर फल और बीजों का प्रसारण होता है। कितने ही फलों को लोग खाने के लिए एक से दूसरी जगह ले जाते हैं और इस प्रकार उनके बीजों को दूर-दूर देशों में पहुँचाते हैं। कितने ही फल और बीज हवा में उड़ते रहते हैं। आपने फागुन और चैत में सेमल के बीज, जिन पर रुई-से रोएँ होते हैं, हवा में हजारों की संख्या में उड़ते देखे होंगे। ये इसी प्रकार मीलों चले जाते हैं। कितने ही फल नदियों और समुद्रों में तैरते-तैरते कहाँ-से-कहाँ जा पहुँचते हैं। कितने बीज जानवरों के शरीर और हमारे कपड़ों में चिपटकर दूर-दूर तक पहुँच जाया करते हैं।

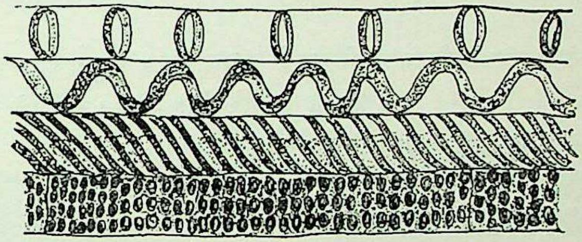

एक नस के अंदर की चित्रकारी, जिसे हम सूक्ष्मदर्शक द्वारा देख सकते हैं।

पौधों की अंग-रचना पर विचार करने से हमें पता लगता है कि इनके भिन्न-भिन्न अंग अलग-अलग काम करते हैं, परन्तु सबका लक्ष्य एक ही है। इन सबका एक ही अभिप्राय, एक ही ध्येय है। अपने जीवन-संग्राम में पौधे की सफलता उसके आकार और सौन्दर्य पर निर्भर नहीं, वरन् उसकी सन्तानोत्पादन की शक्ति और प्रसारण की योग्यता पर ही निर्भर है। इसी लक्ष्य-साधन की पूर्ति में पौधे के सभी अंग हाथ बटाते हैं—जड़ पृथ्वी में पौधे का रोपण करके और पाताल के जल और खाद्य पदार्थों का संग्रह करके तथा पौधे के अन्य अंगों को धारण करके; पत्तियाँ जड़ों द्वारा संचित घोलों और वायुमंडल की कार्बन् से, शक्कर; और निशास्ता की रचना करके; फूल बीज उत्पन्न करके; और फल उनका दूर-दूर देशों में प्रसारण करके। परन्तु पौधे के ये प्रत्येक अंग अपने-अपने कर्त्तव्यों का किस प्रकार पालन करते हैं? जड़ें पृथ्वी के जर्रे-जर्रे से आहार और जल की योजना कैसे करती हैं? इनके सुकोमल सूत्रवत् रोएं चट्टानों और पत्थरों तक से खाद्य रसों को किस तरह खींचते हैं? तने में से होकर जड़ों द्वारा संगृहीत पदार्थ पत्तियों तक किस प्रकार पहुँच जाते हैं? सैकड़ों फीट नीचे की पृथ्वी के गर्भ की वस्तुएँ गगनचुंबी पेड़ों की चोटी तक पत्ती-पत्ती में क्योंकर पहुँच पाती हैं? वह कौन-सा यंत्र है, जिसके द्वारा यह क्रिया होती है? वह कौन-सी शक्ति है, जो इसे चलाती है? पत्तियाँ किस प्रकार वायु के कार्बन का उपभोग करती हैं? वे स्टार्च और शक्कर जैसे अमूल्य पदार्थों की रचना किस प्रकार करती हैं? वे कौन-सी रासायनिक क्रियाएँ हैं,

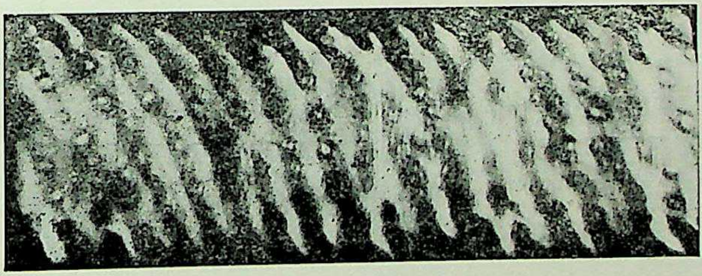

स्पायरोगायरा की अद्भुत झाँकी। यह चित्र सूक्ष्मदर्शक द्वारा लिया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

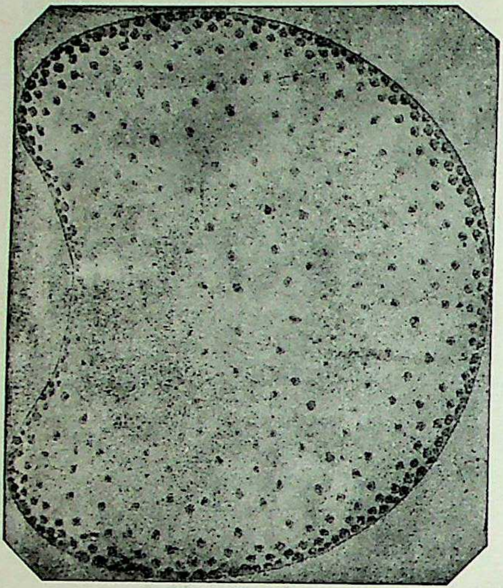

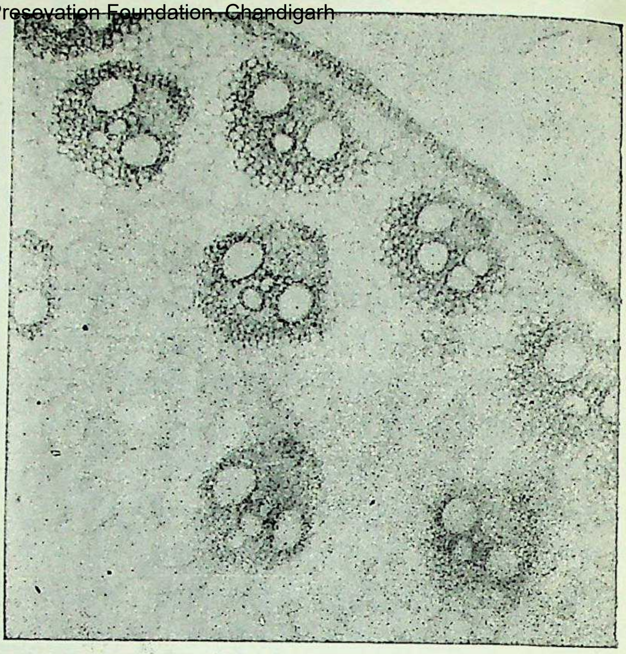

(बाईं ओर) मक्का की शाख के आड़े कत्तल का पाँच गुना बड़ा फोटो। काले निशान नसें हैं। (दाहिनी ओर) उसी के एक भाग का परिवर्द्धित फोटो। नसों की कोशिकाएँ दिखाई दे रही हैं।

जिनसे इन वस्तुओं का संश्लेषण होता है? वे कौन-से कारखाने हैं, जहाँ ये वस्तुएँ बनती हैं? इत्यादि-इत्यादि, अनेक प्रश्न हैं, जिनको समझने के लिए हमें पौधों की आन्तरिक रचना पर विचार करना पड़ेगा। केवल इनकी अंग-व्यवस्था जान लेने से ही हम सारी बातों के रहस्य का यथेष्ट ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते।

यदि हम अपने किसी भी अंग को ध्यान से देखें, तो हमें तुरन्त पता लग जायगा कि वह बाहर-भीतर एक-सा नहीं है। उसमें कई पर्तें हैं, जिनकी आकृति में बड़ा अन्तर ह। अपने हाथ ही को ध्यान देकर देखिए। सबसे ऊपर घास की तरह सहस्रों रोये हैं; फिर खाल है, जिसमें कई पर्त हैं; उसके नीचे मांस, रुधिर, नाड़ी, मज्जा, हड्डी आदि हैं। यही बात आपके अन्य अंगों के सम्बन्ध में भी है। इसी प्रकार पौधे के अंगों की भी रचना है। मिट्टी या पत्थर के ढेले की भाँति ये भीतर बाहर एक-से नहीं होते। इनकी रचना में बड़ा अन्तर होता है। इनमें भी कई पर्त होते हैं। इसकी जाँच करने के लिए किसी पौधे की टहनी को ले

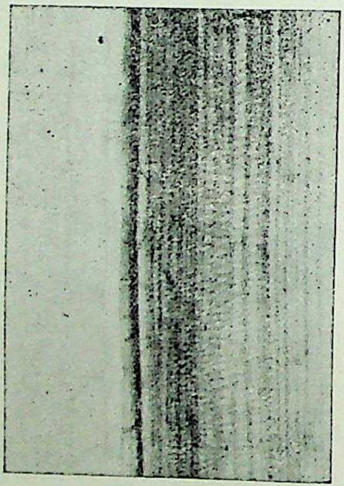

मक्का की नस के तंतु।

लीजिए। आप इसमें स्पष्ट देख सकते हैं कि सबसे ऊपर छाल, फिर अंतर-छाल, उसके अन्दर गूदा और गूदे के बीच-बीच में कई नसें हैं। परन्तु क्या इतना ही जान कर आप सन्तोष कर लेंगे? अभी पिछले प्रकरण में आपने देखा है कि रेशम के तागे से भी महीन स्पायरोगायरा जब सूक्ष्मदर्शक से देखा जाता है, तो अपूर्व छटा दिखाता है। इसकी रचना के विषय में सूक्ष्मदर्शक द्वारा ऐसी बातों का पता लगता है, जिनकी हम स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकते थे। वास्तव में सूक्ष्मदर्शक यंत्र की सहायता के बिना हमारी आँखें पौधे के प्रत्येक अंग का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने में असमर्थ हैं। हमें पौधे की जीवनी और रहस्य, उसकी अनेक क्रियाएँ, उसके अंग-अंग के कर्त्तव्य, इन अंगों का एक-दूसरे से एवं वाह्य जगत् से संबंध तथा उसका उद्भव, नाश, विकास आदि समझने के लिए उसके अंग-अंग की रचना का हाल जानना आवश्यक है। इसलिए हमें पौधे के रेशे-रेशे की जाँच सूक्ष्मदर्शक की सहायता से करनी होगी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जीवन का मूल आधार :: जीव-द्रव्य और उसे धारण करनेवाली कोशिकाएँ

पिछले अध्याय में पौधों की अंग-रचना का अध्ययन करते समय यह समस्या हमारे सामने आ खड़ी हुई थी कि केवल पौधों की ऊपरी रचना की जाँच करने ही से हम उसका पूरा रहस्य नहीं जान सकते। इसके लिए हमें सूक्ष्मदर्शक की सहायता लेकर और भी गहरे पैठना होगा। आइए, देखें सूक्ष्मदर्शक इस संबंध में क्या-क्या अद्भुत रहस्य हमारे सामने प्रकट करता है।

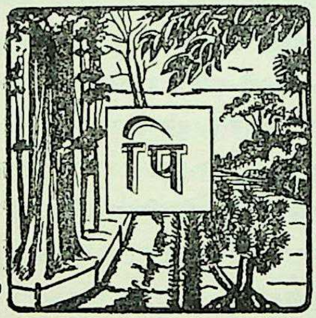

पिछले खंड में यह उल्लेख किया जा चुका है कि सजीव सृष्टि की सारी लीलाओं का केंद्र 'जीव-द्रव्य' ही है। प्रसिद्ध तत्त्वज्ञानी हक्सले का कथन है कि जीव-द्रव्य (प्रोटोप्लाज्म) ही समस्त जीवन का भौतिक आधार है। इस बात की यथार्थता की जानकारी आपको 'जन्तु-जगत्' विभाग के तत्संबंधी प्रकरण में हो ही चुकी है। वहाँ यह बताया जा चुका है कि जीव-द्रव्य में सजीवता के सारे गुण हैं। उसमें जीवधारियों की सारी प्रधानता है। उसी में उनकी सारी लीलाओं का रहस्य है। यही वह पदार्थ है, जो घटता-बढ़ता है। यही वह वस्तु है, जो उत्तेजित होती है। यही धरती के बूंद-बूंद जल और कण-कण नमकों से खाद्यरसों का शोषण करता है। यही उनको परिपक्व कर बरतने योग्य बनानेवाला तथा पचानेवाला और पचे भोजन से अंगों की रचना करनेवाला है। इसी से श्वास चलता है। इसी से वृद्धि और उत्पत्ति होती है। सारांश यह कि जीवन-संबंधी सारी विशेषताएँ इसी विलक्षण वस्तु के कारण हैं। वस्तुतः जीव-द्रव्य और जीवन ये दोनों परस्पर अभिन्न हैं। यह जीव-द्रव्य अति सूक्ष्म अणुवीक्षणीय एककोष्ठी बैक्टीरिया, क्लैमाइडोमोनस तथा अमीबा से लेकर अति विशाल आम, जामुन अथवा हाथी, ह्वेल तथा स्वयं मनुष्य तक सारी सजीव सृष्टि में एक ही रूप से विद्यमान है (दे० इसी पृष्ठ का चित्र)। यही कारण है कि जीवों में अनेक विभिन्नताएँ होते हुए भी उनके सारे प्रधान गुण एक ही हैं। यही उनकी एकता का सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है। यह जीव-द्रव्य क्या है, आइए वनस्पति-विज्ञान की दृष्टि से इसकी जाँच करें।

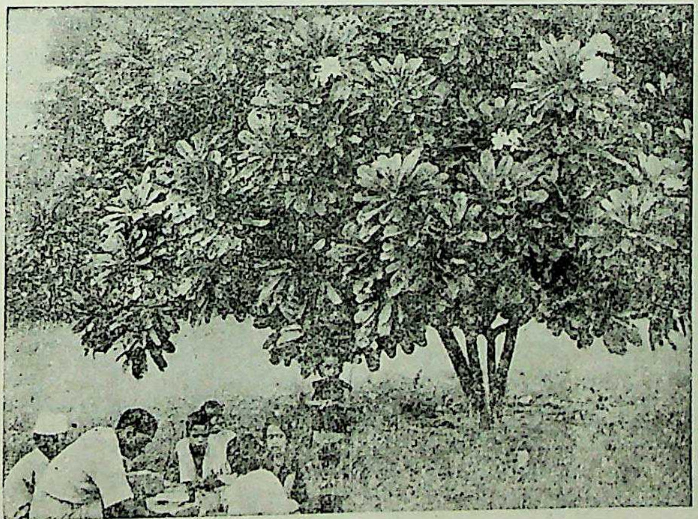

चित्र में दिखाई दे रहा गुलचीनी वृक्ष, उसके नीचे उगी हुई दूब और समीप ही पढ़ने में व्यस्त व्यक्ति आदि सभी की रचना जीव-द्रव्य द्वारा हुई है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

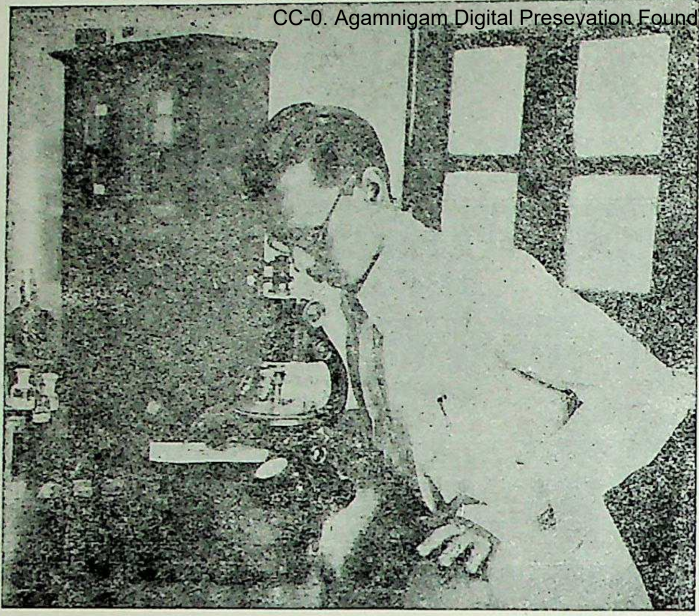

सूक्ष्मदर्शक यंत्र, जिसके आविष्कार से विज्ञान को दिव्य दृष्टि मिल गई है और अति सूक्ष्म जीव-सृष्टि का भी प्रत्यक्ष दर्शन करना संभव हो गया है।

जीव-द्रव्य में प्रायः प्रतिशत ९० भाग पानी होता है और शेष प्रोटीन आदि पाया जाता है। कहना अनावश्यक है कि जीवन की क्रियाओं के लिए पानी बड़ी जरूरी चीज है।

स्वाभाविक दशा में जीव-द्रव्य रंगहीन, पारदर्शी, अर्धद्रव, चिपचिपा और लसलसा होता है। इसमें ग्लिसेरीन का-सा गाढ़ापन होता है। अत्यन्त शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शक से देखने पर यह दरदरा जान पड़ता है। इसमें संकोचन, संसक्ति, लचकीलापन और तनाव होता है। इसका आसानी से थक्का हो जाता है। यह प्रतिक्रियाशील पदार्थ है, जो आम तौर पर २° श० से लेकर ३५° श० तक के ताप में सजीव रहता है। कभी-कभी यह इससे अधिक ताप में भी जिंदा रहता है। किसी-किसी स्थान में गंधक के चश्मों के पानी का ताप ३५° श० से भी अधिक होता है, लेकिन फिर भी उसमें अनेक कीटाणु जीवित रहते पाए गए हैं।

जीव-द्रव्य के भौतिक और रासायनिक गुण

जीव-द्रव्य की जाँच के लिए हमें सूक्ष्मदर्शक (इसी पृष्ठ का चित्र) की शरण लेनी पड़ती है। इस यंत्र से हम छोटी वस्तुएँ बढ़ाकर देख सकते हैं। हम अपने शरीर के बालों को लट्ठे-जैसे, रेत के कणों को क्रिकेट की गेंद या कैथे सरीखे या घटा-बढ़ाकर इससे भी बड़े देख सकते हैं। इस यंत्र से जीव-द्रव्य के बारे में बहुतेरी अचरजभरी बातें ज्ञात हुई हैं।

विश्लेषण से पता चलता है कि जीव-द्रव्य में कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सिजन, गंधक और प्रायः फास्फोरस होता है। ऑक्सिजन और हाइड्रोजन इसमें उसी मात्रा में होते हैं, जिसमें कि वे पानी में होते हैं।

संभवतः जीव-द्रव्य एक कलोदक्रम (कोलाइडल सिस्टम) है। कलोदावस्था की वस्तुओं के यथार्थ महत्व को समझने के लिए वास्तविक विलयन और कलोद-वितरण (कोलाइडल डिस्पर्शन) के भेद को जानना आवश्यक है।

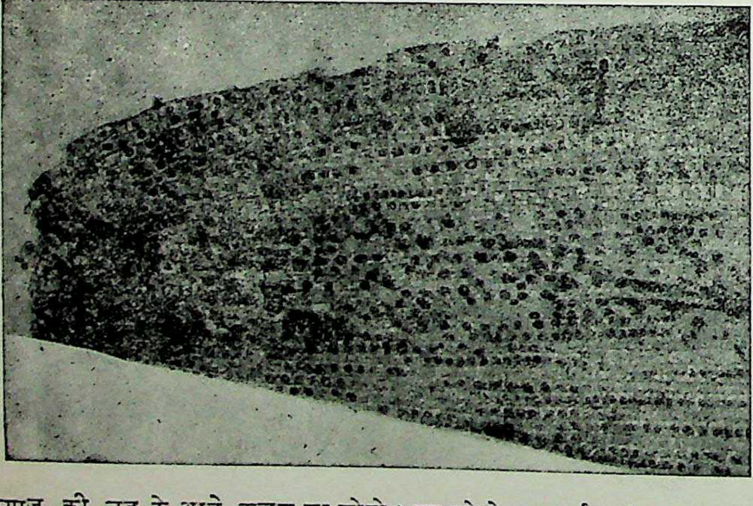

प्याज की जड़ के आड़े कत्तल का फोटो। यह फोटो सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा परिवर्द्धित करके खींचा गया है। इसमें जो अनेक नन्हें-नन्हें भाग दिखाई दे रहे हैं, वही इसकी विविध कोशिकाएँ हैं।

यदि हम पानी में थोड़ी-सी शक्कर या नमक डालकर हिला दें, तो ये चीजें पानी में मिल जायँगी और इनका घोल तैयार हो जायगा। नमक और शकर के कण अत्यन्त छोटे होते हैं और पानी में डालने से वे घुल-मिल जाते हैं। यह यथार्थ घोल है। पर अगर शक्कर या नमक के बजाय शुद्ध बालू या रेत लें और उसे पानी में डालकर हम घोलना चाहें, तो सफल नहीं होंगे। बालू के कण पानी में घुलेंगे नहीं; हाँ, ये कुछ देर तक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पानी में अवलम्बित रहेंगे । इस मिश्रण को यदि हम थोड़ी देर के लिए एक ओर रख दें, तो बालू नीचे बैठ जायगी और पानी साफ हो जाएगा । अब अगर हम रेत के बजाय अत्यन्त महीन पिसी चिकनी मिट्टी ले लें और उसको पानी में डालकर घोल तैयार करें, तो पानी बराबर गँदला रहेगा और उसमें चिकनी मिट्टी के कुछ-न-कुछ कण बराबर अवलम्बित रहेंगे । यही कलोद-वितरण है । वास्तव में न रेत ही पानी में घुलनशील है और न चिकनी मिट्टी ही, परन्तु रेत के कण बड़े होते हैं, इसलिए वे पानी में थोड़ी ही देर तक अवलम्बित रहते हैं, और चिकनी मिट्टी के कण छोटे, इसलिए वे बराबर अवलम्बित रह सकते हैं । अन्य वस्तुओं के भी ऐसे अवलम्ब-घोल बन सकते हैं । कलोदावस्था को प्राप्त वस्तुओं के कण बहुत छोटे होते हैं, परन्तु फिर भी वे इतने छोटे नहीं होते, जितने कि यथार्थ घुलनशील वस्तुओं के ।

कणों के छोटा होने के कारण कलोदावस्था में वितरित वस्तुओं की मात्रा थोड़ी होने पर भी जिस वस्तु में वे अवलम्बित रहते हैं, उससे प्रतिक्रियाओं के लिए बहुत बड़ा पृष्ठ-तल मिल जाता है। इसलिए शोषण (एब्सार्पशन) तथा अधिशोषण (एड्सार्पशन) जैसी क्रियाओं के लिए सुगमता हो जाती है । कलोदों के अनेक उदाहरण हैं । लुवाब, अंडे की सफेदी और लेई ऐसी ही वस्तुएँ हैं ।

ठोस, द्रव और गैस तीनों ही प्रकार की वस्तुएँ कलोदावस्था में हो सकती हैं । धुआं एक प्रकार का कलोद है, जिसमें एक ठोस पदार्थ (कार्बन) दूसरे गैस पदार्थ (वायु) में अवलम्बित है । बादल एक दूसरी भाँति का कलोद है, जिसमें द्रव पदार्थ (पानी) गैस (वायु) में अवलम्बित है । रूबी ग्लास एक अन्य भाँति का कलोद है, जिसमें एक ठोस पदार्थ दूसरे ठोस पदार्थ में अवलम्बित है । यह सब एक विशेष प्रकार के कलोद हैं, जिन्हें अवलम्ब-घोल (सस्पेंसाइड) कहते हैं । इनकी विशेष प्रधानता यह है कि इस अवस्था को प्राप्त वस्तुओं के कण विद्युत्-संचारित रहते हैं ।

अगर हम पानी में नारियल या रेंडी का तेल

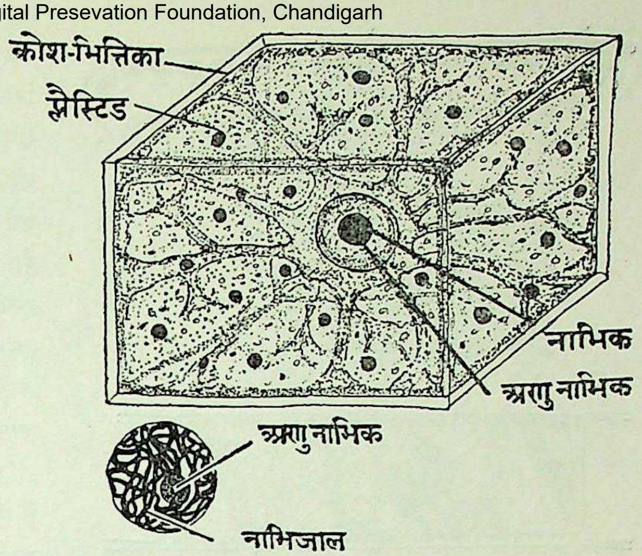

एक आदर्श कोशिका की रचना । प्रत्येक कोशिका मानो एक वर्गाकार संदूक-सरीखी होती है । नीचे 'नाभिक' का एक परिवर्द्धित चित्र दिया गया है, जिसमें अणुनाभिक और नाभिजाल दिखाए गए हैं ।

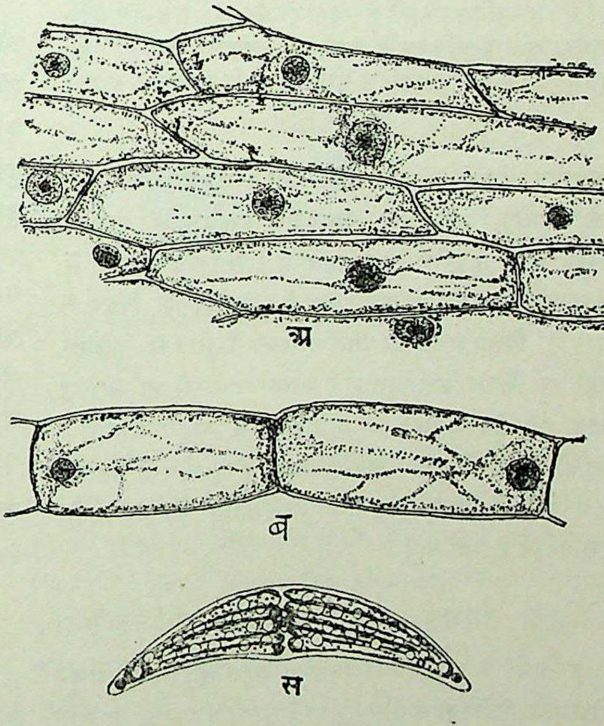

सूक्ष्मदर्शक द्वारा दिखाई पड़नेवाली कोशिकाओं की झाँकी । अ—प्याज के भीतरी पर्त्त के महीन छिलके की कोशिकाएँ; ब—ट्रेडिशकैन्सिया के लिंगसूत्र की कोशिकाएँ; स—क्लासटोडियम नामक एक हरी जाति का एककोष्ठी शैवाल ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

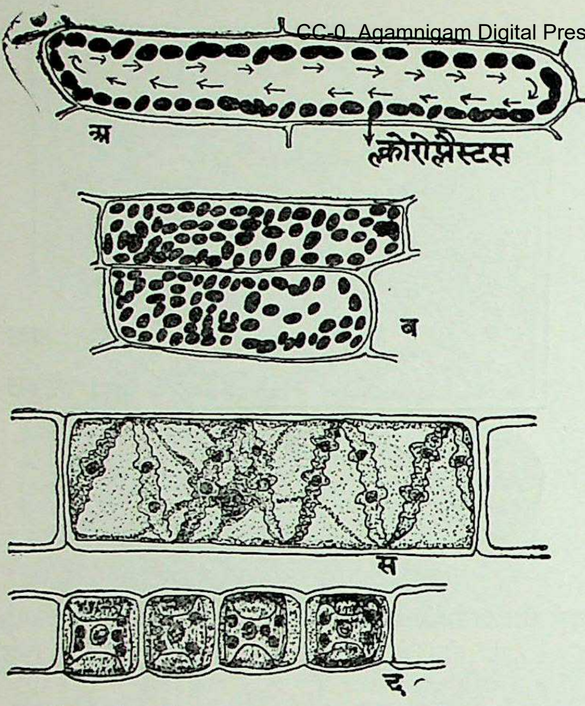

अ–हड्लिा की कोशिका में फिरते हुए क्लोरोप्लैस्ट्स। तीर के चिन्हों द्वारा एक क्लोरोप्लैस्ट के घूमने की दिशा समझाई गई है। ब–हड्लिा में भरे हुए क्लोरोप्लैस्ट्स। स द–स्पायरोगायरा और यूलोथ्रिक्स में लहरदार क्लोरोप्लैस्ट्स होते हैं। यूलोथ्रिक्स के क्लोरोप्लैस्ट्स घोड़े की काठी की शक्ल के होते हैं (दे० द)।

मिलाकर फेंट दें, तो एक प्रकार का कलोद बन जायगा। इसे पायसोद (इमलसाइड) कहते हैं। इस दशा में एक द्रव पदार्थ दूसरे में अवलम्बित रहता है। पायसोद के कणों में विद्युत्संचार बहुत ही कम रहता है। कलोदों के विषय में आपको विशेष बातों का पता रसायन विज्ञान से चलेगा; यहाँ पर केवल प्रसंगवश कुछ साधारण बातों का उल्लेख किया गया है। कलोदों की प्रतिक्रिया से अनुमान होता है कि जीव-द्रव्य की अनेक क्रियाएँ कदाचित् उसकी इसी अवस्था के कारण हैं; परन्तु जीव-द्रव्य किस भाँति का कलोद है, हमें यथार्थ में पता नहीं।

कोशिका, नाभिक, अणुनाभिक और कोशिकामूल

प्राणियों के शरीर में जीव-द्रव्य बहुत छोटी-छोटी अणुवीक्षणीय कोठरियों में बँटा रहता है (पृ० ६४४ का निचला चित्र) जो सूक्ष्मदर्शक से देखने से शहद की मक्खी या बर्र के छत्ते के समान दिखाई देती है। इसलिए इनको कोशिका (सेल) कहते हैं। वास्तव में कोशिका वर्गाकार संदूक-सरीखी होती है, जिनमें ऊपर-नीचे और चारों ओर घेरे होते है (पृ० ६४५ का ऊपरी चित्र)। सजीव जीव-द्रव्य को हम प्याज के भीतरी पत के महीन छिल्के की कोशिकाओं में या किसी-किसी पानी में उगनेवाले पौधे की कोशिकाओं में, अथवा साइनोटिस या ट्रेडिशकैन्शिया के लिंगसूत्रों के रोमकोशों में (पृ० ६४४ का निचला चित्र) शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शक से देख सकते हैं। परन्तु जीव-द्रव्य में इतनी पारदर्शिता होती है कि उसका आसानी से दिखाई देना कठिन है। इसलिए इसकी कोशिकाभित्तियों तथा कोशिका के अन्दर की दूसरी वस्तुओं को स्पष्ट करने के लिए घोलों को काम में लाते हैं। टिंक्चर आयोडीन में डुबोने से यह भूरे रंग का हो जाता है, इसलिए सरलता से दिखाई देता है।

ध्यान से देखने से हमें कोशिका के बीचो-बीच जीव-द्रव्य में एक गोल-गोल गाढ़ी वस्तु दिखाई देती है (पृ० ६४५ का चित्र)। इसे नाभिक (न्यूक्लिअस) कहते हैं। नाभिक भी जीव-द्रव्य ही है लेकिन इसमें फास्फोरस का अंग होता है। नाभिक में अधिकांश भाग नाभिक-रस का होता है। इस रस में एक गाढ़ी वस्तु का जाल होता है (पृ० ६४५ के निचले चित्र में अ)।

प्रायः सभी नाभिकों में एक अणुनाभिक (न्यूक्लिओलस) भी होता है (पृ० ६४५ का ऊपरी चित्र)। यह अत्यन्त छोटा और नाभिक से भी गाढ़ा होता है। नाभिक कोशिका का मुखिया है। कोशिका की सारी क्रियाएँ इसी के आज्ञानुसार होती हैं। कोशिका के साधारण जीव-द्रव्य को कोशिका मूल (साइटोप्लाज्म) कहते हैं।

कोशिकाओं में जीव-द्रव्य स्थिर नहीं रहता, वरन् वह बराबर बहता रहता है। अक्सर हम इस घटना को देख नहीं पाते; परन्तु किसी-किसी पौधे के विशेष अंगों (जैसे ट्रेडिशकैन्शिया के लिंगसूत्र) में हम इस क्रिया को अत्यन्त शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शक से देख सकते हैं (पृ० ६४५ के निचले चित्र में ब)। कभी-कभी जीव-द्रव्य के साथ कोशिका की अन्य वस्तुएँ भी घूमती रहती हैं। इस दशा में हम इस घटना को आसानी से देख सकते हैं (इसी पृष्ठ के चित्र में अ)।

प्लैस्टिड्स

जीव-द्रव्य और नाभिक के अलावा कोशिका में और भी अनेक वस्तुएँ होती हैं। इनमें प्लैस्टिड्स मुख्य हैं। ये भी एक प्रकार से जीव-द्रव्य ही हैं। इनकी रचना पूर्ववर्ती प्लैस्टिड्स से होती है। प्लैस्टिड्स के कई भेद हैं। ये भेद इनके रंग के अनुसार माने गए हैं। सबसे अधिक महत्व के हरे रंग के प्लैस्टिड्स या क्लोरोप्लैस्ट् हैं (इसी पृष्ठ का चित्र)। ये

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्तियों और पेड़ के दूसरे हरे अंगों में होते हैं। इनमें पर्णहरिम होता है, जिसके प्रभाव से कार्बोहाइड्रेट-संश्लेषण होता है। कोशिकामूल, नाभिक और प्लैस्टिड्स सभी सजीव होते हैं। यह जीव-द्रव्य के भिन्न-भिन्न रूप हैं।

जीव-द्रव्य की उत्पत्ति

यह अलौकिक पदार्थ जीव-द्रव्य या प्रोटोप्लाज्म कहाँ से आया, जीवन-ज्ञान का यही सबसे प्रथम प्रश्न है। यही हमारी सबसे कठिन समस्या है। परन्तु इस संबंध में निश्चित रूप से हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि **जीव-द्रव्य पूर्ववर्त्ती जीव-द्रव्य से ही उत्पन्न होता है—सजीव वस्तुओं की उत्पत्ति सजीव वस्तुओं से होती है।**

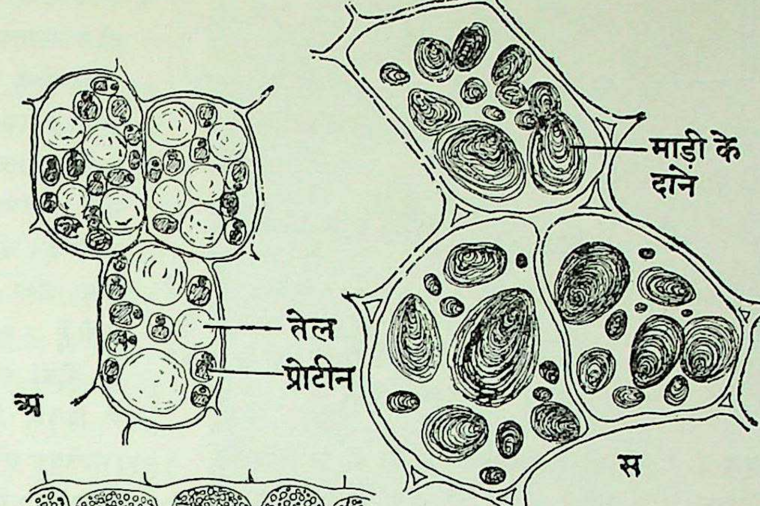

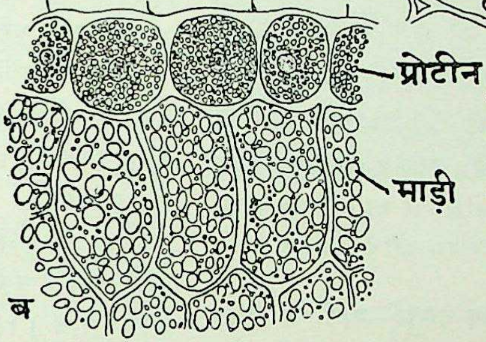

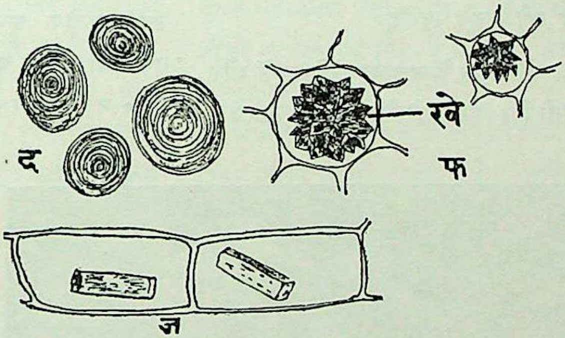

कोशिका में पाए जानेवाले प्रोटीन, वसा, माड़ी आदि। अ–रेंडी की गूदी की कोशिका में प्रोटीन और तेल। ब–गेहूँ की कोशिका में प्रोटीन और माड़ी। स–आलू की कोशिकाओं में माड़ी के दाने। द–गेहूँ की कोशिका में माड़ी के दाने। फ–कनेर की पत्ती की कोशिका में रवे। ज–प्याज की गाँठ के छिलके की कोशिका में रवे।

किसी समय में इस बात पर बड़ा वाद-विवाद था। किसी-किसी का मत था कि अनुकूल परिस्थिति में जीवों की उत्पत्ति यों ही हो जाती है। इसके प्रमाण में वे कहते थे कि यदि मांस का टुकड़ा या और कोई ऐसी चीज हवा में खुली रक्खी रहे, तो उसमें तमाम कीड़े अपने आप पैदा हो जाते हैं। लेकिन जैसे-जैसे विज्ञान में तरक्की हुई, लोगों का ऐसी बातों से विश्वास जाता रहा। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यकाल में कीटाणु-विद्या के जन्म दाता लुई पासच्यर ने सिद्ध कर दिया कि जीवों की उत्पत्ति निर्जीव पदार्थों से नहीं होती। उन्होंने प्रमाणित कर दिया कि मांस या दूसरी वस्तुओं को (जिनमें साधारणतया वायु में खुला रखने पर सैकड़ों कीड़े पैदा हो जाते हैं) उबालकर और कीड़े नष्ट करके हवा एवं दूसरी बाहरी वस्तुओं से रक्षित रक्खा जाय, तो फिर इनमें कीड़े नहीं पड़ते। पहले लोगों ने इस पर विश्वास नहीं किया और उन्होंने इसके विरुद्ध अनेक दलीलें पेश कीं, लेकिन अन्त में मानना पड़ा कि जीवधारियों की उत्पत्ति जीवधारियों से ही होती है। इस संबंध में विशेष बातें 'जन्तु-जगत्' विभाग में बताई जा चुकी हैं।

अब लोगों का ध्यान जीवन-संबंधी अनेक प्रश्नों की जाँच के लिए जीव-द्रव्य की ओर आकर्षित हुआ। धीरे-धीरे यह साबित हो गया कि जीव-द्रव्य में ही जीवन-मरण की सारी समस्याएँ केन्द्रित हैं। परन्तु फिर भी हमारी कठिनाई का अन्त नहीं हुआ। मूल प्रश्न हमारे सामने अब भी बराबर बना रहा। हमें यह पता न लगा कि सबसे पहले जीव-द्रव्य कहाँ से और कैसे आया, अथवा उसकी उत्पत्ति कैसे हुई!

संभव है, आज से करोड़ों वर्ष पूर्व आदिकाल में पृथ्वी की परिस्थिति जीव-द्रव्य का संश्लेषण करने के अनुकूल रही हो! संभव है, प्रथम जीवाणु सृष्टि के आदि में किसी अन्य ग्रह से प्रकाश की किरणों के साथ अथवा अन्य किसी भाँति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

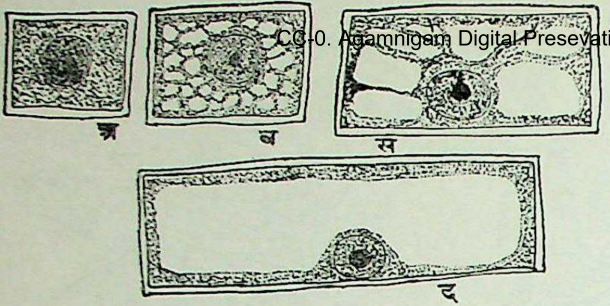

कुंड की उत्पत्ति। प्रारंभ में कोशिका जीव-द्रव्य से भरी रहती है (चित्र में अ)। क्रमशः उसमें नन्हें-नन्हें अनेक कुंड बन जाते हैं। (चित्र में ब). जिनके बढ़ने और आपस में मिल जाने से (चित्र में स) एक कुंड बन जाता है (चित्र में द)।

आए हों! कुछ भी हो, वर्तमान स्थिति में हम जहाँ तक निश्चित कर पाते हैं, जीवों की उत्पत्ति जीवों से ही होती है। जीव-द्रव्य ही जीव-द्रव्य को बनाता है। यह जीव-द्रव्य निर्जीव वस्तुओं को परिवर्तित करके उन्हें अपने समान सजीव बना लेता है। यह जल, वायु, नमक जैसे पार्थिव पदार्थों से जीते-जागते जीव-द्रव्य का संश्लेषण करता है। परन्तु हम स्वयं इसका संश्लेषण नहीं कर सकते।

कोशिका के अन्दर की अन्य वस्तुएँ—माड़ी, प्रोटीन, तेल और रवे आदि

जीव-द्रव्य, नाभिक, प्लैस्टिड्स के अलावा कोशिका में और भी अनेक वस्तुएँ होती हैं। इनमें प्रोटीन, माड़ी (स्टार्च), वसा और भाँति-भाँति के तेल मुख्य हैं। इनसे पेड़-पौधों के अंग बढ़ते हैं। यही उनकी खूराक है। इन्हीं को वे आपद्काल के लिए भी संग्रह करके रखते हैं।

उपर्युक्त पदार्थों में प्रोटीन कदाचित् सबसे महत्व-पूर्ण है। इसमें सन्देह नहीं कि प्रोटीन अत्यन्त प्रयोजनीय खाद्य पदार्थ है—हमारे लिए ही नहीं, वरन् सभी जीवधारियों के लिए। इसी से उनके अंग बनते हैं। इससे उन्हें शक्ति भी प्राप्त होती है। मांस, अंडा, दूध और दालों में इसकी मात्रा अधिक होती है। यह गेहूँ तथा मक्का आदि में भी होता है। पौधों की कोशिकाओं में यह वस्तु दानों के रूप में दिखाई देती है (पृ० ६४७ के चित्र में अ-ब) इसका संश्लेषण और उपभोग पेड़ों में किस प्रकार होता है, हम आगे वर्णन करेंगे।

प्रोटीन की भाँति माड़ी भी अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। जीवों के भोजन में इसका होना जरूरी है। इसीसे उनको शक्ति मिलती है। यह शरीर में इंजिन के कोयले का-सा काम करती है।

माड़ी का संश्लेषण पेड़ों में क्लोरोप्लैस्ट्स करते हैं। माड़ी पेड़ों के अंगों में दानों के रूप में होती है (पृ० ६४७ के चित्र में स)। माड़ी के दाने प्रायः सभी पौधों में और उनके प्रत्येक अंग में होते हैं; परन्तु पत्ती, जड़, आलू जैसे तनों और फल व बीज में ये अधिकता से होते हैं। आलू में १०० मन में लगभग २७ मन माड़ी होती है और गेहूँ-ज्वार में इससे भी अधिक। कभी-कभी १०० मन गेहूँ या मक्का में ८५ मन तक माड़ी का भाग होता है। माड़ी के दानों के आकार और बनावट में बड़ा भेद होता है। आयोडीन के घोल में माड़ी के दाने बैंजनी या नीले हो जाते हैं। आप सूक्ष्मदर्शक की सहायता से इसकी परीक्षा आलू, चावल, मक्का और गेहूँ वगैरह से कर सकते हैं।

तेल और वसा भी परम प्रयोजनीय वस्तुएँ हैं। आर्थिक विचार से भी ये बड़े मतलब के द्रव्य हैं। ये भी खाद्य पदार्थों में से हैं। पौधों में ये प्रायः बीजों और फलों में होते हैं। सरसों, मूंगफली, तिल्ली, नारियल,

पपीता, जिसमें पेपैन नामक एनजाइम होता है, जो प्रोटीन को पचाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पोस्ता, अलसी, गुल्लू आदि के तेलों को हम बराबर काम में लाते हैं। पौधों की कोशिकाओं में तेल और चर्बी के भाग गोल-गोल बूँद-सरीखे दिखाई देते हैं (पृ० ६४७ के चित्र में अ) कोशिकाओं में और भी अनेक वस्तुएँ होती हैं, जिनमें बहुत-सी कोशिकाद्रव्य में होती हैं। इनमें से कुछ का हम यहाँ वर्णन करेंगे।

कुंड और कोशिकाद्रव्य

पौधों की नवल कोशिकाएँ (पृ० ६४८ के ऊपरी चित्र में अ) और जंतुओं की कोशिकाएँ जीव-द्रव्य से लगभग भरी रहती हैं, लेकिन पौधों की पूर्ण विकसित सजीव कोशिकाओं में आम तौर पर एक कुंड होता है (उक्त चित्र में द), जिसमें रस भरा रहता है। यह कुंड प्रायः अत्यन्त छोटे-छोटे कुंडों के एक में मिल जाने से बनता है (उक्त चित्र में ब-द)। कुंड के चारों ओर एक अत्यन्त पतली निस्सारक झिल्ली होती है, जिसे 'कुंडझिल्ली' कहते हैं। इसी प्रकार की जीव-द्रव्य की एक झिल्ली दीवालों के अंदर से कोशिका को परिवेष्टित किए रहती है। इसे 'कोशिका-झिल्ली' कहते हैं। यह भित्तिकाओं से सटी अन्दर की ओर होती है। पौधों में कोशिकाझिल्ली और कुंडझिल्ली दोनों हं बड़े महत्व की होती हैं। कोशिका के अन्दर आनेवाली सभी वस्तुएँ 'रसाकर्षण' (ओस्मोसिस) से ही आती हैं और उनको कोशिकाझिल्ली और कुंडझिल्ली में से होकर गुज-रना पड़ता है। इसलिए कोशिका में वस्तुओं का आना-जाना इन रसाकर्षक झिल्लियों के ही अधीन है। सबसे विचित्र बात यह है कि ये किसी-किसी वस्तु के लिए प्रवेशनीय और किसी-किसी के लिए अप्रवेशनीय होती हैं। कोशिकाओं के अन्दर आनेवाले द्रव्यों की मात्रा कुंडरस के समाहरण (कांसे-न्ट्रेशन) पर निर्भर है। इसी पर कोशिकाओं का रस से भर-कर फूलना या उसके निकल जाने से खाली हो मुरझाकर पिचक जाना निर्भर है। कोशिकाद्रव्य में अनेक वस्तुएँ घुली रहती हैं। इनमें भाँति-भाँति की शर्कराएँ और कार्बनिक अम्ल हैं। बहुधा कोशिकाद्रव्य पौधों में जड़ों द्वारा आता है। यह खट्टा, मीठा, तीखा, साफ या गँदला, बेरंग या रंग-दार, पौष्टिक या अपौष्टिक होता है। आर्थिक दृष्टि से यह बड़ी प्रयोजनीय वस्तु है। नीबू, संतरा, अनार, आम और अंगूर-जैसे फलों का खट्टा-मीठा रस कोशिकाद्रव्य ही है। जब तक ये फल कच्चे होते हैं, कोशिकाद्रव्य का स्वाद बेमजे रहता है; परन्तु जब फल पक जाते हैं, यह स्वादिष्ट हो जाता है। अब अनेक पक्षी और दूसरे जीव, जो कच्चे फलों के पास भी नहीं फटकते थे, उनको बड़े चाव से खाते हैं। इससे पौधों को बड़ा लाभ होता है, क्योंकि इससे उनके बीजों का प्रसारण होता है और इस तरह पौधे दूर-दूर देशों में फैल जाते हैं।

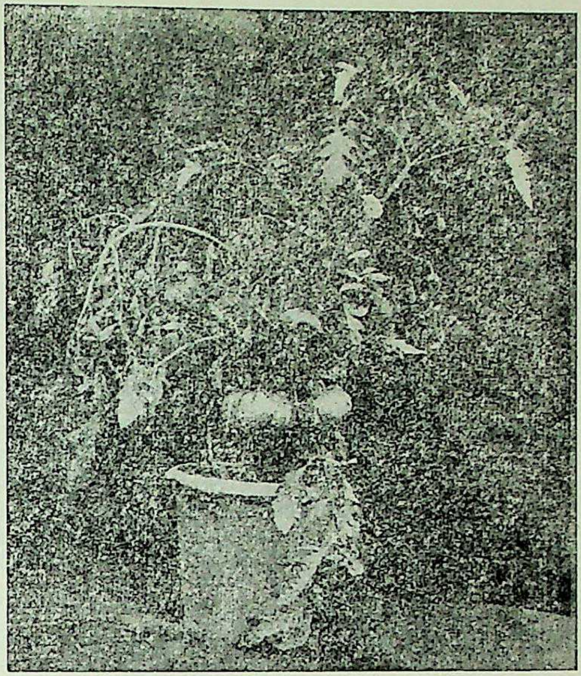

टमाटर, जिसमें अनेक विटामिन होते हैं।

चुकन्दर की जड़ के बैंजनी रस का मीठा स्वाद उसमें घुली शक्कर के कारण होता है। इससे सैकड़ों मन शक्कर तैयार होती है।

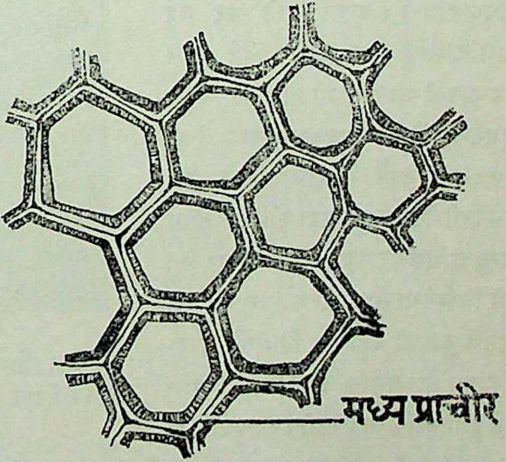

कोशिकाओं की झाँकी। रेखा-चिह्न द्वारा 'मध्य प्राचीर' दिग्दर्शित है।

अनेक पौधों का दूध (लेटेक्स) भी कोशिकाद्रव्य ही है। यह द्रव्य जब तक पौधों में रहता है, साफ और पतला रहता है; परन्तु पौधे से बाहर निकलते ही गँदला और गाढ़ा हो जाता है। इस द्रव्य का रंग अक्सर दूधिया होता है, लेकिन कभी-कभी पीला, लाल या नीला भी होता है। द्रव्य का रंग और गुण उसमें अनेक छोटे-छोटे अवलम्बित कणों के कारण होता है। रबर और अफीम भी इन्हीं दूधिया द्रव्यों में से हैं। ऐसे द्रव्यों की विषैली अवस्था बहुधा इनमें अवलम्बित वस्तुओं के ही कारण होती है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

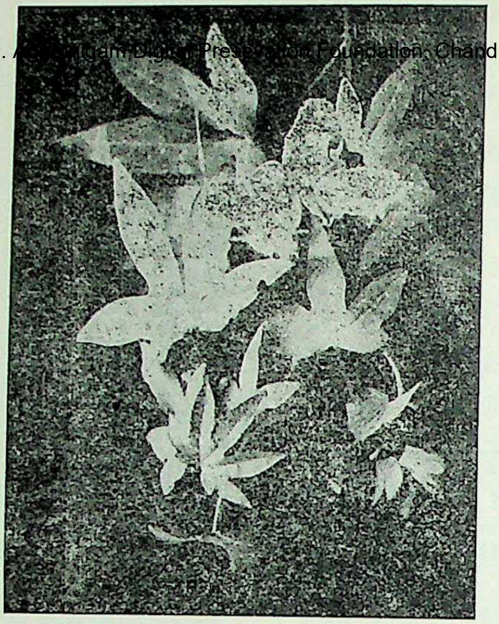

कपास की एक टहनी, जिसके बिनौले पर उगी रुई के रेशे एककोष्ठी हैं।

कितने मजे की बात होती, अगर सभी दूधवाले पेड़ों के रस स्वादिष्ट दूध-जैसे होते! थके-माँदे मुसाफिरों के लिए कितना सुभीता हो जाता! जहाँ पहुँचते, दूध तैयार मिलता। परन्तु ऐसा नहीं है। इस प्रकार के पेड़ों का रस, जैसा हम ऊपर कह चुके हैं अक्सर जहरीला ही होता है। कितने पेड़ों के दूधरस तो प्राण-घातक विष हैं। अफीम, जो पोस्ते के फल से निकलता है, इन्हीं में है। कितने ही पेड़ों के रस के बदन में लगते ही फफोले पड़ जाते हैं। थूहड़ का रस यदि आँख में पड़ जाय, तो बड़ा कष्ट भोगना पड़ता है।

पौधों में इस प्रकार के द्रव्य उनके बड़े काम के होते हैं। रबर के पेड़ में ये द्रव्य केवल इसलिए नहीं होते कि लोग इनके ट्यूब-टायर बनाएँ या जूते और बरसाती पहनकर घूमें। वास्तव में ये द्रव्य उन पेड़ों के बड़े प्रयोजन के हैं। ये लकड़ी काटनेवाले कीड़ों से उनकी रक्षा करते हैं और घावों को भरते हैं। लकड़ी काटनेवाले कीड़े जिस समय ऐसे पेड़ों में छेद करते हैं, तब पेड़ से तेजी के साथ दूध बह निकलता है। बाहर आने पर यह दूध जम जाता है और अक्सर कीड़े इसमें फँसकर अपनी जान से भी हाथ धो बैठते हैं! दूधवाले ये पेड़ बहुधा भूमध्य रेखा के निकटवर्त्ती देशों में अधिक होते हैं। किसी-किसी पेड़ का दूध बड़ा पौष्टिक होता है, परन्तु अधिकतर यह विषैला होता है। लंका में जिम्निमा लैक्टीफेरम नाम का वृक्ष है, जिसके दूध को वहाँ के निवासी गाय-भैंस के दूध के समान बरतते हैं। अमेरिका में इसी भाँति का गैलेक्टोडेंड्रन यूटिले नामक एक वृक्ष है, जिसका दूध भी इसी तरह काम में लाया जाता है। इस पेड़को दुग्धवृक्ष कहते हैं।

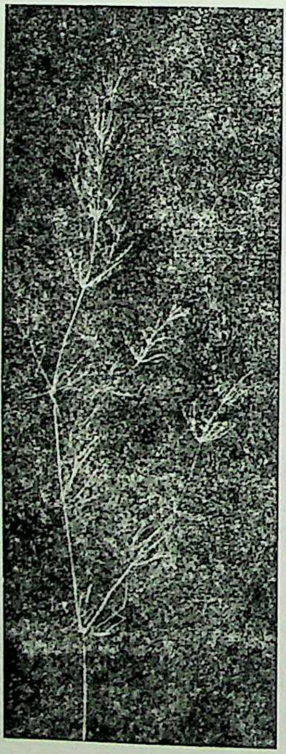

नाइटेला, जिसका प्रत्येक पोर लंबान में एक कोशिका होता है।

रवे या केलास

पौधों में अनेक प्रकार के रवे या केलास भी होते हैं। ये प्रायः काष्ठिकाम्ल और कार्बोनिक एसिड के रवे होते हैं। कनेर की पत्ती और कोशिकाओं में (पृ० ६४७ के चित्र में फ) ये सरलता से दिखाई देते हैं। नागफनी की जाति के किसी-किसी पौधे में प्रायः काष्ठिकाम्ल की मात्रा इतनी अधिक होती है कि यदि कहीं यह अम्ल कोशिका में घुला रहता, तो पेड़ जीवित न रह सकता। परन्तु ऐसा नहीं होता। पोटेशियम या कैल्शियम से मिलकर इस अम्ल के नमक बन जाते हैं, जो घुलनशील नहीं होते, इसलिए पौधों को हानि नहीं पहुँचाते। रवों से मिलती-जुलती दूसरी अनेक उपोत्पादित वस्तुएँ हैं। वंशलोचन और रूह जैसी वस्तुएँ इन्हीं में हैं। गुलाब और केवड़े-जैसे इत्र ऐसी ही वस्तुओं से, जो इन पौधों में होती हैं, बनाए जाते हैं। लौंग और इलाइची के तेल और कपूर भी इसी जाति के हैं। टैनिन, गोंद, मोम और राल भी उपोत्पादित वस्तुएँ हैं। राल चीड़ के पेड़ से प्राप्त होती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पेड़ों में यह विशेषतर उनके कलेवर पर पड़नेवाले घावों को भरने का काम देती है।

विटामिन, एनजाइम और हार्मोन

इन वस्तुओं के अतिरिक्त और भी कई तरह की चीजें पौधों में होती हैं। इनमें से कुछ तो ऐसी हैं कि यद्यपि ये बहुत कम मात्रा में होती हैं, फिर भी जीवों के रहन-सहन पर इनका बड़ा प्रभाव पड़ता है। वास्तव में उनकी अनेक क्रियाएँ इनके अधीन हैं। ये वस्तुएँ एनजाइम, हार्मोन और विटामिन हैं। पपीता (चि० पृष्ठ ६४८) में पेपेन नाम का एनजाइम होता है। यह प्रोटीन को हज्म करता है। इसलिए मांस को गलाने के लिए पपीते के फल के कुछ टुकड़े कभी-कभी डालकर पकाते हैं। यही कारण है कि पपीता पाचन के लिए इतना लाभकर है। विटामिन के विचार से टमाटर (चि० पृष्ठ ६४९) बड़ा उपयोगी है। इसमें कई विटामिन होते हैं।

ऊपर हमने कोशिका के विविध अवयवों का संक्षिप्त वर्णन किया है। ये वस्तुएँ दो प्रकार की हैं—सजीव और निर्जीव। सजीव वस्तुओं में जीव-द्रव्य, नाभिक और प्लैस्टिड्स हैं। निर्जीव वस्तुओं के तीन भेद हैं। पहली वे, जिन्हें हम जीव-द्रव्य की मुख्य उपज कह सकते हैं। प्रोटीन, माड़ी, छिद्रोज या अन्य कार्बोहाइड्रेट, तेल और चर्बी आदि ऐसी वस्तुएँ हैं। दूसरी वे चीजें हैं, जो उपोत्पादन से प्राप्त होती हैं, जैसे रूह, अम्ल, रवे, मोम आदि। तीसरी वे हैं, जो अन्य वस्तुओं के विदारण से बनी हैं, जैसे गोंद।

आश्चर्य की बात है कि इन नन्हीं-नन्हीं अदृश्य कोठरियों के अन्दर कैसे-कैसे द्रव्य संचित रहते हैं! जीव-द्रव्य के इन अति सूक्ष्म भागों में कैसी-कैसी लीलाएँ होती रहती हैं। किसी विद्वान् ने सच कहा है कि प्रत्येक कोशिका एक कीमियाघर है, जिसमें विश्लेषण से कहीं अधिक संश्लेषण होता है।

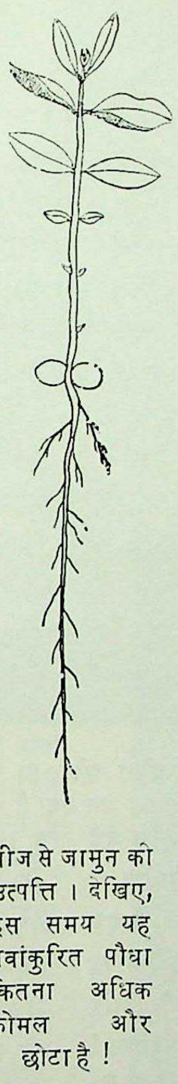

बीज से जामुन की उत्पत्ति। देखिए, इस समय यह नवांकुरित पौधा कितना अधिक कोमल और छोटा है!

कोशिका-भित्ति

जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, पौधों की कोशिका घेरे के अन्दर होती हैं। ये घेरे प्रारम्भ में छिद्रोज के बने होते हैं, जो एक प्रकार का कार्बोहाइड्रेट है और इस जाति की अन्य वस्तुओं की भाँति कार्बन, ऑक्सिजन और हाइड्रोजन से बनता है। भित्तिकाएँ ही कोशिका का अवलम्ब हैं। यही पौधों का ढाँचा बनाती हैं, इसीलिए प्रायः ये बड़ी मजबूत और मोटी होती हैं। शीशम, सागौन, नीम तथा अन्य पेड़ों की लकड़ी; छुआरे, बेर अथवा खजूर की गुठली; अखरोट और बादाम के छिलके तथा नारियल के खोपड़े, जो इतने कठीले होते हैं, यथार्थ में कोशिका-भित्ति ही हैं। प्रारम्भ में ये भी कोमल थे और इनकी कोशिका जीव-द्रव्य से भरी थी। यह जीव-द्रव्य कोशिकाओं की बाढ़-वृद्धि में चुक गया है और इनकी भित्तिकाएँ परिवर्तित होकर कठीली हो गई हैं।

भित्तिकाओं का वह भाग, जिसे जीव-द्रव्य प्रारम्भ में बनाता है, 'मध्य प्राचीर' कहलाता है (पृ० ६४९ का निचला चित्र)। यही कोशिकाओं को आपस से जोड़े रहता है।

कोशिकाओं के भेद और आकार

कोशिकाएँ अनेक प्रकार की होती हैं। कोई छोटी, कोई बड़ी, कोई गोल, चौकोर या अन्य भाँति की (चि० पृष्ठ ६४४)। आप देख चुके हैं कि क्लैमाइडोमोनस में ये नाशपाती जैसी, प्याज के छिलके में बहुकोण, और ट्रेडिशकेंन्शिया के लिंग-सूत्रों के रोमों में गोल, तिकोनी या आयताकार होती हैं। इनके और भी अनेक रूप हैं, जिनसे आप आगे चलकर परिचित होंगे। आम तौर पर सभी कोशिकाएँ अत्यन्त छोटी और अणुवीक्षणीय होती हैं। एक साधारण पत्ती में करोड़ों कोशिकाएँ होती हैं। आम तथा जामुन जैसे वृक्ष में कितनी कोशिकाएँ होंगी, यह अनुमान लगाना असम्भव है।

इस ग्रंथ के 'विश्व की झाँकी' नामक विभाग में आपने पढ़ा है कि यदि हम साठ मील प्रति घण्टे की गति से चलनेवाली रेलगाड़ी में बैठकर सूर्य तक बिना कहीं रुके लगातार यात्रा करें, तो हमको १७५ वर्ष से कम समय न लगेगा। इस समय में हम सवा नौ करोड़ मील की यात्रा कर चुकेंगे। आपको इस पर आश्चर्य अवश्य होता होगा। आश्चर्य की बात भी है। परन्तु इससे भी अधिक आश्चर्य आपको होगा, यदि आप किसी साधारण पेड़——आम, जामुन, सेब आदि—— की कोशिकाओं की संख्या का अनुमान करना चाहें। इस सम्बन्ध में हम केवल इतना ही कह देना चाहते हैं कि यदि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

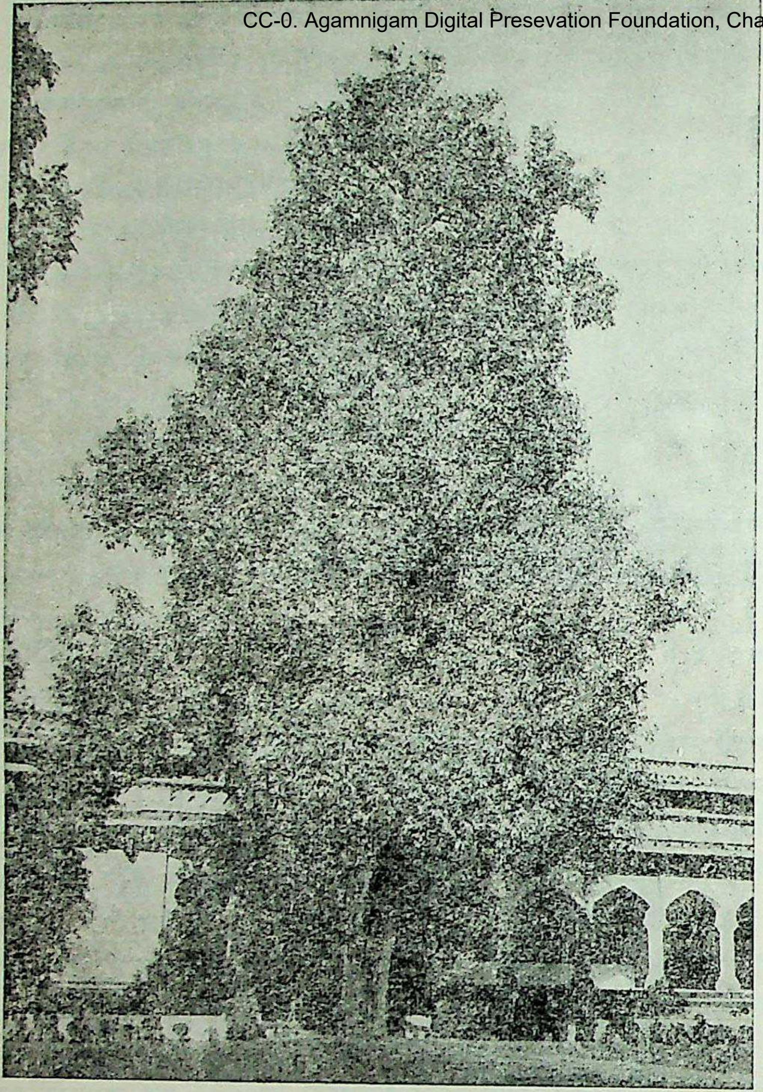

एक ही कोशिका से उत्पन्न पिछले पृष्ठ पर चित्रित छोटा-सा कोमल पौधा ही बढ़ने पर जामुन का यह विशाल वृक्ष बन गया है।

सूर्य तक यात्रा करनेवाला दीर्घजीवी साहसी पुरुष सेब-जैसे एक पेड़ की कोशिकाओं की गणना करने के अभिप्राय से उसे अपने साथ लेता जाय और यदि वह एक मिनट में एक कोशिका भी अलग करके फेंक सके, तो पूर्व इसके कि वह ऐसे पेड़ की दो पत्ती की भी कोशिका अलग करके बिखेर सकेगा, उसकी दुर्गम यात्रा का अन्तिम दिन आ पहुँचेगा !

किसी-किसी पौधे की कोशिकाएँ इतनी बड़ी होती हैं कि बिना सूक्ष्मदर्शक की सहायता के भी देखी जा सकती हैं। एक प्रकार के शैवालादि की भाँति के पौधे नाइटेला (चि० पृ० ६५०) की कोशिकाएँ लगभग २ इंच लम्बी और इंच का पचीसवाँ भाग मोटी होती हैं ! कपास या रुई के रेशे भी एककोष्ठी रोम हैं (चि० पृ० ६५०)। विचार करने की बात तो यह है कि बड़े-से-बड़े और दृढ़-से-दृढ़ वृक्ष तथा बलिष्ठ-से-बलिष्ठ पशु अथवा स्वयं मनुष्य भी कोशिकाओं ही के समूह हैं ! सभी का जीवनारम्भ एक अणुवीक्षणीय मृदुल कोशिका से होता है। इसी से समय पाकर उनके विशाल कलेवर बनते हैं—इसी से उनके सारे अंगों का विकास होता। इसी एक कोशिका से बढ़कर आम-जामुन जैसे दीर्घकाय वृक्ष हो जाते हैं। जिस समय इनका बीज प्रगाढ़ निद्रा छोड़कर अंकुर-रूप में प्रकाश में बाहर निकलता है, वह मुलायम होता है ! तब तनिक धक्का लगने से उसकी जीवन-लीला का अन्त हो सकता है। हल्के-से-हल्के प्रहार से उसके टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। आप चाहें तो उसे चुटकी से मसल दें। कोई भी जीव-जन्तु या कीड़ा-मकोड़ा बिना प्रयास ही उसका सर्वनाश कर सकता है। परन्तु यही अंकुर समय पाकर जब विशाल वृक्ष का रूप धारण करता है (इसी पृष्ठ का चित्र) तो अनेक आँधी, तूफान, आदि का भी उस पर कुछ असर नहीं पड़ता। कितने ही जीव-जन्तु उसकी शाखों पर विहार करते और उछलते-कूदते हैं, लेकिन उसकी टहनी भी टेढ़ी नहीं होती। कितने ही बलिष्ठ पशु—हाथी, घोड़े, ऊँट – अपनी सारी ताकत क्यों न लगाएँ फिर भी उसके तने को टस-से-मस नहीं कर पाते। अब पेड़ का तना डंठल नहीं रहा। अब वह सैकड़ों फीट ऊँचा होकर गगनचुम्बी अट्टालिकाओं से होड़ ले रहा है। अब वह छत्राकदंड के समान कोमल नहीं है, वरन् लोहे और पत्थर के समान दृढ़ हो गया है। परन्तु यह सब कैसे हुआ ? इन मृदुल कोशिकाओं से इतने बड़े और सुदृढ़ वृक्ष कैसे बने ? विचार करने की बात है। लेकिन फिर भी हमें अधिक दूर जाने की आवश्यकता नहीं। जीव-द्रव्य की ओर झुकने से ही इस बात का सारा भेद खुल जायगा। यह जीव-द्रव्य स्वयं अपने रहने के लिए गृह का निर्माण करता है। इसी से

प्रत्येक अंग की रचना होती है। इसी से अंगों के आकार में आवश्यकतानुसार परिवर्तन होते हैं।

आप देख चुके हैं कि जीव-द्रव्य कोशिका-भित्ति से परिवेष्टित रहता है। इन भित्तियों का जीव-द्रव्य द्वारा ही निर्माण होता है। प्रारम्भ में ये भित्तियाँ मुलायम छिद्रोज झिल्ली की बनी होती हैं। इनको दृढ़ करने के लिए जीव-द्रव्य इन पर भाँति-भाँति की वस्तुओं की तह जमाता है। आगे जब हम कोशिका-परिवर्तन पर विचार करेंगे, तो हमें इस विषय की कई बातों का पता लगेगा।

कोशिका-सिद्धान्त

जीवों की सारी क्रियाएँ कोशिका के अन्दर होती हैं। कोशिका ही जीवन की इकाई है। परन्तु आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व हमें इसका पता नहीं था। यथार्थ में जीवों की रचना के सम्बन्ध में 'सेल' (कोशिका) शब्द का व्यवहार भी बहुत पुराना नहीं है। सन् १६६५ ई० में राबर्ट हुक ने सर्वप्रथम 'सेल' शब्द का प्रयोग कार्क के सम्बन्ध में किया था। कार्क की रचना का वर्णन करते हुए श्री० हुक कहते हैं कि यह छोटे-छोटे बक्सों का बना है, जिनमें वायु भरी है। परन्तु वह कोशिकाओं के यथार्थ महत्व को नहीं समझे। इनका रहस्य बहुत समय तक किसी की समझ में नहीं आया। गत शताब्दी के लगभग मध्यकाल तक कहीं जाकर कोशिका के यथार्थ रूप का निर्णय हुआ। सन् १८३८ ई० में जर्मनी के वनस्पतिशास्त्र के उस समय के विख्यात विद्वान् श्लाइडेन और जन्तुविद्या के धुरन्धर आचार्य श्वान को अपने-अपने अनुसन्धानों की तुलना से पता लगा कि जन्तुओं और पौधों दोनों ही की सूक्ष्म रचना सदैव कोशिकाओं से होती है। इन्होंने ही 'कोशिका-सिद्धान्त' का प्रकाशन किया। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक प्राणी कोशिकाओं का बना है और जीवों की बाढ़-वृद्धि इन्हीं की बाढ़-वृद्धि से होती है। इन्हीं से क्रमशः उनके सारे अंग बन जाते हैं। जीवनविद्या का यही मूल मंत्र है और जीवों की यही प्रधान विचित्रता है।

कोशिका-वृद्धि, कोशिका-परिवर्तन तथा तन्तु-रचना

जैसा कि आप देख चुके हैं, संसार के सभी जीव कोशिकाओं और उनके द्वारा उपार्जित वस्तुओं के बने हैं। इनके सारे काम-काज इन्हीं कोशिकाओं में होते हैं। एककोष्ठी कीटाणु 'बैक्टीरिया' और क्लैमाइडोमोनस (चित्र पृ० ६५४ से लेकर उच्च से उच्च कोटि के जीव तथा स्वयं मनुष्य तक की सारी जीवन-लीलाएँ इन्हीं अणुवीक्षणीय कोशिकाओं की क्रियाएँ हैं। हमारी खान-पान, रहन-सहन, बाढ़-वृद्धि सारी बातें इन्हीं की करामात हैं। एककोष्ठी जीवों में ये सारे रहस्य एक ही कोशिका द्वारा होते हैं। हम ऐसे जीवों की तुलना सभ्यता के विकास के पूर्व के मनुष्यों से कर सकते हैं, जो आज से हजारों वर्ष पहले जंगलों में विचरते थे और सभी काम स्वयं अपने हाथों करते थे। उस समय न कोई हाट था न बाजार, न काश्तकार थे न बनिए, जहाँ से उन्हें गेहूँ, चना, चावल अथवा अन्य चीजें मोल मिलतीं। उन्हें उदर-पूर्ति के लिए सारी वस्तुएँ इधर-उधर से इकट्ठा करना पड़ती थीं। अंग ढकने का भी प्रबन्ध उन्हें स्वयं ही करना पड़ता था। न जुलाहे थे न बजाज, न मिलें थीं न कारखाने, जहाँ से उनको कपड़े मोल मिल जाते। उन लोगों को अपने परिधान या कपड़े के लिए भी स्वयं ही इंतजाम करना पड़ता था। यही नहीं, उन्हें अपने रहने के लिए घर भी स्वयं बनाने पड़ते थे। उस समय कोई ठेकेदार या कारीगर थोड़े ही थे, जो आज्ञा पाते ही लोगों के इच्छानुसार कोठी या महल बनाकर खड़े कर देते! उन्हें खुद ही कंकड़-पत्थर, लकड़ी-बाँस, घास-फूस, आदि सामान जुटाना पड़ता था और अपने हाथों ही झोपड़ी तैयार करनी पड़ती थी, तब कहीं जाकर रहने का ठिकाना लगता था। परन्तु फिर भी बेचारे चैन से नहीं सो पाते थे, क्योंकि उनकी जान-माल की हिफाजत

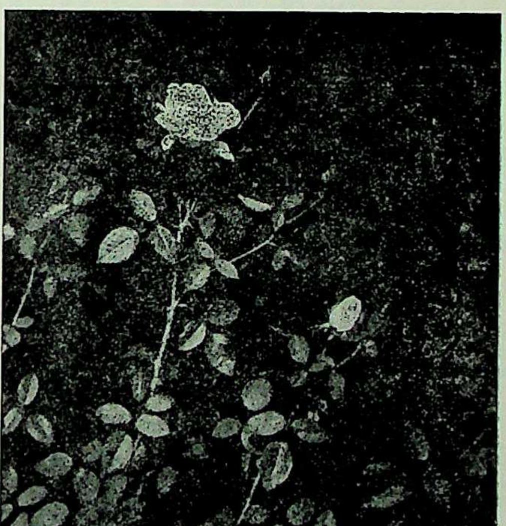

गुलाब के इस पौधे के सुरम्य पुष्पों की कोमल पँखुड़ियां, उसकी महीन पत्तियाँ, तीक्ष्ण काँटे और कठोर टहनियाँ आदि सभी अंग कोशिकाओं ही के बने हैं। इस तरह हम देखते हैं कि कोशिका ही जीवन की इकाई है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के लिए कोई चौकीदार, तिलंगे या सिपाही नहीं थे। इसका भी प्रबन्ध उन्हें खुद ही करना पड़ता था। समय पड़ते ही उन्हें कमर बांधकर बरछी, भाला अथवा तीर-कमान लेकर चोर, लुटेरों और दुश्मनों से अपनी रक्षा करनी पड़ती थी। कैसी कठिनाई का समय रहा होगा! इस प्रकार सारे काम अपने आप करने में बड़ी ही अड़चन पड़ती रही होगी। यदि आज कहीं हमें इस प्रकार का काम करना पड़े, तो कैसी मुसीबत आएगी!

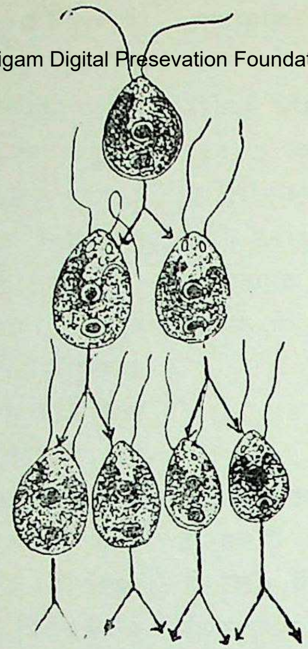

'क्लैमाइडोमोनस' नामक इस एककोष्ठी शैवाल में भी कोशिका-विभाजन द्वारा एक से अनेक कोशिकाएँ उत्पन्न होती हैं; जो स्वतंत्र रहती हैं।

परन्तु हमारे सभ्य समाज में आज ऐसा नहीं होता। हमारे प्रत्येक काम के लिए आज अलग-अलग प्रबन्ध है। एक ओर किसान हैं, जो रात-दिन खेतों में जुटे रहते हैं और भाँति-भाँति के अनाज, शाक-भाजी फूल-फल तैयार करते हैं, जिन्हें इनसे मोल, लेकर दुकानदार और बनिए औरों के हाथ बेचते हैं। हमें ये चीजें सुभीते से बाजार से मिल जाती हैं। कपड़े के लिए जुलाहे और मिलें हैं। भाँति-भाँति का कपड़ा तैयार होता है, जो हमें सुगमता से इच्छानुसार मिल जाता है। इसी प्रकार आज सैकड़ों राज और कारीगर हैं, जो हुक्म पाते ही हमारे इच्छानुसार इमारतें बनाकर खड़ी कर देते हैं। आज हम मौज के साथ निर्भय रहते हैं, क्योंकि हमारी रक्षा के लिए पुलिस और पल्टन हैं। इस तरह हमारे प्रत्येक काम के लिए आज अलग-अलग प्रबन्ध हैं। इस तरह अलग-अलग प्रबन्ध होने के कारण ही अनेक प्रकार के व्यापार और धन्धे चल पड़े। भाँति-भाँति के औजार और जुदा-जुदा सामान की भी जरूरत हुई। थवई को एक प्रकार के औजार चाहिए, तो बढ़ई और लोहार को दूसरी भाँति के। शकर की मिलों में एक प्रकार की वस्तुओं की माँग है, तो तेल और इत्र के कारखानों में दूसरी चीजों की खपत है। पल्टन और पुलिस के लिए अस्त्र-शस्त्र चलाने में निपुण सिपाही होने चाहिए, तो मिलों और कारखानों में होशियार इंजीनियर और चतुर कारीगर। सारांश यह कि पेशे या व्यवसाय के अनुसार भाँति-भाँति के औजारों और वस्तुओं की उपज हुई और साथ-ही-साथ लोगों के रहन-सहन और चाल-ढाल में भी अनेक परिवर्तन हो गए।

हमारे सभ्य समाज की भाँति ऊंचे दरजे के पेड़-पौधों में भी, जैसा कि आप पौधे के अंग-विधान संबंधी परिच्छेद में देख चुके हैं, अलग-अलग काम के लिए अलग-अलग प्रबन्ध हैं। इनके प्रत्येक काम के लिए विशेष अंग हैं। परन्तु जिस तरह भिन्न-भिन्न व्यवसाय में तरह-तरह के औजार और अनेक प्रकार के सामान चाहिएँ, उसी तरह पौधों में भी अलग-अलग काम-काज के अनुसार भाँति-भाँति के साज-सामान की आवश्यकता पड़ती है, जिसका प्रबन्ध कलाकार प्रकृति ने बड़ी खूबी के साथ किया है। वस्तुतः सारे काम-काज एक ही कोशिका अथवा एक ही प्रकार की अनेक कोशिकाओं से मनमाने नहीं हो सकते। अतः पौधों में दो प्रधान गुणों का होना आवश्यक है। प्रथम, एक से अनेक कोशिकाओं का उत्पन्न होना, जिससे प्रत्येक काम के लिए अलग-अलग कोशिकाएँ हो जायँ; और दूसरे, कोशिकाओं में परिवर्तन होना, ताकि अनेक प्रकार की कोशिकाएँ बन जायँ, जिससे प्रत्येक काम के लिए आवश्यकतानुसार सुभीता हो जाय। पौधों में ये दोनों ही क्रियाएँ बड़े महत्व की हैं और हम इस ओर आगे के अध्याय में इन्हीं पर विचार करेंगे।

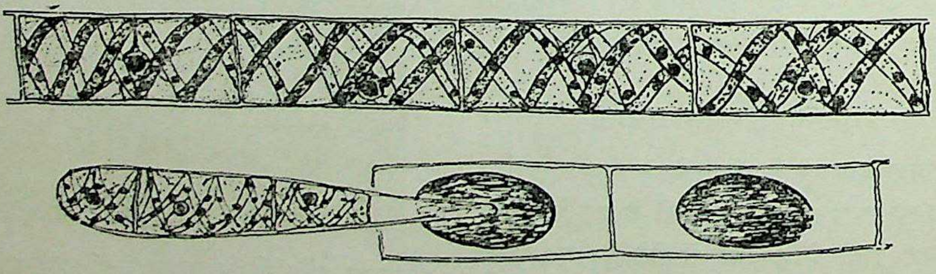

प्रारम्भ में स्पाइरोगायरा भी एककोष्ठी होता है। क्रमशः विभाजन द्वारा इसमें एक से अनेक कोशिकाएँ उत्पन्न होती हैं, परन्तु ये सब एक ही भाँति की होती हैं। इस बाल जैसे महीन शैवाल में शाखा-प्रशाखाएँ नहीं होतीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक कोशिका से अनेक कोशिकाओं की रचना—कोशिका-विभाजन

प्रत्येक जीव की रामकहानी एक ही कोशिका से आरम्भ होती है। बूटे-झाड़, वृक्ष-लता, पशु-पक्षी जितने भी प्राणी हैं, वे सब प्रारम्भ में एककोष्ठी ही होते हैं। इसी एक कोशिका से समय पाकर अनेक कोशिकाएँ हो जाती हैं, जिसमें परिवर्तन से उनके अनेक अंग उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार एक अणुवीक्षणीय वस्तु से बढ़कर विशाल से विशाल वृक्ष बन जाते हैं। किसी पौधे की बाढ़ केवल उसकी पूर्ववर्त्ती कोशिकाओं के बड़ा हो जाने से ही नहीं होती, वरन् उनकी संख्या के अधिक हो जाने से होती है। जिस समय आम, जामुन आदि पेड़ बढ़ते हैं, उनकी कोशिकाएँ विभाजित होने लगती हैं। एक कोशिका से दो, दो से चार, चार से आठ और आठ से अनेक कोशिकाएँ हो जाती हैं। इस प्रकार एक नन्हे से अंकुर से बढ़कर बड़े-बड़े वृक्ष खड़े हो जाते हैं। एककोष्ठी जीवों में भी विभाजन द्वारा एक से अनेक कोशिकाएँ हो जाती हैं, परन्तु अन्तर केवल इतना है कि इनमें प्रत्येक अलग होकर स्वतंत्र जीव हो जाती है (चित्र पृ० ६५४)। इसका पितृपिण्ड से कोई लगाव नहीं रहता। वह अलग होकर अपनी जीवनलीला स्वतंत्र रूप से आरम्भ करती है।

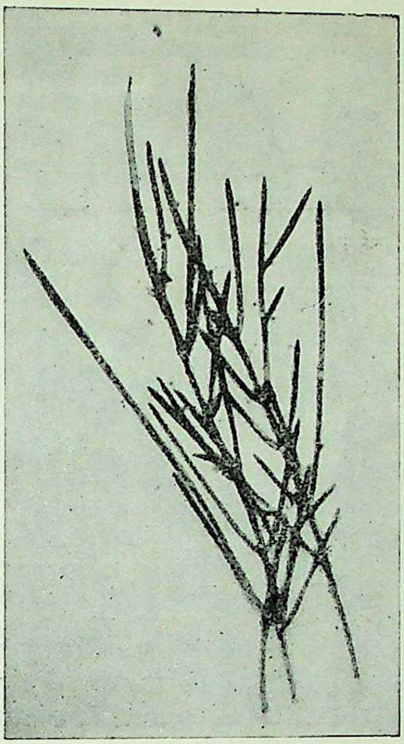

यह स्पाइरोगायरा जैसे एक शैवाल क्लैडोफोरा का चित्र है। इसकी भी सब कोशिकाएँ एक ही प्रकार की होती हैं; परन्तु इसमें अनेक शाखाएँ होती हैं।

स्पाइरोगायरा (चित्र पृ० ६५४), क्लैडोफोरा (इसी पृष्ठ का चित्र), यूलोथ्रिक्स अथवा और भी बहुत-से बूटे हैं, जिनमें यद्यपि पौधे की कोशिकाएँ विभाजित हो अनेक हो जाती हैं, फिर भी ये सारी की सारी एक ही प्रकार की रहती हैं और इसलिए उनमें अनेक कोशिकाएँ होने पर भी ऐसे पौधों में अलग-अलग काम-काज के लिए अलग-अलग कोशिकाएँ होने का उपयुक्त सुभीता नहीं पाया जाता।

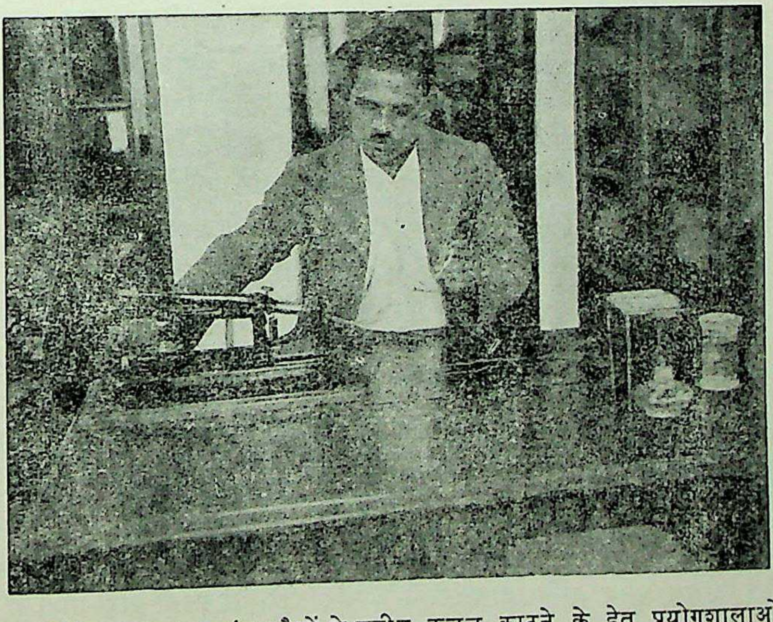

माइक्रोटोम नामक यह यंत्र पौधों के महीन कत्तल काटने के हेतु प्रयोगशालाओं में काम में लाया जाता है।

जीवधारियों में कोशिका विभाजन की यह क्रिया बड़े महत्व की है। इसके चार प्रधान भेद हैं। इनमें से परोक्ष कोशिका विभाजन मुख्य है। पहले हम इसी पर विचार करेंगे। इसी क्रिया द्वारा स्पाइरोगायरा जैसे पौधे में एक से अनेक कोशिकाएँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

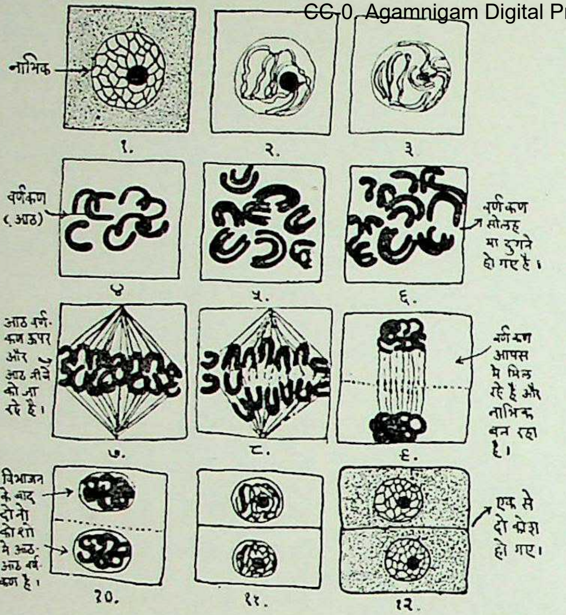

परोक्ष कोशिका-विभाजन : प्रस्तुत चित्र में १ से १२ तक क्रमशः यह दिखाया गया है कि किस प्रकार एक कोशिका के विभाजन से दो कोशिकाएँ बनने पर उनमें गुण-धर्मों का भी समान रूप से बँटवारा हो जाता है।

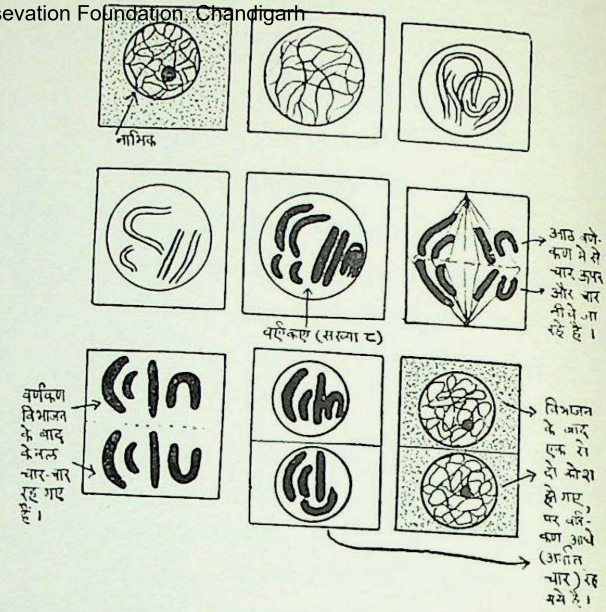

प्रत्यक्ष कोशिका-विभाजन : इसकी प्रधान विशेषता यह है कि जो कोशिकाएँ इस प्रकार उत्पन्न होती हैं, उनमें वर्ण-कणों की संख्या आधी रह जाती है। देखिए, एक से दो कोशिकाएँ बन गईं, फिर भी वर्णकण चार-चार ही रहे।

उत्पन्न होती हैं। इसी प्रकार यूलोथ्रिक्स की कोशिकाओं की वृद्धि होती है। वास्तव में पेड़ों में प्रायः सभी अंग इसी भाँति पैदा होते और बढ़ते हैं।

कोशिका-विभाजन-क्रिया को भली प्रकार समझने के लिए हमें कोशिका के सजीव अवयवों को अच्छी तरह जानना चाहिए। आप देख चुके हैं कि प्रायः सभी कोशिकाएँ अणुवीक्षणीय होती हैं। जिस अंग की कोशिकाएं विभाजित हो रही हों, उसके माइक्रोटोम नामक मशीन द्वारा सिलसिलेवार अत्यन्त महीन कत्तल हमें तैयार करने पड़ते हैं (पृ० ६५५ का चित्र) और इनकी अत्यन्त शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शक से जाँच करनी पड़ती है। जैसा कि आप पहले भी देख चुके हैं, प्रत्येक सजीव कोशिका में भित्तियों से परिवेष्टित कोशिका-द्रव्य होता है, जिसके बीचोबीच नाभिक रहता है (इसी पृष्ठ के बाएँ चित्र में १)। शुरू में नाभिक में ही परिवर्त्तन आरम्भ होते हैं। यही अंग कोशिका का अगुवा होता है। क्रमशः नाभिक कुछ बड़ा होने लगता है और नाभिकजाल कुछ मोटा हो लिपट-लिपटाकर और भी पेचदार हो जाता है (उपर्युक्त चित्र में २)। इस समय नाभिकजाल रंगों से सरलता से रँगा भी जा सकता है। अब अणुनाभिक विलीन हो जाता है। अन्त में नाभिकजाल के अलग-अलग कई टुकड़े हो जाते हैं। इन टुकड़ों को वर्ण-कण या 'क्रोमोसोम' कहते हैं (उपर्युक्त चित्र में ४)। प्रत्येक जीव में इनकी संख्या निश्चित होती है। बाकला की प्रत्येक कोशिका में १२ वर्ण-कण होते हैं। इसकी पत्ती, जड़, कली आदि सभी अंगों की कोशिकाओं में इनकी यही संख्या होती है। इनकी आकृति और रचना भी निश्चित होती है। जिस भाँति के ये एक कोशिका में होते हैं, उसी भाँति के दूसरी में। इनकी जो आकृति और बनावट बाकले की पत्ती की कोशिकाओं में होती है, वही उसकी गाँठ और पंखुड़ी की कोशिकाओं में भी होती है।

सभी जीवों में वर्ण-कण की संख्या निश्चित है। कोशिका-विभाजन के समय नाभिकजाल टूटकर इसी संख्या में बँट जाता है। यह बात बड़े महत्व की है। लोगों का विश्वास है कि इन्हीं वर्ण-कणों द्वारा माता-पिता के गुण संतानों में पहुँचते हैं। क्रमशः नाभिकजाल के टुकड़े और भी मोटे, परन्तु छोटे होने लगते हैं। अन्त में ये U या V की शक्ल के हो जाते हैं। अब ये कोशिका के बीचोबीच आ डटते हैं और धीरे-धीरे इनकी आड़ी-आड़ी दो फांकें हो जाती हैं। (उपर्युक्त चित्र में ५-६) इस प्रकार वर्ण-कण की संख्या दुगुनी हो जाती है। इस समय तक नाभिक-झिल्ली भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गायब हो जाती है। इसके पश्चात् प्रत्येक वर्ण-कण का अर्द्ध-भाग, जो अब सभी बातों में पूर्ववर्ती वर्ण-कण के समान होता है, कोशिका के एक सिरे की ओर, और उसका दूसरा भाग दूसरे सिरे की ओर खिसकने लगता है (उपर्युक्त चित्र में ७-८)। इस समय कोशिका में अत्यन्त महीन डोरे दिखाई देते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि वर्ण-कण इन्हीं डोरों के सहारे जा रहे हों। अन्त में वर्ण-कण कोशिका के दोनों ध्रुवों पर पहुँच जाते हैं (उपर्युक्त चित्र में ९)।

इसी बीच में कोशिका के मध्य में जीव-द्रव्य के कुछ अत्यंत छोटे-छोटे कण-से इकट्ठे होने लगते हैं (उपर्युक्त चित्र में ९-१०)। वे धीरे-धीरे और भी स्पष्ट हो जाते हैं और अन्त में इसी स्थान पर बहुत पतली आदि-भित्तिका बन जाती है (उपर्युक्त चित्र में ९-११)। अब वर्ण-कण आपस में फिर लिपट-लिपटा जाते हैं और इस प्रकार नाभिक बन जाता है, जिसके इर्द-गिर्द नाभिक-झिल्ली होती है। नाभिक में अब अणु-नाभिक भी बन जाता है और इस प्रकार कोशिका के दो सिरों पर दो नाभिक हो जाते हैं। आदि-भित्तिका के स्थान पर अब छिद्रोज-भित्तिका हो जाती है और इस प्रकार एक कोशिका से दो कोशिकाएँ हो जाती हैं (उपर्युक्त चित्र में १२)। अब ये दोनों ही प्रत्येक बात में पूर्ण विकसित कोशिका हो जाती हैं। दोनों ही में जीव-द्रव्य होता है। दोनों ही में नाभिक, कोशिका-रस और कोशिका की अन्य वस्तुएँ होती हैं। इस भाँति एक कोशिका से दो, दो से चार, चार से आठ और अन्त में असंख्य कोशिकाएँ पैदा हो जाती हैं।

स्मरण रखने की बात है कि यद्यपि एक कोशिका से अनेक कोशिकाएँ हो गईं, फिर भी इनके रूप और आकार प्रारंभ में वही रहते हैं, जो उस कोशिका के थे, जिससे ये उत्पन्न हुईं। इनमें वर्ण-कणों का भी रूप और आकार वही है, जो इनकी जन्मदात्री कोशिका में था। इनमें नाभिक, अणुनाभिक अथवा कोशिका की अन्य वस्तुएँ भी वही हैं, जो उस कोशिका में थीं, जिसके विभाजन से ये उत्पन्न हुईं। यथार्थ में इन कोशिकाओं के गुण और कर्तव्य उत्पन्न होने के समय वही होते हैं, जो उस आरंभिक कोशिका के थे, जिससे कि विभाजन-क्रिया द्वारा इनका जन्म हुआ।

कोशिका-विभाजन की दूसरी रीति प्रत्यक्ष कोशिका-विभाजन है। परोक्ष कोशिका-विभाजन की भाँति यह भी विचित्र क्रिया है। इसकी प्रधान विशेषता यह है कि जो कोशिकाएँ इस भाँति उत्पन्न होती हैं, उनमें वर्ण-कण की संख्या आधी रह जाती है (पृ० ६५६ का दाहिना चित्र)। इस रीति से पौधों की केवल जननेंद्रियों में ही विभाजन होता है। इस क्रिया द्वारा पौधों के रजोबिन्दु और परागकण बनते हैं। इसी प्रकार पर्णांग और उनके भाई-बन्धुओं तथा ब्रायोफाइटा के रेणु उत्पन्न होते हैं।

वर्ण-कण का इस प्रकार बँटकर आधा रह जाना भी महत्वहीन नहीं है। आप आगे चलकर देखेंगे कि जब गर्भाधान होता है, तो नर और मादा अंशों का संमिलन होता है। इस क्रिया में दोनों पैतृक नाभिकों का मिलन होता है और इस प्रकार माता और पिता के वर्ण-कण के संमिलन से सन्तान के नाभिक की रचना होती है। इसलिए यदि वर्ण-कण संमिलन के पहले आधे न रह गए होते, तो वे अब दूने हो जाते और इस भाँति सन्तान में अब इनकी संख्या दूनी हो जाती। आगे चलकर जब इन सन्तानों के फिर बीज उत्पन्न होते, तो उनमें वर्ण-कण की संख्या चौगुनी हो जाती। इस प्रकार ज्यों-ज्यों नस्ल पुरानी होती जाती, वर्ण-कण की संख्या बढ़ती ही चली जाती। परन्तु ऐसा नहीं होता, क्योंकि

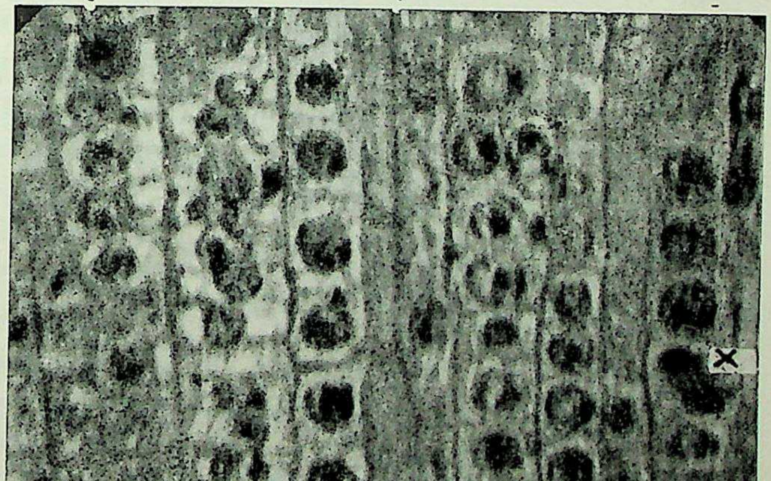

सूत से भी महीन प्याज की कतरन का सूक्ष्मदर्शक से लिया गया फोटो। चित्र में दाहिनी बाजू में किनारे पर जहाँ × चिह्न अंकित है, वहाँ कोशिका विभाजित होते दिखाई दे रही है।

© Aryamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

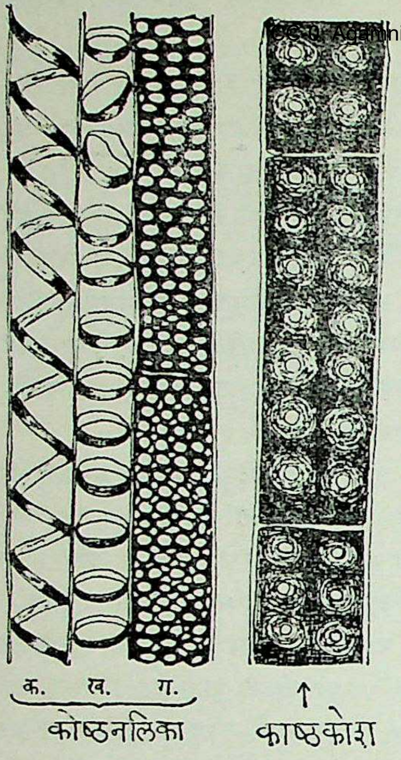

क—पेंचदार
ख—चूड़ीदार
ग—गर्तमय

काष्ठकर सबसे पहले चूड़ियों या छल्लों के रूप में जमता है। क्रमश: कोशिका ज्यों-ज्यों पुरानी होती जाती है, ये चूड़ियाँ निकटवर्ती होती जाती हैं।

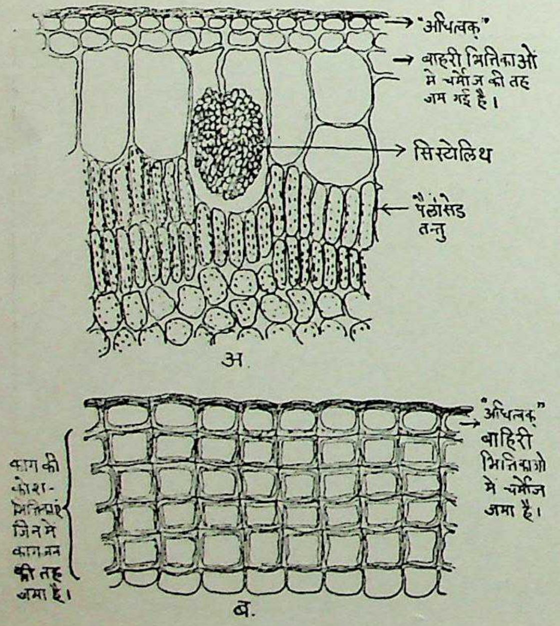

अधित्वक्, चर्मोज, पैलीसेड तंतु आदि। अ बरगद की पत्ती के आड़े कत्तल का चित्र है; ब में काग की कोशिका-भित्तियाँ दिखाई गई हैं।

प्रत्यक्ष कोशिका-विभाजन द्वारा वर्ण-कण की संख्या सदैव समान बनी रहती है। कोशिका-विभाजन के और भी कुछ भेद हैं, जिनसे आप आगे चलकर परिचित होंगे।

ऊपर जो दोनों क्रियाएँ वर्णन की गई हैं, उनके द्वारा जीवों में कोशिकाओं की संख्या बढ़ती है। कभी-कभी कुछ कोशिकाएँ आपस में सम्मिलित होकर नलिकाएँ बनाती हैं। इस प्रकार पेड़ों की 'काष्ठ' और 'दुग्ध' नलिकाएँ बनती हैं। इन दोनों का हम आगे चलकर उल्लेख करेंगे।

कोशिकाओं में परिवर्तन——एक से अनेक प्रकार की कोशिकाएँ कैसे बनती हैं?

जैसा कि आप देख चुके हैं, विभाजन द्वारा एक से अनेक कोशिकाएँ हो जाती हैं और इस प्रकार क्लैमाइडोमोनस जैसे निम्नकोटि के जीवों में जो क्रियाएँ एक कोशिका द्वारा होती हैं, उनके लिए अब अनेक कोशिकाएँ हो जाती हैं। परन्तु यदि ये सारी कोशिकाएँ एक-सी रहें, जैसी कि क्लैडोफोरा (चि० पृ० ६५५) या स्पाइरोगायरा (चि० पृ० ६५४) जैसे पौधों में होता है, तो पौधों के सारे प्रश्न हल नहीं हो सकेंगे और उच्च कोटि के पौधों में भाँति-भाँति के काम-काज के लिए अलग-अलग सुभीता नहीं हो सकेगा। जैसे हमारे सभ्य समाज में व्यवसाय और पेशे के अनुसार रहन-सहन आदि में अन्तर पड़ता है——तरह-तरह की चीजें बनाने के लिए जुदा-जुदा सामान हमें चाहिए——उसी प्रकार पौधों में भी भाँति-भाँति के काम-काज अलग-अलग करने के लिए इनकी कोशिकाओं में परिवर्तन होना आवश्यक है।

आप देख चुके हैं कि प्रारम्भ में सारी कोशिकाएँ एक समान होती हैं। इनकी बनावट और आकृति एक ही भाँति की होती है (चि० पृ० ६५७)। उच्च कोटि के पौधों में अंकुर के बाहर निकलते ही पौधे के सामने अनेक समस्याएँ उपस्थित हो जाती हैं। उसे तरह-तरह के कामों के लिए अलग-अलग व्यवस्था करनी होती है। उसकी पत्तियों को भोजन तैयार करना पड़ता है। इसलिए उनकी कोशिकाओं में इस काम के लिए कोई-न-कोई विशेषता होनी चाहिए। इन्हें आँधी और तूफान भी सहन करने पड़ते हैं, इसलिए इसका भी प्रबन्ध होना चाहिए। पेड़ के तने को शाखों और दूसरे अंगों को धारण करना पड़ता है और कभी-कभी उसे हजारों मन का बोझ उठाना पड़ता है। कितने ही आँधी और तूफान आएँ, फिर भी उसे इस बोझ को बराबर धारण किए रहना होता है। इसलिए तने में इसकी सामर्थ्य होना चाहिए। जड़ों को खाद्य पदार्थों के संग्रह के साथ-साथ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चाहे पेड़ का रोपण भी करना होता है। चाहे कितनी ही प्रचंड वायु चले अथवा प्रबल तूफान का सामना होता, उन्हें बराबर पेड़ को स्थान पर कायम रखना पड़ता है। जड़ों को अन्य दुर्घटनाओं का सामना करने का भी प्रबन्ध करना पड़ता है। इसलिए आवश्यकतानुसार पेड़ों की कोशिकाओं में भाँति-भाँति के परिवर्तन होकर नाना प्रकार के तन्तुओं की रचना हुई, जिनके संयोग से उनके अंग बने।

कोशिका-भित्ति में परिवर्तन

जैसे-जैसे कोशिका पुरानी होकर बढ़ती है, उसकी सूरत-शक्ल में अनेक परिवर्तन हो जाते हैं। जैसा आप देख चुके हैं, ज्यों-ज्यों कोशिका पुरानी होती है, जीव-द्रव्य सारी कोशिका को भर नहीं सकता और इस प्रकार उसमें अनेक नन्हें-नन्हें कुंड पड़ जाते है जिनके सम्मेलन से मुख्य कुंड बन जाता है। कोशिका की बाढ़ के कारण कोशिका-भित्ति पर खिचाव पड़ता है। मूलतः ऐसी परिस्थिति में जैसे-जैसे ये बढ़ती वैसे ही यदि इनमें दूसरी वस्तुओं की तह जकमर दृढ़ न हो जाती, तो तनी हुई रबर की झिल्ली की भाँति ये अधिकाधिक पतली होती जातीं। परंतु साधारण कोशिकाओं में दृढ़ करनेवाली वस्तुएँ इतनी शीघ्रता से दीवालों में जमती हैं कि उनकी बाढ़ के साथ उनकी भित्तियां और भी मजबूत तथा मोटी होती जाती हैं।

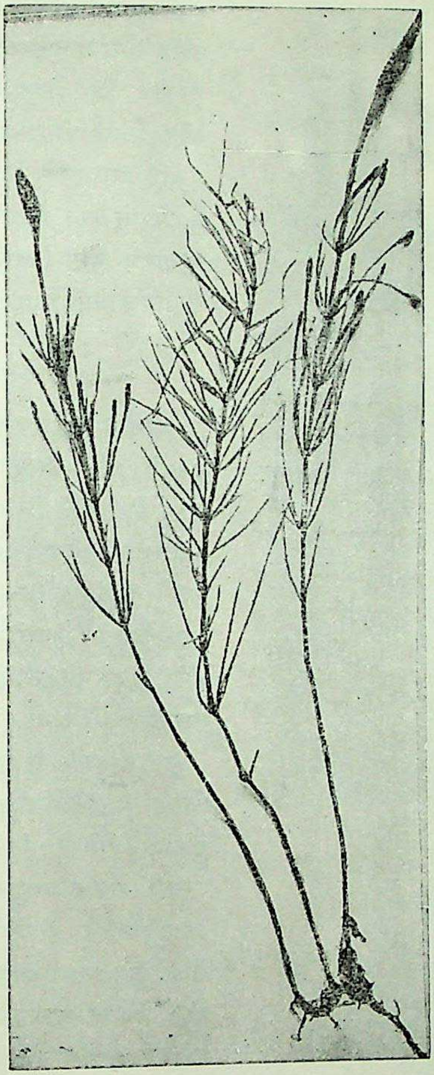

हरजुरी के पौधे की भित्तियों में सिलिका होती है। इसीसे यह दृढ़ और खुरदरा होता है।

काष्ठकर

कोशिका-भित्तियों को दृढ़ करनेवाली वस्तुओं में सबसे प्रथम स्थान काष्ठकर (लिग्निन) का है। नीम, बबूल, शीशम, सागौन, देवदार, आबनूस आदि पेड़ों की लकड़ी का कठीलापन और मजबूती इसी वस्तु के कारण है। कोशिका में काष्ठकर का निर्माण जीव-द्रव्य द्वारा होता है। जिस समय यह वस्तु बनने लगती है, इसकी तह सारी भित्ति पर समान रूप से नहीं जम जाती, बल्कि किसी स्थान पर वह रहती है और किसी पर नहीं रहती। सबसे पहले काष्ठकर चूड़ियों या छल्लों के रूप में भित्तियों पर जमता है। क्रमशः कोशिका ज्यों-ज्यों पुरानी होती हैं, ये चूड़ियाँ निकटवर्ती होती जाती हैं और इस प्रकार काष्ठकर की तह जालीदार हो जाती है। अन्त में जाली इतनी घनी हो जाती है कि कुछ अत्यन्त नन्हें-नन्हें स्थानों को छोड़कर सारी कोशिका-भित्ति पर काष्ठकर की तह जम जाती है और भित्तियाँ गर्तमय हो जाती हैं (पृ० ६५८ का ऊपरी चित्र)। वे स्थान, जिस पर काष्ठकर नहीं जमता, गड्ढे सरीखे दिखाई देते हैं। पास-पास की भित्तियों में ये गड्ढे आमने-सामने होते हैं और इसलिए ऐसे स्थानों में होकर रस एक कोशिका से दूसरी कोशिका में सुगमता से आ-जा सकता है। प्रायः इन गड्ढों के बीच में अत्यन्त महीन छेद भी होते हैं, जिनमें होकर जीव-द्रव्य के रेशे एक कोशिका से दूसरी कोशिका में पहुँचते हैं और इस प्रकार सारी कोशिकाओं का जीव-द्रव्य आपस में मिला रहता है। इसी अनोखी क्रिया द्वारा कोशिका-भित्ति के मोटे और दृढ़ हो जाने पर भी कोशिका के अन्दर वस्तुओं का आना-जाना बंद नहीं होता।

कागजन

दूसरी रासायनिक वस्तु, जिसकी तह प्रायः कोशिका-भित्ति में जवा हो जाती है, कागकर या कागजन (सुब्रिन) है (पृ० ६५८ के निचले चित्र में ब)। इसके जम जाने से भी कोशिका-भित्ति के गुणों के परिवर्तन हो जाते हैं। ऐसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

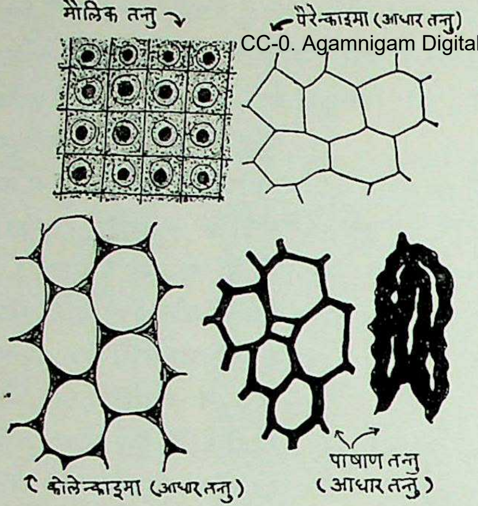

विविध प्रकार के तंतु-संस्थान । कोशिकाओं की वृद्धि और उनके परिवर्तन के फलस्वरूप अनेक प्रकार की कोशिकाएँ बन जाती हैं, जिनके अपने-अपने विविध कार्यों के अनुसार विविध कोशिका-समूह या तंतु संस्थान बन जाते हैं ।

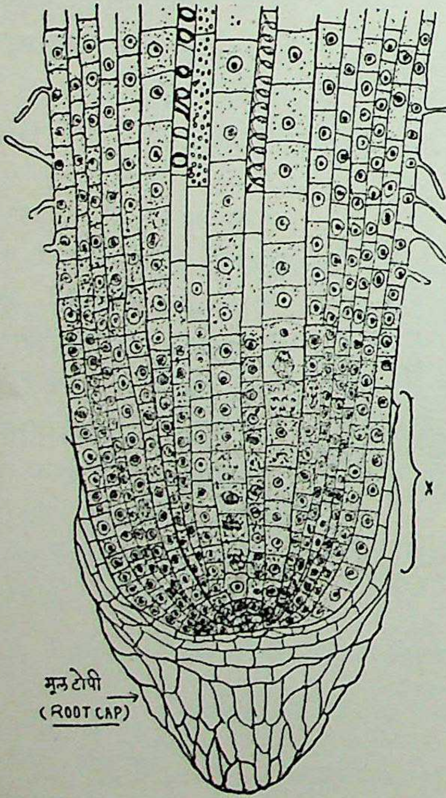

जड़ की एक कत्तल । × चिह्न द्वारा विभाजित होनेवाली कोशिकखाएँ दिखाई गई हैं । ये क्रमशः ज्यों-ज्यों पुरानी होती हैं, इनमें परिवर्तन होकर विविध भाँति के तन्तु बन जाते हैं ।

कोशिकएँ यद्यपि कठीली नहीं होतीं, परन्तु वे दृढ़ और चिमड़ी होती हैं ।

कागजन में होकर जल प्रवेश नहीं कर सकता । अतः इस वस्तु की यह विशेषता पेड़ों के लिए परम उपयोगी है, क्योंकि जिन अंगों से जल-त्याग का भय रहता है, वहाँ पर इसके जम जाने से फिर हानि होने की सम्भावना नहीं रहती । जिस समय पेड़ों में गौण वृद्धि होने लगती है, तने और शाखों की छाल तनाव के कारण फट जाती है । इस प्रकार जल-त्याग से पेड़ को हानि पहुँचने का भय रहता है, परन्तु काग के निर्माण से यह भय जाता रहता है। साधारण काग (कार्क) एक प्रकार के शाहबलूत के पेड़ से उत्पन्न होती है ।

चर्मोज

तीसरी वस्तु जिसके जमा होने से कोशिका-भित्तियों के गुण में परिवर्तन हो जाते हैं, चर्मोज (क्यूटिन) है । पृष्ठ ६५८ के निचले चित्र में ब) । यह वस्तु प्रायः अधित्वक् की कोशिकाओं की सबसे बाहरी पर्त में जमा होती है । यह भी काग की भाँति जल के लिए अप्रवेशनीय है और इसलिए जल-त्याग को रोकती है । यह कोशिकाओं को जल से गीला होने से भी बचाती है । अधिकतर यह पदार्थ पत्तियों की बाहरी तह में जमा होता है ।

इन वस्तुओं के अलावा और भी ऐसी अनेक वस्तुएँ हैं, जिनसे कोशिका-भित्ति के रासायनिक और भौतिक गुणों में परिवर्तन होते हैं । सिलिका इसी प्रकार की वस्तु है । इस वस्तु की तह अधिकतर घास और बेत की कोशिका-भित्ति में जमा होती है । हरजुरी (एक्वीजीटम) (पृ० ६५६ का चित्र) में भी यह बाहरी कोशिकाओं की बाहरी दीवालों में जमा होती है । सिलिका पौधों को मजबूत करती है । कभी-कभी रवे भी कोशिका-भित्ति में जमा हो जाते हैं । सिस्टोलिथ एक प्रकार के रवों का समूह है, जो बरगद-जाति के वृक्षों की पत्तियों के बाहरी पर्त्तों पर जमा होता है (पृ० ६५८ का निचला चित्र) । सूक्ष्मदर्शक से देखने पर यह अंगूर के गुच्छे-सरीखा दिखाई देता है । इस गुच्छे में डंठल काष्ठोज का होता है और अंगूर-सरीखे दाने खनिज रवे हैं ।

कोशिकाओं की बाढ़-वृद्धि और उनके भाँति-भाँति के परिवर्तन से अनेक प्रकार की कोशिकाएँ बन जाती हैं । इनके कार्यक्रम अनेक भाँति के हो जाते हैं और इस प्रकार अनेक कोशिका-समूह या तन्तु (टिश्यू) हो जाते हैं, जिनके मेल-जोल से विविध भाँति के तन्तु-संस्थान बन जाते हैं । इस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकार पौधों के प्रत्येक अंग में कई पर्त्त हो जाते हैं, जिनकी रचना भाँति-भाँति की होती है (पृष्ठ ६६० का ऊपरी चित्र तथा पृ० ६६२ का ऊपरी चित्र)। इसकी परीक्षा हम गन्ना, कद्दू या अन्य किसी साधारण पौधे की जाँच से कर सकते हैं। इनमें अनेक प्रकार के तन्तु मिलेंगे। इनके रेशे-रेशे में भाँति-भाँति की चित्रकारी दिखाई देती है, लेकिन प्रत्येक तन्तु की कोशिकाएँ एक तरह की होती हैं। इनकी आकृति समान होती है और इनके कार्य और कर्त्तव्य भी एक से होते हैं।

साधारण प्रकार से तन्तु-संस्थान के चार मुख्य भेद हैं—मौलिक (मेरिस्टेमैटिक); आधार (फंडामेंटल), रक्षक (प्रोटेक्टिव) और प्रवाहक (कंडक्टिव) तन्तु-संस्थान।

मौलिक तन्तु-संस्थान

इस तन्तु की कोशिकाएँ सदैव प्रारम्भिक अवस्था में रहती हैं। इनमें विभाजन-सामर्थ्य भी बराबर बना रहता है (पृष्ठ ६५७ तथा पृष्ठ ६६० का ऊपरी चित्र)। ये पेड़ के बढ़नेवाले भागों में होते हैं और इन्हीं से कोशिकाओं की संख्या बढ़ती रहती है। मौलिक तन्तु की कोशिकाएँ छोटी होती हैं। उनकी भित्तिकाएँ कोमल और छिद्रोज की होती हैं और उनमें जीव-द्रव्य अन्य कोशिकाओं की अपेक्षा अधिक होता है। उनमें कुंड भी प्रायः नहीं होते, और यदि होते हैं, तो अत्यन्त छोटे होते हैं। इन कोशिकाओं का नाभिक भी बड़ा होता है। यथार्थ में ऐसे ही तन्तुओं में परिवर्तन से अन्य तन्तु बनते हैं (पृष्ठ ६६० का निचला चित्र)।

आधार-तन्तु

पौधों के अंगों के कोमल भाग प्रायः इन्हीं तन्तुओं से बनते हैं। शाखों और जड़ों के वल्क (कॉर्टेक्स) और हीर (पिथ), पत्तियों के अधित्वक् (एपिडर्मिस) और नसों के अतिरिक्त अन्य भाग, एवं फलों के अधिकांश भाग ऐसे ही तन्तुओं के बने होते हैं। बहुधा इस प्रकार के तन्तुओं की कोशिका-भित्ति कोमल होती है और इन कोशिकाओं में कुंड भी बड़े होते हैं। ऐसी कोशिकाओं में जीव-द्रव्य जैसी वस्तुएँ बहुत समय तक सजीव रहती हैं। इन तन्तुओं के कई भेद हैं और इनके कर्त्तव्य भी अनेक हैं (पृ० ६६० का ऊपरी चित्र)। पत्तियों में इन्हीं में से एक भाँति का तन्तु होता है, जिसे पैलीसेड तन्तु कहते हैं (चि० पृ० ६५८)। इसकी कोशिकाओं में क्लोरोप्लैस्ट्स होते हैं, जिनके द्वारा कार्बोहाइड्रट-संश्लेषण होता है। तनों और शाखों में एक प्रकार का तन्तु

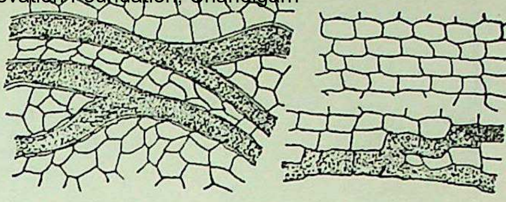

दुग्ध-नलिकाएँ। जो, कोशिकाओं के पारस्परिक सम्मिलन से बनती है।

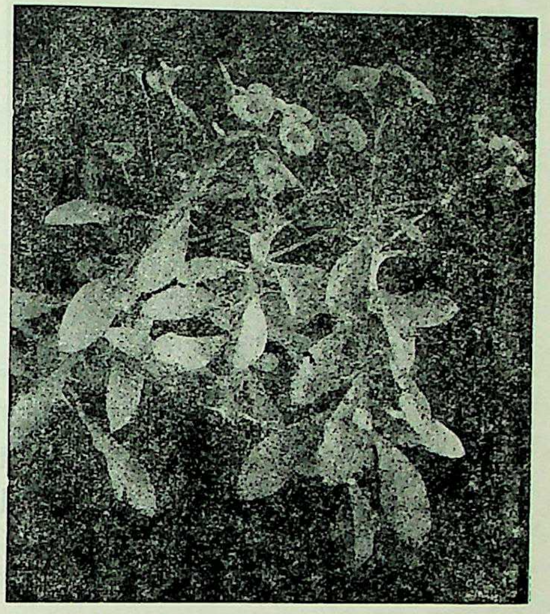

एक तरह का थूहड़। इसके दुग्ध में माड़ी के दाने होते हैं।

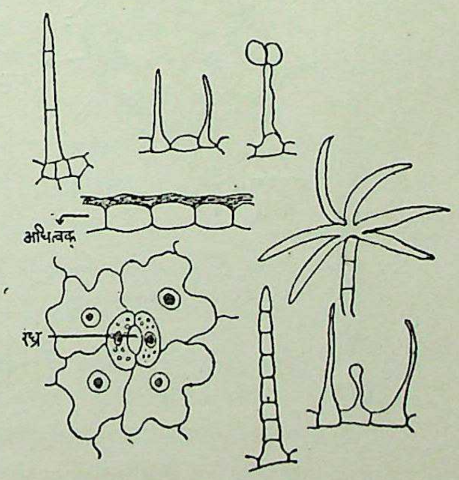

रंध्र और अधित्वक्। रंध्र और अनेक प्रकार के रोम अधित्वक् में ही परिवर्तन से उन्नत होते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

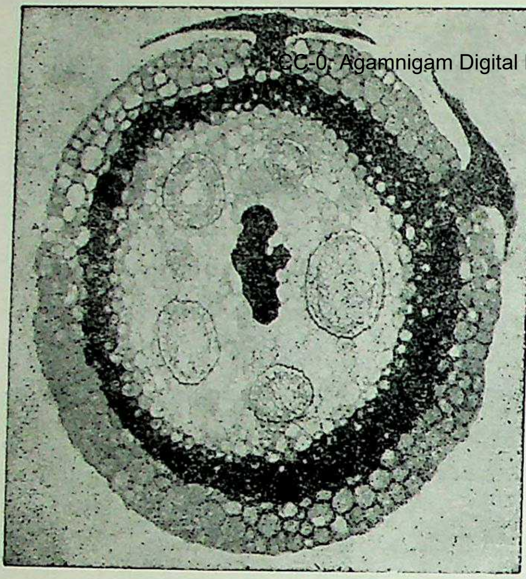

निफोबोलस नामक पर्णाङ्ग के मूलस्कंध की परिवर्द्धित झाँकी। बाहरी परिधि पर दाहिनी ओर तथा ऊपर दो स्केल दिखाई दे रही हैं।

होता है, जिसे पाषाणतन्तु (स्क्लेरेन्कायमा) कहते हैं (चि० पृ० ६६०)। इसकी कोशिकाएँ काष्ठकर की तह जम जाने के कारण अत्यन्त दृढ़ होती हैं और इस प्रकार यह तन्तु पेड़ों को मजबूत करता है। वृक्षों के दुग्ध-तन्तु भी इसी समूह के हैं। दुग्ध-तन्तु खास-खास जाति के ही वृक्षों में होते हैं। इन तन्तुओं में विशेष भाँति की नलिकाएं होती हैं, जिनमें

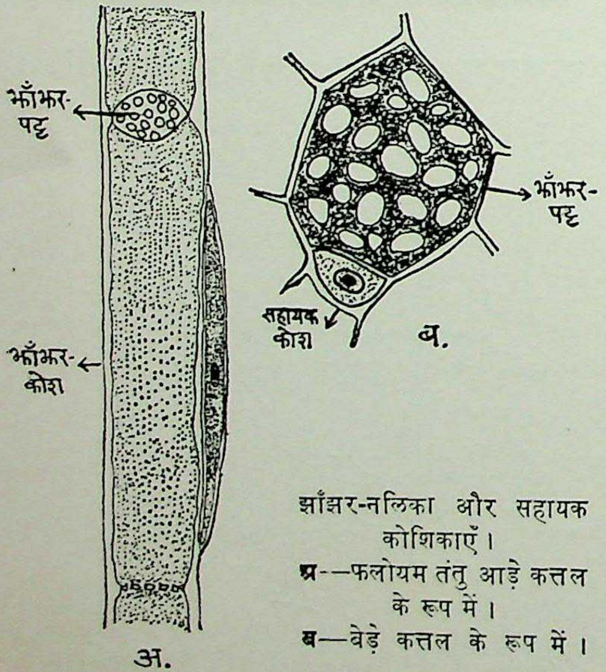

झाँझर-नलिका और सहायक कोशिकाएँ।
अ—फलोयम तंतु आड़े कत्तल के रूप में।
ब—वेड़े कत्तल के रूप में।

दूधिया रस भरा रहता है। दुग्ध-नलिकाओं के दो मुख्य भेद हैं। एक प्रकार की नलिकाएँ कोशिकाओं के आपस में संमिलन से बनती हैं (पृ० ६६१ का ऊपरी चित्र)। वे कोशिकाएँ, जिनसे ये नलिकाएँ बनती हैं, कोई विशेष क्रम में नहीं होतीं और न इनकी तरतीबवार शाखा-प्रशाखाएँ ही होती हैं। ये नलिकाएँ प्रायः आपस में मिल-जुल जाती हैं और इस प्रकार एक जाल-सा बन जाता है। दुग्ध-नलिकाओं के बनने की दूसरी रीति यह है कि वे कोशिकाएँ, जिनसे ऐसी नलिकाएँ बनती हैं, विभाजन द्वारा बढ़ती रहती हैं, परन्तु उनमें आड़ी कोशिका-भित्ति नहीं बनतीं और इस प्रकार एक लम्बी संयुक्त कोशिका (कोइनोसाइट) बन जाती हैं।

दोनों ही प्रकार की दुग्ध-नलिकाओं की कोशिका-भित्तियाँ कुछ मोटी होती हैं, परन्तु वे छिद्रोज ही की होती हैं। जीव-द्रव्य और नाभिक भी इनमें सजीवावस्था में होते हैं। इस जाति के कुछ वृक्षों के सम्बन्ध में आप पिछले पृष्ठों में पढ़ चुके हैं। आप देख चुके हैं कि किसी पेड़ का दूध गहरा दूधिया, किसी का पीला, किसी का गुलाबी और किसी का पानी-सरीखा होता है। इस रस में कुछ वस्तुएँ घुली और कुछ अवलम्बित रहती हैं। ये प्रायः मलोत्सर्जित वस्तुएँ होती हैं। अफीम, गटापार्चा, रबर, खालिन, लोबान और अनेक भाँति के गोंद इसी तरह उत्पन्न होते हैं। कभी-कभी ऐसी नलिकाओं में पौष्टिक पदार्थ भी होते हैं, जो नाइट्रोजनीय या अनाइट्रोजनीय होते हैं। थूहड़ (पृ० ६६१ का बिचला चित्र) के दूध में माड़ी के दाने भी होते हैं। इससे स्पष्ट है कि दुग्ध-नलिकाएँ किसी सीमा तक खाद्य पदार्थों के संचालन और उनके भांडार का भी काम देती हैं।

रक्षक तन्तु

पौधों के सभी कोमल अंगों में बाहर की ओर रक्षक तन्तु की एक पर्त होती हैं, जिसे अधित्वक् (एपीडर्मिस) कहते हैं (पृ० ६५८ तथा ६६१ के निचले चित्र)। अधित्वक् की बाहरी भित्तियों में चर्मोज होता है, जिससे जल-त्याग की आशंका नहीं होती। बहुधा पौधा में अधित्वक् इकहरी होती है और इसकी कोशिकाएँ सजीव होती हैं। इनमें जीव-द्रव्य और नाभिक भी रहता है। कभी-कभी इन कोशिकाओं में परिवर्तन भी होते हैं। जड़ों के सिरे की मूल टोपी, जो जड़ के कोमल अंग की रक्षा करती हैं, अधित्वक् से ही बनती है (पृ० ६६० का निचला चित्र)। बरगद (पृ० ६५८ का निचला चित्र) और रबर के जैसे पेड़ों में अधित्वक् के कई पर्त

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

होते हैं। पत्तियों तथा पेड़ के अन्य वायुवर्ती अंगों में अनेक सूक्ष्म छिद्र होते हैं, जिन्हें 'रंध्र' (स्टोमाटा) कहते हैं। प्रत्येक 'रंध्र' में दो 'रक्षक कोशिकाएँ' होती हैं (पृ० ६६१ का निचला चित्र)। रंध्र का खुलना या बन्द होना इन्हीं कोशिकाओं के अधीन रहता है। परिस्थिति के अनुसार ये आपस में जुट जाती हैं या अलग-अलग हो जाती हैं और इस प्रकार रंध्र खुलते-मुंदते रहते हैं। अधित्वक् की कोशिकाओं में परिवर्तन से कभी-कभी अनेक भाँति के रोम बन जाते हैं (पृ० ६६१ का निचला चित्र)। बहुधा पत्तियों पर वर्तमान रोम इसी भाँति के होते हैं। गुलाब, बैंगन, भटकटैया आदि के काँटे भी इन्हीं में से हैं। पहाड़ों पर उगनेवाली बिच्छू-बूटी (अर्टिका) के काँटे भी इसी प्रकार के हैं। पर्णांग की पत्तियों पर उगे हुए घने रोम और उनके मूल स्कंध (र्‌हाइजोम) पर ढाल जैसी स्केल (पृष्ठ ६६२ का ऊपरी चित्र) भी अधित्वक् से ही उत्पन्न होती हैं। ये सभी रक्षक तन्तुओं में हैं। जड़ों और शाखों के पुराने अंगों में अधित्वक् के स्थान पर कार्क उत्पन्न हो जाता है। इसके कई पर्त्त होते हैं और इनमें कागजन की तह जमा हो जाती है।

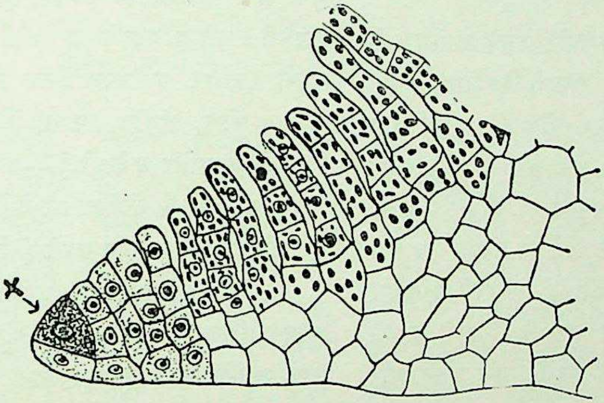

एक साधारण लिवरवर्ट 'रिक्सिया'। इस चित्र से इन जाति के पौधों की आन्तरिक रचना का पता चलता है। सारी कोशिकाएँ × चिह्नवाली कोशिकाओं के विभाजन से उत्पन्न होती हैं। ये कोशिकाएँ यद्यपि अनेक होती हैं, पर उनकी रचना अत्यन्त सरल होती हैं, उनमें तंतु-विभेद नहीं होता।

प्रवाहक तन्तु

पौधों में खाद्य रसों के संचार का काम ऐसी कोशिकाओं द्वारा होता है, जो बहाव के सिधान में बहुत लम्बी होती हैं और जिनकी आकृति भी असाधारण होती है। इस तन्तुसमूह में काष्ठ या जाइलेम (चित्र पृ० ६५८) और फ्लोयम (पृ० ६६२ का निचला चित्र) हैं। इन दोनों ही के आकार, आकृति तथा कर्त्तव्य में बड़ा अन्तर है, परन्तु अन्य तन्तुओं की भाँति ये भी मौलिक तन्तु से उत्पन्न होते हैं। काष्ठ के प्रधान अंग काष्ठ-कोशिका और काष्ठ-नलिका हैं (पृ० ६५८ का ऊपरी चित्र)। इन दोनों ही की कोशिका-भित्ति मोटी और कठीली होती है और दोनों का जीव-द्रव्य भी बाढ़ समाप्त होने के पश्चात् ही समाप्त हो जाता है। दोनों ही में काष्ठकर की पर्त्त बृढ़ होने की क्रिया में छल्लेदार, चूड़ीदार अथवा गर्त्तमय या अन्य भाँति की हो जाती है (चि० पृष्ठ ६५८)। इनमें अन्तर केवल यही है कि काष्ठ-कोशिका एककोष्ठी होती है, और वह एक कोशिका में परिवर्तन से ही बनती है, परन्तु काष्ठ-नलिका एक सिधान की अनेक कोशिकाओं के सम्मेलन से बनती है। इन कोशिकाओं की आड़ी भित्तियाँ क्षीण होकर गल जाती हैं और इस प्रकार इंच-दो-इंच से लेकर कई गज तक लम्बी नालियाँ बन जाती हैं। इस प्रकार की नलिकाएँ केवल गुप्तबीजी पौधों में ही होती हैं, शेष नलिकायुक्त पौधों में केवल काष्ठ-कोशिका ही होती है। काष्ठ-कोशिका और काष्ठ-नलिकाओं में ही होकर जड़ द्वारा संचित रस पत्तियों में पहुँचते हैं और इसलिए पौधे का सारा नलिकाक्रम आपस में मिला रहता है। जड़ के सिरे से, जहाँ से नलिकाएँ शुरू होती हैं, चोटी की ऊँची से ऊँची पत्ती तक की नलिकाओं का आपस में सम्बन्ध रहता है। भित्तियों के काष्ठ द्वारा दृढ़ और मोटा होने के कारण पेड़ के अंग मजबूत भी हो जाते हैं और इस प्रकार ये तन्तु जड़ों द्वारा संचित रसों को पेड़ के अन्य अंगों में पहुँचाने के साथ-साथ उन्हें सुदृढ़ भी बनाते हैं।

फ्लोयम में होकर संयोजित खाद्य पदार्थों का संचार होता है। इस तन्तु में दो प्रकार की रचना होती है--झाँझर-नलिका और सहायक कोशिका। झाँझर-नलिकाएँ एक सिधान की एक कतार में वर्तमान कोशिकाओं से बनती हैं। इन कोशिकाओं की आड़ी दीवालें विशेष प्रकार से मोटी और परिवर्तित हो जाती हैं। इनमें अत्यन्त महीन गड्ढे होते हैं, जिन्हें झाँझर-पट्ट कहते हैं (पृ० ६६२ का निचला चित्र)। कभी-कभी ऐसे गड्ढे पार्श्विक भित्तियों में भी होते हैं। गड्ढों के कारण निकटवर्ती झाँझर-नलिकाओं का आपस में संसर्ग रहता है। झाँझर-नलिकाओं की कोशिकाएँ नाजुक और लम्बी होती हैं। इनमें कोशिकाद्रव्य होता है, परन्तु नामिक जज्ब हो जाता है। जीव द्रव्य के अतिरिक्त इनमें अंडसित की भाँति की एक और भी वस्तु रहती है। इनमें नन्हें-नन्हें माड़ी के दाने भी रहते हैं। झाँझर-नलिकाओं के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

साथ-साथ गुप्तबीज पौधों में सहायक कोशिका भी होती हैं। सहायक कोशिका की भित्तियाँ कोमल होती हैं और इनमें जीव-द्रव्य और नाभिक दोनों ही होते हैं। काष्ठ-नलिका और झांझर-नलिका आदर्श रूप से गुप्तबीज पौधों में ही होती हैं।

इस परिच्छेद में हमने पौधों की आन्तरिक अवस्था पर कुछ प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। ऐसा तन्तु-विधान जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है, केवल ऊँची कोटि के पौधों में ही होता है। शैवालादि, छत्राक, लाइकेन अथवा लिवरवर्ट् (पृष्ठ ६६३ का चित्र), आदि निम्न श्रेणी के पौधों की रचना अत्यन्त सरल होती है। इन पौधों में तन्तु-विभेद बहुत कम होता है। इनकी कोशिकाएँ भी सारी एक सरीखी होती हैं। इन पौधों की कोशिकाओं की भित्तियां भी पतली ही होती हैं।

उच्च कोटि के पौधों की रचना और उनके कार्यक्रम के प्रबन्ध पर विचार करने से अब आपको विश्वास हो गया होगा कि ये अद्भुत और असाधारण जीव हैं। इसमें रंच मात्र भी सन्देह नहीं कि इनकी बनावट तथा कार्य-प्रणाली की कितनी ही बातें हैं, जिनमें ये मनुष्य को छोड़ किसी भी अन्य जीव से कम नहीं। प्रत्येक पौधे की तुलना हम एक सुन्दर जीते-जागते नगर से कर सकते हैं, जिसमें प्रतिक्षण कितनी ही नई इमारतें बनतीं और पुरानी गिरती रहती हैं; जिसमें कितनी ही लम्बी-चौड़ी सड़कें, तंग रास्ते और गली-कूचे हैं; जहां अलग-अलग काम के लिए अलग-अलग प्रबन्ध है। एक ओर अनेक कारखाने हैं, जहाँ मनों निशास्ता बन रहा है। दूसरी तरफ कितनी ही डेरियाँ हैं, जहाँ घड़ों दूध जमा है। किसी ओर सैकड़ों शक्कर के कारखाने हैं, जहाँ गुड़, मिश्री आदि, तैयार हो रहे हैं। कहीं पर रसायन-शालाएँ हैं, जहां अनेक प्रकार के रवे बन रहे हैं। कहीं पर इत्र और तेल के कारखानें हैं, जहाँ भाँति-भाँति के सुगंधित द्रव्य बनाए जा रहे हैं। किसी ओर रँगरेजों और रंगसाजों की दूकानें हैं, जहाँ कितने ही प्रकार के रंग और वार्निश तैयार हो रहे हैं। कितने ही चितेरे और चित्रकार एक ओर बैठे अपने काम में व्यस्त हैं। कितने ही चरखे और करघे चल रहे हैं। हम इन नन्हें-नन्हें कारीगरों को काम में निरन्तर संलग्न पाते हैं। सभी अपनी-अपनी धुन में मग्न हैं। कितनी ही क्रियाएँ हैं, जिन्हें हम सूक्ष्मदर्शक से देख भी सकते हैं, यद्यपि यह कोई नहीं समझ पाता कि उनके विचित्र परिणाम किस प्रकार होते हैं। ज्यों-ज्यों हम इन सूक्ष्म, सजीव, पारदर्शी, आकृतिहीन जीव-द्रव्य के कणों को गतिवान् देखते हैं——उन्हें अपने नाजुक रेशे बढ़ाते या मंद-मंद गति से कोशिकाओं में हिलते-डुलते देखते हैं—— हम विस्मयपूर्वक प्रश्न करते हैं कि आखिर यह कैसे होता है? परन्तु हमारे इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं मिलता। सूक्ष्म कोशिकाएँ अपने काम की धुन में मस्त हैं। हमारा प्रश्न ज्यों-का-त्यों रहस्यपूर्ण बना रह जाता है।

सैकड़ों शाखाओं से युक्त यह विशाल विटप कहने को एक वृक्ष है, परन्तु वस्तुतः यदि इसके कार्य-कलाप का संपूर्ण विवरण दिया जाय तो इसकी तुलना एक आधुनिक महानगर से हमें करनी होगी, जिसमें कितनी ही इमारतें, कितनी ही सड़कें और तंग गली-कूचे कितने ही कारखाने और रसायनशालाएँ आदि होती हैं, जिनका अपना-अपना सुनिश्चित कार्य होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भोजन की खोज में :: जड़ों की कहानी

इस विभाग के पिछले एक प्रकरण में पौधे के अंग-विधान का विवेचन करते समय हम उसके एक अति महत्वपूर्ण अंग 'जड़' की संक्षेप में कुछ चर्चा कर चुके हैं, जिसका कि कार्य पौधे को जमीन में रोपना और उसके लिए खाद्य पदार्थों का संग्रह करना है। आइए, अब पौधे के विविध अंगों का विस्तारपूर्वक अध्ययन प्रारम्भ करते समय पहले उसके उक्त आधाररूपी अंग 'जड़' को ही लें और देखें कि पौधे की जीवन-कहानी में उसका कितना महत्वपूर्ण स्थान है।

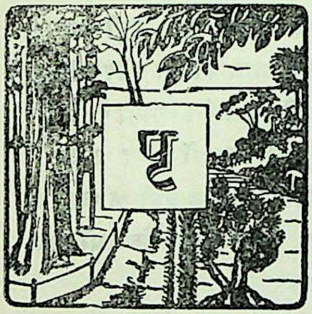

पृथ्वी पर जितने भी जीव हैं, सभी को खाद्य पदार्थों की आवश्यकता होती है। मनुष्य, पशु, पक्षी, कीड़े-मकोड़े आदि किसी का भी काम बिना आहर के नहीं चलता। इसकी चिंता सबको लगी रहती है। आहार से ही जीवों को सामर्थ्य प्राप्त होती है। इसीसे उनके अंग बनते और बढ़ते हैं। यह आहार वे भाँति-भाँति से प्राप्त करते हैं और इसके लिए उन सबके शरीर में विशिष्ट अंग होते हैं।

पौधे भी सजीव हैं। इनको भी आहार की जरूरत होती है और अन्य जीवों की भाँति इन्हें भी इसके लिए प्रयत्न करना होता है। इसी अभिप्राय से इनकी पत्तियां वायु में अकाश की ओर झुकी रहती हैं; इसी की खोज में इनकी जड़ें पृथ्वी के अन्दर दूर तक फैली रहती हैं (देखिए पृष्ठ ६६६ का चित्र)। इस परिच्छेद में हम आपका ध्यान पौधे की जड़ों की ओर आकर्षित करना चाहते हैं।

यदि आप किसी पौधे की जड़ों को पृथ्वी के अन्दर फैले हुए देखें, तो आपको आश्चर्य हुए बिना न रहेगा। धरती के अंदर दूर-दूर तक वे ऐसी धँसती चली जाती हैं, मानो किसी वस्तु की तलाश में हों। मिट्टी के कणों से वे ऐसी लिपटी रहती हैं, मानों इनसे वे किसी वस्तु को खींच रही हों। बात भी ऐसी ही है। पौधे की जड़ें मिट्टी से खाद्य रसों का संग्रह करती हैं। इसी की खोज में वे मिट्टी के कण-कण से लिपटी रहती हैं।

बीज बोने पर सबसे पहले उनमें से पौधे का अंकुर निकलता है। इसीसे पौधे की मुख्य जड़ उत्पन्न होती है, जो पृथ्वी के अन्दर प्रवेश करती है। मुख्य जड़ों से गौण मूल और शाखों से भी उत्पन्न होती हैं। कभी-कभी गौण मूल तने और शाखाएँ उत्पन्न होती हैं। घास और गेहूँ-जैसे पौधों में ऐसी जड़ें प्रारम्भिक तने के सिरे से ही उत्पन्न होती हैं और इसलिए इन पौधों में केवल झखड़ा जड़ें होती हैं। किसी-किसी पौधे में ऐसी जड़ें गाँठों से फूटती हैं। प्याज जैसे कंदों में ये कंद के निचले चपटे भाग से निकलती हैं। जो जड़ें मुख्य जड़ और उसकी शाखों को छोड़ किसी अन्य अंग से निकलती हैं, उन्हें 'अनियमित' जड़ें कहते हैं। प्रायः ऐसी जड़ें शाखों से ही फूटती हैं; परन्तु कभी-कभी वे पत्तियों से भी निकलती हैं (दे० पृ० ६६७ का ऊपरी चित्र)। ऐसी पत्तियों द्वारा नए पौधे उत्पन्न होते हैं।

जड़ों के कर्त्तव्य और उनकी पूर्ति के साधन

जड़ों के दो मुख्य कर्तव्य हैं--रोपण और शोषण। इन क्रियाओं को समझने के लिए हमको जड़ों के चारों ओर की वस्तुओं की जांच करनी चाहिए।

१. मिट्टी—जड़ें पौधे का जमीन के अन्दर रहनेवाला अंग हैं। वे मिट्टी से घिरी रहती हैं। प्रत्येक स्थान की मिट्टी समान नहीं होती। ऊसर, खेत, पहाड़ आदि अलग-अलग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थानों पर ध्यान देने पर पता लग जायगा कि स्थान-स्थान की मिट्टी के भौतिक और रासायनिक गुणों में बड़ा अन्तर होता है। मिट्टी के इन गुणों का पौधे की जीवनी पर बड़ा असर पड़ता है, अतः उनका ज्ञान महत्व रखता है।

पौधे को भूमि से तीन मुख्य लाभ हैं। सबसे पहले वह पौधे के आधार का काम देती है; दूसरे इससे पौधे को जल मिलता है, और तीसरे उससे खनिज पदार्थ प्राप्त होते हैं। यही वस्तुएँ पौधों के जीवन का अवलम्ब हैं।

स्थान-स्थान की मिट्टी के गुणों में अन्तर होने पर भी उनमें चार मुख्य वस्तुएँ न्यूनाधिक मात्रा में सभी स्थानों में होती हैं। विशेषकर इन्हीं का प्रभाव पौधों पर पड़ता है। वे वस्तुएँ चट्टान के जर्रे या मिट्टी के करण, जल, वायु और पृथ्वी के कीटाणु तथा अन्य जीव हैं। साधारण उपजाऊ भूमि में इनकी मात्रा पृष्ठ ६६७ के निचले बाएँ चित्र के अनुसार होती है।

न केवल जुदा-जुदा स्थानों ही की मिट्टी में विभिन्नता होती है, वरन् प्रत्येक स्थान की मिट्टी भी ऊपर-नीचे एक समान नहीं होती। मकान की नींव या कुआँ खुदते समय आपने देखा होगा कि सबसे ऊपर की मिट्टी और नीचे की मिट्टी के गुणों में बड़ा अन्तर होता है। सबसे ऊपर प्रायः उपजाऊ भूमि होती है, जिसे 'ह्यू मस' कहते हैं। इसमें मिट्टी के कण बहुत छोटे होते हैं। इस पर्त में कार्बनिक वस्तुएँ और अनेक कीटाणु भी होते हैं। इन दोनों का पौधे के जीवन और उपज पर बड़ा असर पड़ता है। ह्यू मस के नीचे की तह में मिट्टी के कण कुछ बड़े होते हैं। सबसे नीचे कंकड़ या पत्थर की तह या भूमि का पथरीला भाग होता है।

मिट्टी का अधिकांश भाग चट्टानों की तोड़-फोड़ से ही बनता है। चट्टानों के टुकड़े घिस-घिसकर छोटे हो जाते हैं, और अन्त में इसी संघर्ष से महीन-से-महीन मिट्टी बन जाती है। चट्टानों के टुकड़े और मिट्टी ही के सहारे पौधे जमीन में लगे रहते हैं। इन्हीं से पौधों को खुराक भी मिलती है। मिट्टी के कणों के बीच-बीच में स्थान होते हैं, जिनमें जल और वायु भरी रहती है। ये दोनों ही वस्तुएँ पौधों के लिए आवश्यक हैं।

२. जल––बिना जल के कृषि नहीं हो सकती। बिना खेती मनुष्य तथा दूसरे जीवों का जीना असम्भव है। यथार्थ में जल पर न केवल पौधों की जीवनी का ही दारोमदार है, वरन् इसी पर मनुष्य के कलाकौशल, सभ्यता आदि बातें भी निर्भर हैं। पौधे के अंगों में जल की बहुत बड़ी मात्रा होती है। फल, फूल, पत्ती तथा अन्य कोमल और मांसल अंगों का अधिकांश भाग पानी ही होता है। पानी के बिना खाद्यपदार्थ भी नहीं बन सकते। कोशिकाओं और तन्तुओं का फूलना भी इसी के अधीन है। द्रविक होने के कारण पौधे की अनेक भौतिक और रासायनिक क्रियाओं का

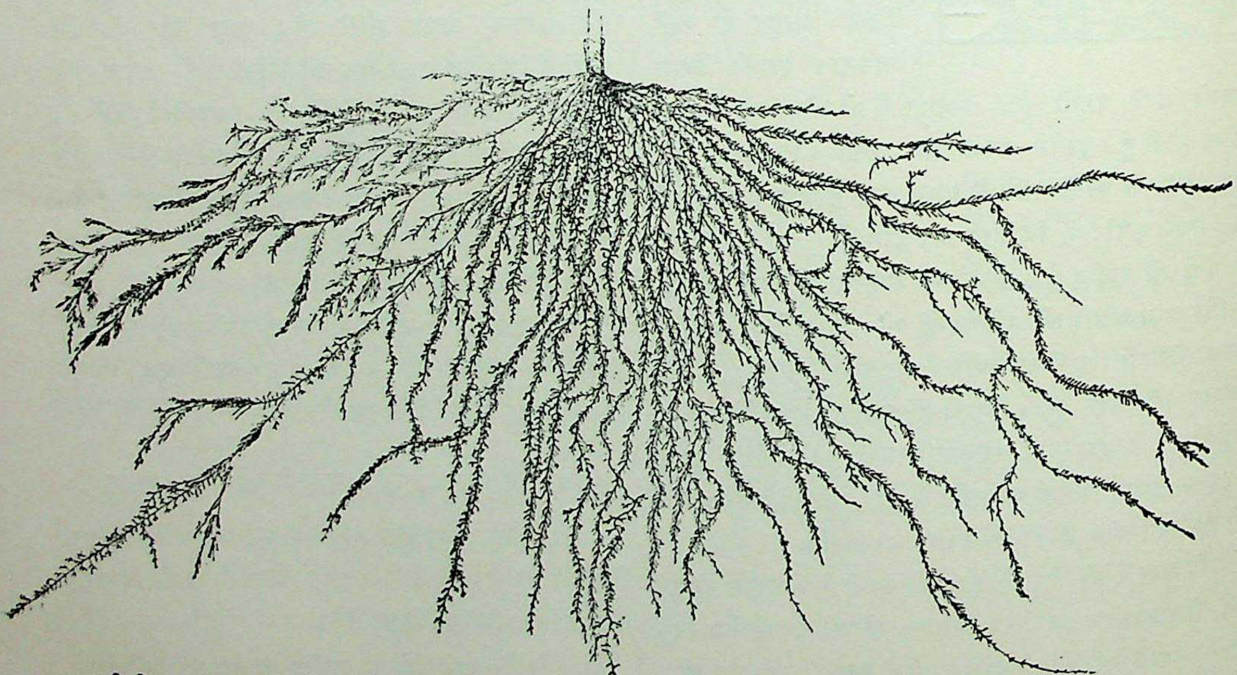

पृथ्वी के अन्दर पसरी हुई गेहूँ के पौधे की जड़ें। यह केवल एक मानचित्र मात्र है। जड़ों के फैलाव के ढंग पर गौर कीजिए। इसका एकमात्र तात्पर्य जमीन में के खाद्य द्रव्यों की प्राप्ति हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दारोमदार भी इसी वस्तु पर है। जल और पौधे का यथार्थ सम्बन्ध समझने के लिए चार बातों पर विचार करना जरूरी है। प्रथम, पौधे के तन्तुओं में जल की मात्रा; दूसरे, यह कि पौधों को किस मात्रा में जल की आवश्यकता है; तीसरे, पौधे के वे अंग जिनके द्वारा जल-शोषण होता है; और चौथे, वे भौतिक क्रियाएँ जिनमें जल का शोषण होता है।

पौधे के तन्तुओं में जल की मात्रा तथा जीवनक्रियाओं में उसकी आवश्यकता

जैसा हम पहले कह चुके हैं, पौधों में जल की बहुत बड़ी मात्रा होती है। आलू में लगभग ७५ फी सदी पानी होता है। गेहूँ में प्रायः प्रतिशत १४ भाग पानी होता है। इसी तरह किसी-किसी घास में ८० फी सदी वजन तक पानी होता है। यदि विचार किया जाय, तो पता लग जायगा कि पौधों को अपनी जीवन-क्रियाओं के लिए इस मात्रा से कहीं अधिक जल की आवश्यकता पड़ती होगी। जांच से पता लगता है कि प्रत्येक सेर सूखा वजन* बनने के लिए लगभग ३ मन ३० सेर जल पौधे में से बाहर निकलना जरूरी है। इससे स्पष्ट है कि जिस मात्रा में पौधों में जल होता है, उससे कहीं अधिक जल की आवश्यकता उनको पड़ती रहती है।

पृथ्वी में जल कहाँ से आता है ?

भूमि के पानी का मुख्य साधन बरसाती पानी है। इसी पर पौधों की उपज निर्भर है। दुनिया के रेगिस्तानी भागों में इतनी कम वर्षा होती है कि वहाँ पर बहुत कम पौधे उग सकते हैं। लोगों का अनुमान है कि पृथ्वी के चौथाई भाग में इतनी कम वर्षा होती है कि वहाँ खेती नहीं हो सकती। इसके विपरीत भूमध्यरेखा के निकटवर्ती जंगलों में वार्षिक जलपात चार-पांच सौ इंच तक होता है। इन स्थानों में अनेक भांति के पेड़-पौधे, बेलि-लता आदि भूमि को ढके रहती हैं। उत्तम खेती के लिए लगभग ४० इंच वार्षिक जल की आवश्यकता रहती है और यदि यह जल प्रत्येक मौसम में समान रूप से गिरे, तो और भी अच्छा हो।

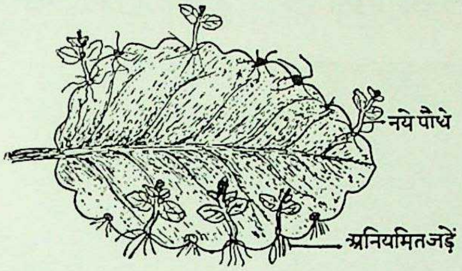

अजूबा की पत्ती को यदि जमीन पर कुछ समय तक रक्खी जाय और उसे खाद्य पदार्थ मिलते रहें, तो उससे कई जगहों पर अनियमित जड़ें निकल आती हैं और फिर वहीं पर नये पौधे उग आते हैं।

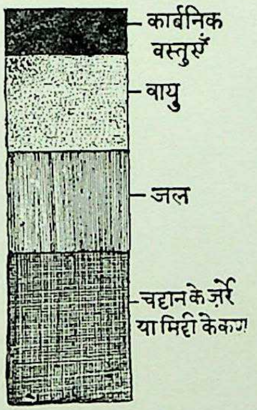

१०० वर्ग फीट साधारण भूमि में भिन्न-भिन्न पदार्थों की मात्रा।

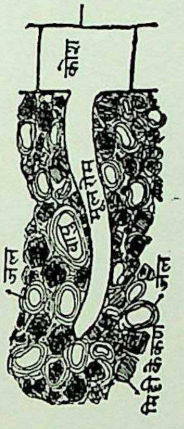

मूल रोम और उसके चारों ओर की वस्तुएँ।

पृथ्वी पर गिरने के बाद वर्षा का जल क्या होता है —सूचिका और क्लेदन जल

जमीन पर आते ही वर्षा का जल कई दिशाओं में बंट जाता है (पृ० ६६९ का चित्र)। यदि जमीन पथरीली है और थोड़े समय में अधिक जल गिरे, तो जल का अधिकांश भाग बिना पृथ्वी के अन्दर पहुँचे ही बहकर नदी नालों में चला जाता है। ऐसे जल से पौधों को कोई लाभ नहीं होता, वरन् उलटे उनको हानि होने की सम्भावना है; क्योंकि बहुधा इसके द्वारा भूमि के उपजाऊ तत्त्व बह जाते हैं। नदी नालों में जाने से जो जल बच रहता है, वह या तो धीरे-धीरे सोखकर जल-स्रोत तक पहुँच जाता है या मिट्टी के कणों के बीच में फँसा रह जाता है। जो जल मिट्टी के कणों के बीच में फँसा रह जाता है, उसे 'सूचिका (कंपिलरी) जल' कहते हैं। इस जल की मिट्टी के कणों के इर्दगिर्द एक झिल्ली रहती है। यह बात ध्यान में रखने की है कि मिट्टी के कणों के बीच-बीच में स्थान होते हैं, जिनके आपस में मिल जाने से नलिकाएँ बन जाती हैं। उन्हीं से होकर नीचे का जल ऊपर पहुँचता है। नीचे से यह जल उसी प्रकार ऊपर चढ़ता है, जैसे सोखते में स्याही या बत्ती में

*किसी वस्तु का सूखा वजन निकालने के लिए उसे ७०-८० शतांश ताप पर कई घंटे बराबर गरम करते हैं और जब वजन में कमी होना बन्द हो जाती है, तो जो वजन रह जाता है, उसे 'सूखा वजन' कहते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चिमनी का तेल। यह क्रिया 'सूचिका-क्रिया' कहलाती है पृ० ६७० का निचला चित्र)। साधारण भूमि में यह जल इस प्रकार २ फीट से ६ फीट की ऊँचान तक चढ़ता है; इसलिए वह जल जो शोषित हो पृथ्वी में बहुत नीचे पहुँच जाता है, पौधे तक इस क्रिया द्वारा नहीं पहुँच सकता।

सूचिका जल के अतिरिक्त मिट्टी के कणों में एक और प्रकार से भी जल रहता है। यह 'क्लेदन (हाइग्रोस्कोपिक) जल' है। क्लेदन जल मिट्टी के कणों से केवल अच्छी तरह गरम करने से ही निकल सकता है। इस प्रकार के जल से पौधे को कोई लाभ नहीं होता।

जल-शोषण करनेवाला पौधे का अंग—जड़

पौधे जड़ों द्वारा ही जल को सोखते हैं। शोषण-क्रिया को समझने के लिए हमको जड़ की रचना आदि का भली-भाँति ज्ञान होना चाहिए। इस सम्बन्ध में जड़ का पृथ्वी के अन्दर प्रसार भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। पौधों की जड़ें जमीन के अन्दर बड़ी-बड़ी दूर तक फैलती हैं। किसी वैज्ञानिक ने एक ३-४ इंच लम्बे-चौड़े सन्दूक में जौ के पौधों को उगाया। जब पौधा बढ़कर तैयार हुआ और उसने होशियारी से तमाम जड़ों को नापा तो पता लगा कि कुल जड़ें मिलकर लगभग १२८ फीट लम्बी थीं! इससे स्पष्ट है कि स्वाभाविक अवस्था में जिस समय ऐसा पौधा खेत में उगता होगा, तो जड़ों का विस्तार और भी अधिक होता होगा। इस भाँति पौधों की जड़ें दूर-दूर फैली रहने से न केवल पौधों को शोषण में ही सुगमता रहती है, बल्कि उसको स्थाई रखने का कार्य भी कुशलता से होता है।

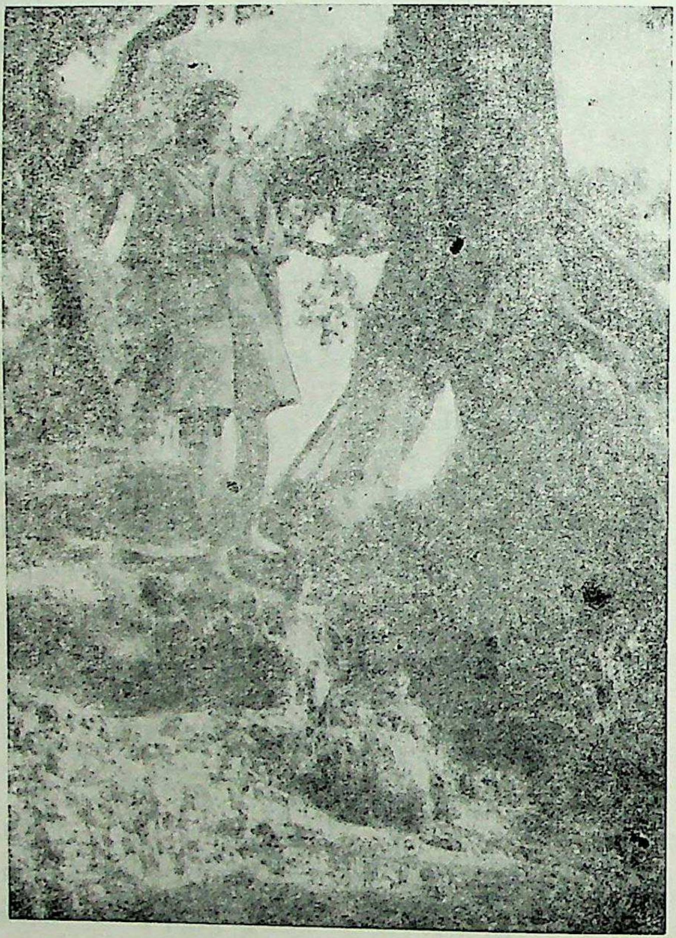

जड़ें आहार जुटाने के साथ-साथ वृक्ष को खड़ा भी रखती हैं। वर्षाजल द्वारा मिट्टी के धुल जाने के कारण इस वृक्ष की जड़ें बहुत-कुछ खुल गईं हैं, जिससे उनकी रचना का हमें ज्ञान हो सकता है।

पृथ्वी के अन्दर जड़ें ऐसी सुन्दरता से फैली रहती है कि यदि आप इन्हें देख सकें, तो आपके विस्मय की सीमा न रहे। एक प्रकार की बौंड़ी 'आईपोमिया लेप्टोफिला' के जड़क्रम के विषय में अमेरिका के धुरंधर विद्वान् वीवर की जाँच से पता लगा है कि उक्त पौधे की जड़ें लगभग ३४-३५ हाथ के व्यास के अन्दर फैली थीं और करीब-करीब ६-७ हाथ की गहराई तक नीचे पहुँची थीं; लेकिन उसके जमीन के ऊपर के फैलाव का व्यास पाँच हाथ था और ऊँचान दो हाथ से भी कम थी। जड़ें कितनी गहराई से खाद्य रस और जल सोखती हैं, यह पौधे की जड़ों की लम्बान आदि पर निर्भर है। कितने ही बूटों में 'झखड़ा जड़ें' होती हैं। ऐसी जड़ें जमीन में अधिक गहराई तक नीचे नहीं जातीं। इनमें से बहुतेरों की जड़ें तो केवल इंच-दो-इंच ही नीचे पहुँचती हैं। ऐसे पौधों की जड़ें जमीन में कुछ नीचे पहुँचकर चारों ओर ऊपर-ही-ऊपर छितरी रहती हैं। ज्वार, मक्का, धान, गेहूँ (देखो पृष्ठ ६६६ का चित्र) जैसे पौधों में झखड़ा जड़ें होती हैं। वृक्षों में 'मूसला जड़ें' होती हैं, जो जमीन के नीचे दूर तक चली जाती हैं। ऐसी जड़ें झखड़ा जड़ों से मोटी भी होती हैं। आम, जामुन, देवदार, सागौन जैसे पेड़ों की जड़ें बड़ी गहराई तक जमीन के नीचे जाती हैं और इसलिए वे अधिक गहराई के जल का उपभोग करती हैं। अनुसंधान से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

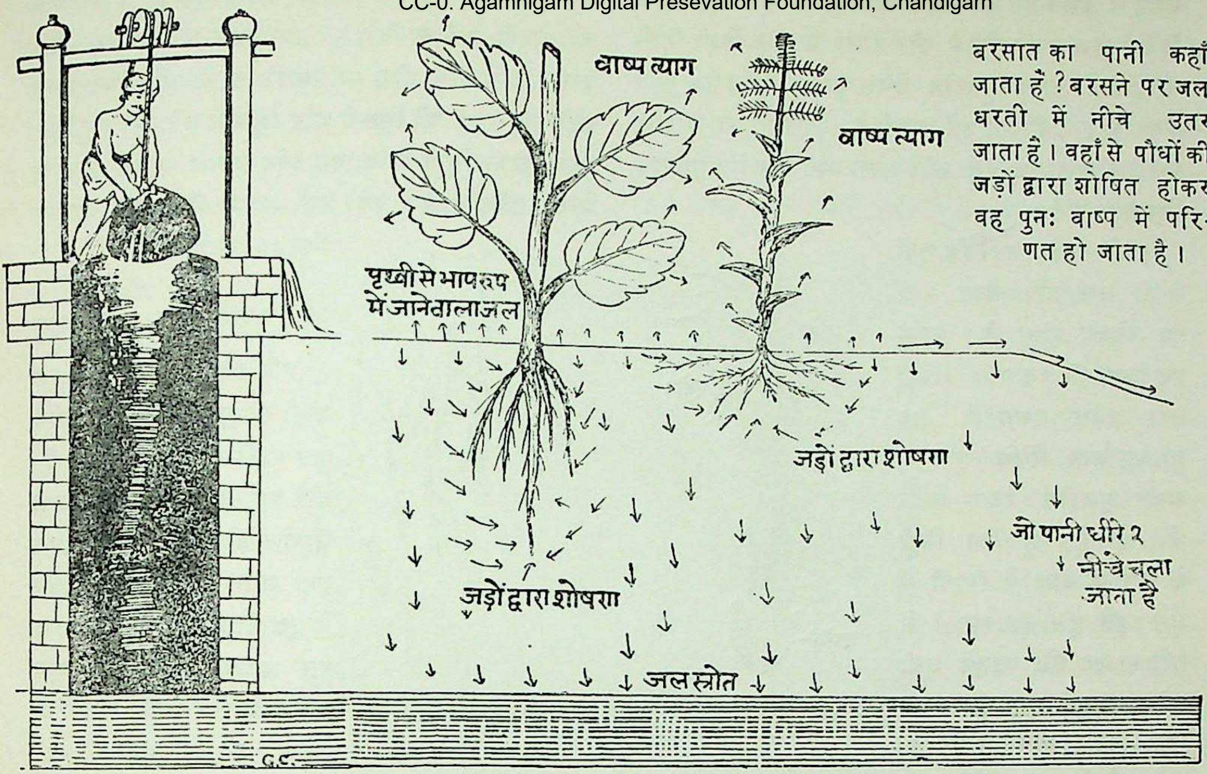

बरसात का पानी कहाँ जाता है ? बरसने पर जल धरती में नीचे उतर जाता है। वहाँ से पौधों की जड़ों द्वारा शोषित होकर वह पुनः वाष्प में परिणत हो जाता है।

पता लगता है कि जई २ से ५ फीट तक की गहराई की भूमि से जल और खाद्य रसों को सोख सकती है; जौ लगभग साढ़े तीन फीट की गहराई से जल और आहार सोखता है, और आलू लगभग ढाई फीट की गहराई से खाद्य रसों का संग्रह कर सकता है।

प्रत्येक जड़ के सिरे पर उसका बढ़ने वाला भाग होता है इसी के कोशिका-विभाजन से जड़ बढ़ती है। इस भाग की कोशिकाएँ अत्यन्त कोमल होती हैं। इनकी रक्षा के लिए जड़ के सिरे पर 'मूलटोपी' होती है (पृष्ठ ६७० का ऊपरी बाँया चित्र)। मूलटोपी का सिरा नुकीला होता है, इसलिए यह जड़ की रक्षा के अलावा उसके पृथ्वी में प्रवेश करने में भी मदद करता है।

मूलटोपी के ऊपर जड़ की ओर प्रत्येक जड़ में तीन भाग होते हैं। पहला वह, जहाँ की कोशिकाएँ विभाजित होती रहती हैं; दूसरा वह, जहाँ पर कोशिकाएँ बढ़कर अपनी स्वाभाविक अवस्था में पहुँच जाती हैं, और तीसरा वह, जहाँ कोशिकाओं द्वारा खाद्य रसों का शोषण होता है। जिस भाग द्वारा खाद्य रसों का शोषण होता है, उसको ध्यान से देखने पर अनेक नन्हें-नन्हें रोम दिखाई देंगे (देखें वही चित्र)। ये मूलरोम कहलाते हैं। मूलरोम अधित्वक् की बाहरी भित्तिकाओं के बढ़ने से बनते हैं। वे अधित्वक् की कोशिकाएं के उभरे भाग हैं (चित्र पृष्ठ ६७२)। खाद्य रसों का अधिकाँश भाग इन्हीं के द्वारा पेड़ों में पहुँचता है। इसकी अनुपस्थिति में पौधों का जीवित रहना कठिन है। जब पौधों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लगाते हैं, उस समय यदि जड़ों के साथ काफी मिट्टी न रहे, तो पौधे मुरझा जाते हैं। यदि कहीं पींड़ फूट जाय तो भी पौधे का लगाना कठिन हो जाता है। इसका कारण यही है कि मिट्टी के साथ-साथ नन्हें-नन्हें मूलरोम टूट जाते हैं, जिसकी वजह से शोषण क्रिया में अड़चन पड़ती है और इसलिए पौधों के सूख जाने की सम्भावना रहती है।

वैसे तो मूलरोम सरलता से दिखाई नहीं देते; परन्तु यदि हम सरसों या मूली के बीजों को निम्नोक्त रीति से बोएँ तो हम इनको सरलता से देख सकेंगे। एक मिट्टी की थाली में लकड़ी का गीला बुरादा भरकर ऊपर से मूली या सरसों के कुछ बीज छिटका दीजिए। थाली को दूसरी पानी से भरी थाली में रख दीजिए, ताकि बुरादे में बराबर तरी बनी रहे। ऊपर से बीजवाली थाली को साफ शीशे से ढक दीजिए। ३-४ दिन बाद बीज उग आएँगे और उनकी जड़ों पर अनेक मूलरोम दिखाई देंगे (देखें चित्र पृष्ठ ६७३)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ध्यान से देखने पर पता चल जायगा कि मूलरोम जड़ के सिरे के कुछ ऊपर होते हैं और वे जड़ के थोड़े से ही हिस्से पर होते हैं। प्रत्येक मूलरोम केवल कुछ ही समय तक कार्य करता है। ज्यों-ज्यों जड़ें बढ़ती हैं उनके पिछले भाग के मूलरोम मुरझा जाते हैं और अगले भाग पर नए मूलरोम निकल आते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि जड़ों से ही जल और खाद्य रसों का शोषण होता है, परन्तु इस क्रिया को हम तभी अच्छी तरह समझ सकते हैं, जब हम यह जान लें कि भूमि के अन्दर मूलरोम किस भांति फैले रहते हैं। मूलरोम मिट्टी के कणों के बीच के स्थानों में घुसे रहते हैं। इन स्थानों में सूचिका जल और उसमें घुली अनेक वस्तुएं होती हैं। इस जल को खींचनेवाली दो शक्तियां हैं—एक ओर मूलरोमों की शोषणशक्ति, दूसरी ओर मिट्टी की सूचिका-शक्ति। जब तक जल की मात्रा यथेष्ट रहती है, पौधे जड़ों द्वारा जल ग्रहण कर सकते हैं, पर यदि जल की मात्रा कम पड़ जाय, तो यह स्वाभाविक बात है कि पौधे उसका शोषण न कर सकेंगे।

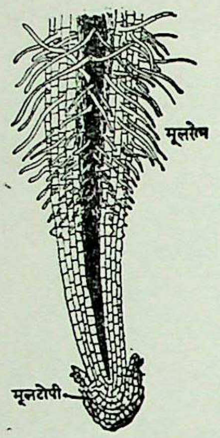

जड़ का अगला भाग

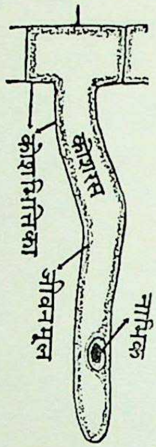

मूलरोम की रचना

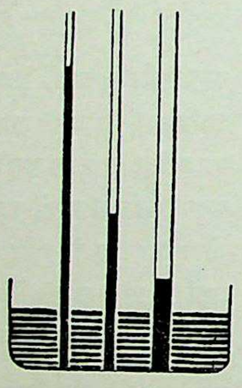

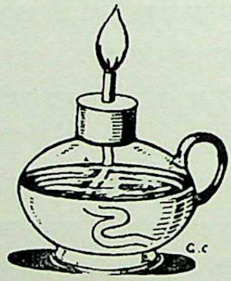

यदि हम पानी से भरे एक पात्र में पतले आकार की कुछ नलियाँ खड़ी कर दें, तो उन नलियों में पानी उसी तरह चढ़ जायगा, जैसे कि बत्ती द्वारा चिमनी में तेल चढ़ता है। यह क्रिया 'सूचिका-क्रिया' कहलाती है।

जैसा आप पहले ही देख चुके हैं, मूलरोम अधित्वक् की कोशिकाओं का उभरा भाग हैं। अन्य कोशिकाओं की भांति ये भी जीव-द्रव्य के बने होते हैं और बाहर से कोशिकाभित्ति से परिवेष्टित रहते हैं इनमें भी नाभिक और कुंड होता है। कुंड में कोशिकारस और उसमें घुले कार्बनिक अम्ल होते हैं। इस प्रकार मूलरोम की भित्तिकाओं के बाहर मिट्टी के कण और कणों से चारों ओर वर्तमान जल तथा उसमें घुली अनेक वस्तुएँ रहती हैं। उनके अन्दर की ओर जीव-द्रव्य की झिल्ली, कुंड झिल्ली तथा कोशिकारस और उसमें घुले कार्बनिक अम्ल रहते हैं (इसी पृष्ठ का ऊपरी दाहिना चित्र)। इस तरह कोशिकारस और जमीन के पानी के बीच कोशिकाभित्ति के अतिरिक्त उससे सटी जीव-द्रव्य की झिल्ली और कुंडझिल्ली भी होती है। इनमें होकर मिट्टी में के जल और खनिज पदार्थ जड़ों के अन्दर प्रवेश करते हैं और इस प्रकार पौधों को आहार मिलता रहता है।

अभिसरण और निस्सरण

यदि आप एक बरतन में थोड़ी-सी शक्कर लेकर उसमें कुछ पानी उँडेल दें, तो धीरे-धीरे वह शक्कर तमाम पानी में फैल जाती है और शरबत बन जाता है, जो बरतन भर में एक ही मिठास का होगा। इस प्रकार शरबत का एक समान समाहरण हो जाता है (पृष्ठ ६७४ का ऊपरी चित्र)। यदि दो प्रकार के द्रव हों और उनके बीच में एक झिल्ली हो, तो भी कुछ देर बाद दोनों का समाहरण एक समान हो जायगा। इस तरह यदि हम एक कीप के मुँह पर एक निस्सारक झिल्ली बाँधकर उसमें शक्कर का शरबत भर दें और फिर इसको पानी के बरतन में खड़ा रख दें, तो धीरे-धीरे बरतन से पानी कीप में प्रवेश करेगा और कीप की हांडी में शरबत की ऊँचाई बढ़ जायगी (देखिए वही चित्र)। कुछ देर बाद यदि हम बरतन के पानी की जाँच करें, तो उसमें शक्कर मिलेगी। इस प्रकार पानी गिलास से कीप में जायगा और शक्कर कीप से गिलास में आएगी और जब तक कि झिल्ली के दोनों ओर शरबत का समाहरण एक समान नहीं हो जायगा, यह क्रिया बराबर जारी रहेगी। अन्दर जाने की क्रिया को 'अभिसरण' (एंडोस्मोसिस) और बाहर आनेवाली क्रिया

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

को 'निस्सरण' (एक्सोस्मोसिस) कहते हैं। यदि निस्सारक झिल्ली दोनों ओर की वस्तुओं के लिए एक समान प्रवेशनीय हो तो इन घोलों का समाहरण समान हो जायगा। यदि यह झिल्ली इन वस्तुओं के लिए अप्रवेशनीय है, तो घोल बिलकुल इधर-उधर नहीं जाएँगे। यदि यह झिल्ली किसी वस्तु के लिए प्रवेशनीय है, और किसी के लिए अप्रवेशनीय है, तो दोनों ओर की वस्तुएँ बराबर नहीं आ जा सकेंगी। मान लीजिए, किसी झिल्ली में होकर पानी प्रवेश कर सकता है, परन्तु घुली शक्कर प्रवेश नहीं कर सकती; अब यदि ऐसी झिल्ली के एक ओर गाढ़ा शरबत है और उसकी दूसरी ओर पतला शरबत है, तो इस पतले शरबत से जल झिल्ली में होकर गाढ़े शरबत में जायगा, मगर शक्कर के अणु गाढ़े शरबत से फीके शरबत में नहीं जा सकेंगे। अन्त में गाढ़े शरबत में पानी आ जाने के कारण दोनों ओर के शरबत में समाहरण एक समान हो जायगा। अब गाढ़े शरबत में दूसरी ओर के पानी के आ जाने के कारण इसकी मात्रा बढ़ जायगी और यदि शरबत चारों ओर से घिरा है, तो दबाव पड़ेगा।

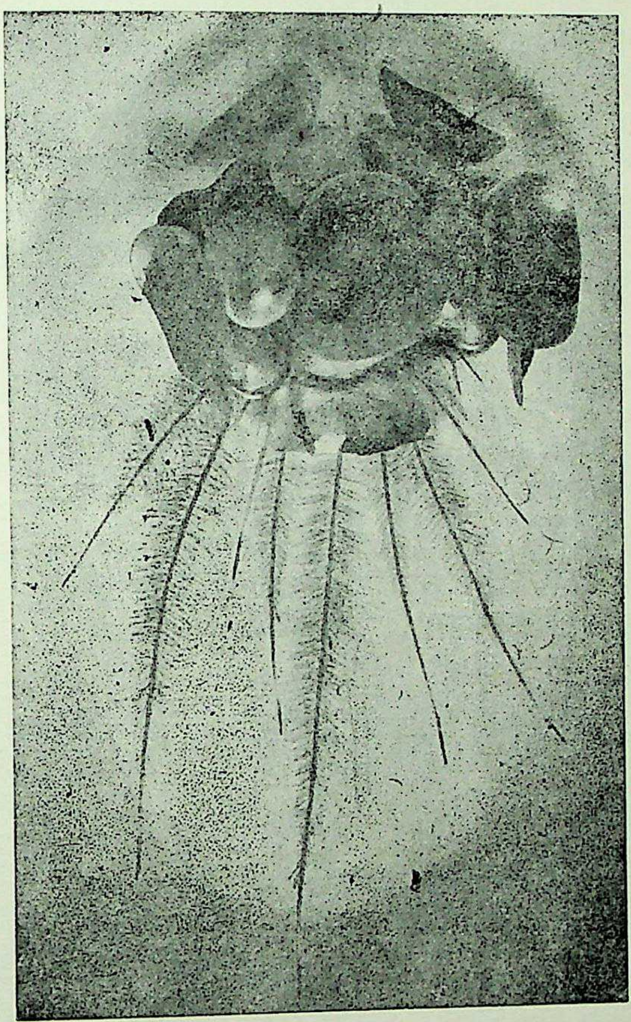

जलकुंभी, जिसकी जड़ों के सिरे पर मूलटोपी हैं। मूलटोपी जड़ की रक्षा के अलावा उसके धरती में प्रवेश करने में सहायक होती हैं।

पौधे भूमि से खूराक कैसे खींचते हैं ?

जिस प्रकार कीप के अन्दर झिल्ली में होकर शरबत खिंचता है उसी तरह पौधों में बाहर से रसों का प्रवेश होता है। जीव-द्रव्य की झिल्ली में होकर ये रस जड़ों के अन्दर आते हैं। इस झिल्ली के गुणों पर जल और दूसरी वस्तुओं का आना निर्भर है। मूलरोमों के बाहर मिट्टी के कण और उनके चारों ओर का जल और उसमें घुले नमक हैं; उनके अन्दर कोशिकारस और उसमें घुले कार्बनिक अम्ल और शक्कर आदि हैं। दोनों ओर की वस्तुओं के बीच कोशिकाभित्ति, फिर उससे सटी जीव-द्रव्य की झिल्ली है। इस प्रकार यहां की अवस्था वैसी ही है, जैसी उपर वर्णित कीपवाले प्रयोग की।

कोशिकाभित्ति में होकर प्रायः सभी घोल अन्दर जा सकते हैं; परन्तु कोशिकामूल की झिल्ली अर्ध-प्रवेशनीय होती है। इसमें होकर कोई-कोई वस्तु अन्दर जा सकती है, कोई-कोई नहीं। धरती के जल और उसमें घुले कितने ही नमकों के लिए कोशिकमूल की झिल्ली प्रवेशनीय होती है; परन्तु कोशिका के अन्दर की शक्कर के लिए यह झिल्ली प्रवेशनीय नहीं है। इसलिए इस अर्ध-निस्सारक झिल्ली में होकर बाहर के नमक और जल मूलरोमों में जाते रहते हैं, परन्तु उनके अन्दर की शक्कर बाहर नहीं आ सकती। इसलिए मूलरोमों के कोशिकारस का समाहरण बाहर के घोलों के समाहरण से बराबर अधिक बना रहता है और इस कारण बाहर से पानी बराबर इनमें जाता रहता है। बाहर के घुले नमक आदि भी इस प्रकार बराबर जड़ों के अन्दर जाते रहते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह गुण बड़े महत्व का है। क्योंकि इस प्रकार जल और उसमें घुली अन्य प्रवेशनीय वस्तुएं पौधों में बराबर आती रहती हैं। जीव-द्रव्य की झिल्ली खनिज पदार्थों और अन्य घुलनशील नमकों के लिए न्यूनाधिक प्रवेशनीय है और इस प्रकार मूलरोम अपने पड़ोस के घोलों से आवश्यक वस्तुओं का शोषण करते हैं (देखें इसी पृष्ठ के चित्र)। विश्लेषण से पता लगता है कि पौधों में कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सिजन, नाइट्रोजन, गंधक, फास्फोरस, सोडियम, पोटैशियम, क्लोरीन, कैल्शियम, मैग्नीशियम, लोहा, मैंगनीज, अल्यूमीनियम और सिलिकन तत्त्व होते हैं। कार्बन को छोड़कर शेष सब के सब तत्त्व जड़ों से ही पौधों में आते हैं। मिट्टी में इन तत्त्वों के घुलनशील नमक होते हैं, जिन्हें पौधे जड़ों द्वारा ग्रहण करते हैं।

पौधे में जितने भी तत्त्व हैं, उनमें किसी की कम आवश्यकता होती है, किसी की अधिक। प्रयोगों से सिद्ध हो चुका है कि जड़ों द्वारा प्राप्त तत्त्वों में नाइट्रोजन, कैल्शियम, मैग्नीशियम, लोहा, फास्फोरस, गंधक और पोटैशियम परम आवश्यक हैं। पौधों का आकार देखते हुए उनमें किसी-किसी तत्त्व की मात्रा बहुत ही कम रहती है। फिर भी जीव-द्रव्य की क्रियाओं के लिए ये परम आवश्यक होते हैं और जिस भूमि में ये वस्तुएं नहीं होतीं, वहाँ की उपज अच्छी नहीं होती।

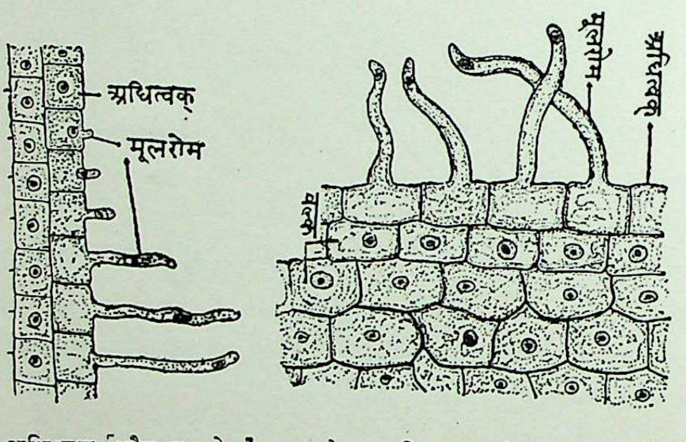

अधित्वक् और मूलरोम। मूलरोम अधित्वक् की कोशिकाओं के बढ़ने से बनते हैं। ये अधित्वक् का उभरा भाग हैं। जड़ के जिस भाग द्वारा शोषण होता है, उसके अधित्वक् की प्रत्येक कोशिका से मूलरोम उत्पन्न होता है।

जांच से पता लगता है कि कोशिकाओं की प्रवेश-शक्ति सदा एक समान नहीं रहती। इसमें समय और अवस्था के अनुसार अनेक परिवर्तन भी होते रहते हैं। इस प्रकार वही कोशिका जिस वस्तु को एक समय शीघ्रता से ग्रहण करती है, उसी को अन्य समय धीरे-धीरे या बिलकुल नहीं ग्रहण करती। सम्भव है, कोशिका की यह अवस्था किसी बाहरी कारण या जीव-द्रव्य के गुणों में परिवर्तन से होती हो।

आप देख चुके हैं कि अभिसरण क्रिया द्वारा पौधे पृथ्वी से जल और उसमें घुले नमक खींचते हैं और यदि अवस्था अनुकूल रहे, यानी मिट्टी के घोलों का समाहरण यदि पतला रहे और कोशिकामूल की झिल्ली घोलों की वस्तुओं के लिए प्रवेशनीय हो तो मूलरोम इन वस्तुओं का बराबर शोषण करते रहेंगे। वास्तव में सदा ही ऐसी अवस्था बनी रहती है और पौधे जमीन से प्रयोजनीय वस्तुओं का बराबर शोषण करते रहते हैं। जिस प्रकार अभिसरण द्वारा बाहर से वस्तुएँ पौधों के अन्दर जाती हैं, उसी प्रकार निस्सरण द्वारा अन्दर से बाहर भी जा सकती हैं, परन्तु यह तभी हो सकता है, जब मूलरोमों की वस्तुओं का समाहरण बाहर की अपेक्षा कम हो और कोशिकामूल की झिल्ली के लिए प्रवेशनीय हो। परन्तु पौधों में कार्बन डाई-ऑक्साइड को छोड़ और कोई दूसरी वस्तु इस प्रकार बाहर नहीं जाती। आम तौर पर बाहर के घोलों का समाहरण मूलरोमों के कोशिकारस के समाहरण से कम होता है। इस भाँति मिट्टी से जल और अन्य वस्तुएँ उनमें बराबर जाती रहेंगी और जब तक बाहर-भीतर का समाहरण एक-सा नहीं हो जायगा, बहाव बराबर बना ही रहेगा। यदि कहीं मिट्टी के घोलों का समाहरण बढ़ जाय, तो फिर उल्टे मिट्टी जड़ों से पानी खींचने लगे और पेड़ के लिए जीवन-मरण की कठिन समस्या प्रस्तुत हो जाय!

पेड़ की जड़ों में अनेक तन्तु होते हैं (पृष्ठ ६७४ का ऊपरी चित्र)। जैसे ही मूलरोमों में जल पहुँचता है, उसके कोशिकारस का समाहरण कम पड़ जाता है। अतः मूलरोमों का जल अभिसरण द्वारा खिचकर पड़ोस के वल्क की कोशिकाओं में, जिनमें कोशिकारस का समाहरण अधिक होता है, पहुँचता है। इस प्रकार यह जल और उसमें घुली वस्तुएँ बाहरी कोशिकाओं के अन्दर की कोशिकाओं और फिर उनसे काष्ठ-नलिकाओं में पहुँचती हैं। काष्ठ-नलिकाओं में इसका प्रवाह किस भाँति होता है, इसमें मतभेद है। वल्क की कोशिकाओं का निस्सारक दबाव अधिक होता है और सम्भव है, इस कारण पानी निचुड़कर काष्ठतन्तुओं में पहुँच जाता हो।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आम, जामुन, चीड़, देवदार, बरगद, सेमल जैसे अनेक वृक्षों में सैकड़ों फीट ऊँचे जल चढ़ता है। पेड़ के तने में होकर यह जल किस प्रकार ऊँची चोटी तक पहुँचता है, हम आगे चलकर बताएँगे।

अभिसरण द्वारा पौधों में न केवल जल और खनिज पदार्थों का ही धरती से शोषण होता है, वरन् पौधे की कोशिका से दूसरी कोशिका में प्रवाहन भी इसी के अधीन है(पृष्ठ ६७४ का चित्र)। इसी क्रिया पर रसों से भरकर कोशिकाओं का फूलना भी निर्भर है। यदि कोशिकारस का समाहरण गाढ़ा है, तो कोशिकाएँ जल को शीघ्रता से ग्रहण करेंगी और फूलकर बढ़ने लगेंगी। इस प्रकार दबाव पड़ोस की कोशिकाओं पर पड़ेगा। यदि सारी कोशिकाएँ इस प्रकार रस से भरकर फूल जायें, तो सारा पौधा दृढ़ और सख्त हो जायगा। अगर कोशिका के चारों ओर कठोर भित्तिका न होती, तो जीव-द्रव्य की झिल्ली दबाव पड़ने के कारण अवश्य फट जाती। इस प्रकार प्रत्येक कोशिका फुटबाल के समान है जिसमें वायु भरने से अन्दर की रबर की झिल्ली बढ़ना चाहती है; परन्तु बाहरी चमड़े के खोल के कारण ऐसा नहीं हो सकता। छोटे-छोटे फूले हुए गुब्बारों के समान कोशिकाएँ आपस में जुड़ी रहती हैं। पत्ती और पँखुड़ी - जैसे अंगों में, जिनमें कठोर ढाँचा नहीं होता, यही फूलने की क्रिया है, जिसके कारण यह अंग सख्त रहते हैं और इनकी शक्ल ठीक बनी रहती है।

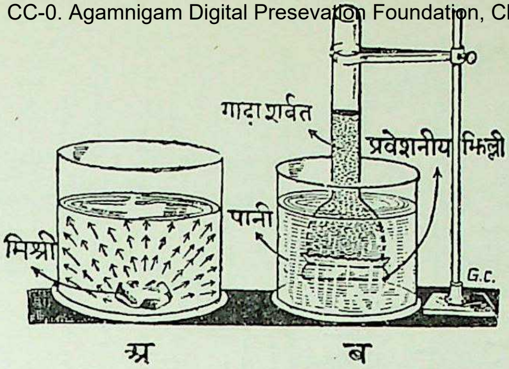

पानी में घुलनशील वस्तुएँ इसी प्रकार फैलती हैं।

३. वायु—जीवन के लिए जल की भाँति वायु भी परम आवश्यक है। पेड़ के प्रत्येक अंग को ऑक्सिजन मिलना चाहिए। जड़ों को भी इसकी आवश्यकता है और इसलिए मिट्टी में भी ऑक्सिजन पहुँचनी चाहिए। यदि मिट्टी में जल भर जाय, तो वायु निकल जायगी और यदि ऐसी दशा बहुत समय तक बनी रहे, तो पेड़ों को बड़ी हानि हो। यही कारण है कि नदियों में बाढ़ आने पर यद्यपि किनारे के पौधों का अधिकाँश भाग पानी के बाहर ही क्यों न हों, फिर भी बहुत-से पौधे पीले पड़ जाते हैं। यह ध्यान देने योग्य बात है कि खेतिहर जमीन के सौ वर्ग फीट में लगभग २० से ३५ वर्ग फीट भाग वायु का रहता है।

मिट्टी के अन्दर की कार्बनिक वस्तुएँ

वैसे तो सभी प्रकार की भूमि में कार्बनिक वस्तुएँ होती हैं, परन्तु उपजाऊ भूमि में इनकी मात्रा अधिक रहती है। कार्बनिक वस्तुओं के सड़ने - गलने से अन्य अनेक वस्तुएँ बनती हैं। कार्बनिक वस्तुएँ बहुधा पेड़-पौधों के सड़ने-गलने से ही उत्पन्न होती हैं। पतझड़ में गिरी हुई पत्तियों के ढेर - के - ढेर और जमीन के अन्दर की करोड़ों मन

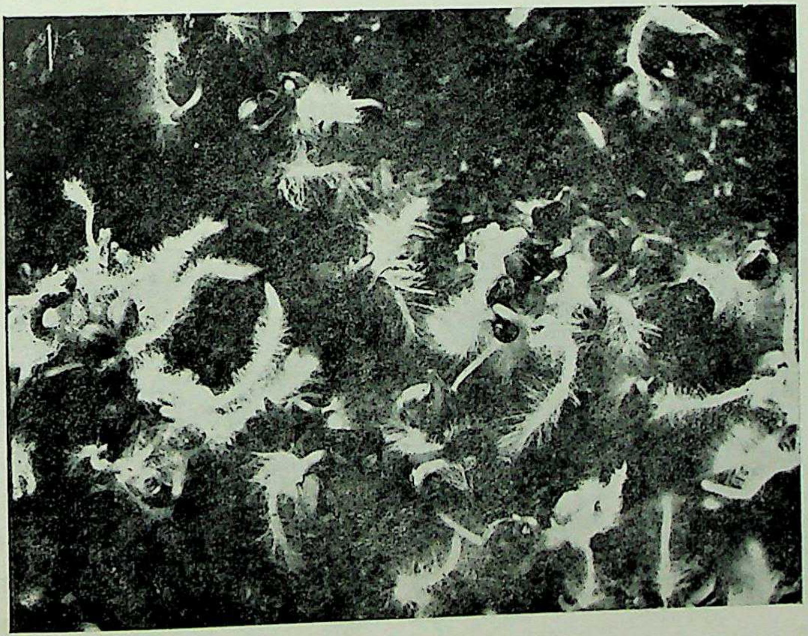

सरसों के अंकुरित बीज का फोटो। मूलरोम दिखाई दे रहे हैं। इन्हीं के द्वारा कोशिकारस का समाहरण होता रहता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

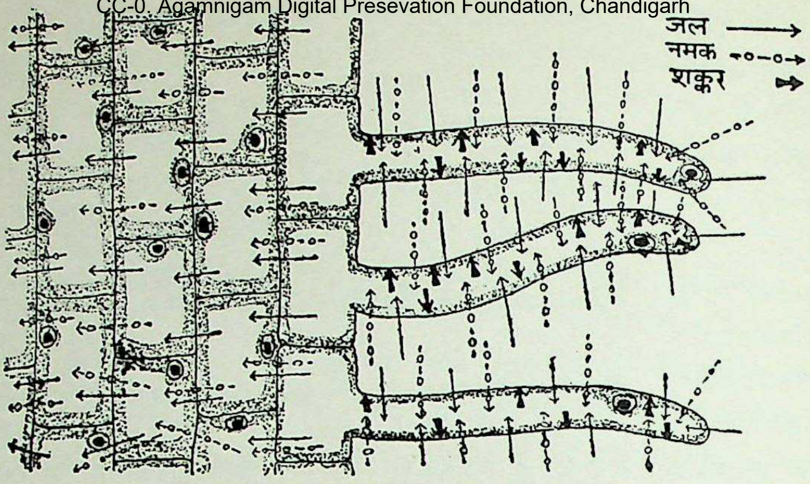

जड़ के बाहर की ओर की कोशिकाएँ और मूलरोम। भूमि से जल और नमक आदि किस तरह जड़ों में प्रवेश करते हैं, यह दिग्दर्शित है।

मुर्दा जड़ें समय पाकर सड़-गलकर अनेक वस्तुएँ उत्पन्न करती हैं, जिनके विदारण से कार्बनिक ऐसिड गैस, जल और अमोनिया उत्पन्न होते हैं। जिस भूमि में सड़ती-गलती वस्तुएँ अधिक होती हैं, उसे ह्यूमस कहते हैं। ह्यूमस की उपस्थिति से भूमि के भौतिक गुणों में बड़ा अन्तर पड़ जाता है, जिसके कारण ऐसी भूमि अधिक उपजाऊ हो जाती है। ह्यूमस की विशेषता के चार मुख्य कारण हैं। सबसे प्रथम ऐसी भूमि में वायु की मात्रा अधिक रहती है; दूसरे इसमें जल ग्रहण करने की शक्ति अधिक होती है; तीसरे ऐसी भूमि में नीचे से अधिक गहराई का जल ऊपर चढ़ता है और चौथे इस प्रकार की भूमि में कीटाणु अधिक होते हैं जिसका प्रभाव पौधे की जीवनी पर पड़ता है।

भूमि के अन्दर रहनेवाले जीव और उनका पौधों पर प्रभाव

पृथ्वी के अन्दर रहनेवाले जीवों का पौधों की जीवनी पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। केंचुए, चूहे, खरगोश, साही तथा पृथ्वी के अन्दर रहनेवाले अन्य कितने ही जीवों से भूमि के गुणों में अनेक परिवर्तन होते रहते हैं। परन्तु मिट्टी के गुणों में सबसे अधिक परिवर्तन कीटाणुओं की उपस्थिति से होते हैं। कीटाणुओं में बैक्टीरिया मुख्य हैं। सम्भव है कि यदि ये जीव न होते, तो पृथ्वी अन्य जीवों के रहने योग्य न रहती। बैक्टीरिया अत्यन्त निम्न श्रेणी के जीव हैं, परन्तु इनकी जीवनलीला अत्यन्त रहस्यपूर्ण है। इनमें पर्णहरिम नहीं होता, इसलिए खाद्य पदार्थ प्राप्त करने की इनकी क्रिया पौधों से पृथक् होती है। इस अनोखी क्रिया के कारण प्रकृति में भयानक परिवर्तन होते रहते हैं। कितने ही बैक्टीरिया कार्बनिक वस्तुओं को सड़ाकर कार्बन डाइ-ऑक्साइड, अमोनिया और जल में परिवर्तित करते हैं। इन्हीं के प्रभाव से कूड़ा, मांस, हड्डी आदि सड़-गलकर दूसरी वस्तुओं में परिणत हो जाते हैं। यदि ऐसा न होता, तो ये असंख्य मृतक जीव और करोड़ों मन कूड़ा-करकट कहाँ जाता? थोड़े ही दिनों में जमीन इनसे भर जाती और हमारे रहने को भी जगह न रहती।

एक विशेष जाति के बैक्टीरिया वायु में उपस्थित नाइट्रोजन का उपभोग करते हैं। इस तरह जीवों के शरीर रचना की यह परम आवश्यक वस्तु बैक्टीरिया के शरीर में एकत्र होती है और अन्त में इनकी मृत्यु के बाद नमकों के रूप में पृथ्वी में मिल जाती है। इस भाँति इन जीवों की करामात ही से प्रकृति में नाइट्रोजन की मात्रा समान बनी रहती है।

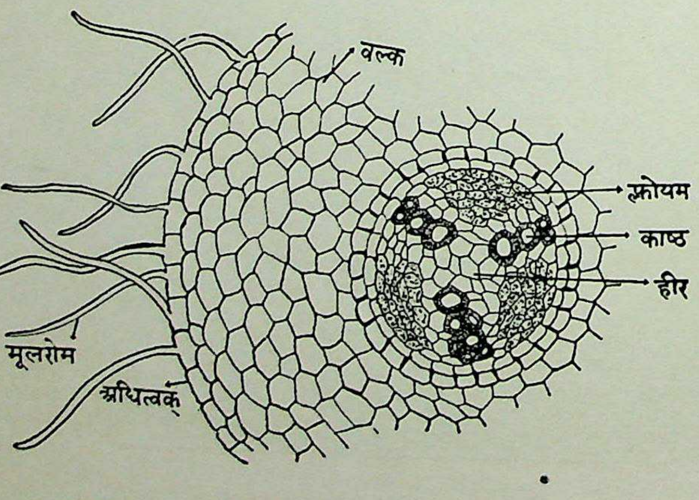

यह एक साधारण पौधे की जड़ के आड़े कत्तल का चित्र है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जड़ों के निराले काम
:: अनोखी जड़ें

जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है, जड़ के दो मुख्य काम हैं—पौधे को रोपना और उसके लिए पृथ्वी के जल और खाद से खूराक इकट्ठा करना। इनके अतिरिक्त जड़ें कभी-कभी अन्य काम भी करती हैं। ऐसी जड़ें साधारण जड़ों से कुछ भिन्न होती हैं इसलिए इन्हें हम अनोखी या निराली जड़ें कह सकते हैं। कर्त्तव्यभेद तथा रूपान्तर के अनुसार इनके कई भेद हैं। इन्हीं में कुछ का हम यहाँ वर्णन करेंगे।

अन्य जीवों की भांति पौधों को भी खूराक की आवश्यकता रहती है। यह उन्हें वायु और पृथ्वी से बराबर मिलती रहती है और इस प्रकार जब तक अवस्था अनुकूल रहती है, पौधों में खाद्य पदार्थ बराबर बनते रहते हैं। इसीलिए निशास्ता, प्रोटीन, शक्कर अथवा दूसरी वस्तुएँ न्यूनाधिक मात्रा में बराबर जमा होती रहती हैं। इन उपार्जित वस्तुओं में से कुछ तो पौधों की बाढ़-वृद्धि आदि में खर्च हो जाती हैं; परन्तु फिर भी कुछ-न-कुछ बची रह ही जाती हैं। इन बचे पदार्थों के लिए गोदाम की जरूरत पड़ती है। अधिकतर पेड़-पौधों में तने ही गोदाम का काम देते हैं; परन्तु किसी-किसी पौधे में जड़ें इस काम को करती हैं। इस प्रकार की कितनी ही जड़ों से आप परिचित भी होंगे। गाजर, मूली, शलजम, शकरकंद, जिन्हें हम तरकारियों के काम में लाते हैं, इन्हीं में से हैं।

गोदाम का काम देनेवाली जड़ें

गोदाम का काम देनेवाली जड़ें साधारण जड़ों से मोटी हाती हैं। इनमें जल और भाँति-भाँति के खाद्यरस संचित रहते हैं। चुकन्दर की जड़ में शक्कर जमा रहती है। इसी प्रकार किसी पौधे की जड़ में निशास्ता और किसी में कोई अन्य पदार्थ इकट्ठा रहता है। जड़ों में संचित वस्तुओं में से पानी सबसे अधिक उपयोगी है। रेगिस्तानी भागों में उगनेवाले पेड़-पौधों में प्रायः यही वस्तु संचित रहती है। इन स्थानों में उगनेवाली वनस्पतियों की वायुवर्त्ती शाखें और तने छोटे और मुलायम होते हैं; परन्तु जड़ें लम्बी और मोटी होती हैं। इन जड़ों का अधिकांश भाग पानी होता है।

तने के बनिस्बत जड़ों में खाद्य पदार्थों का संचित रहना पेड़-पौधों के लिए अधिकतर लाभकर प्रतीत होता है; क्योंकि जड़ें जमीन के अन्दर रहने के कारण, तने और शाखों की अपेक्षा, सरदी - गरमी तथा जानवरों के आक्रमण से अधिक सुरक्षित रह सकती हैं। मांसल जड़ें रेगिस्तानी भागों में अधिकतर पाई जाती हैं।

शतावर लहसुन और प्याज की जाति का पौधा है। इसकी जड़ें औषधियों के काम आती हैं।

बनावट के अनुसार गोदाम का काम देनेवाली जड़ों के कई भेद हैं। गाजर में ये जड़ें गोपुच्छाकार,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शलजम में शलजमाकार और मूली में मूलिकाकार होती हैं। इनके और भी अनेक भेद हैं। मांसल जड़ें भिन्न-भिन्न भाँति की जड़ों के रूपान्तर से उत्पन्न होती हैं। गाजर और चुकन्दर में ऐसी जड़ें मुख्य जड़ का रूपान्तर हैं; डायसकोरिया बटाटाज (यह एक प्रकार का रतालू है) में ये गौण मूल हैं; शकरकन्द में ये अनियमित जड़ों से उत्पन्न होती हैं, और शतावर की मोटी जड़ें (दे० पृष्ठ ६७५ का चित्र), जो आयुर्वेदीय तथा यूनानी दवाइयों के काम आती हैं, झखड़ा जड़ों में परिवर्तन से उत्पन्न होती हैं। मांसल जड़ों द्वारा प्रायः पौधों की उत्पत्ति भी होती है।

वायवीक जड़ें

वैसे तो जड़ें पृथ्वी के अन्दर ही रहती हैं और साधारण पौधों में ये जमीन के नीचे ही फैली रहती हैं; परन्तु आपने ऐसे पेड़ भी देखे होंगे, जिनमें जमीन के ऊपर भी जड़ें होती हैं। इस प्रकार की वायु में फैली जड़ों को हम 'वायवीक जड़ें' कहते हैं। कर्त्तव्य तथा बनावट के अनुसार इनके कई भेद हैं।

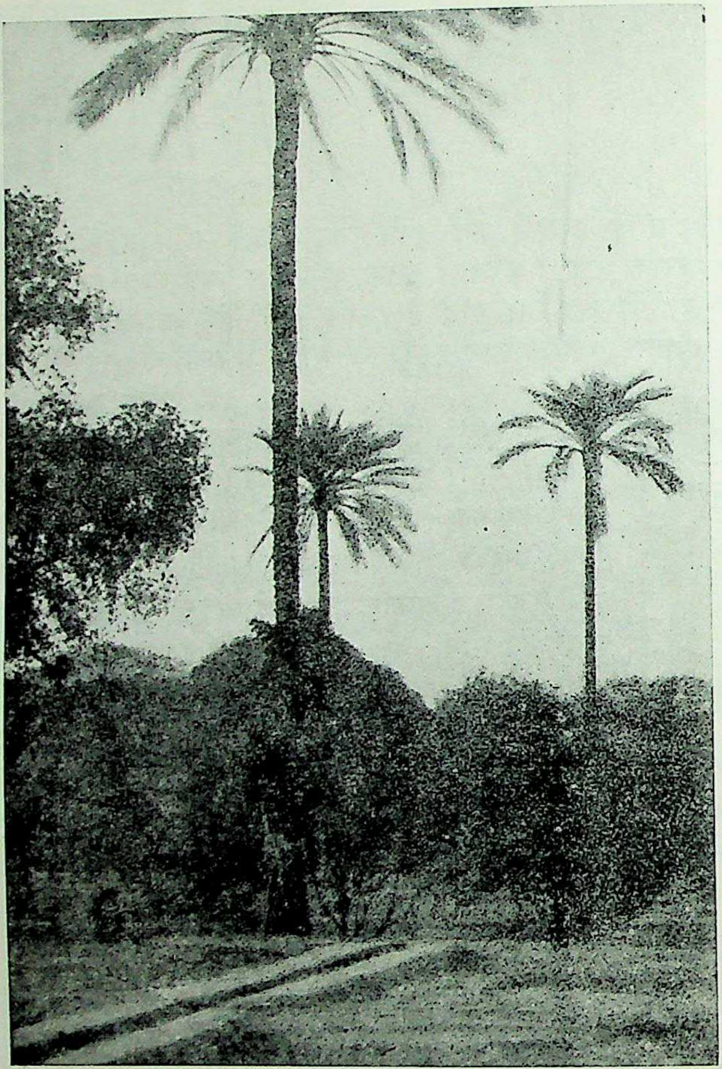

खजूर पर उगा हुआ पकरिये का वृक्ष। इसके बीज संभवतः चिड़िया द्वारा यहाँ आए थे। अभी यह छोटा और इसकी जड़ें पृथ्वी तक नहीं पहुँच पाई हैं। पर समय बीत जाने पर इसकी बरोही भूमि तक पहुँच जाएँगी। तब आश्रयदाता खजूर के लिए कठिन समस्या उपस्थित हो जायगी।

वायु से जलशोषण करनेवाली वायवीक जड़ें

बरगद, पीपल तथा पकरिया जैसे वृक्षों की शाखों से लटकती बरोही वायवीक जड़ें हैं। इस समूह के पौधे प्रारम्भ में प्रायः दूसरे पेड़ों पर उगते हैं (देखिए इसी पृष्ठ का चित्र)। लेकिन फिर भी ये परोपजीवी नहीं होते। ये अपरिजात पौधे (एपिफाइट्स) हैं। जिन पेड़ों पर ये उगते हैं, उनसे केवल इन्हें आधार ही मिलता है; जल और खाद्य पदार्थ इन्हें स्वयं प्राप्त करने पड़ते हैं।

अपरिजात वर्ग के पौधों में अनेक प्रकार के पर्णांग, मॉस, लिवरवर्ट, तथा लाइकेन आदि हैं। पोथोस और कितने ही आरकिड (दे० पृ० ६७७ का ऊपरी चित्र) इसी समूह के पौधे हैं। इस वृन्द के पौधों को विशेषकर जलाभाव का भय रहता है, इसलिए ये प्रायः ऐसे स्थानों पर ही उगते हैं, जहाँ प्रायः जल की कभी कमी नहीं रहती।

कोई-कोई लिवरवर्ट, मॉस तथा लाइकेन तो सूख जाने पर भी बहुत समय तक सजीव बने रहते हैं। ऐसे पौधे उन स्थानों पर भी उगते हैं जहाँ साल में कई महीने जल का अभाव रहता है। मंसूरी तथा नैनीताल जैसे स्थानों में आपने पेड़ों के तनों और शाखों पर अनेक प्रकार के मॉस और लिवरवर्ट देखे होंगे। वर्षा का अन्त होने पर ये सूख जाते हैं, परन्तु फिर भी सजीव रहते हैं और दूसरे साल मेह की बौछार पड़ते ही ये हरे हो जाते हैं। फूलवाले अपरिजात पौधे और अपरिजात पर्णांग विशेषकर भूमध्यरेखा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के निकटवर्त्ती जंगलों तथा पर्वतों की चोटियों पर, जहां बरसात अधिक होती है, उगते हैं। हमारे देश में अपरिजात पौधे दक्षिण के नीलगिरि पर्वत, पश्चिमी घाटों के जंगलों और हिमालय पर्वत, मंसूरी, नैनीताल, दारजिलिंग, शिलांग और सिकिम जैसे अनेक स्थानों में अधिकता से उगते हैं, जहां पर वर्षा की मात्रा अन्य प्रदेशों से अधिक होती है। लंका में भी इनका बाहुल्य है।

अपरिजात पौधों को जल की कठिनाई रहती है, इसलिए इनमें से बहुतों की वायवीक जड़ों में बाहर की ओर एक विशेष प्रकार का तन्तु होता है, जिसे 'विलामेन' कहते हैं। इस तन्तु की कोशिका-भित्तियाँ पतली, परन्तु छल्लेदार, पेंचदार या गर्तमय होती हैं, जिसके कारण वे दृढ़ बनी रहती हैं। इन भित्तियों में छिद्र भी होते हैं। इस तन्तु की एक विशेष प्रधानता यह है कि वह पानी को बड़ी सुगमता से ग्रहण कर लेता है। विलामेन की कोशिकाएँ वायुमंडल की तरी से, चाहे वह भाप के रूप में हो, जल सोख लेती हैं। इसलिए जिन पौधों की मेड़ों में विलामेन होता है, उन्हें जल प्राप्त करने में कठिनाई नहीं रहती। किसी-किसी आरकिड (दे० इसी पृष्ठ का ऊपरी चित्र) और ऐरोफाइट्स की वायवीक जड़ों में विलामेन के अन्दर के वल्क की कुछ कोशिकाओं में पर्णहरिम होता है। इसका महत्व हम आगे बताएंगे।

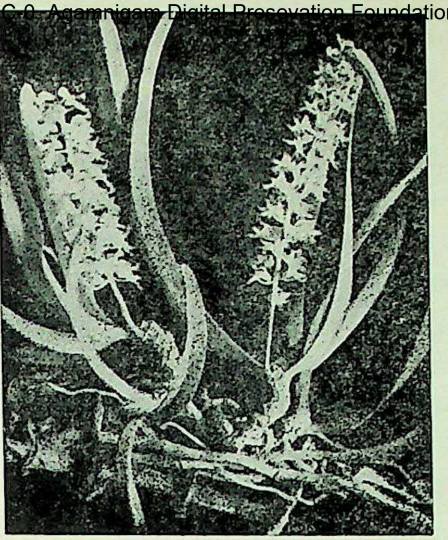

आरकिड। यह पहाड़ी देशों का, जहाँ वर्षा अधिक होती है, एक अपरिजात पौधा है। इस जाति के पौधों को जल की विशेष आवश्यकता रहती है। निचले गरम मैदानों के बगीचों में ये कठिनता से जीवित रहते हैं। इस जाति के पौधे प्रायः अन्य वृक्षों पर उगते हैं।

यद्यपि अपरिजात पौधे परोपजीवी वृत्ति के नहीं होते, फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि कभी-कभी इनसे उन पेड़ों को, जिन पर ये उगते हैं, बड़ी हानि पहुँचती है। बरगद, पीपल अथवा इसी समूह के अन्य कई पेड़ों के फन्दे में जो वृक्ष आ जाता है, उसका छुटकारा होना कठिन है। इन वृक्षों के पके फलों को चिड़ियाँ बड़े चाव से खाती हैं। इसलिए जिन दिनों इनके फल पकते हैं, चिड़ियों के झुण्ड-के-झुण्ड उन पर जाते हैं। इनके फलों को ले-लेकर वे दूसरे वृक्षों पर जाते हैं। इस प्रकार चिड़ियों के द्वारा इनके बीज दूसरे पेड़ों पर पहुँच जाते हैं। समय आने पर इन्हीं बीजों से पेड़ उगते हैं। क्रमशः इन नवीन पौधों की पत्तियाँ और शाखें ऊपर को बढ़ती हैं और जड़ें नीचे की ओर को चल पड़ती हैं! ये जड़ें प्रारम्भ में तो कोमल और पतली होती हैं; परन्तु ज्यों-ज्यों वृक्ष पुराना होता है, उससे अनेक जड़ें फूट निकलती हैं, जो धीरे-धीरे आधार के चारों ओर लिपट जाती हैं (पृ० ६७६ का चित्र)। जैसे-जैसे

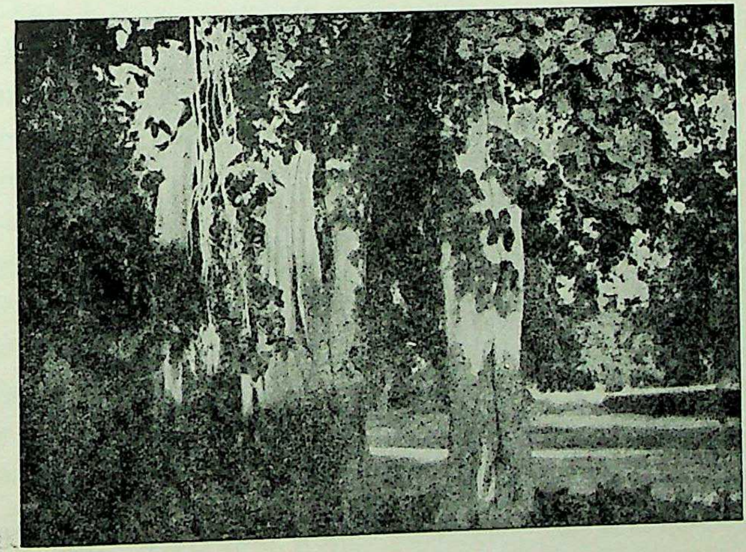

बरगद की बरोही। किसी समय तने जैसी ये बरोहियाँ सूत-जैसी जटाओं के रूप में उत्पन्न हुई थीं। आज वे बढ़कर पृथ्वी के अन्दर पहुँच गई हैं। मोटाव में ये तनों के समान हैं। इनको मुख्य तनों से अलग पहचानना कठिन है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्तियों को ज्यादा प्रकाश मिलता है, पेड़ और भी तेजी से बढ़ने लगता है। अन्त में उसकी जड़ें जमीन तक जा पहुँचती हैं। अब वे साधारण जड़ों की भाँति पृथ्वी से जल और खाद्य रस खींचने लगती हैं और इस प्रकार पेड़ के लिए और भी सुभीता हो जाता है, जिससे वह तेजी से बढ़ने लगता है। वे वायवीक जड़ें, जो अब तक कोमल थीं, कड़ी होने लगती हैं और उनसे कितनी ही शाखा-प्रशाखाएँ फूट निकलती हैं, जो चारों ओर फैलकर आश्रयदाता पेड़ को बुरी तरह से जकड़ लेती हैं। ज्यों-ज्यों आश्रयदाता वृक्ष पुराना होता जाता है, वह अन्दर से गौण वृद्धि के कारण फैलना चाहता है। पर इन जंजीरों की तरह जकड़ी हुई बरोहियों के कारण उसका बढ़ना कठिन हो जाता है। धीरे-धीरे उसके ये फंदे और भी अधिक दृढ़ होते जाते हैं और यद्यपि उनमें जकड़ा वृक्ष अन्दर से जोर मारकर इन्हें तोड़कर अलग होना चाहता है, परन्तु इसमें वह सफल नहीं हो पाता है। अब धीरे-धीरे आश्रयदाता पेड़ कमजोर होने लगता है। उसकी पत्तियाँ और शाखाएँ मुरझाने लगती हैं और अन्त में इस संग्राम में पराजित हो उसे उस अपरिजात पेड़ को, जिसको उसने आज से कई वर्ष पूर्व आश्रय दे पाला था, स्थान देना पड़ता है। फिर भी हम अपरिजात पौधों को परोपजीवी नहीं कह सकते। ये केवल आश्रय के लिए ही दूसरे पेड़ों पर उगते हैं और यद्यपि आश्रयदाता पेड़ इन्हीं के कारण अक्सर सूखकर मर भी जाते हैं, फिर भी जिन पेड़ों पर इस जाति के वृक्ष उगते हैं, उनसे वे अपना खाद्य पदार्थ ग्रहण नहीं करते।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, बरगद जैसे पेड़ों की बरोहियाँ जिस समय बढ़कर जमीन तक पहुँच जाती हैं, वे साधारण जड़ों का काम करने लगती हैं। साथ ही वे ज्यों-ज्यों पुरानी होती हैं, मोटी और मजबूत होती जाती हैं। वे तने की भाँति शाखों और पत्तियों के बोझ को धारण करने का भी काम देती हैं। इस प्रकार ऐसे पेड़ ज्यों-ज्यों पुराने होते हैं, इस प्रकार के अनेक तने उनमें उत्पन्न हो जाते हैं। बहुत पुराने बरगद के पेड़ में मुख्य तने को इन तनों से पृथक् पहचानना कठिन होता है (देखें पृष्ठ ६७७ का निचला चित्र)।

हमारे देश में कलकत्ते के राष्ट्रीय उद्यान (नेशनल बोटेनिकल गार्डेन्स) में एक पुराना बरगद का पेड़ है, जिसमें २५० से अधिक ऐसी बरोहियाँ हैं, जिनकी मोटाई २-३ गज तक है। इस पतली बरोहियों की संख्या ३,००० से अधिक है। इस प्रकार वृक्ष में सब मिलाकर ३,२५० से भी अधिक तने हैं। इसे हम वृक्ष नहीं, बल्कि अच्छा-खासा बरगद का बगीचा कह सकते हैं। हजारों आदमी इसके साए में आराम कर सकते हैं। इसकी शाखों में अनगिनत पक्षियों के घोंसले हैं।

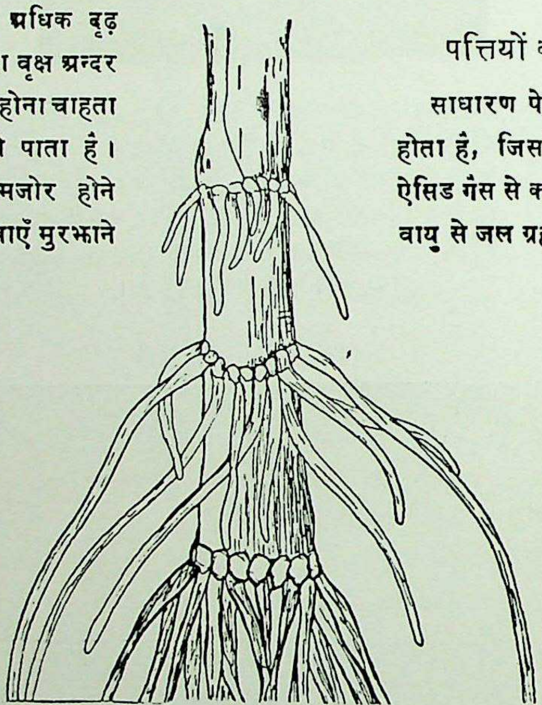
ज्वार के निचले भाग का चित्र। इसकी निचली गाँठो से निकलकर अवलंब जड़ें जमीन में जा धँसती हैं। इससे पौधे को खड़ा रहने में सहारा मिलता है।

पत्तियों का काम करनेवाली जड़ें

साधारण पेड़-पौधों की पत्तियों में पर्णहरिम होता है, जिसके द्वारा वे हवा की कार्बोनिक ऐसिड गैस से कार्बन ग्रहण करती हैं। जैसा कि वायु से जल ग्रहण करनेवाली जड़ों का वर्णन करते समय कहा जा चुका है, कोई-कोई अपरिजात वर्ग के आरकिड तथा कुछ दूसरे अपरिजात पौधों की वायवीक जड़ों में पर्णहरिम होता है, जिसके सबब से वे वायु के कार्बन का उपभोग करते हैं। इन पौधों की जड़ें रोपण के अतिरिक्त जलशोषण और कार्बन-संश्लेषण का भी काम करती हैं। यथार्थ में ऐसी जड़ें इन दोनों ही क्रियाओं का बड़ी कुशलता से पालन करती हैं। जिस समय ऐसी जड़ों का दूसरे वृक्ष की छाल या डाल से लगाव होता है, उससे अनेक नलिकाकार या अन्य भाँति की कोशिकाएं बनती रहती हैं, जो इन्हें आधार से चिपटने का काम देती हैं और इसलिए ये जड़ें आधार को मजबूती से जकड़ लेती हैं। यह पकड़ इतनी मजबूत होती है कि अगर आप किसी वृक्ष की डाल पर लगे आरकिड को वहाँ से हटाकर कहीं और लगाना चाहें, तो जड़ों के साथ-साथ अक्सर पेड़ की छाल भी उखड़ आती है। इन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वायवीक जड़ों में जिस समय उनका वृक्ष की शाखों से लगाव नहीं रहता, ऐसी कोशिकाओं का बनना बंद हो जाता है।

जैसा हम पहले कह चुके हैं, इन जड़ों में सबसे बाहर की ओर एक रंग हीन कोशिकाओं का आवरण 'विलामेन' होता है, जो वायुमण्डल की तरी और भाप से जलशोषण करता रहता है। विलामेन के अन्दर के पर्त में पर्णहरिम होता है, जिसका हरापन, जिस समय तरी रहती है, दिखाई देता रहता है। विलामेन की कोशिकाओं में जलशोषण की प्रधानता किसी पौधे में कम और किसी में अधिक रहती है। एक जाति के आरकिड को, जिसे 'आनसिडियम स्फैसीलेटम' कहते हैं, अगर शुष्क वायुमंडल से तर वायुमंडल में ले जाया जाय, तो इसकी वायवीक जड़ें २४ घंटे के अन्दर अपने वजन का ८ फी सदी जल सोख लेती हैं। एक दूसरी जाति के आरकिड 'एपीडेंड्रन एलोंगेटम' की वायवीक जड़ें ऐसी दशा में अपने वजन का ११ फी सदी वजन जल सोख लेती हैं। जब वायुमंडल में तरी नहीं होती, तो विलामेन की कोशिकाएँ सूख जाती हैं और इस प्रकार वे अन्दर की कोशिकाओं को वाष्प-त्याग से बचाती हैं। इसलिए विलामेन से पौधों को बड़ा लाभ होता है। जिन पौधों में ऐसी वायवीक जड़ें होती हैं, जिनमें कि विलामेन और पर्णहरिम होता है, वे वायु से जल और कार्बन दोनों ही ग्रहण करते हैं। इस प्रकार इनमें स्टार्च-संश्लेषण होता रहता है।

अनेक पौधों की वायवीक जड़ें उन्हें चढ़ने में मदद देती हैं। ऐसी जड़ों के सहारे ये पौधे दूसरे पेड़ों के तनों अथवा चट्टानों तथा दीवालों पर बड़ी कुशलता से चढ़ते चले जाते हैं। इस प्रकार की जड़ें अनेक पौधों में होती हैं। 'टिकोमा स्प्लैंडेन्स' (दे० इसी पृष्ठ का ऊपरी चित्र) और 'फाइकस स्टीपुलेटा' में ऐसी जड़ें होती हैं।

अवलम्ब जड़ें

समुद्रतट के दलदलों की मिट्टी सदा गीली बनी रहती है, इसलिए ऐसे स्थानों पर उगनेवाले पेड़ों को धरती के अन्दर के अवलम्ब का सदा पूरा भरोसा नहीं रहता। इन पेड़ों में प्रायः वायवीक जड़ें बैसाखी की तरह सहारा दे उन्हें संभाले रहती हैं। केवड़े में ऐसी ही जड़ें होती हैं। इसके तने के निचले भाग से निकली जड़ें उसके भार को रोके रहती हैं (इसी पृष्ठ का निचला चित्र)।

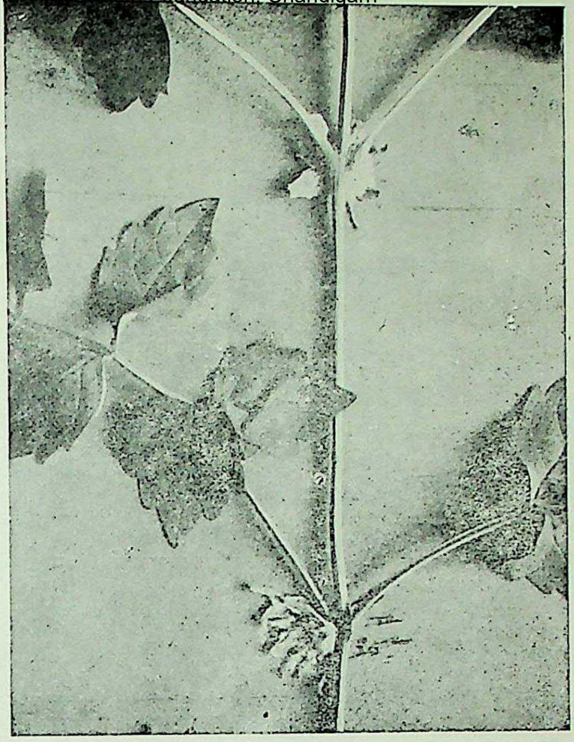

(ऊपर) टिकोमा स्प्लैंडेन्स नामक लता, जिसकी जड़ें उसे दीवारों पर चढ़ने में मदद देती हैं। (नीचे) केवड़े की अवलंब जड़ें।

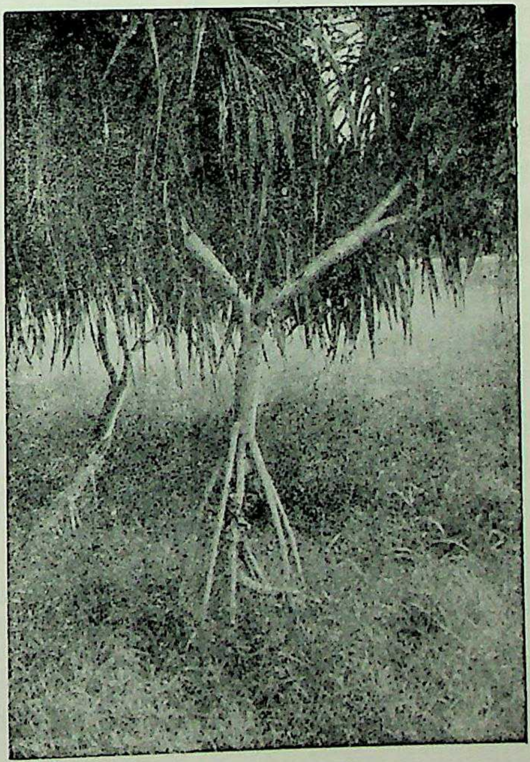

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

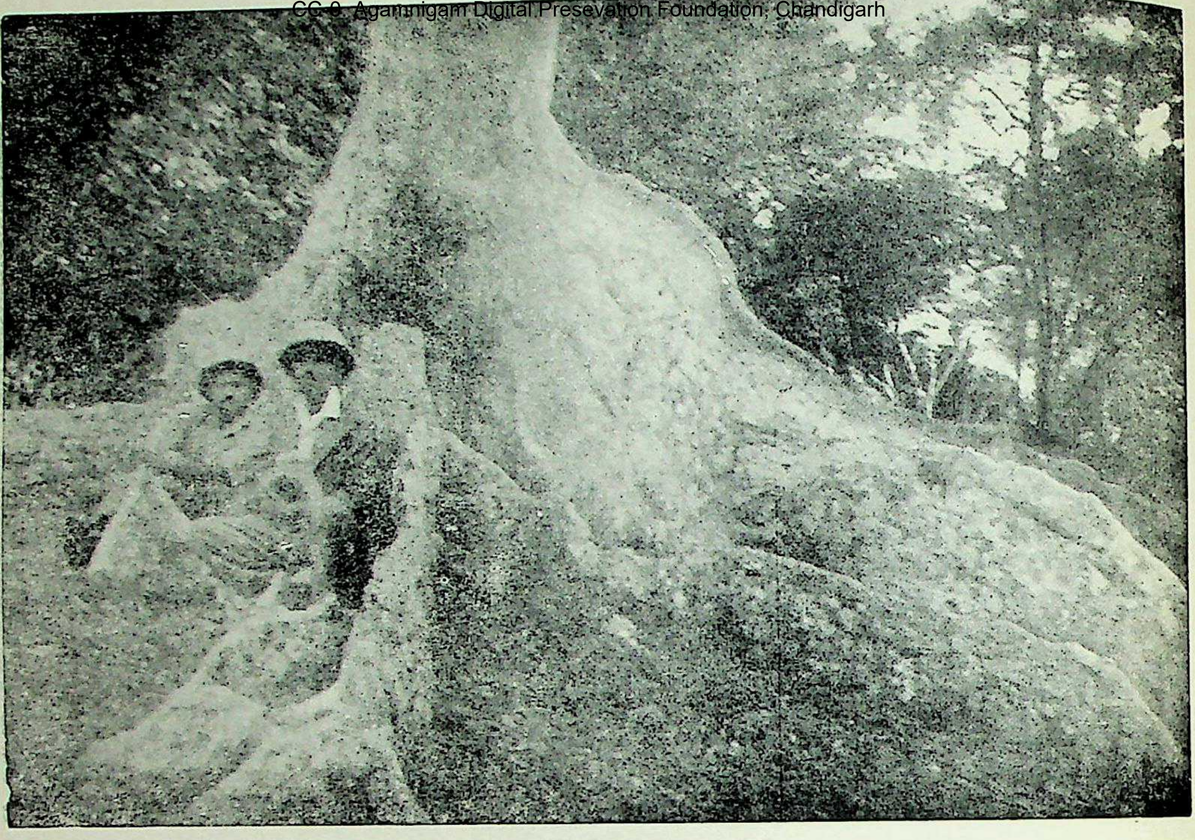

पुस्तवान जड़ों का नमूना । यह लंका के पैराडिनिया बोटैनिकल गार्डन्स के एक वृक्ष के निचले भाग का चित्र है ।

ज्वार और गन्ने की भांति के पौधों की साधारण जड़ें कमजोर होती हैं, इसलिए इन जड़ों के सहारे पौधे के बोझ का सँभालना कठिन रहता है। अतएव इन पौधों की निचली दो-तीन गाँठों से वायवीक जड़ें निकलकर चारों ओर जमीन में धँस जाती हैं (दे० चित्र पृष्ठ ६७८) । ये पौधे के भार को रोके रहती हैं और इस तरह वे आसानी से सीधे खड़े रहते हैं। जिस प्रकार मैदान में झंडा चारों ओर से रस्सियों के बांध देने से खड़ा रहता है, उसी भांति जिन पौधों में ये जड़कुलें होती हैं, वे भी आसानी से जमीन में स्थापित रहते हैं और वायु के झोंकों का उन पर प्रायः असर नहीं पड़ता । किन्हीं-किन्ही ताड़ की जातिवाले पेड़ों में भी ऐसी जड़ें होती हैं।

पुश्तवान जड़ें

कुछ ऐसे वृक्ष भी होते हैं, जिनकी मुख्य जड़ें जमीन के नीचे अधिक दूर तक नहीं जातीं । इसलिए उनमें तने और शाखों के भार को रोकने के लिए बाहर से सहारा देने की आवश्यकता होती है। इन पेड़ों के निचले भाग तख्तों की भाँति बाहर उभरे रहते हैं, जिनसे वृक्ष को सहारा मिलता है। कभी-कभी ये 'पुश्तवान' बड़े लम्बे-चौड़े होते हैं। ऐसे एक ही तख्ते से अच्छी खासी मेज बन सकती है ! ये जड़ें प्रायः जमीन के ऊपर इतनी ऊँची निकली रहती हैं कि इनके एक ओर खड़ा आदमी दूसरी तरफ के आदमी को आसानी से देख नहीं सकता। लंका के पैराडिनिया उद्यान में एक जाति के पेड़ हैं, जिनकी 'पुश्तवान जड़ें' कई गज के फेर में फैली हुई हैं (देखो इसी पृष्ठ का चित्र) । सेमल और फाइकस इलैस्टिका में भी ऐसी जड़ें होती हैं। ऐसी जड़ोंवाले पेड़ भूमध्य-रेखा के निकटवर्ती जंगलों में होते हैं।

साँस लेनेवाली जड़ें

वैसे तो प्रायः सभी पेड़ों की जड़ें किसी-न-किसी अंश तक साँस लेती हैं; परन्तु इस समय हम उन जड़ों पर विचार करेंगे, जो विशेषकर इसी काम के लिए साधारण जड़ों में परिवर्तन से उत्पन्न होती हैं। साधारण भूमि में मिट्टी के कणों के बीच-बीच में स्थान होते हैं, जिनमें वायु भरी रहती हैं। इस वायु से जड़ों को ऑक्सिजन मिलती

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। नदी के मुहानों और समुद्र-तट की कोई-कोई जगहों पर तथा दलदलों में अकसर जल भरा रहता है, जिसके कारण ऐसी भूमि में वायु नहीं रहती। जो पेड़ ऐसे स्थानों में उगते हैं, उनकी जड़ों को साँस लेने में कठिनाई होती है। ऐसे पेड़ों में वायु प्राप्त करने के लिए एक विशेष प्रकार की जड़ें होती हैं। ऐसी जड़ें साधारण जड़ों की वृत्ति के विपरीत पृथ्वी के अन्दर नीचे की ओर न जाकर उलट धरती फोड़कर बाहर निकल आती हैं। इन जड़ों में एक विशेष प्रकार का तन्तु होता है, जिसमें वायु भरी रहती है। यही वायु समय पर साँस लेते के हेतु काम आती है।

परोपजीवी जड़ें

अमरबेल, गँठवा और बाँदा जैसे अनेक पौधे हैं, जो अन्य पौधों से खाद्य-रस प्राप्त करते हैं। इस समूह के पौधों में अपने पालक या प्रतिपालक से खाद्यरस ग्रहण करने के लिए विशेष प्रकार की जड़ें होती हैं, जिन्हें हम परोपजीवी जड़ें कहते हैं। ये जड़ें पालक पौधे से जा मिलती हैं। इन दोनों के प्रवाहन-तन्तु आपस में मिल जाते हैं और इस प्रकार परोपजीवी पौधे पालक पौधे से रस ग्रहण करते रहते हैं। अमरबेल में पर्णहरिम नहीं होता, इसलिए इसमें सारे खाद्य रस उसी पेड़ से आते हैं, जिस पर वह उगी होती है। बाँदा की जाति के पौधे, जिन्हें आपने आम, शीशम तथा अन्य पेड़ों पर लगे देखा होगा, प्रतिपालक से जल तथा खनिज लवण ही ग्रहण करते हैं और अपनी हरी पत्तियों द्वारा, अन्य पौधों की भाँति, वे कार्बन वायु से ही प्राप्त करते हैं। उत्तर प्रदेश में बाँदा आम की एक अति भयानक व्याधि है। अक्सर वह आम के पेड़ों पर बड़ा जोर पकड़ता है।

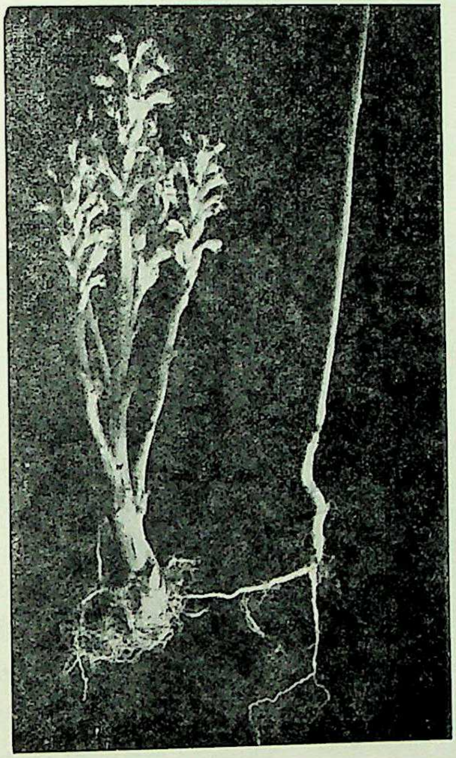

गँठवा और उसका प्रतिपालक सरसों। जड़ों को खोदकर देखने से पता लगता है कि छिपे-छिपे गँठवा की जड़ें अपने पड़ोसी की जड़ों से किस प्रकार जा मिली हैं।

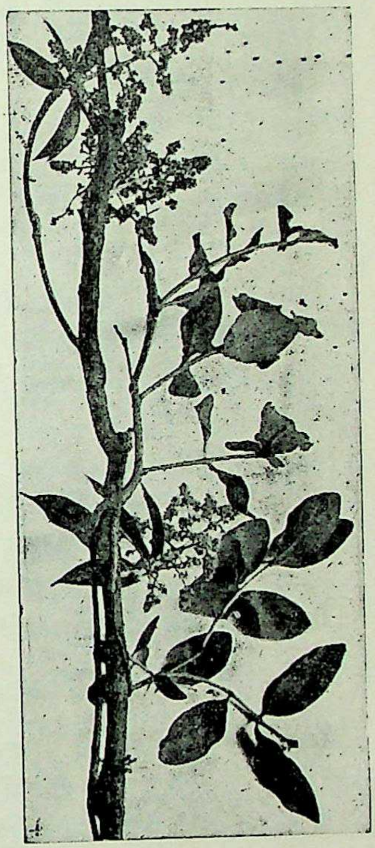

आम की डाली पर लगा बाँदा। गाँठों के स्थान पर बाँदा की जड़ें आम की शाखा में प्रवेश करती हैं।

बाँदा के बीजों में एक प्रकार का लसदार पदार्थ होता है, जिसके कारण वे शाखों पर आसानी से चिपक जाते हैं। ये बीज समय आने पर वहीं पर अंकुरित होते हैं। बाँदा की जड़ से एक प्रकार का रस निकलता है, जो प्रतिपालक पौधे के तन्तु को गला देता है और इस प्रकार इसकी जड़ें पालक के तन्तुओं के अन्दर प्रवेश करती हैं। धीरे-धीरे फैलकर बाँदा तमाम पेड़ में पहुँच जाता है। इससे पेड़ को बड़ी हानि पहुँचती है। गँठवा (इसे सरसों का बाँदा भी कहते हैं) की जड़ें जमीन के अन्दर ही प्रतिपालक की जड़ों से मिली रहती हैं। बाहर से देखने में कुछ पता नहीं चलता। यह पौधा अक्सर बैंगन, तम्बाकू, सरसों, आलू, पिटूनिया और नागकेसर की जड़ों पर उगता है। धरती के बाहर मनोहर फूलों से लदी डाली को देखकर भला कौन अनुमान कर सकता है कि यह पौधा छिपे-छिपे पड़ोस के पौधे के साथ विश्वासघात कर उसका सर्वनाश करने में तत्पर है! गँठवा में पत्ते नहीं होते, इसलिए वह प्रतिपालक से ही सारे खाद्य रस प्राप्त करता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। बांदा और अमरबेल की भांति इसकी जड़ों से भी एक प्रकार का रस निकलता है, जिसके प्रभाव से प्रतिपालक पौधे के तन्तु गल जाते हैं और इसलिए गंठवा की जड़ें अन्दर प्रवेश कर खाद्य रस को चूस सकती हैं।

गंठवा की भांति का एक और पौधा है, जिसे 'रंफ्लीजिया' कहते हैं। इस पौधे में सूत-जैसी जड़ों और फूल के अतिरिक्त और कोई भी अंग नहीं होता। पृथ्वी के बाहर केवल फूल ही दिखाई देता है। जड़ें अन्दर - अन्दर पालक के तन्तुओं में फैली रहती हैं। वहीं से वे खाद्य रस खींचती रहती हैं। 'रंफ्लीजिया आरनेल्डाई' का फूल संसार के फूलों में सबसे बड़ा होता है। इसकी गणना वनस्पति-संसार की अद्भुत वस्तुओं में है। फूल की प्रत्येक पंखुड़ी लंबान में एक फुट से अधिक होती है और कुल फूल का वजन ७-८ सेर के करीब होता है।

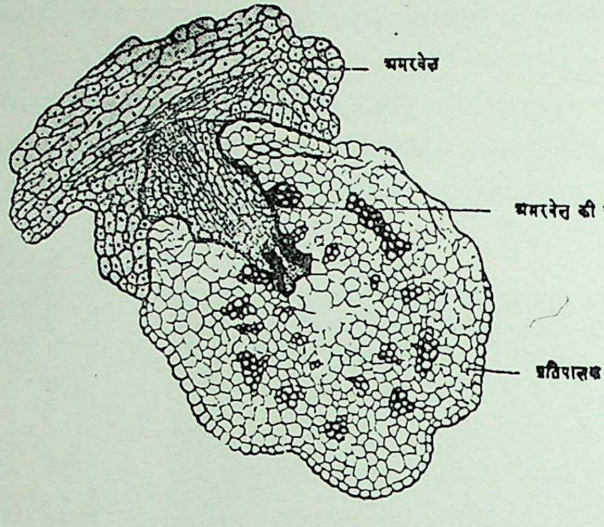

अमरबेल और उसका प्रतिपालक। अमरबेल से अनेक परोपजीवी जड़ें निकल कर उस पेड़ के अंग में, जिस पर वह फैली रहती है, जा घुसती हैं। प्रस्तुत मानचित्र में यही दिखाया गया है कि किस प्रकार गहराई तक इस परोपजीवी पौधे की जड़ें प्रतिपालक के अग में घुसकर उसका शोषण करती रहती हैं।

बिना जड़वाले साधारण (नलिकायुक्त) पौधे

साधारण पौधों में तालाबों में उत्पन्न होनेवाली एक प्रकार की काई (यह फूलवाले पौधों में सबसे छोटी होती है) में जड़ नहीं होती। ब्लैडरवर्ट नामक कीटाशी पौधे में भी जड़ नहीं होती। यह पौधा हमारे पास-पड़ोस के तालाबों और पोखरों में होता है। इसमें जड़ों का काम रोम द्वारा होता है। एक प्रकार के जलपर्णांग सेल्वीनिया में भी जड़ों का कर्त्तव्य विशेष प्रकार के रोमों द्वारा होता है। ये रोम पत्तियों के रूपान्तर से उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार जड़ों के अभाव में शोषण-क्रिया रोमवत् पत्तियों द्वारा होती है।

राइज्वाइड्स

अभी तक हमने नलिकायुक्त पौधों की जड़ों पर विचार किया है। नलिकारहित पौधों में यथार्थ में जड़ें नहीं होतीं, परन्तु फिर भी रोपण और शोषण दोनों क्रियाएं इनमें भी होती हैं। इन पौधों में प्रायः जड़ों का काम रोमों द्वारा होता है। ये रोम बनावट में अत्यन्त सरल होते हैं। शैवालादि जाति के पौधे प्रायः पानी के अन्दर ही रहते हैं, इसलिए इन में शोषण करनेवाले विशेष अंग की आवश्यकता नहीं रहती। प्रायः यह क्रिया सारे पौधे द्वारा होती है। रोपण करने के लिए किसी-किसी में रोम (राइज्वाइड्स) और किसी - किसी में 'होल्डफास्ट' होते हैं। होल्डफास्ट एक विशेष प्रकार का जड़-जैसा अंग है, जो इन पौधों को चट्टानों से जकड़े रहता है। लिवरवर्ट में जड़ों का काम राइज्वाइड्स द्वारा होता है। ये एककोष्ठी होते हैं। ये रोम इन पौधों में रोपण और शोषण दोनों ही का काम करते हैं।

मॉसेज में राइज्वाइड्स बहुकोष्ठी होते हैं। फिर भी इनकी रचना अत्यन्त सरल होती है। ये नलिका या डोरे सरीखे होते हैं। इनकी मोटाई एक कोशिका से अधिक नहीं होती। इन पौधों में भी लिवरवर्ट्स की भांति रोपण और शोषण दोनों ही क्रियाएं राइज्वाइड्स द्वारा होती हैं। लाइकेन (इनमें छैलछबीला जैसे पौधे हैं) में भी जड़ के स्थान पर राइज्वाइड्स होते हैं, परन्तु ये विशेष कर रोपण का ही कार्य करते हैं। सम्भव है, किसी-किसी लाइकेन में रोम (राइज्वाइड्स) शोषण का भी काम करते हों।

यदि हम बिल्कुल नीची कोटि से लेकर ऊंची कोटि तक के पौधों तक कुल मिलाकर विचार करें, तो देखेंगे कि पेड़-पौधों में क्रमशः श्रम-विभाजन की ओर विकास हुआ है। निम्नकोटि के शैवालादि में समस्त पौधा शोषण का काम करता है। किसी-किसी शैवाल में रोपण के लिए होल्ड-फास्ट या हैप्टीरा भी होता है। इनसे ऊंची श्रेणी के पौधों में राइज्वाइड्स होते हैं, जो रोपण और शोषण का काम करते हैं। नलिकायुक्त पौधों में जड़ें रोपण का काम देती हैं और नवल जड़ें और उन पर वर्तमान रोम शोषण का काम करते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्ती, फूल, फल, आदि को धारण करनेवाला अंग :: तना

पहले वर्णन किया जा चुका है, कि तना पौधे का वह अंग है, जो पत्ती, फूल और फल को धारण करता है। इसी में होकर जड़ द्वारा संचित पदार्थ पत्तियों तक पहुँचते हैं और उनमें उपार्जित द्रव्य जड़ों में आते हैं। इसके अतिरिक्त किसी-किसी पौधे में तने दूसरे काम भी देते हैं। ऐसे तने साधारण तनों से कुछ भिन्न होते हैं। आइए, पहले साधारण तने की कुछ बातें आपको बताएँ।

जब हम तने के अन्य अंगों को धारण करने के कर्त्तव्य पर विचार करते हैं, तो हमारा ध्यान कई बातों की ओर जाता है। यह तो स्पष्ट ही है कि तना ही इन सबका आधार है। इसी के सहारे पत्ती, फूल, फल अपनी-अपनी जगह पर लगे रहते हैं। यही नहीं, इसी के प्रभाव से ये सब वायुमण्डल में ऐसे पसरे रहते हैं कि इन्हें अपने-अपने कामकाज में अधिक-से-अधिक सुविधा मिलती है। उदाहरण के लिए पत्तियों को ही लीजिए। गौर करने से आपको इस बात का पता लग जायगा कि बहुधा आसपास की पत्तियाँ एक दूसरे के ऊपर नहीं रहतीं। पत्तियों की यह विशेषता पेड़ के लिए बड़ी लाभदायक है, क्योंकि इस प्रकार सारी पत्तियों को रोशनी मिलती रहती है, जिसकी सहायता से वे हवा की कार्बन डाइ-ऑक्साइड और जड़ों से संचित जल से स्टार्च जैसा अमूल्य पदार्थ तैयार करती हैं। इसी तरह यदि हम फूलों की ओर ध्यान दें, तो तुरंत पता लग जायगा कि ये अपनी-अपनी टहनियों पर ऐसे लगे होते हैं कि इनके पराग-कण योनिक्षत्र तक बड़ी सुविधा से पहुँच जाते हैं। वे फूल जिनमें पतिंगों द्वारा सेचन होता है, इस ढंग से लगे होते हैं कि पतिंगे उन्हें सुगमता से देख सकते हैं। जिन फूलों में यह क्रिया हवा के जरिए से होती है, वे ऐसे फैले रहते हैं कि हवा का झोंका लगते ही पराग झड़कर एक फूल से दूसरे फूल तक आसानी से पहुँच जाता है। इसी तरह हवा के सहारे छितरनेवाले फल और बीज भी डालों से प्रायः इस प्रकार निकले रहते हैं, जिसमें तनिक झोंका लगने पर ही वे आसानी से हवा में उड़ सकें। जड़ों की भाँति कभी-कभी तने भी कोठार का काम देते हैं। चिरस्थायी अंग होने के कारण इस काम के लिए ये कहीं अधिक उपयुक्त अंग हैं। यदि साधारण पत्तियों में संचित पदार्थ जमा होते रहें, तो खाद्य पदार्थ बनने में बड़ी अड़चन पड़ सकती है, जिससे स्टार्च जैसी परम आवश्यक वस्तु की कमी रह जाने और इस तरह पौधों की बड़ी हानि पहुँचने की सम्भावना रहती है।

तने की पहचान

साधारण तने जमीन के ऊपर निकले होते हैं और इस-लिए प्रायः इन्हें पेड़ के अन्य अंगों से पहचानने में कठिनाई नहीं होती। किसी-किसी पौधे में तने पृथ्वी के अन्दर-ही-अंदर रहते हैं (देखो पृ० ६८४ के चित्र)। ऐसे तने प्रायः देखने में जड़ों से बहुत-कुछ मिलते-जुलते भी होते हैं। लेकिन फिर भी अक्सर इन्हें जड़ों से आसानी से पृथक् किया जा सकता है; क्योंकि ऐसे तनों पर भी प्रायः वल्क-पत्र (स्केल लीव्ज) या इनके चिह्न और आँखें मिल जाती हैं (पृ० ६८४ का ऊपरी चित्र)। इसके अतिरिक्त जड़ और तने की आन्तरिक रचना में भी बड़ा अन्तर होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

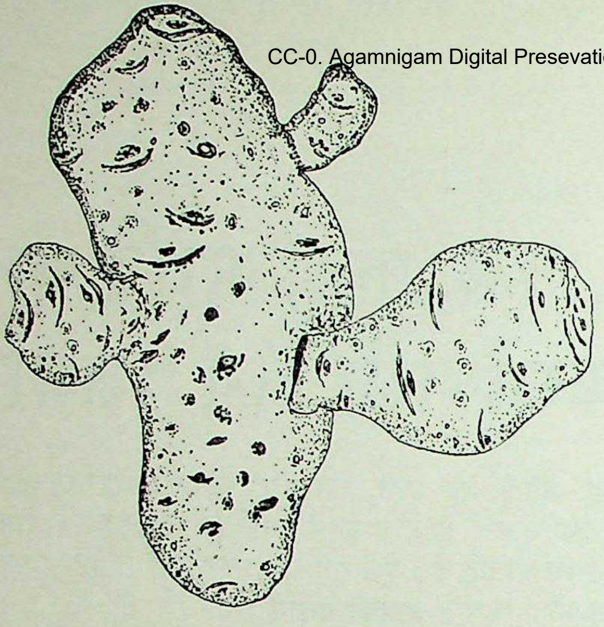

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि आलू जड़ नहीं, बल्कि तना है। उसकी गणना विशेष प्रकार के तनों में की जाती है।

तने की आन्तरिक रचना

जैसा पहले वर्णन किया जा चुका है, पौधे के अंग अनेक तन्तुओं से बने हैं। साधारण द्विदली पौधे के तने में तीन प्रधान तन्तु-संस्थान होते हैं। ये अधित्वक्-तन्तु, प्रवाहक-तन्तु और आधार-तन्तु हैं। इन तन्तुओं में ही परिवर्तन से कई प्रकार के अन्य तन्तु उत्पन्न होते हैं। ऐसे तनों में ये तन्तु किस प्रकार बटे रहते हैं, इसका ठीक-ठीक पता हमें पृष्ठ ६८५ के चित्र की जांच से चल सकता है। ये तने उस मोमबत्ती के समान हैं, जिसमें मोम के बाहर एक कागजी खोल चढ़ा हो और मोम के अन्दर, एक ही परिधि पर, एक-दूसरे से कुछ-कुछ फासले पर कई बत्तियाँ हों। इस कल्पित मोमबत्ती में कागजी खोल अधित्वक् की जगह, मोम आधार-तन्तु के स्थान पर और अन्दर की बत्तियाँ नसों की जगह होंगी। आगे चलकर हम ऐसे तने की आन्तरिक रचना की फिर चर्चा करेंगे।

जड़ और तने की नसों में अन्तर

सभी नसोंवाले पौधों के तनों की रचना एक-सी नहीं होती। हर समूह के पौधों में कोई-न-कोई विशेषता रहती है और प्रायः इसी विशिष्ट विशेषता के सहारे ही उनके प्रधान समूह तक का पता हमें चल सकता है।

जैसा हम पहले देख चुके हैं, प्रवाहक-तन्तुक्रम या नसों में दो प्रकार के तन्तु होते हैं—काष्ठ और फ्लोयम या 'अन्तर छाल'। प्रायः अन्तर छाल में लोग छाल के अन्दर और काष्ठ के बाहर के सभी तन्तुओं को शामिल करते हैं। इस तरह इसमें केम्बियम, फ्लोयम, पेरीसाइकिल और कुछ भाग वल्क का भी आ जाता है। लेकिन हम इस शब्द का प्रयोग केवल फ्लोयम के लिए ही करेंगे। जड़ और तने की नसों में काष्ठ और फ्लोयम का स्थान भिन्न-भिन्न होता है। जड़ की नसों में ये अगल-बगल एक ही परिधि पर, परन्तु भिन्न-भिन्न अर्द्धव्यास पर होते हैं (पृ० ६८६ के चित्र में अ), परन्तु तने में ये ऊपर-नीचे, एक ही अर्द्धव्यास पर, लेकिन भिन्न-भिन्न परिधि पर होते हैं (पृ० ६८६ के चित्र में ब)। जड़ और तने की रचना में यह प्रधान अन्तर है।

परन्तु इनमें एक और अन्तर भी होता है। जैसा आपको मालूम है, नसों में काष्ठ ही प्रधान तन्तु है। काष्ठ में कई प्रकार की कोशिकाएँ और नलिकाएँ होती हैं। इनकी भित्तिकाओं पर भिन्न-भिन्न प्रकार से काष्ठोज की तह जमा रहती है, जिससे इन नलिकाओं की भित्तिकाएँ छल्लेदार, पेंचदार या गर्तमय हो जाती हैं (पृ०६४१ का चित्र)। सबसे प्रथम बननेवाली नलिकाओं में काष्ठोज की तह छल्लेदार या पेंचदार होती है। तनों की नसों में ऐसी नलिकाएँ सबसे भीतर तने के केन्द्र की ओर रहती हैं, और जड़ों में, सबसे बाहर, तने की परिधि की ओर (पृ० ६८६ का चित्र)। इस तरह सबसे प्रथम बनने

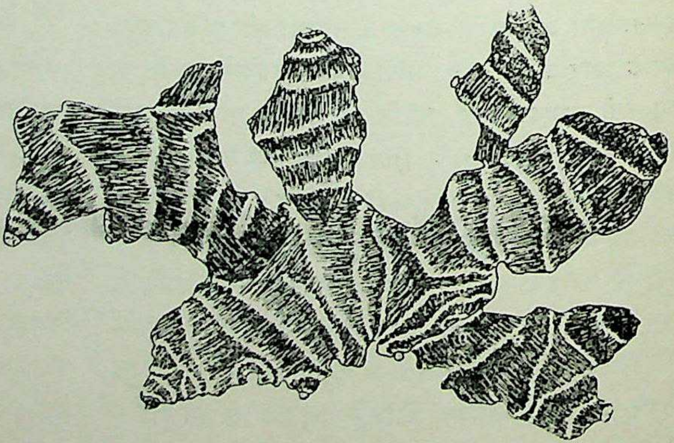

अदरक भी एक विशेष प्रकार का तना है। यद्यपि देखने में यह जड़ जैसा होता है, पर यथार्थ में यह जड़ नहीं हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वाले काष्ठ 'प्रोटोजाइलेम' का स्थान तने और जड़ों में भिन्न-भिन्न होता है। तने की नसों को एन्डार्क और जड़ों की नसों को एक्जार्क कहते हैं।

गुप्त-बीजी पौधों के दो प्रधान समूह

गुप्त-बीजी पौधों के दो प्रधान समूह हैं—एकदली और द्विदली। इन पौधों में कई बातों में विभिन्नता है। द्विदली पौधे के बीज में दो दालें या "बीज-पत्र" होते हैं। बीज अंकुरित होने पर यही दोनों बीज-पत्र सबसे प्रथम पत्तियों के रूप में बाहर निकलते हैं। इस समूह के पौधों की संख्या बहुत बड़ी है। इनमें बूटे, झाड़ और वृक्ष सभी प्रकार के पेड़-पौधे हैं। आम, जामुन, महुवा, मटर, चना, सेब, गुलाब आदि हजारों जाति के पौधे इस समूह में हैं। एकदली पौधे में बीज अंकुरित होने पर पहले एक ही पत्ती या "बीज-पत्र" बाहर निकलता है। इस समूह में विशेषकर बूटे और झाड़ ही होते हैं। ताड़, खजूर, नारियल, गेहूँ, जुआर और अनेक प्रकार की घास वगैरह इस समूह में हैं। इन दोनों समूहों के पौधों के तने की आन्तरिक रचना भी एक-सी नहीं होती।

द्विदली पौधे के तने की आन्तरिक रचना

मटर या सूरजमुखी जैसे किसी साधारण पौधे की टहनी के महीन कत्तल को सूक्ष्मदर्शक में देखकर हम द्विदली पौधे के तने की आन्तरिक अवस्था का ठीक भाँति से पता लगा सकते हैं (पृ० ६८५-६८८ के चित्र)। ऐसे तने में सबसे बाहर अधित्वक्, फिर वल्क और इसके अन्दर नसें या प्रवाहक तन्तु और हीर होते हैं।

अधित्वक्—इस पर्त्त की मोटान केवल एक कोशिका होती है। इन कोशिकाओं की बाहरी भित्तिकाओं में अक्सर चमीज की तह जमी रहती है, जो पौधों से वाष्प-त्याग की ज्यादती को रोकती है। कभी-कभी अधित्वक् में रंध्र भी होते हैं। अनेक प्रकार के रक्षक-तन्तु भी अधित्वक् की कोशिकाओं में ही परिवर्त्तन से उत्पन्न होते हैं।

वल्क—अधित्वक् के भीतर वल्क होता है। इसमें कई पर्त्त और अनेक प्रकार के तन्तु होते हैं। अन्दर की ओर के अन्तिम पर्त्त को 'एन्डोडरमिस' कहते हैं। अधित्वक् की भाँति एन्डोडरमिस भी एक ही कोशिका जितना गहरा होता है। इसकी कोशिकाओं में प्रायः स्टार्च होता है। एन्डोडरमिस के भीतर पेरीसाइकिल होता है। यह तन्तु नसों और वल्क के बीच में होता है। प्रायः इसके कई पर्त होते हैं और इनमें अक्सर पैरेनकाइमा और पाषाण-तन्तु दोनों ही होते हैं। कभी-कभी पाषाण-तंतु नहीं भी होता है। पाषाण-तन्तु तने को मजबूती पहुँचाता है। किसी-किसी पौधे के पेरीसाइकिल में यह अविच्छिन्न रूप से नली की भांति नसों के बाहर फैला होता है, और कभी-कभी इसके अलग-अलग रेशे होते हैं। दोनों ही अवस्था में पेरीसाइकिल तनों को सुदृढ़ बनाता है। कभी-कभी पेरीसाइकिल में केवल पैरेनकाइमा ही होता है।

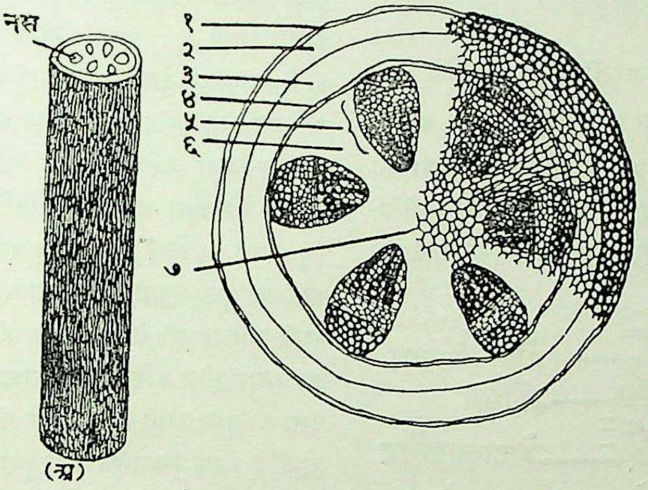

(बाईं ओर अ) साधारण द्विदली पौधे की टहनी। (दाहिनी ओर) इसी साधारण टहनी के बेंड़े कत्तल का गौण वृद्धि से पूर्व का अणुवीक्षणीय चित्र। १—अधित्वक्; २—कोलेनकाइमा; ३—साधारण पैरेकाइम; ४—एन्डोडरमिस; ५—प्रवाहक तन्तु; ६—मेडुलरी रेंज; ७—हीर।

प्रवाहक-तन्तु (नसें)—हीर के बाहरी भाग में चारों ओर नसें होती हैं। (इसी पृष्ठ के चित्र में अ)। द्विदली पौधे के तने में नसें, एक घेरे में, एक-दूसरे से कुछ फासले पर बँटी रहती हैं। इन नसों में तीन तन्तु होते हैं—अन्दर की ओर काष्ठ, बाहर की ओर फ्लोयम और इन दोनों के बीच में केम्बियम (पृ० ६८६ का चित्र)। काष्ठ में काष्ठ-कोश, काष्ठ-नलिका और काष्ठ-पैरेनकाइमा होता है। फ्लोयम में झाँझर-नलिका, झाँझर-पट्ट, सहायक कोशिका और फ्लोयम पैरेनकाइमा होता है। केम्बियम की कोशिकाएँ सदैव सजीव और मौलिक अवस्था में बनी रहती हैं। इनमें विभाजन की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शक्ति भी बराबर बनी रहती है, और इस प्रकार इनसे एक ओर काष्ठ और दूसरी ओर फ्लोयम की उत्पत्ति होती रहती है।

आसपास की नसों के बीच के तन्तु को 'मेडुलरी रेंज' कहते हैं (पृ० ६८५-६८८ के चित्र)। इस तन्तु की कोशिकाओं की सबसे अधिक चौड़ान प्रायः तने के व्यास के सिधान में होती है। ये तन्तु उपार्जित वस्तुओं के कोठार का भी काम देते हैं। कदाचित् इस तन्तु ही में होकर काष्ठ-नलिकाओं से जल तने के बाहरी तन्तुओं में पहुँचता है।

हीर—हीर तने के बीच का भाग है। इसकी कोशिकाएँ प्रायः वल्क की कोशिकाओं के समान होती हैं। हीर और वल्क को आधार-तन्तु कहते हैं।

तने की मोटान कैसे बढ़ती है—गौणवृद्धि

आप देख चुके हैं कि पौधों में जड़ों और शाखों के सिरे पर बढ़नेवाले भाग होते हैं। यहाँ की कोशिकाएँ विभाजित होती रहती हैं। इस तरह इन कोशिकाओं से नवीन कोशिकाएँ निरन्तर बनती रहती हैं, जिससे पौधे बढ़ते रहते हैं।

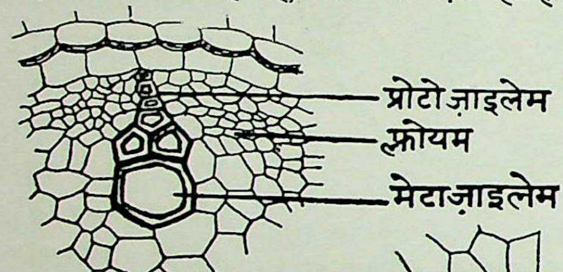

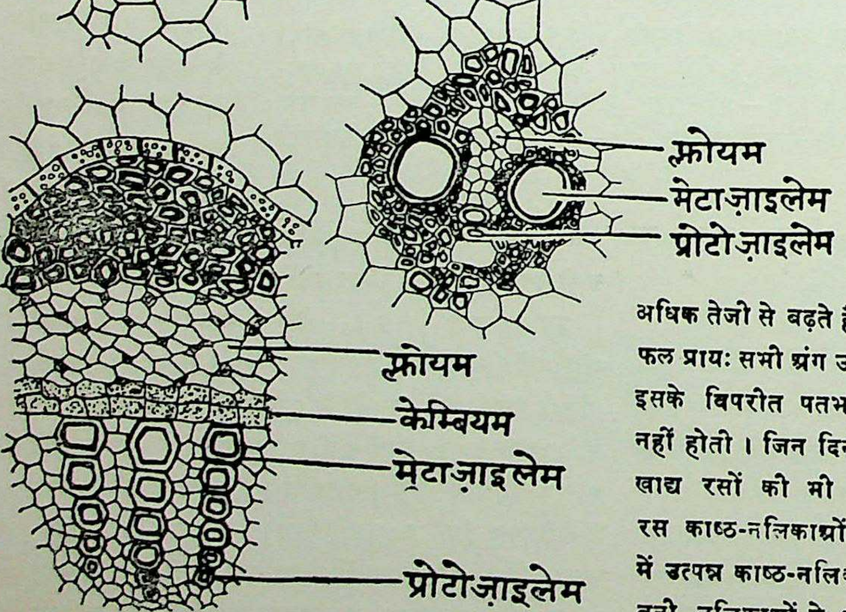

(अ) जड़ की नसों में तंतुक्रम; (ब) द्विदली पौधे के तनें की नसों में तंतुक्रम; (स) एकदली पौधे की नसों में तंतुक्रम।

परन्तु इसके साथ-ही-साथ आम, जामुन, चीड़, देवदार, मनोकामिनी की भाँति के हजारों वृक्ष और झाड़ हैं, जो ज्यों-ज्यों पुराने होते हैं, उनके तने भी मोटे होते रहते हैं। यह क्रिया कैसे होती है, हम यहाँ इसी पर विचार करेंगे।

जैसा अभी कह चुके हैं, सारे द्विदली पौधों की नसों में काष्ठ और फ्लोयम के बीच में केम्बियम होता है, जिसकी कोशिकाएँ सदैव विभाजित होती रहती हैं। इस क्रिया से जो कोशिकाएँ केम्बियम के बाहर की तरफ बनती हैं, वे फ्लोयम में और जो अन्दर की ओर बनती हैं, वे काष्ठ में बदल जाती हैं। इस तरह केम्बियम से एक ओर काष्ठ और दूसरी ओर अन्तर-छाल या फ्लोयम की रचना होती रहती है और ज्यों-ज्यों वृक्ष पुराने होते हैं, उनकी नसों की मोटान बढ़ती जाती है। क्रमशः ऐसे पौधों की नसों के केम्बियम की सिधानवाली दूसरी कोशिकाएँ भी मौलिक अवस्था में आ जाती हैं और कुछ समय पश्चात् नवजात केम्बियम और पूर्ववर्त्ती केम्बियम की कोशिकाएँ मिल जाती हैं, जिससे केम्बियम का एक अविच्छिन्न चक्र बन जाता है (पृ०६८७ का चित्र)। इस तरह लगातार काष्ठ और फ्लोयम की रचना होती रहती है। केम्बियम की हीर-रेखा की सिधानवाली कोशिकाओं से हीर-रेखा की वृद्धि होती रहती है। इस प्रकार गौण केम्बियम से काष्ठ, अन्तर-छाल और हीर-रेखा की वृद्धि होती है और तने की मोटान बराबर बढ़ती रहती है। इस क्रिया को 'गौणवृद्धि' कहते हैं। इसी के प्रभाव से द्विदली समूह के झाड़ों और वृक्षों के तने अत्यन्त कोमल डंठल से बढ़कर इतने दृढ़ और मोटे हो जाते हैं।

पौधों की बाढ़ साल के प्रत्येक मौसम में एक समान नहीं रहती। वसंत के दिनों में पौधे अधिक तेजी से बढ़ते हैं। इन दिनों नवीन पत्तियाँ, फूल, फल प्रायः सभी अंग उत्पन्न होते और वृद्धि पर रहते हैं। इसके विपरीत पतझड़ के दिनों में बाढ़ इतनी तेजी से नहीं होती। जिन दिनों पौधे बाढ़ पर होते हैं, उनमें खाद्य रसों की भी अधिक आवश्यकता रहती है। ये रस काष्ठ-नलिकाओं में होकर आते हैं। इसलिए वसंत में उत्पन्न काष्ठ-नलिकाएँ पतझड़ या सर्दी के दिनों में बनी नलिकाओं से अधिक चौड़ी होती हैं। इस प्रकार, जिन देशों में वसंत और पतझड़ के मौसम में विशेष अन्तर होता है, वहाँ तनों में प्रत्येक साल एक घेरा चौड़ी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नलिकाओं का और दूसरा तंग नलिकाओं का उत्पन्न होता है। इस पूर्ण चक्र को 'वार्षिक चक्र' या 'वृद्धिचक्र' कहते हैं। इनको गिनकर प्रायः हम ऐसे वृक्षों की आयु का भी पता लगा सकते हैं। ऐसे वृद्धिचक्र प्रायः हम आसानी से तने या शाखों को काटकर सफाई से रंदने पर देख सकते हैं। सर्दी या पतझड़ के दिनों के घेरे तंग और गहरे रंग के तथा वसंत ऋतु के दिनों के बने घेरे हल्के रंग के और चौड़े होते हैं (पृ० ६८८-६८९ के चित्र)। किसी-किसी देश में तमाम साल मौसम एक-सा रहता है। ऐसी दशा में वृद्धिचक्रों का पता नहीं चल सकता। इसके अलावा जिन देशों में साल में कई बार सर्दी-गरमी का उलट-फेर होता है, वहाँ ऐसे कई चक्र बन जाते हैं। इन दोनों ही दशाओं में वृद्धिचक्र गिनकर वृक्षों की ठीक-ठीक आयु का पता हमें नहीं लग सकता।

तने में जैसे-जैसे फ्लोयम और काष्ठ की वृद्धि होती है, उसके बाहरी तन्तुओं पर तनाव पड़ता है, जिससे वे खिचने लगते है। अधित्वक् लचीला होता है, इसलिए उसकी कोशिकाएँ कुछ समय तक इस तनाव को किसी हद तक बरदाश्त कर सकती हैं, परन्तु अन्त में वे इस दबाव के कारण फट जाती हैं। अधित्वक् के फट जाने से इसके अन्दर की वल्क-कोशिकाएँ, जो पहले अधित्वक् से ढकी थीं, खुल जाती हैं। इन कोशिकाओं में अधित्वक् की भाँति चर्मोज की तह नहीं होती, इसलिए हवा और गरमी के कारण वे सूखने लगती हैं। यदि इस प्रकार वल्क की खुली कोशिकाओं में इसकी बचत का कोई-न-कोई साधन न हो जाता, तो वृक्ष को बड़ी हानि पहुँचती; मगर ऐसा नहीं होने पाता। ऐसी दशा में वल्क की बाहरी कोशिकाएँ मौलिक अवस्था में आ जाती हैं। इनमें तुरन्त ही विभाजन-शक्ति उत्पन्न हो जाती है और इस प्रकार यहाँ एक दूसरा केम्बियम बन जाता है। इसे 'काग-केम्बियम' कहते हैं (पृ० ६८९ का चित्र)। इस केम्बियम से बाहर की ओर काग और अन्दर की ओर वल्क की उत्पत्ति होने लगती है। काग की कोशिकाएँ मुर्दा होती हैं और आपस में एक दूसरे से सटी रहती हैं, जिससे इनके बीच में अन्तर-तान्तविक स्थान नहीं रहते।

काग की भित्तिकाओं में कागजन होता है, जिसमें होकर जल प्रवेश नहीं कर सकता। इस प्रकार अधित्वक् की भाँति, गौणवृद्धि होने पर, काग तने के तन्तुओं को सूखने से बचाता है। वह कीड़े-मकोड़ों तथा दूसरे हानिकारक जीवों के आक्रमण से भी इनकी रक्षा करता है।

जिस समय गौणवृद्धि के कारण तने अधिक मोटे हो जाते हैं, काग के पर्त पर भी दबाव पड़ता है और कुछ दिन बाद यह भी फट जाता है, जिससे फिर वल्क की कोशिकाओं को सूखने से बचाने की समस्या उठ खड़ी होती है। इसके रोकने के लिए अन्दर के दूसरे पर्तों से भी काग-केम्बियम उत्पन्न होता है। इस प्रकार अन्त में काग-केम्बियम गौण फ्लोयम की कोशिकाओं तक से उत्पन्न हो सकता है। वनस्पति-शास्त्र के अनुसार काग-केम्बियम के बाहर के सारे तन्तुओं को "छाल" कहते हैं।

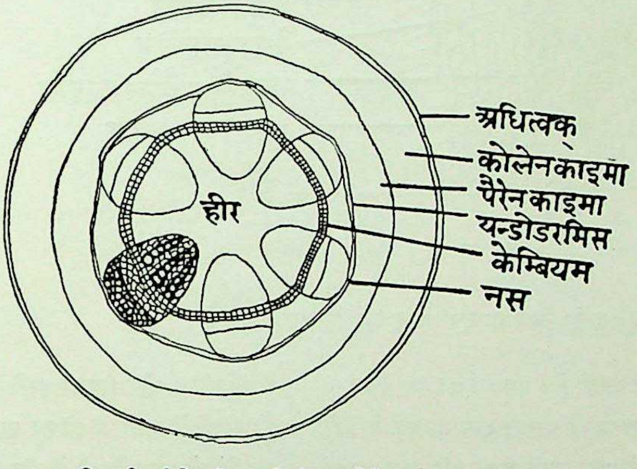

साधारण द्विदली पौधे की टहनी के आड़े कत्तल का गौणवृद्धि प्रारंभ होते समय का चित्र। केम्बियम का पूर्ण चक्र बन गया है।

लेन्टीसेल्स—जैसा ऊपर कह चुके हैं, काग में होकर पानी और हवा नहीं जा सकते, मगर पौधों में सभी अंगों को सांस लेने के लिए हवा की जरूरत पड़ती है। इसलिए तने को भी वायु चाहिए। काग की इस कमी को पूरा करने के लिए तने की छाल में 'लेन्टीसेल्स' होते हैं। ये एक विशेष प्रकार के स्थान हैं, जो रंध्र के नीचे उत्पन्न होते हैं। यहाँ की कोशिकाएँ एक दूसरे से सटी नहीं होतीं। बल्कि इनके बीच में अन्तर-तान्तविक स्थान होते हैं। लेन्टीसेल्स के बीच में जो स्थान होते हैं, उन्हीं में होकर वायु आ-जा सकती है। साधारण काग में जो गोल, आड़े या अन्य भाँति के चिह्न दिखाई देते हैं, वे लेन्टीसेल्स ही हैं।

एकदली पौधे के तने की आन्तरिक रचना

एकदली पौधे के तने में द्विदली पौधों की अपेक्षा नसों की संख्या ज्यादा होती है। ये नसें द्विदली पौधों की नसों की भाँति तने में चारों ओर एक घेरे में नहीं होती, बल्कि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

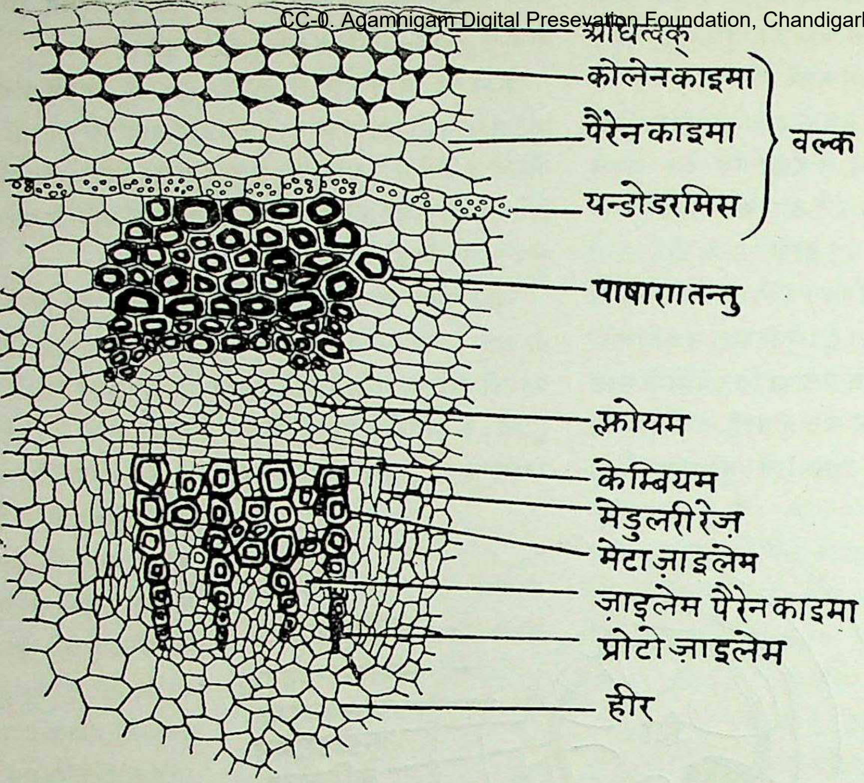

यह पृ० ६८६ के चित्र के एक भाग का विस्तृत चित्र है।

पैरेनकाइमा होते हैं। प्रत्येक नस में दो काष्ठ-नलिकाओं को छोड़ शेष अत्यन्त महीन होती हैं।

कभी-कभी एकदली पौधे के तने के बीच के भाग में नसें नहीं होतीं। इस प्रकार के पौधों के बीच के तन्तु में केवल पैरेनकाइमा होता है, जो अक्सर प्रारम्भ में ही गल जाता है, जिससे ये तने खोखले हो जाते हैं। बाँस और कितनी ही दूसरी घासों में ऐसे तने होते हैं।

प्रत्येक नस के चारों ओर प्रायः पाषाण-तन्तु का घेरा होता है, जो विशेषकर तने की परिधि और केन्द्र की तरफ अधिक होता है।

किसी - किसी एकदली पौधे में गौण-वृद्धि भी होती है। ड्रैसीना और यक्का इसी प्रकार के पौधे हैं।

पौधों में नसों में होकर खाद्यरस संचरित होते हैं। फ्लोयम में होकर पत्तियों में उपार्जित वस्तुएँ पौधों के दूसरे अंगों में जाती हैं और काष्ठ में होकर जड़ों द्वारा संचित जल और दूसरी वस्तुएँ पत्तियों में पहुँचती हैं।

समस्त तने के अन्दर फैली रहती हैं। (पृ० ६८६ का चित्र)। गन्ने या जुआर के लट्ठे, सरकन्डे अथवा बाँस या बेंत के रेशे, यही नसें हैं। सावधानी से आप इन्हें अलग भी कर सकते हैं। इस समूह के पौधों की नसों में केम्बियम नहीं होता, इसलिए इनमें गौणवृद्धि नहीं होती।

एकदली पौधे की रचना का पता हमें जुआर या मकई के आड़े या बेंड़े कतल को सूक्ष्मदर्शक में देखने से लग सकता है (पृ० ६४२ का ऊपरी चित्र)।

ऐसे तने में सबसे बाहर अधित्वक्, फिर एक दो पर्त पैरेनकाइमा के, इसके बाद पाषाण-तन्तु और फिर बहुत-सी नसें मिलेंगी। नसें आधार-तन्तु में फैली रहती हैं। नसों में काष्ठ और फ्लोयम होता है। लेकिन केम्बियम नहीं होता (पृ० ६८६ का निचला चित्र)। ऐसे तनों में कोई खास एन्डोडरमिस और हीर नहीं होता। फ्लोयम में यहाँ भी झांझर-नलिका, झांझर-पट्ट, सहायक कोशिका और फ्लोयम-

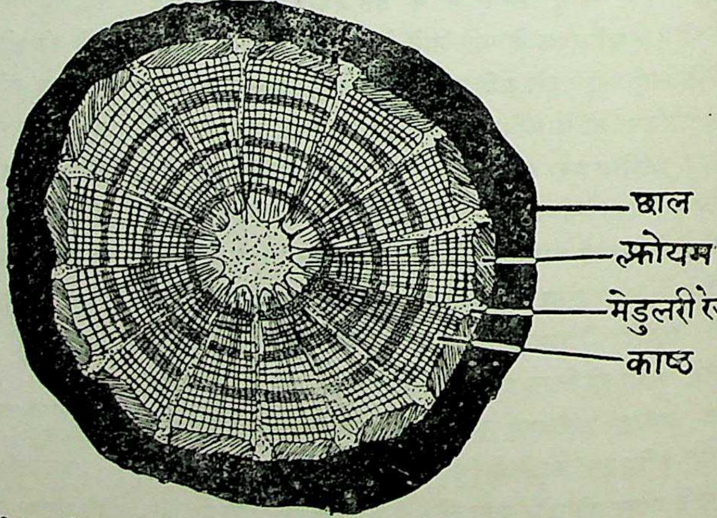

तीन वर्ष पुरानी द्विदली शाख का चित्र। वसंत और पतझड़ में बने काष्ठ का अंतर स्पष्ट है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कितने ही पौधों के पाषाण-तन्तु के रेशे बड़े काम के होते हैं। रामबाँस और भाँग की जटा रस्सी वगैरह के लिए प्रयुक्त होती हैं। इस जटा के रेशे पाषाण-तन्तु के रेशे ही हैं।

पौधों में मजबूती कैसे पैदा होती है?

पौधों को दृढ़ करनेवाले तन्तु—प्रत्येक पौधा कोशिकाओं का ही समूह है। ये कोशिकाएँ प्रारम्भ में एक सरीखी और अत्यन्त कोमल होती हैं। परन्तु पुरानी होने के साथ-साथ इनमें अनेक परिवर्तन होते हैं, जिनसे आवश्यकतानुसार अनेक तन्तु बन जाते हैं। मनुष्य तथा दूसरे रीढ़वाले पशु-पक्षियों में हड्डियों के ढाँचे होते हैं, जिससे उनके अंग दृढ़ बने रहते हैं। पौधों के अंगों को दृढ़ता विशेषकर कोशिकाभित्ति से मिलती है। नसोंवाले पौधों में यह काम प्रायः नसों से ही होता है, परन्तु अन्य तन्तु भी पौधों के अंगों को सुदृढ़ करते है।

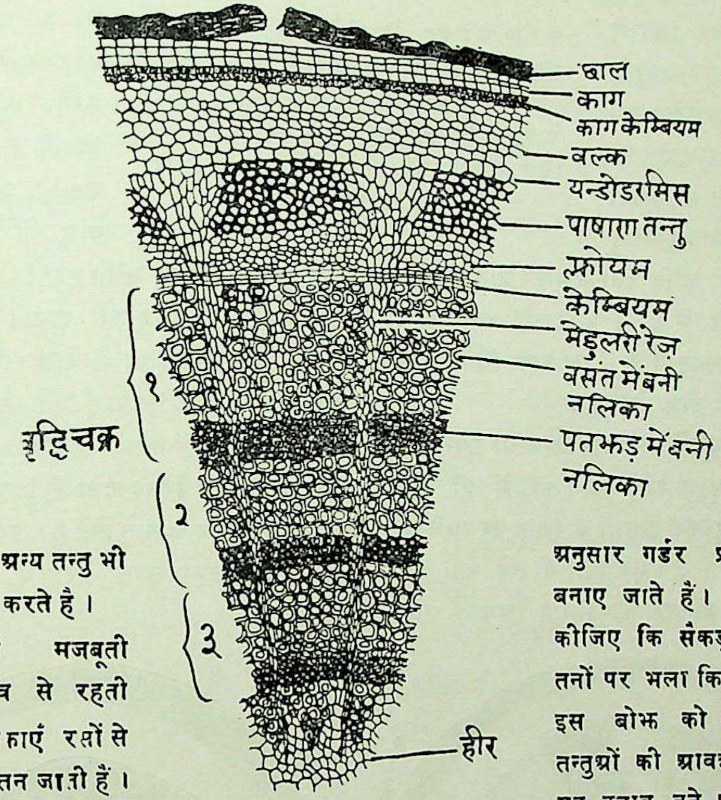

बाईं ओर अंकों द्वारा तीन वार्षिक वृद्धिचक्र प्रदर्शित हैं।

पैरेनकाइमा—इनमें मजबूती केवल निःसारक दबाव से रहती है। जब इनकी कोशिकाएँ रसों से भरकर फूलती हैं, वे तन जाती हैं। इस तन्तु की कोशिकाएँ नाजुक होती हैं, इसलिए जब तक ये अधिक संख्या में न हो, इनसे यथार्थ मजबूती नहीं मिल सकती।

कोलेनकाइमा—कोलेनकाइमा की कोशिकाएँ सजीव होती हैं। इनमें जीव-द्रव्य और नाभिक होता है। इन कोशिकाओं के घेरे विशेष मोटे होते हैं—इस तरह इस तन्तु को मजबूत बनानेवाली दो वस्तुएँ हैं। एक तो उसकी सुदृढ़ कोशिकाएँ और दूसरे इन कोशिकाओं की फूलने की क्रिया। इसलिए ये तन्तु पैरेनकाइमा की बनिस्बत इस काम के लिए अधिक उपयुक्त हैं। इसी कारण कोलेनकाइमा पौधे के बढ़नेवाले अंगों को मजबूती पहुँचाने में विशेष लाभदायक हैं। इस तन्तु की कोशिका-भित्तियाँ तनाव से फैल सकती हैं।

कठोली मृत कोशिकाएँ—इनमें पाषाण-तन्तु, काष्ठ और काष्ठ-रेशे होते हैं। पाषाण-तन्तु पैरेनकाइमा और कोलेनकाइमा दोनों ही से मजबूत होता है। पुरानी शाखों को मजबूत करनेवाले तन्तुओं में इसका प्रधान स्थान है। इस तन्तु की कोशिकाएँ सजीव नहीं होतीं, इसलिए ये नवीन बढ़ते अंगों को दृढ़ बनाने के लिए उपयुक्त नहीं हैं। काष्ठ-नलिकाएँ भी इस गुण में पाषाण-तन्तु सरीखी होती हैं।

पौधों के भिन्न-भिन्न अंगों में आवश्यकतानुसार दृढ़ करनेवाले तन्तुओं का क्रम जुदा-जुदा होता है। हम जानते हैं कि गर्डर या शहतीर पर जब भारी बोझ पड़ता है, तब उसके ऊपरी भाग पर दबाव और निचले भाग पर तनाव पड़ता है। सबसे अधिक चाप या तनाव ऊपर और नीचे पड़ता है और मध्य भाग में वह सबसे कम रहता है। इसी सिद्धान्त के अनुसार गर्डर प्रायः I की शक्ल में बनाए जाते हैं। अब आप अनुमान कीजिए कि सैकड़ों हाथ ऊँचे वृक्षों के तनों पर भला कितना बोझ पड़ता होगा! इस बोझ को संभालने के लिए दृढ़ तन्तुओं की आवश्यकता होती है। अगर यह दबाव तने पर चारों ओर से समान ऊपर से नीचे को होता, तो दृढ़कर पदार्थ चाहे जैसे बँटे होते विशेष अन्तर न पड़ता। मगर वृक्षों के तने बराबर सीधे, बिना हिले-डुले, कब खड़े रह पाते हैं? आँधी, तूफान, और शाखों के बोझ के कारण इनको समय-समय पर एक-न-एक ओर झुकना पड़ता है। ऐसी दशा में इनके तनों में एक ओर तनाव और दूसरी ओर दबाव पड़ता है। या यों कहिए कि तने बराबर खिचते और दबते रहते हैं, जिसके सबब से दृढ़ करनेवाले पदार्थों का बाहर की ओर होना परम आवश्यक है। इसलिए यहाँ भी I की शक्ल के गर्डर के रूप में दृढ़कर पदार्थ जमा होना चाहिए। पौधों को हर ओर झुकना पड़ता है, इसलिए इस प्रकार के कई

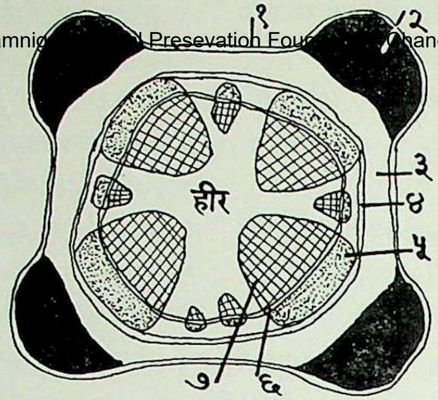

तुलसी के समूह के पौधे के तने में दृढ़कर तंतुओं का स्थान। इसमें नसें और कोलेनकाइमा I भाँति के गर्डर बनाते हैं। चित्र में १, २, ३, ४ आदि अंक पृष्ठ ६८५ के चित्र की तरह अधित्वक्, कोलेनकाइमा आदि सूचित करते हैं।

गर्डर का चारों ओर होना जरूरी है। तुलसी, देवना और पुदीना की भाँति के चौकोर तनेवाले पौधों में ये दृढ़कर पदार्थ कोलेनकाइमा के रूप में चारों कोनों में होते हैं (इसी पृष्ठ का ऊपरी चित्र)। बहुतेरे पौधों में दृढ़ करनेवाले पाषाण-तन्तु के रेशे नसों के बाहर होते हैं और ऐसी दशा में आमने-सामने की नसें एक भाँति के गर्डर का काम देती हैं (इसी पृष्ठ के निचले चित्र में अ)। नसों के बाहर पाषाण-तन्तु के रेशे पौधों को मजबूत करने के साथ-ही-साथ कोमल अन्तर-छाल या फ्लोयम को कुचलने से भी बचाते हैं। बहुतेरे पौधों में पाषाण-तन्तु अक्सर पोली नली की भाँति नसों के बाहर होता है (इसी पृष्ठ के निचले चित्र में ब)। बढ़नेवाले अंगों को दृढ़ करनेवाला तन्तु कोलेनकाइमा है। यह प्रायः खोखली नली के रूप में अधित्वक् के नीचे होता है।

दृढ़ करनेवाले तन्तुओं की जैसी अवस्था ऊपर वर्णन की गई है, वह केवल मृदुल और नवीन तनों में ही रहती है। वृक्षों में इन दृढ़कर तन्तुओं के स्थान पर लम्बे-चौड़े काष्ठ के स्तम्भ बन जाते हैं। ऐसे वृक्षों में तने का अधिकांश भाग काष्ठ ही होता है, परन्तु याद रखने की बात है कि ये भी कोशिकाओं में परिवर्तन से ही उत्पन्न हुए हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Presevation Foundation Chandigarh

तन्तु-तनाव—तने में दृढ़ करनेवाले तन्तु बाहर की ओर होते हैं और पैरेनकाइमा अन्दर की ओर। तन्तुओं के इस क्रम से तने को एक और भाँति से भी मजबूती मिल जाती है। पाषाण-तन्तु की मृत कोशिकाएँ मोटी भित्तिका के कारण खिचकर अधिक नहीं बढ़ सकतीं; लेकिन पतली भित्तिकाओंवाले पैरेनकाइमा की कोशिकाएँ रसों के भरने से फूलकर अन्दर से बढ़ना चाहती हैं। यह ठीक वैसी ही दशा है, जैसी हवा भरने पर फुटबाल की होती है। पैरेनकाइमा रबर की झिल्ली की भाँति हवा से फूलकर बढ़ना चाहता है, मगर पाषाण-तन्तु उसे बाहरी चमड़े के खोल की तरह बढ़ने से रोकता है। इन दोनों दबावों का एक दूसरे पर असर पड़ता है, जिससे कोशिकाएँ तनी रहती हैं। इसके सबब से पौधे के अंगों में तनाव रहता है। एकदली पौधे के तनों में नसें चारों ओर पैरेनकाइमा में बिखरी रहती हैं। नसों के चारों ओर पाषाण-तन्तु होते हैं। इन पौधों में दबाव के भार को पैरेनकाइमा सहन करता है, और तनाव को पाषाण-तन्तु।

अ

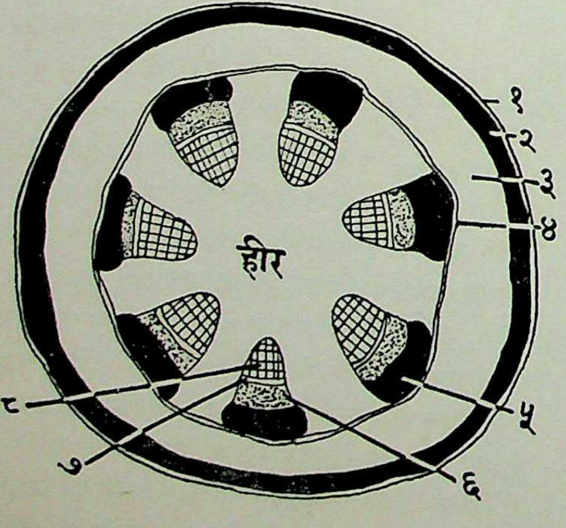

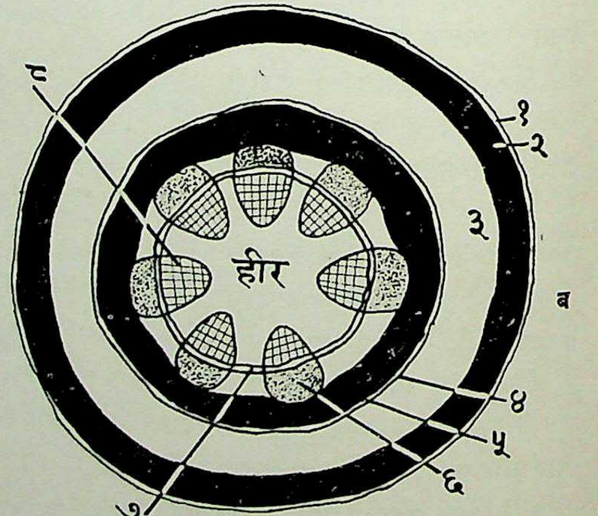

ब

अ—सूरजमुखी की भाँति के पौधे के तने में दृढ़कर तंतु। नसें और पाषाण-तंतु मिलकर I गर्डर की तरह काम देते हैं।
ब—यह भी एक द्विदली तने के बेड़े कत्तल का चित्र है इसमें बाहर कोलेनकाइमा की नली है; फिर पाषाण-तंतु की नली है और सबसे अंदर की ओर नसें। १, २, ३, ४ आदि अंक अधित्वक् आदि सूचित करते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तने के विशेष रूप और कर्त्तव्य
::विचित्र तने

पिछले प्रकरण में तने की सामान्य रचना और उसके साधारण कर्त्तव्यों का विवरण प्रस्तुत किया जा चुका है । किन्तु कतिपय ऐसे तने भी पाए जाते हैं, जिनके रूप और कर्त्तव्य दोनों ही असामान्य और असाधारण हैं । प्रस्तुत प्रकरण में इन्हीं विचित्र तनों का परिचय दिया जा रहा है ।

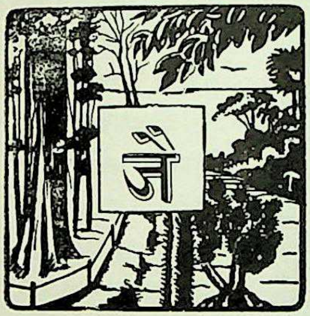

जैसा कि आप देख चुके हैं, पौधों की जड़ें उनमें बाहर से खाद्य रस और जल पहुँचाती हैं । आगे चलकर आप देखेंगे कि इनकी पत्तियाँ वायु से कार्बन संचित करती हैं और इन्हीं के नन्हें-नन्हें कारखानों में स्टार्च जैसे अमूल्य पदार्थ की रचना होती है । फूलों से फल और बीज बनते हैं और बीजों से नवीन पौधों की उत्पत्ति होती है । इस प्रकार पौधों के इन अंगों में कामकाज की धूम रहती है । परंतु तनों और शाखों को इसकी बेगार भुगतनी पड़ती है । उन्हें अन्य अंगों को धारण करना, उनका सैकड़ों मन बोझ अपने ऊपर लिए रहना, जड़ों द्वारा संचित पदार्थों को पत्तियों तक पहुँचाना और उनमें उपार्जित द्रव्यों को अन्य अंगों में ले जाना पड़ता है । यही इनके मुख्य कर्त्तव्य कहे जाते हैं । इस अधम टहल के अतिरिक्त किसी-किसी पौधे के तने कुछ ऐसे कामकाज करने लगे हैं, जिन्हें हम तनों के साधारण कार्य नहीं कह सकते । आवश्यकतानुसार ऐसे तनों के रूप-रूपान्तर भी साधारण तनों से पृथक् हो गए हैं । इन तनों को हम 'विचित्र तने' कहेंगे । कर्त्तव्यानुसार इनमें अनेक परिवर्तन उत्पन्न हो गए हैं । इनके निम्नोक्त पांच मुख्य भेद हैं—

१. लिपटने और बौंड़नेवाले तने—ऐसे तने कमजोर होते हैं; परन्तु विशेष प्रकार से परिवर्तित होकर वे अन्य अंगों के आधार का काम देते हैं ।

२. जड़ों की भाँति रोपण और शोषण का काम करनेवाले तने ।

३. बीज की भाँति पौधों की उत्पति और कोठार का काम देनेवाले तने ।

४. कांडपत्र अथवा पत्रीभूत या पत्रवत् तने—वे तने जो पत्तियों की भाँति हरे और प्रायः महीन होते हैं । ये साधारण पत्तियों की तरह स्टार्च-संश्लेषण का काम करते हैं ।

लिपटने और बौंड़नेवाले तने

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, तना ही अन्य अंगों का आधार है । इसी के सहारे पत्ती, फूल, फल, आदि यथा-स्थान टिके रहते हैं । फिर भी कितने ही पौधों के तने ऐसे परिवर्तित हो गए हैं, जिससे इस काम में विशेष सुविधा मिल जाती है । ऐसे पौधों में सबसे बड़ी प्रधानता यह है कि विशेष मोटे और दृढ़ तनों के अभाव में भी ये प्रकाश तक जा पहुँचते हैं ।

बौंड़ने और लिपटनेवाले पौधे दूसरी वस्तुओं के सहारे अपने अंगों के बोझ को सँभाले रहते हैं । ऐसे पौधों में बहुत लम्बे परन्तु पतले और कमजोर तने होते हैं । इसीलिए इनमें विशेष मोटे तने बनने में खाद्य रस खर्च नहीं होते । इसी कारण वे बड़ी तेजी से बढ़ते हैं और घने-से-घने जंगलों के अन्दर उगने पर भी थोड़े ही समय में बढ़कर बाहर प्रकाश में पहुँच जाते हैं । कद्दू, लौकी, अंगूर आदि की बेल को आपने बड़ी तेजी से बढ़ते देखा होगा ।

ऐसी बेलें शीघ्र ही बढ़कर ऊंचे-से-ऊंचे पेड़ों की चोटी पर पहुँच जाती हैं; परन्तु इतनी सुविधा रहते हुए भी उन्हें

नुकसान पहुँचने की सम्भावना रहती है। जिन पौधों के सहारे ऐसी बेलें वायुमंडल में पसरी होती हैं, यदि किसी प्रकार वे नष्ट हो जाएँ, तो आश्रय न रहने से ये बेलें भी नीचे गिर जाती हैं और उन्हें बहुत हानि पहुँचती है। कभी-कभी तो बौंड़नेवाले पौधे स्वयं इतना जोर पकड़ते हैं कि जिन पौधों पर वे फैलते हैं, उनको प्रकाश मिलना कठिन हो जाता है, जिसके कारण वे सूख जाते हैं। ऐसी दशा में भी बौंड़नेवाले पौधों का आश्रय जाता रहता है और प्रायः उन्हें बड़ी हानि पहुँचती है।

आधार के सहारे ऊपर चढ़नेवाले पौधों के चार मुख्य भेद हैं — (क) लिपटनेवाले पौधे (ख) सूत्रारोही या बौड़ों के सहारे फैलनेवाले पौधे, (ग) जड़ों के द्वारा चढ़नेवाले पौधे और (घ) अटक . भटककर चढ़नेवाले पौधे।

अपराजिता या कृष्णकान्ती, जो हमारे बगीचों में प्रायः लगाई जाती है।

(क) लिपटकर फैलनेवाले पौधे— ऐसे पौधे आधार के चारों ओर अपनी शाखों द्वारा लिपटकर फैलते हैं। इस प्रकार की अनेक लतायें हैं, जिन्हें लोग बगीचों में लगाते हैं। अपराजिता या कृष्णकान्ती (इसी पृष्ठ का चित्र), रेलवे क्रीपर, इश्कपेचाँ, इत्यादि इन्हीं में हैं। पोय, सेम, लोबिया, गुर्च वगैरह भी इसी प्रकार फैलती हैं। इन बेलों की शाखों के उस भाग में, जो आश्रय को स्पर्श करता है, बाढ़ कुछ धीमी पड़ जाती है। इसके विपरीत उसी के सामने के बाहरी भाग में कुछ अधिक बाढ़ होने लगती है, जिससे बेल अवलम्ब की ओर झुककर उससे लिपटने लगती है, और ज्यों-ज्यों बेल बढ़ती है, वह बराबर लिपटती जाती है। प्रकृति में प्रायः ऐसी बेलों को दूसरे पेड़-पौधों से ही सहारा मिलता है, परंतु हमारे बाग-बगीचों में वे तार और रस्सी आदि के सहारे फैलती हैं। इस काम के लिए बहुधा महीन तार और रस्सी को ही काम में लाते हैं, क्योंकि अधिक मोटे आधार से ऐसी बेलें भली भाँति नहीं लिपट पातीं। एकवर्षीय लताओं के लिए तो प्रायः ८-१० इंच मोटानवाले झाड़ भी उपयुक्त नहीं होते। परन्तु बहुवर्षीय लताएँ कभी-कभी फीट डेढ़ फीट मोटानवाले वृक्षों से भी सुगमता से लिपट जाती हैं। भूमध्य रेखा के निकटतम घने जंगलों में उगनेवाली कोई-कोई बहुवर्षीय लताएँ दो फीट मोटानवाले वृक्षों से भी लिपट कर ऊपर चढ़ जाती हैं।

आरम्भ में प्रायः इन वृक्षों के तने इतने मोटे नहीं होते, फिर भी साधारण बेलें उनसे नहीं लिपटतीं; क्योंकि जिस समय वे गौण वृद्धि होने पर मोटे होने लगते हैं, इन बेलों के लिए कठिन समस्या उपस्थित हो जाती है। तने की मोटान बढ़ने के कारण उन पर अन्दर से तनाव पड़ता है, जिससे वे खिंचने लगती हैं और यदि कहीं वह वृक्ष तेजी से बढ़ता गया, तो अन्त में बेल इस तनाव को सहन नहीं कर पाती और इसलिए वह सूख जाती है। इसके विपरीत यदि कहीं वह झाड़, जिससे ऐसी बेलें लिपटती हैं कमजोर हुआ और ये

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

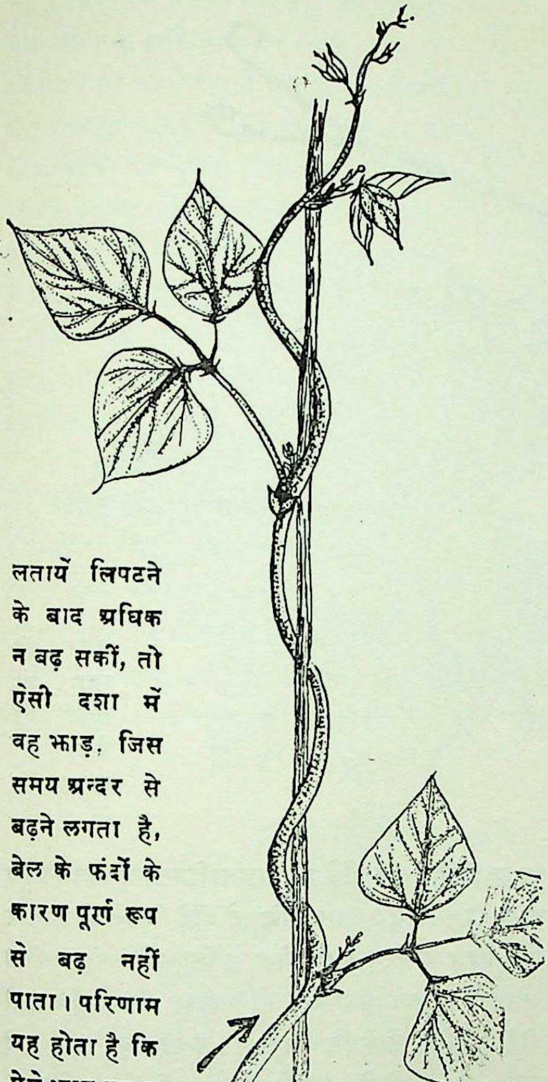

लतायें लिपटने के बाद अधिक न बढ़ सकीं, तो ऐसी दशा में वह झाड़, जिस समय अन्दर से बढ़ने लगता है, बेल के फंदों के कारण पूर्ण रूप से बढ़ नहीं पाता। परिणाम यह होता है कि ऐसे झाड़ दबाव के कारण प्रायः सूख जाया करते हैं।

साधारण तनों की भाँति लिपटनेवाले तने भी पहले सीधे ऊपर को बढ़ते हैं। कुछ समय बाद उनका ऊपरी भाग एक ओर को झुक पड़ता है, परन्तु इनके निचले भाग सीधे बने रहते हैं। कुछ समय पश्चात् बेल के निचले भाग के आधार पर झुका ऊपरी हिस्सा चक्कर काटने लगता है। किसी-किसी पौधे में यह गति घड़ी की सुई की तरह होती है (इसी पृष्ठ का ऊपर का चित्र), किसी में इसके विपरीत (दाहिनी ओर का चित्र)। पूर्ण चक्कर लगाने में किसी पौधे में कम समय लगता है और किसी में अधिक। बेल के घूमते हुए भाग को यदि किसी वस्तु का सहारा मिल गया, तो वह उससे लिपटने लगता है; परन्तु यदि कोई आधार न मिला, तो वह उसी प्रकार घूमता रहता है, मानो आधार की खोज में हो। यदि फिर भी कोई वस्तु पकड़ में न आई, तो बेल का निचला भाग जमीन पर झुक पड़ता है और आगे को बढ़ता है। अब यह फिर ऊपर को उठता है और पुनः उसी प्रकार अवलम्ब की खोज करता है। यदि अब भी किसी आधार का सहारा न मिला, तो बेल फिर आगे को बढ़ती है। किसी समय में लोगों की धारणा थी कि ऐसी बेलों के तनों में आधार की ओर बढ़ने की विशेषता होती है, परन्तु यह बात ठीक नहीं है। फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि बेल का इस प्रकार झुकना, आगे को बढ़ना और घूमना उसके आधार से मिलने में कारगर अवश्य होता। अनुकूल आधार का सहारा पाकर बेल उसके चारों ओर लिपटने लगती है। ऐसी लताओं के लिए पतले झाड़ों से ही लिपटना लाभकर होता है। यही सबब है कि ऐसी बेलें अधिक मोटे वृक्षों से नहीं लिपटतीं।

कभी-कभी लिपटनेवाली बेलों में भाँति-भाँति के रोम, काँटे या अन्य ऐसी रचनाएँ होती हैं, जिनसे उन्हें ऊपर चढ़ने में विशेष सहारा मिलता है। जब कभी लिपटनेवाली लताओं को सहारा नहीं मिलता, तो उनकी शाखें एक-दूसरे से लिपट जाती हैं।

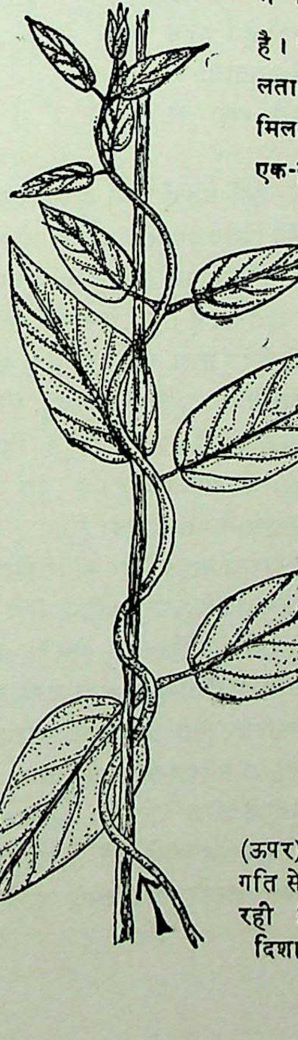

(ऊपर) लता घड़ी की सुई की गति से घूमती हुई ऊपर चढ़ रही हैं। (नीचे) विपरीत दिशा में घूमती हुई बेल।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

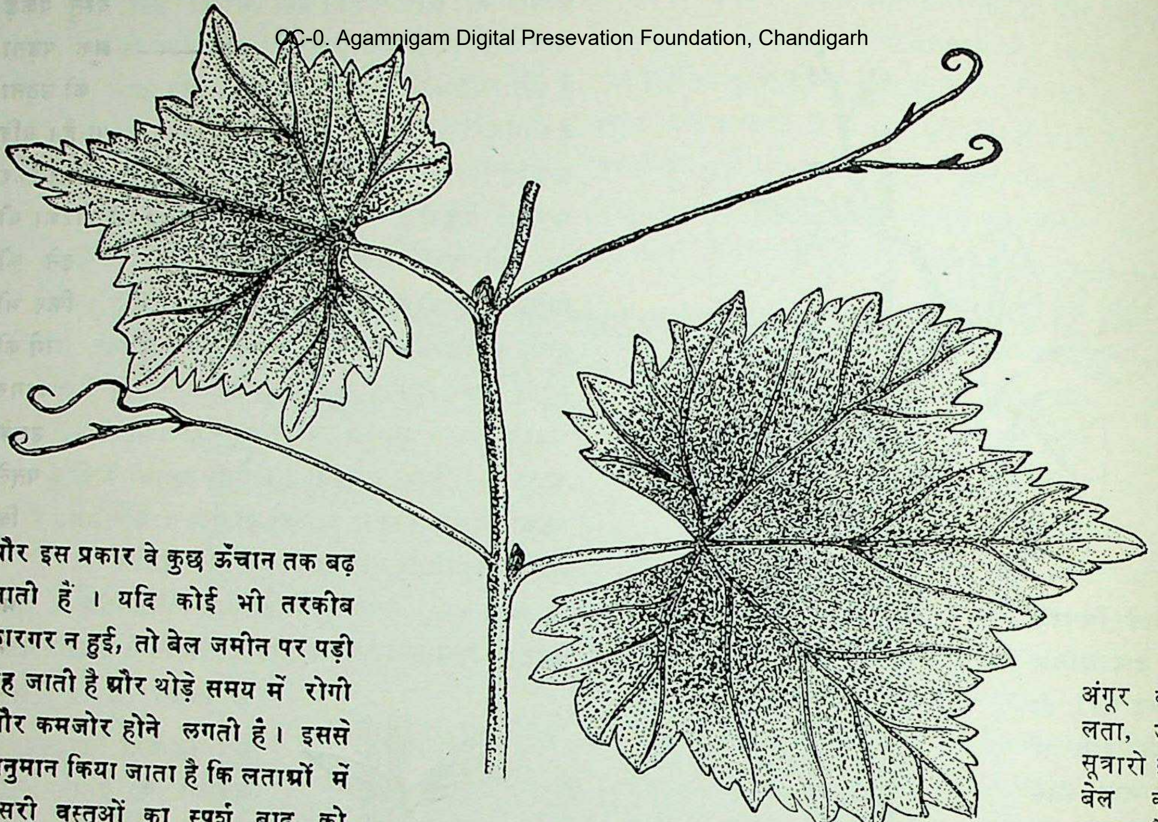

अंगूर की लता, जो सूत्रारोही बेल का नमूना है।

श्रौर इस प्रकार वे कुछ ऊँचान तक बढ़ जाती हैं। यदि कोई भी तरकीब कारगर न हुई, तो बेल जमीन पर पड़ी रह जाती है श्रौर थोड़े समय में रोगी श्रौर कमजोर होने लगती है। इससे अनुमान किया जाता है कि लताश्रों में दूसरी वस्तुओं का स्पर्श बाढ़ को उत्तेजित करता है।

(ख) सूत्रारोही बेलें—ऐसी लताएँ बौंड़ों के सहारे अवलम्ब पर फैलती हैं। बौंड़े विशेष प्रकार के श्रंग हैं, जो पौधे के दूसरे श्रंगों के परिवर्तन से उत्पन्न होते हैं। साधारण मटर में ये पत्रिकाश्रों के रूपान्तर हैं। कुमारिका या सासा-परीला (स्माइलेक्स) के बौंड़े पुंखपत्र माने जाते हैं। श्रंगूर के बौंड़े (इसी पृष्ठ का चित्र) टहनी हैं। कद्दू, लौकी, खीरा श्रादि के बौंड़े भी टहनी ही माने जाते हैं। किसी-किसी पौधे में जड़ें बौंड़ने का काम देती हैं। ऐसे कुछ पौधों का जड़ों के प्रकरण में वर्णन किया जा चुका है।

प्रारम्भ में बौंड़े डोरे-सरीखे नाजुक और महीन होते हैं। कभी तो वे श्रत्यन्त कोमल होते हैं, परन्तु कभी-कभी वे कुछ मोटे श्रौर दृढ़ होते हैं। प्रायः बौंड़े सादे होते हैं; परन्तु कभी-कभी उनमें कई शाखाएँ होती हैं। कभी-कभी बौंड़ों में किसी श्रंश में चेतनशक्ति होती है, जिसके कारण वे श्राधार का स्पर्श करते ही उससे लिपटने लगते हैं श्रौर थोड़े ही समय में उसे मजबूती से जकड़ लेते हैं। आधार को पकड़ने के पूर्व बौंड़े करीब-करीब सीधे रहते हैं; परंतु जैसे ही श्राधार का स्पर्श हुश्रा, इनकी नोक उसके चारों ओर लिपट जाती है। श्रब बौंड़े का पिछला हिस्सा घूमकर सिकुड़ जाता है, जिससे वह शाख, जिससे बौंड़े निकले हैं, श्राधार के पास खिंच जाती है। श्रब बेल के लिए श्रौर भी सुभीता हो जाता है। उसके श्रन्य बौंड़े भी श्राधार तक पहुँच जाते हैं और बेल तेजी से फैलने लगती है। कद्दू तथा उसी वर्ग के श्रन्य पौधे—लौकी, तरोई, कुँदरू, परवल, चचेंड़ा—श्रंगूर, (इसी पृष्ठ का चित्र) ऐम्पीलाप्सिस (पृ० ६९५ का ऊपरी चित्र), ऐन्टीगोनन इत्यादि सूत्रारोही बेलें हैं।

बौंड़ों के सहारे फैलनेवाली बेलों में श्रन्य प्रकार से फैलने-वाली बेलों की अपेक्षा विशेष सुविधा रहती है। इनमें श्रनेक बौंड़े होते हैं, जिससे उन्हें श्राधार का सहारा प्राप्त करने में सुगमता रहती है। ये मोटे-से-मोटे वृक्षों और टूटी-फूटी चट्टानों के सहारे भी ऊपर चढ़ जाती हैं। लिपटनेवाली लताश्रों का ऐसी दशा में सफल होना कठिन ही नहीं श्रसंभव है।

किसी-किसी लता में बौंड़ों के सिरे पर लेसदार चक्र या मंडल होते हैं (पृ० ६९५ का ऊपरी चित्र)। इनके सहारे वे चिकनी-से-चिकनी चट्टानों और दीवालों पर भी चढ़ जाती हैं। बौंड़नेवाली बेलें प्रायः वृक्षों की चोटी तक पहुँचकर नीचे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को लटक पड़ती हैं और हवा से हिल-डुलकर पास-पड़ोस के दूसरे वृक्षों तक पहुँच जाती हैं तथा उन पर फैलने लगती हैं। ऐसी बेलों की एक विशेषता यह भी है कि इनमें आधार से लिपटनेवाले अंग अर्थात् बौंड़े मोटे नहीं होते, जिससे इनकी रचना में अधिक खाद्य रस व्यय नहीं होते। इस बचत के कारण ऐसी लताएँ विशेष तेजी से बढ़ती हैं।

(ग) जड़ों के द्वारा फैलनेवाले पौधे--जैसा ऊपर कहा जा चुका है, कई पौधों में जड़ें बौंड़े का काम देती हैं।

(घ) अटक-भटककर ऊपर चढ़नेवाले पौधे--कोई-कोई पौधे अन्य वृक्षों तथा चट्टानों और दीवालों पर शूल अथवा अन्य रचनाओं के सहारे ऊपर चढ़ते हैं। कभी-कभी ऐसे शूल शाखाओं का रूपान्तर होते हैं। बागेनविलास या बोगेनविलिया लता (इसी पृष्ठ का निचला चित्र) ऐसे ही कंटकों द्वारा ऊपर को चढ़ती हैं।

ऐम्पीलाप्सिस नामक लता—बौंड़ों के सिरों पर चिपकनेवाले चक्र दिखाई दे रहे हैं।

किसी-किसी पौधे में ऐसे कंटक अन्य अंगों के परिवर्तन से उत्पन्न होते हैं।

अवलम्ब के सहारे ऊपर चढ़नेवाले पौधों का हाल पढ़कर आपको विदित हो गया होगा कि यद्यपि तने और शाखों का मुख्य उद्देश्य ऊपर को बढ़ना और सीधे खड़े रहना है, फिर भी कितने ही ऐसे द्रुम और लताएँ हैं, जो स्वयं ऐसा नहीं कर सकते। ऐसे नाजुक तनोंवाले पौधे या तो अन्य वस्तुओं के सहारे (जैसा अभी वर्णन किया जा चुका है) ऊपर चढ़ते हैं, या यों ही जमीन के ऊपर-नीचे रेंगते रहते हैं। इन दूसरी श्रेणीवालों में कुछ तो ऐसे हैं, जो तनों तथा शाखों के सभी प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन कर, अपनी सीमा छोड़, जड़ों के प्रदेश में प्रवेश करके अधिकार जमाते हैं। इतना ही नहीं, वे जड़ों का वेष भी धारण कर लेते हैं और कभी-कभी उन्हीं के काम-काज भी करने लगते हैं, जिससे यदि आपको इनकी विशेष जानकारी न हो, तो धोखा होने की सम्भावना है। लेकिन फिर भी ऐसे जड़वत् में तनों भी कुछ ऐसे लक्षण हैं, जिन्हें वे पृथ्वी के अन्दर जड़ों के साथ रहने पर भी परित्याग नहीं कर सकते। इसी से उनका सारा भेद खुल जाता है और रूप

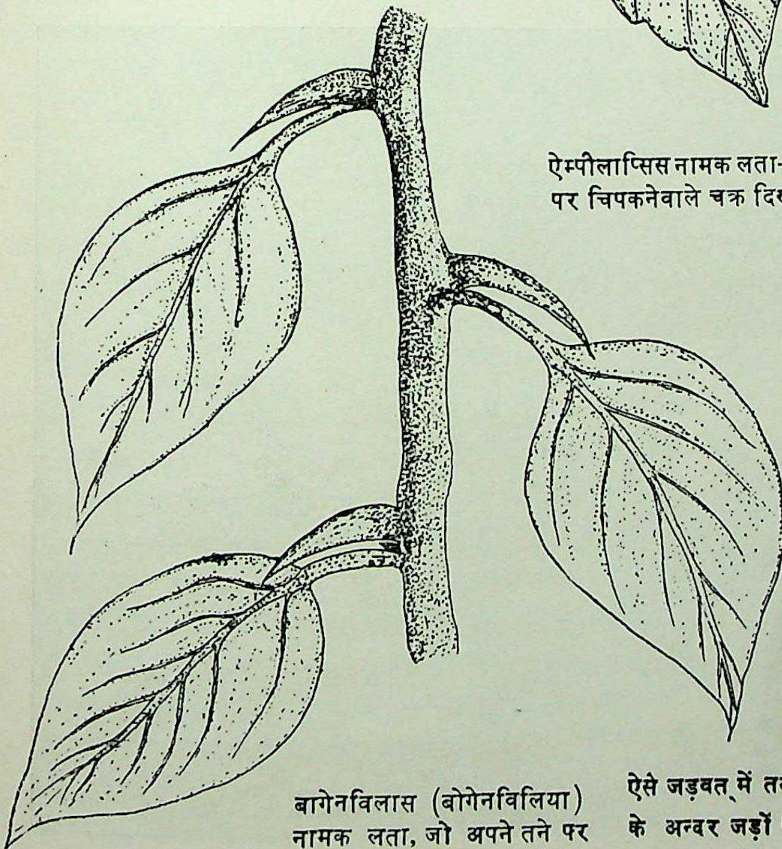

बागेनविलास (बोगेनविलिया) नामक लता, जो अपने तने पर के शूल के सहारे ऊपर चढ़ती है।

बदल जाने पर भी हम इन तनों को जड़ों से पृथक् कर सकते हैं। इन लक्षणों में सबसे विशेष बात है इन पर कलिकाओं और पत्तियों की उपस्थिति। पत्तियां और कलिकाएं तनों और शाखों पर ही होती हैं, इसलिए ऐसे तनों को ध्यानपूर्वक देखने से हमें इनके यथार्थ रूप का पता चल जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जड़ की भांति रोपण-शोषण का काम करनेवाले तने

भूम्यान्तर्गत तने रोपण-शोषण का काम करते हैं। सर्वजया या 'कैना' (इसी पृष्ठ का ऊपरी चित्र) और अनेक घासों के तने पृथ्वी के अन्दर-ही-अन्दर फैले रहते हैं और जड़ की भांति उपर्युक्त दोनों ही कर्त्तव्यों का पालन करते हैं। जल के अन्दर उगनेवाले कितने ही पौधों के तने शोषण का काम करते हैं।

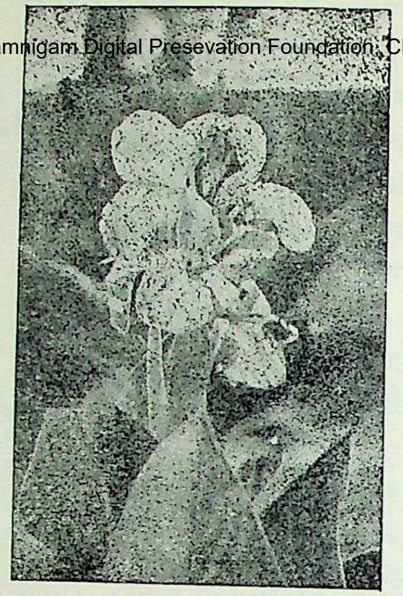

सर्वजया या 'कैना'। इसका तना धरती के अंदर-ही-अंदर रहता है

बीज की भांति पौधों की उत्पत्ति का काम देनेवाले तने

कितने ही ऐसे पौधे हैं, जिनमें रोपण के साथ ही साथ धरती में रहनेवाले तने बीज की भांति पौधे की नस्ल कायम रखने का काम भी करते हैं। फूलवाले पौधों में अलिंगिक (एसेक्शुअल) वंश-वृद्धि की यह साधारण रीति है। ऐसे तनों में कितने ही कोठार का काम भी देते हैं और ऐसी दशा में वे पृथ्वी के अन्दर ही रहते हैं। इन तनों के अनेक रूपान्तर हैं। भूम्यान्तर्गत तनों में भी छोटी-छोटी पत्तियां होती हैं; परन्तु ये कभी हरी नहीं होतीं। इन्हें 'वल्कपत्र' कहते हैं। इन वल्कपत्रों के अक्ष में कलिकाएं होती हैं, जिनसे वायुवर्त्ती शाखें उत्पन्न होती हैं। ये प्रति वर्ष पल्लवित हो फूलने-फलने के पश्चात सूख जाती हैं;

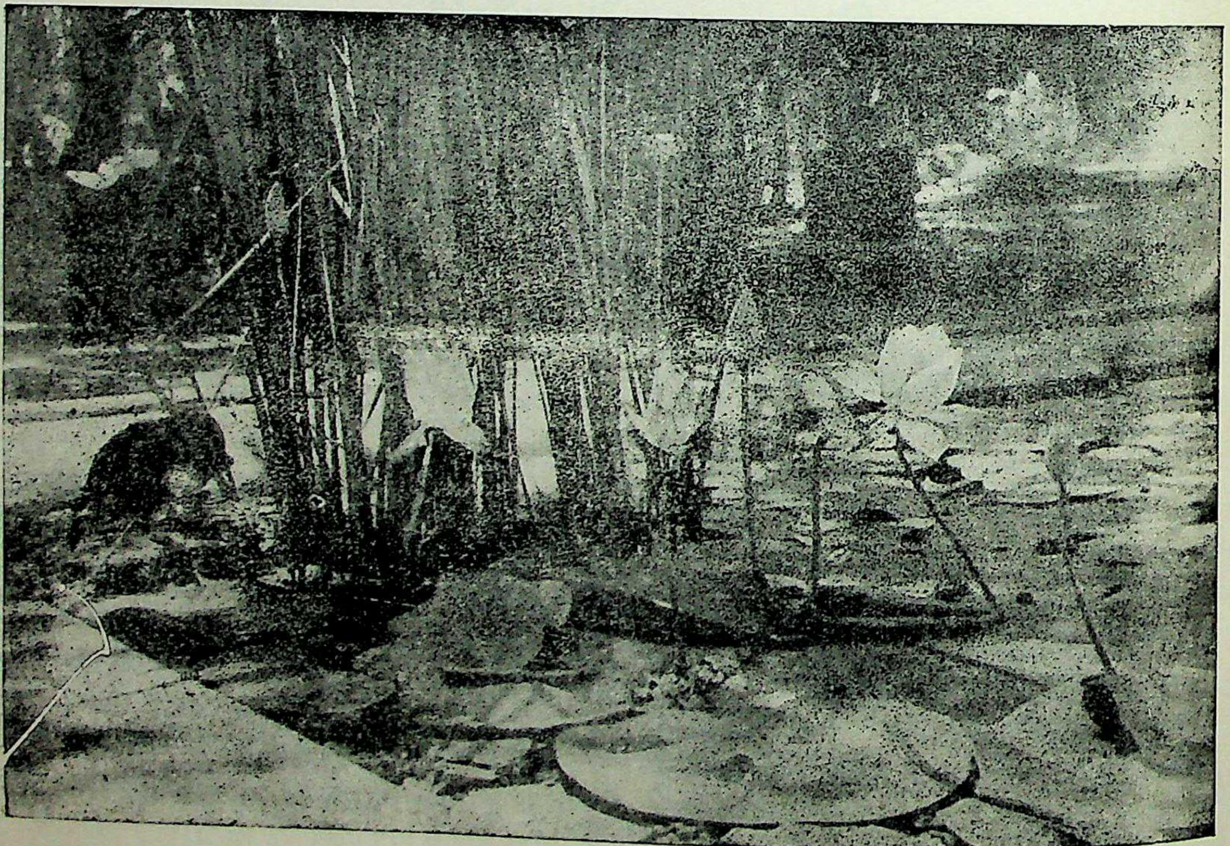

हमारे तालाबों की शोभा बढ़ानेवाले कमल की डंडी (भसीड़) भी तने का ही रूपान्तर है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

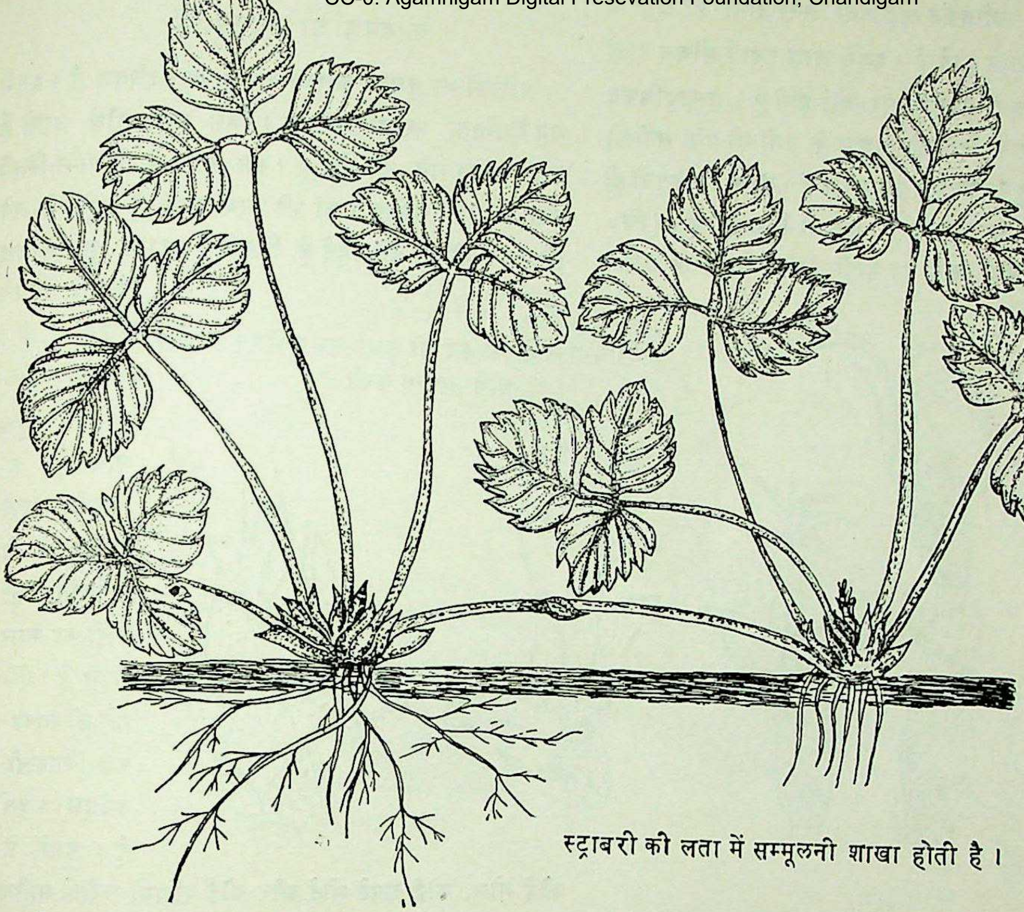

स्ट्राबरी की लता में सम्मूलनी शाखा होती है।

परन्तु पृथ्वी के अन्दर उपस्थित तने, जिनसे ये उत्पन्न होती हैं, वर्षों सजीव बने रहते हैं। इस स्थिति में रहनेवाले तने अथवा उनके वल्कपत्र खाद्य पदार्थ संचित होने के कारण मोटे तथा दलदार हो जाते हैं। जिस समय वर्षीय शाखाएँ निकलती हैं, यही संगृहीत पदार्थ काम आते हैं। जिन पौधों में ऐसे तने होते हैं, उनमें उत्पत्ति का काम प्रायः इन्हीं तनों से होता है।

खाद्य पदार्थों का मोटी मांसल जड़ों और भूम्यान्तर्गत तनों में संगृहीत होना पौधों की दूरदर्शिता का सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है। पौधों के अंगों में संगृहीत यही खाद्य कोश हमारे आहार के काम आते हैं। इन तनों के अनेक भेद हैं।

मूलस्कंध और सम्मूलनी शाखा

मूलस्कंध (राइजोम) पृथ्वी के अन्दर ही अन्दर फैलता है, परन्तु सम्मूलनी शाखा (रनर्स) ऊपर रहती हैं। इन दोनों में ही गाँठें (नॉड्स) और पोर (इंटरनॉड्स) होते हैं। गाँठों से जड़ें निकलती हैं। किसी-किसी पौधे में गाँठों के बीच के पोर या पर्व थोड़े ही समय में गल जाते हैं और इस प्रकार प्रत्येक गाँठ से नवीन पौधे उत्पन्न हो जाते हैं। किसी-किसी पौधे में मूलस्कंध से अनेक शाखें फूटती हैं और अन्त में बीच का पुराना भाग गल जाता है और इस प्रकार अलग-अलग कई पौधे हो जाते हैं। मूलस्कंध और सम्मूलनी शाखा दोनों ही से उत्पन्न होनेवाले पौधे थोड़े ही स्थान के अन्दर फैल सकते हैं। अदरक, हल्दी, सर्वजया और कमल (पृ० ६९६ के चित्र), आदि में मूलस्कंध होते हैं। दूब, घास और स्ट्राबेरी (इसी पृष्ठ का चित्र) आदि में सम्मूलनी शाखा होती हैं।

कंद, ग्रन्थिकंद और वज्रकंद

कंद (बल्ब), वज्रकंद (कॉर्म) और ग्रन्थिकंद (ट्यूबर) तीनों ही चिरस्थायी तने हैं, जिनमें खाद्य पदार्थ संचित रहते हैं और जो मूलस्कंध और सम्मूलनी शाखा की भाँति पौधों की उत्पत्ति का काम देते हैं।

कंद—कंद में तने का भाग अत्यन्त छोटा और चिपटा होता है। प्याज, हायासिथ, ट्यूलिप, नरगिस आदि के कंदों में चारों ओर मांसल वल्कपत्र होते हैं।

ग्रन्थिकंद—ग्रन्थिकंद जड़ तथा तना दोनों ही अंगों में परिवर्तन से उत्पन्न होते हैं। इनमें खाद्य पदार्थ संचित रहते हैं और इसलिए ये मांसल और मोटे होते हैं। शाखग्रंथिकंद भूमि के अन्दर फैली विशेष प्रकार के तनों की गांठ सरीखी शाखें हैं। आलू इनका एक उदाहरण है। आलू में कितनी ही आँखें होती हैं, जो वल्कपत्र के अक्ष में निकलती हैं। (चि० पृ० ६८४) समय आने पर इन्हीं आँखों से शाखें उत्पन्न होती हैं। एक प्रकार की सूर्यमुखी की जाति के पौधे 'हेलियान्थस ट्यूबेरोसस' या जेरूसेलम आर्टीचोक में भी आलू की भांति ग्रन्थिकंद होते हैं। कोई-कोई रतालू में भी ऐसे ग्रन्थिकंद होते हैं।

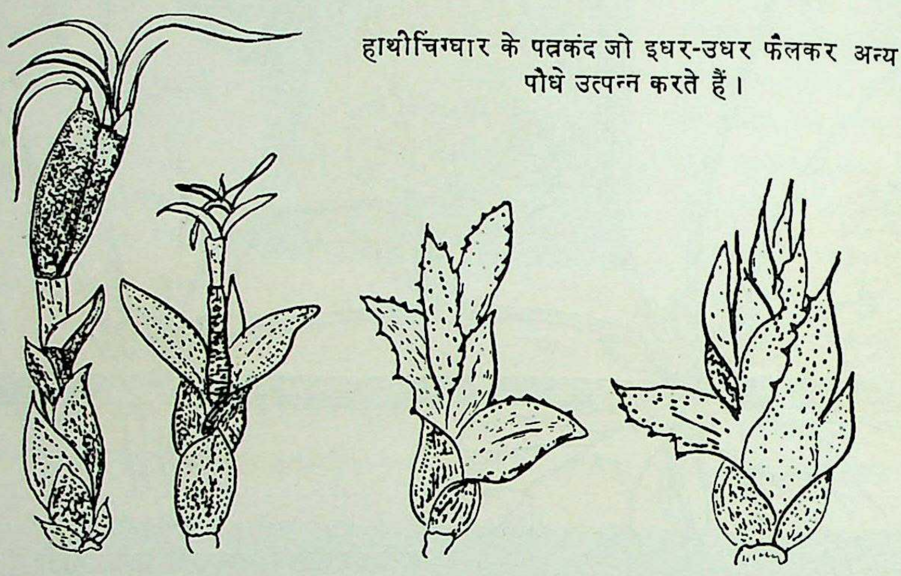

हाथीचिंग्घार के पत्रकंद जो इधर-उधर फैलकर अन्य पौधे उत्पन्न करते हैं।

बज्रकंद—बज्रकंद भी भूम्यान्तर्गत मांसल तनों में हैं। इसमें और ग्रंथिकंद में बहुत-कुछ समानता होती है, परन्तु इसमें अग्रस्थ कलिका (टर्मिनल बड) की पत्तियाँ ग्रन्थिकंद की इस जैसी कलिका की पत्तियों की बनिस्बत बड़ी होती हैं। सूरन या जिमीकन्द और बण्डे और केसर की गांठ बज्रकन्द हैं। बज्रकन्द के समस्त भाग पर वल्कपत्र होते हैं। नवीन कंद या तो नीचे या पार्श्व में निकलते हैं। कंद और बज्रकंद में यह अन्तर है कि कन्द में मांसल वल्कपत्र और साधारण वल्कपत्र दोनों ही होते हैं, परन्तु बज्रकन्द में केवल साधारण वल्कपत्र ही होते हैं।

पत्रकंद (बल्बिल्स)—ये पार्श्विक कलिकाएँ हैं। इनकी पत्तियों में खाद्य पदार्थ संगृहीत रहते हैं, इसलिए ये मांसल होते हैं। वृक्ष से पृथक् हो पत्रकन्द नवीन पौधे उत्पन्न करते हैं। किसी-किसी पौधे में पत्रकन्द साधारण पुष्पकलिकाओं से उत्पन्न होते हैं। रामबाँस या हाथीचिंग्घार में ऐसी अनेक कलिकाएँ होती हैं (इसी पृष्ठ का चित्र)। ये पुष्पव्यूह पर लगी होती हैं और इधर-उधर फैल अनेक पौधे उत्पन्न करती हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

काण्डपत्र या पत्रवत् तने

पत्तियों का प्रधान कर्त्तव्य स्टार्च का संश्लेषण है। इनमें यह विशेषता पर्णहरिम से है। जिस समय पौधे उगते हैं उनके नवल तने हरे होते हैं। इस समय वे किसी-न-किसी अंश में स्टार्च-संश्लेषण का भी कार्य करते हैं। बूटों के तने तो सदैव ही हरे बने रहते हैं, जिससे वे बराबर कुछ-न-कुछ स्टार्च बनाते रहते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ पौधे ऐसे हैं, जिनके तने विशेष ढंग से परिवर्तित हो पत्ती का काम करते हैं। ऐसे तने को काण्ड-पत्र (फायलोक्लेड्स) कहते हैं। इनमें से कोई गोल, कोई चपटे मोटे और कोई पत्तियों-सरीखे महीन और चपटे होते हैं। रस्कस में ये हरे, पतले और देखने में सरासर पत्ती के समान होते हैं। फिर भी ये शाखों का ही रूपान्तर हैं (पृ० ६९९ के चित्र)। परन्तु इस बात को सिद्ध करने के लिए हमको काण्डपत्र का भली भाँति निरीक्षण करना होगा।

शाखों की प्रधान विशेषता यह है कि वे पत्तियों के अक्ष में निकलती हैं और पत्ती तथा फूल-फल को धारण करती हैं। रस्कस की पत्रवत् रचना पर ध्यान देने से पता लग जायगा कि शाखों की भाँति ये भी पत्तियों की अक्ष में ही होते हैं और इन पर वल्कपत्र और फूल होते हैं। इसके अतिरिक्त इनकी आन्तरिक रचना भी तनों जैसी होती है। इससे स्पष्ट है कि रस्कस की पत्रवत् रचना पत्ती नहीं, वरन् तने का ही रूपान्तर है।

जिस समय रस्कस में नवल किल्ले निकलते हैं, इनमें छोटी-छोटी पीले रंग की अवृन्त पत्तियाँ होती हैं। काण्ड-पत्र इन्हीं पत्तियों की अक्ष में होते हैं। ये प्रारम्भ से ही रंग में गहरे और साधारण पत्तियों से जोरदार होते हैं। थोड़े ही समय पश्चात् वे बढ़कर पत्ती सरीखे हो जाते हैं। वास्तविक पत्तियाँ ज्यों-ज्यों पुरानी होती हैं, वे सूखकर मुरझा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

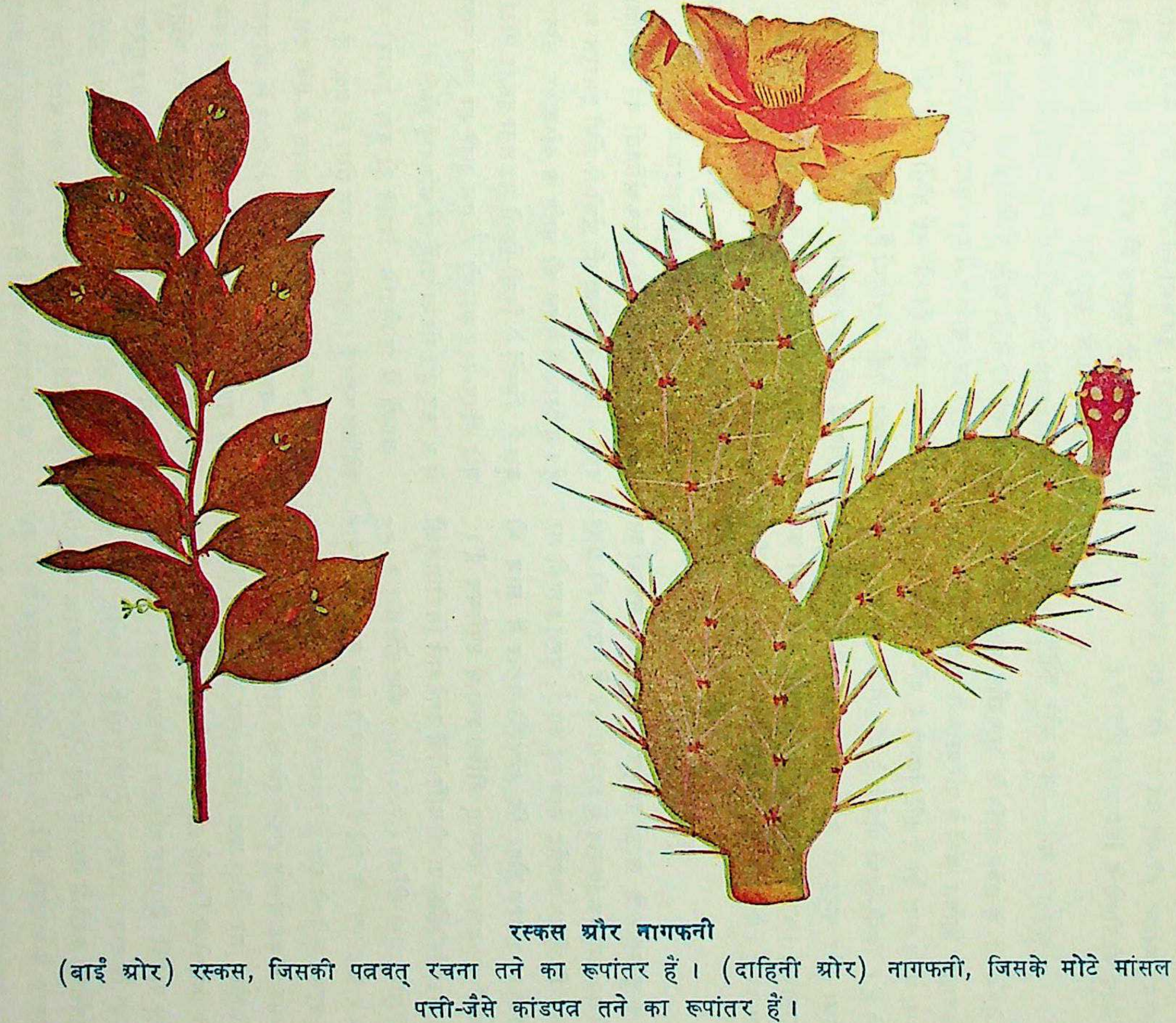

रस्कस ग्रौर नागफनी

(बाईं ग्रोर) रस्कस, जिसकी पत्रवत् रचना तने का रूपांतर हैं। (दाहिनी ग्रोर) नागफनी, जिसके मोटे मांसल पत्ती-जैसे कांडपत्र तने का रूपांतर हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाती हैं। अन्त में इनके निशान का भी पता लगना कठिन हो जाता है। काण्डपत्र प्रायः ऐसे देशों में होते हैं, जहाँ जल की कमी रहती है। इन स्थानों में जल का अधिकांश भाग पौधों की पत्तियों द्वारा वाष्पत्याग से वायु में चला जाता है। जल की इस कमी को जड़ों द्वारा पूर्ण करना पौधों के लिए कठिन होता है। इसलिए पौधों की महीन पत्तियों के स्थान पर मांसल हरे-भरे तने का होना इस वाष्पत्याग के आधिक्य को रोकने के लिए प्रतीत होता है।

संरक्षक तने--शूल और कंटक

पेड़-पौधों में अनेक भाँति के शूल और कंटक होते हैं। ये रचनाएँ विविध अंगों के परिवर्त्तन से उत्पन्न होती हैं। बबूल, थूहड़ तथा बेर में कांटे पुंखपत्र के परिवर्त्तन से उत्पन्न होते हैं। किसी-किसी पौधे में ये पत्तियों के रूपान्तर हैं। करुआ और कंटकारी अथवा भटकटइया में ये रोमों का रूपान्तर हैं। बागेनविलास तथा बेल आदि में ये शाखों का रूपान्तर हैं। ये जानवरों आदि से पेड़ों की रक्षा करते हैं।

वृहदाकार तने

जन्तु-संसार के लाखों वर्ष पूर्व के दैत्याकार सदस्यों का परिचय अन्य एक विभाग में आप पा चुके हैं। उनके तो आज केवल शिलीभूत अवशेष मात्र रह गए हैं; परंतु आपको यह जानकर अचरज होगा कि वनस्पति-संसार में आज भी सैकड़ों दानवाकार रचनाएं जीवित दशा में उपस्थित हैं।

जरा कैलीफोर्निया की घाटियों में उगनेवाले सिकोया वृक्षों की ओर ध्यान दीजिए। २००–३०० फीट ऊँचे और १००–१२५ फीट तक के घेरे के तनेवाले ये वृक्ष वनस्पति-संसार के दानव नहीं तो क्या हैं? हमारी आपकी कौन कहे, जन्तु-संसार के बड़े-से-बड़े डाइनोसॉर जैसे दानव को भी यदि पूँछ की नोक पर सीधा खड़ा किया जाय, तो वह भी सिकोया की निचली-से-निचली शाख को नहीं छू पायगा। डाइनोसॉर जैसे दानवों के अनेक परिवार मिलकर यदि एक-दूसरे से हाथ मिलाकर प्रयत्न करें, तो भी इन वृक्षों के तने को आलिंगन करने में असमर्थ होंगे। फिर भी सिकोया वनस्पति संसार के न सबसे ऊँचे, न सबसे अधिक आयुवाले ही वृक्ष हैं। जहाँ तक पता चलता है, इनमें का शायद ही कोई वृक्ष चार हजार वर्ष से अधिक आयुवाला हो।

मेक्सिको में चीड़ के समूह के एक सरो की जाति के वृक्ष की आयु ६ हजार वर्ष से भी अधिक अनुमान की जाती है। जिस समय कैलीफोर्निया के कितने ही सिकोया प्रगाढ़ निद्रा छोड़ बीज से बाहर ही अंकुरित हो रहे थे, तभी इन सरो में से कितने ही, इतने पुरातन हो चुके थे, जितने कि वर्त्तमान समय में कैलीफोर्नियावाले सिकोया हैं। परन्तु आयु में इतने बड़े होने पर भी ये ऊँचान में सिकोया से बहुत कम हैं। फिर भी इनके तने का घेरा सिकोया से अधिक है। इनमें से किसी-किसी की मोटान तो सौ-सवा सौ फीट से भी अधिक होगी। इन वृक्षों की लकड़ी बड़ी मजबूत होती है।

हमारे देश में बरगद की बड़े वृक्षों में गिनती है। ये थोड़े ही समय में बहुत बढ़ जाते हैं। सिकोया और सरो को इतना बढ़ने में हजारों वर्ष लग जाते होंगे, परन्तु बरगद तो सौ-दो सौ वर्ष में ही अति दीर्घकाय हो जाता है। कलकत्ते के बोटेनिकल गार्डेन्स में एक ऐसा ही बरगद का वृक्ष है। इसकी आयु कुछ ही सौ वर्ष होगी, फिर भी इसमें २५० से अधिक ऐसी बरोहियाँ हैं, जिनका व्यास ७-८ फीट से अधिक है और कुल बरोहियों की संख्या तो ३,२५० से भी अधिक है। इस वृक्ष के साये में सात-आठ हजार मनुष्य बैठ सकते हैं। यह बरगद का पेड़ नहीं, बल्कि अच्छा खासा बगीचा है। इसके अतिरिक्त अन्य दीर्घकाय वृक्ष भी हैं। ऑस्ट्रेलिया में उगने वाले यूकैलिप्टस के वृक्ष प्रायः ४००–५०० फीट ऊँचे होते हैं। पर्वत-श्रेणियों पर उगनेवाले इन वृक्षों के साये में दुनिया की ऊँची-से-ऊँची इमारत आ सकती है। यूकैटान में सेमल की जाति के बॉम्बाक्स सीबा नामक वृक्ष हैं, जिनमें से किसी-किसी का तना इतना मोटा है कि यदि चौदह-पंद्रह आदमी भी एक दूसरे का हाथ पकड़ बाँहों में भरकर इसे घेरना चाहें तो कठिनाई होगी।

जंगलों में उगनेवाले कितने ही वृक्ष हजारों वर्ष तक जीवित रहते हैं। शाहबलूत एक ऐसा ही वृक्ष है। वेलबेक नामक स्थान पर उगनेवाले इस जाति के एक वृक्ष के संबंध में कहा जाता है कि यह १,५०० साल से भी पुराना है। १६० साल से ऊपर हुए, इसके अधिकारी ने इसके तने के भीतर से एक रास्ता निकाला, जिससे होकर मोटर, घोड़ा-गाड़ी और छकड़े तक आ-जा सकते हैं। यह सुरंग ४ फीट से अधिक चौड़ी और १० फीट के लगभग ऊँची है। इस मार्ग में तीन घुड़सवार बराबर-बराबर घोड़े दौड़ा सकते हैं।

फूल-फलवाले वृक्षों के अतिरिक्त वनस्पति-जगत् के अन्य पेड़-पौधे भी दीर्घजीवी और वृहत्‌काय होते हैं। कितने ही समुद्री शैवाल बड़े लम्बे होते हैं। इनमें से 'मैक्रोसिस्टिस पाइरीफेरा', जो दक्षिणी समुद्रों में उगता है, ४०० फीट से भी अधिक लंबा होता है, यद्यपि इसके तने की मोटान आध इंच से भी कम होती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

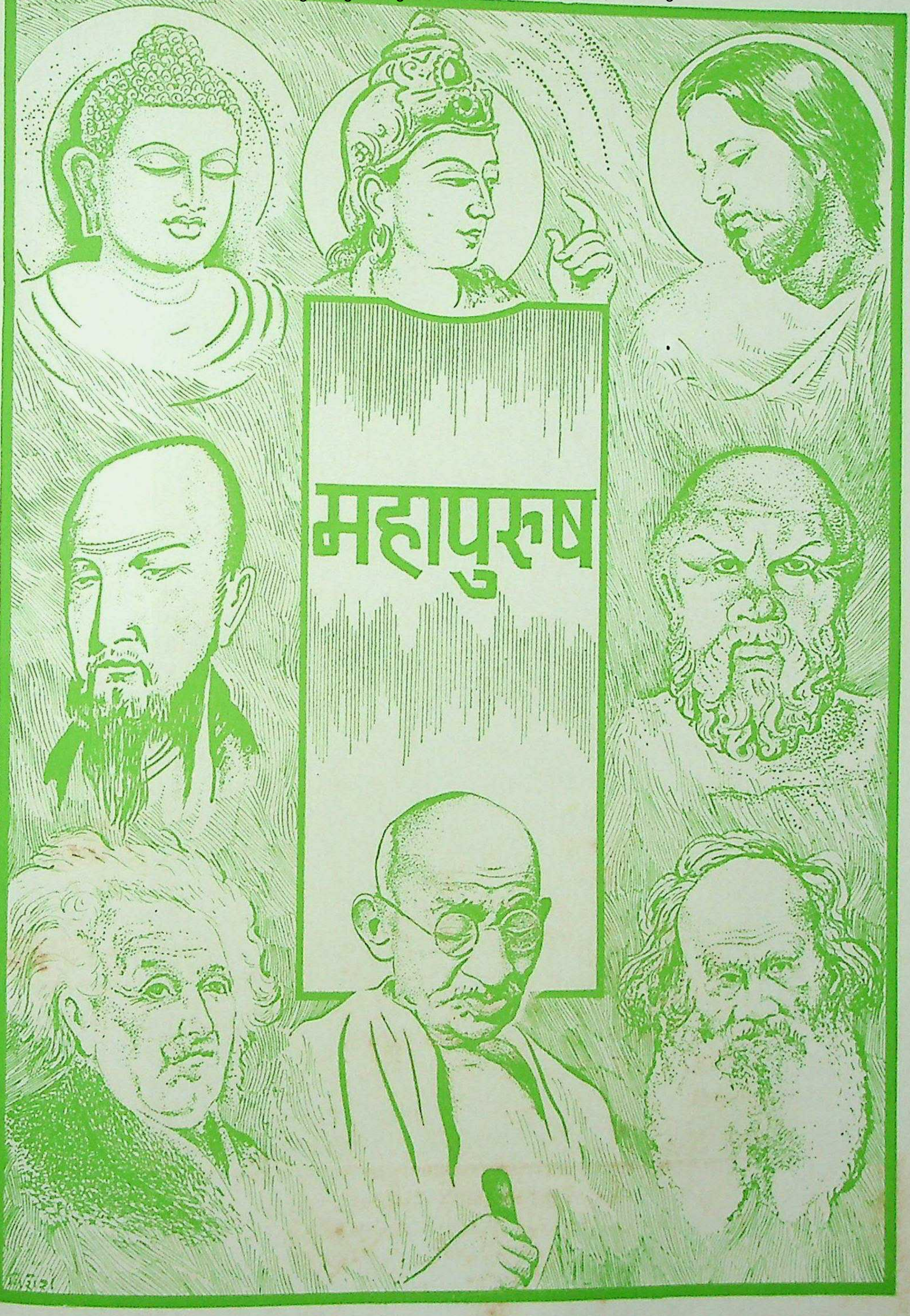

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

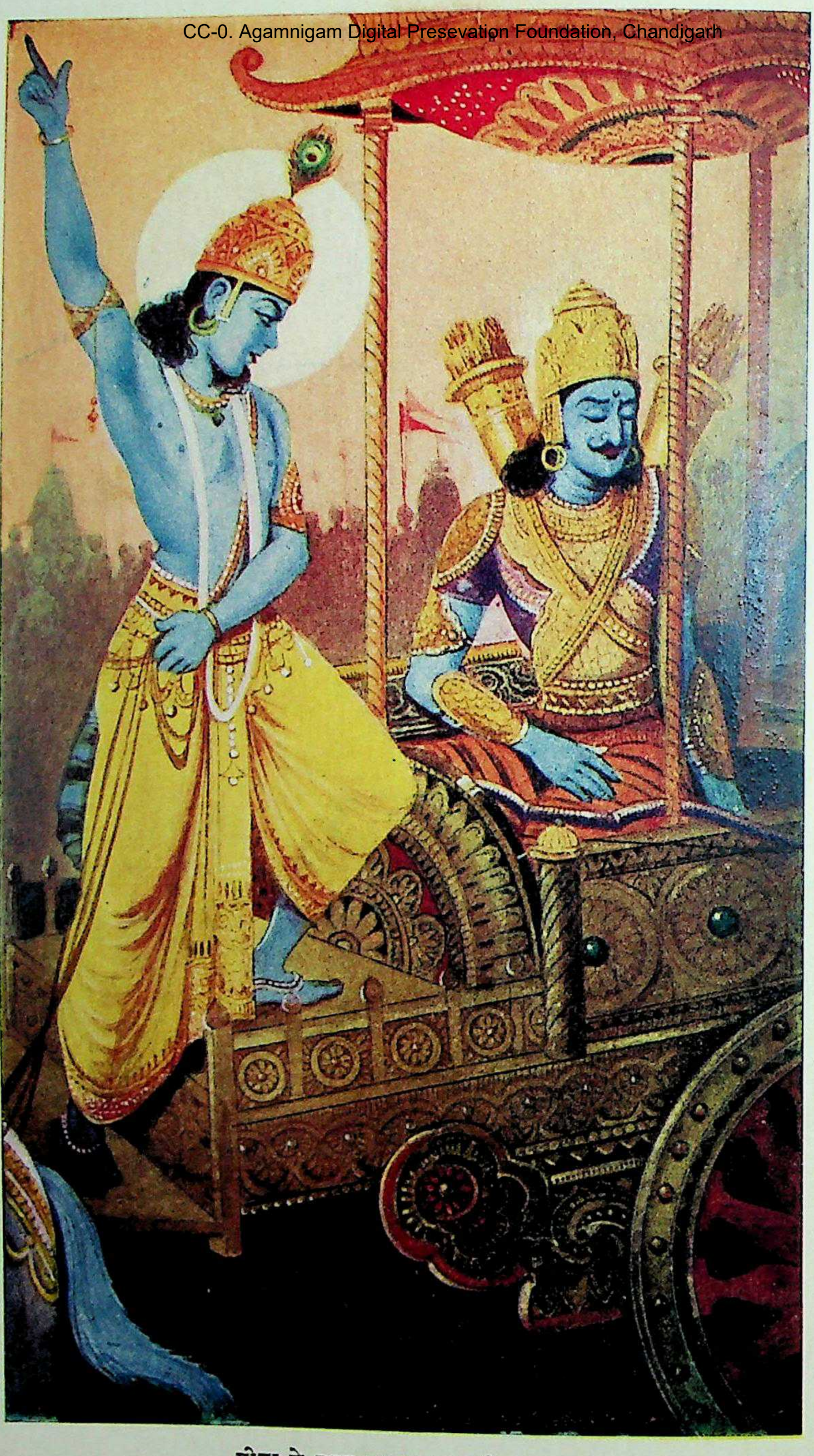

गीता के प्रवक्ता महापुरुष श्रीकृष्ण

महाभारत के युद्धक्षेत्र में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को निमित्त बनाकर गीता के रूप में जो अमर संदेश दिया, वह युग-युग तक मनुष्य को अपने जीवन-कर्त्तव्य की राह दिखाता रहेगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गीता के अमर संदेश के उद्गाता :: महापुरुष श्रीकृष्ण

आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व कुरुक्षेत्र के समरांगण में अर्जुन को निमित्त बनाकर युग-युग के लिए मनुष्य-जाति का पथप्रदर्शन करनेवाले महामानव का परिचय।

भारतवर्ष के जिन महापुरुषों का मानव-जाति के विचारों पर स्थायी प्रभाव पड़ा है, उनमें श्रीकृष्ण का स्थान प्रमुख है। आज से लगभग पाँच सहस्र वर्ष पूर्व एक ही समय में दो ऐसे व्यक्तियों का जन्म हुआ, जिनके उदात्त मस्तिष्क की छाप हमारे राष्ट्रीय जीवन पर बहुत गहरी पड़ी है। संयोग से उन दोनों का नाम 'कृष्ण' था। समकालीन इतिहास-लेखकों ने दोनों में भेद करने के लिए एक को 'द्वैपायन कृष्ण' कहा है, जिन्हें आज सारा देश महर्षि वेदव्यास के नाम से जानता है, और जिनके मस्तिष्क की अप्रतिहत प्रतिभा से आज तक हमारे धार्मिक जीवन और विश्वासों का प्रत्येक अंग प्रभावित है। दूसरे देवकी-पुत्र वासुदेव कृष्ण थे, जिन्हें हम अब वास्तव में केवल 'कृष्ण' के नाम से पुकारते हैं। कृष्ण की बाललीलाओं के मनोरम आख्यान, उनके गीता-शास्त्र के महान् उपदेश तथा महाभारत के युद्ध में उनके विविध आर्योचित कर्मों की कथाएँ आज घर-घर में प्रचलित हैं। असंख्य मनुष्यों का जीवन आज कृष्ण के आदर्श से प्रभावित होता है। वस्तुतः हमारे साहित्य का एक बड़ा भाग कृष्णचरित्र से अनुप्राणित हुआ है। कृष्ण के जीवन की घटनाएँ केवल अतीत इतिहास के जिज्ञासुओं के कुतूहल का विषय नहीं हैं, वरन् वे धार्मिक जीवन की गति-विधि को नियंत्रित करने के लिए आज भी भारतीय आकाश में चमकते हुए आकाश-दीप की तरह सुशोभित और जीवित हैं।

जन्म और बालचरित्र

अष्टमी, बुधवार, रोहिणी, इस प्रकार के तिथि-वार-नक्षत्र योग में आधी रात के समय मथुरा में अपने मामा कंस के बन्दीगृह में कृष्ण का जन्म हुआ। इसी एक बात से उस काल के राजनीतिक चक्र का आभास मिल जाता है। जिस व्यक्ति के जन्म के भय से ही उसके माता-पिता की स्वतंत्रता छिन गई हो, क्या आश्चर्य है यदि उसके जीवन का अधिकांश समय देश के राजनीतिक वातावरण को अत्याचार और उत्पीड़न से मुक्त करने में व्यतीत हुआ हो! उस काल के जो भी उच्छृंखल, लोकपीड़क सत्ताधारी थे, उन सबसे ही एक-एक करके कृष्ण की टक्कर हुई। जिस महापुरुष ने योग-समाधि के आदर्श को लेकर ब्राह्मी स्थिति प्राप्त करने का उपदेश दिया हो, जिसका अपना जीवन अविचल ज्ञाननिष्ठा का सर्वोत्तम उदाहरण हो, उसके ही जीवन में कंसनिपात से लेकर यादवों के विनाश तक की कथा एक अत्यन्त करुण कहानी के रूप में पिरोयी हुई है।

कृष्ण का बालजीवन तो एक काव्य ही है। जन्म से लेकर, अथवा उससे पूर्व ही, उनके सम्बन्ध के अतिमानवी चरित्रों का क्रम आरम्भ हो गया था, और उनके वृन्दावन छोड़कर मथुरा आने के समय तक ये बाललीलाएँ आकाश में एकत्रित होनेवाली सुन्दर सुखद मेघमालाओं की भाँति नाना वर्ण और रूपों में संचित होती रहीं। बिना कहे ही उन्हें हम जानते हैं। हमारे देश के बालवर्ग के लिए तो उन कथाओं की रसमय सामग्री एक अत्यन्त प्रिय वस्तु है। यमुना नदी और उसके समीप के पीलू के विटपों पर लहलहाती हुई लताओं के कुंजों में कृष्ण के बालचरित्रों की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रतिध्वनि आज भी जीवित काव्य-कथाएं हैं। यहीं पर उन्होंने उस मल्लविद्या का अभ्यास किया, जिसके कारण आगे चलकर मुष्टिक और चाणूर-जैसे पहलवान पछाड़े गए। यमुना के कछारों में ही उस संगीत और नृत्य का जन्म हुआ, जो हमारी संस्कृति की एक प्रिय वस्तु है। यहीं गोवंश की वृद्धि के वे प्रयत्न किए गए, जिनका पुनरुद्धार इस कृषि-प्रधान देश के लिए एक प्राप्तव्य आदर्श है।

राजनीतिक चरित्र

इन रमणीय बालचरित्रों की सुखदायी भूमिका तैयार करने के बाद श्रीकृष्ण ने एक दूसरे ही प्रकार के जगत् में प्रवेश किया। उनका वृन्दावन छोड़कर मथुरा को आना उस जगत् का देहली-द्वार है। यहां जीवन के कठोर सत्य उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके द्वारा सबसे पहला परिवर्तन शूरसेन जनपद की राजनीति में हुआ। उग्रसेन के पुत्र लोकपीड़क कंस को राज्यच्युत करके कृष्ण ने उग्रसेन को सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया। इस समय वह और उनके बड़े भाई बलराम दोनों किशोरावस्था में पदार्पण कर चुके थे। यमुना के तट पर प्रकृति के विश्वविद्यालय में स्वच्छन्द वायु और आकाश के साथ मिलकर ग्वालबालों के बीच में उन्होंने जीवन की एक बड़ी तैयारी कर ली थी, परन्तु मस्तिस्क की साधना का अवसर अभी तक उन्हें नहीं मिल सका था। इस कमी को पूरी करने के लिए वे सान्दीपनि मुनि के गुरुकुल में प्रविष्ट हुए। कुल-पुरोहित गर्गाचार्य और उज्जयिनी के विद्याचार्य सान्दीपनि इन दो नामों का भगवान् कृष्ण के साथ बड़ा मधुर सम्बन्ध है। अवश्य ही गीता के प्रवक्ता को अपने ज्ञान का प्रथम बीज आर्ष ज्ञान-परम्परा की रक्षा करनेवाले तपस्वी ब्राह्मणों से ही प्राप्त हुआ था।

जैसे ही सान्दीपनि मुनि ने विद्या समाप्त करके कृष्ण को 'सत्यं वद धर्मं चर' वाला अपना अन्तिम उपदेश देकर विदा किया, वैसे ही परिस्थिति ने उनका सम्बन्ध हस्तिनापुर की राजनीति से मिला दिया। वसुदेव और उग्रसेन कृष्ण-बलदेव को लेकर स्नान के लिए कुरुक्षेत्र गए हुए थे। यहीं कुन्ती भी पाण्डवों के साथ आई थीं। बस यहीं कृष्ण और पाण्डवों के बीच उस घनिष्ट सम्बन्ध का सूत्रपात हुआ, जिसके कारण आज तक हम योगेश्वर कृष्ण और धनुर्धर पार्थ इन दोनों का एक साथ स्मरण करते हैं। कंस-वध के समय ही कृष्ण अपनी राजनीतिक प्रवृत्ति का परिचय दे चुके थे। हस्तिना-पुर की राजनीति के साथ सम्पर्क होने के बाद उस प्रवृत्ति को और भी उत्तेजना मिली। उन्होंने यह अनुभव किया कि इस समय देश में एक बड़ा प्रबल संघटन उन राजाओं का है, जो भारतीय राजनीति की प्राचीन लोकपक्षीय परम्पराओं के विरुद्ध निरंकुश होकर राजशक्ति का प्रयोग करते हैं और जिनके कारण प्रजा में क्षोभ और कष्ट है। कृष्ण का बालजीवन लोक की गोद में पला था। वह स्वयं यादव जाति की अन्धक-वृष्णि शाखा के, जो एक गणराज्य था, सदस्य थे। इसी कारण उनकी सहानुभूति स्वभावत: लोक के साथ थी। जैसे-जैसे कारण उपस्थित होते गए, एक-एक अत्याचारी शासन से उनका संघर्ष हुआ। मगध की राजधानी गिरिव्रज में बली जरासंध का वध कराकर उन्होंने उसके पुत्र जरासंधि सहदेव का अभिषेक किया। महाभारत-कार ने लिखा है कि उस समय पृथ्वी पर जरासंध का आतंक था, केवल अन्धक-वृष्णि और कुरुवंशी क्षत्रियों ने उसकी अधीनता स्वीकार नहीं की थी। इन्हीं दोनों घरानों ने मिल-कर उसका अन्त किया। चेदि जनपद में शिशुपाल का एक-छत्र शासन था। शिशुपाल दुर्योधन की राजनीति का सम-र्थक था। दुर्योधन की शक्ति को निर्बल बनाने के लिए जरा-संध और शिशुपाल का कंटक निकालना आवश्यक था। तदनुसार शिशुपाल का वध करके माहिष्मती की गद्दी पर उसके पुत्र धृष्टकेतु को बैठाया। नग्नजित के पुत्रों को हरा-कर गांधार देश को अनुकूल किया। बलिष्ठ पांड्यराज को मल्लयुद्ध में अपने वक्षःस्थल की टक्कर से चूर कर डाला। सौभ नगर में शाल्वराज को वशीभूत किया। सुदूर पूर्व के प्राग्ज्योषित दुर्ग में भौम नरक का निरंकुश शासन था, जिसने एक सहस्र कन्याओं को अपने बन्दीगृह में डाल रक्खा था। उसकी निर्मोचन नामक राजधानी में सेना सहित मुर और नरक का वध करके कामरूप प्रदेश को स्वतंत्र किया। वाणा-सुर, कलिंगराज और काशिराज इन सबको कृष्ण से लोहा लेना पड़ा और सब ही उनके बुद्धि-कौशल के आगे परास्त हुए।

कृष्ण की राजनीतिक बुद्धि अद्भुत थी। जहाँ कोई युक्ति न हो, वहाँ कृष्ण की युक्ति काम आती थी। अर्जुन ने कहा था कि युद्ध न करने पर भी कृष्ण मन से जिसका अभिनन्दन करें वह सब शत्रुओं पर विजयी होगा। 'यदि मुझे वज्रधारी इन्द्र और कृष्ण में से एक को लेना पड़े, तो मैं कृष्ण को लूंगा।' आर्य विष्णुगुप्त चाणक्य को भी अपनी बुद्धि पर ऐसा ही विश्वास था। उनका मंत्र अमोघ था। धृतराष्ट्र की धारणा थी कि जब तक एक रथ पर कृष्ण, अर्जुन और गाण्डीव धनुष—ये तीन तेज एक साथ हैं, तब तक ग्यारह अक्षौहिणी सेना होने पर भी कौरवों की विजय असम्भव है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

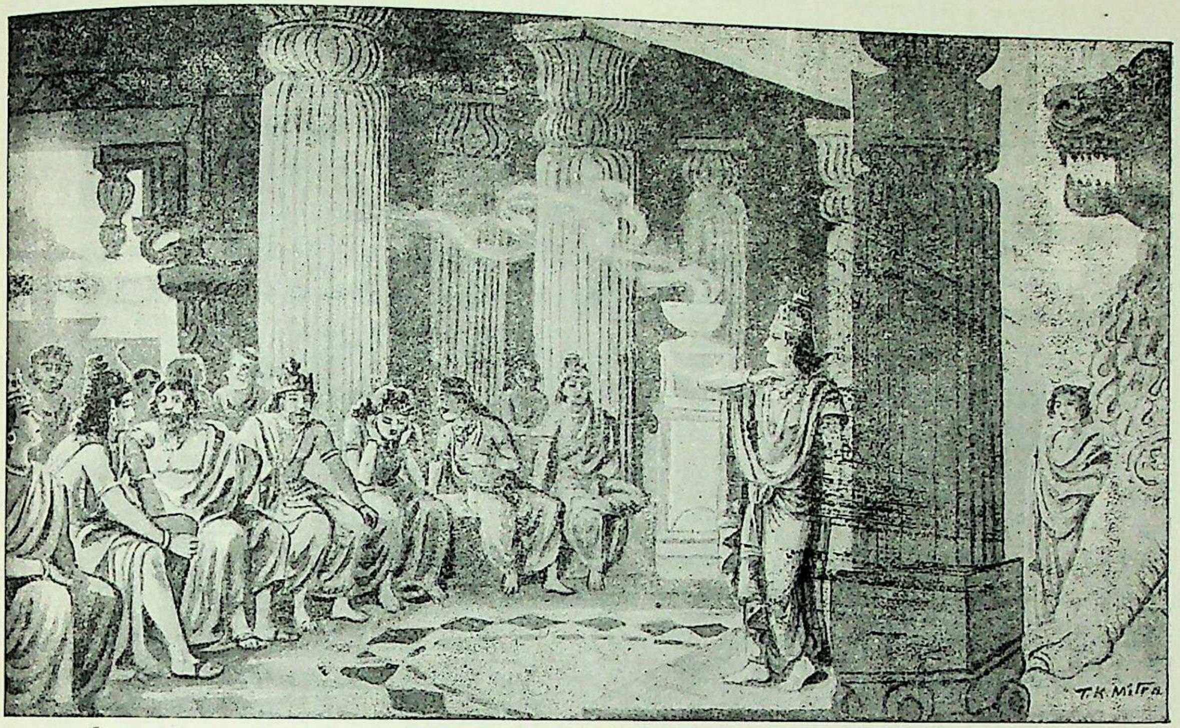

महाभारत से हमें ज्ञात होता है कि यादवों की अंधक और वृष्णि शाखाओं का एक सम्मिलित संघराज्य था। इसमें वृष्णियों के दल की ओर से श्रीकृष्ण प्रधान चुने गए थे। इस संघराज्य की प्रधान संघ-सभा या 'पार्लमिंट' में भिन्न-भिन्न दलों की ओर से बड़े प्रभावशाली भाषण और वाद-विवाद होते थे। इसी की एक झाँकी चित्र में दिग्दर्शित है।

महाभारत का युद्ध भारतीय इतिहास की एक बहुत दारुण घटना है। इस प्रलयकारी युद्ध में दुर्योधन की ओर से गान्धार, वाल्हीक, काम्बोज, केकय, सिन्धु, मद्र, त्रिगर्त (काँगड़ा), सारस्वतगण, मालव और अंग आदि देशों के क्षत्रिय प्रवृत्त हुए। युधिष्ठिर की ओर से विराट्, पंचाल, काशि, चेदि, सृञ्जय, वृष्णि आदि वंशों के क्षत्रिय युद्ध के लिए आए। ऐसे भयंकर विनाश को रोकने के लिए कृष्ण से जो प्रयत्न हो सकता था, उन्होंने किया। वे पाण्डवों की ओर से समस्त अधिकारों को लेकर संधि करने के लिए हस्तिनापुर गए।* वहाँ उन्होंने धृतराष्ट्र की सभा में जो तेजस्वी भाषण दिया, उसकी प्रतिध्वनि आज भी इतिहास में गुंजायमान है--

कुरूणां पांडवानां च शमः स्यादिति भारत।
अप्रणाशेन वीराणामेतद्याचितुमागतः।।

अर्थात् 'कौरवों और पाण्डवों में बिना वीरों का नाश हुए ही शान्ति हो जाय, मैं यही प्रार्थना करने आया हूँ।'

धृतराष्ट्र ने कहा--हे कृष्ण, मैं सब समझता हूँ, पर तुम दुर्योधन को समझा सको तो प्रयत्न करो।

कृष्ण ने दुर्योधन से कहा—हे तात, शान्ति से ही तुम्हारा और जगत् का कल्याण होगा ('शमे शर्म भवेत्तात'—उद्योगपर्व १२४।१९)।

दुर्योधन ने सब-कुछ सुनकर कहा--

यावद्धि तीक्ष्णया सूच्या विद्धयेदग्रेण केशव।
तावदप्य परित्याज्यं भूमेर्नः पाण्डवान् प्रति।।
—उद्योग० १२७।२५

अर्थात् 'हे कृष्ण, सुई की नोक के बराबर भी भूमि पाण्डवों के लिए मैं नहीं छोड़ सकता।' बस यही युद्ध का अपरिहार्य आह्वान था। दैव की इच्छा के सामने भीष्म और द्रोण-जैसे नररत्नों की भी रक्षा न हो सकी।

---

*भारतीय राजनीति की परिभाषा के अनुसार दूत तीन तरह के होते हैं, एक 'निःसृष्टार्थ' जो देशकाल की आवश्यकता के अनुसार अपने उत्तरदायित्व पर राजकार्य को बनाने का सब अधिकार रखते हैं, दूसरे 'संदिष्टार्थ' जो संदेश या उक्त वचन को ले जाकर कहते हैं, और तीसरे 'शासनहर' जो लिखित पत्र या 'शासन' ले जाते हैं। पाण्डवों ने कृष्ण को प्रथम कोटि का अर्थात् निःसृष्टार्थ दूत बना कर भेजा था, जिन्हें उनकी तरफ से अपने ही उत्तरदायित्व पर चाहे जिस प्रकार की संधि या निर्णय करने के सब अधिकार प्राप्त थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्धक-वृष्णि गणराज्य के प्रधान

महाभारत में हमें कृष्ण का परिचय एक विशिष्ट रूप में मिलता है। यादव क्षत्रियों की दो प्रधान शाखाएँ अन्धक और वृष्णिसंज्ञक थीं। कृष्ण वृष्णि वंश के थे। अक्रूर अन्धक थे। वृष्णि गणराज्य की ऐतिहासिक सत्ता का प्रमाण कुछ प्राचीन सिक्कों से प्राप्त होता है, जिन पर 'वृष्णि राजन्य-गणस्यतात्रारस्य' इस प्रकार का लेख है। इससे ज्ञात होता है कि विक्रम संवत् के प्रारंभ तक वृष्णि लोगों का शासन एक गण या संघ के रूप में था। पाणिनि की अष्टाध्यायी और बौद्ध साहित्य में भी अन्धक-वृष्णियों का उल्लेख है! महाभारत सभापर्व (अ० ८१) से मालूम होता है कि अन्धक और वृष्णियों का एक सम्मिलित संघराज्य था। इसे डॉ० जायसवाल ने उनकी 'फेडरल पार्लमिण्ट' के नाम से पुकारा है। इस सम्मिलित संघ में वृष्णियों की ओर से कृष्ण और अन्धकों की ओर से बभ्रु उग्रसेन संघ-प्रधान चुने गए थे। इसलिए महाभारत की राजनीतिक परिभाषा में कृष्ण को ऐश्वर्य का अर्धभोक्ता राजन्य कहा गया है। संघसभा में राजनीति के चक्र भी चलते रहते थे। वृष्णियों की ओर से संघसभा में आहुक और अन्धकों की ओर से अक्रूर सदस्यों का नेतृत्व करते थे। कभी-कभी दोनों पक्षों से बहुत उग्र भाषण दिए जाते थे। पारस्परिक कलह से खिन्न होकर एक बार कृष्ण भीष्म से परामर्श करने हस्तिनापुर पधारे थे। तब भीष्म ने उनसे यही कहा कि "हे कृष्ण, मधुर वचन-रूपी एक 'अनायस' शस्त्र है, तुम उसी के प्रयोग से जातियों को वश में करो। सम भूमि पर सब चल सकते हैं, पर विषम भूमि पर बोझा ढोना आसान नहीं। हे कृष्ण, तुम्हारे जैसे प्रधान को पाकर यह गणराज्य नष्ट न हो जाना चाहिए।" हम जानते हैं कि कृष्ण के प्रयत्न करने पर भी अन्त में तीक्ष्ण भाषण के कारण ही यादवों का आपस में लड़कर विनाश हो गया!

सोलह कला का अवतार

कृष्ण को हमारे देश के जीवनचरित्र-लेखकों ने 'सोलह कला का अवतार' कहा है। इनका तात्पर्य क्या है? यह स्पष्ट है कि भिन्न-भिन्न वस्तुओं को नापने के लिए भिन्न-भिन्न परिमाणों का प्रयोग किया जाता है। दूरी के नापने के लिए और नाप है, काल के लिए और है, तथा बोझे के लिए और है। इसी प्रकार मानवी पूर्णता को प्रकट करने के लिए कला की नाप है। सोलह कलाओं से चन्द्रमा का स्वरूप सम्पूर्ण होता है। मानवी आत्मा का पूर्णतम विकास भी सोलहों कलाओं के द्वारा प्रकट किया जाता है। कृष्ण में सोलह कला की अभिव्यक्ति थी, अर्थात् मनुष्य का मस्तिष्क मानवी विकास का जो पूर्णतम आदर्श बना सकता है, वह हमें कृष्ण में मिलता है। नृत्य, गीत, वादित्र, सौंदर्य, वाग्मि, राजनीति, योग, अध्यात्म, ज्ञान, सबका एकत्र समवाय कृष्ण में पाया जाता है। गोदोहन से लेकर राजसूय यज्ञ में ब्राह्मणों के चरण धोने तक तथा सुदामा की मैत्री से लेकर युद्धभूमि में गीता के उपदेश तक उनकी ऊँचाई का एक पैमाना है, जिस पर सूर्य की किरणों की रंगबिरंगी पेटी की तरह हमें आत्मिक विकास के हर एक स्वरूप का दर्शन होता है।

गीता

कृष्ण के उच्च स्वरूप की पराकाष्ठा हमारे लिए गीता में है। 'सब उपनिषद् यदि गौएँ हैं, तो गीता उनका दूध है'—इस देश के विद्वान् किसी ग्रन्थ की प्रशंसा में इससे अधिक और क्या कह सकते थे? गीता विश्व का शास्त्र है, उसका प्रभाव मानव-जाति के मस्तिष्क पर हमेशा तक रहेगा। संसार में जन्म लेकर हममें से हर एक के सामने कर्म का गम्भीर प्रश्न बना ही रहता है। जीवन कर्ममय है, संसार कर्मभूमि है। गीता उसी कर्मयोग का प्रतिपाद्य शास्त्र है। कर्म के वैज्ञानिक विवेचन के लिए और जीवन के साथ उसका अध्यात्म सम्बन्ध क्या है और किस प्रकार उस संबंध का निपटारा करने से मनुष्य अपने अन्तिम ध्येय और शान्ति को प्राप्त कर सकता है, इन प्रश्नों की सर्वोत्तम मीमांसा काव्य के ढंग से गीताकार ने की है। अतएव यह ग्रन्थ न केवल भारतवर्ष बल्कि विश्व-साहित्य की थाती है।

भारत के शिरोमणि महापुरुष

कृष्ण भारतवर्ष के लिए एक अमूल्य निधि हैं। उनका हर एक स्वरूप यहाँ के जीवन को अनुप्राणित करता है। जिस युग में इन्द्रप्रस्थ और द्वारका के बीच उनका किंकिणीय रथ बलाहक, मेघपुष्प, शैव्य और सुग्रीव नामक अश्वों के साथ झनझनाता रहता था, न केवल उस समय ही कृष्ण भारतवर्ष के शिरोमणि महापुरुष थे बल्कि आज तक वे हमारी राष्ट्रीय संस्कृति के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि बने हुए हैं। जिस प्रकार पूर्व और पश्चिमी समुद्रों के बीच के प्रदेश को व्याप्त करके गिरिराज हिमालय पृथ्वी के मानदण्ड की तरह स्थित है, उसी प्रकार ब्राह्मधर्म और क्षात्रधर्म इन दो मर्यादाओं के बीच की उच्चता को व्याप्त करके श्रीकृष्ण-चरित्र पूर्ण मानवी विकास के मानदण्ड की तरह स्थित है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

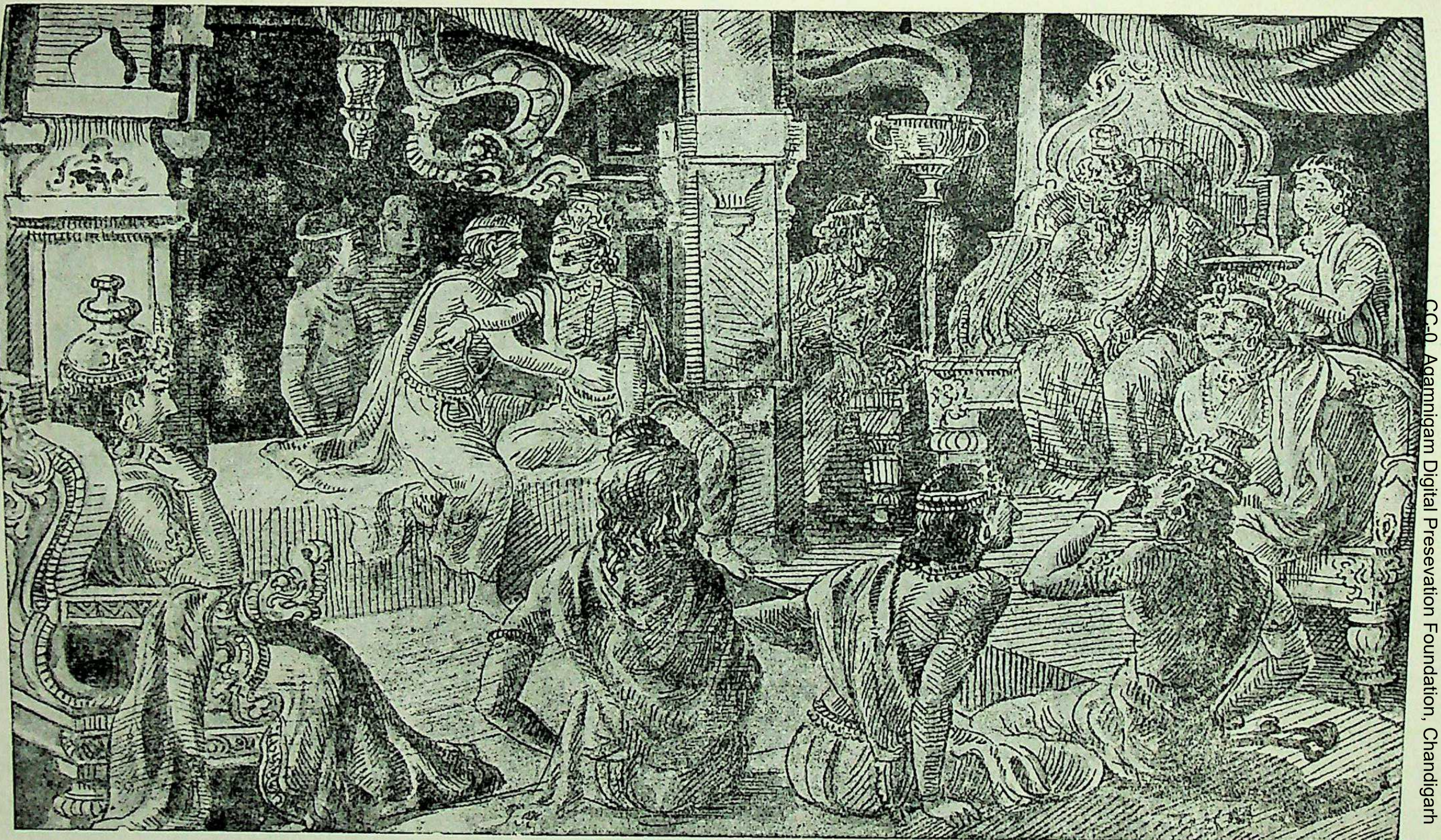

श्रीकृष्ण ने महाभारत के विनाशकारी युद्ध को रोकने के लिए भरसक प्रयत्न किया था। इसी उद्देश्य से वह पांडवों की ओर से दूत के रूप में कौरवों के पास हस्तिनापुर गए थे; ताकि संधि हो जाय और व्यर्थ का रक्तपात न हो। किंतु स्वेच्छाचारी निरंकुश दुर्योधन ने आज के 'डिक्टेटरों' की तरह उनके शांति के संदेश को ठुकरा दिया। इस चित्र में कौरव-सभा में बाईं ओर सिंहासन पर कृष्ण विराजमान हैं, दाहिनी ओर राज्यासन पर नीचा सिर किये अंधे राजा धृतराष्ट्र बैठे हैं और उनके पास बैठा हुआ दुर्योधन अपना क्रोध प्रदर्शित कर रहा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विश्व-कल्याण के महासाधक :: महात्मा गौतम बुद्ध

"सबका कल्याण उनकी प्रेरणा शक्ति थी; उन्हें स्वर्ग की आकांक्षा, सम्पत्ति की एषणा नहीं थी; उन्होंने राज-पाट और सर्वस्व त्याग दिया, तथा सागर के समान विशाल अन्तःकरण लेकर मानव और जीवमात्र के कल्याण के लिए भारत की गली-गली में वह भिक्षा की पुकार करते फिरे।" —**स्वामी विवेकानन्द**

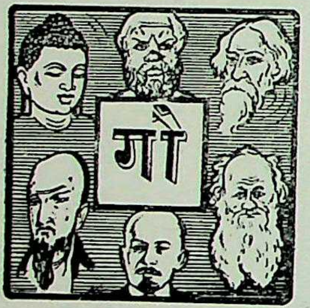

गौतम बुद्ध के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द द्वारा कहे गए उपर्युक्त शब्दों में लेशमात्र भी अत्युक्ति नहीं है। यही वह महामानव था, जिसने वैदिक कर्मकाण्ड का खण्डन करते हुए भी वेदान्त की इस अमर भावना को आत्मसात् कर लिया—'समस्त प्राणियों में मैं हूँ, समस्त प्राणी मुझमें समाए हुए हैं।' संसार में आज तक अगणित महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने मानवता के कल्याण के लिए अनुपम मार्ग प्रशस्त किए हैं, किंतु निज अन्तर में करुणा का अजस्र स्रोत प्रवाहित करते हुए जीवमात्र के कल्याण के लिए जितना सरल और स्वाभाविक मार्ग बुद्ध ने निर्दिष्ट किया है, उसकी तुलना अन्य किसी मानवप्रणीत मार्ग से नहीं की जा सकती।

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'

लोकोक्ति है कि 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' अर्थात् प्रतिभावान् बालक के लक्षण पालने में ही दिखाई देने लगते हैं। कोसल के अधीन शाक्य गणतंत्र के राजा शुद्धोदन के परिवार में माता महामाया की कोख से उत्पन्न होनेवाले बालक सिद्धार्थ के सम्बन्ध में भी यह बात पूर्णतया लागू होती थी। उनके जन्म के समय असित नामक वृद्ध संन्यासी ने भविष्यवाणी की थी कि संसार में एक उद्धारक आ गया है। उक्त भविष्यवक्ता को यदि कोई वेदना थी तो यही कि उसका जराजर्जरित गात इस अलौकिक पुरुष के अलौकिक कृत्यों को न देख पाएगा। असित भले ही अपनी भविष्यवाणी को सार्थक होते न देख सका हो, किंतु उसकी सार्थकता का प्रमाण तो उस समय तक प्राप्त होता रहेगा, जब तक कि गगनमण्डल में दिवा-निशा के अथक राही सूर्य-चंद्र चक्कर लगाते रहेंगे; जब तक कि भूमण्डल पर मानव-इतिहास को दोहराने के लिए एक भी मानव शेष होगा।

ढाई हजार वर्ष पूर्व वैशाख मास की पूर्णिमा को भूतल पर अवतरित हुए बुद्ध का बचपन का नाम सिद्धार्थ था। जन्म से ठीक सात दिन पश्चात् सिद्धार्थ की माता महामाया इस असार संसार से सदा के लिए विदा हो गईं। सौतेली मां और मां की बहिन महाप्रजापति गौतमी द्वारा बालक सिद्धार्थ का लालन-पालन हुआ।

वैराग्य का बीजारोपण

राजकुमार सिद्धार्थ प्रारम्भ से ही गम्भीर तथा मननशील थे। उन्हें हास-विलास-परिहास की अपेक्षा चिन्तन के प्रति अधिक अनुराग था। उनकी इस गम्भीर प्रकृति को देखकर ही पिता शुद्धोदन ने उनके चारों ओर विलास की सामग्री सजोने की योजना बनाई। परन्तु विलास-सामग्री उनके जन्मजात गुणों को कितने दिन तक अपने पाश में आबद्ध रख पाती! बालजीवन की एक साधारण घटना ने ही सिद्धार्थ के मन पर अमिट छाप छोड़ी। उसके चचेरे भाई देवदत्त ने एक दिन एक हंस के बाण मारा। हंस की तड़पन और उसके स्नेहियों के रुदन-चीत्कार ने सिद्धार्थ के हृदय को द्रवित कर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करुणा से आप्लावित कर दिया--ऐसी करुणा से जिसका स्रोत आजीवन उनके अन्तस्तल से स्रवित होता रहा।

सिद्धार्थ का विवाह राजकुमारी यशोधरा के साथ हुआ। यशोधरा ने राजकुमार के हृदय पर अधिकार करने में कोई कोरकसर उठा न रखी। यशोधरा ने पुत्ररत्न को भी जन्म दिया, जिसको राहुल के नाम से पुकारा गया। परन्तु सिद्धार्थ ने पुत्र को जीवन की यात्रा में एक और बाधा-सा अनुभव किया। उसे लगा कि वह दिन-प्रतिदिन माया के जाल में फँसता जा रहा है, शाश्वत सत्य से दूर भटकता जा रहा है। इसी बीच क्रमशः एक वृद्ध, रोगी और शव का दर्शन कर वह अन्तर्मुख हो उठा--"क्या मैं भी इसी प्रकार वृद्धावस्था प्राप्त करूँगा ? क्या मैं भी इसी प्रकार बीमार पड़ सकता हूँ ? क्या मेरी भी इसी प्रकार मृत्यु होगी ?" इस विरक्ति की सुलगती आग में किसी शान्त संन्यासी के निम्न शब्दों ने मानो घी डालने का काम किया--

"नरपुंगव जन्ममृत्युभीतः
श्रमणः प्रव्रजितोस्मि मोक्षहेतोः।"

अर्थात् मैं श्रमण हूँ, एक संन्यासी हूँ, जिसने जन्म और मरण के डर से, मोक्ष पाने के हेतु प्रव्रज्या ग्रहण की है।

महाभिनिष्क्रमण

बस फिर क्या था! विरक्ति की ज्वाला प्रचण्ड वेग से धधक उठी। राजमहलों का ऐश्वर्य त्यागकर, पिता का दुलार भुलाकर, पत्नी का प्रेम ठुकराकर; नवजात पुत्र का मोह छोड़कर राजकुमार सिद्धार्थ शाश्वत सत्य के साक्षात्कार के लिए परिव्राजक के रूप में वन की कँटीली और दुरूह राहों पर निकल पड़ा। राजप्रासादों की सुकोमल शय्याओं पर कल तक सुख-चैन की जिंदगी काटनेवाला राजकुमार दर-दर का भिक्षु बन गया—मानव को भवबंधन से मुक्ति का मार्ग दर्शाने के लिए। अब उसके कान वीणा की झंकार और सितार के सुमधुर स्वर अथवा नर्तकियों के पगों के नूपुरों की ध्वनि सुनने को लालायित नहीं थे। उन्हें तो उस महानाद के श्रवण की उत्कंठा थी, जिसके सहारे व्यक्ति के जन्म-जन्मान्तर के पापों का मोचन हो जाता है।

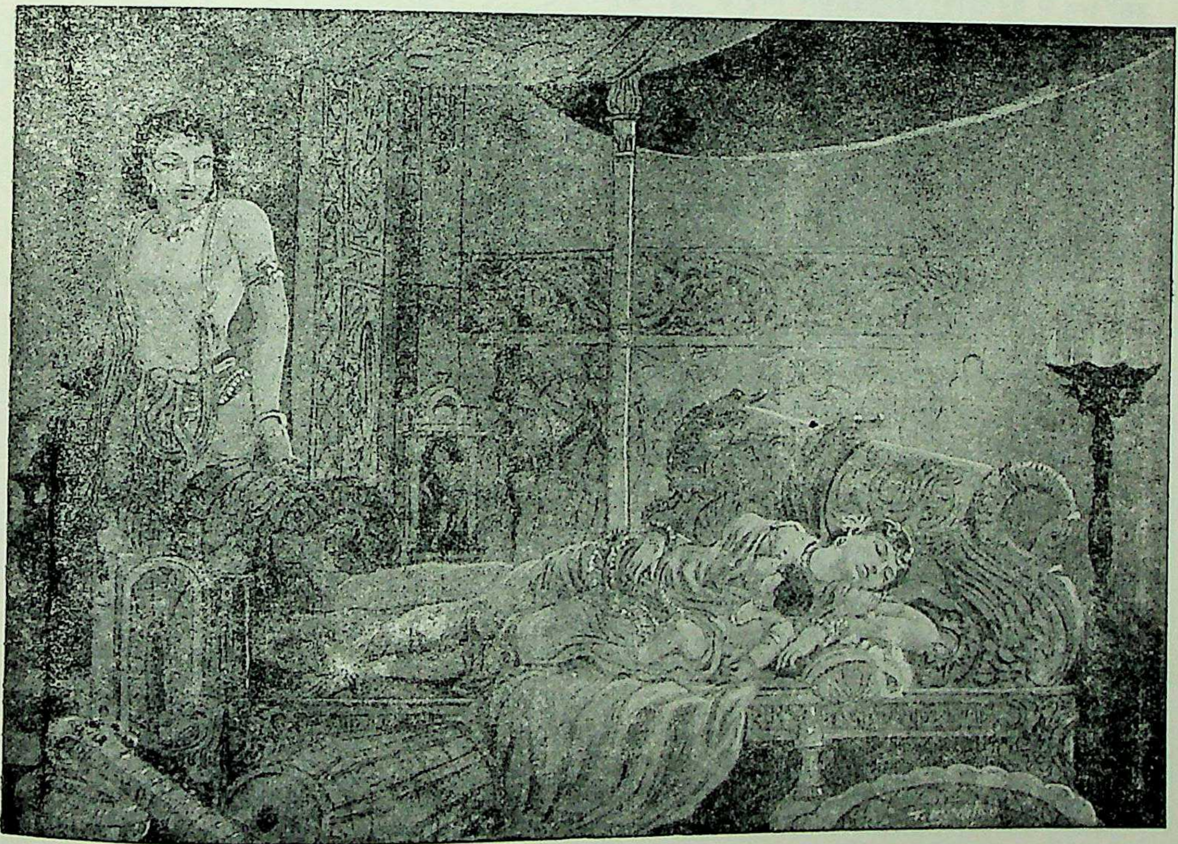

निद्रा में लीन पत्नी और नवजात शिशु को सदा के लिए छोड़कर मानव-कल्याण तथा सत्य की खोज में निकल पड़नेवाले राजकुमार सिद्धार्थ के महान् बलिदान से अधिक ज्वलन्त त्याग का उदाहरण संसार के इतिहास में शायद ही और कोई मिलेगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिद्धार्थ से बुद्ध

परिव्राजक सिद्धार्थ ने ज्ञान की पिपासा को शान्त करने के लिए और शाश्वत सत्य की खोज के लिए लगातार छः वर्षों तक वन-वन की खाक छानी, कठोरतम तपस्या कर शरीर को सुखाया, उपवास की आग में शरीर को तपाकर कुन्दन बना डाला, न जाने कितने साधकों-विद्वानों के चरणों में बैठकर परम ज्ञान की उपलब्धि का प्रयास किया। परन्तु उसे जिस वस्तु की चाह थी, वह न मिल सकी; परमानंद के उसे दर्शन न हो सके। अन्ततोगत्वा उसने निरंजना नदी में स्नान किया और सुजाता द्वारा दी गई खीर को ग्रहण किया। फिर से शारीरिक शक्ति प्राप्त करने पर उसने गया के निकट बोधिवृक्ष के नीचे सात सप्ताह व्यतीत किए। इसी काल में उसे अतुलनीय एकाग्रता और गहन चिन्तनावस्था प्राप्त हुई। एक दिन रात को अरुणोदय से पूर्व उसे पूर्ण ज्ञान की संप्राप्ति हुई, वह बोध-दृष्टि से युक्त हो उठा। इसी क्षण से वह परिव्राजक राजकुमार सिद्धार्थ 'बुद्ध' बन गया। तभी से वह अपना उल्लेख 'तथागत' अथवा बुद्ध के नाम से करने लगा। तथागत का अर्थ है ऐसा व्यक्ति जो सत्य का साक्षात्कार कर चुका हो; बुद्ध से अभिप्राय है ऐसे मनुष्य से, जो ज्ञान की प्राप्ति कर चुका हो।

धर्मचक्रप्रवर्त्तन

ज्ञान-प्राप्ति के पश्चात् बुद्ध यात्रा पर निकले। मार्ग में अनेक बाधाएँ उपस्थित हुईं। 'मार' की सेनाओं ने उन्हें पथ-भ्रष्ट करने की विफल चेष्टा की, किंतु बुद्ध सबकी उपेक्षा करते हुए अपने मार्ग पर अग्रसर होते रहे। इस यात्रा में एक क्षण ऐसा भी आया, जबकि बुद्ध के मन में द्विविधा उत्पन्न हुई कि लोभ और द्वेष से पूरित संसार को प्राप्त सत्य से परिचित क्यों कराया जाय। किन्तु बाद में उन्हें विश्वास हुआ कि संसार में कुछ न कुछ ऐसे लोग तो मिलेंगे ही, जिनकी दृष्टि स्वच्छ होगी। इस आत्मविश्वास की भावना से युक्त होकर बुद्ध काशी के निकट ऋषिपतन (सारनाथ) के मृग-वन में पहुँचे और वहाँ उन्होंने धर्मचक्रप्रवर्तन किया। पाँच शिष्यों को दिया गया उनका यही उपदेश मध्यम मार्ग का उपदेश कहलाता है। मानवीय तृष्णा ही समस्त दुःखों का कारण है, अतः बुद्ध ने उससे मुक्ति के उपाय स्वरूप अष्टांग मार्ग का निर्देश किया। ये अष्टांग मार्ग जीवन व्यतीत करने के आठ सरल और सच्चे नीतितत्त्वों के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। बौद्ध ग्रंथ में इन अष्टांगों का उल्लेख निम्न प्रकार मिलता है—सम्यक् दृष्टि, सम्यक् वाणी, सम्यक् संकल्प, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, और सम्यक् समाधि।

जनता के हृदय-सम्राट्

स्थान-स्थान पर लोगों ने बुद्ध की शिष्यता स्वीकार की। राजा से लेकर रंक तक सभी उनके शिष्य बने। उनके शिष्यों में सारिपुत्र और मौद्गल्यायन जैसे कुलीन ब्राह्मण तथा आनंद व देवदत्त जैसे क्षत्रिय के साथ-साथ तापसा और भल्लिक जैसे वैश्यों तथा उपलिस जैसे शूद्रों की भी कमी नहीं थी। बुद्ध की प्रतिभा ने राजमहलों और झोपड़ियों को समान रूप से प्रभावित किया था और यही थी उनके महान् व्यक्तित्व की विशेषता, जिसने उन्हें जन-जन के अन्तर का भगवान् बना दिया। यही क्यों, जिस घर में उन्होंने जन्म ग्रहण किया था, वह भी उनके ज्ञान-सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित हुए बिना न रह सका। संबोधि के एक वर्ष पश्चात् उनके पिता राजा शुद्धोदन ने पुत्र को कपिलावस्तु बुलाया। राजपिता ने अपने साधु पुत्र की अगवानी की। किंतु बुद्ध उस कपिलवस्तु में भी, जिसके महाराज के वह पुत्र थे, भिक्षा माँगने में नहीं हिचकिचाए। उनके सौम्य व्यक्तित्व और आध्यात्मिक तेज का दर्शन कर उनकी पत्नी यशोधरा गद्गद् हो गई। चरणों में विनत होकर उसने अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। पुत्र से बोली, "राहुल, अपने पिता से आशीर्वाद प्राप्त कर।" बुद्ध ने अपने पुत्र को भी अपना शिष्य बनाकर संघ की शरण में ले लिया। परिवार का नापित उपालि तक उनकी शिष्यता स्वीकार करने से न रह सका।

बुद्ध के प्रति और उनके विचारों के प्रति जनसामान्य में कितनी अगाध श्रद्धा थी, इसका इससे अधिक उज्ज्वल उद्धाहरण और क्या हो सकता है कि श्रावस्ती के अनाथपिंडिक नामक व्यापारी ने बौद्ध विहार बनवाने के लिए जेतवन नामक उद्यान को उतनी स्वर्ण मुहरें देकर खरीद लिया, जितने से जेतवन की समस्त भूमि ढक जाती।

बुद्ध की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि जो भी उनके सम्पर्क में आता, वह अति प्रभावित होता और उनकी शिष्यता स्वीकार कर लेता। कोसल का राजा प्रसेनजित, विशाखा नामक धनी महिला और वहाँ के अन्य अनेक प्रसिद्ध व्यक्ति इसी प्रकार बुद्ध के शिष्य बने। राजगृह में जब बुद्ध रुग्ण थे, उनका सम्पर्क राजवैद्य जीवक से हुआ। जीवक ने न केवल बुद्ध को नीरोग ही किया, अपितु उनकी शिष्यता भी स्वीकार की।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

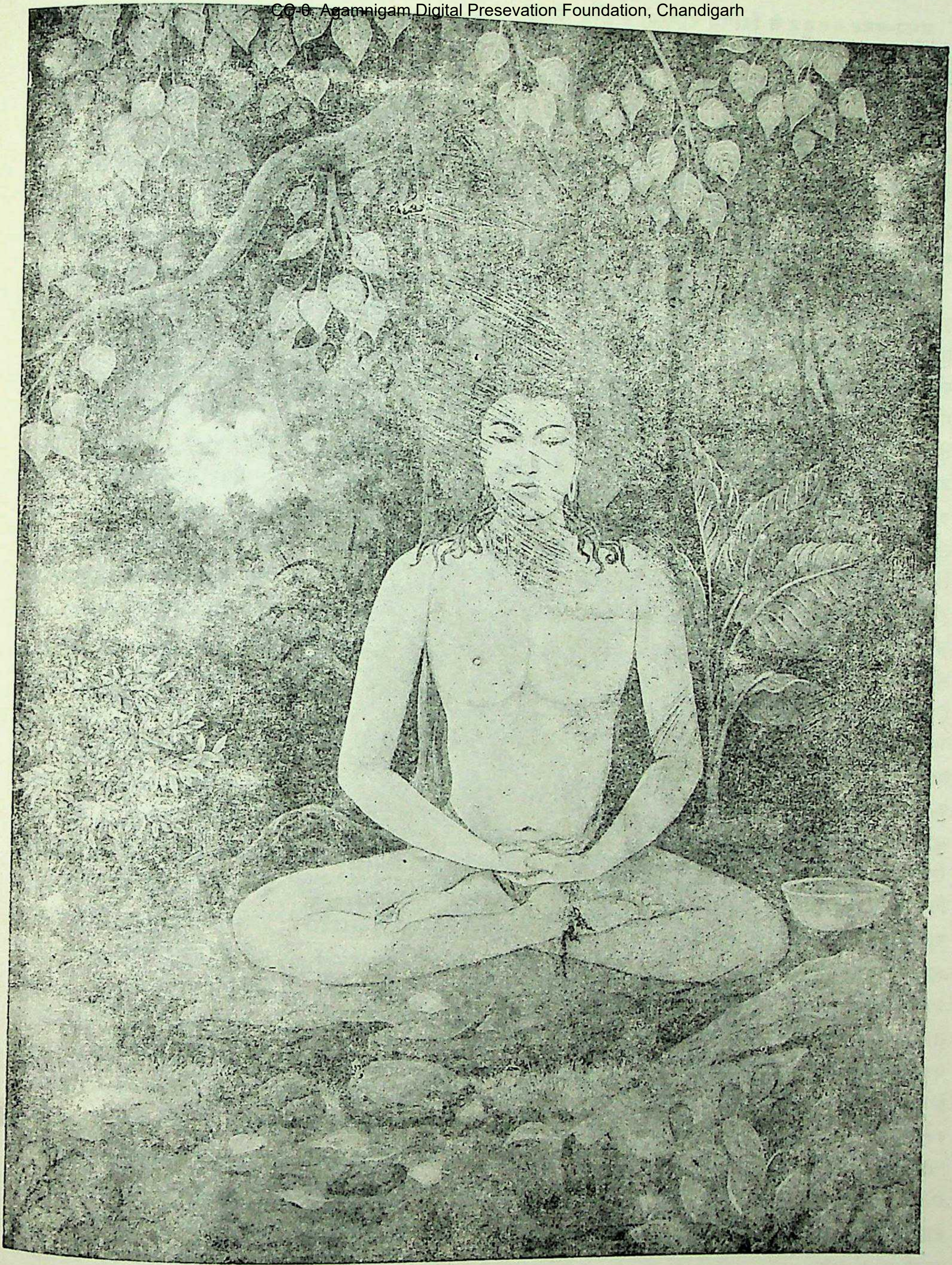

करुणावतार महात्मा बुद्ध, जिन्होंने संसार के दुखों से मानव की मुक्ति की खोज में सर्वस्व त्यागकर अंत में गया के समीप एक पीपल के वृक्ष के नीचे वह आत्मज्ञान या बोध प्राप्त किया, जिसका प्रकाश आज भी कोटि-कोटि जनों को अंधकार में मार्ग दिखाकर शान्ति प्रदान कर रहा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समय-समय पर बुद्ध ने विभिन्न राजाओं के बीच उत्पन्न होनेवाले संघर्षों को भी समाप्त करने का भरसक प्रयास किया। इसमें उन्हें पर्याप्त सफलता भी प्राप्त हुई। एक बार नदी के पानी के प्रश्न पर शाक्यों और कोलियों के बीच तलवारें तन गईं। दीखने लगा कि किसी भी प्रकार नरसंहार नहीं रोका जा सकेगा। परन्तु बुद्ध के व्यक्तित्व ने चमत्कार कर दिखाया; जो सेनाएँ एक दूसरे का सिर काटने के लिए तैयार खड़ी थीं, वे एक दूसरे से गले मिलने लगीं!

इस घटना के कुछ दिन पश्चात् ही बुद्ध के पिता राजा शुद्धोदन की मृत्यु हो गई। राजा की मृत्यु के पश्चात् सौतेली मा गौतमी ने पुत्र बुद्ध से अनुरोध किया कि वह उसे अपनी शिष्या बना लें। किंतु बुद्ध इस अनुरोध को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। उनका मत था कि "सबको संघ में शामिल होने की आवश्यकता नहीं। अपनी-अपनी जगह पर रहकर भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। आत्मशुद्धि के लिए संघ में आना आवश्यक नहीं। अब तक हमने स्त्रियों को संघ में बिलकुल नहीं लिया है।" परन्तु बुद्ध के परम शिष्य आनंद ने स्त्रियों को संघ में सम्मिलित किए जाने का आग्रह जारी रखा, जिसे अन्त में बुद्ध को स्वीकार करना पड़ा। गौतमी प्रथम भिक्षुणी बनी। स्त्रियों का संघ में सम्मिलित किया जाना यद्यपि बुद्ध ने स्वीकृत कर लिया, तथापि उसके दुष्परिणामों से एक क्षण भी वह अनवगत न रहे। उन्होंने निज अन्तर की व्यथा को स्पष्ट करते हुए शिष्य आनन्द से कहा—"आनन्द, स्त्रियों को शामिल न करते तो संघ सहस्रों वर्ष चलता, किंतु अब वह केवल ५०० वर्ष ही चल सकेगा।" बौद्ध धर्म का इतिहास बुद्ध की इस भविष्यवाणी को अक्षरशः प्रमाणित करता है; कारण, आगे चलकर हजारों भिक्खु-भिक्खुनियों से भरे बौद्ध विहार धर्म के उपहासालय बन गए!

सारनाथ से प्राप्त भगवान् बुद्ध की इस कलापूर्ण प्रतिमा में उसी स्थान में उनके द्वारा प्रथम धर्मोपदेश की झाँकी प्रत्याङ्कित है। उनका यह धर्मोपदेश 'धर्मचक्रप्रवर्त्तन' के नाम से प्रख्यात है।

विरोधियों की कुचेष्टाएँ

बुद्ध का पुण्यपावन चरित्र इतना प्रभावशाली था कि शत्रु भी विद्वेष का भाव त्यागकर नतमस्तक हो जाते थे। शान्ति, करुणा, मैत्री, अहिंसा के इस महान् प्रचारक और उपदेशक के विरुद्ध रूढ़िवादियों ने न जाने कितने बार षड्यंत्र करने का प्रयास किया, कितनी ही दुश्चरित्र स्त्रियों द्वारा उनके निष्कलंक चरित्र पर कीचड़ उछालने की चेष्टाएँ कीं, किंतु परिणाम वही हुआ जो सूर्य पर थूकने का होता है। जब बुद्ध ७२ वर्ष के थे, तब पितृहंता मगधराज अजातशत्रु ने भिक्षु देवदत्त के साथ षड्यंत्र कर बुद्ध के प्राण लेने की कुयोजना बनाई। पहले बड़ा भारी पत्थर उन पर गिराया गया; तब मत्त हाथी उन्हें कुचलने के लिए छोड़ा गया। परन्तु बुद्ध का बाल भी बाँका न हो सका! हाथी ने तो बुद्ध के समक्ष झुककर प्रणाम किया। यह सब चमत्कार देखकर अजातशत्रु आश्चर्यचकित रह गया! उसने बुद्ध की शरण ली और देवदत्त को अपने दरबार से निकाल दिया। देवदत्त ने अलग से नया संघ स्थापित करने का प्रयत्न किया, किंतु इसी बीच मुँह से खून गिरने के कारण उसकी मृत्यु हो गई।

मृत्यु से दो वर्ष पूर्व बुद्ध को अतीव आन्तरिक वेदना का सामना करना पड़ा। कोसल के राजा प्रसेनजित की शाक्य रानी के पुत्र विडूडभ का ननिहाल में नीच कुल में उत्पन्न होने के कारण अपमान किया गया। विडूडभ ने इस अपमान का प्रतिशोध लेने का निश्चय कर लिया और पिता की मृत्यु के पश्चात् उसने समस्त शाक्य जाति को तलवार के घाट उतार दिया! इस प्रकार निज कुल का विनाश निश्चय ही बुद्ध के लिए एक असह्य दुर्घटना रही होगी। परन्तु फिर भी बुद्ध वेदना का असह्य भार संभाले घूम-घूम

कर जन-जन को शान्ति, करुणा, विश्वबन्धुत्व, प्रेम और पवित्रता का उपदेश देते रहे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आम्रपाली का उद्धार

बुद्ध के लिए न कोई बड़ा था और न कोई छोटा, न कोई पापी था और न कोई अपवित्र। एक बार वह घूमते-घूमते वैशाली पहुँचे। यहां की प्रसिद्ध नर्तकी आम्रपाली उनके दर्शन करने आई। शिष्यों ने उसे बाहर ही रोक लिया। किन्तु जब आम्रपाली के रोके जाने का समाचार बुद्ध को ज्ञात हुआ, तब उन्होंने शिष्यों को आदेश दिया--"उसे अन्दर ले आओ। तथागत के पास कोई भेदभाव नहीं। हमारी दृष्टि में गरीब-अमीर, ब्राह्मण-शूद्र और धर्मोपदेशक-गणिका सब बराबर हैं। कोई भी तुच्छ नहीं।" गणिका आम्रपाली दुर्भावना लेकर बुद्ध के पास आई थी, किन्तु पद्मासन-सिद्ध बुद्ध के दर्शन कर और उनके मुख से "बहन बैठो" सुनकर उसके मन से क्षण मात्र में कलुष धुल गया। वह बुद्ध के चरणों में गिरकर क्षमा माँगने लगी। उदारचरित्र बुद्ध ने केवल इतना ही कहा--"क्षमा करने लायक आपने कोई अपराध नहीं किया। फिर क्षमा किसलिए? शान्त होइए।" बुद्ध की उदारता का यही अन्त नहीं हुआ। वह उसका आमंत्रण स्वीकार कर उसके घर भोजन करने गए। नगर के प्रतिष्ठित लोगों ने बुद्ध के इस कृत्य का विरोध किया, परन्तु समता के महान् उपासक के समक्ष भला उन विरोधों का क्या मूल्य था!

छोटे से छोटे प्राणी के प्रति भी बुद्ध के अन्तर में कितनी करुणा और दया विद्यमान थी, इसका अनुभव उनके द्वारा एक राजा से कहे गए इन शब्दों में हमें मिलता है:--"यदि बकरे के बच्चे की बलि चढ़ाने से तुम्हें स्वर्ग की प्राप्ति में सहायता मिलती है, तो निश्चित रूप में आदमी की बलि तुम्हारा अधिक कल्याण करेगी, अतः मेरी ही बलि चढ़ाओ।"

प्राणिमात्र के प्रति जिसके अन्तर में करुणा का इतना अगाध सागर लहराया है, उसकी महत्ता को कौन नाप सकता है!

महानिर्वाण

८० वर्ष की अवस्था में बुद्ध को अपना अन्त निकट दिखाई दिया। उन्होंने अपने परम प्रिय शिष्य आनंद को महानिर्वाण के काल का निर्देश किया। आनंद तथागत का निर्वाण-काल निकट जानकर व्याकुल हो उठा। उसकी व्याकुलता देखकर बुद्ध ने समझाया--"आनंद, इसमें रोने की कोई बात नहीं। इस संसार में सभी सजीव-निर्जीव वस्तुएँ नश्वर हैं। प्रत्येक क्षण उनमें परिवर्तन हो रहा है। पर्वत भी अणु-अणु में बदल रहे हैं। जन्म, विकास, ह्रास और विनाश अथवा मृत्यु के चक्र सबके लिए लागू हैं। रोग मृत्यु का कारण न होकर जन्म ही मृत्यु का कारण है। जन्म अर्थात् दुःख और मृत्यु अर्थात् दुःख। मैंने तुम्हें एक बात बताई--दुःख और उसका विनाश। हे आनंद, यह भी दुःख की ही दूसरी आवृत्ति है। जन्म-मरण ही इस संसार का सबसे बड़ा दुःख है। ज्ञानप्राप्ति और बोध ही इससे मुक्ति पाने का मार्ग है। पर यह बोध कैसे होगा? आनन्द, इस भव-सागर में तुम्हें ही स्वयं आश्रय-स्थान टापू बनना चाहिए। बाह्य आश्रय उपयोगी नहीं! आत्मा, धर्म और सत्य का आश्रय लो।"

भरहुत की बाड़ पर अंकित एक शिल्पचित्र, जिसमें श्रावस्ती के नगरसेठ द्वारा बौद्ध विहार के लिए जेतवन की खरीद के हेतु भूमि पर सुवर्ण-मुद्राएँ बिछाये जाने का दृश्य अंकित है।

चुंद नामक लोहार शिष्य द्वारा प्रदत्त 'सूकरमद्दव' खाने से बुद्ध को पेचिश हो गई। इसी रोगग्रस्त अवस्था में वह कुशीनगर पहुँचे। उनके आदेश से आनन्द ने दो शाल-वृक्षों के बीच वस्त्र बिछाया। बुद्ध सिंह की भाँति उस पर लेट गए। अन्तिम घड़ी उन्होंने एकत्रित सहस्रों भिक्षुओं को उपदेश देते हुए कहा--"भिक्षुओं, अब मुझे तुमसे और कुछ नहीं कहना है। केवल यही कहना है कि जो कुछ बना हुआ है, वह क्षय होगा। निर्वाण के लिए प्रमादरहित होकर अपने आप यत्न करो।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन शब्दों के साथ ही बुद्ध की आत्मा महानिर्वाण को प्राप्त हुई, जिसकी चर्चा करते हुए उन्होंने स्वयं कहा था--"निर्वाण अर्थात् एक ऐसा प्रांत, जहां न पृथ्वी है, न पानी है, न प्रकाश है, न वायु है, न आकाश है, न दीर्घ-काल है, न मान है, और न अज्ञान या शून्यता ही है; जहाँ पर सूर्य, चंद्र, ग्रह, तारे, इहलोक, परलोक, जन्म-मृत्यु कुछ नहीं है। वहाँ दुःख का अन्त है, अन्तिम सत्य और शाश्वति है। परन्तु निर्वाण अवर्णनीय है। जिसकी कल्पना हो सके, वह निर्वाण नहीं। निर्वाण कल्पनातीत है। इस प्रकार के परम सत्य के सम्बन्ध में मौन रहना ही अच्छा है।"

महान् देन

बुद्ध ने निर्वाण प्राप्त कर लिया, किंतु फिर भी बुद्ध नित्य हैं, क्योंकि उन्होंने जिस मार्ग को प्रकाशित किया, जिन सिद्धान्तों का उपदेश किया, वे नित्य हैं, शाश्वत हैं, उनकी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होता। जिस प्रकार हिन्दू धर्म पुनर्जन्म पर विश्वास करता है, ठीक उसी प्रकार बौद्ध धर्म भी पुनर्जन्म का विश्वासी है। हिन्दू धर्म के ही समान बौद्ध ने विविधताओं के बीच एकता का दर्शन करने का प्रयास किया है।

बुद्ध का दर्शन तर्क-वितर्क का जंजाल न होकर यथार्थ जीवन का दर्शन है। वह न तो विलासपूर्ण जीवन की अनुमति प्रदान करता है और न शरीर को सुखाकर काँटा बना देने में ही उसे विश्वास है। वह संतुलित जीवन पर आस्था रखता है। यदि सूक्ष्मतापूर्वक विचार किया जाय, तो बुद्ध का जीवन और दर्शन उन सामाजिक रूढ़ियों और वितण्डावाद के विरुद्ध प्रबल क्रान्ति के सूचक हैं, जो अपने पाशों में जकड़कर समाज को निष्प्राण और गतिहीन बना देते हैं। जिस युग में बुद्ध अवतीर्ण हुए थे, यदि उसकी सामाजिक अवस्थाओं का विचार किया जाय, तो ज्ञात होगा कि पशु-बलि की प्रथा बहुत बढ़ गई थी, छुआछूत ने समाज को मरणासन्न कर दिया था और कर्मकाण्ड ने धर्म की आत्मा को ही तिरोहित कर दिया था। युग की पुकार थी किसी ऐसे महामानव के अवतार की, जो निज अन्तर की करुणा, दया, समता उड़ेलकर सम्पूर्ण प्राणिमात्र के जीवन को सरल बना देता। और लगता है, मानो गीता के भगवान् कृष्ण के इस आश्वासन को कि "जब-जब धर्म की हानि होती है और अधर्म की वृद्धि होती है, मैं संतों की रक्षा के लिए और असंतों के नाश के लिए जन्म ग्रहण करता हूँ" पूर्ण करते हुए ही बुद्ध इस भूमण्डल पर अवतीर्ण हुए थे।

आर्य परम्परा ही की उपज

कभी-कभी लोग बुद्ध को वैदिक धर्म का विरोधी स्वीकार कर लेते हैं। किंतु यह यथार्थ नहीं है। बुद्ध ने प्राचीन वैदिक धर्म का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया और उसके समस्त श्रेष्ठ तत्त्वों को ग्रहण किया। परन्तु कर्मकाण्ड के नाम पर धर्म के साथ जो वितण्डावाद सम्बद्ध हो गया था, उसे उन्होंने अस्वीकार किया, उस पर कठोर आघात किया। बुद्ध प्राचीन आर्य सभ्यता से किस सीमा तक स्वयं को सम्बद्ध रखे हुए थे, इसका परिज्ञान उनके ही शब्दों से हो सकता है--"भिक्षुओ, मैंने एक प्राचीन राह देखी है, एक ऐसा प्राचीन मार्ग देखा है, जो पुरातन काल से पूर्ण ज्ञानियों द्वारा अपनाया जाता रहा है······उसी मार्ग पर मैं चला और उस पर चलते हुए मुझे कई तत्त्वों का रहस्य प्राप्त हुआ। वही मैंने भिक्षुओं, भिक्षुणियों, नर-नारियों, और दूसरे सर्व-साधारण अनुयायियों को बताया।"

यज्ञादि कर्मकाण्ड पर बुद्ध को अकारण ही अश्रद्धा नहीं हो गई थी। कर्मकाण्ड में उन्हें परपीड़न के दर्शन होते थे और वह किसी भी ऐसे कर्म को स्वीकार करने को तैयार नहीं थे, जो दूसरों को कष्ट पहुँचाए। एक बार कर्मकाण्ड के स्वीकार किए जाने की बात जब बुद्ध से कही गई, तो उन्होंने उत्तर दिया—"आप कहते हैं कि धर्म के नाम पर मैं अपने परिवार में प्रचलित वे यज्ञ-यज्ञादि व्रतोत्सव करूँ, जिनसे इच्छित फल प्राप्त होता है, तो मेरा कथन है कि मैं इन यज्ञों को नहीं मानता, क्योंकि मैं ऐसे सुख के लिए किंचित् भी चिंतित नहीं, जो दूसरे को दुःख देकर मिलता हो।"

कोई चैतन्य समाज किसी नवीन परिवर्तन या सुधार को अकस्मात् स्वीकार नहीं कर लेता। सर्वप्रथम वह उन सुधारों अथवा परिवर्तनों को सत्य की कसौटी पर कसता है और प्रामाणिक सिद्ध होने पर ही उन्हें अंगीकार करता है। बुद्ध के सिद्धान्तों को भी समाज ने अपने मापदण्डों से नापने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी; अनेक वर्गों द्वारा उनका घोर विरोध भी हुआ। परन्तु धीरे-धीरे बुद्ध के सिद्धान्तों की शाश्वतता सिद्ध हो गई, और समस्त समाज ने उनके मार्ग में पलक-पाँवड़े बिछा दिए। महाकवि जयदेव के 'गीत-गोविंद' के इन शब्दों में तो समाज ने अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा बुद्ध के चरणों में उड़ेल दी--"श्रुतियों ने जिस यज्ञविधि को बताया, जिसमें पशुघात होता था, ओ सदय-हृदय, तुमने उसकी निन्दा की! ओ केशव, जो तुम अब बुद्ध के रूप में अवतरित हुए, तुम्हारी जय हो!" हिन्दू

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समाज किसी व्यक्ति का इससे अधिक क्या सम्मान कर सकता है कि वह उसे अपने प्रातःस्मरणीय दशावतारों में से एक स्वीकार कर ले ?

लोग कहते हैं कि भगवान् बुद्ध का धर्म अपनी जन्मभूमि से ही विदा हो गया है। परन्तु हमें लगता है कि बुद्ध के करुणा, शान्ति, विश्व-बंधुत्व, दया, प्रेम के सिद्धान्त भारतीय समाज के साथ इतने समरस हो गए हैं कि बुद्ध के धर्म के अलग से बने रहने की आवश्यकता ही नहीं। जिस प्रकार संकल्पित कार्य करने के पश्चात् भगवान् बुद्ध परमतत्व के साथ एकाकार हो गए, उसी प्रकार बौद्ध धर्म निज प्रणेता द्वारा निर्दिष्ट कार्य की पूर्ति कर समाज के साथ एकाकार हो गया। यदि आत्मा की महत्ता इसी में है कि वह परमात्मा के साथ एकरूप हो जाय, तो धर्म की महत्ता भी इसी में है कि वह समाजरूपी परमात्मा के साथ एकरूप बन जाय। यदि भगवान् बुद्ध अपने धर्म का अस्तित्व समाज से भिन्न रखना चाहते, तो उसका प्रचार जन-वाणी में क्यों करते? बुद्ध ऐसे स्वतंत्र मनुष्य का विकास चाहते थे, जो सब प्रकार की पूर्वमान्यताओं से विमुक्त स्वयं अपना दीपक (अत्तदीप) हो। संकुचित नियमों की सीमाओं में बुद्ध को सीमित न किया जाय, यही बुद्ध, उनकी आत्मा और उनके व्यक्तित्व के साथ न्याय करना होगा।

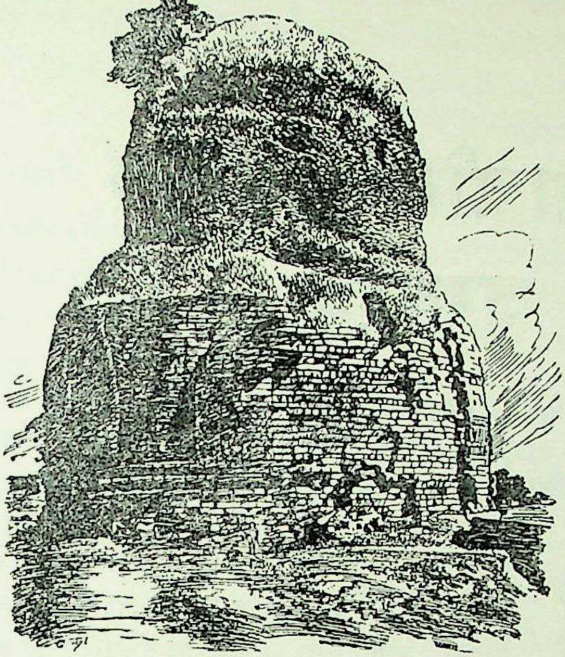

सारनाथ में बुद्ध के प्रथम धर्मोपदेश के पुण्य पावन स्थल पर सम्राट् अशोक द्वारा निर्मित स्तूप।

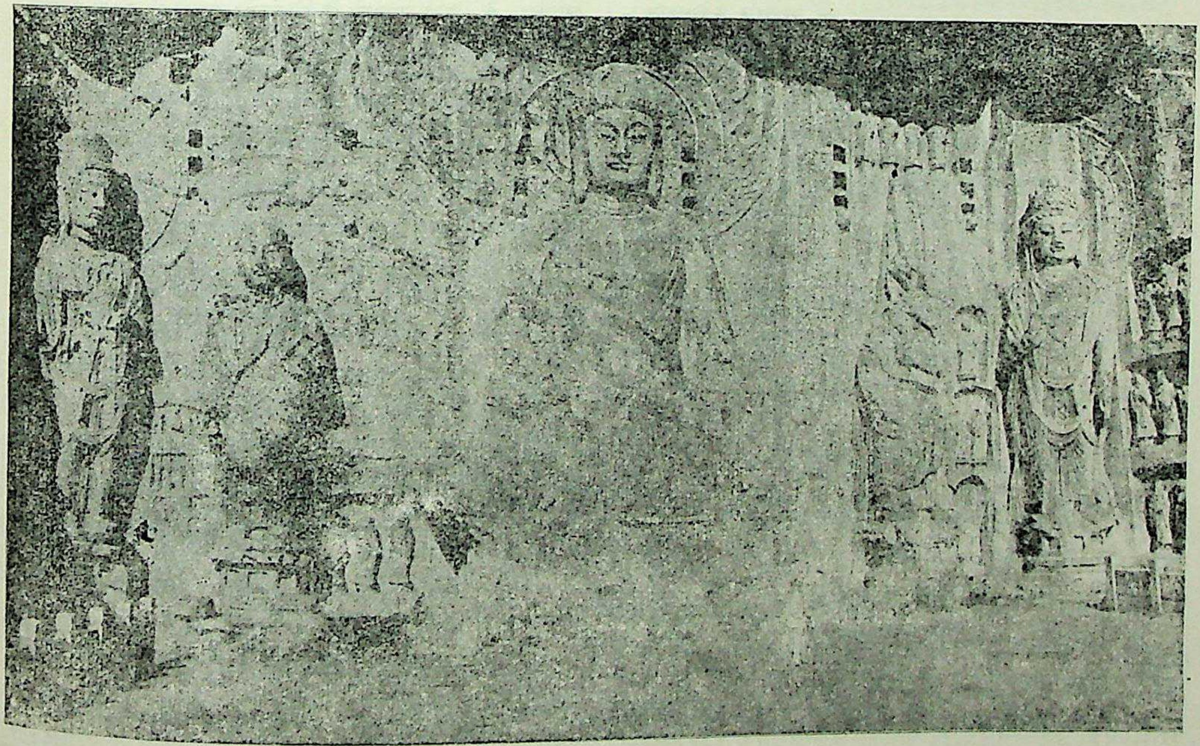

प्रस्तुत चित्र में चीन की सुप्रसिद्ध लुङ्मेन गुहा में विद्यमान सातवीं शताब्दी ईस्वी की कलापूर्ण बौद्ध प्रतिमाओं और मूर्तियों से सज्जित भव्य देवालय की एक झाँकी दिग्दर्शित है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ईरान के प्राचीन शिक्षागुरु :: महात्मा जरथुश्त्र

प्राचीन ईरान आर्य संस्कृति का महान् पीठस्थान रह चुका है। उसी के प्राङ्गण में आज से हजारों वर्ष पूर्व सत्य, दया, आदि दैवी आदर्शों का संदेश गुँजानेवाले एक दिव्य मनस्वी का आविर्भाव हुआ था, जिनका कि परिचय इस प्रकरण में दिया जा रहा है।

आज से कई हजार वर्ष पूर्व का ईरान देश। असाम्य, घृणा, तिरस्कार, अपमान आदि के दारुण दृश्य। प्रेम, दया, करुणा और उदारता के पुनीत आदर्शों के बजाय स्वेच्छाचारिता, उद्दण्डता और स्वार्थपरता का ही आतंक। जनता निरापद नहीं। शासक भी सशंक। चारों ओर अराजकता का ही निविड़तम साम्राज्य।

इस घने अंधकार के बीच अचानक एक आलोक दिखाई दिया। वर्षा की पूर्वसूचना लिए अत्याचारों के इस घटाटोप में मानो एकाएक बिजली कौंध उठी। लोगों की प्यासी किंतु विस्मित-सी आखें एकबारगी ही उस ओर जा अटकीं। भीषण गरमी के बाद मानो शीतल बूंदा-बांदी होने का उन्हें आभास मिला।

जन्म और बचपन

अराजकता के इस वातावरण में, स्वार्थियों के इस जमघट में भी, मानो रावण की लंका में विभीषण की तरह टिके हुए एक आदर्श दम्पति स्नेह-पाश में बद्ध एवं दुनियाई हलचलों से तटस्थ ज्यों-त्यों अपना जीवनयापन कर रहे थे। ईश्वरनिष्ठा उनका धर्म, दया और उदारता उनका मूलमंत्र, एवं स्वाध्याय तथा प्रेममय जीवन ही उनका आदर्श था। असत्य, अधर्म और कुत्सित पापाचारों की गली में भी इनके जीवन का पुनीत छकड़ा जैसे-तैसे डगर-मगर घिसटता चला जा रहा था। परमात्मा की कैसी विचित्र लीला थी कि इन्हीं के घर में उस नूतन प्रदीप की लौ प्रकट हुई, जिससे कालान्तर में सारा ईरान जगमगा उठा! एक तेजस्वी बालक ने उनके घर में जन्म लिया। कहते हैं, बालक जब मा के गर्भ में था, उसी समय राज-ज्योतिषियों ने घोषणा की कि वह शासकों का शत्रु होगा, उसके जन्म के साथ ही उनका विनाश जुड़ा हुआ है। इस भविष्यवाणी के परिणामस्वरूप अराजकता के उस जमाने में निरंकुश हाथों से जिस व्यवहार की अपेक्षा की जा सकती थी, वही होकर रहा। गर्भ ही में बालक के प्राण हरण कर लेने के लिए भरसक प्रयत्न किए जाने लगे। पर गर्भिणी माता जैसे-तैसे, अपने शिशु का स्नेह लिए, प्राण बचाकर मैके भाग गई और वहीं एक स्वर्गीय हँसी लिए हुए उस बालक ने इस जगती में पदार्पण किया। तत्कालीन रीतियों के अनुसार उसके संस्कार किए गए और एक पूर्वज वीर के आधार पर उसका नाम 'स्पितमा' रखा गया।

किन्तु मुसीबतों ने यहाँ भी पीछा न छोड़ा। बालक के प्राणों का सौदा होने लगा। उसे चुराया गया। उसे मारने की तरह-तरह की कोशिशें की गईं। परंतु जिसकी भाग्य-रेखा में अपने देश का अंधकार दूर करने का श्रेय अंकित था, उसे कौन असमय ही यों मिटा सकता था? वह सब आपदाओं की खाइयों को लांघता गया।

बचपन ही में इस बालक ने जिस ईश्वर-प्रदत्त असाधारण प्रतिभा से अपने बौद्धिक विकास का परिचय दिया, उससे स्वयं उसके माता-पिता भी चकित थे। पिता ने बालक की विलक्षणता देखकर उसके पठन-पाठन का उत्तरदायित्व स्वयं अपने ऊपर ले लिया। किंतु स्पितमा दुनिया की नश्वरता,

दैवी गुणों की महत्ता और विश्व में फैले प्रचलित विश्वासों के सम्बन्ध में कभी-कभी ऐसे प्रश्न कर लिया करता कि सुविज्ञ पिता को भी उत्तर देने में ठिठकना पड़ता था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वैराग्य का उदय

एक के बाद एक पंद्रह वर्ष बीते और तत्कालीन प्रचलित प्रथा के अनुसार स्पितमा का विवाह भी हो गया। किंतु गृहस्थाश्रम के मायाजाल से वह शंकित हो उठा। उसका हृदय विचित्र-विचित्र प्रश्नों का क्रीड़ास्थल बन गया। एक ओर आंखों में गृहस्थाश्रम का लौकिक सुख, नव-वधू का स्नेह, और अपने आसपास फैला ऐश्वर्य से भरपूर वैभव था, तो दूसरी ओर दुखियों का कातर क्रन्दन उसे चौंका देता था। गृहस्थी के आकर्षक किंतु क्षणिक सुखों की भावनाओं और दया, प्रेम, उदारता, त्याग आदि स्वर्गीय आदर्शों के बीच उसके मन में घोर युद्ध छिड़ गया था। बड़ी उलझन थी। सांसारिक प्रलोभन और ऐहिक जीवन की सफलता के मायाजाल ने उसे अपनी परिधि में कसकर बांध रखने में कोई बात उठा नहीं रखी थी। उधर अज्ञात पारलौकिक शक्तियां भी उसकी आंखों में एक उज्ज्वल भविष्य चमका रही थीं। आखिर वैराग्य ने वैभव को विदाई दी और अपनी नवागत वधू से स्नेहपूर्वक विदा मांग युवा स्पितमा अनंत शांति की खोज में न जाने किस सुनसान में विलीन हो गया!

'स्पितमा' से जरथुश्त्र

साधना के सुरम्य प्रदेश से इस नवीन साधक को निर्वासित करने के लिए माया ने कोई बात न उठा रखी। उसे विश्व-साम्राज्य का प्रलोभन एवं इस अनुष्ठान में असफलता का भय दिखाया गया और मीठी-मीठी शब्दावलियों से उसे भ्रष्ट करने की अनेकों कोशिशें की गईं। लेकिन जो इन प्रलोभनों से ऊंचा उठ चुका था, जिसमें ज्ञान की अदम्य पिपासा जग चुकी थी और जिसने दुःख में सुख, त्याग में प्राप्ति और बलिदान में जीवन देखने में जीवन की सार्थकता समझी थी, उसे भला ये इंद्रधनुष-से क्षणिक रंगीन प्रलोभन कब तक अपने में लुभा रखने की चेष्टा करते! इनके लिए उसके पास एक ही उत्तर था—मेरा जीवन मेरा अपना नहीं है। मैं उसे दुखियों के चरणों में स्नेहपूर्वक समर्पित कर चुका हूं। मुझे अपने प्राणों की चिंता नहीं, मैं अपने कर्त्तव्य से विमुख नहीं हो सकता। यह ईश्वरीय आदेश है। मुझे उसके आदेशों को प्रतिष्ठित करना है।

ग्यारह वर्ष की घोर तपस्या ने जिस प्रकार राजकुमार सिद्धार्थ को गौतम से बुद्ध बना दिया था, उसी तरह पन्द्रह वर्षों की कठोर साधना ने इस राजवंशी को भी 'स्पितमा' से 'जरथुश्त्र' अथवा 'स्वर्णिम किरणोंवाला' बना दिया! इस कठोर साधना की स्वर्णिम रश्मियों में युवक स्पितमा का मुख प्रोद्भासित हो उठा था और उसकी प्रतिभा इस दिव्य प्रकाश से और भी अधिक दमक उठी थी।

इसी समय उसे अपने आसपास बिखरे हुए असाम्य का स्पष्ट चित्र दिखाई दिया। जिस ईश्वरीय आदेश की प्रतिष्ठा के लिए उसका जन्म हुआ था, उसकी सार्थकता के लिए प्रयत्न में विलम्ब उचित नहीं था। अतएव जंगलों के निर्जन प्रदेश को छोड़कर उसने फिर बस्ती का मार्ग पकड़ा। पंद्रह वर्ष के लम्बे संन्यास के बाद उसने फिर अपने कुटुम्ब में आश्रय लिया—इसलिए नहीं कि साधनामय जीवन में अब उसे विश्वास नहीं रह गया हो अथवा सांसारिक प्रलोभनों ने उसे ग्रस लिया हो; बल्कि इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए कि मनुष्य कौटुम्बिक जीवन व्यतीत करके भी दैवी आदर्शों को अपने में उतार सकता है। अतः पूर्ण उत्साह के साथ उसने अपना कार्यक्रम निश्चित कर अपने सिद्धान्तों का प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया।

पर जरथुश्त्र की बातें एकाएक नहीं ग्रहण कर ली गईं। उसे कई मुसीबतों का सामना करना पड़ा। परंतु विरोधों ने उसे निराश करने के बजाय प्रोत्साहन ही दिया। और फिर वह कोई नई बात भी तो नहीं कह रहा था! उसका उपदेश तो उसी सनातन सत्य पर आश्रित था, जो चिरकाल से मानवता के विकास में पूर्ण योग देता आ रहा था! केवल समाज के बंधन शिथिल हो चले थे, इसीलिए स्वेच्छाचारिता के इस युग में दैवी गुण अत्याचारों की पृष्ठभूमि में फेंक दिए गए थे। उन प्राचीन मानवीय आदर्शों की पुनः स्थापना ही जरथुश्त्र का लक्ष्य था।

विरोध और संघर्ष

वर्षों तक जरथुश्त्र को अपने एक भतीजे के सिवाय और कोई साथी न मिल सका। उस एकमात्र अनुयायी ने ही बुढ़ापे में सफेद बालों की तरह अपने गुरु का साथ निभाया। उसके अतिरिक्त ईरान से बाहर तो क्या, स्वयं ईरान ही में जरथुश्त्र को माननेवाला कोई नहीं था। वहां का शासकवर्ग तो यों ही उससे जला-भुना था, फिर तत्कालीन पंडित-वर्ग भी उससे कोई प्रसन्न रहा हो, यह बात भी नहीं थी। किंतु जरथुश्त्र इससे हताश नहीं हुआ। अपने सम्मुख वह एक

महान् उत्तरदायित्व देखता था और उसकी मान्यता थी कि यदि वह अपने सिद्धांतों के प्रति सच्चा है, तो दुनिया की कोई शक्ति उसके आदर्शों की उपेक्षा नहीं कर सकती।

समय आया और पड़ौसी बेक्ट्रिया राज्य के शासक विष्टास्प ने जरथुश्त्र के सिद्धान्तों के प्रति अपनी आस्था प्रकट की। उसके साथ ही उसके दो मन्त्री जामास्प और फ्रशाओष्ट्र भी जरथुश्त्र के अनुयायी बन गए। इस प्रकार जरथुश्त्र का मत पूर्वी ईरान का मान्य राजधर्म बन गया। तब तो जरथुश्त्र की ख्याति की मानो बाढ़-सी आ गई। उसके अनुयायियों की संख्या-वृद्धि से इस तथ्य का प्रमाण मिलता था कि लोगों में अपने प्राचीन विस्मृत आदर्शों को अपनाने के लिए पिपासा जग उठी थी। जरथुश्त्र के अनुयायियों की वृद्धि देखकर ईरान के निरंकुश शासक क्रुद्ध गए। उन्होंने जरथुश्त्र के मत के विनाश के लिए बेक्ट्रिया से युद्ध तक ठान दिया। किंतु सत्य का पक्ष सदैव विजयी होता है। कालान्तर में सारे ईरान को विवश होकर जरथुश्त्र के मत को स्वीकार करना पड़ा। अपने जीवनकाल ही में जन्मभूमि ईरान में अपने सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा होते देख जरथुश्त्र अपनी सफलता पर गद्‌गद हो गया। सम्राट् अशोक ने जिस तरह बाद में बौद्ध धर्म के प्रचार में उत्साहपूर्वक भाग लिया था, उसी तरह ईरानी सम्राटों ने भी जरथुश्त्र के उपदेशों का देश के कोने-कोने में प्रचार करने में कोई कसर न उठा रक्खी। कई वर्षों तक इस तरह मानव-धर्म की प्रतिष्ठा करते रहने के पश्चात् ईरान का यह 'स्वर्णिम प्रकाश-पुंज' अंत में कहीं अन्यत्र उगने के लिए इस संसार से विलुप्त हो गया।

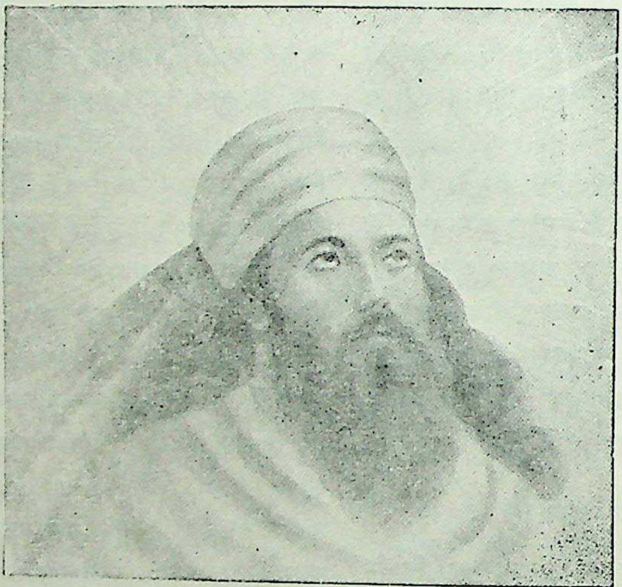

महात्मा जरथुश्त्र

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

प्राचीन ईरान का यह धर्म-संस्थापक कब हुआ, इसके संबंध में इतिहासकारों के भिन्न-भिन्न मत हैं। पाश्चात्य विद्वान आम तौर पर जरथुश्त्र की तिथि १००० ई० पू० मानते हैं। परन्तु अनेक प्राचीन ग्रीक लेखकों ने जरथुश्त्र को ईस्वी पूर्व कई हजार वर्ष का माना है। जो भी हो, इसमें संदेह नहीं कि संसार के इतिहास में जरथुश्त्र और उनके धर्मग्रंथों का नाम बहुत प्राचीन है। यह कहा जा सकता है कि ये उतने ही प्राचीन हैं, जितने कि ऋग्वेद के ऋषि, यद्यपि काल की लीला के फलस्वरूप जरथुश्त्र का मत बौद्ध धर्म की भाँति अपनी जन्मभूमि से निर्वासित होकर आज के दिन केवल भारत में आ बसे कुछ लाख पारसियों में ही बचा रह गया है। पश्चिमी एशिया में जब इस्लाम का प्रादुर्भाव हुआ, तो उसकी आँधी के सामने न ठहर सकने के कारण अधिकांश ईरानवासी भी मुसलमान हो गए, केवल कुछ दृढ़-व्रती ईरानी अपने धर्म की रक्षा के लिए स्वदेश से निर्वासन स्वीकार कर भारतभूमि में आ बसे। यह लगभग १००० वर्ष पूर्व की घटना है। उन्हीं की संतान, जो पारसी कहलाते हैं, आज इस देश में जरथुश्त्र के पुरातन पुनीत धर्म के प्रदीप को जीवित रक्खे हुए हैं। पश्चिमी भारत में उदवाड़ा नामक स्थान में इनका प्रधान देवालय है, जहाँ उनके द्वारा पूजी जानेवाली पवित्र अग्नि स्थापित है।

ईरानी और भारतीय संस्कृतियों में साम्य

प्राचीन ईरान और भारत की संस्कृति में बड़ी समानता है, यह बात दोनों संस्कृतियों के साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट हो जाती है। कहते हैं जब आदि आर्यों ने अपने मूल उद्‌गमस्थल से दक्षिण की तरफ कूच करना शुरू किया था, तब ईरान की सीमा पर आते-आते उनके दो विभाग हो गए थे। एक धारा ईरान की ओर वह चली थी, दूसरी ने भारत की शस्यश्यामला भूमि की ओर प्रयाण किया था। देश-काल के फेर से यद्यपि ईरानी और भारतीय संस्कृतियों में कुछ अन्तर पड़ गया है, किंतु वस्तुतः दोनों सभ्यताओं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का मूल स्रोत एक ही है। प्राचीन भारतीय आर्यों की ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की चातुर्वर्ण्य योजना से मिलती-जुलती वर्ण-व्यवस्था ईरानियों की धार्मिक व्यवस्था में भी पाई गई है, जो क्रमशः 'अथ्रवण', 'रथेष्टार', 'वास्ट्र-योश' तथा 'हुतोक्ष' शब्दों से परिलक्षित होती है। वे भी अग्नि, जल, वायु, इंद्र आदि देवताओं के पूजक थे। उनकी भाषा वैदिक संस्कृति से बहुत-कुछ मिलती है। उनका धर्म 'यस्न' नामक ग्रंथ-संग्रह में लेखबद्ध है। इसके ७२ 'हास' या भाग हैं। इन्हीं में जरथुश्त्र की 'गाथा' हैं, जो पाँच हैं—अहुनवैती, उष्तवैती, स्पेन्तामैन्यु, योहू-क्षत्र और वहिश्तोइश्ती। इन्हीं पाँच ग्रंथों में जरथुश्त्र की सारी शिक्षा भरी हुई है। जैसी झाँकी ऋग्वेद की ऋचाओं में दिखाई देती है, वैसी ही कहीं-कहीं 'अवेस्ता' (ईरानियों के सबसे महत्वपूर्ण धार्मिक ग्रंथ) में भी मिलती है। परमपिता को वहाँ 'अहुर' की संज्ञा प्रदान की गई है। तात्पर्य यह कि वैदिक धर्म में पाई जानेवाली मुख्य-मुख्य विशेषताओं का प्रयोग प्राचीन ईरानी धर्म-व्यवस्था में भी होता था!

हम ईरानी धर्म की बारीकियों में जान-बूझकर नहीं घुसना चाहते। यह हमारा लक्ष्य नहीं। मोटे रूप में हम आपके सम्मुख उसके सिद्धान्तों को प्रकट कर देना चाहते हैं।

प्राचीन ईरानी धर्म के मूल सिद्धान्त

जरथुश्त्र द्वारा प्रतिपादित धर्म भारतीय 'अद्वैतवाद' से बहुत-कुछ मिलता है। हमारे 'निर्गुण' की कल्पना उनके इस अद्वैत में भली भाँति स्पष्ट है। यद्यपि 'अहुर मजदा' के साथ ईश्वर के छः अन्य रूपों की भी कल्पना है, किंतु वे 'एक' ही के भिन्न रूप हैं, यह भी स्पष्ट है। देवी गुणों की सम्यक् प्रतीक सप्त शक्तियाँ हैं। जरथुश्त्र ने संसार की उत्पत्ति इन्हीं शक्तियों द्वारा स्वीकार की है। 'अग्नि' (आतर) की पूजा ईरानियों में सबसे अधिक पवित्र मानी गई है। संभवतः ज्ञान के प्रकाश का प्रतीक मानकर ही अग्नि की पूजा को महत्व प्रदान किया गया हो।

ईरानियों की प्राचीन धार्मिक पुस्तकों में कहीं-कहीं बड़ा सुन्दर और मनोरंजक दार्शनिक विवेचन मिलता है। 'गाथा अहुनवैती' इसी तरह की एक धार्मिक पुस्तक है, जिसमें सत् तथा असत् का गंभीर विवेचन किया गया है। जरथुश्त्र के दार्शनिक सिद्धान्त मुख्यतः इसी में संकलित हैं। सत्-असत् का विवेचन करते हुए यह बताया गया है कि जीवन में इन दोनों परस्पर विरोधी शक्तियों का क्या महत्व है। एक से दूसरे का ज्ञान संभव है। असत् की उपस्थिति से ही सत् का मूल्य है। यदि विचारपूर्वक देखा जाय, तो यह स्पष्ट होते देर न लगेगी कि परस्पर-विरोधी वस्तुओं से ही किसी वस्तु का मूल्यांकन उचित रीति से हो सकता है। मृत्यु एक भयानक सत्य है, इसीलिए जीवन की लालसा अधिक जागरूक है। फूल के क्षणिक सौन्दर्य की भावना में ही उसके उपयोग कर लेने की सार्थकता निहित है। अभावों से ही प्रायः भावों की सृष्टि होती है। जीवन में सुख जितना बड़ा सत्य है, दुखः उससे कम बड़ा सत्य नहीं। वस्तुएं क्षणिक हैं, इसीलिए वे आनंदप्रद भी हैं, अन्यथा अपरिवर्त्तनशीलता तो थका देनेवाली चीज है। जरथुश्त्र ने इस महान् सत्य को बखूबी समझा था। सांख्य के 'पुरुष' और 'प्रकृति' की धारणाओं की तरह उन्होंने संसार के विकास के लिए सत् और असत् की विद्यमानता आवश्यक समझी। जरथुश्त्र के अनुसार अभाव भी जीवन में उतने ही वास्तविक हैं, जितने कि भाव!

भारत के प्राचीन ऋषि-महर्षियों ने ईश्वर-प्राप्ति के तीन प्रमुख साधन बताए हैं—एक ज्ञान द्वारा, दूसरा भक्ति द्वारा और तीसरा कर्म द्वारा। इन सबमें निष्काम भाव की प्रधानता पर जोर दिया गया है। इन तीनों में से जरथुश्त्र ने कर्म का मार्ग अपने लिए चुना और उसे गीता के 'कर्मण्येवाधिकारस्ते माफलेषु कदाचन' में निहित सिद्धान्त की ठोस नींव पर आश्रित कर दिया। निःस्वार्थ सेवा, परोपकार, दया, प्रेम, त्याग, उदारता आदि दैवी गुणों से सम्पन्न व्यक्ति ही मनुष्य कहलाने का अधिकारी है। मुसीबत में पीड़ित की सहायता से बढ़कर दूसरा पुण्य-कार्य नहीं हो सकता। परस्पर सहानुभूति की भावना ही मानवता के विकास के लिए सबसे महान् साधन है।

जीवन के इन आदर्शों का मन, वचन और कर्म से सचाई के साथ पालन करना प्रत्येक के लिए आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। सत्य-भाषण और सत्य-आचरण की समता दुनिया का कोई ऐश्वर्य नहीं कर सकता। किंतु जहाँ सत्य-भाषण पर इस तरह जोर दिया गया है, वहाँ कटु सत्य का निषेध भी है। किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि असत्य का प्रयोग क्षम्य है। ठीक इसी तरह के विचार मनु-स्मृति में भी पाए जाते हैं। भावों की यह एकरूपता कैसे संभव हो सकी, यह विवादग्रस्त उलझन है। ये वही महान् सत्य है, जिनका अनुभव सभी स्थानों में महापुरुषों द्वारा संभव हुआ।

जरथुश्त्र का धर्म भारतीय कर्मयोग का रूपान्तर है। एक वाक्य में इसका सार यों अंकित किया जा सकता है कि सुख का उद्गम वहीं है, जहाँ से मनुष्य की सहानुभूति का स्रोत अन्य के लिए उमड़ पड़ता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय ज्ञान-गंगा के भगीरथ :: महर्षि वेदव्यास

भारतीय संस्कृति के प्रकाशस्तंभों में महाभारत और पुराणों के रचयिता तथा वेदों के संकलनकर्त्ता महर्षि वेदव्यास का स्थान अद्वितीय है। भारतीय ज्ञान-निधि का एक अतुलनीय अंश इस महापुरुष की ही देन है। व्यास हमारे वाङ्मय के तो कर्णधार हैं ही, साथ ही विश्व-वाङ्मय में भी उनका स्थान बेजोड़ है।

दव्यास भारतीय ज्ञान-गंगा के भगीरथ हैं। जिस प्रकार इस देवनिर्मित देश को किसी पुरायुग में भगीरथ ने अपने उग्र तप से गंगावतरण के द्वारा पवित्र किया था, उसी प्रकार पुराण-मुनि वेदव्यास ने भारतीय लोक-साहित्य के आदि युग में हिमालय के बदरिकाश्रम में अखण्ड समाधि लगाकर अध्यात्म, धर्मनीति और पुराण की त्रिपथगा गंगा का पहले अपनी आत्मा में साक्षात्कार किया और फिर साहित्यिक साधना के द्वारा देश के आर्य वाङ्मय को उससे पवित्र बनाया। ज्ञानरूपी हिमवान् के उच्च शिखरों पर बहनेवाले दिव्य जलों को मानो वेदव्यास भूतल पर ले आए। उन्होंने लोक-साहित्य को वेग की प्रेरणा दी। उनके द्वारा पूर्वजों के ज्ञान और चरित्रों से गुम्फित सरस्वती लोक के कंठ में आ विराजी।

जिस प्रकार भारतवर्ष की प्राकृतिक सम्पदा का अपरिमित विस्तार है, उसी प्रकार कालक्रम से वेदव्यास की साहित्यिक सृष्टि भी लोक के देशव्यापी जीवन में अनन्त बनकर समा गई है। एक प्रकार से सारे राष्ट्र का जीवन ही आज व्यास-रूपी महान् वट-वृक्ष की छाया के आश्रय में आ गया है। व्यास भारतवर्षीय ज्ञान के सर्वोत्तम प्रतिनिधि बन गए हैं। यदि भारतीय ज्ञान की उपमा एक ऐसे रत्न से दी जाय, जिसकी चमक के सहस्रों पहलू हों, तो व्यास की शत-साहस्री संहिता पूरी तरह से उस महार्घ मणि का स्थान ले सकती है। जैसे भगवान समुद्र और हिमवान् गिरि दोनों रत्नों की खान हैं, वैसे ही 'भारत' भी रत्नों से सम्पूर्ण है।* व्यास की प्रतिभा की स्तुति में इससे अधिक और क्या कहा जा सकता था—

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्॥

(आदिपर्व ५६।३३)

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक जीवन के चार पुरुषार्थों से सम्बन्ध रखनेवाला जो कुछ ज्ञान महाभारत में है, वही दूसरी जगह है; जो यहाँ नहीं है, वह कहीं और भी नहीं मिलेगा।

जीवन चरित्र

पुराविदों के प्रयत्न करने पर भी व्यास हमारे ऐतिहासिक तिथिक्रम के शिकंजे में पूरी तरह नहीं बाँधे जा सके। विक्रम से तीस शताब्दी पूर्व से लेकर पन्द्रह शताब्दी पूर्व तक के किसी युग में हमारे व्यास का उदय हुआ। पुराणों के अनुसार ब्रह्मा से लेकर कृष्ण द्वैपायन तक अट्ठाइस व्यासों की परम्परा मिलती है। ये मुख्यतः पुराणों के प्रवचनकर्ता रहे होंगे। पर जब तक सब पुराणों के सुसमीक्षित संस्करण तैयार न हो जाएँ, तब तक इस अनुश्रुति का पूरा मूल्य नहीं आंका जा सकता। हाँ, जय नामक उत्तम

*यथा समुद्रो भगवान्यथा हिमवान् गिरिः।
ख्यातावुभौ रत्ननिधी तथा भारतमुच्यते॥
(आदिपर्व ५६।२७, सुकठणकर संस्करण)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इतिहास के रचनेवाले अमितौजा महामुनि व्यास, जिनका नाम अट्ठाइस व्यासों के अन्त में आता है, अवश्य ही हमारे चिरपरिचित वे पुराण मुनि हैं, जो कुरु-पाण्डव युग में इस पृथिवी पर बदरिकाश्रम और हस्तिनापुर के बीच में आते-जाते थे। हिमालय के रम्य शिखर पर जहाँ नर-नारायण नामक दो पर्वत हैं, वहाँ भागीरथी के समीप विशाला बदरी नामक स्थान में व्यास ने अपना आश्रम बनाया था। आज भी बदरीनारायण के इस प्रदेश के दर्शन के लिए प्रति वर्ष सहस्रों यात्री जाते हैं। विशाला बदरी के समीप ही आकाश-गंगा है, जहाँ व्यास का चंक्रमण (घूमने का) स्थान था। यह स्थान हरद्वार से लगभग एक मास की पैदल यात्रा के बाद आता है। उसी हिमवत् पृष्ठ पर व्यास का आश्रम था, जिसके कण-कण में दिव्य तप की भावना ओत-प्रोत थी। वहाँ व्यास ने चार प्रमुख शिष्यों को वैदिक संहिताओं का अध्ययन कराया। पैल ने ऋग्वेद, वैशम्पायन ने यजुर्वेद, जैमिनि ने सामवेद और सुमन्तु ने अथर्ववेद की संहिताओं का पारायण किया। कहा जाता है कि व्यास ने स्वयं अत्यधिक परिश्रम से समस्त वैदिक मंत्रों का वर्गीकरण करके चार संहिताओं का विभाग किया और इस साहित्यिक साधना के कारण ही उनका नाम वेदव्यास प्रसिद्ध हुआ।* इसी आश्रम में कुरु-पांडवों के युद्ध की समाप्ति पर व्यास जी ने तीन वर्ष के संतत उत्थान के बाद महाभारत नामक श्रेष्ठ काव्यात्मक इतिहास की रचना की—

त्रिभिर्वर्षैः सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनो मुनिः ।
महाभारतमाख्यानं कृतवानिदमुत्तमम् ॥
(आदि पर्व ५६।३२)

यह महाभारत पांचवां वेद कहलाता है और इसे व्यास ने अपने पांचवें शिष्य रोमहर्षण को पढ़ाया था। इसका एक नाम कार्ष्ण वेद भी है। वस्तुतः व्यास का जन्म-नाम कृष्ण था। महाभारत की राजनीति के युग में दो कृष्ण प्रसिद्ध हुए—एक वासुदेव कृष्ण और दूसरे द्वैपायन कृष्ण। यमुना नदी के एक द्वीप में जन्म होने के कारण ये द्वैपायन कहलाए। चेदि देश के राजा वसु उपरिचर के वीर्य से हस्तिनापुर के पास, जहाँ एक टापू था, सत्यवती का जन्म हुआ। जन्मकाल से ही यमुनातीरवासी दाशराज ने उसका पालन-पोषण किया था। सत्यवती नामक यह कन्या यमुना के पार नाव चलाती हुई प्रथम यौवन के समय योगी पराशर मुनि के संयोग से व्यास की माता बनी। इसी सत्यवती के साथ आगे चलकर राजा शान्तनु ने विवाह किया। व्यास की माता सत्यवती गंगापुत्र भीष्म की सौतेली माँ थी, अतएव व्यास और पितामह भीष्म का सम्बन्ध अत्यन्त निकट का था। सत्यवती के पुत्र विचित्रवीर्य निस्सन्तान ही मृत्यु को प्राप्त हुए। उनके बाद जब कुरुकुल अनपत्यता के कारण डूबने लगा, तब अपनी माता सत्यवती के कहने को मानकर व्यास ने विचित्रवीर्य की स्त्रियों से धृतराष्ट्र और पाण्डु नामक दो पुत्रों को उत्पन्न किया। इसी अवसर पर एक दासी के गर्भ से विदुर उत्पन्न हुए। आम्बिकेय धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधनादि कौरव और छोटे भाई पाण्डु के पुत्र युधिष्ठिरादि पंच पांडव हुए। व्यासजी ही इस वंश के बीज वपन करनेवाले थे। अतएव जन्म-पर्यन्त हस्तिनापुर के राजनीतिक उतार-चढ़ाव के साथ उनका घनिष्ट सम्बन्ध बना रहा।

पुत्रों के जन्म के बाद व्यास ने हस्तिनापुर के पास सरस्वती नदी के किनारे भी एक आश्रम बना लिया था। वहाँ से वे हस्तिनापुर आते रहते थे। जिस समय पाण्डु की मृत्यु के बाद पाण्डव हस्तिनापुर आए और पाण्डु का दाह-संस्कार हुआ, उस समय व्यास वहाँ मौजूद थे। व्यास ने माता सत्यवती को सलाह दी कि अब तुम हस्तिनापुर छोड़कर वन में जाकर योग में चित्त लगाओ। कौरव-पाण्डवों की अस्त्र-परीक्षा के समय भी व्यास हस्तिनापुर में थे। उन्होंने वनवास के समय एकचक्रा नगरी में पाण्डवों से भेंट करके उन्हें द्रौपदी के स्वयंवर में सम्मिलित होने की सलाह दी। व्यासजी का अमोघ मंत्र गाढ़े वक्त में सदा पाण्डवों के साथ रहा। व्याह के पश्चात् जब पांडवों को राज्य मिला, तब भी राजसूय यज्ञ की सूझ व्यासजी से ही उनको प्राप्त हुई। इस यज्ञ में आपसी डाह के ऐसे बानक बने, जिनसे आगे युद्ध अवश्यम्भावी जंचने लगा। व्यासजी युधिष्ठिर को क्षत्रियों के भावी विनाश की सूचना देकर स्वयं कैलास पर्वत की यात्रा को चले गए।* इधर पांडवों ने जुए में हारकर फिर वन की राह ली। व्यासजी को जब यह समाचार मालूम हुआ, तब उन्होंने आकर धृतराष्ट्र को समझाया कि पाण्डवों के साथ न्याय करें, और स्वयं द्वैतवन में जाकर

---

*यो व्यस्य वेदांश्चतुरस्तपसा भगवानृषिः ।
लोके व्यासत्वमापेदे कार्ष्ण्यात्कृष्णत्वमेव च ॥
(आदि पर्व ६६।१५)

*स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि कैलासं पर्वतं प्रति ।
अप्रमत्तः स्थितो दान्तः पृथिवीं परिपालय ॥
(सभापर्व ४६।१७)

CC0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाण्डवों से मिले । वहाँ उन्होंने युधिष्ठिर को प्रतिस्मृति नामक सिद्ध विद्या दी और उन्हें दूसरी जगह जाकर रहने की सम्मति दी। पाण्डव द्वैतवन को छोड़कर सरस्वती के किनारे काम्यक-वन में रहने लगे। उनके वनवास के बारह वर्ष समाप्त हो रहे थे । व्यासजी फिर उनके पास पहुँचे और युधिष्ठिर को नीतिमार्ग और आत्मसंयम के धर्म का उपदेश देकर अपने आश्रम को चले गए । तेरहवें वर्ष के बाद जब युधिष्ठिर ने अपना राज्य वापस माँगा, तब व्यास ने फिर धृतराष्ट्र को समझाया । परन्तु काल के सामने बूढ़े और अन्धे राजा धृतराष्ट्र तथा मनीषी वेदव्यास का एक भी उपाय सफल न हुआ । व्यास अपने ज्ञान-चक्षु से काल की महिमा को जानते थे । काल की दुर्धर्ष सत्ता में विश्वास उनके दर्शन का अभिन्न अंग था, जिसे उन्होंने कई जगह महाभारत में प्रकट किया है––

कालमूलमिदं सर्वं जगद्बीजं धनञ्जय ।
काल एव समादत्ते पुनरेव यदृच्छया ।
स एव बलवान् भूत्वा पुनर्भवति दुर्बल: ।।
(मौसल पर्व ८।३३।३४)

काल सबकी जड़ है, काल संसार के उत्थान का बीज है । काल ही अपने वश में करके उसे हड़प लेता है । कभी काल बली रहता है, कभी वही निर्बल हो जाता है । समन्त-पञ्चक के सर्व क्षत्रियों का क्षय करनेवाले युद्ध को अपनी आँखों से देखकर वेदव्यास ने काल की महिमा के ध्यान से ही अपने चित्त को धैर्य दिया । जिस समय कुरुक्षेत्र में दोनों ओर से भारतीय सेनाएँ आ डटीं, तब भी व्यासजी ने धृतराष्ट्र को समझाकर युद्ध रोकना चाहा । पर उनकी एक न चली । युद्ध के दिनों में भी वह जब-तब अपने मंत्र से स्थिति को सँभालते रहे और युद्ध के अन्त में शोकमना धृतराष्ट्र को और युधिष्ठिर को समझा-बुझाकर धैर्य बंधाया। युधिष्ठिर को राज्य के लिए तैयार करके नीति, धर्म और अध्यात्म की शिक्षा के लिए भीष्म के पास भेजा और अश्व-मेध करने की प्रेरणा की । युद्ध के सोलह वर्ष बाद वह धृत-राष्ट्र से फिर हिमालय में जाकर मिले और तप करने की सलाह देकर अपने आश्रम को चले गए । जब सरस्वती नदी के तीर पर बसनेवाले आभीर गणों (हरियाने के दस्युओं) ने वृष्णि वंश की स्त्रियों को अर्जुन के देखते-देखते लूट लिया, तब शोक और अपमान से भग्न-हृदय अर्जुन अन्तिम बार व्यास के दर्शन को गए । व्यास ने उन्हें कालचक्र के उत्थान और पतन का उपदेश देकर विदा किया । घटनाओं के झंझा-वात में भी क्षोभरहित स्थिति के प्रतीक वेदव्यास हैं ।

वेदव्यास की रचनाएँ

व्यास को वेदान्तसूत्रों का कर्त्ता भी माना जाता है । वेदान्तसूत्रों का नाम भिक्षुसूत्र भी है । पाणिनि की अष्टा-ध्यायी से विदित होता है कि भिक्षुसूत्र के रचयिता पारा-शर्य थे । पराशर के पुत्र होने के कारण व्यास का ही एक नाम पाराशर्य था । बदरी आश्रम में रहने के कारण व्यास का दूसरा नाम बादरायण मुनि भी था और इसी कारण कभी-कभी वेदान्तसूत्रों को बादरायणसूत्र भी कहते हैं । पाणिनि के शास्त्र में जो ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है, उसको प्रामाणिक मानते हुए यह विश्वास करने के लिए पर्याप्त हेतु है कि वेदान्तसूत्रों की रचना वेदव्यास ने ही की हो । वेदान्तसूत्र उपनिषदों के अध्यात्मज्ञान का निचोड़ हैं । कहा जाता है कि वेदव्यास ने अपने पुत्र शुक को मोक्ष-शास्त्र का अध्ययन कराया । सम्भव है, बादरायण सूत्रों की रचना में यही हेतु रहा हो ।

परन्तु जो ग्रन्थराट् व्यास की कीर्ति का शुभ्र जयस्तम्भ है, वह महाभारत है । महाभारत में व्यास ने अपनी अमित बुद्धि से अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र और मोक्षशास्त्र को भारतीय कथा के साथ-साथ बड़े सुन्दर ढंग से सजाकर सदा के लिए आर्य-जाति के विस्तृत ज्ञान और लौकिक जीवन का रूप खड़ा कर दिया है—

अर्थशास्त्रमिदं पुण्यं धर्मशास्त्रमिदं परम् ।
मोक्षशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामित बुद्धिना ।।
(आदिपर्व ५६।२१)

महाभारत सच्चे अर्थों में प्राचीन भारतवर्ष का विश्व-कोश है । संसार के साहित्य में महाभारत एक दिग्गज ग्रंथ है । इसकी तुलना में यूनान के इलियड और ओडेसी अथवा आइसलैंड और स्कैंडिनेविया के प्राचीन एड्डा और सागा, जिनमें उत्तराखंड का बचा-खुचा गाथाशास्त्र सुरक्षित है, बहुत पीछे छूट जाते हैं । महाभारत जहाँ एक ओर प्राचीन नीति और धर्म का अक्षय भंडार है, वहीं दूसरी ओर इसमें भारतीय गाथाशास्त्र की भी अनन्त सामग्री है । महाभारत को वेदव्यास ने अतीत की घटनाओं के नीरस क्रोड़पत्र के रूप में नहीं रचा, अन्यथा वह अब से कहीं पहले अन्य देशों के भारी-भरकम ऐतिहासिक पोथों की तरह धूलि-धूसरित हो गया होता । महाभारत एक जीते-जागते चित्रपट के रूप में सदा हमारे सामने रहा है, जिसके अर्थ का व्याख्यान अनगिनत सूत अपने-अपने आसन से करते रहे हैं । आज भी व्यास-गद्दी का उत्तराधिकार भारत के अपने साहित्यिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय ज्ञान-गंगा के भगीरथ—महर्षि वेदव्यास

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जगत् में अक्षुण्ण बना हुआ है। आकाश में उड़नेवाले ज्ञान को पृथिवी के मानव की पहुँच में किस तरह लाया जा सकता है, इस प्रश्न का समाधान भारतवर्षीय व्यास-गद्दी है। पश्चिम को यह शिकायत है कि उसका नया ज्ञान विशेषज्ञों के हाथ में पड़कर लोक से दूर जा पड़ा है। जीवन-मरण एवं सृष्टि और प्रलय के सम्बन्ध में जो विज्ञान के संशोधन हैं, उनको जन-साधारण के जीवन में ढालने के साधन का विज्ञान के पास अभाव है। परन्तु भारतवर्ष में सार्वजनिक शिक्षा के चमत्कारी विधानों में व्यास-गद्दी से कही जानेवाली कथाओं के द्वारा विशेषज्ञ और लोक के बीच की खाई पर पुल बनाने का सफल प्रयास होता आया है। इसी कारण रामायण, महाभारत और पुराणों के महान् चरित्रों की अमर कथाएँ देश के कोने-कोने में फैली हुई हैं। अपने पूर्वपुरुषों के चरित्रों को सुनने की जो हमारे मन में स्वाभाविक उमंग है, वही हमारा सबसे उत्कट इतिहास-प्रेम है। जनमेजय के शब्दों में हम कह सकते हैं—

नहि तृप्यामि पूर्वेषां शृण्वानचरितं महत्।

(आदि० ५६।३)

"पूर्वपुरुषों के महान् चरित्र को सुनते-सुनते मैं कभी तृप्त नहीं होता।" उस स्वाभाविक कौतुक को तृप्त करने का राष्ट्रीय साधन महाभारत ग्रंथ था। पराक्रमी द्रोण, भीष्म, अर्जुन, भीम, कर्ण और दुर्योधन के महावीर्य भुजदंडों की शक्ति के जिस ओज को वेदव्यास ने अपने श्लोकों में भरा है, उससे अब भी हमारा वीर हृदय उछलने लगता है।

भारत और महाभारत

महाभारत को शत-साहस्री संहिता कहा गया है। हरिवंश को मिलाकर महाभारत के १८ पर्वों में एक लाख श्लोक होने का अनुमान किया जाता है। पर यह निश्चय है कि वेदव्यास के समय में इस ग्रंथ का यह वृहत् रूप न था। पाणिनि की अष्टाध्यायी के एक सूत्र (६।२।३८) में महाभारत नाम आता है। उससे पहले आश्वलायन गृह्यसूत्र में भारत और महाभारत दोनों का एक ही वाक्य में अलग-अलग उल्लेख है। वास्तविक कुरु-पाण्डवों का वीर-गाथा-ग्रन्थ भारत ही था, जिसमें चौबीस हजार श्लोक थे और इस कारण जिसका नाम 'चतुर्विंशति साहस्री भारत संहिता' प्रसिद्ध था। इसकी अन्तःसाक्षी स्वयं महाभारत में मौजूद है—

चतुर्विंशति साहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम्।
उपाख्यानैर्विना तावद् भारतं प्रोच्यते बुधैः॥

(आदि० १।६१)

व्यास का मूल भारत बिना उपाख्यानों के था, पर वर्तमान ग्रन्थ में सैकड़ों उपाख्यान यथास्थान पिरो दिए गए हैं। व्यास ने तीन वर्ष के संतत परिश्रम (उत्थान) से २४,००० श्लोकों में भरतवंश के इतिहास और युद्ध का मूल काव्य रचा। उसको रोमहर्षण सूत ने यथावत् पढ़ा। पुनः व्यास-शिष्य वैशम्पायन ने जनमेजय के यज्ञ में उसका पारायण किया। इस समय तक ग्रन्थ का रूप शुद्ध बना रहा। महाभारत का तीसरा संस्करण भार्गव-वंशी कुलपति शौनक के बारह वर्षों के यज्ञ में देखने में आता है। यहाँ वक्ता और श्रोता दोनों नैमिषारण्य की सघन छाया में शांति के साथ पर्याप्त अवकाश लेकर बैठे थे। इस समय भारत का उपबृंहण महाभारत के रूप में हो चुका था, चतुर्विंशति साहस्री संहिता बढ़कर शतसाहस्री बन गई थी। उसमें ययाति* और परशुराम जैसे बड़े-बड़े उपाख्यान स्वच्छन्दता से मिला लिए गए। बहुत-सी कथाएँ, जिन्हें हम बौद्ध जातकों तक में पाते हैं, लोक की चलती-फिरती सम्पति थीं, वे भी महाभारत में मिला ली गईं। अनुशासन पर्व की पुष्करहरण की कथा (अ० ९३-९४) और बिसजातक (सं० ४८८) एक ही हैं। अनागत विधाता आदि तीन मछलियों की कहानी या राजा ब्रह्मदत्त और पूजनी चिड़िया की बाल-कहानियाँ भी महाभारत के भीतर आ गईं। इसके अतिरिक्त शिव, विष्णु, सूर्य, देवी और गणपति की बढ़ती हुई भक्ति के आवेश में सम्प्रदायविदों ने महाभारत को अपनी कृपा का लक्ष्य बनाया। परन्तु इन सबसे बढ़कर अध्यात्म, धर्म और नीति के अनेक संवाद महाभारत में समय-समय पर मिलते गए। इन सब सम्मिश्रणों के कारण मूल ग्रन्थ का कायापलट हो गया। कुछ समय तक तो भारत और महाभारत का अस्तित्व अलग-अलग पहचानने में आता रहा, परन्तु जैसा स्वाभाविक था, आगे चलकर केवल महाभारत ही आर्य संस्कृति के सबसे महान् ज्ञान-विज्ञान-कोश के रूप में रह गया।

पूना-संस्करण

प्रश्न यह है कि क्या फिर मूल भारत ग्रन्थ को महाभारत में से अलग किया जा सकता है? क्या यह सम्भव है कि महाभारत के भीतर कालक्रम से जमी हुई विभिन्न

*व्याकरण-साहित्य में इन उपाख्यानों का उल्लेख 'यायात' 'आधिराम' नामों से किया गया है। (काशिका सूत्र ६।२।१०३)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साहित्यिक तहों को फिर से उलटकर हम कुछ उस अंश को हटा सकें, जिसके पीछे नवीन ने प्राचीन भाग को छिपा रक्खा है? यह प्रश्न हमारे राष्ट्रीय पाण्डित्य की कसौटी है। हर्ष की बात है कि यह भगीरथ कार्य पूना के 'भांडारकर प्राच्य विद्या इन्स्टीट्यूट' की तरफ से पिछले अनेक वर्षों से हो रहा है। महाभारत के इस संस्करण में जहाँ तक मानवी बुद्धि और परिश्रम के लिए सम्भव है, वहाँ तक महाभारत के उस मूल रूप का, जिसका पारायण उग्रश्रवा सूत ने शौनक के सत्र में किया था, उद्धार करने का प्रयत्न किया गया है। डा० सुक्ठणकर इस कार्य के प्राण रहे हैं। उन्होंने अपनी प्रखर प्रतिभा से कुछ-कुछ यह भी प्रयत्न किया है कि हम शौनक के संस्करण से भी पूर्व में हुए परिवर्धनों को अलग पहचान सकें। इस दिशा में उनका 'भृगु और भारत'* शीर्षक वृहत् निबन्ध स्तुत्य है। उससे यह ज्ञात होता है कि भृगुवंशी ब्राह्मणों के द्वारा किये गये सम्पादन के फलस्वरूप शताब्दियों में भारत को महाभारत का स्वरूप प्राप्त हुआ होगा। कुलपति शौनक स्वयं भार्गव थे। भरतवंश से भी पहले उनकी जिज्ञासा भार्गववंश की कथा के लिए प्रकट होती है—

तत्र वंशमहं पूर्वं श्रोतुमिच्छामि भार्गवम्।

भार्गव शौनक का यह पक्षपात समग्र ग्रन्थ पर पड़े हुए भार्गव प्रभाव का द्योतक मात्र है। और्वोपाख्यान (आदि), कार्तवीर्योपाख्यान (वन), अस्बोपाख्यान (उद्योग), विपुलोपाख्यान (शान्ति), उत्तंकोपाख्यान (अश्वमेध) का सम्बन्ध भार्गवों से है। आदि पर्व के पहले ५३ अध्याय, जिनमें पौलोम और पौष्य पर्व हैं, भार्गव कथाओं से सम्बन्ध रखते हैं। भरतवंश की कथा उसके बाद चली है। शान्ति और अनुशासन पर्वों में जो धर्म और नीतिपरक अंश हैं, वे भी भृगुओं की प्रेरणा के फल हैं। यह सत्य है कि मूल भारतसंहिता के उस शुद्ध रूप का, जिसमें उसका आविर्भाव हिमवत् पृष्ठ के बदरी वन में हुआ था, इस समय ठीक-ठीक उद्धार करने का दावा कोई नहीं कर सकता, पर फिर भी सहस्रों वर्षों की जमी हुई काई को हटाकर जितना भी परिष्कार किया जा सके श्रेयस्कर है। इस दृष्टि से पूना के भारत-चिन्तकों का कार्य राष्ट्रीय महत्व का है। महामति पुराणज्ञ डा० सुक्ठणकर इस कार्य में हमारे अर्वाचीन उग्रश्रवा हैं।

*भांडारकर इंस्टीट्यूट की मुखपत्रिका, भाग १८, पृ० १-७६

साहित्यिक महत्त्व

महाभारत संस्कृत-साहित्य का धुरंधर ग्रन्थ है। उसका साहित्यिक तेज सर्वातिशायी है। 'एड्डा' और 'सागाओं' के लिए प्रख्यात लेखक कारलाइल ने लिखा है कि वे इतनी महान् कृतियां हैं कि उन्हें किंचित् स्वल्प कर देने पर शेक्सपियर, दाँते और गेटे बन सकते हैं। यही बात हम महाभारत के लिए कह सकते हैं। भास, कालिदास, माघ, भारवि, हर्ष की साहित्यक कृतियां महाभारत के ही अल्प-विषयात्मक रूप हैं। यों भी महाभारत साहित्यिक शैलियों की खान है—उपाख्यान शैली, गल्प शैली, दर्शन और अध्यात्मनिरूपण की संवादात्मक शैली, प्रश्नोत्तर शैली (युधिष्ठिर-अजगर और युधिष्ठिर-यक्ष प्रश्न, वनपर्व अ० १८०-८१, अ० ३१३), केवल प्रश्नात्मक शैली (सभापर्व अ० ५, नारद प्रश्न मुख से राजधर्मानुशासन), नीति ग्रन्थात्मक शैली (विदुरनीति, उद्योग० अ० ३३-४०), स्तोत्र शैली*, सहस्रनाम शैली—इस प्रकार वर्तमान महाभारत में साहित्यिक पद्धति के अनेक बीज पाये जाते हैं।

व्यास और राष्ट्र

पर हमारे राष्ट्रीय अभ्युत्थान के लिये महाभारत का विशष महत्व यह है कि वह प्राचीन भूगोल, समाजशास्त्र, शासन-सम्बन्धी संस्था, नीति और धर्म के आदर्शों की खान है। वेद व्यास जिस भारत-राष्ट्र की उपासना करते थे, भविष्य का प्रत्येक भारतीय उसका स्वप्न देखेगा। उनका निम्नलिखित राष्ट्रगीत हमारे इतिहास का सनातन मंगलाचरण होगा—

अत्र ते कीर्तयिष्यामि वर्षं भारत भारतम्।
प्रियमिन्द्रस्य देवस्य मनोर्वैवस्वतस्य च॥
पृथोस्तु राजन्वैन्यस्य तथेक्ष्वाकोर्महात्मनः।
ययातेरम्बरीषस्य मान्धातुर्नहुषस्य च॥
तथैव मुचुकुन्दस्य शिबेरौशीनरस्य च।
ऋषभस्य तथैलस्य नृगस्य नृपतेस्तथा॥
कुशिकस्य च दुर्धर्ष गाधेश्चैव महात्मनः
सोमकस्य च दुर्धर्ष दिलीपस्य तथैव च॥

*जैसे महापुरुषस्तव (शान्ति० अ० ३३८), कृष्णनाम स्तुति (शा० अ० ४३), भगवन्माहात्म्य (अनु० अ० १५८), शतरुद्रिय (अनु० अ० १६१), भगवन्नाम निरुक्ति (शा० अ० ३४१) और कृष्णस्तवराज (शा० अ० ४७)। स्तोत्र और सहस्रनामों का संग्रह इन्हीं दो पर्वों में अधिक है। यह संदेहजनक है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्येषां च महाराज क्षत्रियाणां बलीयसाम् ।
सर्वेषामेव राजेन्द्र प्रियं भारत भारतम् ॥×

आओ, हे भारत ! अब मैं तुम्हें भारत देश का कीर्ति-गान सुनाता हूँ—वह भारत जो इन्द्रदेव को प्रिय है, जो मनु वैवस्वत, आदिराज पृथु वैन्य और महात्मा इक्ष्वाकु को प्यारा था; जो भारत ययाति, अम्बरीष, मान्धाता, नहुष, मुचुकुन्द और औशीनर शिबि को प्रिय था; ऋषभ, ऐल और नृग जिस भारत को प्यार करते थे; और जो भारत कुशिक, गाधि, सोमक, दिलीप और अनेकानेक वीर्य-शाली क्षत्रिय सम्राटों को प्यारा था। हे नरेन्द्र ! उस दिव्य देश की कीर्ति-कथा मैं तुम्हें सुनाऊँगा।

व्यास ने राष्ट्रीय राजनीति का जो आदर्श रक्खा है, वह मनु और वाल्मीकि से मिलता है। आगे के प्रकरणों में मनु और वाल्मीकि की राष्ट्र-कल्पना हम बताएँगे। वाल्मीकि के 'अराजक जनपद' गीत से मिलता-जुलता व्यास का 'यदि राजा न पालयेत्' (शान्ति० ६८।१-३०) गीत है। लोक में शान्ति की व्यवस्था राजा का सबसे प्रथम कर्त्तव्य है। धर्म की जड़ राजा की सुव्यवस्था के बल पर टिकी रहती है। यदि राजा न हो, तो दुष्टजन साधुओं को खा डालें, धर्म डूब जाय, वेद कहीं के न रहें, सारी प्रजा अन्धकार में विलीन हो जाय। *राष्ट्र के धर्मबन्ध शासन की सुव्यवस्था के अधीन हैं। व्यास के मत में बिना राजा का राष्ट्र मरा हुआ है--मृतं राष्ट्रमराजकम्। (वन० ३१३। ८४)

अराजक राष्ट्र मात्स्य न्याय का शिकार हो जाता है। (शा० १६-१७)। व्यास ने राजा और क्षत्रिय की परिभाषा दी है। जो लोकरंजन करता है वही राजा है (शा० ५६। ११), जो क्षत से बचाता है वही क्षत्रिय है (शा० २९। १३८)। इन्हीं आदर्शों को हमारे इतिहास के स्वर्णयुग में कालिदास ने दोहराया था। + भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा है कि राजा काल को बनाता है, या काल राजा को बनाता है, इसमें तुम कभी संशय मत करना, राजा ही काल को बनाता है—

कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा काल कारणम्।
इति ते संशयो माभूद्राजा कालस्य कारणम् ॥
(शा० ६९। ६)

जब राजा भली प्रकार दंडनीति का पालन करता है, तभी सतयुग आ जाता है। राजा का आसन राष्ट्र का ककुद् है। राजा की उस आदर्श आसन्दी की रक्षा में रह-कर प्रजा जिस धर्म का पालन करती है, उसका एक चतुर्थ अंश राजा को प्राप्त होता है। राजा को अपनी नीति में माली की तरह होना चाहिए, कोयला फूँकनेवाले आंगारिक की तरह नहीं। एक फूलों की चाह में वृक्षों को पोसता है, दूसरा अंगारों के लिए पेड़ों को फूंक डालता है। राजा का शरीर प्रजाएँ हैं। अपने आप को बचाने के लिए भी राजा को प्रजा की रक्षा करनी चाहिए। प्रजा का भी सर्वोत्तम शरीर राजा ही है। राजा को पुष्ट करके वे अपने आपको बढ़ाती हैं। जो राष्ट्र की कामना करते हैं, उनको सबसे पहले लोक की रक्षा करनी चाहिए। व्यास ने षोड़श राजीय पर्व में प्राचीन आर्य राजाओं के आदर्श का स्मरण दिलाया है। राम के राज्य में समय पर मेघ बरसते थे, और सदा सुभिक्ष रहता था। दिलीप के राज्य में स्वाध्याय घोष, टंकार घोष और दान के संकल्प का घोष, ये तीन शब्द बराबर सुनाई पड़ते थे। संक्षेप में वेदव्यास के मत के अनुसार लोक का सारा जीवन राजधर्म के आश्रित है, राजधर्म बिगड़ गया तो वेद, धर्म, वर्ण, आश्रम, त्याग, तप, विद्या, सब कुछ नष्ट हुआ समझना चाहिए (शान्ति पर्व ६३। २८-२९)—

मज्जेत् त्रयी दंडनीतौ हतायां सर्वे धर्माः प्रक्षयेवुर्विवृद्धाः।
सर्वे धर्माश्चाश्रमाणां हताः स्युः क्षात्रे त्यक्ते राजधर्मे पुराणे॥
सर्वे त्यागा राजधर्मेषु दृष्टाः सर्वाः दीक्षा राजधर्मेषु युक्ताः।
सर्वा विद्या राजधर्मेषु चोक्ताः सर्वे लोका राजधर्मे प्रविष्टाः॥

व्यास और धर्म

व्यास ने जो धर्म का स्वरूप रक्खा है, वह उनका सबसे महान् ऋषित्व या दर्शन है। वे धर्म को स्वर्ग-प्राप्ति कराने-वाले थोथे कर्मों का जंजाल नहीं मानते। उन्होंने अपने ध्यान से धर्म की एक नई परिभाषा, एक नये स्वरूप का अनुभव किया--

नमो धर्माय महते धर्मो धारयति प्रजाः।
(उद्योग० १३७। ६)

× भीष्मपर्व अ० ९, श्लो० ५-९। संजय धृतराष्ट्र से कह रहे हैं।

*राजमूलो महाप्राज्ञ धर्मो लोकस्य लक्ष्यते।
प्रजा राजभयादेव न खादन्ति परस्परम्॥
न योनिदोषो वर्तेत न कृषिर्न वणिक् पथः।
मज्जेद्धर्मस्त्रयी न स्याद्यदि राजा न पालयेत् ॥(शा०६८)

+क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः
क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः (रघुवंश २।५३)
तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृति रंजनात् (रघु० ४।१२)
अर्थात् रघु प्रकृतिरंजन के कारण सच्चे अर्थों में राजा कहलाए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यक्ति को, राष्ट्र को, जीवन को, संस्थाओं को, लोक और परलोक—सबको धारण करनेवाले जो शाश्वत सर्वोपरि नियम हैं, वे धर्म हैं—

धारणाद्धर्म इत्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः ।
यत्स्याद्धारण सयुक्तं स धर्म इत्युदाहृतः ।।

धर्म स्वर्ग से भी महान् है । लोकस्थिति का सनातन बीज धर्म है । इस दृष्टि से देखने पर धर्म गंगा के ओजस्वी प्रवाह की तरह जीवन के सुविस्तृत क्षेत्र को सिंचित और पवित्र करनेवाला अमृत बन जाता है । राजाओं की जय और पराजय आने-जानेवाली चीज है, जीवन में सुख और दुख भी सदा एक-से नहीं रहते, पर सम्पत्ति और विपत्ति में भी जो वस्तु एक-सी बनी रहती है वह धर्म है । व्यास ने महाभारत संहिता लिखने के बाद उसके अंत में अपने दृष्टिकोण और उद्देश्य का निचोड़ चार श्लोकों में दिया है, जिसे 'भारतसावित्री' कहते हैं । उसका अन्तिम श्लोक यह है—

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्
धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः ।
नित्यो धर्मः सुख दुःखे त्वनित्ये
जीवी नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ।।

अर्थात् काम से, भय से, लोभ से, यहाँ तक कि प्राणों के लिए भी धर्म को छोड़ना ठीक नहीं । क्योंकि धर्म नित्य है, सुख और दुःख क्षणिक हैं । इसी तरह जीव भी नित्य है, जन्म और मृत्यु अनित्य हैं । 'मैं भुजा उठाकर कह रहा हूँ पर कोई मेरी बात सुननेवाला ही नहीं है । धर्म से ही धन और काम मिलते हैं, उस धर्म का आश्रय क्यों नहीं लेते !' ये भारतसावित्री में व्यास के साक्षात् वचन हैं ।

मानव की महत्ता

यदि धर्म जीवन को धारण करनेवाला है और धर्म अच्छी चीज है, तो जीवन भी मूल्यवान् होना चाहिए । व्यास के धर्म में जीवन रोने-धोने या माया समझकर खोने की चीज नहीं । उनकी दृष्टि में यह लोक कर्मभूमि है, परलोक फलभूमि होगा । देवदूत ने मुग्दल से कहा—

कर्मभूमिरियं ब्रह्मन् फलभूमि रसो मता ।

(वन० २६१ । ३५)

वन में पाण्डवों के पास जाकर स्वयं व्यास ने यह मत रक्खा था । वे इस लोक में कर्मवाद को मानते हैं । उसके साथ दैववाद को मानते हैं और दोनों के ऊपर अध्यात्म ब्रह्म या आत्मतत्त्व में विश्वास रखते हैं । उन्होंने जो दार्शनिक मत रक्खा उसमें मनुष्य सबके केन्द्र में है । व्यास का यह श्लोक स्वर्ण के अक्षरों में टाँकने योग्य है—

गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि
नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित् ।

(शान्ति० १८० । १२)

अर्थात, यह रहस्य-ज्ञान तुमको बताता हूँ—मनुष्य से श्रेष्ठ अन्य कुछ नहीं । व्यास का यह मानव-केन्द्रिक मत हमारे अर्वाचीन ज्ञान-विज्ञान और सामाजिक अध्ययन में सर्वत्र व्याप्त होता जा रहा है ।

व्यास की परिभाषा के अनुसार कर्म मनुष्य की विशेषता है—

प्रकाशलक्षणा देवा मनुष्याः कर्मलक्षणाः ।

(अश्व० ४३ । २०)

कर्म करने से जो प्रकाश जीवन में आता है, उसी से मनुष्य देव बन जाता है । आत्माभिमान के साथ मनुष्य-शरीर रखने से ही सारे लाभ प्राप्त होते हैं ।

पाणिवाद

व्यास ने मानवी पुरुषार्थ की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हुए इन्द्र के मुख से पाणिवाद का व्याख्यान कराया है । जिनके पास हाथ हैं, वे क्या नहीं कर सकते ? जिनके हाथ हैं वे ही सिद्धार्थ हैं । जिनके हाथ हैं, उनकी मैं सबसे अधिक सराहना करता हूँ । जैसे तुम धन चाहा करते हो, वैसे मैं तो पाँच अँगुलियोंवाले हाथ चाहता हूँ । पाणिलाभ से बढ़कर और कोई लाभ नहीं । जैसा कर्म किया जाता है, वैसा ही लाभ मिलता है, यही शास्त्रों का निचोड़ है—

यथा कर्म तथा लाभ इति शास्त्रनिदर्शनम् ।

(शान्ति० २७६।२०)

किन्तु धनागम धर्म से होना चाहिए । व्यास जी के मन में धर्म का जो ऊँचा स्थान है, उसके अनुसार न केवल अर्थ वरन् काम और मोक्ष भी धर्म पर आश्रित हैं और यह राज्य भी धर्ममूलक है—

त्रिवर्गोऽयं धर्ममूलं नरेन्द्र राज्यञ्चेदं धर्ममूलं वदन्ति ।

(वन० ४।४)

व्यास की दृष्टि में लोक-संग्रह और लोक-धर्म बहुत

---

*अहो सिद्धार्थता तेषां येषां सन्तीह पाणयः।
अतीव स्पृहये तेषां येषां सन्तीह पाणयः ।।
पाणिमद्भ्यः स्पृहाऽस्माकं यथा तव धनस्य वै ।
न पाणिलाभादधिको लाभः कश्चन् विद्यते ।।
(शान्तिपर्व १८०।११-१२)

मूल्यवान् पदार्थ हैं। आजगर मुनि को 'लोकधर्मविधानवित्' अर्थात् लोक-धर्म के सिद्धान्त और संगठन का वेत्ता (शा० १७९।९) कहा गया है। जो व्यक्ति लोकपक्ष का इतना समर्थक हो, उसे गृहस्थ-धर्म का प्रशंसक होना ही चाहिए। व्यास के अनुसार धर्म के द्वारा प्रवृत्त गृहस्थ-आश्रम सब आश्रमों में तेजस्वी मार्ग है, वह पवित्र धर्म है जिसकी उपासना करनी चाहिए।*

व्यास और अध्यात्म

लोक, गार्हस्थ्य और मनुष्य के लिए जिस महापुरुष के मन में इतनी श्रद्धा है, जिसका दृष्टिकोण इन विषयों में इतना मंजा हुआ है, उसका अध्यात्मशास्त्र भी तदनुकूल ही मानव को साथ लेकर चलता है। मनुष्य पंचेन्द्रियों से युक्त प्राणी है। इन्द्रियां ही मानव को देव या असुर बना देती हैं। व्यास के अध्यात्मशास्त्र का सार इन्द्रियनिग्रह है—

आत्मनस्तु क्रियोपायो नान्यत्रेन्द्रिय निग्रहात्।
(उद्योग ६९।१७)

इन्द्रियों को रोकने के सिवाय आत्मा उन्नति का दूसरा उपाय नहीं है। विषयों की ओर जाती हुई इन्द्रियों को वश में रखने से आध्यात्माग्नि प्रकाशित हो उठती है। जिस प्रकार ईंधन के जलने से अग्नि चमक उठती है, उसी प्रकार इन्द्रियनिरोध से महानात्मा प्रकाशित होता है। डसने के भाव से सर्प जाने जाते हैं, दम्भभाव से असुर, दानभाव से देव और दमभाव से महर्षि पहचाने जाते हैं (आश्व० अ० २१)। वेदज्ञान का रहस्य सत्य भाषण में है, सत्य का उपनिषद् इन्द्रियदमन है, और दम का फल मोक्ष है—

वेदस्योपनिषत्सत्यं सत्यस्योपनिषद्दमः।
दमस्योपनिषन्मोक्ष एतत्सर्वानुशासनम्॥
(शा० २९९।१३)

आत्मनिरोध के द्वारा जो व्यक्ति जीवन में अपना मार्ग विषयों से भरे हुए जंगल में स्वयं निश्चित करता है, वह अपना ज्ञान औरों पर नहीं बघारता, बल्कि अपने आचार से औरों को उपदेश देता है। बोध्य ऋषि की कही हुई पुरातन गाथाओं को उद्धत करके व्यास ने यही कहा है—

उपदेशेन वर्तामि नानुशास्मीह कंचन। (शा० १७८।६)

अर्थात् मैं अपनी 'करनी' से सिखाता हूँ, 'कथनी' से नहीं। वेदव्यास जीवन में ऋजुभाव के माननेवाले हैं। ऋजुभाव की उपासना ब्रह्मपद की प्राप्ति है, कुटिलता मृत्यु का पद है। इतना ही ज्ञान का सार है, और सब झूठी बकवाद है।

कालधर्म

वेदव्यास के आध्यात्मिक दर्शन में कालधर्म का बड़ा स्थान है। उनकी आँखों ने समंतपंचक में हुए कुरु-पाण्डवों के दारुण नाश को देखा। बड़े कुशाग्रबुद्धि और कल्याणाभिनिवेशी व्यक्ति इच्छा रहते हुए भी उस क्षय को नहीं रोक सके। यह कालचक्र की ही महिमा है। कर्म के साथ मिलकर काल ही संसार में बहुत तरह के उलटफेर करता है (शा० २१३।१३)। काल के पर्याय धर्म के सामने सब अनित्य ठहरता है, कभी एक की बारी, कभी दूसरे की। महाभारत के अन्त में जो व्यक्ति स्त्री पर्व को देखे, वह इसके सिवाय और क्या कह सकता है—

न च दैव कृतो मार्गः शक्यो भूतेन केनचित्।
घटतापि चिरं कालं नियन्तुमिति मतिः॥

कोई प्राणी कितनी भी कोशिश करे, दैव के रास्ते को नहीं रोक सकता! यह दैव या उत्कट काल विश्व का नित्य विधान है। इसी का नामान्तर सनातन ब्रह्म है। वेदव्यास मानव-जीवन की घटनाओं की ऊहापोह करते हुए उनके अन्तिम कारण की खोज में यहीं विश्राम लेते हैं। यह सच है कि मनुष्य विधाता के द्वारा निश्चित संसार के विधान को बदल नहीं सकता, पर वह यह अवश्य कर सकता है कि उस सर्वोपरि शक्ति के रहस्यों का साक्षात्कार करके जीवन में ऋजुभाव को अपना ले। वह यह भी कर सकता है कि इन्द्रियों के निरोध और आत्म-चिन्तन से आत्म-ज्योति को इसी शरीर में प्राप्त कर ले। यह शरीर मूँज घास है, आत्मा उसके भीतर की सींक है। जिस प्रकार मूँज से इषीका निकाली जाती है वैसे ही योगवेत्ता शरीर में आत्मा का साक्षात्कार करते हैं (आश्व० १९।२२-२३।)

व्यास की आज्ञा है कि 'जय' नामक इतिहास सबको सुनना चाहिए। यह धुरंधर ग्रंथ भारतीय चरित और ज्ञान का पूर्णतम वर्ण-पट है। इसके निर्माता की प्रज्ञा सूर्यरश्मियों की तरह विराट् है। सारा भारत राष्ट्र महामुनि वेदव्यास के लिए अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है। हम भी हिमालय के शिलाप्रस्थ पर विराजमान बदरिकाश्रम के पुराण मुनि को प्रणाम करते हैं, जिनके पृथु नेत्रों में हमारे ज्ञान का सारा आलोक समा गया था, जिनका शालस्कन्ध के समान उन्नत मेरुदण्ड राष्ट्रीय मेरुदण्ड का प्रतीक था, जिनके चन्दनोक्षित कृष्णशरीर में हमारे शुभ आदर्श मानो राशिभूत होकर मूर्तिमान् हो उठे थे।

---

*सर्वाश्रमपदेऽप्याहुर्गार्हस्थ्यं दीप्तनिर्णयम्।
पावनं पुरुषव्याघ्र यं धर्मं पर्युपासते॥ (शा० ६६।३५)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रामायण के रचयिता : आदिकवि वाल्मीकि

वाल्मीकि हमारे राष्ट्रीय आदर्शों के आदि विधाता हैं। धर्म और सत्यरूपी महावृक्षों के जो अमर बीज वाल्मीकि ने बोए हैं, वे आज भी फल-फूल रहे हैं। इस देवपूज्य पुण्यभूमि में रहने योग्य देवकल्प मानव के निर्माण का श्रेय वाल्मीकि को ही है।

भारतवर्ष की पुण्यभूमि के लिए महर्षि वाल्मीकि का काव्य गंगा के पवित्र जल की तरह अनेक लोकोपकारी मङ्गलों का करनेवाला है। भारत के भौतिक रूप को देवयुग में प्रजापति ने रचकर तैयार किया। इसमें जहाँ एक ओर पृथ्वी को धारण करनेवाला गिरिराज हिमालय है, वहाँ दूसरी ओर अगाध गाम्भीर्यवाले समुद्र हैं। इसके वक्षःस्थल पर गंगा और यमुना की वारिधाराओं के उज्वल कण्ठहार हैं। मध्य में गहन दण्डकवन का अगम्य विस्तार है। सर्वाङ्ग सुन्दर इस भूप्रदेश में अनेक रत्नों की समृद्धि, दिव्य ओषधि-वनस्पतियों के भाण्डार और उपयोगी पशु-पक्षियों की सम्पत्ति को विधाता ने चारों ओर से भरपूर करके प्रस्तुत किया है। उसमें रहने योग्य मानव की जब हम कल्पना करने लगते हैं, तो हमें महर्षि वाल्मीकि का ध्यान आता है। उपर्युक्त प्रकार से देवों से पूजी गई पुण्यभूमि में रहनेयोग्य देवकल्प मानव का निर्माण किसने किया? इस देश में मानव के मस्तक को ऊँचा रखनेवाले हिमालय के समान उन्नत आदर्शों की स्थापना किसने की? गम्भीर सागर के समान त्रिकाल में भी मर्यादाओं का उल्लङ्घन न करनेवाले पूर्ण पुरुष का निर्माण किसने किया? पुण्यसलिला भगीरथी के समान सब लोगों से वन्दनीय चरित्र की कल्पना यहाँ किसके द्वारा हुई? किसने सबसे पहले जीवन के अगम्य, अज्ञात दण्डकवन में चारित्र्य की सुलभ पगडण्डियों का निर्माण किया? इन प्रश्नों के उत्तर के लिए हमें महर्षि वाल्मीकि की शरण में जाना पड़ता है। वाल्मीकि हमारे राष्ट्रीय आदर्शों के आदि विधाता हैं। धर्म और सत्यरूपी महावृक्षों के जो अमर बीज वाल्मीक ने बोए, वे आज भी फूल-फल रहे हैं। रामायण के प्रारम्भ में ही महाकवि ने दृढ़ता के साथ प्रश्न किया है—

'चारित्र्येण च को युक्तः ?'

'जीवन में चरित्र से युक्त कौन है'? वाल्मीकि का सम्पूर्ण दृष्टिकोण चरित्र-योग की जिज्ञासा है। चरित्रवान् व्यक्ति को ढूंढ़ने के लिए ही आदिकाव्य रामायण का जन्म हुआ है। जितने भी अन्य गुण हैं, सब चरित्र की व्याख्या के अन्तर्गत आ जाते हैं। वाल्मीकि के लिए चरित्र और धर्म पर्यायवाची हैं। अतएव उनकी दृष्टि में राम धर्म की प्रकट मूर्त्ति हैं—

'रामो विग्रहवान् धर्मः' (अरण्य० ३८।१३)

राम शरीरधारी धर्म हैं। वाल्मीकि राम की प्रशंसा में धर्मज्ञ, धर्मिष्ठ, धर्मभृतां वर आदि विशेषण देते हुए नहीं थकते। मन, कर्म और वाणी से राम जो भी चरित्र करते हैं उससे हमें धर्म की नई-नई व्याख्या प्राप्त होती है। राम सनातन धर्मवृक्ष के बीज हैं। अन्य सब मनुष्य उस वृक्ष के पत्र, पुष्प और फल हैं।* वाल्मीकि की दृष्टि में संसार में दो ही प्रकार के मनुष्य बसते हैं—एक अल्पसत्त्व या हीन पराक्रमवाले साधारण मनुष्य, जिन्हें रामायण में प्राकृत नर

*मूलं ह्येष मनुष्याणां धर्मसारो महाद्युतिः।
पुष्पं फलं च पत्रं च शाखाश्चास्येतरे जनाः।।
(अयो० ३३।१५)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कहा है; दूसरे धीर या चरित्रवान् व्यक्ति, जो धर्म और सत्य के आदर्शों को कर्म के मार्ग से अपने जीवन में प्रत्यक्ष कर दिखाते हैं। दूसरा मार्ग ही जीवन के लिए बहुमूल्य है। हमारे चारों ओर साधारण जीवन व्यतीत करनेवाले मनुष्य ढेरों दिखाई पड़ते हैं। परन्तु जीवन की मर्यादाओं में पूरा उतरनेवाले सत्यसंघ और दृढ़व्रत मनुष्य विरले ही होते हैं। वाल्मीकि ने जिस चरित्र-योग का वर्णन किया है, धीर पुरुष उसके केन्द्र हैं। कवि और उसका काव्यादर्श दोनों एक-दूसरे से पृथक् नहीं किए जा सकते। इसीलिए वाल्मीकि और उनके आदर्श महापुरुष राम भी एक दूसरे से अभिन्न हैं।

चरित्र-योग

मानव क्या है? इस प्रश्न का उत्तर दार्शनिक लोग कई प्रकार से देते हैं। किसी के मत में मनुष्य मनन करनेवाला प्राणी है। किसी की दृष्टि में वह केवल बाह्य साधनों और औजारों से काम लेनेवाला जन्तु है। कोई इसे हँसने और बोलनेवाला पशु समझकर इसकी एक साधारण-सी परिभाषा करते हैं। वाल्मीकि की परिभाषा इन सबसे विलक्षण है। उनकी दृष्टि में मनुष्य एक चरित्रवान् प्राणी है। चरित्र से युक्त मनुष्य ही जीवन को मूल्यवान् और आकर्षण की वस्तु बनाता है। चरित्र ही धर्म है। चरित्र में जो मोहन-मंत्र है, वह अन्यत्र कहीं नहीं।

चरित्र के आदर्श में शरीर और मन दोनों का समावेश है। वाल्मीकि के मत से चरित्रवान् पुरुष वह है, जिसमें शारीरिक विकास और नैतिक विकास रथ के दो पहियों की तरह साथ-साथ चलते हैं। राम के वर्णन में वाल्मीकि ने जिन विशेषणों का प्रयोग किया है उनके अध्ययन से राम का शारीरिक सौन्दर्य और गठन हमारे सामने मूर्तिमान् हो उठता है।* राम के शरीर में कंधे चौड़े और उठे हुए, भुजाएँ लम्बी, ग्रीवा शंख की तरह और ठोड़ी दोहरी थी। छाती चौड़ी, लम्बा धनुष सँभालनेवाले घुटनों तक लम्बे हाथ, गले की हड्डी मांस से दबी हुई, उत्तम शिर, सुन्दर ललाट, बड़ी-बड़ी आँखें, चमकीला रंग, सब अंग बराबर बटे हुए, सब प्रकार शुभ लक्षणों से युक्त देह—इस प्रकार राम का क्षत्रिय स्वरूप था। सप्तसिन्धु और गंगा की अन्तर्वेदी में दृढ़ता के साथ जिन आर्यों ने सभ्यता का विकास किया, मालूम होता है राम उनके मूर्तिमान् प्रतीक हैं। हमें स्मरण है कि महाकवि कालिदास ने भी रघुवंशी राजाओं के भौतिक स्वरूप की ऐसी ही उदात्त कल्पना रक्खी है:—

> व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः।
> आत्मकर्मक्षमं देहं क्षात्रो धर्म इवाश्रितः॥

अर्थात राजा दिलीप की छाती चौड़ी, कन्धे बैल के समान, लम्बाई शाल वृक्ष का स्मरण दिलानेवाली और भुजाएँ बड़ी-बड़ी थीं। वह क्षत्रिय थे, क्षत्रियों का कर्म रक्षा करना है। उस कर्म के अनुरूप ही मानो स्वयं क्षात्र-धर्म ने शरीर धारण किया था। राम पूर्ण रूप से दिलीप आदि राजर्षियों की परम्परा के प्रतिनिधि हैं। आर्य-सभ्यता का जो युगान्त तक फैला हुआ इतिहास है, इक्ष्वाकुवंशी राजा उसके मेरुदण्ड कहे जा सकते हैं। राम को उस शृंखला का सुमेरु ही समझना चाहिए।

आरंभ में ही तपस्वी वाल्मीकि नारदजी से प्रश्न करते हैं कि इस समय लोक में गुणवान, वीर्यवान, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्य बोलनेवाला, दृढ़व्रती, चरित्र से युक्त, सब भूतों का हित करनेवाला, विद्वान्, सुन्दर, जितेन्द्रिय और क्रोध को जीतनेवाला कौन है? उत्तर में नारदजी राम के अनेक गुणों की तालिका प्रस्तुत करते हैं। नारद का उत्तर भारतीय चरित्र की विशेषताओं को बताने के लिए आज भी एक मानदण्ड है। अपने राष्ट्रीय चरित्र की गुणगरिमा का अनुसंधान करने के लिए जब हम परिषद् का संगठन करेंगे, तब हमें नारद के उत्तर का मूल्य ठीक-ठीक आँकने का दृष्टिकोण प्राप्त होगा। मनु ने राष्ट्र के मस्तक को गर्व से ऊँचा रखने के लिए लिखा है कि इस देश में जन्म लेनेवाले अग्रणी पुरुषों का चरित्र पृथ्वी के दूसरे देशों के लिए शिक्षा की वस्तु है। मनु की प्रतिज्ञा का पूरा महत्व हमारी आँखों से ओझल हो गया है। हमारी अन्तरात्मा का सुवर्ण दैन्य के लोहे से छूकर निस्तेज बन गया है। परन्तु नारद के उत्तर से चरित्र की उस ऊँचाई का कुछ आभास हमें अब भी प्राप्त होता है।

राम नियतात्मा हैं। उन्होंने इन्द्रियों का जय किया है। वे महावीर्य हैं: संग्राम में पैर पीछे नहीं रखते। धृति और बुद्धि दोनों का उनमें विकास है। वे नीतिमान् और

*सुन्दरकांड के ३५वें सर्ग में सीता ने हनुमान की परीक्षा के लिए राम के संस्थान या शरीरगठन के बारे में प्रश्न किया है। उत्तर में हनुमान ने संकेत के द्वारा कहा है कि राम के तीन अंग (जंघा, गट्ठे और मुष्टि) स्थिर हैं, तीन लम्बे, तीन सम, तीन उन्नत, तीन ताम्रवर्ण, तीन स्निग्ध, तीन गम्भीर, तीन अवनत, चार छोटे, चार रेखायुक्त, चार किष्कु के बराबर लम्बे, चार सम, चौदह जोड़े समान, चार चार प्रकार की गतिवाले, पाँच चिकने, आठ लम्बी पोरी के, दस कमल की तरह बड़े, छः अंग उभरे हुए और नौ सूक्ष्म हैं। ये परिभाषाएँ भारतीय सौन्दर्यशास्त्र के अध्ययन के लिए उपयोगी हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाग्मी, सुन्दर भाषण करनेवाले हैं। वे देवकल्प, ऋजु और दान्त हैं। धर्म के तत्त्व को जानते हैं। सत्य-संध अर्थात् मन, कर्म और वचन से सत्य का पालन करनेवाले हैं। राम क्षत्रिय के पद से सदा प्रजाओं का हित करते हैं। यशस्वी, ज्ञानसंपन्न, शुचिवश्य और समाधिमान् या चित्त की एकाग्रता से युक्त हैं। जीवों के रक्षक, धर्म के रक्षक, स्वधर्म के और स्वजनों के पालन करनेवाले हैं। वेद-वेदांग में पारंगत और धनुर्वेद में निष्ठित हैं। राम आर्य हैं। सदा हँसकर बोलते हैं, उनका दर्शन ही सुन्दर है। वह सब शास्त्रों के मर्म को जानेवाले, स्मृतिवान् हैं, उनकी बुद्धि में नवीन कल्पनाओं या विचारों का स्फुरण होता रहता है। पराक्रम में विष्णु, कान्ति में चन्द्रमा, क्रोध में कालाग्नि, क्षमा-गुण में पृथिवि, त्याग में कुबेर और सत्य गुण में साक्षात् धर्म के समान हैं।*

प्राचीन ऋषियों ने जिस बुद्धियोग का विकास किया था, राम उसके उदाहरण हैं। सुख-दुखः, हानि-लाभ, जीवन-मरण में एक समान अविचल रहनेवाली बुद्धि ही प्रज्ञा है। गीता में भी इस प्रज्ञायोग का वर्णन है। राम के लिए प्रसिद्ध है कि राज्याभिषेक के समाचार के बाद वरदानिक वनवास के समाचार से उनके मुख पर कोई परिवर्तन नहीं देखा गया। राज्य के नाश से उनके मुख की लक्ष्मी में कोई अन्तर नहीं पड़ा। वन को जाते हुए और पृथिवी को छोड़ते हुए उनके चित्त में जरा-सा विकार नहीं आया। × राम ने स्वयं कैकेयी से कहा है--

नाहमर्थपरो देवि लोकामावस्तुमुत्सहे।
विद्धि मामृषिभिस्तुल्यं विमलं धर्ममास्थितम्॥

(अयोध्या १९।२०)

हे देवि, मैं अर्थपरायण बनकर जगत् में जीना नहीं चाहता। मुझे तुम ऋषियों के समान निर्मल धर्म का अनुगामी समझो।

वाल्मीकि की दृष्टि में भरत भी धार्मिक हैं, राम भी धार्मिक हैं। चित्रकूट में मन्दाकिनी के तीर पर भरत ने राम की पूर्वोक्त प्रज्ञा का वर्णन करते हुए कहा है--

हे राम, लोक में ऐसा कौन है जैसे तुम हो? दुःख से तुमको व्यथा नहीं पहुँची, कल्याण से तुम हर्षित नहीं हुए। तुम्हारे लिए मृत्यु और जीवन, होना और न होना, दोनों समान हैं। ऐसी बुद्धि जिसकी हो, उसको परिताप कहाँ से हो सकता है?--

यथा मृतस्तथा जीवन् यथासति तथा सति।
यस्यैष बुद्धिलाभः त्यात्परितप्येत केन सः॥

(अयोध्या १०६।४)

वाल्मीकि की दृष्टि में चरित्र जीवन का सक्रिय मार्ग है। अपने केन्द्र में आप समाकर निस्तेज स्वार्थी जीवन बिताते हुए जो सदाचार रचा जाता है, वह हेय है। उससे जीवन का गहन दण्डकवन पार नहीं किया जा सकता। वाल्मीकि हमें बार-बार याद दिलाते हैं कि राम प्रजाओं के हित में रत रहनेवाले हैं, वह स्वजन और धर्म के रक्षक हैं। सघन दण्डकारण्य में मुनि राम के पास आकर कहते हैं--'हे राम, तुम धर्मज्ञ, धर्मवत्सल हो। कुछ याचकभाव से नहीं, धर्म के भाव से हम तुमसे कहते हैं। राजा को पुत्र के समान प्रजा का पालन करना चाहिए। वन में फल-मूल खानेवाले मुनि जो तप करते हैं, उसका एक चौथाई भाग धर्म से प्रजारक्षण करनेवाले राजा को प्राप्त होता है। पम्पा, मन्दाकिनी और चित्रकूट आदि स्थानों में रहने वाले मुनियों को राक्षस लोग अनेक प्रकार से सताते हैं।' यह सुनकर राम अपने धनुष की ओर देखते हुए प्रतिज्ञा करते हैं--'मेरा वन में आना बड़ा फलदायक हुआ। मैं आपके शत्रु राक्षसों का अवश्य वध करूँगा।'

इस प्रकार की प्रतिज्ञा से पति का कल्याण चाहनेवाली सीता को भय हुआ। वह बोलीं--'हे राघव, मिथ्या वाक्य तुम्हारा कभी न हुआ है, न होगा। पर बिना बैर के रुद्र-भाव धारण करना भी तो उचित नहीं है। स्नेह से और आदर से मैं तुम्हें स्मरणमात्र दिलाती हूँ, शिक्षा नहीं देती। हम वन में आए हुए हैं, कहाँ वन का वास और कहाँ शस्त्र उठाना, कहाँ तप की वृत्ति और कहाँ क्षात्रधर्म? दोनों में मेल नहीं है। यहाँ हमको देशधर्म का ही पालन करना उचित है। शस्त्र के सेवन से बुद्धि मलिन हो जाती है। अयोध्या लौटने पर फिर क्षत्रियधर्म ग्रहण कीजिएगा।* यदि राज्य त्यागकर और संन्यास लेकर आप वन में नियमों का पालन करते हुए रहें, तो और भी अधिक धर्म और प्रसन्नता

---

*मूल रामायण सर्ग १।

×न चास्य महतीं लक्ष्मीं राज्यनाशोऽपकर्षति।
न वनं गन्तुकामस्य त्यजतश्च वसुन्धराम्।
सर्वलोकातिगस्येव लक्ष्यते चित्तं विक्रिया॥
(अयोध्या १९।३२-३३)

*क्व च शस्त्रं क्व च वनं क्व च क्षात्रं तपः क्व च।
व्याविद्धमिदमस्माभिर्देशधर्मस्तु पूज्यताम्॥२७॥
कदर्य कलुषा बुद्धिर्जायते शस्त्रसेवनात्।
पुनर्गत्वा त्वयोध्यायां क्षत्रधर्मं चरिष्यसि॥२८॥
(अरण्य० सर्ग ९)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की बात होगी। धर्म से ही सब कुछ बनता है, धर्म ही जगत् का सार है। हे सौम्य, तपोवन में धर्म का आचरण करो।'

सीता एक उपाख्यान के द्वारा तलवार की उत्पत्ति बताती हैं। इन्द्र ने एक मुनि को तपभ्रष्ट करने के लिए उसके आश्रम में आकर उसे रखने के लिए तलवार दे दी। बस हर समय तलवार पास में रखने से उस मुनि की बुद्धि प्रचंड बन गई और वह मुनि शस्त्र रखने से नरक को चला गया। 'दण्डकवन के राक्षसों ने आपका क्या बिगाड़ा है, बिना अपराध आप उन्हें क्यों मारने चले हैं?'

परन्तु राम का निर्माण दूसरे प्रकार की मिट्टी से हुआ था। उनके रोम-रोम में क्षात्रधर्म फड़कता था। सीता के धर्मवाद की युक्ति का उन पर कुछ असर न हुआ। उन्होंने कहा—'हे देवि, मैं क्या कहूँ, तुम स्वयं समझती हो। क्षत्रिय लोग इसीलिए धनुष बाँधते हैं कि राष्ट्र में आर्तशब्द सुनाई न पड़े——

क्षत्रियैर्धार्यते चापो नार्तशब्दो भवेदिति।

(अरण्य० १०।३)

दुःखी होकर दण्डकवन में मुनि लोग मेरे पास आए। मैंने उनके दुःख की कथा सुनकर उनसे कहा कि मेरे लिए तो यही बड़ी लज्जा की बात है, जो आप जैसे विप्रों को मेरे पास आने तक का कष्ट उठाना पड़ा। क्यों नहीं मैंने स्वयं ही आपका कष्ट दूर कर दिया! यह कहकर मैंने उन मुनियों के सामने राक्षसों को मारने की प्रतिज्ञा की। उस प्रतिज्ञा का पूरी तरह पालन करना मेरा धर्म है। जब तक मेरा जीवन है, उस व्रत से मैं नहीं फिर सकता। हे सीते, चाहे मेरे प्राण चले जाएँ, चाहे उस प्रतिज्ञा की पूर्ति में लक्ष्मण के साथ तुमको भी मुझे छोड़ना पड़े, पर उस व्रत का पालन मैं अवश्य करूँगा। बिना कहे भी मुझे वह कार्य करना चाहिए था, प्रतिज्ञा करके तो बात ही दूसरी है।'

इस प्रकार का कर्मण्य धर्म, सत्य और चरित्र वाल्मीकि को इष्ट था, जिसकी व्याख्या के लिए उन्होंने रामकथा का आश्रय लिया। वाल्मीकि अपने युग के असाधारण व्यक्ति थे। वह जनक के प्रिय सखा और दशरथ के बालपन में साथ खेले हुए मित्र थे। अपने युग के आदर्शों को, ब्राह्म-धर्म और क्षात्रधर्म के समन्वय को, उन्होंने सुन्दरता के साथ प्रतिपादित किया है।

वाल्मीकि का लोकागम धर्म

वाल्मीकि का धर्म का आदर्श मनु और व्यास के धर्म की तरह प्रजाओं के पालन और राष्ट्र के धारण के लिए है। उन्होंने अनेक स्थलों पर अपने दृष्टिकोण का व्याख्यान किया है। धर्म के द्वारा सब वर्णों का पालन राजा का श्रेष्ठ कर्म है।

भरतजी राम से कहते हैं——हे धर्मज्ञ! चारों आश्रमों में गृहस्थ-आश्रम श्रेष्ठ है, उसको त्यागना उचित नहीं है——

चतुर्णामाश्रमाणां हि गार्हस्थ्यं श्रेष्ठमुत्तमम्।
आहुर्धर्मज्ञ धर्मज्ञास्तं कथं त्यक्तमिच्छसि॥

क्षत्रियों का यही प्रथम धर्म है कि राज्याभिषिक्त होकर प्रजाओं की रक्षा करें। प्रत्यक्ष को त्यागकर अनिश्चित मार्ग की उपासना क्षत्रबन्धुओं का काम है। तीन ऋणों का परिशोध यही जीवन का ध्येय है।

भरत के इस आदर्श से राम का मतभेद नहीं है। परन्तु वह पिता की सत्य प्रतिज्ञा के पालन को श्रेष्ठ मानते हैं। सत्य धर्म का मूल है। सत्य के छोड़ देने से जीवन और लोक दोनों में संकट हो जाता है। राम स्वयं अपने चरित्र से लोकदूषण या लोकसंकर नहीं कर सकते।

महाराज दशरथ के मंत्री जाबालि भौतिकवादी लोकायत पक्ष के माननेवाले थे। उन्होंने कहा था—'परलोक कुछ नहीं, धर्मबन्धन कुछ नहीं, प्रत्यक्ष ही सब कुछ है, इसलिए हे राम, राज्य पर अधिकार कर लो, फिर अब तो भरत कह रहे हैं।' जाबालि की इस युक्ति का राम ने ओजपूर्ण खंडन किया है। 'आर्य होकर मैं अनार्यों जैसा काम नहीं करूँगा, कुलीन होकर अकुलीनों का आचार नहीं करूँगा, काम के वशीभूत होकर सब लोकों का डुबानेवाला आचरण मुझसे न होगा। राजा जैसा आचरण करते हैं, प्रजाएँ भी वैसे ही बरतती हैं'—

यद्वृत्ताः सन्ति राजानस्तद्वृत्ताः सन्ति हि प्रजाः।

(अयो० १०६।६)

भीष्मपितामह के शब्दों में राजा समय का बनानेवाला है। 'सत्य ही सनातन राजवृत्त है, इसलिए राज की नींव सत्य पर है, सत्य से ही लोक प्रतिष्ठित हैं। ऋषि और देव सत्य को ही श्रेष्ठ मानते हैं। अनृतवादी मनुष्य से लोग ऐसे डरते हैं जैसे साँप से। सत्यपरायण धर्म ही सबका मूल है। सत्य ही लोक का ईश्वर है, धर्म सत्य के ही आश्रित है। सत्य से परे और कुछ नहीं है। दान, यज्ञ, अग्निहोत्र और तप सब सत्य के बल पर टिके हुए हैं। वेद भी सत्य पर प्रतिष्ठित हैं, इसलिए सत्यपरक होना चाहिए। अकेला सत्य ही लोक का पालन करता है, वह कुलों की रक्षा करता है। मैं अवश्य पिता के सत्य की रक्षा करूँगा। मेरे लिए यह असम्भव है कि लोभ से, मोह से या अज्ञान से किसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

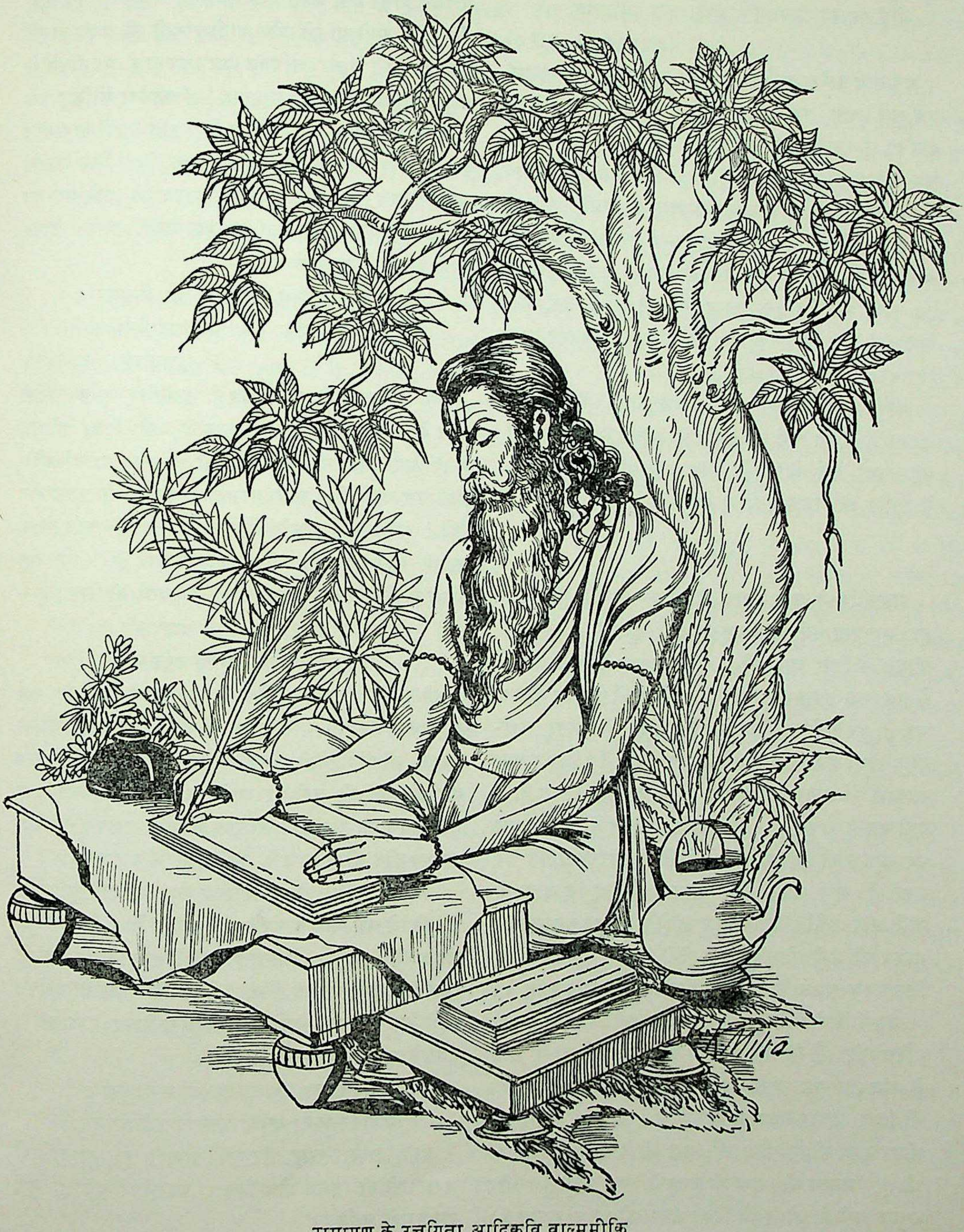

रामायण के रचयिता आदिकवि वाल्ममीकि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी प्रकार मैं सत्य की मर्यादा का उल्लंघन करूँ—

नैव लोभान्न मोहाद्वा न चाज्ञानात्तमोऽन्वितः ।
सेतुं सत्यस्य भेत्स्यामि गुरोः सत्य प्रतिश्रवः ॥
(अयोध्या० १०६।१७)

यह सत्य प्रत्येक व्यक्ति के भीतर रहनेवाला (प्रत्यगात्म) धर्म मुझे जान पड़ता है। यदि मैं असत्य का आचरण करूँगा, तो क्षात्रधर्म से पतित हो जाऊँगा। यह भूमि, कीर्ति, यश और लक्ष्मी सब सत्यवादी के लिए है। मैं कार्य-अकार्य को जानता हुआ श्रद्धा के साथ लोकयात्रा का निर्वाह करूँगा। यह लोक कर्मभूमि है। यहाँ आकर शुभ कर्म करना चाहिए। अग्नि, वायु, सोमादि देव भी कर्म का ही फल भोग पाते हैं। सत्य, धर्म, पराक्रम, भूतानुकम्पा और प्रियवचन, यही 'एकोदय' धर्म है, लोकागम की इच्छा रखनेवाले पुरुष जिसका आचरण करते आए हैं।'

धर्म का ऊपर कहा हुआ आदर्श जीवन के भीतर से पनपता है। इस मार्ग का अनुयायी जीवन से भागता नहीं, वह उसको कर्म के जल से सींचता है और उसकी छाया में शान्ति और विश्राम प्राप्त करता है।

धर्मबन्ध

वाल्मीकि ने ऋजु जीवन की जो कल्पना की है, उसमें हर एक पात्र धर्म के बन्धन से बँधा हुआ है। हम अपने जीवन में जिस जगह भी हैं, अनेक प्रकार के सत्य बन्धनों में हम उस स्थान पर स्थिर हैं। विद्यार्थी के लिए अपना धर्म है, गुरु के लिए अपना धर्म है। माता और पिता, भाई-बन्धु, राजा-प्रजा, सभी धर्म के बन्धन से बँधे हैं। जिस प्रकार आकाश में प्रत्येक नक्षत्र-ग्रह अपने मार्ग में स्थित हैं; न वहाँ भय है, न स्खलन, इसी प्रकार जीवन में अपने धर्म पर ध्रुव रहते हुए हम दूसरों से बिना टकराए प्रगति कर सकते हैं। क्षण भर के लिए कल्पना कीजिए कि जीवन में नीति और अनीति के बन्धन टूट जाएँ, उस समय समाज और मानव की कैसी शोचनीय दशा होगी! यही लोकसंकर है, जिसके स्मरणमात्र से भारतीय समाजशास्त्री काँप उठते थे।

वाल्मीकि ने बड़ी सुन्दरता से कई स्थानों पर हमें इसका परिचय दिया है कि यदि धर्म की मर्य्यादाएँ टूट जातीं, सत्य के बाँध ढीले पड़ जाते, तो राम और भरत-जैसे धीर पात्र भी किस प्रकार आचरण कर बैठते। आखिर मनुष्य के भीतर क्षमा भी है, क्रोध भी; धर्म भी है, अधर्म भी; सत्य भी है, असत्य भी। एक ही जगह ये द्वन्द्व रहते हैं। धीर मनुष्य वही है, जो इनके दिव्य भाव को ग्रहण करता है। श्रुति का ज्ञान रखनेवाले पुरुष भी जब रजोगुण में सन जाते हैं तभी महान् अनर्थ उपस्थित होता है। राम धर्म-बन्धन से च्युत होकर क्या करते? 'हे लक्ष्मण, मैं अकेला ही क्रुद्ध होकर इस अयोध्या को और सारी पृथिवी को अपने बाणों से नष्ट करके अपना अभिषेक कर सकता हूँ, पर अधर्म से डरता हूँ (अयोध्या० ५३।२५-२६)।' कल्पना कीजिए उस अयोध्या की जिसमें राज्य लेने के लिए राम बाणों का प्रयोग करते! क्या फिर हमें वहाँ स्वर्ग का वह सौरभ मिल सकता था, जो आज तक फैला हुआ है? भरत को यदि धर्म का बन्धन बाँधकर न रखता, तो वह क्या करते, इसका उत्तर उन्हीं के मुँह से सुनने योग्य है—

धर्मबन्धेन बद्धोऽस्मि तेनेमां नेह मातरम् ।
हन्मि तीव्रेण दण्डेन दण्डार्हां पापकारिणीम् ॥
(अयोध्या० १०६।९)

'मैं धर्मबन्धन से बँधा हुआ हूँ, इसीलिए पापकारिणी दण्ड के योग्य माता को तीव्र दण्ड से मारे बिना छोड़ता हूँ।' भरत क्रोध में भरकर कैकेयी को मार डालते और फिर उस पाप के दुःख से सम्भवतः अपनी भी हत्या कर लेते! धर्मबन्धों के टूटने का कैसा घातक परिणाम होता, इसकी कल्पनामात्र से रौंगटे खड़े हो जाते हैं! यह वह भरत हैं, जिनके लिए गोस्वामीजी ने यथार्थ ही लिखा है—

जो न जनम जग होत भरत को ।
सकल धरम धुरि धरणि धरत को ?

ठीक ही है, राम ने, सीता ने, लक्ष्मण ने एक-एक धर्म का पालन किया। यदि वे वैसा न करते, तो उनकी गणना प्राकृत जीवों में होती। पर यह भरत ही हैं, जिन्होंने सब पात्रों के धर्म की धुरी को अपने कन्धों पर रखकर पूरा उतारा। भरत अड़ जाते, तो राम का धर्म, दशरथ का धर्म, लक्ष्मण और सीता का धर्म, सभी संकट में पड़ जाते।

धर्म से स्खलित होकर दशरथ क्या करते? 'हे राम, कैकेयी ने मुझे मोहित करके वरदान ले लिया है; तुम मुझे कैद करके अयोध्या के राजा बनो!' परन्तु जिस राम से दशरथ ने यह प्रस्ताव किया, उनके लिए वाल्मीकि सबसे पहले 'धर्मभृतां वर' विशेषण रखते हैं (अयोध्या० ३४।२७)। राम ने उत्तर में यह गीत गाया—

'इयं सराष्ट्रा सजना धनधान्यसमाकुला ।
मया विसृष्टा वसुधा भरताय प्रदीयताम् ॥

'धन, धान्य, राष्ट्र और जनों से भरी हुई यह पृथिवी भरत को दो, इसमें सोच-विचार का स्थान नहीं है, मुझे राज्य नहीं चाहिए।'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राम की माता, दशरथ की अग्रमहिषी कौशल्या धर्म को भूलकर क्या करतीं ? 'हे राम, मैं बड़ी मन्दभाग्या हूँ। न जाने मुझे सपत्नियों के कौन-कौन से वाग्वाण सुनने पड़ेंगे ? मेरे व्रत, दान और संयम सब ऊसर में बोए हुए बीज की तरह व्यर्थ चले गए। हे पुत्र, माता तुम्हारे लिए वैसे ही है जैसे पिता हैं; वैसे ही माता का कहना मान्य है। मैं तुम्हें वन जाने की आज्ञा नहीं देती।'*

कोई भी साधारण माता और क्या कहती ! परंतु धर्मज्ञ राम माता को स्मरण दिलाते हैं—

पितुर्नियोगे स्थातव्य मेष धर्मः सनातनः।

(अयोध्या० सर्ग २०-२१)

हे देवि, राजा दशरथ, हमारे-तुम्हारे दोनों के गुरु हैं, उनकी आज्ञा ही गति और धर्म है। लक्ष्मण तो धर्मबन्ध के अभाव में साक्षात् ज्वालामुखी ही थे। कौशल्या के विलाप को सुनते ही उनका अवरुद्ध हृदय फूट पड़ता है, वह कौशल्या से राम के सामने ही कहते हैं—'हे देवि, राम का वन जाना मुझे तो कुछ नहीं जँचता। बूढ़े राजा विषयान्ध थे। नहीं तो कौन राम-जैसे देवकल्प पुत्र को वनवास देगा ? जब तक यह खबर फैलने न पावे, तभी तक राज्य अपने हाथ में कर लेना चाहिए। किसकी शक्ति है, जो मेरे सामने आवे ? आज अयोध्या को मैं सुनसान बना दूँगा, यदि भरत का कोई साथी मेरे सामने युद्ध के लिए आवेगा। यदि पिता कैकेयी के साथ हों, तो उनका भी बन्ध या वध कर देना चाहिए। उत्पथ में गए हुए का शासन करना ही पड़ता है। (अयोध्या० सर्ग २१। १—१३)।' कौशल्या ने राम से कहा—'हे तात, तुमने लक्ष्मण की बात सुनी। जो धर्मानुकूल जान पड़े, करो।' परन्तु धर्मज्ञ राम को लक्ष्मण का झटपट राज्यहरण का यह प्रस्ताव बिलकुल पसन्द न आया। उन्होंने समझाया—'हे लक्ष्मण, तुम्हारे स्नेह को मैं जानता हूँ। इस अनार्य बुद्धि को दूर करो।'

वसिष्ठ जैसे शान्त और सदा एकरस रहनेवाले व्यक्ति भी, कैकेयी जब औचित्य भुलाकर सीता को वल्कल पहनाने लगती है, रो पड़ते हैं। वह कहते हैं—'हे कलपांसिनी, दुर्बुद्धि, राजा को ठगकर तुम मर्य्यादा भूल गई हो। सीता वन को नहीं जायँगी, केवल राम के लिए ही तो वनवास हुआ। गृहस्थ-आश्रम स्वीकार करनेवालों के लिए स्त्री उनकी प्रतिनिधि और साक्षात् अपना आपा है। इसलिए सीता राम की जगह गद्दी पर बैठेंगी।' (अयोध्या० ३७।२२-२४)।

वसिष्ठ ने बात तो धर्मशास्त्र के अनुकूल कही। मनु ने भी कहा है—'यो भर्त्ता सा स्मृतांगना', जो पति है वही पत्नी है। पर जीवन का जो सत्य है, वह कानून की बारीकियों का मुँह नहीं देखता। धर्मबन्ध की दृष्टि से वसिष्ठ का प्रस्ताव राम को और स्वयं सीता को भी मान्य नहीं हो सका।

वाल्मीकि मनुष्य को मनुष्य करके जानते हैं। मनुष्य कैसा ही पूर्ण क्यों न हो, उसमें निर्बलता के क्षण आ ही जाते हैं। सीता के अपहरण के बाद राम के धैर्य का बाँध टूट जाता है। वह क्रोध के वशीभूत होकर अपनी सुध-बुध भूल जाते हैं। 'हे लक्ष्मण, यदि सीता कुशलपूर्वक मुझे न मिलीं, तो त्रिलोकी को मृत्यु के मुख में पहुँचा दूँगा। मेरे बाणों से आज सारा जगत् मर्यादा के बिना अस्त-व्यस्त हो जायगा। हे लक्ष्मण, जिस प्रकार जरा और मृत्यु, काल और विधाता, टाले नहीं टलते, उसी प्रकार मेरा क्रोध अनिवार्य है।' राम के अदृष्टपूर्व क्रोध को देखकर लक्ष्मण उन्हें शान्त करते हैं। 'राजाओं को युक्तदण्ड अर्थात् अपराध के अनुसार दण्ड देनेवाला होना चाहिए। पहिले मृदु और दान्त होकर अब क्रोध के कारण अपनी प्रकृति को छोड़ देना आपको शोभा नहीं देता। आप जैसे धीर पुरुष भी इस दुःख को न सह सकेंगे, तो क्या सामान्य और अल्प सत्ववाले व्यक्ति सह सकेंगे ? संसार में किसको आपत्तियाँ नहीं आतीं ! यह लोक का स्वभाव ही है। पर आपके जैसी बुद्धि रखनेवाले प्रज्ञावान् पुरुष दैव के सामने शोक नहीं करते। जगत् की माता सर्वलोकनमनस्कृता जो भूमि है, वह भी कंप से विचलित हो सकती है, पर धीर पुरुष धर्म से विचलित नहीं होते।'*

वस्तुतः सत्य ही जिसका दूसरा नाम है, ऐसा धर्म पृथ्वी और आकाश का आधार है।

सत्येनोत्तभिता भूमि सत्येनोत्तभिता द्यौः। (अथर्व०)

धर्म की कल्पना को यहाँ के विचारकों ने उसी शाश्वत मूल पर प्रतिष्ठापित करने का प्रयत्न किया है। जिस प्रकार पर्वत, नदियाँ, आकाश और नक्षत्र प्रकृति में ध्रुव हैं, उसी प्रकार सत्य भी ध्रुव है। इस विषय में वाल्मीकि का दृष्टिकोण शुद्ध भारतीय है।

वाल्मीकि और राष्ट्र

वाल्मीकि के अनुसार राजा की गद्दी राष्ट्र के कल्याण का हेतु है। प्रजाओं का न्याय और धर्म से परिपालन यही राजा का प्रधान कर्त्तव्य है। राजा ही साधु और असाधुओं

*अयोध्याकाण्ड, सर्ग २०-२१।

* अरण्यकांड, सर्ग ६४-६६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को अलग-अलग रखता है। राष्ट्र और लोक-पक्ष के समर्थन में वाल्मीकि का मत ऊपर लिखा जा चुका है। वाल्मीकि अराजक राष्ट्र को एक क्षण के लिए भी नहीं सह सकते। अराजक राष्ट्र घोर जंगलीपन है, जिसमें सब प्रकार की मर्य्यादाओं का लोप हो जाता है।

अराजक राष्ट्र एवं उससे उत्पन्न चिन्तनीय स्थिति के वर्णन में वाल्मीकि ने एक गीत दिया है, वह संस्कृत साहित्य में अद्भुत है, उसी से उनके राष्ट्रीय आदर्श का सम्यक परिचय मिलता है—

अराजक राष्ट्र विनाश को प्राप्त हो जाता है।

अराजक जनपद में मेघ दिव्य जल से पृथ्वी को नहीं सींचते।

अराजक जनपद में बीच की मूठ खेतों में नहीं बखेरी जाती।

अराजक देश में पुत्र पिता के अधीन नहीं होता और स्त्री पति के वशीभूत नहीं रहती।

अराजक राष्ट्र में न धन रहता है, न स्त्री। सत्य अराजक स्थान में कहाँ रह सकता है ?

अराजक देश में मनुष्य सभा नहीं कर पाते, प्रसन्न होकर उद्यान और घर नहीं बनवा सकते।

अराजक देश में यज्ञ करनेवाले ब्राह्मण व्रत ग्रहण करके सत्रों में नहीं बैठ पाते।

अराजक देश में यज्ञशील धनी ब्राह्मण भी महायज्ञों में रत्नों से पूर्ण पूरी दक्षिणा नहीं देते।

अराजक देश में राष्ट्र की वृद्धि करनेवाले नट और नर्तकों से युक्त समाज और उत्सव नहीं हो पाते।

अराजक देश में व्यवहार करनेवालों के मनोरथ पूरे नहीं होते। कथाप्रिय लोग कथा कहनेवालों के साथ प्रेम नहीं रखते।

अराजक देश में सायंकाल के समय कुमारियां स्वर्ण के अलंकार पहनकर उद्यानों में क्रीड़ा के लिए नहीं जा पातीं।

अराजक देश में धनी लोग, जो कृषि और गोरक्षा से जीविका करते हैं, सुरक्षित रहकर घर के किवाड़ खोलकर नहीं सो सकते।

अराजक देश में शीघ्रगामी वाहन और यानों पर स्त्री-पुरुष वन में घूमने नहीं जा सकते।

अराजक देश में साठ वर्ष के जवान हाथी घंटे बांधकर राजमार्गों पर झूमते हुए नहीं निकलते।

अराजक देश में बाण चलाने का अभ्यास करनेवाले योद्धाओं का टंकार-घोष नहीं सुनाई पड़ता।

अराजक देश में दूर की यात्रा करनेवाले वणिक् बहुत-सी पण्य-सामग्री लेकर कुशलपूर्वक मार्गों में नहीं चल सकते।

अराजक देश में आत्मा से आत्मा का ध्यान करनेवाले, अकेले विचरनेवाले, जहां सांझ हो वहीं बसेरा करनेवाले मुनि कुशल से नहीं रह पाते।

अराजक देश में योग और क्षेम का नाश हो जाता है। अराजक राष्ट्र की सेना शत्रुओं से युद्ध नहीं करती।

अराजक देश में अलंकृत मनुष्य प्रसन्न अश्वों और रथों पर चढ़कर नहीं चल सकते।

अराजक देश में शास्त्रविशारद विद्वान् मनुष्य वनों और उपवनों में शास्त्र की चिन्ता करते हुए एक दूसरे से नहीं मिल पाते।

अराजक देश में जितेन्द्रिय पुरुष माला, मिष्ठान्न और दक्षिणा से देवताओं की पूजा नहीं कर सकते।

अराजक देश में राजकुमार लोग चन्दन और अगुरु से देह सजाकर वसन्त ऋतु में धान की तरह सुशोभित नहीं किया करते।

जैसे बिना जल के नदी, बिना घास के वन और बिना गोपाल के गौएँ होती हैं, वैसे ही बिना राजा का राष्ट्र होता है।

अराजक देश में मनुष्य का कुछ भी अपना नहीं होता। जल में मछलियों के समान मनुष्य एक दूसरे को हड़पने लगते हैं।

वर्णाश्रम की मर्यादाएँ जिन्होंने तोड़ दी हैं, जिन्हें पहले राजदण्ड दिया जाता था, वे नास्तिक लोग निडर होकर अराजक राष्ट्र में प्रभावशाली बन जाते हैं।

जिस प्रकार शरीर के हित-अहित की प्रवर्त्तक आँख है, उसी प्रकार राष्ट्र में जो सत्य और धर्म हैं, उनका प्रवर्त्तक राजा है।

राजा सत्य और धर्म है, राजा कुलीनों का कुल है। राजा माता-पिता और राजा ही हितकारी है।

अन्त में निम्न पंक्तियों में तो महाकवि राष्ट्र और राजा की महिमा और कर्त्तव्य को मानो सर्वोच्च पद पर पहुंचा देते हैं—

यदि साधु-असाधुओं का पृथक् विभाग करनेवाला राजा इस लोक में न होता, तो जैसे दिन अन्धकार में विलीन हो जाता है, वैसे ही सब कुछ तम में डूब जाता।×

× अहो तम इवेदं स्यान्न प्रज्ञायेत किंचन।
राजा चेन्न भवेल्लोके विभजन्साध्वसाधुनी।।
(अयोध्या० ६७।३६)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय चरित्र और आस्था के संबल :: मर्य्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र

भारतीय संस्कृति के विशद प्राङ्गण को विगत हमारों वर्षों से दैदीप्यमान किए हुए राम का चरित्र इस देश की युगादिव्यापी सत्य-साधना का अमल धवल कीर्तिस्तम्भ है। प्रस्तुत प्रकरण में उसी पुण्य-पावन चरित्र की महिमा बखानने का प्रयास किया गया है।

जब-जब भारत राष्ट्र पर दुर्दिन की घटाएँ छाई हैं, राम-नाम ने उसे साहस और आशा का संबल प्रदान किया है। राम का नाम हर भारतीय की जिह्वा पर रम गया है; हर बाल-वृद्ध, नर-नारी के अन्तर में समा गया है—इतने प्रभावी और प्रबल रूप में कि नास्तिकता की आँधियाँ चलीं, अधर्म के तूफान आए, किन्तु 'राम' को उनके स्वाभाविक शाश्वत उच्च सिंहासन से वे एक क्षण को भी न डिगा सके। भविष्य में भी राम को जन-मानस-अधिष्ठान से अपदस्थ किया जा सकेगा, यह महान् संदेहजनक है।

न्यायाधीश ए० एस० पी० अय्यर की सेवा में भोगवाद पर विश्वास करनेवाले किन्हीं महानुभाव ने समत्यर्थ एक पुस्तक प्रेषित की थी, जिसमें सीता और राम के चरित्रों पर लांछन लगाते हुए विश्वास कर लिया गया था कि राम को इस संसार से विदा कर दिया गया! न्यायधीश अय्यर ने अपनी सम्मति प्रेषित करते हुए लिखा—"मैं नहीं जानता तुम कौन हो, तुम कैसे हो, या तुम क्यों हो! तुम जानते होगे कि दस सिरवाला रावण नामक राक्षस भी राम का अन्त करना चाहता था, किन्तु कर न सका। महा असम्भव है कि तुम, छोटा-सा सिर रखनेवाले व्यक्ति, इस काम में सफल हो पाओगे।"

न्यायाधीश अय्यर के शब्दों में उस श्रद्धा और विश्वास की प्रतिध्वनि है, जो भारतीय समाज अनन्य काल से भगवान् राम के प्रति रखता आया है। किसी व्यक्ति के प्रति श्रद्धा, विश्वास अथवा भक्ति अनायास उत्पन्न नहीं हो जाती; उस व्यक्ति के महान् कृत्य, उसका तपःपूत जीवन, जन-मानस-कलुषहारिणी उसकी दिव्य प्रतिभा जन-जन को उसके चरणों में नत करते हैं। मर्य्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र में भी यही विशेषताएँ थीं और उन्हीं विशेषताओं के कारण उन्हें असीम श्रद्धा का आगार समाज द्वारा अर्पित किया गया, किया जा रहा है और सदैव किया जाता रहेगा।

नर से नारायण बनने की प्रेरणा देनेवाला चरित्र

कुछ लोग राम को अवतार मानते हैं और कुछ लोग केवल महापुरुष। राम को चाहे अवतार माना जाए चाहे महापुरुष, पर यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि उनका चरित्र अनुकरणीय है, आदर्श है, वह नर से नारायण बनने की प्रेरणा प्रदान करता है। राम की जीवन-लीला का अवलोकन मात्र ही पावित्र्य का संचार कर देता है। इसीलिए महाकवि तुलसी ने कहा है—

एहिं कलिकाल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा।
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ रामगुनग्रामहि।
जासु पतितपावन बड़ बाना। गावहिं कवि श्रुति संत पुराना।
ताहि भजहि मन तजि कुटिलाई। राम भजे गति केहिं नहिं पाई।

राम का जीवन अलौकिक होते हुए भी लौकिक है। वह सामान्य बालक के समान ही अवधपुरी में महाराज दशरथ

के महलों में माता कौशल्या की कोख से जन्म ग्रहण करते हैं। भरत, लक्ष्मण आदि बंधुओं के साथ क्रीड़ाएँ करते हुए बड़े होते हैं। अपने अप्रतिम व्यक्तित्व से छोटे-बड़े सभी को आकर्षित करते हैं। उस व्यक्तित्व की छबि का क्या वर्णन किया जाय, जिसके सम्बन्ध में महर्षि नारद कहते हों—"राजा इक्ष्वाकु के कुल में उत्पन्न 'राम नाम से विख्यात् एक पुरुष हैं। वह मन को वश में रखनेवाले कांति-पूर्ण, महाबली, धैर्यवान् और जितेन्द्रिय हैं। बुद्धिमान्, नीतिज्ञ, शत्रुओं का नाश करनेवाले हैं। उनके कंधे मोटे, भुजाएँ घुटनों तक, गला शंख के समान, गले के नीचे की हड्डी माँस में छिपी हुई हैं। उनका वक्ष विशाल और धनुष बड़ा है। ललाट भव्य और चाल आकर्षक है। कद मध्यम, वक्षस्थल भरा हुआ और शरीर चिकना है। नेत्र बड़े-बड़े हैं, शुभ लक्षणों से युक्त हैं।"

युग-पुरुष

राम के गुणों की चर्चा से प्रभावित होकर ही सम्भवतः, महर्षि विश्वामित्र उन्हें अपने साथ अरण्यस्थित आश्रम में ले गए। विश्वामित्र जी ने राम व लक्ष्मण को शस्त्र-विद्या में निपुण बनाया। राम व लक्ष्मण ने अपने बाहु-पराक्रम से किशोरावस्था में ही ताड़का जैसे आततायियों का वध किया और ऋषि-मुनियों के यज्ञों में उपस्थित होनेवाले विघ्न-बाधाओं के कारणों को समाप्त कर सर्वत्र हर्ष और संतोष का वातावरण उत्पन्न कर दिया। समाज के अहल्या जैसे पाषाणवत् अंगों को नवचेतना प्रदान कर किशोर राम ने स्वयं को जनता की आशाओं का केन्द्र बना लिया। जन-साधारण समझने लगा कि संसार के उद्धार के लिए राम के रूप में कोई अतिमानवीय विभूति अवतरित हुई है। जहाँ भी राम जाते उनका स्वागत होता, जयजयकार होता। सचमुच ही वह जन-आकांक्षाओं की पूर्ति करनेवाले युग-पुरुष थे।

राम के पराक्रम का इससे अधिक उज्ज्वल प्रमाण और क्या होगा कि शिव के जिस धनुष को बड़े-बड़े बली राजा किंचित् हिला भी न सके, उसे उन्होंने खण्ड-खण्ड कर दिया। राम सच्चे अर्थों में पराक्रमी थे, क्योंकि उनके पराक्रम में साधुता समन्वित थी। परशुराम के कठोर वचनों को कोई साधु पुरुष ही अनुत्तेजित हुए सहन कर सकता था। राम की साधुता कापुरुषता की पर्यायवाची नहीं थी, क्योंकि जिस नृश्रेष्ठ की महानता स्वीकार करके परशुराम जैसा महाबली पुरुष भी शस्त्रास्त्र त्याग कर तप हेतु वन-गमन करे, उसके बल के परिमाण का क्या अंदाज लगाया जा सकता है!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राज्याभिषेक का प्रसंग

सीता जैसी सुभार्या पाकर तो राम का जीवन और भी पूर्ण हो गया—मानो सोने को सुगंध मिल गई। अयोध्या के प्रासादों में राम-सीता की उपस्थिति के कारण एक अलौकिक प्रकाश के दर्शन होने लगे। राजा दशरथ ने सुअवसर देखकर राम का राज्याभिषेक करने का निश्चय किया। किन्तु जिस महापुरुष को घूम-घूमकर देश के कण-कण में नवचैतन्य का संचार करना था, समाज-घालकों का हनन करना था, उसे विधाता प्रासादों की चहारदीवारी में कैसे रहने देता? विधि का विधान ही विचित्र बन गया। "मेरे लिए जैसे भरत प्रिय हैं, उनसे भी बढ़कर हैं राम। वह सगी माता कौशल्या से भी अधिक मेरी सेवा करते हैं, यदि राम को राज्य मिल रहा है, तो उसे भरत का समझ ले"—कहकर उदात्त भावना प्रकट करनेवाली कैकेयी की मति भी बाद में फिर गई। उसने राजा दशरथ को पुराने दो वरों का स्मरण दिलाकर राम के चौदह वर्ष का वनवास और भरत के लिए राज्य की माँग की। किंतु फिर भी राम की महानता, उदारता पूर्ववत् बनी रही, कैकेयी के प्रति उनकी श्रद्धा में कोई कमी नहीं आई। उन्होंने कहा—

न नूनं मयि कैकेयि किंचिदाशंससे गुणान्।
यद्राजानमवोचस्त्वं ममेश्वतरा सतो॥

"माँ! यह काम तो मैं तुम्हारे कहने से ही कर सकता था। इसके लिए पिताजी को कष्ट क्यों दिया? मुझ पर तुम्हारा पूर्ण अधिकार है, फिर भी स्वयं आज्ञा न देकर पिताजी से वन जाने की आज्ञा दिलाई!"

राम को लोभ तो मानो छू तक नहीं गया था। मिलते राज्य से वंचित होकर भी राम के मुख पर विषाद की रेखाएँ किंचित् नहीं दिखाई दीं। उन्होंने लक्ष्मण से केवल इतना कहा—"हे लक्ष्मण! मैं सत्य और शास्त्रों की सौगंध खाकर कहता हूँ कि मैं धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, सर्वस्व तुम्हीं लोगों के लिए चाहता हूँ। तुम्हें, भरत अथवा शत्रुघ्न को छोड़कर यदि मुझे कुछ भी सुख मिले, तो वह भस्मीभूत हो जाय।" ऐसे परहितचिंतक राम के प्रति प्रजा का प्रेम क्यों न होता?

वनगमन

राम के वनगमन के समय अयोध्यापुरी की समस्त जनता अपने प्राणप्रिय नायक के साथ चलने के लिए उमड़ पड़ी। लगने लगा मानो अवधपुरवासियों का राम-विहीन अयोध्या से कोई सरोकार ही नहीं रहा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय चरित्र और आस्था के संबल :: मर्य्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र

जिन्होंने पिता के वचन का पालन करते हुए चौदह वर्ष का वनवास स्वीकार कर युग-युग के लिए भारतीय चरित्र का एक शाश्वत मानदण्ड स्थापित कर दिया। साथ में भगवती सीता और भाई लक्ष्मण की भी झाँकी दिग्दर्शित है, जिन्होंने स्वेच्छा से राम के साथ वन जाना स्वीकार किया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सबहिं विचार कीन्ह मन माहीं।
राम लखन सिय बिनु सुख नाहीं।
जहाँ राम तहँ सबई समाजू।
बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू।
चले साथ अस मंत्र दृढ़ाई।
सुर दुर्लभ सुख सदन बिहाई।

राम का वनगमन अयोध्या का मातम बन गया। किसी व्यक्ति की लोकप्रियता का सबसे श्रेष्ठ मानदण्ड उसके विछोह पर होनेवाला संताप और उसके मिलन से होनेवाला आनंद ही है। मनुष्य की कौन कहे, राम के वनगमन के अवसर पर विह्वल होकर पशु-पक्षी भी रोदन करने लगे। प्रकृति भी अश्रुपात करते देखी गई।

राम का वनगमन अयोध्यावासियों के लिए अभिशाप सिद्ध हुआ, परन्तु वनवासी प्रफुल्लित हो उठे; वे अपने भाग्य की सराहना करने लगे। निषाद-समाज से लेकर ऋषि-मुनियों के समाज तक राम का स्वागत-अर्चन किया गया। राम को वन में ही अवधपुरी के दर्शन हुए। किंतु ऋषि-मुनि जैसे परम श्रेष्ठ जनों के द्वारा निज वन्दना होते देखकर राम को अभिमान नहीं हुआ। वह आदरणीय पुरुषों के प्रति यथोचित श्रद्धा और सम्मान प्रकट करने में कभी न चूके। शबरी जैसी निर्धन भीलनी के जूठे बेर खाकर तो राम ने अपने पतित-पावन चरित को उच्चता की सीमा पर ला खड़ा किया।

साधन-सम्पन्नावस्था में अपने बल-पराक्रम की डींग तो हर कोई हाँक सकता है, किंतु साधनहीन अवस्था में ऋषि-मुनियों के समक्ष 'निसिचरहीन करउँ महि' का प्रण भुजा उठाकर राम जैसा ही कोई धीरोदात्त पुरुष कर सकता है। राम को यह प्रण करने की आवश्यकता इस कारण पड़ी कि राक्षसों द्वारा मारे गए ऋषियों के रक्त से रँगी भूमि और हड्डियों के ढेर उन्हें व्यथित कर रहे थे। पीड़ितों के प्रति सहानुभूति और अत्याचारियों के प्रति क्रोध सद्पुरुषों का स्वाभाविक गुण है। राम भी इससे वंचित कैसे रहते?

सीता हरण

वनवास के काल में राम पर भीषण संकट आया; सती साध्वी सीता को राक्षसराज रावण छल से हरकर ले गया। कुटिला सूर्पणखा के वासनामय अपवित्र प्रस्ताव को स्वीकार न करने का पुरस्कार राम को सीता-हरण के रूप में मिला था। भीषणतम परिस्थितियों के बीच अडिग हिमालय के समान अचल खड़े रहनेवाले राम सीता पर आए संकट का स्मरण कर फूट-फूटकर रोने लगे। उनका शोक उस समय चरम सीमा पर पहुँच गया, जब उन्होंने विलाप के साथ इस प्रश्न को भी सम्बद्ध कर दिया--

"हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी॥"

इस प्रसंग को लेकर कुछ लोग राम को अधैर्यवान् समझने लगते हैं, परन्तु वे भूल जाते हैं कि सीता-हरण के समय विलाप करते राम रण-स्थल में जूझते योद्धा न होकर 'एक पत्नी स्थिते व्रतः' का पालन करनेवाले पति थे। पत्नी के दुःख से द्रवित न होनेवाला पति क्या पतिव्रता पत्नी का स्वामी होने का अधिकारी हो सकता है? यदि राम सीता के वियोग में व्यग्र न हुए होते, तो उन्हें महास्वार्थी और कपटी समझा जाता; उन्हें वासना की ऐसी कलुषित मूर्ति समझा जाता, जिसकी दृष्टि में नारी भोग की सामग्री के अतिरिक्त कुछ नहीं होती।

शक्ति-संगठन

वैसे तो राम के जीवन में प्रतिक्षण तीव्र गति के दर्शन होते हैं, किंतु सीता-हरण के पश्चात् उस गति को और भी प्रवाह मिलता है। सीता का उद्धार राक्षसी वृत्तियों से भारतीय नारी के उद्धार का प्रतीक बन जाता है। अब तक राक्षसराज रावण और धर्मपरायण राम के बीच जो प्रच्छन्न संघर्ष चल रहा था, वह प्रकट हो उठता है। राम देश की उन समस्त शक्तियों को एक सूत्र में संगठित करते हैं, जिन्हें धर्म प्रेम है, नैतिकता के प्रति आस्था है--फिर चाहे धर्म के प्रति प्रेम और नैतिकता के प्रति आस्था रखनेवाले रीछ-बंदरों के समान अपढ़ और मूढ़ ही क्यों न हों। पवनसुत की भक्ति और शक्ति, जांबवान् की योग्यता, सुग्रीव की सेना, बालि-सुत अंगद की दृढ़ता ये सब राम के इस अपार संगठन के सुदृढ़ आधार बनते हैं। पंपा-किष्किधा का अनाचारी राजा बालि राम की कुशाग्र राजनीति के समक्ष परास्त होता है और प्राण छोड़कर इस संसार से विदा हो जाता है।

पर्याप्त शक्ति संगठित होने के पश्चात् राम अपने को दो बातों की ओर केन्द्रीभूत करते हैं। एक तो जनमत को अपने पक्ष में करने की ओर, और दूसरे शत्रु को अपनी शक्ति से आतंकित करने की ओर। हनुमान् को दूत के रूप में लंका भेजा जाता है। सीता के दर्शन के पश्चात् लंका का दहन कर हनुमान् जहां लंकावासियों में आतंक का संचार कर देते हैं, वहाँ भगवती माता सीता के लौटाने के सम्बन्ध में रावण का नकारात्मक उत्तर प्राप्त कर राम के अभियान के प्रति जन-मानस में औचित्य का भाव भी निर्माण कर देते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राम-रावण-युद्ध : देवत्व-दानवत्व का संघर्ष

विचारणीय बात है कि जो पवनसुत हनुमान् रावण की शक्ति को चुनौती देकर उसकी स्वर्णमयी लंका को जलाने का सामर्थ्य रखते थे, वह क्या भगवती सीता को अशोक-वाटिका से लाकर भगवान् रामचन्द्र तक नहीं पहुँचा सकते थे ? निस्संदेह यह उनके बस से बाहर की बात न थी। किन्तु राम ऐसा नहीं चाहते थे। वह छल-कपट से सीता को प्राप्त करना नहीं चाहते थे; वह तो भुजदंडों के बल पर, रावण के दुर्ग में घुसकर, उसका सम्पूर्ण पाशविक शक्ति को कुचलकर ससम्मान सीता को वापस लाना चाहते थे। यथार्थ में राम-रावण की लड़ाई सीता के लिए नहीं थी; सीता तो निमित्त मात्र थीं। लड़ाई तो थी देवत्व और दानवत्व के बीच। राम देवत्व के प्रतीक थे, रावण दानवत्व का।

हनुमान् के वापस आने पर राम का अभियान प्रारम्भ होता है। वानर-भालुओं की विशाल सेना समुद्र-तट पर पहुँचती है। सागर मार्ग रोककर खड़ा हो जाता है। नल-नील अपनी कुशलता से सेतु बाँधकर बाधा दूर कर देते हैं। वैष्णव और शैवों के बीच मैत्री का भाव निर्माण करने के उद्देश्य से राम रामेश्वर की स्थापना करते हैं।

इसके पश्चात् एक अनोखा प्रसंग सामने आता है। स्वतः लंकाधिपति रावण का अनुज विभीषण अपने भाई को छोड़कर राम की शरण में चला आता है। राम के अनेक सेनापति तो विभीषण को बन्दी बनाने का अथवा वध करने का विचार करते हैं, किंतु शरणागतरक्षक राम निर्देश देते हैं--"शरणागत शत्रु भी यदि दीनता से प्रार्थना करे, तो उस पर भी आक्रमण नहीं करना चाहिए। शत्रु दुखी हो या अभिमानी, शरण में आने पर धर्मज्ञ को अपने जीवन का मोह त्यागकर शत्रु की रक्षा करनी चाहिए। (अतः) हे सुग्रीव, चाहे विभीषण हो अथवा स्वयं रावण, मैंने उसे शरण में ले लिया है। उसे मेरे पास ले आओ।"

नैतिकता का कितना उज्ज्वल उदाहरण है ! संसार का इतिहास इस प्रकार का दूसरा उदाहरण प्रस्तुत नहीं कर सकता ! राम की सेना में अकेले आकर अपने पति मेघनाद का शव लेकर सकुशल सुलोचना का लौट जाना, युद्ध के पश्चात् लक्ष्मण को रावण के चरणों में बैठकर उपदेश ग्रहण करने का निर्देश करना--ऐसे उदाहरण हैं, जो राम की नैतिकता का प्रमाण युग-युग तक प्रस्तुत करते रहेंगे। लक्ष्मण के शक्ति लगने पर राम का विलख-विलखकर रोना और सीता से भी अधिक लक्ष्मण के प्रति प्रेम प्रदर्शित करना, उनके उस पूर्व कथन को प्रमाणित करता है, जिसमें उन्होंने बंधुओं के कल्याण के लिए सर्वस्व न्योछावर करने का आश्वासन दिया था।

राम-रावण-युद्ध में राम के युद्धकौशल का उज्ज्वल उदाहरण सम्मुख आता है। यदि रावण बाण चलाकर वर्षा करता है, तो राम वायु चलाकर मेघों को क्षण भर में उड़ा देते हैं। यदि रावण माया फैलाता है, तो राम उस माया-जाल को काटकर वानरों की उद्विग्नता को हर लेते हैं।

मर्य्यादा-पुरुषोत्तम

राम मर्यादा को किंचित् भी भंग नहीं होने देते। लंका-विजय के पश्चात् प्राणप्रिय सीता जब तक अग्नि-प्रवेश कर अपने पावित्र्य को प्रमाणित नहीं कर देतीं, वह उन्हें स्वीकार नहीं करते। राम को सीता की पवित्रता पर संदेह नहीं था, किंतु जन-संदेहों के निर्मूलन के लिए वह सीता का परीक्षण आवश्यक समझते थे। यह घटना यह भी प्रमाणित करती है कि सीता के प्रति राम का प्रेम वासनाजन्य नहीं था।

राम को राज्य और सम्पत्ति के मोह ने भी कभी नहीं सताया। स्वर्णमयी लंका को जीतकर भी उन्होंने उसे रावण के अनुज विभीषण को लौटा दिया। न जाने इतने दिन में भरत की भावनाएँ क्या हो गई होंगी--इसका विचार कर लक्ष्मण ने एक बार लंका पर राज्य करने का प्रस्ताव राम के समक्ष रखा। किंतु राम ने इस प्रस्ताव के उत्तर में जो कुछ कहा, वह जहाँ उनकी निर्लोभी वृत्ति का युग-युग तक परिचय देता रहेगा, वहाँ उनकी देशभक्ति का गान भी गाता रहेगा। उन्होंने कहा था--"मुझे अपनी मातृभूमि स्वर्ग से भी अधिक प्रिय है। यह लंका यद्यपि सोने की है, तथापि मुझे किंचित् भी रुचिकर नहीं।" मातृभूमि के प्रति प्रेम का कैसा अनुपम उदाहरण है ! राम को स्वदेश के प्रति, स्वदेशवासियों के प्रति, स्वदेश के गिरि-सरिताओं के प्रति अगाध प्रेम था, अन्यथा उनके मुख से कैसे निकलता—

जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। वेद पुरान विदित जगु जाना।।
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोउ।।

तमिल कवि कम्बर के अमर शब्दों में "रामराज्य के अन्तर्गत कोई ऐसा नहीं, जिसे पर्याप्त न मिलता हो; कोई ऐसा नहीं, जिसे आवश्यकता से अधिक मिलता हो; कोई ऐसा नहीं, जो स्वतः का स्वामी न हो; कोई ऐसा नहीं, जो दूसरे का स्वामी हो।"

ऐसे ही 'रामराज्य' में सम्भव है कि एक रजक के कथन पर सीता जैसी पवित्र पत्नी को त्यागा जा सके !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चीन का महान् लोकशिक्षक :: महापुरुष कुंग (कनफ्यूशियस)

जिस युग ने भारत में बुद्ध और महावीर तथा यूनान में सुकरात जैसे महान् लोकशिक्षकों को जन्म दिया, उसी समय महादेश चीन की गोद में भी एक ऐसा अनूठा रत्न उपजा, जिसकी आभा से वहाँ के कोटि-कोटि जनों को जीवन की अन्धकारपूर्ण डगर पर प्रकाश और शान्ति का वरदान मिला। कौन था यह महामनस्वी? आइए, उसका परिचय प्राप्त करें।

मानव की वेदना से तड़पकर जिन महापुरुषों ने उसे दूर करने की चेष्टा में अपने को खपाया है, उनमें चीन का वह महान् व्यक्ति—जो बचपन में 'क्यू', विद्यार्थी-जीवन में 'चुङ्ग-नी' और प्रौढ़ होने पर 'कुङ्ग-फू-जी' के नाम से विख्यात हुआ—एक विशिष्ट स्थान रखता है। चीन से बाहर की दुनिया आज उसे पाश्चात्य लेखकों द्वारा रखे गए लातिनी नाम 'कनफ्यूशियस' से ही पहचानती है, किन्तु महादेश चीन पिछले ढाई हजार वर्षों से इस महात्मा को 'कुङ्ग' ही के नाम से पूजता आ रहा है।

जन्म और बचपन

आधुनिक चीन के किनफू-हियेन नामक कस्बे का नाम कई शताब्दी पूर्व त्सिउई था। ई० पू० छटी शताब्दी में एक शानदार सैनिक जीवन बिताकर वहाँ के प्रमुख मैजिस्ट्रेट हुए शू-लिङ्ग-ही। अपने एकमात्र पुत्र के मर जाने के कारण ६ पुत्रियों के पिता विधुर शू-लिङ्ग-ही ने बुढ़ापे में अपने पद के प्रभाव से एक सरदार परिवार की कन्या का पाणिग्रहण किया। इन्हीं दम्पति ने ईसा से ५५० वर्ष पूर्व शीतकाल में एक पुत्र को जन्म दिया। खुशियाँ मनीं, शादियाने बजे। पर क्या उस सुदूर अतीत की छांह में बैठकर इस पुत्रोत्पत्ति पर खुशियाँ मनानेवालों को स्वप्न में भी यह आभास हो सका होगा कि तातारी चेहरेवाला वह नवागत शिशु मानव-जाति का एक महान् विचारक, पूर्व का एक उत्कट दार्शनिक और महादेश चीन की असंख्य पीढ़ियों का श्रद्धेय लोकशिक्षक होगा?

और इस घटना के ठीक तीन ही साल बाद वृद्ध शू-लिङ्ग-ही का देहान्त हो गया। अब नवजात शिशु की शिक्षा-दीक्षा और रक्षा का सारा भार आ पड़ा उसकी युवती विधवा माता पर। वैसे तो बच्चे की शिक्षा बहुत-कुछ माता पर ही निर्भर करती है, पर चीनियों का विश्वास इस बात में औरों से भी अधिक बढ़ा हुआ है। चीनियों की तो कहावत ही है कि "बच्चे की शिक्षा उसकी उत्पत्ति से पहले ही शुरू हो जाती है।" अतएव बालक कुङ्ग की भी प्रारंभिक शिक्षा में माता का सबसे बड़ा हाथ रहा।

इसके बाद पास ही एक मदरसे में किताबी शिक्षा शुरू हुई, और कहा जाता है कि चौदह साल की उम्र में ही इस प्रतिभाशाली बालक ने वह सब कुछ पढ़ डाला, जो उन दिनों के अध्यापक पढ़ा सकते थे।

पितृहीन बालक—निराश्रित माता का वह एकमात्र आश्रय—पढ़ता भी और अक्सर मछलियों का शिकार और अन्य जन्तुओं का आखेट भी किया करता, ताकि मा का बोझ कुछ हलका हो सके। इससे उसके अध्ययन की व्यवस्था और रुचि में व्यवधान तो उपस्थित अवश्य होता, पर इसी के फलस्वरूप उसकी प्रवृत्ति गम्भीर विचार और एकान्त चिंतन की ओर होने लगी। अन्त में उसके सत्रह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साल की अवस्था तक पहुँचते-न-पहुँचते यह अवसर आ गया कि मा अपने बेटे को अध्ययन से विरत करके किसी लाभदायक व्यवसाय में लगा सके। युवक की विद्या की ख्याति राजदरबार तक पहुँच ही चुकी थी।

अब धन की प्रचुरता हुई, शादी हुई, बच्चा भी हुआ। दरबार में सम्मान होने और द्रव्याभाव के मिट जाने से मानव-जाति के इस भावी शिक्षक की जीवन-धारा एक विशेष दिशा में प्रवाहित होने लगी। पर शीघ्र ही वह धारा एक दिन रुक गई और उसकी दिशा एकदम बदल गई।

जीवन का नया मोड़

अभी उसका चौबीसवां ही साल लग रहा था कि उसकी प्रेममयी माता की मृत्यु हो गई। यह असह्य आघात उस मानवहितैषी का कोमल हृदय सहन नहीं कर सका। माता की अन्त्येष्टि क्रिया समाप्त करके अब उसने पुनः अपने एकान्त को अपनाना प्रारम्भ कर दिया। फिर वही चिन्तन, मनन, शिक्षण आदि!

महापुरुष कुङ्ग या कनफ्यूशियस

पूर्व के अनेक भाग्यवादी विचारकों ने मानव के दुःखों का निवारण प्रायः सन्तोष और सहनशीलता में, दुःखों के आदर्शीकरण में पाया है। दुर्बलों को ऊँचा उठाना नहीं वरन् उन पर दया करना उनका आदर्श रहा है। और इसी कारण अबला स्त्री अपनी शारीरिक दुर्बलताओं के कारण उनकी मनोवृत्ति की अभिव्यक्ति की एक प्रमुख भूमि रही है। "पति को स्वामी की तरह आज्ञा देना चाहिए, और पत्नी को उसके आगे आत्म-समर्पण करना चाहिए, उसका आज्ञापालन करना चाहिए। पति सदा नेतृत्व करता और आज्ञा देता हुआ, तथा पत्नी सदा अनुगमन और समर्पण करती हुई चले। और ये सब बातें न्याय, पवित्रता और सम्मानपूर्वक निश्चित मर्यादा के भीतर ही होनी चाहिएँ," कनफ्यूशियस की भाँति इस विचार के पोषक अधिकांश दार्शनिकों के जीवन में सदा ही यह दुर्घटना रही है कि स्वयं उनका ही वैवाहिक जीवन सुखमय नहीं रहा। कहते हैं, लगभग २० वर्ष की अवस्था में ही कुङ्ग को अपनी पत्नी को त्याग देना पड़ा था। इतिहास को इसका कोई कारण ज्ञात नहीं है और न स्वयं कनफ्यूशियस ही ने इस विषय पर प्रकाश डाला है। पर इतना निर्विवाद है कि यह दुर्घटना पत्नी के किसी दुष्कृत्य के कारण नहीं घटी थी, क्योंकि कई साल बाद जब कन्फ्यूशियस ने उसकी मृत्यु का समाचार सुना था, तो वह दुःखी हुआ था और उसने उसके प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित किया था।

इस विवाहोच्छेद का कारण यह भी नहीं कहा जा सकता कि कुङ्ग मौलिक रूप से विवाह के विरुद्ध और आजीवन ब्रह्मचर्य का पक्षपाती रहा हो, क्योंकि एक बार लू (चीन का एक प्रदेश) के राज्याधीश से विवाह पर बात करते हुए उसने कहा था—"विवाह मनुष्य की एक स्वाभाविक अवस्था है, जिसके द्वारा वह इस संसार में अपना कर्त्तव्य पूरा करने की योग्यता प्राप्त करता है।"

राज्यमंत्री और न्यायाधीश के रूप में

लू का राज्याधीश अपने मुसाहिबों के प्रभाव से पहले तो कुङ्ग की शिक्षा का घोर विरोधी हो गया था, पर राज्य की दिनों-दिन बिगड़ती हुई अवस्था ने उसे अंत में विवश किया कि इस विचारक से सहायता प्राप्त करे और अपनी मिटती हुई सत्ता को पुनः स्थापित करे। अतएव कनफ्यूशियस फिर सार्वजनिक जीवन में एक मंत्री के रूप में आया। इस पद पर स्थापित होते ही उसने लोकहित के अनेक कामों से राज्य की अवस्था में कायापलट कर दिया। मंत्री के पद के साथ ही उन दिनों प्रधान न्यायाधीश का पद भी जुड़ा हुआ था। अतएव शासन के साथ-साथ उसे न्याय भी करना पड़ता था।

एक बार आवारागर्दी की हालत में त्से प्रदेश की सीमा में पहुँचने पर वहाँ के राज्याधीश ने कुङ्ग से प्रश्न किया था कि "अच्छा शासन किसे कहते हैं?"

कनफ्यूशियस ने तत्काल जवाब दिया था—"अच्छे शासन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की सफलता उस स्वाभाविक सम्बन्ध को कायम रखने में है, जो मनुष्य-मनुष्य के बीच होनी चाहिए। शासक में राजोचित चरित्र, प्रजा में राजभक्ति, माता-पिता में वात्सल्य ग्रौर बच्चों में श्रद्धा होनी चाहिए।"

सामन्तशाही के ध्वंसावशेष पर खड़ी ग्राज की पीढ़ी को यह वक्तव्य ग्ररुचिकर हो सकता है, पर दो-ढाई हजार वर्ष पूर्व के उस प्रारंभिक युग में, जब कि सभ्यता ग्रपनी शैशवावस्था से धीरे-धीरे उठ रही थी, इतना कह सकना भी क्या कुछ ग्रासान था? उन दिनों न्याय होता था प्रायः सरदारों और राजाग्रों के लिए, ग्राम जनता के लिए नहीं। कनफ्यूशियस ने इस प्रथा को भंग किया ग्रौर ग्रपने न्यायाधीश-पद से उसने एक बार एक दुश्चरित्र सरदार को प्राणदंड दिया। इस ग्रभूतपूर्व कार्य पर क्षोभ का एक समुद्र उमड़ पड़ा और कनफ्यूशियस के शिष्यों ग्रौर मित्रों तक को इस पर आपत्ति हुई। पर वह ग्रटल था। उसने कहा—"मैं ग्राप लोगों की भावनाओं का आदर करता हूँ, यद्यपि ग्राप गलती पर हैं। पर ग्रापकी गलती ग्रापके ग्रज्ञान पर निर्भर है। क्या आपको मालूम नहीं है कि बहुतेरे अपराध ऐसे होते हैं, जो देखने में साधारण-से लगते हैं, पर अवहेलना करने पर कालान्तर में मनुष्य को बड़ा ग्रप-राधी बना देते हैं। फिर एक ऐसा सरदार तो, जो स्वभाव से ही पाखंडी, झूठा, निन्दक ग्रौर अत्याचारी है, कठिन-से-कठिन सजा के योग्य है। जिसके लिए ग्राप ग्रफसोस कर रहे हैं, वह न सिर्फ एक बल्कि ग्रनेक अपराधों का ग्रपराधी था, जिसे माफ करना कमजोरी होती, न्याय के साथ विश्वासघात होता।"

न्यायाधीश के रूप में कनफ्यूशियस

पर रूढ़िवादियों का इतने से समाधान नहीं हो सका। उनकी ईर्ष्या ग्रौर क्रोध बढ़ता ही गया, यद्यपि राज्य की इससे उन्नति ही हुई। लू के राज्य की उन्नति और जनता के सुख-संतोष से पड़ोस के राज्य त्से का राज्याधीश भी जल-भुन गया। सब प्रयत्न करके थक जाने पर भी जब वह कनफ्यूशियस को नीचा नहीं दिखा सका, तो ग्रन्त में लू के राज्याधीश को कर्त्तव्यभ्रष्ट करने के लिए उसने ग्रपने राज्य की चुनी हुई सुन्दरियों का एक दल उपहारस्वरूप लू के शासक के दरबार में भेजा, जिन्होंने ग्रपने जादू का चमत्कार ग्राते ही दिखाया। इन युवतियों के जाल में फँसकर लू के राजा ने महल से निकलना ग्रौर राजकाज देखना ही छोड़ दिया। कनफ्यूशियस ने उसे कर्त्तव्य-पथ पर लाने की बड़ी चेष्टा की, पर वह उसको सुधार नहीं सका। ग्रन्त में ग्लानियुक्त होकर वह त्यागपत्र देकर चलता बना।

कनफ्यूशियस के लिए एक लेखक ने लिखा है कि 'उससे ग्रधिक यह कोई आदमी नहीं जान पाया कि कब पद ग्रहण करना चाहिए, कब तक उस पर स्थिर रहना चाहिए ग्रौर कब उसे त्याग देना चाहिए।'

जीवन के अंतिम दिन

वर्षों खानाबदोशी करते रहने के बाद वह फिर ग्रपने जन्म-स्थान को लौटा, ग्रौर ग्राखिर बुढ़ापे ने उसे ग्रा घेरा। इस बीच उसकी स्त्री मर चुकी थी ग्रौर लू को वापस ग्राने के साल भर के भीतर ही उसका पुत्र भी जाता रहा था। इस दार्शनिक के ग्रथक प्रयत्नों को प्रेरणा देनेवाले दिवा-स्वप्न ग्रब भंग हो चले थे। परि-पक्व अवस्था ग्रौर विचारों ने उसे ग्रब बहुत शान्त और सुस्थिर बना दिया था, यद्यपि ग्राखिरी दम तक वह लोकशिक्षण का कार्य करता ही रहा। पर ग्रन्त में जब उसकी शारीरिक दुर्बलता बढ़ती गई ग्रौर ग्रपने स्वस्थ जीवन का भरोसा उठता गया, तो उसे ग्रपनी असफलता का बड़ा दुःख होने लगा। यद्यपि उसके सिद्धांतों का प्रचार बड़ी तेजी से हो रहा था ग्रौर सहस्रों ज्ञानपिपासु उन पर चिन्तन कर रहे थे, साथ ही चुने हुए शिष्यों का एक विश्वासपात्र दल भी उसकी शिक्षा के ग्राधार पर लोकशिक्षण का कार्य करने लगा था, पर कनफ्यूशियस ने इससे कहीं ग्रधिक की आशा कर रक्खी थी।

कनफ्यूशियस ने अन्य लोकशिक्षकों की तरह ग्रपना कोई अलग धर्म नहीं स्थापित किया, यद्यपि उसके बाद 'कनफ्यूशियन धर्म' नामक एक मत स्वयं ही पैदा हो गया, और ग्राज के चीन का लगभग एक-तिहाई जन-समूह इसी मत को मानता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कनफ्यूशियस के जीवनकाल का वह समय, जब कि वह मुसीबत का मारा यहाँ से वहाँ दर-दर की खाक छानते हुए भटकता फिरता रहा, एक दर्दभरी कहानी है। अपने कुछ शिष्यों को साथ लिये हुए वह एक राज्य से दूसरे राज्य की ठोकरें खाता रहा, पर कहीं भी उसे पनाह न मिली। इस तरह भटकने की दशा में कई ऐसे विरक्त संन्यासियों से उसकी भेंट हुई, जो मन में संसार के प्रति ग्लानि उत्पन्न हो जाने के कारण सब कुछ छोड़-छाड़कर दुनिया से दूर बसते थे। कनफ्यूशियस को इस प्रकार मारे-मारे फिरने के बावजूद भी शिक्षा द्वारा क्रूर मानव-जाति का सुधार करने की ओर प्रवृत्त देखकर ये लोग आश्चर्य करते थे। वे कहते—'जो कभी बदल नहीं सकती, उस दुनिया की क्रूर प्रकृति और दुष्ट बुद्धि को बदलने का व्यर्थ प्रयास सिवा मूर्खता के और क्या है?' पर इसके उत्तर में कनफ्यूशियस कहता—'मानव-समाज से दूर हटकर उन पशुओं या पक्षियों के साथ रहना भी तो, जो मनुष्य को समझ नहीं सकते, किसी के लिए असंभव है।' वह इन लोगों से पूछता,—"आखिर आप ही बताइए कि यदि मैं पीड़ित मानव का नहीं, तो और किसका साथ दूँ?" पर ढाई हजार वर्ष पूर्व के वे लोग उसकी यह बात समझ नहीं पाते थे और इस मुसीबत की हालत में भी जब वह लगातार उपदेश देता, पीड़ित जनों को आश्वासन देता और एक आदर्श राज्य की स्थापना के स्वप्न देखता हुआ भ्रमण करता, तो वे लोग उसे एक पगला समझते थे।

शिष्यों के साथ विवाद में लीन महात्मा कुङ्ग

उनका वह आदर्श राज्य कभी भी स्थापित न हो सका, किन्तु उसकी दी हुई शिक्षा दृढ़ रूप से आनेवाली पीढ़ियों के मन पर अङ्कित हो गई। लगातार ढाई हजार वर्ष से लाखों-करोड़ों मनुष्यों के हृदय पर शासन करते रहना क्या किसी भी बड़े-से-बड़े साम्राज्य का अधिपति होने से कम गौरव की बात है? इतिहास में सिकंदर, चंगीजखाँ और नैपोलियन जैसे अनेक विश्वविजेताओं की गाथाएँ हमें मिलती हैं, पर वे अब इतिहास के पन्नों ही में रह गई हैं। इसके विपरीत, विजेताओं का एक और वर्ग भी हमें मिलता है, जिन्होंने मनुष्य को कुचलकर भूमि या संपत्ति पर विजय पाने के बजाय अपना सर्वस्व त्यागकर मनुष्यों के हृदय पर विजय पाने ही में अधिक संतोष माना। ऐसे लोग प्रायः अपने जीवनकाल में भिखारी ही रहे—उनमें से बहुतेरे पीड़ित भी किए गए—किन्तु आज न सिर्फ इतिहास ही में उनके नाम स्वर्णाक्षरों में अङ्कित है, प्रत्युत उनका प्रकाश हजारों-लाखों घरों का अंधकार दूर करता हुआ उनकी अमरता का परिचय दे रहा है। महात्मा कुङ्ग भी इसी प्रकार के लोगों में से थे।

लाओत्जे से भेंट

कुङ्ग ही के समकालीन एक और महात्मा चीन में हो गए हैं, जिनका वहां की जनता पर काफी प्रभाव पड़ा है। इन महापुरुष का नाम था लाओत्जे। लाओत्जे का जन्म कनफ्यूशियस की भाँति उच्च श्रेणी के परिवार में नहीं, वरन्

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एक गरीब झोपड़े में हुआ था। कनफ्यूशियस जिन सिद्धान्तों का चीन में प्रचार कर रहा था, वे लाओत्जे के सिद्धान्तों से बिलकुल भिन्न थे। कनफ्यूशियस जीवन और संसार से दूर भागने के बदले उसे अधिक संगठित और सुखपूर्ण बनाने का पक्षपाती था, जब कि लाओत्जे संसार को छोड़कर उदासीन भाव ग्रहण करने के पक्ष में थे। कहते हैं, एक बार चीन के इन दो समकालीन महापुरुषों की भेंट हुई थी। उन दिनों लाओत्जे पेकिंग नगर के समीप ही वन में एकान्तवास कर रहे थे। उनकी आयु इस समय लगभग १०० वर्ष थी। कनफ्यूशियस ने अत्यन्त विनम्रतापूर्वक इस वृद्ध महात्मा से उनकी शिक्षा या उपदेशों के सम्बन्ध में कुछ बतलाने के लिए प्रार्थना की। कहते हैं कि लाओत्जे ने उसे आड़े हाथों लिया और उलटे उसे फटकारना शुरू किया।

पर कनफ्यूशियस इससे तनिक भी विचलित या नाराज न हुआ। वह शुद्ध जिज्ञासा के भाव से प्रेरित होकर लाओत्जे के समीप आया था और श्रद्धा के साथ उसकी सारी बातें सुन रहा था। लाओत्जे ने पूछा—"तउ (ब्रह्म) के बारे में तुमने क्या जान पाया है ?" इस प्रश्न के उत्तर में कनफ्यूशियस ने कहा,—"अफसोस! मैं पिछले ३० वर्षों से उसकी खोज में हूँ, पर अब तक मैं उसे नहीं जान पाया।"

कुङ्ग के समकालीन ब्रह्मवादी महात्मा लाओत्जे, जो संसार छोड़कर उदासीन भाव ग्रहण करने के पक्ष में थे।

कहते हैं, इस पर लाओत्जे ने कनफ्यूशियस को एक साधारण कोटि का मनुष्य समझकर तत्त्व के संबंध में अधिक कुछ भी न बताया। वास्तव में, लाओत्जे ने कनफ्यूशियस के प्रति बड़ा अप्रिय बर्त्ताव किया। पर कनफ्यूसियस ने तनिक भी बुरा न माना। उलटे वह लाओत्जे के बारे में ऊँचा भाव लेकर ही वापस आया। हमें उपर्युक्त घटना से कनफ्यूशियस के चरित्र की एक विशेष झलक मिलती है। वह सचमुच ही एक सच्चा मनुष्य था और इससे अधिक होने का उसने कभी भी दावा नहीं किया। यद्यपि उसके बाद उसके नाम से एक मत स्थापित हो गया, यहाँ तक कि लोग उसके नाम पर मंदिर बनाकर उसकी पूजा भी करने लगे, परन्तु स्वयं उसने अपने जीवनकाल में न कभी किसी अलौकिकता का दावा किया, न अपने को पैगम्बर या मसीहा ही बतलाया।

शिक्षा का सार

कनफ्यूशियस की शिक्षा का सार उसके द्वारा प्रतिपादित इस सुन्दर वाक्य में निहित है—"दूसरों से तुम अपने प्रति जैसे बर्त्ताव की आशा करते हो, वैसा ही बर्त्ताव तुम स्वयं भी औरों के साथ करो।" वास्तव में बुद्ध, जरथुस्त्र आदि संसार के अन्य कई धर्म-संस्थापकों और कनफ्यूशियस में एक महान् अन्तर है। उन लोगों ने प्राचीन सामाजिक या धार्मिक रूढ़ियों के ढाँचे को गिराकर उस पर एक नई इमारत खड़ी की थी। इसके विपरीत कनफ्यूशियस न तो विध्वंस, न बिल्कुल नवीन रचना ही का पक्षपाती था। वह समाज के ढाँचे का प्राचीन रूप स्थायी रखते हुए उसे और भी अधिक संगठित करने का हिमायती था।

कनफ्यूशियस के बाद उसके मत को प्रतिपादित करनेवालों में मेन्शियस (३७२-२८९ ई० पू०) बड़े स्वतंत्र विचारवाला तत्त्वचिन्तक हुआ। मानव प्रकृति की जन्मजात अच्छाई में उसकी गहरी श्रद्धा थी। वह मानता था कि केवल बुराई के वातावरण के प्रभाव से मनुष्य के विचार और कर्म बुरे बन जाते हैं। अतः हमें अपनी जन्मजात सद्प्रवृत्तियों के विकास के लिए आत्म-संयम की ओर ध्यान देना चाहिए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैदिक युग की महान् विभूति :: महर्षि याज्ञवल्क्य

भारत की ऋषि-परम्परा में याज्ञवल्क्य का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित होने योग्य है। याज्ञवल्क्य उपनिषदों के विचारकों के शिरोमणि हैं। धर्मशास्त्र के क्षेत्र में भी स्मृतिकार के रूप में उनकी देन अमर है। प्रस्तुत प्रकरण में प्राचीन भारत की इसी महान् विभूति का परिचय दिया जा रहा है।

रत ऋषि-मुनियों की भूमि है। हर युग में और हर काल में ऐसे नर-श्रेष्ठ यहाँ होते रहे हैं, जिन्होंने शाश्वत ज्ञान की प्राप्ति के हेतु सर्वस्व त्याग दिया और शारीरिक सुख-सुविधा को सर्वथा त्याज्य समझा। इन विरागी पुरुषों द्वारा प्रसूत ज्ञान के प्रकाश में ही भारतीय समाज सदा से अपना मार्ग निश्चित करता आया है। इन महापुरुषों ने स्वयं को सांसारिक बंधनों से मुक्त रखते हुए भी अपना सम्पूर्ण जीवन समाज के कल्याण के निमित्त अर्पित किया। उन्होंने ऐसे उत्कृष्ट सिद्धान्तों का निदर्शन किया, जिनके आधार पर समाज को युगयुगान्त तक धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की समन्वित प्राप्ति होती रहेगी। वैदिक काल की अन्यतम विभूति महर्षि याज्ञवल्क्य भी इसी प्रकार के महापुरुषों की कोटि में आते हैं।

अध्यात्म-विद्या की साक्षात् मूर्ति और महान् समाजशास्त्री

याज्ञवल्क्य जी ने ज्ञान-क्षेत्र के इतने कक्षों को प्रकाशित किया है कि उन्हें 'बहुज्ञ' की संज्ञा से विभूषित करना भी पर्याप्त प्रतीत नहीं होता। जब हम बृहदारण्यकोपनिषद् में उनके स्वरूप का अवलोकन करते हैं, तो लगता है मानो वह अध्यात्म-विद्या की साक्षात् मूर्ति हों और जब हम याज्ञवल्क्य-स्मृति का पारायण करते हैं, तो लगता है मानो वह ऐसे महान् समाजशास्त्री हैं, जिसकी दृष्टि से समाज की कोई भी समस्या ओझल न रह सकी हो। लौकिकता और अलौकिकता का कैसा अद्भुत समन्वय है!

याज्ञवल्क्य मिथिला के वासी थे। वाजसेनी उनके पिता थे। प्रारम्भ में उन्होंने उद्दालक आरुणि नामक गुरु से शिक्षा ग्रहण की थी। बाद में उनके मामा महर्षि वैशम्पायन ने उन्हें अपना शिष्य बनाया। किंतु एक दिन एक ऐसी घटना घटित हुई कि याज्ञवल्क्य को समस्त संगृहीत ज्ञान त्यागकर महर्षि वैशम्पायन के पास से चला जाना पड़ा।

पितृश्राद्ध में व्यस्त होने के कारण वैशम्पायन जी ऋषि-गोष्ठी में उपस्थित न हो सके, जिसके कारण उन्हें वाचिक ब्रह्महत्या का अपराध लगा। उन्होंने अपने समस्त शिष्यों को सम्मिलित रूप में उक्त पाप के प्रायश्चित का आदेश किया।

महर्षि के भानजे होने के कारण याज्ञवल्क्य अति धृष्ट हो गए थे; उन्होंने उत्तर दिया, "ये बच्चे क्या प्रायश्चित करेंगे! मैं अकेला ही प्रायश्चित कर दूँगा।"

वैशम्पायन जी याज्ञवल्क्य की इस उद्दंडता से अत्यंत रुष्ट हो गए; उन्होंने ब्राह्मण-बालकों के अपमान के दण्डस्वरूप उन्हें समस्त श्रुतियाँ त्याग देने का आदेश दिया। याज्ञवल्क्य ने आदेश का अक्षरशः पालन किया। कहते हैं, याज्ञवल्क्य द्वारा त्यागी गई श्रुतियों को ऋषियों ने तीतर बनकर ग्रहण किया। कृष्ण-यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा इसी को कहा जाता है।

अति कठोर परिश्रम से अर्जित श्रुति-ज्ञान को त्यागकर क्या याज्ञवल्क्य जी निरुत्साहित हो गए; क्या ज्ञानी बनने का उनका निश्चय समाप्त हो गया? नहीं। उन्होंने संकल्प किया—"मैं अब किसी मनुष्य को गुरु नहीं बनाऊंगा, स्वतः

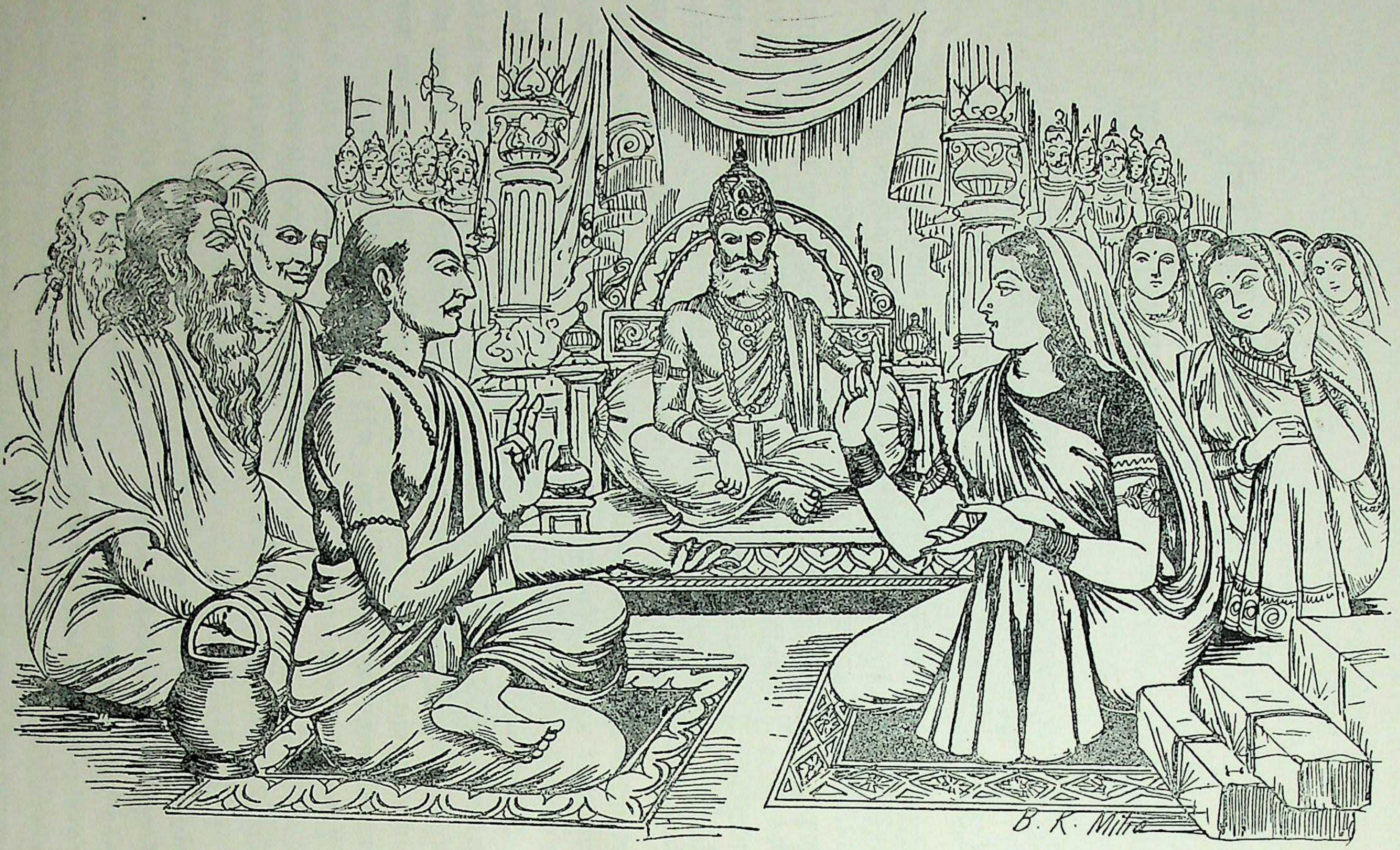

जनक के बहुदक्षिण-यज्ञ में महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा विदुषी गार्गी के प्रश्नों का समाधान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ज्ञानार्जन करूँगा।" इस अटल निश्चय के साथ उन्होंने सूर्य भगवान् की उपासना की। कहते हैं, सूर्य उनकी तपस्या से संतुष्ट हुए और उन्होंने अश्व के रूप में उन्हें शुक्ल यजुर्वेद का उपदेश किया। इस शाखा को वाजसनेय शाखा कहा जाता है। प्रत्यक्ष सूर्य ने याज्ञवल्क्य को जो ज्ञान प्रदान किया, इस सम्बन्ध में विवाद हो सकता है, किन्तु इसके सम्बन्ध में कौन सन्देह कर सकता है कि याज्ञवल्क्य जी द्वारा जिस ज्ञान का प्रतिपादन किया गया, वह सूर्य के प्रकाश के समान ही उज्ज्वल था ?

लोकोक्ति है, ज्ञान व्यक्ति को निरभिमानी और विनम्र बनाता है। अगाध ज्ञान के सागर में डुबकी लगाकर याज्ञवल्क्य भी अति विनम्र बन गए। मिथिला के राजा जनक से ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने में भी उन्होंने संकोच का अनुभव नहीं किया।

मैत्रेयी को अमृत-तत्व का उपदेश

याज्ञवल्क्य के दो पत्नियाँ थीं--मैत्रेयी और कात्यायनी। मैत्रेयी अत्यन्त ज्ञानसम्पन्ना थीं। बृहदारण्यकोपनिषद् में उनसे सम्बन्धित एक अति रोचक कथा का उल्लेख है। संन्यास ग्रहण करने से पूर्व याज्ञवल्क्य जी ने मैत्रेयी को अपने पास बुलाकर कहा--"मैत्रेयी ! मैं अब इस गृहस्थाश्रम को त्याग कर संन्यास ग्रहण करना चाहता हूँ। तुम दोनों (पत्नियाँ) मेरे पीछे आपस में झगड़ा न करो और सुख-पूर्वक रह सको, इसलिए मैं चाहता हूँ कि तुम दोनों के बीच घर की समस्त सम्पत्ति आधी-आधी बाँट दूँ।"

मैत्रेयी को लगा कि पतिदेव जिस मार्ग का अवलंबन कर रहे हैं, वह हो न हो इस लौकिक मार्ग से अवश्य श्रेष्ठ होगा, और इसलिए उसने प्रश्न किया—"भगवन् ! यदि मुझे धनधान्य से परिपूर्ण समस्त पृथ्वी मिल जाय, तो क्या उससे मैं अमृत-तत्त्व प्राप्त कर सकती हूँ ?"

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया – "नहीं, नहीं ! धनयुक्त पृथ्वी की प्राप्ति से तेरा धनिकों का-सा जीवन हो सकता है, परन्तु उससे अमृत-तत्त्व की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती।"

इस पर मैत्रेयी ने कहा--"जिससे मेरा मरना न छूटे, उस वस्तु को लेकर क्या करूँगी ! भगवन् ! जो आपके पास है, उसी परम धन को मुझे प्रदान कीजिए।"

इस उत्तर से याज्ञवल्क्य अति प्रसन्न हुए और उन्होंने मैत्रेयी को ब्रह्मवाद और आत्मवाद के गूढ़तम रहस्यों का ज्ञान कराया। महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा पत्नी को दिया गया वह ज्ञानोपदेश बृहदारण्यकोपनिषद् में संकलित है और भारतीय दर्शन का प्रमुख अंग है।

जनक के बहुदक्षिण-यज्ञ में

बृहदारण्यकोपनिषद् में एक और प्रेरणादायक प्रसंग का वर्णन है। एक बार मिथिला के राजा जनक ने बहुदक्षिण नामक महायज्ञ का आयोजन किया। यज्ञ में कुरु, पाञ्चाल आदि प्रदेशों के बहुत-से ब्राह्मण एकत्र हुए। जनक ने ब्राह्मणों को बहुत दक्षिणा दी और सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता का परिचय प्राप्त करने के उद्देश्य से अन्त में वह गौशाला से एक हजार गायें निकालकर लाए। प्रत्येक गाय के प्रत्येक सींग पर सोने की दस-दस मुहरें बँधी हुई थीं। जनक ने ब्राह्मणों को सम्बोधित किया--"पूज्य ब्राह्मणो ! आप में से जो ब्रह्मतत्त्व का सर्वाधिक ज्ञान रखता हो, वह इन गायों को ले जाय।"

किसी ब्राह्मण को गाएँ ले जाने का साहस न हो सका। अन्त में महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्य को गाएँ ले जाने का आदेश दिया। यह देखकर उपस्थित ब्राह्मणों में खलबली मच गई। उनको याज्ञवल्क्य का कथन अभिमान मात्र लगा। उन्होंने याज्ञवल्क्य से प्रश्न पर प्रश्न पूछना प्रारम्भ कर दिए। सर्वप्रथम जनक के होता ऋत्विज् अश्वल ने प्रश्न किया। जब याज्ञवल्क्य ने उसके प्रश्न का समाधान-कारक उत्तर प्रस्तुत कर दिया, तब ऋतभागपुत्र आर्तभाग, लह्यपुत्र भुज्यु, चक्रपुत्र उशस्त, कुषीतकपुत्र कहोल, वचक्नुपुत्री गार्गी और अरुणपुत्र उद्दालक ने अनेक गम्भीर प्रश्न किए। याज्ञवल्क्य ने सभी प्रश्नों का समुचित उत्तर दिया। अन्त में महाविदुषी गार्गी ने पुनः प्रश्न पूछना प्रारम्भ किए। गार्गी का सर्वप्रथम प्रश्न था--"हे याज्ञवल्क्य ! शास्त्रज्ञों के अनुसार जो ब्रह्माण्ड से ऊपर है, जो ब्रह्माण्ड से नीचे है, जो स्वर्ग और पृथ्वी के बीच में स्थित है और जो भूत, वर्तमान तथा भविष्य रूप है, वह 'सूत्रात्मा' किसमें ओतप्रोत है ?"

"अन्तर्यामीरूप आकाश में, गार्गी !" याज्ञवल्क्य का उत्तर था। इतना स्पष्ट उत्तर सुनकर गार्गी ने याज्ञवल्क्य को नमस्कार किया और पुनः दूसरा प्रश्न किया--"ठीक है, 'सूत्रात्मा' आकाश में ओतप्रोत है; किंतु आकाश किसमें ओतप्रोत है ?"

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया—"अक्षर में—उस अक्षर में जो स्थूल से भिन्न है; जो सूक्ष्म से भिन्न है; जो ह्रस्व से भिन्न है; जो दीर्घ से भिन्न है; जो लोहित से भिन्न है; जो स्नेह से भिन्न है; जो प्रकाश से भिन्न है; जो अंधकार से भिन्न है; जो वायु से भिन्न है; जो आकाश से भिन्न है;

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जो सङ्गरहित, रसरहित, प्राणरहित, गंधरहित, चक्षुरहित, श्रोत्ररहित, वाणीरहित, मनरहित, तेजरहित, मुखरहित, परिमाणरहित, छिद्ररहित, और देशकाल-वस्तु आदि की सीमा से रहित सर्वव्यापी व अपरिच्छिन्न है; जो कुछ नहीं खाता और जिसे किसी के द्वारा नहीं खाया जाता।"

इसके पश्चात् ब्रह्म का नियन्तापन स्पष्ट करते हुए याज्ञवल्क्य ने कहा—"हे गार्गी, जो पुरुष इस अक्षर को समझने से पूर्व इस लोक से प्रस्थान करता है (अर्थात् मृत्यु को प्राप्त होता है) वह दीन अर्थात् दया के योग्य है और जो इस अक्षर को जानकर इस लोक को त्यागता है, वह ब्रह्मविद् या मुक्त हो जाता है।"

महर्षि याज्ञवल्क्य के उत्तर से संतुष्ट होकर विदुषी गार्गी ने घोषित किया—"हे पूज्य ब्राह्मणो! याज्ञवल्क्य को नमस्कार करो। ब्रह्म-संबंधी विवाद में इनको कोई भी नहीं हरा सकता। इनकी पराजय कल्पना के बाहर की वस्तु है।"

गार्गी की उक्त घोषणा के पश्चात् भी शकल के पुत्र शाकल्य ने याज्ञवल्क्य से इधर-उधर के अनेक प्रश्न किए। किंतु उसे बुरी तरह पराजित होना पड़ा। सर्व दिशाएँ महर्षि याज्ञवल्क्य के जयजयकार से गूँज उठीं।

उपर्युक्त प्रसंग से स्पष्ट है कि अपने युग के दार्शनिकों और ब्रह्मवादियों में महर्षि याज्ञवल्क्य का स्थान सर्वोपरि था। उनसे टक्कर लेने की क्षमता किसी में भी न थी। इस महान् विचारक की अमित प्रतिमा का इससे अधिक प्रमाण और क्या हो सकता है कि वही "शुक्ल यजुर्वेद" नामक वेद-शाखा के द्रष्टा माने जाते हैं। याज्ञवल्क्यजी के अध्यात्मज्ञान का लाभ पाना हो तो बृहदारण्यकोपनिषद् का पारायण करना चाहिए, जिसमें उनके संवाद भरे पड़े हैं।

महाभारत में उल्लेख मिलता है कि महर्षि याज्ञवल्क्य ने युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में अध्वर्यु का कार्य भी किया। अध्वर्यु का अभिप्राय होता है यज्ञ में यजुर्वेद का पाठ करनेवाला ब्राह्मण।

स्मृतिकार याज्ञवल्क्य

अब तक आध्यात्मिक पुरुष याज्ञवल्क्य का चरित्र-चित्रण किया गया, आइए, अब स्मृतिकार याज्ञवल्क्य की चर्चा करें। उपनिषद्काल के याज्ञवल्क्य और स्मृतिकार याज्ञवल्क्य एक ही हैं अथवा नहीं, यह एक गम्भीर प्रश्न है। दोनों के काल में विद्यमान अन्तर दोनों को एक स्वीकर करने में बाधा उपस्थित करता है। परन्तु जब तक ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर उन्हें दो सिद्ध नहीं कर दिया जाता, याज्ञवल्क्य के जीवन-चरित्र से स्मृतिकार याज्ञवल्क्य को अलग कर देना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। यह भी हो सकता है कि उपनिषद्काल में ही याज्ञवल्क्य ने स्मृति की रचना की हो, किंतु काफी समय बीतने के पश्चात् इधर किसी अन्य ऋषि ने उसका पुनर्संस्करण किया हो और पूर्व स्मृति के अभाव में उक्त ऋषि के काल को ही याज्ञवल्क्य-स्मृति का काल मान लिया गया हो। यह भी हो सकता है कि याज्ञवल्क्य का कोई पीठ रहा हो—जिसका आज कोई प्रमाण नहीं—और उस पर अधिष्ठित प्रत्येक ऋषि ने अपनी कृतियों को याज्ञवल्क्य से ही सम्बन्धित किया हो।

स्मृतिकार याज्ञवल्क्य ऐसे पुरुष हैं, जिन्हें समाज के प्रत्येक अंग की प्रत्येक समस्या का पूर्ण ज्ञान है। वह ब्रह्मचर्य के नियमों का निदर्शन करते हैं, विवाह-पद्धति का नियमन करते हैं, राजा से सम्बन्धित समस्त कार्यों के बारे में व्यवस्था देते हैं, स्त्री-धर्म का उल्लेख करते हैं, न्यायालय के कार्य और उसके स्वरूप का निर्धारण करते हैं, वानप्रस्थी और यती के कर्त्तव्यों का वर्णन करते हैं और यहाँ तक कि प्रायश्चित के उपाय भी बताते हैं। याज्ञवल्क्य की व्यवस्थाएँ कोई ऊपरी नहीं हैं, उनमें अति गहनता है। समाज के चारों वर्णों के लोगों को गर्भाधान से लेकर मृत्यु तक विविध संस्कारों से युक्त चारों आश्रमों के माध्यम से किस प्रकार आदर्श बनाया जा सकता है, इसकी पूरी-पूरी योजना याज्ञवल्क्य ने अपनी स्मृति में की।

यदि किसी व्यक्ति के समक्ष सम्पूर्ण याज्ञवल्क्य-स्मृति एक साथ न आए, प्रकरणशः आए, तो कभी उसे लगेगा कि उसके समक्ष कोई महान् गुरु उपदेश कर रहा है और कभी लगेगा कि कोई नीतिशास्त्री अपनी बात कर रहा है; कभी-कभी यह भी भ्रम हो सकता है कि कहीं कोई चिकित्सा-शास्त्र का ज्ञाता अथवा किसी राज्य का महामंत्री तो अपना विधान प्रस्तुत नहीं कर रहा!

यही कारण है कि स्मृतिकारों में मनु के पश्चात् याज्ञवल्क्य का ही स्थान है। इससे अधिक याज्ञवल्क्य जी की महत्ता क्या होगी कि सोम श्रवस् आदि मुनि भी चतुर्वर्णों, चारों आश्रमों और दूसरे अनुलोमज, प्रतिलोमज संकर जातियों के सम्पूर्ण धर्म का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उनकी सेवा में उपस्थित हुए थे।

यदि ऐसे महान् ऋषि, ब्रह्मज्ञानी और योगी के प्रति भारतीय समाज के साथ-साथ सम्पूर्ण मानव-समाज अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता रहे, तो कौन-सा आश्चर्य होगा?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय समाज-व्यवस्था के प्रतिष्ठापक :: प्रजापति मनु

भारतीय महापुरुषों में मनु का एक विशेष स्थान है। इतिहासवेत्ता उन्हें चाहे ऐतिहासिक तिथिक्रम से परे की वस्तु कहें, किन्तु आज भी इस देश की सामाजिक व्यवस्था की तह में मनु द्वारा निर्धारित प्रशस्त नियम ही काम कर रहे हैं। आइए, इस लेख में आर्य संस्कृति के इस महान् व्यवस्थापक का दर्शन करें।

आर्य महाप्रजाओं के युगान्तव्यापी जीवन की स्थिर आधारशिला का न्यास करनेवाले जो अनेक महापुरुष हैं, उनमें मनु का नाम अप्रतिम तेज से प्रकाशित है। मनु प्रथम प्रजापति कहे जाते हैं। प्रजाओं के संवर्धन के लिए जिन प्रशस्त नियमों और उदार जीवनक्रम की आवश्यकता होती है, मनु का नाम आर्य संस्कृति में उन सबके लिए एक सुन्दर प्रतीक ही बन गया है। हमारे सहस्रमुखी जीवनक्रम को नियंत्रित करने में जो श्रेय मनु को प्राप्त है, वह और किसी को नहीं। मनु कुछ स्पष्ट और निश्चित् आदर्शों के प्रतिनिधि हैं। यदि हम उन आदर्शों के राजमार्ग पर अग्रसर होना चाहते हैं, तो यह आवश्यक है कि हम धर्म के मनु-प्रतिपादित स्वरूप को अच्छी तरह से परीक्षा करके समझ लें।

ऐतिहासिक तिथिक्रम से परे का व्यक्तित्व

मनु हमारे ऐतिहासिक तिथिक्रम से परे की वस्तु हैं। मनु का नाम आते ही हमें अपनी सभ्यता के उस धुँधले प्रभात का स्मरण हो आता है, जिसमें सूर्य की उषः कालीन किरणों के प्रकाश में मानव और देव दोनों साथ-साथ विचरते हुए दिखाई देते हैं। उस युग की गाथाओं के समुदाय में से इतिहास के तथ्य और पुराण की कल्पना का विश्लेषण एक कठिन कार्य है, और वह कठिनाई केवल भारतवर्ष के ही लिए नहीं है, बल्कि संसार के प्रत्येक देश के लिए है। यदि हम अपने नितान्त मानवी कौतूहल को थोड़ी देर के लिए वश में कर सकें, तो यह कहा जा सकता है कि मानव-जाति के पूर्व-पुरुषों के विषय में सत्य और कल्पना का यह सम्मिश्रण कुछ विशेष हानिकर नहीं है। उनका जो सजीव चित्रण हमें इष्ट है, वह हमारे मनोराज्य में समस्त जातीय जीवन की एक विराट् वस्तु बनकर सदा के लिए व्याप्त हो गया है। मनु की कल्पना भी हमारे जातीय जीवन में बहुत दूर तक ओत-प्रोत है, और मनु के द्वारा प्रतिपादित धर्म की बहुत गहरी छाप हमारे सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन पर पड़ी है।

आर्य राजर्षि-परंपरा के आदि स्रोत

भारत के बाहर के कुछ देशों के इतिहास से मनु के मिलते-जुलते कुछ नाम मिलने का सन्देह होता है। कुछ लोगों का विचार है कि जल-प्रलयवाले 'नुह' का, जिनकी कथा प्राचीन (बेबिलान) बबेरु और सुमेरु देशों के ग्रन्थों में है और ईसाई तथा मुसलमानी धर्मों में भी पाई जाती है, एवं शतपथ ब्राह्मण में जल-प्रलय की कथा के सम्बन्ध में आए हुए मनु का कुछ सम्बन्ध अवश्य है। प्राचीन क्रीट द्वीप के आदि सम्राट् की संज्ञा 'मिनोस' भी मनु से मिलती-जुलती है। मिस्र देश की परम्परा में भी पहले राजा का नाम 'मेनीज' पाया जाता है। हो सकता है, इनके पीछे किसी एक मनु की परम्परा छिपी हो। भारतीय साहित्य में १४ मनु कहे गये हैं; जिनके नाम से मन्वन्तरों के काल-विभाग प्रचलित हैं। सबसे पहले स्वयम्भु मनु हैं, जिनको मानव

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्म-शास्त्र में धर्म का प्रवक्ता कहा गया है। हमारा वर्तमान मन्वन्तर जिन मनु के नाम से प्रसिद्ध है, उन्हें वैवस्वत मनु कहते हैं। भारतीय अनुश्रुति के अनुसार वैवस्वत मनु ही प्रसिद्ध इक्ष्वाकु वंश के आदि सम्राट् हुए हैं। यह कहा जा सकता है कि वैवस्वत मनु से सम्बन्धित इक्ष्वाकु वंश की राजपरम्परा ही प्राचीन भारतीय तिथिक्रम का मेरु-दण्ड है। महाकवि कालिदास ने चुने हुए शब्दों के तेज को पुञ्जीभूत करके इसी प्रख्यात वंश के कर्मठ राजर्षियों के लिए 'सोऽहमाजन्मशुद्धानां' आदि विशेषणों की आरती उतारी है! उन्होंने लिखा है कि मनीषियों में माननीय वैवस्वत मनु का सब राजाओं में ऐसे ही प्रथम स्थान है, जैसे वेदों में ओंकार का। अर्थात् जिस प्रकार प्रणव रहस्य से भरी हुई त्रयी विद्या का प्रतीक है, उसी प्रकार सब राजाओं की शासन-नीति के प्रतीक मनु हैं। मनु ने मानव-धर्म के जिस उत्कृष्ट स्वरूप का उपदेश किया है, उसी के कुछ प्रधान सूत्र कालिदास ने रघुवंशीय राजाओं के चरित्र की मीमांसा में लिखे हैं। समुद्र-पर्यन्त पृथ्वी के एकराट्, जन्म से मृत्यु-पर्यन्त संस्कारों के द्वारा शुद्ध रहनेवाले, आयु के प्रथम भाग में विद्या का अभ्यास करनेवाले, यौवन में यथान्याय विषयों का उपभोग करनेवाले, वृद्धावस्था में मुनियों की वृत्ति धारण करनेवाले और अन्त में योग के द्वारा शरीर छोड़नेवाले, इस प्रकार के सुव्यवस्थित आश्रम-जीवन के अनुयायी सूर्यवंशी राजा थे! वे लोग यश के लिए जीतनेवाले, सत्य के लिए मितभाषी, दान के लिए अर्थसञ्चयी और सन्तति के लिए गृहमेधी बनते थे। विधि के अनुसार अग्निहोत्र करना, समय के अनुसार जागना, अपराध के अनुसार दण्ड देना और कामना के अनुसार याचकों को दान देना ये उनकी विशेषताएँ थीं। इन स्फुट रेखाओं से मानव-जीवन का जो स्वरूप हमारे सामने आता है, वही संक्षेप में मानव-धर्म है। हमारे आदर्शों के चिरपरिचित रघु और दिलीप के ही पूर्वज मनु थे। उदात्त क्षात्र धर्म के उत्कृष्ट प्रतिनिधि इन राजर्षिवर्यों का जो स्वरूप हमारे सामने आता है, उसमें कवि के शालप्रांशु, वृषस्कन्ध, व्यूढोरस्क और महाबाहु ये विशेषण अक्षरशः चरितार्थ होते हैं। राजर्षि मनु के भौतिक स्वरूप की कल्पना भी कुछ-कुछ इसी रूप में हमारे सामने आती है।

आर्य जीवन की इसी उदार परम्परा में भगवान् श्रीकृष्ण थे। उन्होंने गीता में स्वयं कहा है कि राजर्षियों का यह उत्तम प्रज्ञा योग वैवस्वत मनु से ही प्रारम्भ हुआ और इसी के अनुयायी जनक भी थे। हम कह चुके हैं कि ब्रह्म और क्षात्र दोनों आदर्शों का पूरा मानदण्ड कृष्ण का जीवन था। यही बात मनु और जनक तथा उन्हीं आदर्शों से पोषित इतर राजर्षि-परम्परा के लिए भी कही जा सकती है। महाकवि कालिदास ने लिखा है कि मनु ने जिस मार्ग को चलाया, रघुवंशी राज्य की प्रजाएँ तिल भर भी उससे इधर-उधर नहीं हटती थीं। भारवि ने कहा है कि दुर्योधन भी अपनी शासन-नीति में मनु की पदवी का अनुयायी था। मनु-राजधर्म का ऊँचा आदर्श राज्याभिषेक की शपथ के साथ से ही भारतीय नरेशों को दीक्षित करता रहा है। ऐतिहासिक युग में गुप्तवंशी सम्राट् इसके उदाहरणस्वरूप हमारे सम्मुख आते हैं, जिनके समय में कवि के अनुसार स्वर्ग की समृद्धि पृथ्वी पर उतर आई थी।

मनुस्मृति

वर्तमान मनुस्मृति या मानवधर्मशास्त्र बारह अध्यायों* में अनुष्टुप् श्लोकों में निबद्ध है। इसी स्मृति की अन्तरङ्ग साक्षी से यह मालूम होता है कि एकाग्र बैठे हुए भूरितेज, अमितौजा, धीमान् महात्मा मनु से ऋषियों ने धर्म के सम्बन्ध में प्रश्न किया। परन्तु कुछ दूर तक धर्म का निरूपण करने के बाद भगवान् मनु अपने मनीषी शिष्य भृगु को आगे के निर्वचन का कार्य सौंपकर चले जाते हैं और शेष ग्रन्थ का व्याख्यान भृगु के द्वारा होता है। वस्तुतः वर्तमान मनुस्मृति का संस्करण मानव चरण के भृगुवंशी आचार्यों ने किया। इसमें एक प्रमाण यह है कि मनुस्मृति और महाभारत में गहरी समानता है। स्वर्गीय डाक्टर ब्हूलर ने शान्ति, अनुशासन और वनपर्व के साथ मनुस्मृति की तुलना करके यह बताया था कि दोनों में लगभग २५० श्लोक समान हैं और यह संख्या उपलब्ध मनुस्मृति का दसवाँ भाग है। महाभारत के शेष पर्वों में और भी समान श्लोक होंगे। पिछले दिनों भांडारकर इंस्टीट्यूट के अध्यक्ष डा० विष्णु सुकंठणकर ने अपने 'भृगु' शीर्षक लेख में बहुत खोज और विद्वत्ता के साथ, जिसे डा० कीथ ने भी माना है, यह सिद्ध किया है कि महाभारत का वर्तमान संस्करण भार्गववंशी ब्राह्मणों के द्वारा तैयार कराया गया था। यह अनुमान होता है कि उन्होंने ही इन समान श्लोकों का मनुस्मृति और महाभारत दोनों में समावेश किया। इस प्रश्न

*प्राचीनतम रोमन लॉ का संग्रह भी द्वादशाध्यात्मक है। उक्त संग्रह ४५१ ई० पूर्व दस आप्त व्यक्तियों के 'डेसेम्विरी' द्वारा किया गया था, जिसके साथ मनु की 'दशावरा परिषद्' का ध्यान आता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

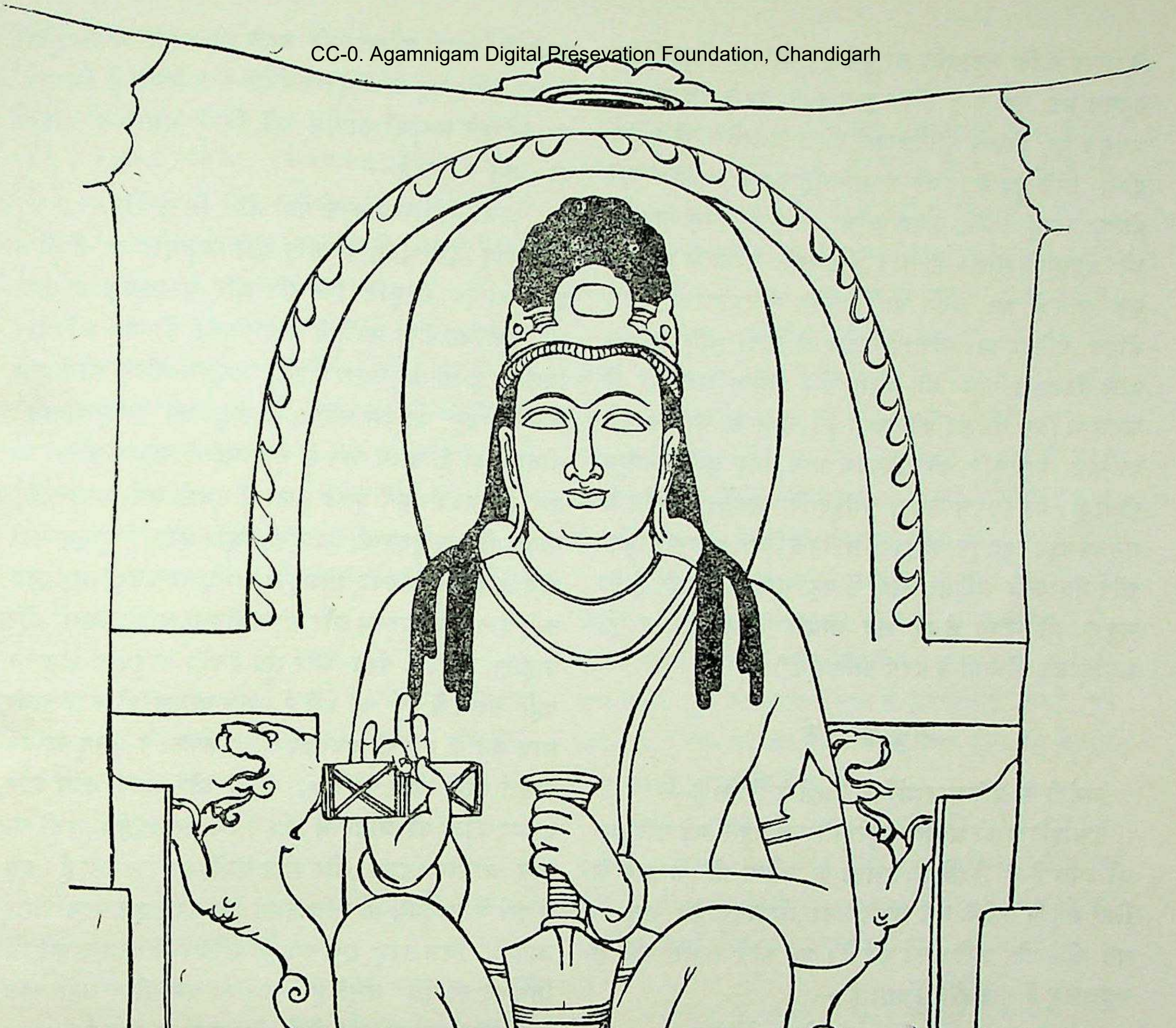

राजर्षि मनु

भारतीय समाज-व्यवस्था की आधारशिला के संस्थापक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के उत्तर में कि मनुस्मृति का पूर्व रूप क्या था, विद्वानों का बहुमत इस पक्ष में है कि मनुस्मृति से पहले एक मानव-धर्मसूत्र था, जिसमें प्रातिशाख्यों की तरह श्लोक और सूत्र दोनों मिले हुए थे। यह मानवधर्मसूत्र अब उपलब्ध नहीं होता, परन्तु किसी समय इसका सम्बन्ध कृष्ण यजुर्वेद की मैत्रायणी शाखा से था। मैत्रायणी शाखा के अन्तर्गत एक मानवों का चरण था। प्राचीन परिभाषा में चरण वैदिक परिषद् या आचार्य विशेष के चारों ओर पनपने-वाले विद्या-संस्थान को कहते थे। मानव आचार्यों के चरण में जिस धर्मसूत्र की रचना हुई, उसी के आधार पर वर्तमान मनुस्मृति का अधिकांश भाग बना हुआ मालूम होता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि संस्कृत-साहित्य में मनु का नाम बहुत पुराना है। तैत्तिरीय संहिता, काठक संहिता और मैत्रायणी संहिता, तीनों में यह बात कही गई है कि मनु का जो वचन है वह सब ओषधियों की ओषधि है, अर्थात् सब नीतियों में परम नीति है।*

मनु का धर्म

जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक नित्शे ने लिखा है—

"बाइबिल की अपेक्षा मनुस्मृति एक बहुत बड़े मस्तिष्क की उपज है।" नित्शे की प्रशंसा के महत्व को समझने के लिए मनु के धर्म के अर्थ को जानना आवश्यक है। मनु का धर्म वीर्य और शक्ति का धर्म है। वह थोथे परलोकवाद के कट्टर शत्रु हैं। उन्होंने लिखा है—

भृत्यानामुपरोधेन यः करोत्यौर्ध्व देहिकम्।
तद्भवत्यसुखोदर्कं जीवितस्य मृतस्य च॥
(मनुस्मृति ११।१०)

अर्थात् जिनका भरण-पोषण अपना अवश्य कर्त्तव्य है, उनको कष्ट देकर जो परलोक साधता है, उसके लिए इस जीवन में और इसके बाद मृत्यु में भी दुःख-ही-दुःख है। मनु वैदिक कर्मयोग के प्रतिपादक हैं। उस कर्मयोग का मूल मनु के अनुसार जीवन में दृढ़ सङ्कल्प है। कामना से सङ्कल्प होता है और सङ्कल्प से ही सारे यज्ञ, व्रत, तप, जीवन की अप्रतिहत शक्तियों का जन्म होता है। जिस समय कुल और जाति के अन्दर शक्तिशाली बनने की लहर उत्पन्न होती हैं, उस समय मनु का वैदिक कर्मयोग काम आता है। मानव-धर्म खोखले साधुओं का धर्म नहीं, जिन्हें संसार से उपेक्षा हो। मनु ने कहा है—

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्।

अर्थात् ऋषिऋण, देवऋण और पितृऋण इन तीनों के द्वारा जातीय संस्कृति, पितृभूमि और मानव-वंश या नस्ल की यथोचित सेवा करने के बाद मनुष्य को यह अधिकार मिलता है कि वह केवल अपने अध्यात्म-जीवन की चिन्ता में लगे। मनु का धर्म गणित के अङ्कों की तरह बहुत ही सीधा-सादा है, उसमें जन्म से मृत्यु-पर्यन्त मनुष्य-जीवन का एक पूरा नकशा हमें प्राप्त होता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी चार पुरुषार्थ, देवऋण, ऋषिऋण, पितृऋणरूपी तीन आवश्यक कर्त्तव्य, सोलह संस्कार, पञ्चमहायज्ञ, ब्रह्म-चर्य, वानप्रस्थ, गृहस्थ और संन्यासीरूपी चार आश्रम, और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इनका चातुर्वर्ण्य सङ्गठन यही संक्षेप में मनु का धर्म है। एक बालक भी सरलता के साथ मनु के धर्म की रूपरेखा खींच सकता है। मनु का यह आदर्श लोक और परलोक, संग्रह और त्याग, भोग और वैराग्य दोनों को जीवन में साथ लेकर चलता है। इसी का नाम प्राचीन ब्राह्म और क्षात्र धर्मों का समन्वय है। इस आदर्श में अभ्युदय और निःश्रेयस इस तरह एक साथ मिल जाते हैं, जिस तरह एक रथ के खींचने में समान रूप से मिलकर दो बैल चलते हैं। मनु का धर्म और महाभारत में प्रतिपादित धर्म एक ही है। वेदव्यास ने कहा है—

धारणाद्धर्म इत्याहुः धर्मोधारयते प्रजाः।
यत्स्याद्धारणसंयुक्तं स धर्म इत्युदाहृतः॥

अर्थात् धर्म वह शक्ति है, जो प्रजाओं और समाज को धारण करती है। यह मनुष्य को जीवन से परे खींचकर जंगल का मार्ग दिखानेवाला साधन नहीं है। जिस धर्म से जीवन में विजय की भावना का नाश हो, पीलिया रोग की तरह जीवन को निस्तेज बनानेवाला वह धर्म मनु को कदापि सम्मत नहीं। एक प्रसिद्ध विद्वान् डा० मीज ने पिछले दिनों 'धर्म और समाज' नामक अपने विचारशील ग्रन्थ में भार-तीय दृष्टि से 'धर्म' शब्द के अर्थ को समझने का प्रयत्न किया है। मनु और वेदव्यास व्यक्ति और जाति के ऐह-लौकिक जीवन में अभ्युदय प्राप्त करानेवाले और अन्त में अध्यात्म-शान्ति तक ले जानेवाले व्यवस्थित कार्यक्रम को धर्म कहा है। यह धर्म प्रकृति के विधान के साथ मिला रहता है। अथर्ववेद में कहा है कि यह पृथ्वी धर्म से धारण की

*यह जानने की बात है कि मनुस्मृति के काल से लेकर मिथिला की रानी लक्ष्मी देवी (अठारहवीं सदी का अन्त) के समय तक हिन्दुओं के धर्मशास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थों की अखंड परम्परा पाई जाती है। प्रो० हॉपकिन्स के शब्दों में संसार में दूसरे कौन लोग हैं, जिनकी कानूनों की चौबीस सौ वर्षों की ऐसी अटूट लड़ी हो? भारतीय मस्तिष्क की कानूनी बारीकियों में पैठने की क्षमता के लिए यह पर्याप्त स्तुति है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुई है। प्रत्येक मनुष्य का जीवन भी धर्म की दृढ़ नींव पर खड़ा होता है। जितनी पुष्ट यह आधार-शिला होगी, उतनी ही विराट् ऊँचाई तक जीवन का प्रासाद खड़ा किया जा सकता है। इसलिए मनु का धर्म प्रधानतः आचार-मूलक धर्म है। रामायण के द्वारा रामचरित का जो आदर्श वाल्मीकि ने रक्खा है, वही दस लक्षणोंवाला* आचार-प्रधान धर्म मनु ने कहा है। मनु का वाक्य है--

आचारः परमो धर्मः। (१।१०८)

और भी, 'आचार से विहीन विप्र को वेद का कुछ भी फल प्राप्त नहीं होता, आचारवान् होकर ही वह सम्पूर्ण फल को पाता है।' इस प्रकार आचार से धर्म की प्राप्ति मानते हुए ऋषियों ने समस्त तप का मूल आचार को कहा है—

सर्वस्य तपसो मूलमाचारं जगृहुः परम्।

मनु ने बारम्बार वेद को अपने शास्त्र का मूल माना है। ऋग्वेद में कहा है--

ऋतस्य पन्थां न तरंति दुष्कृतः। (ऋ० ९।७३।६)

अर्थात् आचारहीन व्यक्ति सत्य के मार्ग के पार नहीं पहुँच पाते। मनु ने इसी का अनुवाद करते हुए कहा है--

वेदास्त्यागाश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हि चित्॥
(म० २।९७)

अर्थात् वेद, त्याग, यज्ञ, नियम और तप ये सब दुष्ट मनोभाववाले मनुष्य के लिए निष्फल हैं।

इस आचारमूलक जीवन की साधना मनु का ब्रह्मचर्य आश्रम है। मनु के शिक्षाक्रम का उद्देश्य डॉक्टर, वकील, या इंजीनियर अथवा इनके समान पेशेवर लोग उत्पन्न करना नहीं है, बल्कि ऐसे आचारवान् पुरुषों को बनाना है, जो शरीर और मन से बलवान् हों और अपने और जाति के महान् जीवन में जिनकी श्रद्धा हो। विवाह करने का अधिकारी कौन है, इसका उत्तर मनु एक शब्द में देते हैं कि जो 'अविप्लुत ब्रह्मचर्य' वाला हो। गृहस्थाश्रम में प्रवेश का यह अधिकार राष्ट्र के जीवन-मरण के साथ सम्बन्ध रखता है और त्रिकाल में भी कोई अधीर व्यक्ति इसमें परिवर्तन नहीं कर सकता। वास्तव में नीतिमूलक आचार ही नित्य धर्म है। वह सत्य होने के नाते ही हमारे लिए एक अटल कर्तव्य बना रहता है।

---

* "धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।"
(मनुस्मृति ६।९२)

कुल-धर्म

गीताञ्जलि की भूमिका के विद्वान् लेखक ने लिखा है कि 'क्या आप यह जानते हैं कि पूर्व में किस प्रकार कुलों को यशस्वी बनाया जाता है'। मनु के धर्म का गोत्र भी कुल है। प्राचीन आर्य-जातियों के समाज-संगठन में गृहपति, जिसे रोम के कानून में 'पेटर फेमिलियास' कहा गया है, प्रधान केन्द्र था। हिन्दू-जाति में गृहपति की भावना एक स्वर्गीय दिव्य भावना है, जिसके अमृत-जल से आज भी जाति का जीवन प्राणमय है। राज्य की और समाज की व्यवस्थाएँ भी जब ढीली पड़ जाती हैं, तब भी गृहपति सौर मण्डल की तरह अपने परिवार के केन्द्र में बैठा हुआ उसको नियंत्रित रखता है। नियमन का नाम ही जीवन है, अराजकता मृत्यु है। राजा के राज्याभिषेक की तरह गृहपति का भी मूर्धाभिषेक किया जाता था। एक राष्ट्र का ककुद् या उच्चतम स्थान है, दूसरा परिवार का। हिन्दू-जाति में एक गृहपति की मृत्यु के बाद उसके पुत्र को उसके स्थान में मूर्धाभिषेक करने की प्रथा आज तक जीवित है, जिसका बचा हुआ रूप तेरहवें दिन पगड़ी बाँधने की क्रिया है।

विवाह के समय मनु ने समृद्ध कुल और निंद्य कुलों में विवेक करने पर बहुत जोर दिया है। कुविवाहों से उत्तम कुल भी हीन बन जाते हैं। अतएव बहुत सोच-समझकर वैवाहिक धर्मों को स्थिर करना चाहिए।

मनु के अनुसार नारी का गौरव

मनु के अनुसार स्त्री उत्तम सन्तति और प्रजाविशुद्धि का हेतु है। परिवार में माता-पिता वृत्त के केन्द्र और परिधि की तरह हैं। दोनों देखने में दो, पर वास्तव में अभिन्न हैं। मनु की व्यवस्था है—

यो भर्ता सा स्मृतांगना

अर्थात् जो पति है, वही अभिन्न रूप से पत्नी है। दोनों का अस्तित्व एक इकाई है। दोनों में न अधिकार की पृथक्ता है, न स्वार्थों का विरोध। परन्तु माता हजार पिताओं से गौरव में भारी है। माता पृथिवी है, वह क्षमाशील धात्री के रूप में परिवार का पोषण करती है।

स्त्री के जीवन की पूर्णता माता बनने में है। वीर्यवान् पुत्रों की माता कहलाने में जो गौरव स्त्री को मिलता है, वह अन्य किसी प्रकार से नहीं। प्रकृति पुरुष के बिना दीन है, स्त्री भी उस आदर्श भर्ता को चाहती है, जिसको वह अपना आराध्य देव कल्पित कर सके। विवाह उसके

जीवन की उच्च पराकाष्ठा है। इसलिए मनु ने स्त्रियों के लिए वैवाहिक विधि को ही सबसे बड़ा वैदिक संस्कार माना है। पति-सेवा ही उनका गुरुकुलवास है, और गृहकार्यों में दक्षतापूर्वक योग ही उनकी अग्नि-परिचर्या है (२। ६७)। जिस दिन जाति को उत्तम संतान की आवश्यकता न रहेगी, उसी दिन यह शायद सम्भव हो कि स्त्री अपने मातृत्व का गौरव खो दे। परन्तु यह भी निश्चय है कि उसी दिन जाति की मृत्यु भी हो जायगी। मानव नीति में नारी-प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में इस समय असत्य और भ्रमात्मक विचार फैले हुए हैं। प्रजानिरोध के द्वारा मातृत्व का जो नाश हो सकता है, वैसा अन्य किसी उपाय से नहीं। और मातृत्व की उपेक्षा स्त्री को स्वर्ग से गिराकर नरक के गर्त में गिरा देना है। पुरुष स्त्री की पूजा करता है, क्योंकि उसके द्वारा वह अपनी अमरपन की भावना को पूरा करता है। बीजनिषेक के द्वारा वह स्वयं स्त्री के गर्भ में जन्म लेता है। 'यही जाया का जायत्व है कि पुरुष उसमें पुनः जन्म ग्रहण करता है।' प्रजा-सिद्धि का विलक्षण हेतु स्त्री है, विश्व में उसका पद अत्यंत महनीय है।

आर्यनारी का यशोगान

आर्यनारी का जो यशोगीत मनु ने गाया है, वह संसार के साहित्य में अनन्यसुलभ है। वैदिक साहित्य के सूत्र-ग्रंथों में एक सारस्वत अनुवाक आता है। विवाह-संस्कारों में उसका गान किया जाता है—

यस्यां भूतं समभवद्यस्यां विश्वमिदं जगत्।
तमिद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः॥

अर्थात् महाभाग्यशीला नारी, जो भूत और भविष्य की जननी है, जिस उत्तम यश का पात्र है, उस यशोगाथा को आज हम गाते हैं। इस प्रकार प्रारम्भ करके बीज ऋचाएँ वेदिमंडप में स्त्री के उत्तम यशोवर्णन में गाई जाती हैं। मनु का यशोगीत भी चुन-चुनकर इस प्रकार से स्त्री के प्रति पूजा के सुरभित पुष्प चढ़ाता है –

१—जहां स्त्रियों का पूजन होता है, वहां देवता बसते हैं। जहां इनका आदर नहीं होता, वहां सब क्रियाएँ निष्फल जाती हैं।

२—जिस कुल में पति पत्नी से और पत्नी पति से संतुष्ट रहती है, वहां ध्रुव कल्याण वास करता है।

३—स्त्री की प्रसन्नता से सारा परिवार प्रसन्न रहता है। उसके असंतोष से कुछ भी अच्छा नहीं लगता।

४—स्त्री को सदा प्रहृष्ट रहना चाहिए। उसे उचित है कि घर के कामों में तत्पर हो, सब सामान को साफ-सुथरा रखे और व्यय करने में हाथ रोके रहे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

५—मंत्र के साथ होनेवाले संस्कार से प्राप्त हुआ पति इस लोक में और परलोक में भी स्त्री को नित्य सुख का देनेवाला होता है।

६—स्त्रियों के लिए पृथक् यज्ञ, व्रत या उपवास का विधान नहीं है। पति की सुश्रूषा से ही वे स्वर्ग में उच्च स्थान पाती हैं।

७—जो पुरुष यत्नपूर्वक स्त्री की रक्षा करता है, वह अपनी संतान, चरित्र, परिवार, धर्म और अपने आपकी रक्षा करता है।

८—अनेक कल्याणों की भाजन स्त्रियाँ पूजा के योग्य हैं, ये घर की ज्योति हैं, प्रजापति ने प्रजोत्पत्ति के लिए उन्हें बनाया है। स्त्रियाँ घरों में साक्षात् लक्ष्मी हैं। पति-पत्नी दोनों में कोई अन्तर नहीं है।

९—संतति को जन्म देना, उत्पन्न हुए पुत्रादिक का पालन करना और प्रतिदिन की लोकयात्रा (भोजन आदि का प्रबन्ध) का एकमात्र प्रत्यक्ष कारण स्त्री ही है।

१०—अपत्य, धर्मकार्य, सुश्रुषा, उत्तम आनन्द और अपनी तथा अपने पूर्व-पुरुषों की स्वर्गगति सब कुछ स्त्री के अधीन है।

११—मन, वाणी और शरीर से संयत रहकर जो स्त्री पति के अनुकूल रहती है, वह इस लोक में साध्वी स्त्रियों का यश पाती है और मरने के उपरान्त पति-लोक में जाती है।

१२—देवों के समक्ष की गई प्रतिज्ञा के द्वारा पुरुष स्त्री के साथ विवाह करता है, स्वेच्छा से नहीं। अतएव देवों की प्रीति के लिए स्त्री का नित्य भरण-पोषण करना चाहिए।

पूर्व ऋषियों के द्वारा कहा हुआ यह पुण्य नारी-वृत्त सब जनों का हित करनेवाला है। आत्मा, जाया और प्रजा, इतना ही पुरुष का विस्तार है। पुरुष के द्वारा किए हुए समस्त धर्माचरणों में स्त्री का साझा है। मनु ने जो यह कहा है कि कौमार अवस्था में पिता रक्षा करता है, यौवन में पति और वृद्धावस्था में पुत्र, इसलिए स्त्री का अपना तंत्र नहीं होता—यह प्राचीन आर्य जातियों में स्त्री को प्रतिदिन की लोक-यात्रा से निश्चिन्त बनाने की सर्वसम्मत कानूनी व्यवस्था थी। मनुस्मृति से बहुत अंशों में समानता रखनेवाले प्राचीन रोमन लॉ में भी ऐसा ही प्रबन्ध था। संक्षेप में मनु के आदर्शों का प्रतीक वह पुरन्ध्रि स्त्री है,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिसके द्वारा सप्तसिंधु से लेकर योरप तक आर्य जाति का महान् विस्तार हुआ।

मनु और राष्ट्र

मनु का भारतवर्ष एक पुण्यभूमि है। वह इसे देवनिर्मित देश मानते हैं। इस यज्ञीय देश में जो आचार प्रचलित था, उसके लिए मनु के हृदय में गर्व है। वह सदाचार कहा गया है और मनु आर्योचित गौरव के साथ उस सदाचार को पृथ्वी के सब मानवों के लिए आदर्श मानते हुए अपने राष्ट्र को सबसे ऊँचे आसन पर स्थापित कर देते हैं। इस प्रकार की भावना ही राष्ट्र के अमर जीवन का हेतु है, जो उसे अंधकार में भी आत्मविषाद से बचाता है। अर्वाचीन भारत के पुनरुत्थान के तोरणद्वार पर मनु का यह श्लोक सोने के अक्षरों में लिखा जाना चाहिए :—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

अर्थात् इस देश में जन्म पाए हुए श्रेष्ठजन्मा पुरुषों से पृथिवी के सब मानव अपने चरित्र की शिक्षा ग्रहण करें।

राष्ट्र में राजा की आसंदी (गद्दी) सबसे ऊँचा स्थान है, जहाँ से दंड प्रवृत्त होता है। मनु को अराजक राष्ट्र से घृणा है। अराजकता की व्यवस्था में मात्स्यन्याय के द्वारा बलवान् निर्बलों का भक्षण और शोषण करने लगते हैं। जब तक राजनीति ठीक है, तभी तक राष्ट्र की पद्धति ठीक चलती है। स्वराष्ट्र में राजशक्ति के लड़खड़ाते ही राष्ट्र की आदर्श व्यवस्थाएँ भी बैठ जाती हैं। इसीलिए मनु ने राष्ट्रीय शक्ति के मूल को महती देवता माना है। मनु के अनुसार धर्म का ही दूसरा नाम दंड है। दंड के निर्बल होने पर धर्म रसातल को चला जाता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि मनु का धर्म थोथा परलोक-विश्वास नहीं है, बल्कि वह प्रजाओं का धारण और संवर्धन करनेवाली जीवन की एक शक्तिशाली पद्धति है। दंड ही न्याय का मूल है। जब दंड का प्रणेता साधु अर्थात् निष्पक्ष भाव से दंड का प्रयोग करता है, तभी प्रजाएँ एक दूसरे को दबाना नहीं चाहतीं। मनु के अनुसार दंड ही राजा है, दंड ही नेता है, दंड ही शासिता है और दंड ही राष्ट्र में अकेला पुरुष है, दंड के सामने अन्य सब कुछ स्त्री की तरह प्रतीत होता है। सब भूतों का गोप्ता, प्रजापति का पुत्र, ब्रह्मतेज से युक्त दंड ही है, जिससे राष्ट्रीय धर्म विचलित नहीं होते। इस प्रकार का सबसे निडर रहनेवाला और सबको निडर रखनेवाला दंड जब तक राष्ट्र का ककुद् या सबसे ऊँचा स्थान बना रहता है, तभी तक राष्ट्र की आत्म-सम्पदा पनपती रहती है। मनु का आदर्श राष्ट्र के ब्राह्मधर्म और क्षात्र-धर्म का (जिन्हें आजकल की राजनीतिक परिभाषा में 'लेजिस्लेटिव' और 'एक्जीक्यूटिव' शक्ति कहते हैं) सुन्दर समन्वय है—

नाब्रह्म क्षत्रमृध्नोति नाक्षत्रं ब्रह्म वर्धते।
ब्रह्म क्षत्रं च संपृक्तमिह चामुत्र वर्धते ॥९।३२२॥

अर्थात् बिना ब्रह्म के क्षत्र और बिना क्षत्र के ब्रह्म का विकास नहीं होता। ये मिलकर ही इस लोक में और पर-लोक में संवर्द्धित होते हैं।

इस प्रकार की व्यवस्था में मस्तिष्क और बल, दोनों की पूजा की जाती है। मनु के आदर्श ब्राह्मण वे हैं, जिनमें उच्च राष्ट्रीय संस्कृति मूर्तिमान रूप धारण करती है। वे ब्राह्मण धर्म के कोश हैं। राष्ट्रीय धर्मों का निर्माण इसी प्रकार के ज्ञानियों की परिषद् में होता है, राजदण्ड तो उन धर्मों को प्रचलित रखता है। मानव संस्कृति बहुसंख्या पर निर्भर नहीं है। एक ज्ञानी दस हजार मूर्खों से श्रेष्ठ है।

एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद्द्विजोत्तमः।
स विज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः॥

मानवधर्मशास्त्र बुद्धि का समादर करता है। वह जकड़नेवाले धर्मों का पुलिन्दा नहीं है। युगधर्म के अनुसार कानूनों की वृद्धि और विकास करने के उदार बीज इस शास्त्र में जान-बूझकर रक्खे गए हैं। शिष्ट विद्वानों की दशावरा परिषदों को संगठित करने का विधान इसीलिए था।

मनु के अनुसार मनुष्य सब के केन्द्र में है

मनु के अनुसार विद्वान् या कर्मशील ज्ञानी का मूल्य सबसे अधिक है। धन, बन्धु, आयु, कर्म और विद्या, ये पाँच आदर की चीजें हैं, इनमें बाद की वस्तु पहले से श्रेष्ठ है। धन से ज्ञान बहुत ऊँचा है। यही ऋषियों का पैमाना था, जिससे मानव की ऊँचाई नापी जाती थी और मनु ने इसी को अपनाया है। मनु की दृष्टि में 'मनुष्य' सबके केन्द्र में है, उसी का निर्माण सब शास्त्र और धर्मों का ध्येय है। मनुष्य की समृद्धि के लिए ही आदर्श संस्थाओं का विकास राष्ट्र में किया जाता है। मनु का विचार है कि राजा ही युग का प्रवर्त्तक होता है (राजा हि युगमुच्यते), अतएव सप्तांग राज्य की ठीक व्यवस्था मानव समाज की सबसे बड़ी आवश्यकता है। इसकी सिद्धि के लिए जहाँ एक ओर वीर्य-वान् दण्ड की स्थापना चाहिए, वहीं दूसरी ओर राष्ट्र की प्रज्ञा में निर्मलता और तेज भी आना चाहिए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आर्य-संस्कृति के महाप्रचारक :: महर्षि अगस्त्य

अगस्त्य का नाम मानो भारत और उसके बृहत्तर रूपों को मिलानेवाला सेतु है, जिसकी स्मृति समुद्र के इस पार और उस पार आज तक सुरक्षित है। बृहत्तर भारत का प्रसार आर्य-संस्कृति के विकास की एक महत्वपूर्ण घटना है। अगस्त्य ऋषि का इस चमत्कार में गहरा हाथ रहा है।

गस्त्य मुनि की कथा बृहत्तर भारत के विस्तार की सूचक है। भारत के इतिहास का यह प्रकरण अभी तक अछूता पड़ा हुआ है कि किस प्रकार सप्तसिंधु और गंगा की अन्तर्वेदी में पल्लवित सभ्यता का विस्तार न केवल विन्ध्यमेखला और दुस्तर दंडकवनों को पार करके मलय और सिंहल तक फैल गया, बल्कि समुद्र के पार पूर्वी द्वीपसमूह के बाली, जावा, सुमात्रा आदि देश भी उसकी अमर धर्मविजय के शरणागत बन गए। प्रारम्भ से ही देश में दुर्धर्ष विस्तार करने की शक्ति भारतीय चरित्र की विशेषता रही है। बौद्ध जातकों से भारतीय समुद्र-वाणिज्य के पुष्ट प्रमाण मिलते हैं। बावेरु जातक के अनुसार प्राचीन बाबिरु या बेबिलान से भारत का व्यापार होता था। ईरानी सम्राट् दारा (शुद्ध रूप दारयवहु = धारयद्वसु) के प्राचीनतम शिलालेखों में सिंधु (अर्थात् भारतवर्ष) और कुशावती (अर्थात् अबीसीनिया) का स्पष्ट उल्लेख है। कुशावती या कुशद्वीप भारतवासियों का नामकरण है। इसी कुशद्वीप की नील नदी का जो वर्णन पुराणों में दिया हुआ है, उसको आधार मानकर श्री जे० एच० स्पीक ने नील के उद्गम-स्थान का पता लगाया था और उन्होंने अपनी "नील नदी के उद्गम की खोज" नामक पुस्तक में पुराणर्वाणत भौगोलिक वर्णन की प्रामाणिकता की सराहना की है!

विविध दिशाओं में बृहत्तर भारत का प्रसार

एशिया माइनर, फ्रिजिया आदि देशों में आर्यों के प्रसार की कथा का ऐतिहासिक आधार तो ईसा से भी पन्द्रह शताब्दी पूर्व तक जाता है। मैक्सिको की मय जाति की सभ्यता की भारतीय संस्कृति के साथ समानता की पर्याप्त चर्चा विद्वानों में हुई है। उनके ज्योतिष और गणित तथा कुछ भाषाओं का भी हमारे साथ विलक्षण साम्य है। मिस्र देश से मिले हुए एक प्राचीन यूनानी नाटक में कन्नड़ भाषा का एक लम्बा कथनोपकथन पाया गया है। लम्पस्कस नामक स्थान से प्राप्त एक चांदी की थाली पर हाथीदांत के पायों के आसन पर बैठी हुई भारतमाता का चित्र उत्कीर्ण है, जो लगभग दो सहस्र वर्ष प्राचीन है। मध्य एशिया के अनेक स्थानों का नामकरण भारतवासियों ने किया। खोतन का प्राचीन नाम कुस्तन और फरगने का प्रकण्व था। वहां के बालुकामय प्रदेशों से संस्कृत के काव्य, नाटक और आयुर्वेद के ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं। मंगोल सम्राट् कुबलइ ने तिब्बत के मतिध्वज पंडित को अपने यहां आमंत्रित करके मंगोल भाषा लिखने के लिए ब्राह्मी के आधार पर एक लिपि निर्माण करने का आदेश दिया। मतिध्वज के उस कार्य को साहित्य-प्रेमी सम्राट् ने स्वीकार किया। अफगानिस्तान तो भारतवर्ष के लिए एक ऐसा प्रान्त ही था जैसा गुजरात। ऋग्वेद से लेकर विक्रम की नवीं शताब्दी तक गन्धार हमारे प्राचीन व्यापार एवं संस्कृति के बृहत्तर प्रचार का एक गढ़ ही बन गया था। सरयू (हरी-रूद), सरस्वती (अरगन्दाब), सुवास्तु (स्वात), कुभा (काबुल), वंक्ष आदि नामों के पुरोहित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय पूर्वज ही थे। सरहद के गिरिगह्वरों में बसनेवाले आयुधजीवी आफरीदी (आप्रीताः) और मोहमन्दों (मधुमन्तः) के नाम पाणिनि और महाभारत में आज भी विद्यमान हैं। पठानों (पक्थ) का आदि नामकरण ऋग्वेद के समय में हो चुका था।

आर्य-संस्कृति के प्रसार के नायक :: अगस्त्य

बृहत्तर भारत का यह अद्भुत विस्तार संसार की एक अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना है। इससे भी पूर्व प्रागैतिहासिक काल में आर्यों के विस्तार की जो कथा है, उसके द्वारा भारत की मूल भाषा संस्कृत के शब्द और उसके गाथाशास्त्र का सम्बन्ध समस्त योरप के साथ हो चुका था। इस निखिल विस्तार के एक सुन्दर प्रतीक अगस्त्य ऋषि हैं। उनके जीवन में सत्य और कल्पना का एक मिश्रण है। ध्रुव ऐतिहासिक घटनाएं वहाँ कहाँ हैं? परन्तु फिर भी उसके मूल में दो सूत्र आज तक जीवित हैं। एक तो यह कि अगस्त्य ऋषि के सम्मुख सूर्य की गति को भी रोकनेवाला विन्ध्याचल पर्वत झुक गया। पुराणों ने कहा—अगस्त्य विंध्याचल के गुरु थे, विंध्याचल ने उन्हें प्रणाम किया। अवश्य ही विनीत शिष्य की भाँति विंध्य ने अपने गुरु का जो सम्मान किया, उससे उत्तरापथ और दक्षिणापथ के बीच की बाधा दूर होकर संस्कृति के अखंड प्रवाह का एक राजमार्ग बन गया। अगस्त्य के गुरुत्व का पहला प्रकरण यही हुआ।

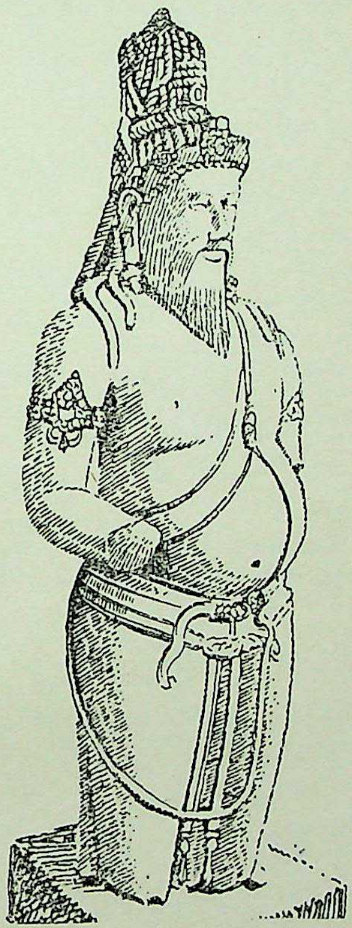

जावा में प्राप्त अगस्त्य ऋषि की एक प्राचीन मूर्ति।

अगस्त्य द्वारा समुद्र-पान का वास्तविक अर्थ

अगस्त्य के जीवन का दूसरा सूत्र उनका समुद्र-पान है। पुराणकारों ने लिखा है कि अगस्त्य मुनि क्रुद्ध होकर समुद्र के जल को पी गए। इस कल्पना में किस लोक का सत्य है। यह निर्णय करना बड़ा कठिन है। ज्योतिर्विदों के अनुसार इस कथा का सम्बन्ध प्राकृतिक भूगोल से है। वर्षा ऋतु में सागर की जिस अपारावार जलराशि को मेघ पृथ्वी पर लाकर भर देते हैं, वही शरद् ऋतु में अगस्त्य नक्षत्र के उदय होने पर शनैः-शनैः सूख जाती है। गोस्वामी तुलसीदासजी की इसी आशय की चौपाई प्रसिद्ध है—'उदित अगस्त्य पंथ जल सोषा।' यह प्राकृतिक सत्य अवश्य है, पर इसके अतिरिक्त इसी सत्य का एक मानवीय पक्ष भी है। वह यह कि तमिल प्रदेश के मलयगिरि पर अगस्त्य मुनि रहते थे। वहाँ से उन्होंने चोलमंडल के पूर्वी तट पर लहराते हुए विशाल महोदधि को पार करके क्षितिज के दूसरे छोर पर स्थित द्वीपसमूहों में भारतीय धर्म और संस्कृति का प्रथम बीजारोपण किया। आज तक समस्त दक्षिणापथ और सागर के पूर्वी द्वीपों में अगस्त्य का नाम प्रसिद्ध है। जावा द्वीप (प्राचीन यवद्वीप) में अगस्त्य की प्राचीन मूर्ति पाई गई है। बोर्निओ (वारुण द्वीप) के कोम्बो ङ् स्थान में गुफा के भीतर शिव आदि देवों के साथ अगस्त्य की प्रतिमा भी खुदी हुई है (दे० पं० चन्द्रगुप्त वेदालंकार, बृहत्तर भारत पृ० ४३०)।

जातकों से विदित होता है कि गुजरात के साहसी व्यवसायियों ने जावा में अपना उपनिवेश बनाया था। आज तक उस पराक्रम की सूचक यह उक्ति गुजरात प्रचलित है—

जो जाए जावे ते पाछो नहीं आवे।
नेजो आवे तोपरिया-परियामोती लावे।।

अर्थात्, जो जावा जाता है, वह लौटता नहीं। और यदि वापस आता है, तो इतने मोती लाता है कि पीढ़ियों तक समाप्त नहीं होते। पुराणों ने भी पूर्वी महासागर के द्वीपों की गिनती प्रसिद्ध नौ द्वीपों में की है, जिनमें कुमारिका या कुमारी द्वीप (भारतवर्ष) के अतिरिक्त नागद्वीप (निकोबार), वारुण (बोर्निओ) और गांधर्व (फिलिपाइन) आदि द्वीप सम्मिलित थे।

अगस्त्य का जीवनवृत्त

अगस्त्य के जीवन की जो कुछ घटनाएँ भारतीय साहित्य में मिलती हैं, उन पर भी संक्षिप्त विचार कर लेना आवश्यक है। ऋग्वेद-युग से ही अगस्त्य और उनकी पत्नी लोपामुद्रा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का नाम हमें मिलता है। ऋग्वेद ([illegible]) के अनु-सार अगस्त्य को मान का पुत्र कहा गया है। उनकी संज्ञा 'मान्य' थी। तपस्वी अगस्त्य और लोपामुद्रा के संवाद से विदित होता है कि लोपामुद्रा ने अगस्त्य को अपने प्रणय-पाश में आसक्त करके उनके साथ विवाह किया। महाभारत (वनपर्व अ० ६६-६७) के अनुसार लोपामुद्रा विदर्भ देश की राजकुमारी थी, जिसके साथ अगस्त्य का विवाह हुआ था। ऋग्वेद में अग-स्त्य को वसिष्ठ का बन्धु कहा गया है। अग-स्त्य एक गोत्र के प्रवर्तक भी हुए। गढ़वाल में रुद्रप्रयाग के पास 'अगस्त्य मुनि' नामक एक स्थान है। परन्तु अगस्त्य मुनि का आश्रम चंचल मृगजल की तरह किसी एक प्रदेश में टिकाऊ न था। अनेक स्थान इस गौरव के भागी पाये जाते हैं। वस्तुतः अगस्त्य के आश्रमों की स्थिति उत्तरा-पथ से दक्षिण की ओर आर्य-जाति के प्रसार को सूचित करती है। महाभारत वनपर्व (अ० ८७) में प्रयाग के आसपास अगस्त्य मुनि के आश्रम का वर्णन है। प्रयाग के निकट ही वहीं कहीं अगस्त्य के नाम से एक पर्वत या चोटी का नाम भी प्रसिद्ध था। उसी पर्व के ८२ अध्याय में 'अगस्त्य-सर' नामक एक तीर्थ का वर्णन है, जो [illegible] में था। पांडवों ने इस तीर्थ की यात्रा की थी। रामायण में कहा गया है कि विश्वामित्र मुनि के साथ राम और लक्ष्मण उस स्थान को देखने गए थे, जिसे यक्षिणी ताड़का ने निर्जन बना दिया था। पूर्वकाल में वहाँ पर अगस्त्य का निवास था। यह स्थान गंगा और शोण के बीच में शाहाबाद जिले में कहीं पर था। (आदि कांड सर्ग २७; २८। ८-१२)।

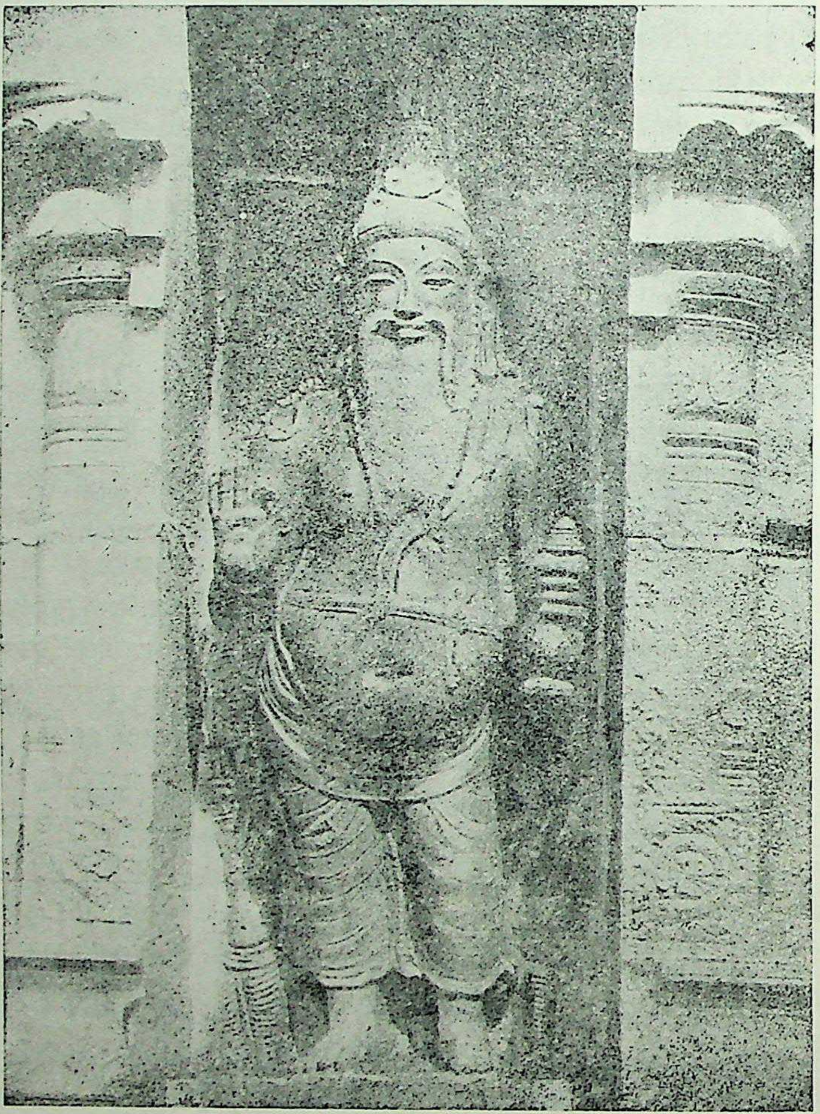

दक्षिण भारत के चिदम्बरम् नामक स्थान में नटराज के सुप्रसिद्ध देवालय के पूर्वीय गोपुरम् में बनी हुई अगस्त्य ऋषि की मूर्ति।

दक्षिणापथ

इससे सूचित होता है कि आर्यों का औप-निवेशिक मार्ग दो प्रकार से था। एक तो गंगा की अन्तर्वेदी से पूर्व की ओर महो-दधि के तट तक जाकर कलिंग देश के बीच में होकर पूर्वी महेन्द्र पर्वत की तलहटी में होकर दक्षिण चोल-मंडल तक चला गया था। आज तक यह मार्ग सुरक्षित है। इस मार्ग में विशाखापत्तन आदि बड़े-बड़े नगरों के संस्कृत नाम आज भी जीवित हैं। ये नगर उन उपनिवेशों के सूचक हैं, जो अपनी प्रगति के मार्ग में आर्यों ने बसाए होंगे। एक विचित्र बात यह है कि इन्हीं नगरों से मिले हुए गाँवों के नाम दक्षिण की ठेठ अपनी भाषाओं के हैं। समस्त दक्षिणापथ में भौगोलिक नामों का यह विलक्षण मिश्रण पाया जाता है। दक्षिणी अफ्रीका या

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मैक्सिको आदि प्रदेशों में भी उपनिवेशों के नाम इसी प्रणाली से निश्चित हुए हैं। नगरों के नाम अंग्रेजी भाषा में और छोटे खेड़ों और गाँवों के नाम स्थानीय भाषाओं में हैं।

दक्षिण-यात्रा का दूसरा मार्ग दंडकारण्य के बीच में होकर था। वस्तुतः भौगोलिक दृष्टि से यही मार्ग अधिक महत्वपूर्ण रहा है। इसे उत्तर-दक्षिण के यातायात की धमनी ही कहना चाहिए। जिस युग में अगस्त्य ऋषि ने विंध्याचल का गर्व खंडित करके इस मार्ग की स्थापना की होगी, तब से आज तक इस मार्ग का महत्व अटूट बना हुआ है। रामचन्द्र ने वनवास के समय इसी मार्ग से दक्षिण में प्रवेश किया था। वाल्मीकि ने इसी मार्ग के आश्रय से राम के प्रस्थान का वर्णन किया है। अयोध्या से तमसा (वर्तमान टोंस, सरयू से १२ मील पश्चिम), वेदश्रुति (चौका नदी), कोसल, गोमती, र्सापका (सई), शरयू वन पार करते हुए राम गंगा-तट पर शृङ्गवेरपुर पहुँचे। यहाँ तक उत्तम सड़क बनी हुई थी। इसके आगे राम रथ विदा करके पैदल ही चले। गंगा पार करने के लिए नाव मिली, पर आगे करीब बारह मील प्रतिदिन चलते हुए जब राम ने प्रयाग में भरद्वाज आश्रम से होकर यमुना पार की, तब लक्ष्मण को अपने हाथ से बाँस और झाऊ का बेड़ा बनाना पड़ा। चित्रकूट में अत्रि के आश्रम से आगे अनेक आश्रमों में होते हुए विंध्य के पास शरभंग ऋषि का आश्रम मिला। वेणा (आधुनिक वेनगंगा) के स्रोत के आसपास सुतीक्ष्ण का आश्रम था। यहीं समीप में पंचाप्सरस् सरोवर के पास रामगिरि (आधुनिक रामटेक) पर्वत पर राम ने दस वर्ष व्यतीत किए। यहीं मेघदूत के 'जनकतनयास्नान पुण्योदक आश्रम' थे। सुतीक्ष्ण के आश्रम से लगभग पाँच योजन पर अगस्त्य मुनि का अत्यन्त प्रसिद्ध आश्रम था।

अगस्त्य ने राम को पंचवटी का मार्ग बताया। आज भी मनमाड़ के दक्षिण में चार मील की दूरी पर नासिक को जानेवाली सड़क के बाईं ओर 'अगस्तिपुरी' में अगस्त्य मुनि की कुटिया बताई जाती है।

तमिल-वाङ्मय में अगस्त्य

इस प्रदेश से बढ़कर अगस्त्य का अगला स्थान दक्षिण के मलय पर्वत में प्राप्त होता है। भास ने अविमारक नाटक में कहा है—'अद्य भगवन्तमगस्त्यमाराधयितुं मलयपर्वते विद्याधरैरुत्सवः प्रारब्धः।' अर्थात् आज भगवान् अगस्त्य की पूजा के लिए मलय पर्वत पर विद्याधरों का उत्सव है। तमिल के प्रसिद्ध महाकाव्य शिल्पाधिकारम् (सर्ग ८) में अगस्त्य को 'पोडियिल पर्वत का अधिपति ऋषि' कहा गया है। यह पांड्य देश में मलय पर्वत की ही एक चोटी की संज्ञा थी। तमिल पुराणों के अनुसार इन्द्र-पुत्र जयन्त और उर्वशी को अगस्त्य के कोप का भाजन बनना पड़ा था। शापभ्रष्ट उर्वशी ही शिल्पाधिकारम् (=नूपुर वृत्तान्त) महाकाव्य की अतिसुन्दरी नायिका माधवी थीं। इस प्रकार तमिल साहित्य में अगस्त्य सदा से गौरवशाली पद पर अधिष्ठित रहे हैं।

सुग्रीव ने सीता-अन्वेषण का मार्ग बताते हुए हनुमान से मलय पर्वत पर अगस्त्य के दर्शन करने को कहा (किष्कि० ४१।१६) और उसके भी बाद सागर के बीच में अगस्त्य से विनिवेशित किसी पर्वत पर ढूँढ़ने का आदेश दिया।

भारत की सीमा समाप्त होने पर अगस्त्य बृहत्तर भारत की वस्तु हो जाते हैं। अगस्त्य का नाम मानो भारत और उसके बृहत्तर रूपों को मिलानेवाला सेतु है, जिसकी स्मृति समुद्र के इस पार और उस पार भी आज तक सुरक्षित है।*

---

*प्राचीन भारतीय वाङ्मय में अगस्त्य के अनेकों नाम मिलते हैं। ऋग्वेद के अनुसार अगस्त्य मित्रावरुण नामक ऋषि के पुत्र थे। उनकी माता उर्वशी नामक अप्सरा थी। अतः वह मैत्रावरुणि एवं और्वशेय भी कहलाते थे। पुराणों के अनुसार वह घड़े में से उत्पन्न हुए थे, इसी कारण उनके कुंभज, कुंभसंभव, घटोद्भव, आदि नाम पड़ गए। विंध्याचल को झुका देने के कारण यह विंध्यकूट कहकर भी पुकारे गए। इसी प्रकार चूँकि उन्होंने सागर को चुल्लू में भर कर पी लिया था, अतः वह समुद्रचुलुक और पीनाब्धि कहलाए।

जावा द्वीप के मध्य प्रदेश से ईस्वी सन् ७३२ का खुदा हुआ एक लेख मिला है। इसमें दक्षिण भारत में स्थित अगस्त्य ऋषि के "कुंजर-कुंज" नामक आश्रम का उल्लेख है। ईस्वी सन् ७६० के एक अन्य लेख में महर्षि अगस्त्य की एक प्रतिमा की स्थापना का जिक्र आया है। इसके बाद के ईस्वी सन् ८६३ के एक अभिलेख में, जो संस्कृत में नहीं है, बल्कि जावा की प्राचीन भाषा में है, यह वक्तव्य है कि अगस्त्य के वंशज जावा द्वीप में आकर बस गए थे। इन सब बातों से यह स्पष्ट है कि उपर्युक्त काल के लगभग अगस्त्य का मत वहाँ प्रचलित था। (देखिए 'कल्चरल हेरिटेज ऑफ इंडिया, खंड ३, में श्री बिजनराज चटर्जी लिखित "जावा और हिन्द-चीन के हिन्दू राज्य" नामक लेख, पृष्ठ ११२)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यूनान का महान् सत्यान्वेषक :: ऋषि सुकरात

लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व सत्य और विवेक की वेदी पर प्राणों की आहुति चढ़ानेवाले पश्चिम के एक ऋषितुल्य महापुरुष की अमर गाथा

आज से २४०० वर्ष पूर्व का यूनान। प्रातः काल का समय। एक मैदान। सैनिकों की एक छोटी सी-टुकड़ी अपनी नित की कवायद कर रही है।

एकाएक मैदान में 'पानी-पानी' की आवाज दौड़ गई। कवायद बन्द हो गई। एक सैनिक बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ा था। चारों ओर उसके साथी इकट्ठा थे। कोई कहता था—पहले तो कभी ऐसा नहीं हुआ! कोई बोल रहा था—युद्ध के तूफान में भी जो चट्टान की तरह अडिग रहा, वह चहलकदमी करते हुए ही एकाएक कैसे गिर पड़ा?

प्रश्न प्रश्न ही रहे, किसी ने उनका उत्तर नहीं दिया, और सिपाही घर भेज दिया गया, जहां वह चौबीस घंटे तक निष्प्राण-सा बिस्तरे पर पड़ा रहा। अपने दोस्तों में वह खूब प्रिय था, इसीलिए सब चिंतित होकर उसे घेरे खड़े थे। दूसरे दिन जब उसने आँखें खोलीं, तो लोगों ने आशा से एक ठंडी साँस ली।

कायापलट

किन्तु जब यह नौजवान होश में आया, तो उसने अपने को बड़ी उलझन में पाया। अब वह पहले जैसा मामूली सिपाही नहीं रह गया था। उसमें एक नई चेतना, नूतन स्फूर्ति काम कर रही थी। उसमें एक स्वाधीन चेतना जाग उठी थी। उसकी मूर्च्छा ने मानो उसे एक दिव्य जीवन की कुंजी सौंप दी थी, जिससे निहाल हो वह सोचने लगा था, दुनिया क्या है! सत्य और न्याय क्या है? उसकी बुद्धि पूछती थी विवेक और ज्ञान का अर्थ, और उसका मन खोजता था मृत्यु और अमरत्व का रहस्य। इन प्रश्नों का एक ही उत्तर था। या तो वह प्रचलित अन्धविश्वासों के छकड़े में लदकर चलता रहे या इन अन्धधारणाओं के खोखलेपन को विश्व के सम्मुख प्रकट कर उन पर खूब ठहाका मारकर हँसे और लोगों को अपने विश्वासों को प्रमाणित करने के लिए डंके की चोट चुनौती दे—उन्हें समझाए कि सत्य वह नहीं है, जिसे वे समझे बैठे हैं; आदर्श वह नहीं है, जिसे वह मान बैठे हैं, और देवता वे नहीं हैं, जिनको उन्होंने स्वीकार कर लिया है।

अनोखा सत्यशोधक

वह अधिक उलझन में न रह सका, कारण पूरे मनोयोग के बाद उसने अपना मार्ग तय कर लिया था। अब वह हर एक राह-चलते की बाँह पकड़कर उस पर प्रश्नों की बौछारें छोड़ने लगा। सत्य, ज्ञान, विवेक, आत्मा, मृत्यु तथा अमरत्व आदि के रहस्यों को समझने का दावा करनेवाले पंडितों को वह इन सबके रहस्योद्घाटन के लिए चुनौती देता, अपने यहाँ बुलाता, यह स्वयं भी उनके यहाँ पहुँच जाता, और न होता तो राह-जलते ही उन्हें रोककर शास्त्रार्थ शुरू कर देता! चौपाल हो, हाट हो, राजमार्ग हो, विनोद-भवन हो, हर कहीं यह विचित्र प्रश्नकर्त्ता अपनी अमिट जिज्ञासा के लिये पहुँच जाता, और छेड़-छेड़कर लोगों को बातों में उलझा लेता। बातें करना मानो उसका पेशा हो गया था, इसके बगैर उसे अपना भोजन भी अच्छा नहीं लगता था!

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विचित्र व्यक्तित्व

समूचा एथेन्स शहर उसे जानने लगा था, मानो वह वहाँ का चौकीदार ही हो। कोई ऐसी जगह नहीं थी, जहाँ यह विचित्र प्रश्नकर्त्ता न पहुँचता रहा हो। यह बात नहीं थी कि देखने में यह कोई खूबसूरत आदमी रहा हो--शायद विधाता के घर जब रूप बाँटा जा रहा था, तब इसने अपने आपको उम्मीदवारों में से गैरहाजिर कर लिया था! बड़ा ही बेडौल था उसका बदन। छोटे-से-शरीर पर घड़े-जैसा सिर, अंदर धंसी हुई बड़ी-बड़ी आँखें, चौड़ी दबी हुई लेकिन दृढ़ निश्चयसूचक नाक—यही सब उसकी रूपरेखा के विशेषण कहे जा सकते हैं। किन्तु जिस किसी पर उसने अपनी तेजस्वी आँखें गड़ा दीं, फिर वह टस से मस न हो सका। यों कोई भी उसके औलिया-जैसे रंग-ढंग को देखकर हँस पड़ता। कपड़े भी वह बड़े भद्दे पहनता था; शायद इस ओर कभी उसने ध्यान ही नहीं दिया था। वह नंगे पैर ही घूमता; जूते पहनना चाहिए, इसका कदाचित् ही उसे खयाल हुआ हो। एक मोटा कंथा कंधे पर डाले और हाथ में बेहूदी-सी लकड़ी लिये, वह लोगों के पीछे हो लेता और प्रश्नों की झड़ी लगा उन्हें हैरान कर देता। जिज्ञासु तो उसके साथ हो लेते, पर घमंडी अपना अभिमान चूर होते देख क्रुद्ध उठते और बगलें झाँकने लगते। बस सुबह से शाम तक और रात में भी, जब तक कि नींद बेबस उसकी पलकों को झुका न देती, यही क्रम जारी रहता था।

किन्तु इससे यह न समझें कि यह सिपाही से बदला हुआ प्राणी—सुकरात--पागल हो गया था। उम्र के पचास उतार-चढ़ाव उसने देखे थे। देश में ऊँचे-से-ऊँचे उत्तर-दायित्वपूर्ण पदों का भार उसने योग्यता से वहन किया था। साहस और खतरे से भरी सैनिक की जिन्दगी का भी थोड़ा-सा यश उसके पल्ले बँधा था। वह अपने साथियों में खूब प्रिय था। उसका औलियों-जैसा ढंग और पहनावा हमेशा उसके दोस्तों के लिए मजाक का साधन रहा। उससे मजाक किए बगैर उनसे रहा ही नहीं जाता था। वह स्वयं भी बड़े विनोदी स्वभाव का था। जिससे वह अपने प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर पा लेता, उस पर वह मानो मुग्ध-सा हो जाता था। निहायत अदब के साथ वह किसी को भी बुला भेजता या स्वयं उस तक पहुँच जाता था और घंटों उससे सत्य और न्याय के मूल तत्त्वों पर विवेचन करता। सत्य क्या है? सुख कहाँ है? आदर्श प्रजातंत्र किसे कहते हैं? देवता किसे समझें? अमरत्व की कौन-सी कसौटी है? इसी तरह के सैकड़ों प्रश्नों की वह झड़ी लगा देता, और यदि कोई उसे सन्तुष्ट न कर सका, तो दो-एक ऐसे प्रश्न यह अजीब प्रश्नकर्त्ता उससे पूछता कि सामनेवाले की पोल खुल जाती और ज्ञान के आवरण में छिपा उसका अज्ञान स्पष्ट हो जाता, जिससे वह झुंझला उठता—अपने अज्ञान पर नहीं, बल्कि सुकरात की निश्चित विजयों पर।

श्रीमंत और महन्त जानी दुश्मन बन गए

इस तरह अपनी बातों द्वारा सुकरात ने अपने लिए दोस्त और दुश्मन दोनों पैदा कर लिये। इस नवीन चेतना के पुजारी तो उसकी ओर ममत्व के भाव से खिंच गए किन्तु, इसी स्वाधीन चेतना के कारण वहाँ के प्रथम श्रेणी के सामन्तों, श्रीमंतों और महन्तों ने उससे प्राणघातक दुश्मनी बढ़ा ली। किन्तु वह केवल अपनी बातें ही सुनाने को अधीर रहा हो, यह बात भी नहीं थी। पूरे मनोयोग के साथ वह दूसरों की बातें सुनने के लिए भी तत्पर रहता था। हाँ, जब वे अपने विश्वासों को प्रमाणों से पुष्ट न कर पाते, तब सुकरात को अपनी बात सुनाने के लिए मजबूर होना पड़ता था। वह उनकी श्रेष्ठता की छीछालेदर करता, उनके गुरुडम पर भीषण प्रहार करता और दुनिया को स्पष्ट बता देता था कि वे इसलिए मूर्ख हैं कि मूर्ख होते हुए भी वे बुद्धिमानी का सेहरा बाँधे फिरते हैं और वह स्वयं इसलिए विवेकपूर्ण है कि उसे कम-से-कम अपनी कमजोरियों का तो भान है।

वास्तव में वह कोरी गप्पें नहीं लड़ाता था—घुड़दौड़ की चर्चाओं, राजनीतिक पहलुओं, कुतर्कों, अभिनेत्रियों और नर्तकियों की गाथाएँ उसे रुचिकर नहीं थीं और न उसे एथेन्स और स्पार्टा के बीच चल रहे युद्ध से ही कोई विशेष दिलचस्पी थी। न्याय, विवेक तथा सत्य की तह में छिपी मूल-शक्ति के अनुसंधान में ही उसका मन रमता था। तमाम एथेन्स में इन विषयों पर चर्चा करनेवाला उसके मुकाबले में दूसरा नहीं था, यद्यपि उन दिनों सारा एथेन्स ही बातूनी लोगों से भरा पड़ा था।

अदम्य जिज्ञासा

सुकरात की जिज्ञासा बड़ी प्रबल और विचित्र थी। वह सत्य की खोज में भटकता फिरता था। कोने-कोने को वह इसके लिए ढूँढ़ेगा और जहाँ कहीं भी उसे सत्य मिलेगा, वह उसे अपनाएगा। उसका मन विशुद्ध, आत्मा सजग और मस्तिष्क परिष्कृत था। उसके बाह्य रंग-ढंग से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अलबत्ता धोखा हो सकता था, किन्तु भौतिक वस्तुओं की कभी उसने परवाह नहीं की। उसका जीवन कैसे व्यतीत होता था, यह भी उसके लिए पहेली ही थी। कल की चिंता से वह सदैव मुक्त रहा। पैसों की उसने परवाह नहीं की। यश का कभी वह इच्छुक नहीं रहा। अधिकारों की उसमें कभी लालसा नहीं जगी। न राजनीतिक दबदबे के मोह ने ही उसे कभी सताया। ये सब उसे नहीं चाहिए। शाम के भोजन की उसे इतनी चिंता नहीं थी, जितनी ज्ञान-चर्चा की। शब्दों के व्यूह को तोड़ उनके अर्थों की गहराई तक पहुँचने के लिए उसमें अनन्य पिपासा जग उठी थी। इसी जिज्ञासा की वेदी पर उसने अपना समूचा जीवन अर्पित कर दिया था।

गृहजीवन

लेकिन इससे यह न समझिए कि सुकरात का दुनियादारी से संबंध ही न था। वह विवाहित था। उसके तीन बच्चे भी थे, किन्तु दार्शनिकता ने उसे अभिभूत कर लिया था। आय बढ़ाने की उसे फिक्र न थी। उसके रहन-सहन का मापदण्ड एथेन्स के श्रीमंतों का विलासी जीवन नहीं था। उसकी आमदनी क्षुद्र थी। कौटुम्बिक जीवन उसका नितान्त निम्न श्रेणी का था। उसकी स्त्री 'झेन्टीप' बड़ी कर्कशा थी। वह सुकरात के अनुत्तरदायित्वपूर्ण जीवन पर कुढ़ती भी थी, किन्तु अपनी उदारता की मर्यादा के बाहर सुकरात ने कभी पैर न रक्खा। एथेन्स के घरों में अक्सर यह चर्चा चलती थी कि सुकरात के कौटुम्बिक कलह का आरम्भ केवल एकतरफा ही होता है। किंतु वह कोरा दार्शनिक भी नहीं था। सांसारिक विनोद से वह सर्वथा शून्य नहीं था। जब लोग पूछते थे—'क्यों जी सुकरात, तुम्हें अपनी स्त्री के लिए झेन्टीप ही मिली?' तब वह बड़े मजे से कहता—'जिसे घोड़ों पर चढ़ना है, उसे शैतान घोड़े की सवारी से ही आरम्भ करना चाहिए! भाई साहब, मुझे तो दुनिया के बीच रहना है, इसीलिए 'झेन्टीप' के साथ रहना शुरू किया। यह तो मेरी प्रयोगशाला है!' आप समझेंगे, सुकरात मजाक कर रहा होगा। लेकिन विश्वास रखिए, वह इस समय भी उतना ही गम्भीर रहता था, जितना वह तत्त्वज्ञों से चर्चा करते समय रहा करता था।

ऋषि सुकरात :: एक प्राचीन मूर्ति

जो कहता है 'मैं जानता हूँ', वह कुछ नहीं जानता

एक समय डेल्फी के 'ओरेकल' (भविष्यद्वक्ता) ने सुकरात को उस समय का सबसे अधिक बुद्धिमान् प्राणी घोषित किया। सुकरात के कानों पर जब इसकी भनक पड़ी, तो वह ठहाका मारकर हँस पड़ा। 'मैं बिल्कुल बुद्धिमान् नहीं, यही मैं जानता हूँ,' और सच में यही वह जानता था। 'एथेन्स ही में मुझ से अधिक योग्य मनुष्य हैं,' और इसे प्रमाणित करने के लिए वह निकल पड़ा—प्रश्नों की एक झोली लिए। कोई राजनीतिक व्यक्ति उसे मिला कि बस, प्रजा की सुख-समृद्धि और आदर्श प्रजातन्त्र की चर्चा छेड़ दी। किन्तु उसे आश्चर्य तो तब होता था जब कि वह राजनीति-विशारद भी अपने विचारों में उतना ही अव्यवस्थित पाया जाता, जितने कि अन्य व्यक्ति। और ऊपर से तुर्रा यह कि फिर भी नगर में अपने विषय का विशेषज्ञ होने का दावा वह राजनीतिक विशारद किया करता है! सुकरात तब यह कहते हुए आगे बढ़ता कि कुछ भी हो, मैं इससे तो अलबत्ता बुद्धिमान् हूँ क्योंकि अज्ञानी होकर अपनी अज्ञानता कबूल कर लेना अज्ञानी होकर ज्ञान का ढिंढोरा पीटने से तो कहीं बेहतर है। और इसी तरह बड़े-बड़े ख्याति-प्राप्त शूरवीरों, कलाकारों, तत्त्ववेत्ताओं की परीक्षा लेते-लेते प्रत्येक के विषय में उसकी उपर्युक्त धारणा मजबूत होती चली जाती

CC-0. In Public Domain. Digital Preservation Foundation, Chandigarh

थी। इसका नतीजा यह हुआ कि व्यापक दृष्टिकोणवाले सभी व्यक्तियों ने तो अपने अज्ञान को कबूल लिया, किन्तु खोखले अहंभाव से भरे लोगों ने सुकरात से दुश्मनी जोड़ ली।

पतनोन्मुख समाज पर प्रहार

उन दिनों ग्रीस नैतिक और आध्यात्मिक पतन के दृश्य खींच रहा था। धार्मिकता कुंठित हो चली थी। धर्माधिकारी अपने विलास के लिए दान लेकर अशिक्षित जनता को स्वर्ग का चिट्ठा लिख देते थे। धर्म को अन्धविश्वासों ने और राजनीति को स्वार्थों के ग्रहण ने ढाँप लिया था। ग्रीस के उन्नत मस्तक पर यह रूढ़ि-प्राबल्य पथरीले भार की तरह था। सुकरात की सजग चेतना इस परिधि में कब तक बँधी रहती? उसने इस सबके खिलाफ बगावत की। किन्तु वहाँ का अहंभाव में डूबा समुदाय इसे कब सहन कर सकता था? उसने अपनी पूरी सत्ता से सुकरात को कुचलने की ठान ली। किन्तु जब भीषण चट्टानों को फोड़ जल का स्रोत एक बार वेग से फूट पड़ता है, तब एक नहीं सैकड़ों मदान्ध हाथी भी उसके वेग को नहीं रोक पाते हैं। केवल प्राणों के भय से ही सुकरात अपनी तर्क-प्रणाली और सत्य की खोज नहीं छोड़ सकता था।

सुकरात की दार्शनिकता कोरी कल्पना में ही निवास नहीं करती थी। वह सत्य को लेकर चलता था। ईश्वर के सम्बन्ध में उसका विश्वास तत्कालीन धारणाओं के एकदम प्रतिकूल था। पौराणिक गाथाओं से उसे ईश्वर का महत्व बढ़ता नहीं दीखता था। ईश्वर तो, उसके मतानुसार, वह विराट् चेतन था, जो मनुष्य को सम्पूर्ण मनुष्यत्व की ओर अग्रसर करता और पतन की ओर गिरने से रोकता है। उसे हम 'सत्य और सुन्दर' की संज्ञा अलबत्ता दे सकते हैं। लेकिन नाम की सीमा में वह विराट् कभी भी नहीं घेरा जा सकता। वह तो पूर्णता का द्योतक है।

उसके मित्र अक्सर पूछते—"क्यों जी सुकरात, पृथ्वी कैसे बनी? मनुष्य यहां क्यों हैं? प्राणी सुखी कैसे हो सकता है, और मृत्यु के बाद क्या होता है?" तब सुकरात का एक ही उत्तर होता था—"इन प्रश्नों में उलझने से कोई लाभ नहीं। तुम यहाँ जीवित हो, इससे महान् सत्य और दूसरा कौन-सा हो सकता है। तुम यहाँ अपने अन्य भाइयों के साथ किस तरह विवेकपूर्ण जीवन-यापन कर सकते हो, यही महत्वपूर्ण प्रश्न है।"

सामान्य लोग उस पर मुग्ध थे। आम तौर पर उसके प्रशंसकों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती जा रही थी। बड़े चाव से वे उसके प्रश्नों को सुनते और उसके तर्कों का उत्तर अपनी शक्ति भर देने का प्रयास करते। झुंड-के-झुंड लोग उसके तार्किक विवेचनों को सुनने के लिए इकट्ठा होते। वह था भी बड़ा तीव्र आलोचक। उसकी नजर से कोई बुराई नहीं छूटती। इन दिनों ग्रीस में प्रजातंत्र का बोलबाला था, किन्तु इस प्रजातंत्र के संचालक पिछले निरंकुश राजाओं से किसी कदर कम न थे। जिस तरह सुकरात ने पिछले निरंकुश शासकों को फटकारा, उसी तरह प्रजा के इन स्वेच्छाचारी निरंकुश प्रतिनिधियों की भी उसने खबर ली। उसकी वज्र-कसौटी पर जो खरा न उतरे, वह उसके लिए कुछ महत्व नहीं रखता था।

निरंकुश सत्ताधारियों से टक्कर

प्रजातन्त्र का निरंकुश शासन सुकरात की यह बढ़ा-बढ़ी सहन न कर सका। उसने सुकरात को बुला भेजा और उसके लिए यह मुनादी जारी कर दी कि अब से नवयुवकों आदि से वह तर्क न करे। सुकरात ने गंभीर सरलतापूर्वक यह आज्ञा तो सुन ली, किन्तु अपनी प्रश्न पूछने की आदत से वह फिर भी बाज न आया। निहायत अदब से वह पूछ ही बैठा—आखिर 'तर्क' और 'नवयुवकों' से आपका क्या तात्पर्य है? क्या मैं अपना जीवन भी स्वतन्त्रतापूर्वक नहीं बिता सकता? क्या मुझे सोचना भी उसी तरह होगा, जैसा प्रजा के ये 'मूर्ख' प्रतिनिधि कहेंगे? ना भई, मैं इस तरह नहीं रह सकता। मुझे ईश्वरीय आदेश है कि गलत को गलत प्रमाणित करूँ और सत्य की प्रतिष्ठा करूँ। यदि ऐसा नहीं करता तो ईश्वरीय आज्ञा भंग होती है, जिसे मैं किसी भी कीमत पर मंजूर नहीं कर सकता।

अधिकारियों ने उसे फिर सावधान किया, मौत का भय दिखाया। किन्तु जो मौत के रहस्यों की छानबीन में लगा है, उसे मौत का डर क्या? वह अब भी युवकों को उसी तरह सत्यान्वेषी होने की सीख देता था। उसके दिमाग में मूर्ख और स्वेच्छाचारी अधिकारियों का महत्व जानवरों से ज्यादा न था। यदि प्रजातन्त्र की छाया में असाम्य, घृणा, अत्याचार और निरंकुशता को आश्रय मिलता है, तो उसका भंडाफोड़ करना प्रत्येक विवेकशील नागरिक का कर्त्तव्य हो जाता है। परंतु स्वेच्छाचारिता के युग में इस तरह का प्रचार करना खतरनाक होता है। इस तरह सुकरात के खिलाफ एक भावना रूप पाने लगी। निरंकुश अधिकारियों के साथ-साथ भेड़ की तरह अन्धविश्वासों के पीछे चलनेवाली जनता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी उसके महान् आदर्शों को समझने में अपने को असमर्थ पा उसके विरुद्ध उभड़ने लगी। सुकरात, चाहे उसके प्राणों की बाजी क्यों न लगी हो, उनकी प्रशंसा नहीं कर सकता था। उनके थोथे सिद्धान्तों के आगे झुकना उसके लिए नामुमकिन था। वह राजनीतिज्ञों और जनता से कहा करता—प्रजा का बहुमत ही लोकप्रिय सरकार बनाने के लिए आवश्यक नहीं है, बौद्धिक योग्यता भी वाञ्छनीय है। पर लोग सोचते, कितनी खतरनाक बात है! बहुमत की उपेक्षा! निश्चय ही वह युवकों को बरगला रहा है।

वह अपनी राह से विचलित नहीं हुआ

किन्तु उसे तो सत्य की खोज की धुन थी। वह हँसता हुआ अपनी राह चलता चला जा रहा था। ग्रीस के वे तत्त्व-दर्शी, जो विश्व की रचना का हाल जानने की डींग हाँका करते, कहते—हमें सत्य की व्याख्या सिखलानेवाला यह धूर्त कौन है? और इस तरह उसके दुश्मन बढ़ते ही गए। उसके प्राणों तक का सौदा होने लगा और इसकी भनक उसके भी कानों पर पड़ी, लेकिन मानों उसने इस पर ध्यान ही नहीं दिया। मौत की भीषणता उसे मार्ग-भ्रष्ट न कर सकी।

यों तो वह कोई नई-निराली बात नहीं कह रहा था। वह तो प्राचीन ऋषियों की ही परम्परा में अमूल्य ज्ञान-भांडार के अनुसंधान में संलग्न रहना चाहता था। मानवता की गहराई का ज्ञान कराना ही उसका उद्देश्य था! उसका इसमें कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं था। स्वभाव से ही वह ईमानदार था और प्रत्येक से ईमानदारी की आशा रखता था। वह केवल लोगों की मनोवृत्ति को अपने ही दोषों की ओर ध्यान देने के लिए मोड़ना चाहता था। वह एथेन्स के नागरिकों को महान् आलोचक बनाना चाहता था—दूसरों का नहीं, अपितु स्वयं निज का।

इस अनोखे सत्यान्वेषी ने अन्ध-भक्ति, अन्ध-श्रद्धा, अन्ध-पूजा की भीषण नग्नता को सबके सम्मुख प्रकट कर दिया था। राजनीति, धर्म और दर्शन को जिन गुलाम और भ्रमपूर्ण मनोवृत्तियों ने जकड़ रक्खा था, उनको छिन्न-भिन्न कर बौद्धिक अहंभाव के परदे को उसने चीर डाला था। कलुषित नैतिक दुष्प्रवृत्तियों को अपने अटूट और महान् सत्य की एक ही ठोकर से उसने तहस-नहस कर दिया था। इस तरह अपने अदम्य साहस से मानव-मस्तिष्क को परम्परा की कठोर बेड़ियों से मुक्त कर वह प्रकाश के उज्ज्वल और प्रशस्त मार्ग पर खींच लाया था!

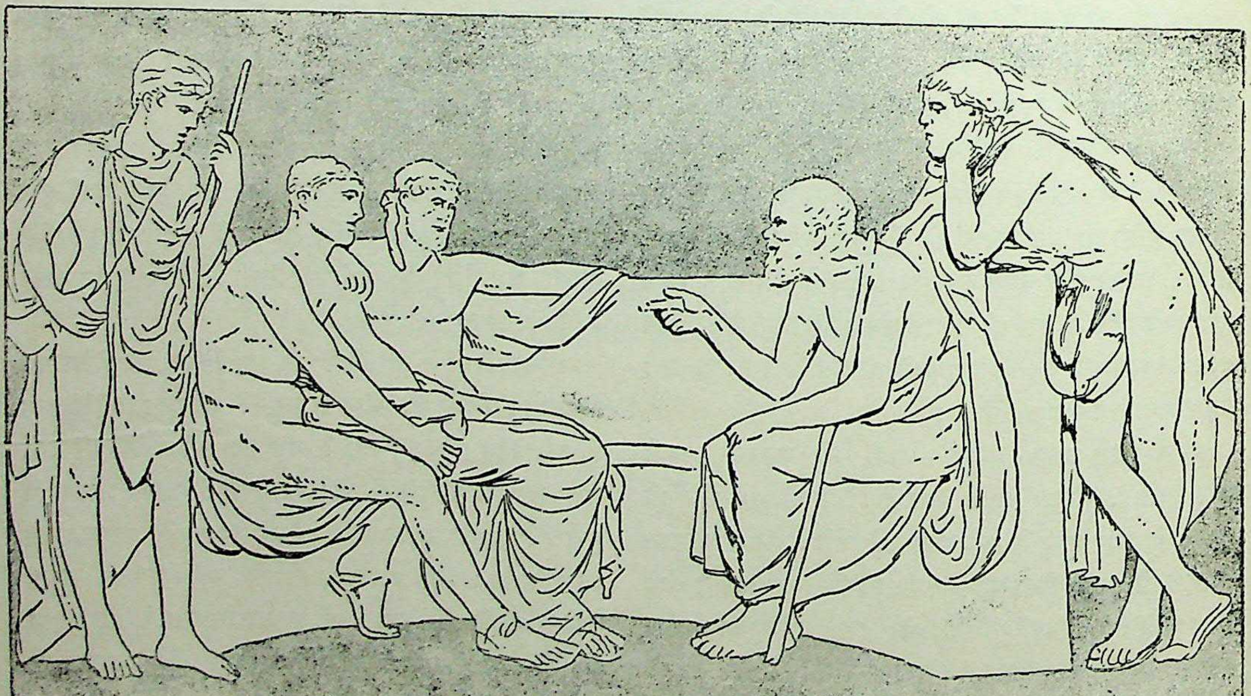

"मेरे मित्र क्या सचमुच ही तुम्हें विश्वास है कि तुम सत्य को जानते हो?"—ढाई हजार वर्ष बीत चुकने पर भी ग्रीस के उस अमर महापुरुष का यह अडिग प्रश्न, जिसे कि वह एथेन्स के प्रत्येक नागरिक से पूछा करता था, आज भी हमारे सामने ज्यों-का-त्यों अटल खड़ा है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कानून के शिकंजे में

परन्तु प्रकाश की उन दिव्य किरणों से लोगों की आँखें चौंधिया गईं और तुरन्त ही यह निश्चय कर लिया गया कि सुकरात खतरनाक आदमी है—उसका समुचित प्रबंध होना निहायत जरूरी है !

और एक दिन लोगों ने सुबह उठकर देखा, कि एथेन्स शहर में इश्तहार चिपका दिए गए हैं—सुकरात पर नीचे लिखा अपराध लगाया जाता है। सुकरात भीषण अपराधी है। उसका पहला जुर्म देश के मान्य देवी-देवताओं के खिलाफ प्रचार करने का है, और दूसरा है देश के युवकों को वरगलाने का ! इसके लिए केवल एक ही सजा हो सकती है—प्राणदण्ड !

सुकरात इस समय अपनी आयु के सत्तर चरण समाप्त कर चुका था। अब तक वह सत्य के प्रयोग में संलग्न रहा, आज उसकी परीक्षा थी। बिना किसी मानसिक उथल-पुथल के उसने वह 'राजाज्ञा' पढ़ ली ! तमाम शहर में सनसनी फैल रही थी। उसके दोस्त चिंतित और दुश्मन अरमान निकालने पर तुले बैठे थे। किन्तु समूचे शहर में यदि कोई व्यक्ति निश्चित था, तो वह था सुकरात। उसे अपनी सफाई पेश करना है, इसका उसे कदाचित् ही ध्यान रहा हो। आज तक का उसका जीवन ही इस सफाई की तैयारी था, फिर अब वह और कौन-सी नई तैयारी करे ?

चिरस्मरणीय वक्तव्य

बावन नागरिकों की एक सभा उसके अपराध का निर्णय करने बैठी। बड़ी योग्यता के साथ सुकरात ने अपना वक्तव्य दिया—विश्व कभी भी एक ही सिद्धान्त की परिधि में नहीं बाँधा जा सकता। उसके आश्चर्य मानवी मस्तिष्क की पहुँच से परे के हैं। इसकी एक झलक अपने अन्तरतम को टटोलने ही से मिल सकती है। मनुष्य केवल भौतिक शरीर मात्र ही नहीं, हाथ पैर ही नहीं, आंख-कान भी नहीं, न मांस और रक्त में ही है; वह तो सजग और चेतन आत्मा में निवास करता है। ज्ञान के जागरूक जिज्ञासु इसी महान् सत्य के अन्वेषण की ओर बढ़ते हैं, जो 'मैं' के दिव्य सत्य से उद्भासित है। हमें आत्मा के स्वर्गीय सौन्दर्य और उसके संदेश की अधिक चिंता होनी चाहिए। हमें अपने आपको इन्द्रियों के भ्रम और शब्दों के जंजाल से सर्वथा मुक्त रखना आवश्यक है। जीवन को ईमानदारी पर कायम रखना जरूरी है। अपने विशुद्ध विश्वास के विरुद्ध हमें एक कदम भी न चलना चाहिए। भौतिक आकर्षणों में फंसकर आत्मा के स्वर्गीय सुख को ठोकर से उड़ाना कदापि उचित नहीं। शरीर नश्वर है, आत्मा अजर और अमर। सुख-दुःख आत्मा के लिए हैं, शरीर उसका दास है। शरीर की क्रियाएं आत्मा की धुरी पर निर्भर हैं। हमें वही वस्तुएं अपेक्षित हैं, जिनका बल पाकर आत्मा उच्च से उच्चतर और महान् से महत्तम होती चली जाय। ये वस्तुएँ अदृश्य हैं, जिनमें पूर्ण और अपूर्व सौंदर्य एवं सत्य निवास पाते हैं।

भौतिक आकर्षणों के पीछे पागल व्यक्ति एकदम भ्रम में है। तर्क उसका कुंठित हो गया है। सन्तोषपूर्ण साधनों द्वारा सत्य और सुन्दर का सतत अनुसंधान ही मानव जीवन का लक्ष्य है। अपने हृदय की परीक्षा करो, ये दिव्य गुण कितनी मात्रा में तुममें निवास पाते हैं। मैं कहता हूँ कि निष्पक्ष हो, अपने-अपने हृदयों को टटोलो और देखो कि मैं जो कर रहा हूँ, वही सत्य है या नहीं। यहाँ मैं स्वयं एक सत्यान्वेषी की हैसियत से खड़ा हूँ। मैं अपने सम्पूर्ण होने का दावा नहीं कर रहा हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि मनुष्य सबका ज्ञाता नहीं हो सकता।

कारागार में

परन्तु किसी भी राजनीतिज्ञ को इस सफाई से संतोष नहीं हो सकता था। उन्होंने उससे ही पूछा कि उसे कौन-सी सजा मान्य होगी। उसने कहा, एथेन्स के लोगों को उपकार मानना चाहिए कि मैंने सबको भ्रम से मुक्त कर सत्य का मार्ग दिखाया। इस उत्तर ने जलती आग में घी का काम दिया। उसे विष-पान द्वारा प्राणदण्ड की आज्ञा सुना दी गई!

"कौन जानता है, मृत्यु और जीवन में कौन श्रेष्ठ है ?" कहकर अविचलित सुकरात ने यह आज्ञा सुन ली और नगर-रक्षकों के साथ उस घर का मार्ग पकड़ा, जहाँ समाज के लिए खतरनाक सिद्ध पुरुषों को घेरकर रक्खा जाता है। पर उसके दोस्तों ने कारागार में भी उसका साथ न छोड़ा। वे सदैव उसे घेरे रहे। सब चिन्तित थे; किन्तु सुकरात के सिर पर एक भी बल नहीं था। अब भी वह उसी तत्त्व-चर्चा में संलग्न था। अब भी वह मृत्यु की महत्ता और अमरत्व की श्रेष्ठता ही सिद्ध कर रहा था, जबकि मृत्यु उसके दरवाजे को खटखटा रही थी ! वह कहता, जब मैंने प्रथम-प्रथम आकाश के दर्शन किए, तब मैं अपने को अपरिचित नहीं समझा था, एक अज्ञेय शक्ति ने मेरा साथ दिया था। और आज भी जब मैं मौत के नजदीक खड़ा हूँ, वही अज्ञात शक्ति प्रकट होकर कह रही है, मानो मौत से मेरा सदा का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नाता है। मुझे अपना जीवन प्यारा था, पर [illegible] उससे सत्य प्रिय नहीं है।

उसकी स्त्री 'झेन्टीप' भी आई। वह जिंदगी भर सुकरात पर चिढ़ती रही, किन्तु उसका प्यार उसके लिए किसी भी तरह कम नहीं था। वह चीख उठी। सुकरात ने यह देखा और उसने अपने शिष्यों के साथ उसे घर भिजवा दिया और फिर उसी शान्ति के साथ अपना व्याख्यान शुरू कर दिया।

उसके मित्रों ने उसके भाग जाने का प्रबन्ध किया, किन्तु वह क्योंकर भागता! उसने कोई अपराध तो किया नहीं था! और फिर कानून भंग करके तो वह अपना बचाव नहीं चाहता था। नहीं, वह कदापि नहीं भागेगा।

बलिदान का क्षण

आखिरकार वह घड़ी भी आ पहुँची, जिसकी आशंका से सबके दिल बैठ-से रहे थे। हलाहल विष का प्याला लिए हुए कारागार का अध्यक्ष (जेलर) सामने खड़ा था।

'हाँ, भाई, बताओ मुझे क्या करना चाहिए?' सुकरात ने अविचलित भाव से उससे पूछा।

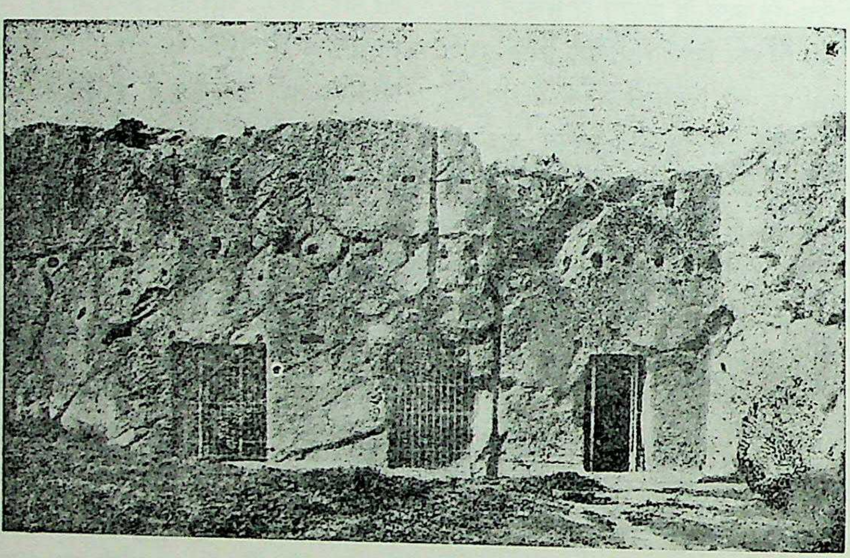

एथेन्स के उस कारागार के ध्वंसावशेष, जिसमें सुकरात कैद किया गया था।

'इसे पी जाओ और तदुपरान्त इधर-उधर घूमते रहो; जब पैर लड़खड़ाने लगें तब लेट जाना,' जेलर ने रुँधी जबान से कहा और बाँह से ढांपकर दूसरी ओर मुँह फेर लिया। उसकी आँखें डबडबा आई थीं।

लोगों की चीत्कार के बीच सुकरात ने वह विष का प्याला एक ही साँस में पी लिया। सबके धैर्य के बन्धन टूट गए और आँसुओं का बाँध भी कच्चे धागे की तरह टूट गया। किंतु सुकरात अब भी अविचलित था। घूमते-घूमते भी तत्त्व-चर्चा करना उसने न छोड़ा। पर आखिरकार उसके पैर लड़खड़ा गए। वह लेट गया। उसकी जबान खिंचने लगी। हाथ-पैर सर्द होने लगे। विष ने अपना काम शुरू कर दिया था। [illegible] शब्दों में उसने ईश्वर से प्रार्थना करते हुए अपने दोस्तों से विदा ली!

हे ईश्वर! मैं यहाँ से चल रहा हूँ, किन्तु जो कुछ मैंने यहाँ देखा है, उससे बढ़कर और कुछ भी नहीं हो सकता।

ऐ मेरे दोस्तो! मेरा समय निकट आ गया है। मुझे छुट्टी मिल गई। मेरे लिए शुभ कामना करो! मैं आशापूर्ण हृदय लिए जाता हूँ।

हे मेरी मृत्यु! तू मेरे जीवन की अन्तिम पूर्णता है। मैं तेरे आगमन की प्रतीक्षा कर रहा हूं। मेरी आत्मा तुझसे भेंट करने के लिए छटपटा रही है।

उसकी आँखें मुंद रहीं थीं। किन्तु इसी समय उसे एक बात याद आ गई। उसे किसी को एक मुर्गा देना था। अपने शिष्य पर इसकी अदायगी का भार उसने छोड़ दिया!

उसका अन्त अब निकट था। एक शिष्य ने पूछा, आपकी समाधि का क्या हो?

'जो तुम्हारी इच्छा हो, लेकिन केवल यदि तुम मुझे थाम सको।' इसके बाद इस महान् पुरुष की वाणी से एक भी शब्द न निकल सका। उसने इस निचली और निकृष्ट दुनिया से सदा के लिए कूच करके अपनी आँखें मींच लीं।

अमर ज्योति

दिन के झुरमुटे में वह ज्योति सदा के लिए विलुप्त हो गई, लेकिन आत्मबलिदान की प्रतिमूर्ति सुकरात के हृदय में जो ज्ञान का प्रदीप जल उठा था, वह तो युग-युग तक भी नहीं बुझ सकता। आज भी उसके प्रश्न इस अँधेरे में टटोलने के लिए प्रकाश का काम देते हैं। सुकरात मर गया? नहीं, वह कोटि-कोटि हृदयों में जी गया! आज भी सड़कों पर, बाजारों में, विनोद-भवनों में और अंतरिक्ष में उसके प्रश्नों की प्रतिध्वनि गूंज उठती है। अब भी वह

लोगों का पल्ला पकड़कर पूछ लेता है—'क्या तुम सच में अक्लमंद हो ?'

सुकरात की स्पष्टता को दुर्विनीतता समझ, उसकी मिलनसारी को चापलूसी का रूप दे और उसके सत्य उपदेशों में कुतर्कों की गन्ध पाकर, एथेन्स ने थोथे न्याय की शिला पर उसका बलिदान चढ़ा दिया। इसी तरह महापुरुष ईसा, दिव्य प्रेमी मंसूर और महात्मा गांधी भी सत्य, प्रेम आदि के स्वर्गीय पाठ को पढ़ाते-पढ़ाते मौत से गले मिल लिए। पर क्या इन महान् विभूतियों द्वारा उद्भासित विचार-परम्परा की अमर देन को विश्व भूल सकेगा ?

सुकरात में एक महान् व्यक्तित्व था। वह कारागार में ही टिका रहा, यद्यपि भागना उसके लिए संभव था। उसने मृत्यु ही स्वीकार की, यद्यपि जीवित रहना उसके वश की बात थी ! वह ग्रीस का ही नहीं, संसार का एक महान् आश्चर्य था ! ऐसे महान् बलिदानी कभी-कभी ही संसार के प्राङ्गण में प्रकट होते देखे जाते हैं।

सुकरात के व्यक्तित्व और विचारों का यूनान की बौद्धिक प्रतिभा और नैतिक स्तर को ऊंचा उठाने में गहरा प्रभाव पड़ा। इस महापुरुष की ऊंचाई का इससे बड़ा प्रमाण और क्या होगा कि प्लेटो जैसे महान् दार्शनिक ने भी उसके चरणों में बैठकर उसका शिष्यत्व स्वीकार किया था !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुकरात के शिष्यों में प्लेटो के बाद दूसरा उल्लेखनीय नाम जेनोफन का है, जिसने अपने गुरु के संबंध में मूल्यवान् विवरण लिखकर छोड़ा है।

स्वयं सुकरात ने कभी कोई पुस्तकें नहीं लिखीं। उसकी शिक्षा एवं जीवन-घटनाओं का हाल मुख्यतः प्लेटो और जेनोफन द्वारा लिखित विवरणों से ही हमें मिला है। परन्तु बुद्ध, ईसा, गांधी आदि महान् विभूतियों की भांति सुकरात की भी शिक्षाओं का सार वस्तुतः उसका महान् चरित्र था। उसका वह सरल जीवन ही उसके विचारों की जीती-जागती पोथी थी। वह भारत के प्राचीन ऋषि-मुनियों की याद दिलानेवाला एक पावन चरित्र था। हमारे उपनिषदों में वर्णित महान् जिज्ञासु नचिकेतस् की भांति यूनान का यह सत्यान्वेषी भी सच्ची जिज्ञासावृत्ति का एक महाप्रतीक था। उस पर सत्य की वेदी पर उसके महान् बलिदान ने तो उसके चरित्र में मानो चार चाँद लगा दिए थे।

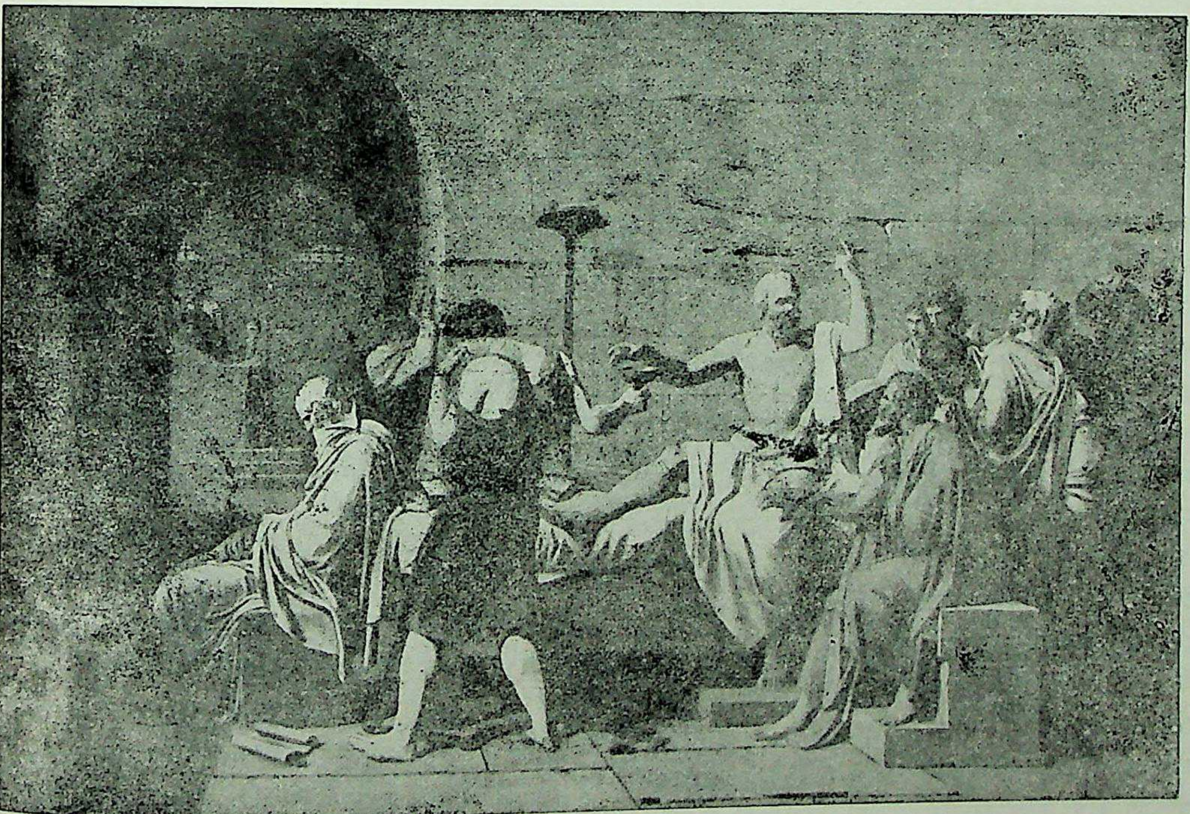

अपने महान् बलिदान के क्षण में विष का प्याला ग्रहण करते समय भी ज्ञान-चर्चा में लवलीन महापुरुष सुकरात के जीवन की अंतिम झांकी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अहिंसा-धर्म के महान् प्रवर्तक :: महावीर और अन्य तीर्थंकर

भारतभूमि तो परमार्थ की वेदी पर जीवन उत्सर्गित करनेवाले महामनीषियों की मानो अक्षुण्ण खान-सी रही है। इस पुण्यपावन देश में विश्व-कल्याण के साधक कितने ही ऐसे महापुरुष हुए, जिनके द्वारा प्रज्वलित ज्योति युग-युग तक संसार को राह दिखाती रहेगी। इस प्रकरण में जिन महामानवों का परिचय दिया जा रहा है, वे भी उन्हीं में से थे।

धर्म, योग और तप द्वारा दिव्य जीवन प्राप्त करनेवाले मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ उन अलौकिक व्यक्तियों की संज्ञा जैन साहित्य में तीर्थंकर है, जो आसानी से संसार-सागर से पार होने की क्षमता रखते हैं। ऐसे व्यक्तियों के लिए 'अरहत' शब्द का भी प्रयोग होता है। आध्यामिक जीवनविकास की सीढ़ियों के अनुसार सबसे ऊँची सीढ़ी सिद्धों की है। उससे उतरकर निचली सीढ़ी अरहतों की है, जिनका सम्बन्ध प्रमुख रूप से लोकजीवन के बीच विचरण करनेवाले संतों से है। अपने साथ अन्य व्यक्तियों का कल्याण करना और समय-समय पर ज्ञान का प्रकाश फैलाना इस जीवन में उनका प्रमुख उद्देश्य हुआ करता है। इसी क्रम में अरहत से निचली सीढ़ी 'आचार्य' की, आचार्य से निचली 'उपाध्याय' की और सबसे निचली सीढ़ी 'साधु' की मानी जाती है। सिद्ध, अरहत, आचार्य, उपाध्याय और साधु सामूहिक रूप से 'पंचपरमेष्ठिन्' कहे जाते हैं, और क्रिया-व्यापार की दृष्टि से इनकी पांच स्थितियां 'पंचकल्याण' के नाम से पुकारी जाती हैं। ये पंचकल्याण (१) स्वर्गावतरण, (२) मन्दराभिषेक, (३) दीक्षाकल्याण, (४) केवलोत्पत्ति, और (५) परिनिर्वाण कल्याण हैं। गति की दृष्टि से प्रत्येक जीव की देव, नर, नरक और त्रियक ये चार गतियां हैं। जन्म-मृत्यु-पूर्ण संसारचक्र से मुक्त स्वर्ग में पहुँची हुई शुद्ध देवगति की आत्माओं की संज्ञा सिद्ध है। सिद्ध-स्थिति को प्राप्त करने के लिए स्वर्गीय देव-आत्माओं को भी पृथ्वी पर मानव रूप में आकर व्रतपूर्वक धर्म, योग और तप द्वारा अपना और लोक का जीवन-कल्याण करना होता है। ये आत्माएँ जानती हैं कि शरीर-बन्धन के कारण मनुष्य को अपूर्ण इन्द्रियग्राह्य ज्ञान हुआ करता है। इसी से इंद्रिय-सुख की वस्तुओं से मनुष्य को राग होता है, जिनका अभाव दुःख का कारण बन जाता है। इसलिए दुःख से मुक्ति रागहीन होने में है। रागहीन होने के लिए इन्द्रिय-दमन, धर्म, योग और तप का मार्ग अपनाना पड़ता है। लोक में ज्ञान के प्रकाश को फैलाने के लिए ही समय-समय पर तीर्थंकरों का उदय हुआ, जिनमें चौबीस अत्यन्त प्रधान हैं।

प्रथम तीर्थंकर—ऋषभदेव

अनुश्रुति के अनुसार जैनों के पहले तीर्थंकर ऋषभ (वृषभ) देव अथवा आदिनाथ थे।

ऋषभदेव का जन्म श्रावस्ती राज्य की विनिता नगरी के इक्ष्वाकुवंशी क्षत्रिय राजा नाभिराय चौदहवें कुलकर के घर में मरुदेवी के गर्भ से हुआ। इनकी माता को स्वप्न में बैल के दर्शन हुए थे, इसलिए इनका नाम वृषभ (ऋषभ) देव हुआ। इनके सौ पुत्रों में सबसे बड़े चक्रवर्ती भरत थे। इन्हें बरगद के पेड़ के नीचे अष्टपाद (कैलास) में मुक्ति मिली। बैल इनका चिन्ह है। इन्होंने पुरुषों को बहत्तर और स्त्रियों को चौंसठ कलाएँ सिखलाईं। साहित्यिक और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

औद्योगिक उबयोगी कलाएँ स्त्रियों को नहीं सिखलाई गईं। उन्हें केवल घरेलू जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली कलाएँ ही सिखलाई गईं। यह सतयुग के अन्त में उत्पन्न हुए थे। ऋग्वेद, विष्णुपुराण, अग्निपुराण, वाराहपुराण, और भागवत में भी इनकी कथा आती है। यह नारायण के अवतार और लिपिविद्या के आविष्कर्त्ता भी माने जाते हैं। यह महायोगिन् और 'योगीश्वर' कहे गए हैं। योगपरम्परा में 'शिव' नाद-परम्परा के आदि योगी होने से आदिनाथ और 'योगीश्वर' कहलाते हैं। कैलास में उनका वास है। वृषभ उनका वाहन है, जो कि 'काम' पर विजय प्राप्त करने का स्थूल प्रतीक है। 'वृषभ' शब्द का अर्थ काम भी होता है। शिव बरगद के नीचे समाधि में लीन रहते हैं। नारायण के अवतार भी साहित्य में शिव ही माने गए हैं। शिवमार्गी योगियों के नाम के साथ नादतत्त्व का प्रतीक 'नाथ' शब्द जोड़ने की भी एक परम्परा है। क्या आश्चर्य यदि 'वृषभ देव' तथा अन्य 'नाथ' नामधारी तीर्थंकर शैव योग-परम्परा के ही प्रतिनिधि रहे हों! सम्भवतः महावीर ही पहले व्यक्ति रहे हों, जिन्होंने इस मार्ग में कुछ नवीनता लाकर वास्तविक जैन धर्म की स्थापना की हो।

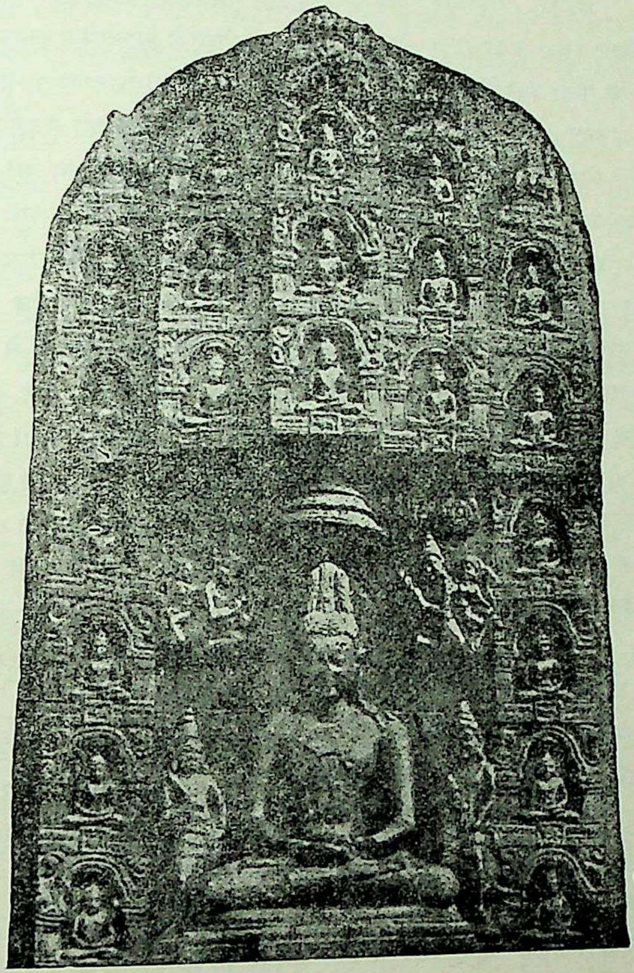

प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव या आदिनाथ

अन्य तीर्थंकरों का परिचय

दूसरे तीर्थंकर अजीतनाथ का जन्म अयोध्या के इक्ष्वाकुवंशीय क्षत्रिय-परिवार में जितशत्रु के घर विजय माता के गर्भ से हुआ था। इनका जन्म होने पर शत्रु पराजित हो गए, इसलिए इनका नाम अजीतनाथ हुआ।

तीसरे तीर्थंकर संभवनाथ श्रावस्ती के इक्ष्वाकुवंशीय क्षत्रिय थे। इनके पिता का नाम जितारि और माता का नाम [illegible] था। राज्य में अन्न के अकाल और महामारी का अन्त होने और सुख के दिनों के आने की संभावना इनके जन्म से ही होने लगी, इसलिए संभवनाथ संज्ञा इनकी हुई। अश्व इनका चिन्ह था। एक हजार साधुओं सहित पार्श्वनाथ पर्वत पर इन्होंने प्रयाल वृक्ष के नीचे मुक्ति पाई।

चौथे तीर्थंकर अभिनंदननाथ हुए। अयोध्या के (वनिता देश के) इक्ष्वाकुवंशीय राजा संवर के घर सिद्धार्थ नाम्नी रानी के गर्भ से इन चतुर्थ तीर्थंकर का जन्म हुआ था।

पाँचवें तीर्थंकर सुमतिनाथ इक्ष्वाकुवंशीय क्षत्रिय राजा मेघरथ की सुमंगला रानी से उत्पन्न हुए थे। अयोध्या के कंकणपुर स्थान में इनका जन्म हुआ था। जन्म से पूर्व सुमंगला अत्यंत कुशाग्रबुद्धि हो गई थी। इसलिए पुत्र का नाम सुमतिनाथ हुआ।

कौशाम्बी के इक्ष्वाकुवंशीय राजा श्रीधर की पत्नी सुसीमा को दोहदकाल में रक्ताभ कमल के बिछौने पर सोने की चाह हुई, जो कि पूरी की गई। बच्चे में कमल की रक्त आभा की झलक आई, इसलिए उसका नाम पद्मप्रभु हुआ। यही छठे तीर्थंकर हुए।

सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ बनारस के इक्ष्वाकुवंशी प्रथिस्तराज के घर पृथिवी देवी के गर्भ से उत्पन्न हुए। इनकी माता के दोनों पार्श्वों (भागों) में कुष्ठ रोग के चिह्न थे। इनके जन्म पर वह रोगमुक्त हो गईं। बालक भी इन चिह्नों से मुक्त उत्पन्न हुआ, इसलिए सुपार्श्वनाथ उसका नाम पड़ा।

चन्द्रप्रभु नामक आठवें तीर्थंकर चन्द्रपुरी के इक्ष्वाकुवंशी राजा महासेनराज के पुत्र थे और लक्ष्मणा रानी से उत्पन्न हुए थे। इनके जन्म के पूर्व इनकी माता को चन्द्रमा को पी जाने का दोहद हुआ था। इसी से वह चन्द्रप्रभु कहलाए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नवें तीर्थंकर सुविधिनाथ अथवा पुष्पदंत हुए। इनका जन्म ककंदी अथवा किंठिकदपुर में सुग्रीवराज के घर रामा रानी के गर्भ से हुआ था। श्वेताम्बरों के अनुसार इनका चिह्न कच्छप है। जन्म के पूर्व इनके कुलवालों में कलह चल रहा था, जिसका अन्त इनके जन्म के बाद हुआ। इनके जन्म से सुविधि (शांतिमय रीति) परिवार में आ गई, इसलिए इनका नाम सुविधिनाथ हुआ। इनके दांत पुष्पकली की भांति सुन्दर होने के कारण पुष्पदंत भी इनका नाम हुआ।

दसवें तीर्थंकर भद्रिकपुर, भद्रपुर, भद्दिलपुर, अथवा बछिलपुर के इक्ष्वाकुवंशी क्षत्रिय राजा दृढ़रथराज के पुत्र थे। जन्म के पूर्व एक दिन इनके पिता ज्वराक्रांत थे। उसी समय माता ने अपने हाथ से उनका स्पर्श किया। शीतल स्पर्श से राजा को पर्याप्त शांति मिली और ज्वर भी दूर हो गया। माता की यह विशेषता पुत्र में आजीवन बनी रही। इसी विशेषता के कारण वह शीतलनाथ कहलाए।

श्रेयमांशनाथ सिंहपुरी (सारनाथ) के इक्ष्वाकुवंशी राजा वासुदेव अथवा विष्णुराज के पुत्र थे। राजा के पास एक अत्यन्त सुन्दर सिंहासन था, जिस पर किसी प्रेत ने अधिकार कर लिया, इससे अब सिंहासन पर बैठने की किसी की भी हिम्मत न होती थी। किंतु रानी विष्णु की इस सिंहासन पर बैठने की अत्यंत प्रबल इच्छा थी। वह उस पर बैठी और उसका कुछ भी अनिष्ट न हुआ, इसलिए उसके पुत्र होने पर उसका नाम श्रेयमांशनाथ रक्खा गया।

बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्य चंपापुरी (भागलपुर) के इक्ष्वाकु राजा वसुपूज्य की रानी जयादेवी से उत्पन्न हुए थे। इन्द्र ने वसुपूज्य के प्रति अपनी 'वसु' मणि देकर श्रद्धा प्रकट की थी, इसलिए इनके पुत्र का नाम वासुपूज्य हुआ।

तेरहवें तीर्थंकर विमलनाथ माने जाते हैं। ये कंपिलपुर (फर्रुखाबाद) के राज्य के थे। इनका चिह्न वाराह है। इनकी माता विमल बुद्धि की थीं।

चौदहवें तीर्थंकर अनंतनाथ अयोध्या के रहने वाले थे। इनके पिता सिंहसेन थे। माता सुजसा थी। इनके प्रभाव से अयोध्या में एक बड़ा विस्तृत सूत बीमारियों को दूर करनेवाली शक्ति से पूर्ण हो गया, इसलिए ये अनंतनाथ कहलाए। इस नामकरण का एक कारण यह भी था कि माता को अनन्त रत्नों की माला के दर्शन हुए थे।

पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ हुए। यह रत्नपुरी के इक्ष्वाकुवंशीय क्षत्रिय राजा भानुराज की सुव्रता रानी से उत्पन्न पुत्र थे। पुत्र होने से पहले माता-पिता की धर्मवृत्ति अत्यन्त प्रबल हो चली थी, इसलिए पुत्र का नाम धर्मनाथ पड़ा।

सोलहवें तीर्थंकर शांतिनाथ हस्तिनापुर के राजा विश्वसेन की अचिरा रानी से उत्पन्न हुए थे। हस्तिनापुर में जब महामारी का प्रकोप हुआ तो अभिषिक्त जल से भूमि को सिंचित कर रानी ने अपने निवास की रक्षा की और पुत्र को जन्म दिया। यह पुत्र भारत का पहला चक्रवर्ती सम्राट् हुआ।

सत्रहवें तीर्थंकर कुंथूनाथ हस्तिनापुर में गजपुरी के राजा सूरजराज अथवा शिवराज की श्रीरानी अथवा श्रीदेवी से उत्पन्न इक्ष्वाकुवंशी पुत्र थे। अज (बकरी) इनका चिह्न है। इनकी माता को स्वप्न में रत्न की ढेरी (कुंथ) के दर्शन हुए थे। इसलिए वे कुंथूनाथ कहलाए।

अठारहवें तीर्थंकर अरनाथ थे, जिनका जन्म गजपुर (हस्तिनापुर) के राजा सुदर्शन की पत्नी देवीरानी के गर्भ से हुआ था। इनकी माता को स्वप्न में रत्नों के दर्शन हुए थे, इसलिए इनका नाम अरनाथ पड़ा।

उन्नीसवें तीर्थंकर मल्लिनाथ थे। पूर्वजन्म में तीर्थंकर होने के लिए इन्होंने अपने पांच सहचारियों सहित एक-सी साधना की। पांचों साधकों से आगे बढ़ने के लिए बिना उन्हें बताए एक दिन उन्होंने उनसे अधिक उपवास व्रत किया। फलतः वे तीर्थंकर तो हो गए, किन्तु इस छल के कारण उन्हें स्त्री रूप लेना पड़ा। ये मिथिला अथवा मथुरा में कुंभराज अथवा राजा कुबेर के घर में प्रभावती के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। देवी-देवताओं ने प्रभावती के मनोनुकूल सुमनों की माला दोहदावस्था में रानी को प्रदान की थी, इसलिए मल्लि (माला) से संबंधित होने के कारण इनका नाम मल्लिनाथ हुआ।

बीसवें तीर्थंकर मुनिव्रत हरिवंशीय क्षत्रिय थे और राजगृह के राजा सुमित्र अथवा सुमित्रराज के पुत्र थे। इनकी माता पद्मावती ने कठिन व्रत किए थे, इसलिए इनका नाम मुनिव्रत हुआ।

इक्कीसवें तीर्थंकर नमिनाथ हैं, जिनका जन्म मिथिला अथवा मथुरा में हुआ था। नीलोत्पल अथवा अशोक इनका चिह्न है। इनके पिता राजा विप्र अथवा विजय जब युद्ध में लगे थे, तब रानी विप्रा गर्भवती थी। रानी के दर्शन कराने से शत्रु ने युद्ध करना छोड़ दिया। वह नमित हो गया (झुक गया), इसलिए पुत्र का नाम नमिनाथ हुआ।

बाइसवें तीर्थंकर नेमिनाथ अथवा अरिष्टनेमि थे, जो सौरीपुर के राजा समुद्रविजय के पुत्र थे। इनकी माता को काले रत्नों (अरिष्ट) के चक्र (नेमि) के दर्शन हुए थे, इसलिए इनका नाम अरिष्टनेमि अथवा नेमिनाथ हुआ। शंख इनका चिह्न है। इन्हें काठियावाड़ गुजरात में महाविष्णु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अथवा वेत वृक्ष के तले मोक्षलाभ हुआ। बाल ये ब्रह्मचारी थे। राजमती अथवा राजल कन्या इनकी मँगतेरी थी। बारात के भोज के लिए मारे जानेवाले पशुओं की पंक्ति देखकर इन्हें विरक्ति हुई और कंगन तोड़कर यह वैरागी हो गए। यह देखकर राजमती ने भी संसार त्याग दिया।

पार्श्वनाथ और उनकी शिक्षा

तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ हुए। भद्रबाहु-रचित कल्पसूत्र के अनुसार, जो कि ईसा से तीन सौ पूर्व वर्ष की रचना है, पार्श्वनाथ काशी के इक्ष्वाकुवंशी राजा अश्वसेन की बामा नामक रानी से उत्पन्न हुए थे। हेमकोष ग्रंथ के अनुसार कुशस्थल (दक्षिणी पांचाल) की राजधानी कान्यकुब्ज के राजा नरवर्मन की पुत्री प्रभावती से, जो कि हेमचन्द्र के त्रिषष्टि शलाका ग्रंथ के नवम पर्व के आधार पर प्रसेनजित की बहिन थी, उनका विवाह हुआ था। राजकुमार पार्श्व प्रजा के प्रिय पात्र थे। अपनी इस लोकप्रियता के कारण ही वह 'पुरिसादाणीय' (लोगों के प्रिय) के नाम से पुकारे जाते थे। तीस वर्ष की आयु में ही इन्हें विरक्ति हो गई और राज्य त्याग कर वह साधु हो गए। विशाला नामक पालकी पर बैठकर ये आश्रमपद उपवन में पहुँचे, जहाँ साढ़े तीन दिन तक व्रत रखकर इन्होंने संन्यास लिया और तिरासी दिन के ध्यान-तप के बाद चौरासीवें दिन इन्हें 'केवल-ज्ञान' प्राप्त हुआ। आठ गण और उनके गणाधार शुभ, आर्यघोष, वशिष्ठ, ब्रह्मचारी, सौम्य, श्रीधर, वीरभद्र और यश इनके भक्त हो गए। आर्यदत्त के साथ सोलह हजार श्रमण थे, पुष्पकुला के साथ अड़तीस हजार भिक्षुणियाँ, सुव्रत एक लाख चौंसठ हजार सामान्य गृहस्थ लोगों का मुखिया था और सुनंदा तीन लाख सत्ताइस हजार स्त्रियों की अधिनेत्री थी। ये सब के सब पार्श्वनाथ के अनुयायी हो गए।

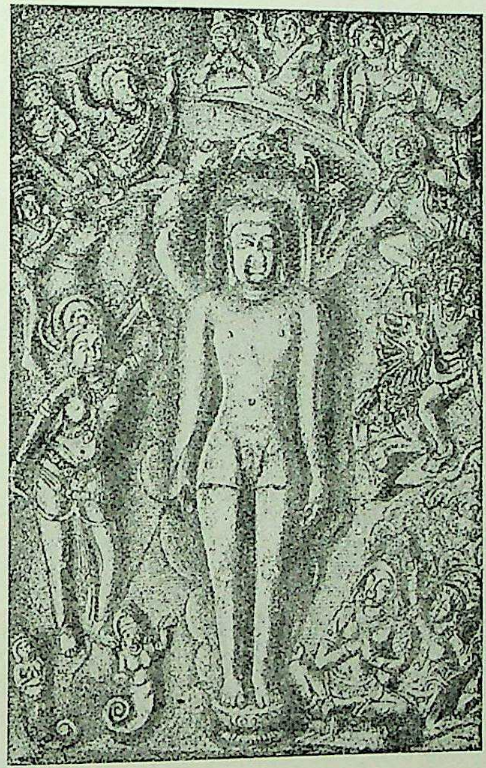

तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ

पार्श्व के अनुसार ज्ञान, श्रद्धा और सदाचार ही मोक्ष प्राप्ति के सच्चे हेतु हैं। किंतु पहचान की आवश्यकता के लिए बाहरी बाना भी आवश्यक हो जाता है। श्रमण और गृहस्थों का धर्म एक-सा नहीं हो सकता। गृहस्थ के लिए अति कठोर साधना को निभा सकना अत्यंत कठिन है और सामान्य वस्तुओं की आवश्यकता श्रमणों को भी पड़ जाती है। साधना के मार्ग में श्रमणों को कठिन व्रत से काम लेना आवश्यक होता है। जन्म-मरण के दुःख के मुक्त होने के लिए संचित कर्मों का नाश करना अत्यंत आवश्यक है, जिसके लिए मनोयोगपूर्ण तप-ध्यान की आवश्यकता है। इंद्रियदमन भी कम आवश्यक नहीं। मोह से मुक्त होना और इंद्रियासक्तियों से बचना ये दो बातें ऐसी हैं, जिनके बिना साधक का काम नहीं चल सकता। इसलिए प्रत्येक साधक के लिए पार्श्वनाथ ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह इन चार व्रतों का विधान किया। इस संप्रदाय में आने के लिए सभी के द्वार खुले हुए थे। प्रत्येक पार्श्वमतानुयायी को चार प्रतिज्ञाएँ करनी होती थीं—

(१) मैं प्राणियों की हिंसा नहीं करूँगा (अहिंसा)।

(२) मैं सदा सत्य बोलूँगा (सत्य)।

(३) मैं चोरी नहीं करूँगा (अस्तेय)।

(४) मैं कोई संपत्ति नहीं रक्खूँगा (अपरिग्रह)। स्पष्ट है कि ये कोई नए सिद्धान्त नहीं थे। पार्श्वानुयायी श्रमणों को अधोवस्त्र और उत्तरीय पहनने की अनुमति थी। सौ वर्ष की आयु भोगकर पार्श्वनाथ ने समवेत शिखर पर देवदारु वृक्ष के तले तिरासी साधुओं सहित मोक्षलाभ किया।

वर्द्धमान महावीर का आविर्भाव

पार्श्वनाथ के लगभग दो सौ वर्ष बाद हमारे चरितनायक चौबीसवें तीर्थंकर महावीर का जन्म हुआ। चौबीसों तीर्थ-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करों में वर्द्धमान महावीर और पार्श्वनाथ ही ऐसे हैं जिनकी ऐतिहासिकता में किसी को भी सन्देह नहीं और धार्मिक इतिहास में जिनका विशेष महत्व है।

वर्द्धमान महावीर का जन्म विदेह राज्ज के गण-तन्त्र में कुंदग्राम नामक नगर में सम्भवतः ईसा से ५७० वर्ष पूर्व, उस ग्राम के मुखिया सिद्धार्थ के घर त्रिशला क्षत्राणी के गर्भ से हुआ था। सिद्धार्थ इक्ष्वाकुवंशी क्षत्रिय थे, कश्यप इनका गोत्र था और शाखा ज्ञात्रिक थी। त्रिशला वैनग्राम के वशिष्ठ-गोत्री मुखिया चेट्टक की बहिन थी। बौद्ध साहित्य में महावीर को निगंठ नायपुत्त, नामपुत्त, नाटपुत्त या नाटपुत्र (निग्रन्थनाथपुत्र अथवा ज्ञात्रिकपुत्र) कहा गया है। वैनग्राम वैशाली (वर्तमान बसाढ़) के समीप था। बसाढ़ पटना से सत्ताईस मील उत्तर की ओर है। रागातीत होने के कारण बच्चे का नाम वर्द्धमान पड़ा। वीर, जिन, अरहत, शाशनायक, बुद्ध, वैशालीय, और भगवत आदि शब्दों का प्रयोग भी साहित्य में महावीर के लिए मिलता है। चेट्टक का सम्बन्ध उस समय के बड़े बड़े राज-घरानों से था। अजातशत्रु के अनुकरण पर चेट्टक ने भी अपना नाम जियशत्रु (जीतशत्रु) रक्खा था। त्रिशला के लिए साहित्य में लिच्छवीकुमारी-विदेहदत्ता, प्रियकारिणी, आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है और सिद्धार्थ के लिए श्रेयांस और यशांस शब्दों का। कुंदग्राम के लिए कुंदपुर अथवा कोल्लाग शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। सिद्धार्थ की दो और संतानें, जो महावीर से बड़ी थीं, नंदिवर्द्धन और सुदर्शना थीं।

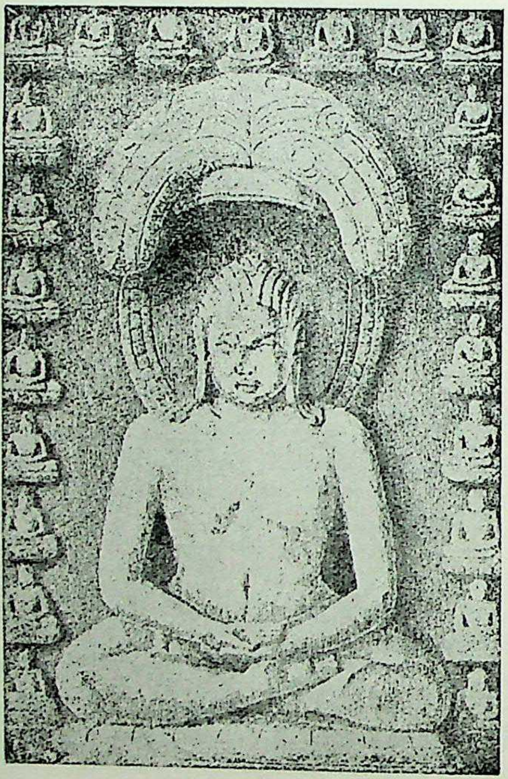

चौबीसवें तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर

आचारांग सूत्र (२, १५, १६) के अनुसार महावीर के माता-पिता पार्श्वनाथ के अनुयायी थे। महावीर के जन्म के विषय में कल्पसूत्र तथा सूत्र कृदंग में अनेक विचित्र कथाएँ हैं। कल्पसूत्र के अनुसार पूर्वजन्म के वासस्थान पुष्पोत्तर से उतरकर जब महावीर संसार में आने लगे, तो उनकी आत्मा ने ब्राह्मण रिषभदत्त की धर्मपत्नी देवानन्दा के गर्भ में प्रवेश किया, किन्तु कोई भी तीर्थंकर ब्राह्मण के घर में नहीं पैदा हुआ था, इसलिए शक्र (इन्द्र) ने देवानन्दा के गर्भ को लिच्छवि राजकुमारी के गर्भ में प्रविष्ट करवा दिया। इस अवसर पर त्रिशला को एक-से-एक विचित्र स्वप्न हुए। उसे चौदह अथवा सोलह स्वप्न हुए। इन स्वप्नों में उसने क्रम से उज्ज्वल गौरवर्ण हाथी, शुभ्र बैल, श्वेत सिंह, हाथीपूजित श्वेतकमलासीन लक्ष्मी, मंदार-माला, अन्धकार को चीरता चन्द्र, दिव्य सूर्य, मोरपंख से युक्त सुवर्णमयी इंद्रध्वजा अथवा युगल मत्स्य, जलभरा सुवर्ण-घट अथवा रत्नजटित पुष्पयुक्त कलशयुग्म, भौंरों से विभूषित कमल-सरोवर, लहराता हुआ दूध का सागर, लाल-मणिजटित दिव्य सिंहासन, पुष्पविभूषित रत्नजटित स्वर्गीय शय्या, पाताललोक के अधीश्वर देवता, मेरु पर्वताकार रत्नमंजूषा तथा होमाग्नि प्रज्वलित अग्नि को देखा। देवज्ञों ने इन स्वप्नों का अर्थ लगाकर बतलाया कि बालक या तो चक्रवर्त्ती सम्राट् होगा या विश्वकल्याणकारी महान् तीर्थंकर।×

बुद्ध के जन्म के विषय में भी इस प्रकार की कहानी बौद्ध साहित्य में है। दान, शील, शांति, वीर्य, ध्यान, प्रज्ञा इत्यादि दस परिमिताओं की सिद्धि प्राप्त कर लेने के बाद स्वर्ग में बुद्ध जब बुद्धत्व के पूर्ण अधिकारी हो गए, तो पृथ्वी पर मानव रूप में जन्म लेने के लिए उपयुक्त देश, समाज, जाति आदि चुनने की सोचने लगे। उन्होंने मगध देश के अंतर्गत शाक्य भूमि और इक्ष्वाकु क्षत्रिय-वंश ही चुना। ब्राह्मणों के एकांतिक विरोध में, अध्यात्म-विद्यामूलक क्षत्रियों में उठी हुई चेतना की सुदृढ़ लहर का पता इन कथाओं से चलता है।

×बुद्ध तथा अन्य जैन तीर्थंकरों की माताओं के द्वारा भी इस प्रकार के स्वप्न देखे जाने की बात साहित्य में मिलती है। इससे लोक विश्वास की समान ध्वनि की सूचना मिलती है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्वप्नों की यह कथा उस लोक-पुकार को व्यक्त करती है, जो किसी दुःखनिवारक महान् क्रांतिकारी धर्म-संस्थापक के जन्म की कामना कर रही थी।

पुत्र की उत्पत्ति पर बड़ा आनन्द मनाया गया। कैदी मुक्त किए गए। भूमि, अन्न, धन आदि दान किए गए।

तीन दिन का होने पर बच्चे को चन्द्र-सूरज दिखलाए गए। छठे दिन छठी संस्कार हुआ। बारहवें दिन बड़े समारोह और प्रीतिभोज के साथ ऐश्वर्य-वृद्धि के कारण बालक का नाम 'वर्द्धमान' रक्खा गया। किन्तु देवताओं ने महावीर नाम रक्खा, जो कि लोगों में प्रचलित हुआ। अनुश्रुति के अनुसार महावीर जब गर्भ में सीधे रहे, तो माता को संदेह हुआ और वह दुःख मानने लगी कि कोख शायद इस बार खाली रह गई है। तब दुःखी माता को प्रसन्न करने के लिए महावीर हिले-डोले और उन्होंने निश्चय किया कि माता-पिता के जीते जी वह घरबार नहीं छोड़ेंगे।

बाल्यकाल में अनेक चमत्कारपूर्ण कार्य महावीर ने किए। इन कथाओं का विशद वर्णन जैन-साहित्य में मिलता है। आठ वर्ष की अवस्था में इन्हें विद्याध्ययन के लिए पाठशाला में भेजा गया। हेमचंद्र (१०८८–११७४ई०) के "त्रिसष्टि शलाका पुरुष-चरित्र" के अनुसार पूर्व-संस्कारों के कारण महावीर स्वतः ही सर्वविद्यासम्पन्न हो गए। उन्हें पाठशाला की शिक्षा की आवश्यकता ही नहीं हुई।

दिगम्बरों के अनुसार महावीर ब्रह्मचारी ही रहे, किन्तु श्वेताम्बरों के आचारांग सूत्र (२,१५) के अनुसार महावीर का विवाह कुंडिन्य गोत्र की यशोदा नामक कन्या से हुआ था, जिससे उनकी अणोज्जा (अनुजा) नाम की पुत्री भी हुई थी, जिसका विवाह जमालि से हुआ था। जमालि बाद को महावीर के अनुयायी हुए। जमालि की अनुजा से एक पुत्री हुई थी, जिसके शेशवती और यशोवती ये दो नाम थे।

वैराग्य और केवल-ज्ञान की प्राप्ति

महावीर का यौवन-काल बड़े आनन्द और सुख से बीता। जब वह अट्ठाईस वर्ष के हुए, तब उनके माता-पिता का देहांत हो गया। अपने भाई तथा जनता के खयाल से महावीर कुछ और समय तक घर में रुके रहे, पर तीस वर्ष के होने पर उन्होंने कुटुंबियों की अनुमति लेकर परिवार त्याग साधु-जीवन अपना लिया। कल्पसूत्र के अनुसार इस समय उन्होंने तीन सौ अट्ठासी करोड़ अस्सी लाख सुवर्ण मुद्राएं दान कीं! अपने दोनों हाथों से स्वयं केश नोचकर उन्होंने अपना केशलोचनसंस्कार किया और पार्श्वनाथ के सम्प्रदाय में दीक्षित होकर प्रतिज्ञा की कि बारह वर्ष तक मैं अपने शरीर की चिंता नहीं करूंगा और महान् शक्तियों से आई हुई सभी आपदाओं को बिना किसी विरोध के स्वीकार करूंगा। अनुश्रुति के अनुसार यह घटना लगभग ५६३ ईस्वी पूर्व की है, किंतु विद्वानों ने महावीर का जो समय अनुसंधान किया है, उसके हिसाब से ५४० ई० पू० की होनी चाहिए। कुंडनग्राम के बाहर के वन में अशोक वृक्ष के नीचे महावीर ने ढाई दिन उपवास कर पहली दीक्षा ली। शरीर सुखाकर जीवन-मरण के दुःखचक्रों से निर्वाण पाना ही इस घोर तप का उद्देश्य था, जिसे महावीर अपना रहे थे। कई दिनों तक उन्होंने कुछ भी नहीं पिया। उन्होंने अपनी सब संपत्ति दे डाली। कहा जाता है कि इस समय इंद्र ने उन्हें वस्त्र दिए और देवताओं तथा विश्रमण देव ने साक्षी दी। महावीर को मति-ज्ञान, श्रुति-ज्ञान और अवधि-ज्ञान पहले से ही था। अतः वे अब मनःपर्याय और केवल ज्ञान की प्राप्ति में लग गए, ऐसा श्वेतांबरों का कथन है। किंतु दिगंबरों के अनुसार छः महीने के योग और निश्चेष्ट समाधि के बाद भी जब वे इन दो ज्ञानों को नहीं प्राप्त कर सके, तो वे कुलपुर गए, जहां के राजा कुलाधिप ने उन्हें भोजन-वस्त्र आदि से सम्मानित किया। उसने उन्हें दूध और भात भोजन में दिया, जिसका पारायण बड़ी प्रसन्नता से महावीर ने किया। इसके उपरांत वन में लौटकर उन्होंने घोर तप किया, फिर भी ज्ञान सिद्ध न हुआ। तब वे उज्जैन चले गए, जहां उन्होंने शिवमन्दिर में घोर तप किया। महादेव-पार्वती ने उनकी अनेक परीक्षाएं लीं, पर सब प्रकार से महावीर अडिग रहे। अन्त में तप योग के बाद उन्हें मनःपर्याय ज्ञान सिद्ध हुआ। शांतिपूर्ण केवल ज्ञान की यह प्राप्ति, जिसके बाद वे अरिहंत, परम-श्रेष्ठिन्, अरहत, जिन, तीर्थंकर और महावीर कहलाए, उन्हें पार्श्वनाथ पर्वत के समीप बहनेवाली रिजुपालिका नदी के तट पर स्थित जृंभक गांव के एक किसान के खेत में बने एक पुराने मंदिर में हुई थी!

उपदेश और शिक्षा

केवल-ज्ञान प्राप्त होने के बाद भगवान् महावीर घर-बार-सुख-दुःखरहित सच्चे साधु बन पाए। साधु-जीवन में उनकी रहनी क्या थी, इस विषय में जैन ग्रंथ एकमत नहीं है। कुछ के अनुसार तेरह वर्ष तक कम-से-कम एक वस्त्र का उपयोग वे अवश्य करते रहे, जिसे अंत में सोमदत्त नामक किसी ब्राह्मण ने ले लिया। पार्श्वनाथ के अनुयायियों में अनेक जीवन-विरोधिनी आध्यात्मिक दुर्बलताएँ भर गई थीं, इसीलिए महावीर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

न उनका साथ छोड़कर प्राचीन मत में यथानुकूल परिवर्तन किए थे। पार्श्वनाथी चार व्रतों (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह) के साथ महावीर ने पाँचवाँ व्रत ब्रह्मचर्य का और जोड़ दिया। पार्श्वनाथ के अनुयायी वस्त्रों का उपयोग किया करते थे। महावीर ने इसकी आवश्यकता नहीं बतलाई।

पार्श्वनाथ और महावीर के अनुयायियों के पारस्परिक संबंध का पता केशी-गौतम संवाद से चलता है। केशी पार्श्वनाथ का अनुयायी था और गौतम (इंद्रभूति) महावीर का। दोनों क्रमशः श्रावस्ती के तिंडुक और कोष्ठक वनों में रहा करते थे। दोनों के पर्याप्त संख्या में अनुयायी भी थे। केशी के सिद्धांतों की व्याख्या करते हुए गौतम युगोचित परिवर्तनों की आवश्यकता बतलाता है और पंचम व्रत की भी पुष्टि करता है। उसके अनुसार बाह्य चिह्न ही सब कुछ नहीं हैं—सद्ज्ञान, सद्विश्वास और सदाचार का महत्व मोक्ष में प्रमुख है। पर पार्श्व-मतावलंबी प्राचीन परम्परा का अनुसरण कर रहे थे।

महावीर संभवतः ६ वर्ष तक आजीविक संप्रदाय के प्रमुख समर्थक मंखलिपुत्र गोशाल के भी संपर्क में रहे। आजीविक संप्रदायों के सिद्धान्तों का पता अशोक के शिलालेखों, दशरथ के दानपत्रों, बराबर पहाड़ तथा नागार्जुन की पहाड़ियों के शिलालेखों, भगवती-सूत्र, मज्झिमनिकाय, सुत्तपिटक निद्देश, उवासगदशाओ, दीघ्घनिकाय, विनयपिटक, जैनसूत्रों तथा चीनी और जापानी भाषा के 'आसीविक दर्शन' आदि से चलता है।

ग्रीस के इपिक्यूरियन तथा भारत के चार्वाकों की भाँति इनके सिद्धांत भौतिक भोगवादी थे। नियतिवाद को अकर्मण्य बना देनेवाली विचारधारा सिद्धान्त रूप में ही नहीं, व्यावहारिक रूप में भी इनमें प्रबल थी। यद्यपि समय-समय पर ये लोग भी नियम से तप-उपवास आदि करते और मांस-मदिरा-मोहिनी से दूर रहने का यत्न करते थे, किंतु अन्य समयों में अपनी अतृप्त लालसाओं की पूर्ति ये अति की सीमा तक पहुँचकर कर लेते थे! इनके अनुसार दुनिया में न उत्थान है, न कर्म है, न बल है, न वीर्य है, न पुरुषकार है, न पराक्रम है, सब बातें पहले से ही नियत हैं। मज्झिमनिकाय के सच्चकगौतम प्रसंग से पता चलता है कि ये लोग नंगे रहा करते थे। शीतल जल का उपयोग, अन्न ग्रहण करना, अपने लिए विशेष रूप से तैयार की गई वस्तु स्वीकार करना, तथा स्त्रियों का सहवास आदि इन आजीविकों में वर्ज्य नहीं था। स्वयं मंखलिपुत्र गोशाल भी नाचने-गाने, शराब पीने, और भोग-विलास में ही अपना समय बिताया करता था। इन्हीं दुराचारी कृत्यों तथा अहितकारी विचारों के कारण महावीर ने इस संप्रदाय का सम्पर्क त्याग दिया था और एक समय गोशाल को खूब फटकारा भी था। भगवती-सूत्र से पता चलता है कि श्रावस्ती में महावीर तथा उनके अनुयायियों से गोशाल ने युद्ध भी किया, किंतु अंत में वह महावीर का अनुयायी हो गया। इसी भाँति चंडकौशिक भी महावीर का शिष्य हुआ।

उनका सबसे पहला शिष्य गौतम इन्द्रभूति नामक एक कर्मकांडी ब्राह्मण हुआ, जिसके विषय में अनेक कहानियाँ चलती हैं। एक कहानी यह है कि गौतम अपने दस भाइयों सहित पावा (अपापा) नगर में यज्ञ में बशुबलि करनेवाला था। इस समय महावीर भी वहाँ थे। महावीर ने उस हिंसक यज्ञ का घोर विरोध किया, जिससे इन्द्रभूति और उसके दसों भाई महावीर से विवाद करने लगे। महावीर से सभी प्रश्नों का शांत, संतोषजनक उत्तर उन्हें मिला और फलतः वे दसों महावीर के शिष्य हो गए और आगे चलकर वे ही महावीर के संघ के दस प्रधान गणाधार बने। दूसरी कथा के अनुसार किसी ब्राह्मण ने गौतम से एक श्लोक का अर्थ पूछा, जिसे कि उसने महावीर से सुना था और जिसमें काल, द्रव्य, पंचअस्तिकायातत्त्व और लेश्य जैसे जैन पारिभाषिक शब्द थे। गौतम इनको समझने के लिए महावीर के पास गया और उनका शिष्य हो गया। उसके पाँच सौ अनुयायी थे। अपने भाइयों और इन अनुयायियों सहित वह महावीर का सबसे महत्वपूर्ण और प्रधान शिष्य बन गया।

महावीर के प्रमुख सिद्धान्त

उत्तराध्यायन में महावीर ने इन्द्रभूति को जो उपदेश दिया था, उसका विवरण इस प्रकार है। "जीवन वृक्ष से पत्तों की तरह झड़ जायगा। कमलपत्र पत्र पर ओस की बूंद की भाँति वह क्षणस्थायी है। कर्म के प्रभाव से मुक्त होने की क्षमता मनुष्य-योनि में ही जीव में आती है। मनुष्य-योनि अनन्त तपस्याओं के बाद मिलती है। इसे प्राप्त करने से पहले न जाने कितने युगों तक जड़ रूप में जल, पत्थर, वृक्ष, पशु, पक्षी, भूत-प्रेत-नरक आदि की योनियों में जीव भटकता रहा होगा। स्वर्ग में जन्म लेने से भी विशेष लाभ नहीं। केवल मानव-योनि ही ऐसी है, जिसमें आकर जीव अपना मोक्ष साध सकता है। गौतम, तुमने जीवनधारा के अथाह सागर को लगभग पार कर लिया है, केवल किनारे पर अब पहुँचना शेष है। तब क्यों समय नष्ट कर रहे हो? बुढ़ापे के आने पर शक्तियाँ क्षीण हो जाएँगी। सुख-दुःख से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चौबीसवें तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर

(यह चित्र मध्य युग के एक प्राचीन सचित्र हस्तलिखित ग्रंथ 'आदि-पुराण' से लिया गया है ।)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जैन-धर्म के अनेक कलापूर्ण देवालयों में से एक—आबू का प्रसिद्ध तेजपाल-जैन-मन्दिर

संगमरमर से बने इस देवालय को भारतीय स्थापत्य और मूर्तिकला के कलामन्दिर की उपमा दी जा सकती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परे कर्मबंधनों से मुक्त केवल-दशा के ज्ञानधाम् जीवन की सिद्धि में लगने का अब समय है, क्यों नहीं इस महान् कार्य में लग जाते ?" इस उपदेश का इतना गहरा प्रभाव गौतम पर पड़ा कि वह महावीर का अनन्य भक्त हो गया। पर कल्पसूत्र का कहना है कि आजीवन महावीर पर उसका राग बना रहा। अतः महावीर के निर्वाण के बाद ही उसे सच्चा ज्ञान हुआ और केवल ज्ञान प्राप्त कर उसने मोक्ष पाया।

गौतम ने बानवे वर्ष की अवस्था में राजगृह में मोक्ष पाया। इस प्रकार महावीर के निर्वाण के बारह वर्ष बाद तक वह जीवित रहा। उसकी जीवन-अवधि ५४८ ई० पू० से ४५६ ई० पू० तक आती है। अनुश्रुति के अनुसार यह तिथि ६०६ ई० पू० से ५१४ ई० पू० तक निकलती है।

गौतम को दिए गए उपदेश से महावीर के सिद्धान्तों पर कुछ प्रकाश अवश्य पड़ता है, पर वे अधिक स्पष्ट मज्झिम-निकाय में आये महानाम-बुद्ध प्रसंग से होते हैं, जहाँ महावीर निग्रंथों को उपदेश देते हुए कहते हैं—"निग्रंथो, तुमने पूर्व जन्म में पाप कर्म किए हैं, उनको इस घोर तपस्या से जड़ ही उखाड़ डालो। मन, वचन और काया की समवृत्ति से नए पाप नहीं बनते और तपस्या पुराने पापों को क्षीण करती है। इस प्रकार पुराने पापों के क्षय और नए पापों के रुकाव (संवर) से आयति रुक जाती है। आयति रुक जाने से मनोयोग में स्थिति होती है और धीरे-धीरे पुरातन कर्मों का क्षय होता है, जिससे मनुष्य वेदना से परे की भूमि में जा पहुँचता है।"

महावीर का काल-निर्णय

कल्पसूत्र में बतलाया गया है कि सांसारिक जीवन को त्यागने के बाद महावीर ने पहली वर्षा आस्थिक ग्राम में, तीन वर्षाएँ चंपा में, बारह वैशाली तथा बनिज ग्राम में, चौदह राजगृह तथा नालंदा के आस-पास, छः मिथिला में, दो भद्रीक में एक अलभीक में, एक पुनीत भूमि में, एक श्रावस्ती में और एक पावा (चंपा) में राजा हस्तिपाल के संस्थागार में बिताईं। पावा की वर्षा अंतिम वर्षा थी। वहीं ५२६ ई० पू० उन्होंने निर्वाण लाभ किया। परंपरा के अनुसार महावीर की जीवन-अवधि ७२ वर्ष की है और ई० पू० ५९९ में उनका अवतरण माना जाता है। किंतु इतिहास के कुछ तथ्य इसके विपरीत जाते हैं, अतः उन पर विचार कर लेना आवश्यक है। अजातशत्रु बुद्ध के निर्वाण से आठ वर्ष पूर्व अपने पिता को मारकर गद्दी पर बैठा था। इस हिसाब से उस समय बुद्ध की अवस्था बहत्तर वर्ष की थी, क्योंकि बुद्ध की कुल जीवन-अवधि अस्सी वर्ष की रही। बिंबिसार से गौतम ने पहली भेंट बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद पैंतीस वर्ष की अवस्था में की थी। इस समय बिंबिसार को राज्य करते पंद्रह वर्ष हो गए थे। इसलिए बिंबिसार के राज्यारोहण के समय गौतम की आयु बीस वर्ष की थी। बौद्ध साहित्य के अनुसार बिंबिसार गौतम से पाँच वर्ष छोटे थे, इसलिए राज्यारोहण के समय बिंबिसार की अवस्था १५ वर्ष की थी।

इतिहास की नवीनतम खोजों के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्य-काल ३२५ ईस्वी पूर्व से आरंभ होता है। चंद्रगुप्त ने चौबीस वर्ष राज्य किया और बिंबिसार ने अट्ठाईस वर्ष। इसलिए अशोक का राज्य-काल चंद्रगुप्त के बावन वर्ष बाद २७३ ई० पू० से आरंभ होता है। सिंहली बौद्ध-ग्रंथ महावंश के अनुसार अशोक का राज्याभिषेक राज्यारंभ के चार वर्ष बाद और बुद्ध-निर्वाण के दो सौ अट्ठारह वर्ष बाद हुआ। इसलिए अशोक का राज्याभिषेक २६९ ईस्वी पूर्व हुआ और बुद्ध का निर्वाण ४८७ ई० पू० हुआ। इस आधार पर बुद्ध का जन्म ५६७ ई० पू० में और बिंबिसार का ५६२ ई० पू० हुआ। ई० पू० ५४७ में बिंबिसार गद्दी पर बैठा। ५३२ ई० पू० पहली बार बिंबिसार बुद्ध से मिला था। बुद्ध के जीवन काल में सैंतीस वर्ष बिंबिसार ने राज्य किया। इसलिए ई० पू० ४९५ में बिंबिसार को मारकर अजातशत्रु गद्दी पर बैठा।

बौद्ध साहित्य में बुद्ध, महावीर और कुणीक (अजातशत्रु) समसामयिक गिनाए गए हैं। इतना ही नहीं, दीघनिकाय के पासादिक सुत्त (३-६) में शामगाम में चुंद वर्षावास के दिनों में आनंद को समाचार सुनाता है कि पावा में अभी-अभी निगंठ नाथपुत्र (महावीर) का अवसान हुआ है और निगंठों में फूट फैलने लगी है और आनन्द जाकर इस समाचार को गौतम को सुनाते हैं। महावीर की मृत्यु के ताजे समाचार की सूचना इसी ग्रंथ में पावा के मल्लों को (परियाय सुत्त ३-१०में) सारिपुत्र देते हैं। इस प्रसंग से यही पता चलता है कि गौतम अब अत्यंत वृद्ध हो चले हैं। कमर पिराने से अधिक समय तक उपदेश नहीं दे सकते। दीघनिकाय के महावग्ग के महापरिनिर्वाण सुत्त के चुंद (कर्मार=सुनार) के अंतिम भोजन-प्रसंग से यह भी अनुमान हो सकता है कि चुंद ने इसी अवसर पर निगंठ की मृत्यु का समाचार आनंद को सुनाया होगा। इस भोजन के उपरान्त कुछ ही दिनों बाद गौतम को निर्वाण-लाभ हुआ था। इसलिए ई० पू० ४८७ में ही संभवतः महावीर का भी निर्वाण हुआ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बौद्ध-साहित्य में प्रसेनजित एक स्थल पर महावीर को अवस्था में अपने से बड़े और बुद्ध को समवयस्क बतलाते हैं। इससे प्रसेनजित का भी जन्म ई० पूर्व ५६७ में होना चाहिए। प्रसेनजित को स्पष्ट रूप से यह कहने की आवश्यकता पड़ी कि महावीर उम्र में बड़े हैं, इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि इतना अधिक अंतर दोनों की अवस्था में न रहा होगा कि भेद स्पष्ट पहचाना जा सके। दोनों में दो-तीन वर्ष तक का अंतर हो सकता है। इसलिए महावीर का जन्म गौतम के जन्म से तीन वर्ष पूर्व यदि मानें तो ई० पू० ५७० में उनका आविर्भाव होना चाहिए।

उत्तरकालीन जैन-साहित्य में महावीर के जीवन-कार्यों का जो ब्योरा मिलता है, उससे महावीर की जीवन अवधि बहत्तर वर्ष की आंकी जाती है, किंतु ऊपर के आधार पर उनकी अवस्था लगभग तिरासी वर्ष की निकलती है और जीवन-अवधि ५७० ई० पू० से ४८७ ई० पू० तक आ जाती है। परम्परा के अनुसार महावीर का अवसान आसोज कृष्णपक्ष अमावस को हुआ था, किंतु यदि हेमचंद्र की परंपरा को माना जाय तो महावीर की जीवन-अवधि ५४५ ई० पू० से ४६८ ई० पू० तक आती है। और विक्रम-संबंधी जैन साहित्य के आधार पर वही ६१८ ई० पू० तक आती है।

अब यदि पार्श्वनाथ के निर्वाण और महावीर के आविर्भाव-काल का अंतर एक सौ अठत्तर वर्ष ठीक है और पार्श्वनाथ ने सौ वर्ष की आयु भोगी हो, तो पार्श्वनाथ की जीवन-अवधि ई० पू० ८४८ से ७४८ तक आती है।

जैन-सिद्धान्तों का सुसंगठित संबद्ध रूप से लेखा तीन सौ ईस्वी पूर्व से आरम्भ होता है। इसलिए उन रचनाओं में अपने समय तक की क्रियाशीलता का पता चल सकता है। संभवतः ऐसा सबसे पहला यत्न भद्रबाहु ने चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में किया था। भद्रबाहु के साथ चंद्रगुप्त मौर्य भी दक्षिण की ओर चला गया था और यहीं चंद्रगुप्त की मृत्यु हुई थी। मैसूर के श्रवणवेलगोल स्थान के शिलालेख इस बात की ओर संकेत करते हैं। चंद्रगुप्त का जैनधर्म स्वीकार करने का यह एक प्रबल प्रमाण है।

जैन-धर्म

बौद्धों और जैनों की विचारधारा ने उन विश्वासों पर आघात किया था, जिनमें सामान्य जनता के युगों के संस्कार संचित थे। बौद्धों का मध्यम मार्ग राजाओं को अधिक रुचिकर हुआ सही, किन्तु उसकी व्यापकता तथा आंतरिक दुर्बलताओं ने कालान्तर में उसे भारत से बाहर खदेड़ा। 'सब मनुष्य समान हैं, राजा होने से अच्छा तो मनुष्य होना है' जैसी विचारधारा अधिक समय तक उच्च वर्गों और राजाओं को भली नहीं लग सकती थी। उन्हें वेदों, देवी-देवताओं और अहिंसा में युगों से विश्वास था। ब्राह्मणों की मान्यता को भी वे मानते थे। उन्हें इहलोक और परलोक दोनों को बनाने की चाह थी। वर्ण-व्यवस्था के बिना उनका काम नहीं चल सकता था। अवतारवाद, जादू-टोना, मन्त्र-तन्त्र में लोकजीवन का सहज विश्वास था। जीवन की बदली हुई परिस्थितियों में बौद्ध-धर्म जब युग की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सका, तो उसका घोर विरोध भारत में किया गया और यहां से बाहर जाते-जाते वह अपनी काया ही पलट गया। मुस्लिम आक्रमण ने उसकी रही-सही जड़ें भी काट डालीं और फलतः भारत से बौद्ध धर्म गायब ही हो गया।

जैन-धर्म की लहर भी ब्राह्मण-धर्म की एकछत्र एकांकी सत्ता के विपरीत उठी हुई प्रतिक्रिया थी सही, किन्तु प्राचीन वैदिक धर्म के मेल में होने से वह अतिवादी न थी। वेदों की सत्ता न मानने पर भी जैन ब्राह्मणों द्वारा खदेड़े नहीं गए, क्योंकि जैनों ने हिन्दुओं और खास कर ब्राह्मणों के देवताओं की अवहेलना नहीं की थी। अम्ब, अम्बरस, श्याम, सबल, रुद्र, महारुद्र, महाकाल, असिपत, धन, कुंभ, महाघोष, खर स्वर, असुरकुमार, नागकुमार, सुवर्णकुमार, विद्युत्-कुमार, दीपकुमार, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, ज्योतिषी, विमानवासी, तिर्यक्, जाम्भूक, और लोकन्तिक, आदि-आदि अनेक प्रकार के देवता उनमें माने जाने लगे थे। जाति-पाँति की विशेष परवाह न करने पर भी जैन लोग ब्राह्मणों के कोपभाजन न हुए, क्योंकि उन्होंने जन्म, विवाह, मृत्यु आदि के संस्कारों तथा मन्दिरों की पूजा में ब्राह्मणों की क्रियाओं को रहने दिया, उसमें दखल न दिया। जैन साधु केवल धर्म के सिद्धान्तों और दर्शनशास्त्र को अपने हाथ में रखते थे। दर्शन में भी प्राचीन कर्मवाद और जन्मांतरवाद उन्होंने अपना लिए थे। इन सब कारणों से भारत में उनका विरोध नहीं हुआ और जैन-धर्म जीवन का शक्तिदायक अंग बना रहकर भारत में जीवित रह सका।

दर्शनज्ञान और आचार के साथ अहिंसा तत्त्व, कर्मवाद और जन्मांतरवाद को मिलाकर जीवन के नैसर्गिक अनंत सामर्थ्य और अनंत सौख्य का आशामय संदेश तथा स्वावलम्बन की शिक्षा महावीर आदि तीर्थंकरों तथा जैन धर्म की महत्त्वपूर्ण देन है। काल्पनिक देवत्व पर मनुष्यत्व की यह विजय दुखःपूर्ण विश्व के लिए एक अमृत संजीवनी है!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महान् राष्ट्र-निर्माता :: कौटल्य (कौटिल्य)

रत्नगर्भा भारतभूमि के नररत्नों का जितना वर्णन किया जाय थोड़ा है। कभी उसकी कोख से ऐसे ब्राह्म-तेजधारी महापुरुषों को जन्म मिला है, जिन्होंने अपने ज्ञान-मार्तण्ड की द्वखर रश्मियों से विश्व में व्याप्त अज्ञानांधकार को समाप्त कर दिया और कभी ऐसे क्षात्रतेजधारी नरपुंगवों को उसने उत्पन्न किया जिन्होंने एक ओर निज बाहुबल से अत्याचार तथा उत्पीड़न का अन्त किया और दूसरी ओर ऐसे विशाल तथा वैभवशाली साम्राज्यों की स्थापना की, जिनकी यश-प्रभा के समक्ष संसार के बड़े से बड़े साम्राज्यों की कीर्ति फीकी पड़ जाय। प्रस्तुत पंक्तियों में भारतमाता के एक ऐसे विक्रमशाली सुपुत्र का परिचय दिया जा रहा है, जिसमें उपर्युक्त दोनों बातों का अपूर्व सम्मेलन देखने को मिलता है।

त्वेवार्यस्य दासभावः' अर्थात् आर्य जाति को हर्गिज भी गुलाम नहीं बनाया जा सकता, इस मंत्र का उद्घोष करने-वाले पुरुषश्रेष्ठ कौटल्य के अभिनन्दन में जितना भी कहा जाय थोड़ा है। जिस समय शस्यश्यामला भारतभूमि यूनानी आक्रमणकारियों से पददलित हो रही थी और भारती समाज संगठन और एकसूत्रता के अभाव में त्राहि-त्राहि कर रहा था, उन दिनों इसी कुशल राजनीतिज्ञ ने अपने बुद्धिचातुर्य और संगठन-नैपुण्य से एक ओर तो विशृंखलित भारतीय शक्तियों को संगठित कर आक्रान्ताओं को इतनी प्रबल टक्कर दी कि वे सदियों तक फिर भारत की ओर उन्मुख होने का साहस नहीं कर सके; दूसरी ओर लड़खड़ाते हुए नन्द-साम्राज्य को समाप्त कर उस महान् मौर्य-साम्राज्य की स्थापना कराई, जिसका नाम इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

सही नाम 'कौटिल्य' नहीं, 'कौटल्य' है

कौटल्य अत्यंत प्रतिभासम्पन्न ब्राह्मण थे। उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों को विभिन्न नामों से अपनी कीर्ति-प्रभा से जगमगाया। अनेक शास्त्रकारों ने विष्णुगुप्त, वात्स्यायन, मल्लनाग, चाणक्य, कौटल्य, चणकात्मज, वराणक, द्रामिल, पक्षिल स्वामी और अंगुल आदि उनके कई नाम घोषित किए हैं। इतिहास-कार चाणक्य, कौटल्य और विष्णुगुप्त को एक ही व्यक्ति स्वीकार करते हैं। अनुमान यह है कि विष्णुगुप्त का नाम महान् नीतिशास्त्री चणक मुनि के वंश में हुआ था और इस कारण उन्हें चाणक्य के नाम से सम्बोधित किया जाता था। साथ ही साथ, उनके कुल में कूटलवृत्ति होने के कारण उन्हें कौटल्य भी कहा जाता था। जो ब्राह्मण वर्ष भर के लिए अनाज भरकर संचित करते हैं, उन्हें कूटल अथवा कुम्भीधान्य (अवधी में कोठिला) कहा जाता है। कूटलवृत्ति त्याग और तपस्या की प्रतीक है। अतएव किसी व्यक्ति का कौटल्य कहा जाना उसके लिए गौरव की बात समझी जानी चाहिए।

कुछ प्राचीन ग्रंथकारों ने कौटल्य को 'कौटिल्य' अर्थात् कुटिलता का प्रतीक स्वीकार किया है। किंतु विष्णुगुप्त जैसे सदाचारी, विद्वान् और त्यागी-तपस्वी राजनीतिज्ञ को कुटिल कहना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। श्री देवदत्त शास्त्री के शब्दों में, "'कौटिल्य' यह घृणित नाम उन जैन और बौद्ध ग्रंथों के निर्माताओं ने लिखना प्रारम्भ किया था, जिन्होंने चाणक्य और उसके अर्थशास्त्र की निन्दा की दुन्दुभी बजाई थी। उसी नाम को दुर्भाग्यवश परवर्तीकाल के ग्रंथ-निर्माता परम्परागत अपनाते चले गए।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जन्म-स्थान और जन्म-तिथि

कौटल्य की जन्म-भूमि के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मत-भेद है। बौद्ध ग्रंथों के अनुसार वह तक्षशिला के वासी थे। किंतु जैन ग्रंथ श्रवणबेलगोल (मैसूर राज्य) को उनकी जन्म-भूमि स्वीकार करते हैं। कुछ आधुनिक विद्वानों की धारणा है कि कौटल्य मूल रूप में नेपाल की तराई के निवासी थे और बाद में तक्षशिला में जाकर बस गए थे। कुछ विदेशी विद्वानों को छोड़कर शेष सभी यही स्वीकार करते हैं कि कौटल्य सिकन्दर के आक्रमण के समय विद्यमान थे और उन्होंने सिकन्दर को भारतभूमि से खदेड़ने की योजना बनाई थी। सिकंदर का आक्रमण ईसा से लगभग ३२७ वर्ष पूर्व स्वीकार किया जाता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि कौटल्य का जन्म ईस्वी पूर्व की चौथी शताब्दी के आरंभ होने से पहले हुआ होगा।

कौटलीय अर्थशास्त्र के अन्त में उल्लेख है—"जिसने शास्त्र और शस्त्र का तथा नंदराज के अधीन हुई भूमि का शीघ्र उद्धार अपने क्रोध से किया है, उसी विष्णुगुप्त ने इस अर्थशास्त्र की रचना की है।" स्कंदपुराण (कुमारिक खंड अध्याय ३९) में उल्लेख है कि कलियुग के ३,३१० वर्ष व्यतीत होने पर नंदों का राज्य होगा और चाणक्य उसका विनाश करेंगे। इन सब आधारों पर निस्संकोच भाव से कहा जा सकता है कि किसी अवसर पर महाराज महापद्मनन्द के हाथों अपमानित होने के कारण कौटल्य रुष्ट हो गए और उस रोष के कारण ही उन्होंने नन्द-साम्राज्य का मूलोच्छेदन कर डाला। विजयगढ़ (मिर्जापुर) की गुफा में लगे एक शिलालेख पर उत्कीर्ण 'चाणक्यरोषः' भी यही प्रमाणित करता है कि कौटल्य एक अति क्रोधी ब्राह्मण थे। जो भी हो, कौटल्य एक दृढ़निश्चयी व्यक्ति थे—ऐसे दृढ़निश्चयी कि आपत्तियों और विपत्तियों के भीषणतम तूफान भी उन्हें किंचित् विचलित नहीं कर सकते थे; उनमें बड़े-बड़े साम्राज्यों को ध्वस्त और निर्मित करने का महान् सामर्थ्य था। जनश्रुति के अनुसार, वह श्याम वर्ण के थे और देखने में सुन्दर नहीं लगते थे; उनके बाह्य रूप से चिढ़कर ही नंद ने उनका अपमान किया था। किन्तु नन्द-साम्राज्य का अन्त कर उन्होंने दरसा दिया कि आन्तरिक सौंदर्य की अर्चना करनेवाली इस भारतभूमि पर बाह्य सौंदर्य को अधिक महत्व देनेवाले नहीं टिक सकते।

*येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगताच भूः।
अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम्॥
द्रष्ट्वा विप्रतिपत्तिं बहुधा शास्त्रेषु भाष्यकाराणाम्।
स्वयमेव विष्णुगुप्तश्चकार सूत्रं च भाष्यं च॥

विदेशी यवन आक्रांताओं से देश को मुक्त करने के लिए संगठन

प्राप्त ऐतिहासिक सामग्री का अध्ययन करने के पश्चात् अनुभव होता है कि सिकन्दर के आक्रमण के समय कौटल्य तक्षशिला में थे और उनका मन इस बात से अति दुःखित हुआ था कि हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक विस्तृत राष्ट्र विदेशी आक्रांताओं द्वारा पददलित होने जा रहा था। इसीलिए उन्होंने चंद्रगुप्त जैसे देशभक्ति से ओतप्रोत उत्साही नवयुवकों को संगठित होकर अपनी मातृभूमि से विदेशी आक्रमणकारियों को खदेड़ने की प्रेरणा दी थी।

जब कौटल्य को लगा कि राजा पर्वतक (पुरु) भारत-सम्राट् बनने की आकांक्षा से प्रेरित होकर सिकंदर के साथ गठबंधन करने को तैयार हो गया है, तो उन्होंने स्वतः उसे (पर्वतक को) भारत-सम्राट् बनाने का प्रलोभन दिया और इस प्रकार सिकंदर और पर्वतक की मिलती हुई शक्तियों को विभाजित कर दिया।

सिकंदर की सेना का भारत से लौटाया जाना अति आवश्यक था। अतः कौटल्य ने निज गुप्तचरों द्वारा यूनानी सेना में मगध की सेना की विशालता और विकरालता के सम्बन्ध में अनेक भ्रामक प्रचार कराए तथा स्थिति यहाँ तक पहुँचा दी कि सिकंदर के सैनिकों ने एक पग भी आगे बढ़ने से इंकार कर दिया। बाध्य होकर सिकंदर को वापस जाना पड़ा। परन्तु वापस चला जाना भी इतना सरल नहीं था, क्योंकि कौटल्य की पूर्वयोजनानुसार चंद्रगुप्त के नेतृत्व में पग-पग पर उसका प्रतिरोध करने के लिए मालवों की सेनाएं उपस्थित थीं।

सिकंदर को देश से खदेड़कर भी कौटल्य शान्त न रह सके, क्योंकि उनकी निश्चित धारणा थी कि भारत की आंतरिक शक्ति को छिन्न-विछिन्न पाकर विदेशी किसी भी समय फिर से आक्रमण की योजना बना सकते हैं। अतः उन्होंने समस्त राष्ट्र को एक सूत्र में संगठित करने का महान् कार्य अपने हाथ में लिया। इसके साथ-साथ उन्हें अभी पर्वतक को दिया गया आश्वासन भी तो पूर्ण करना था।

मौर्य-साम्राज्य की प्रस्थापना

पर्वतक और चंद्रगुप्त की संगठित सेना से उन्होंने पाटलीपुत्र (नन्द-साम्राज्य की राजधानी) पर आक्रमण कराया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

‘अर्थशास्त्र’ के रचयिता और मौर्य-साम्राज्य के प्राणप्रतिष्ठापक महापंडित विष्णुगुप्त कौटल्य (कौटिल्य)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विलासी महापद्मनन्द की सेना के पैर उखड़ गए। पर्वतक को मगध का स्वर्णमयी सिंहासन सामने दिखाई देने लगा। किन्तु कौटल्य ऐसे लोभी और स्वार्थी व्यक्ति को भारत का सम्राट् कैसे बनने देते, जिसने किसी समय अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए विदेशी आक्रमणकारी से गठबंधन करने का विचार किया था? उधर पाटलीपुत्र पर विजय हो रही थी, इधर विषकन्याओं के वासनामय जाल में फँसाकर कौटल्य ने पर्वतक को सदा के लिए इस संसार से विदा कर दिया। इस प्रकार 'पर्वतक की जय' 'चंद्रगुप्त की जय' में परिणत हो गई। पाटलीपुत्र पर विजय के पश्चात् चंद्रगुप्त को हास-विलास के चक्र में न उलझने देने का श्रेय यदि किसी को है तो वह इसी महान् कूटनीतिज्ञ आचार्य विष्णुगुप्त कौटल्य को है। कौटल्य की सुदक्षता का ही परिणाम रहा कि सम्राट् चंद्रगुप्त अत्यल्प काल में ही सिकंदर के उत्तराधिकारी सैल्यूकस को परास्त करने में सफल हो सके।

पराजित सैल्यूकस ने काबुल, हिरात, कंधार और बलूचिस्तान (पूर्वी अंश) के प्रदेश देकर चन्द्रगुप्त से संधि की तथा साथ ही चंद्रगुप्त के साथ अपनी पुत्री हेलन का विवाह भी कर दिया। इस प्रकार सम्बन्ध स्थापित होने पर चंद्रगुप्त ने अपने श्वसुर सैल्यूकस की सेवा में ससम्मान ५०० हाथी भेंट किए। सैल्यूकस ने चन्द्रगुप्त के दरबार में मेगस्थनीज नामक अपने राजदूत को नियुक्त किया। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस विजय के पीछे चन्द्रगुप्त के बाहुबल से अधिक चाणक्य के मंत्र का ही चमत्कार था।

कौटल्य की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उन्होंने जो कुछ किया वह राष्ट्र के कल्याण के लिए किया; अपने स्वार्थ-साधन के लिए कुछ भी नहीं किया। 'मुद्राराक्षस' नामक संस्कृत नाटक का अवलोकन करने के पश्चात् यह बात और भी प्रमाणित हो जाती है। निज पुरुषार्थ के बल पर अर्जित साम्राज्य का अधिकारी उन्होंने चंद्रगुप्त को बनाया और स्वयं महामंत्री बने—और सो भी सदैव के लिए नहीं। जब उन्होंने अपनी नीतिमत्ता से महापद्मनंद के महामंत्री अपने प्रबलतम विरोधी राक्षस को चंद्रगुप्त के साम्राज्य के हित-चिंतक के रूप में परिणत कर लिया, तो उसको ही समस्त साम्राज्य का भार सौंपकर--उस साम्राज्य का जिसे स्वतः उन्होंने आमात्य-प्रधान घोषित किया था–स्वयं संन्यास ग्रहण कर लिया और वन की राह ली। कितना उच्चादर्श था हिमालय से समुद्र-पर्यन्त सहस्र योजन विस्तीर्ण विशाल आर्यभूमि को एक सूत्र में संगठित करनेवाले, भारत की शस्त्र-शक्ति और शास्त्रबल का पुनरुद्धार करनेवाले उस महान् आचार्य का!

अर्थशास्त्र

यह तो हुआ कौटल्य के जीवन का संक्षिप्त वृत्तांत, जिसके क्षत-विक्षत सूत्र यत्र-तत्र उपलब्ध हो जाते हैं। परन्तु यदि यह सब कुछ भी प्राप्य न होता, तो भी केवल उनके 'अर्थ-शास्त्र' के आधार पर ही उन्हें संसार के श्रेष्ठतम राजनीतिज्ञों की पंक्ति में स्थान मिला होता।

कौटल्य ने समुद्रपर्यंत एक राष्ट्र स्थापित करने का दृष्टिकोण अंगीकार करके ही अपने अर्थशास्त्र की रचना की थी। उनके इस महान् ग्रंथ में वर्णित नियम और सिद्धान्त हर काल और हर युग के लिए उपयोगी हैं। 'अर्थशास्त्र' में केवल अर्थ या राजनीति के सिद्धान्तों का ही वर्णन नहीं है, अपितु धर्म, काम, मोक्ष-प्राप्ति के उपायों का भी विवेचन है। अतः कौटल्य के अर्थशास्त्र को केवल राजनीति का ग्रंथ स्वीकार नहीं किया जा सकता। वह तो एक ऐसा वृहत् शास्त्र है, जिसमें जीवन के किसी भी क्षेत्र की किसी भी समस्या को उपेक्षित नहीं छोड़ा गया है।

इस ग्रंथ के औपनिषदिक प्रकरण के अन्तर्गत जब कौटल्य चातुर्वर्ण्य के रक्षण के हेतु मंत्रों और औषधियों के प्रयोग से अधार्मिक पुरुषों को विनष्ट कर देने की व्यवस्था देते हैं, तब लगता है मानो कोई महान् तांत्रिक कूटनीतिज्ञ बोल रहा हो, और जब वह शास्त्र के अनुकूल लोकव्यवहार करने की तथा शास्त्र न होने पर सदाचारी पुरुष के अनुगमन का निर्देश करते हैं, तो लगता है कि कोई नीतिकार उपदेश कर रहा हो। कौटल्य के मुख से राजा के लक्षण और कर्तव्यों का वर्णन सुनकर कोई भी उन्हें श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ घोषित कर सकता है, तथा 'अहिंसालक्षणोधर्मः', 'मांसभक्षणमयुक्तंसर्वेषाम्' 'विज्ञानदीपेन संसारभयं निवर्तते', 'क्षमायुक्तस्यत पोविवर्द्धते' जैसे सूत्रों का उच्चारण सुनकर तो उन्हें महर्षि घोषित करने में किसी को तनिक भी संकोच नहीं हो सकता।

भारतीय समाज ने धर्म और मोक्ष के क्षेत्र में ही आदर्श प्रस्तुत नहीं किया है; अर्थ और काम के क्षेत्र में भी उसने आदर्श के उच्च मानदण्ड उपस्थित किए हैं--इसके उज्ज्वलतम उदाहरण के रूप में भारत के अतीत-क्षितिज पर अटल ध्रुव के समान जगमगानेवाले तपस्वी, राजनीतिज्ञ, वेदविद्, विद्वान्, धर्मात्मा और क्षमाशील आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य के प्रति भरत-पुत्रों द्वारा जितनी भी श्रद्धा व्यक्त की जाय थोड़ी ही रहेगी :—

नीतिशास्त्रामृतं धीमानर्थशास्त्रमहोदधेः।
समुद्दध्रे नमस्तस्मै विष्णुगुप्ताय वेधसे।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अद्वैत वेदान्त के महान् शिक्षागुरु :: आचार्य शंकर

जिसने अपनी ज्ञान-ज्योति से मध्ययुग के अंधकाराच्छन्न वातावरण को भेदकर काश्मीर से कन्याकुमारी तक इस महादेश के कलेवर को एक नूतन चेतना की विद्युल्लहरी से ऊर्जित कर दिया, 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या' का उद्घोष करनेवाले भारतीय चिन्तन के शिरोमणि-स्वरूप उस अप्रतिम महापुरुष का जीवन-परिचय।

नार्य परम्पराओं के घोर तिमिर को अपने दिव्य व्यक्तित्व के मार्तण्ड से विदीर्ण कर भारतभूमि पर ज्ञानालोक का प्रसारण करनेवाले अद्वैत के अमर प्रवर्तक आचार्य शंकर को कौन भारतीय नहीं जानता होगा? भारत की चतुर्सीमाओं पर अवस्थित उनके चार मठ आज भी उन्मुक्त कण्ठ से जगद्गुरु का यशोगान कर रहे हैं। वे ही क्यों, भारत का कण-कण अपने उस अनन्य पुजारी की जीवन-गाथा का विवरण प्रस्तुत करता हुआ-सा प्रतीत होता है। सुनने के लिए चाहिए कान और देखने के लिए नयन!

जिस युग में आचार्य शंकर हुए थे, उस समय भारत में बौद्ध धर्म अपनी चरम सीमा को पार कर पतनावस्था की ओर उन्मुख हो उठा था। अब बुद्ध प्रणीत करुणा, दया, प्रेम, बंधुत्व के सिद्धान्त पोथियों के अक्षरों तक ही सीमित रह गए थे और उस महान् अहिंसक के अनुयायी हिंसा के विश्वासी बन गए थे। भारतमाता के शरीर में व्याप्त व्याधि के उपचार के निमित्त स्वजीवन का क्षण-क्षण और शरीर का कण-कण लगानेवाले तथागत के भक्त आज मातृभूमि की भक्ति से विमुख हो गए थे, जिससे स्थान-स्थान पर सह-धर्म के नाम पर विदेशियों से गठबंधन चल रहे थे। इन दिनों पापों के भार से त्रस्त अवधपुरी मानो अपने राम की पुकार कर रही थी; अनाचारों से व्यथित मथुरा-वृन्दावन अपने कृष्ण की बाट जोह रहे थे; पाटलीपुत्र और उज्जयिनी मानो अपने उद्धारकों की स्मृति में आँसू बहा रहे थे। तभी शंकर आए और उनके रूप में अवध को मानो अपने राम मिल गए, वृन्दावन-मथुरा को कृष्ण मिले और पाटलीपुत्र और उज्जयिनी मानो चन्द्रगुप्त तथा विक्रमादित्य को फिर से पा गए।

जन्म और बचपन

शंकराचार्य का जन्म कौन-सी शताब्दी में हुआ, यह एक विवाद का विषय है। कोई पाँचवीं-छठी शताब्दी ईस्वी में उनका जन्म स्वीकार करता है और कोई नवीं-दसवीं शताब्दी को उनका जन्म-काल प्रमाणित करता है। जो भी हो, हमारा लक्ष्य तो यहाँ आचार्य शंकर के कार्य-वृत्त पर संक्षिप्त-सा प्रकाश डालना है, जन्म से सम्बन्धित मतभेदों से उसका नगण्य-सा ही सम्बन्ध है।

बालक शंकर का जन्म वैशाख शुक्ल दशमी के दिन केरल प्रदेश के कालटी नामक स्थान पर एक नम्बूदरी ब्राह्मण-कुल में हुआ था। शंकर के पिता शिवगुरु तथा माता आर्यम्बा दोनों ही ज्ञानप्रवण और धर्मपरायण व्यक्ति थे। परिवार पूर्ण सम्पन्न था, किसी प्रकार का कोई अभाव नहीं था। यदि अब तक शिवगुरु और आर्यम्बा को कोई अभाव खटकता था, तो वह था संतान का। तब शंकर जैसे अलौकिक पुत्र को प्राप्त कर उनका वह अभाव भी जाता रहा। शंकर जैसा पुत्र उनकी आशाओं को पूर्ण कर सकेगा और संसार में उनके नाम को अमर कर सकेगा, यह उन्हें उसके जन्म-काल से ही विश्वास हो गया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आरंभिक शिक्षा-दीक्षा

तीन वर्ष पूर्ण होते-होते बालक शंकर अपनी प्रतिभा की सुगन्ध यत्र-तत्र बिखेरने लगा। पिता ने पुत्र की योग्यता के विकास के लिए इतनी छोटी अवस्था में ही उसे एक पाठशाला में प्रविष्ट करा दिया। महापुरुष स्वयं में पूर्ण होते हैं, लौकिक गुरु उनकी पूर्णता का प्रस्फुटन मात्र करते हैं। शंकर के साथ भी वही हुआ। गुरु दो कदम चलता था, शिष्य चार कदम निकलने की कोशिश करता था। एक प्रकार से गुरु और शिष्य के बीच होड़-सी लगी हुई थी। पाँच वर्ष की अवस्था होते-होते शंकर ने व्याकरणशास्त्र, छन्दशास्त्र, आदि का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया! चारों ओर गुरु और शिष्य दोनों की प्रशंसा होने लगी। पाँच वर्ष की अवस्था में शंकर का उपनयन-संस्कार हुआ और वेदादि के अध्ययन के निमित्त उसे गुरुकुल भेजा गया। आठ वर्ष की छोटी-सी उम्र में ही उसने वेद-शास्त्रों का ज्ञान पूर्ण रूप से प्राप्त कर लिया।

कभी-कभी देखा जाता है कि शिक्षा के क्षेत्र में कुशल बालक व्यवहार के क्षेत्र में पिछड़े रहते हैं। वे जन-जीवन से सम्बन्धित नहीं रहते, सम्पर्क में आनेवाले लोगों के हृदयों पर अधिकार नहीं कर पाते। परन्तु शंकर के साथ ऐसा नहीं था। जो भी व्यक्ति एक भी बार उसके सम्पर्क में आया, वह उसका होकर रह गया। छात्रावस्था से ही शंकर के मन में पीड़ितों के प्रति ममत्व का भाव था, समाज के कल्याण की भावना उग्र रूप में उसके अन्तर में विद्यमान थी। छात्र-जीवन की एक घटना इस ओर संकेत करती है। बटुक के रूप में एक दिन वह ग्राम में भिक्षा माँगने गया। एक ब्राह्मण-परिवार के द्वार पर जब उसने 'भिक्षां देहि' की पुकार लगाई, तो एक ब्राह्मणी अश्रुपूर्ण नयनों से बाहर आई और उसने उसके हाथ पर एक आँवला रख दिया। शंकर की समझ में सम्पूर्ण स्थिति आ गई। यद्यपि शंकर धनी-मानी व्यक्तियों के द्वार पर भिक्षा माँगने का अभ्यासी नहीं था, तथापि उस दिन उसने एक श्रीसम्पन्न व्यक्ति के दर-वाजे पर 'भिक्षां देहि' की आवाज लगाई। जब गृह-स्वामी भिक्षा लेकर उपस्थित हुआ, बटुक शंकर ने आगे बढ़ा हाथ पीछे खींचकर कहा—"ऐसे व्यक्ति की भिक्षा लेकर क्या करूँगा, जिसके पड़ोस में ब्राह्मण-परिवार घोर दरिद्रता में दिन व्यतीत कर रहा हो!" शंकर के मुख से उक्त शब्द सुनकर धनिक अति लज्जित हुआ और कहते हैं, उसने अपने पड़ोस के उक्त गरीब ब्राह्मण-परिवार का घर सोने के आँवलों से भर दिया!

जीवन का नया मोड़ :: ब्रह्मचारी से सन्यासी

अध्ययन समाप्त कर युवा शंकर जब गुरुकुल से घर लौटा, तब तक पिता शिवगुरु इस असार संसार से विदा हो चुके थे। शंकर अपने पिता से अत्यंत प्रेम करता था, अतः उनकी मृत्यु के समाचार ने उसके हृदय को अत्यधिक व्यथित कर दिया। किंतु मृतक के प्रति जी भर आँसू बहा लेने के अतिरिक्त आज तक किसी के पास क्या चारा रहा है!

भारतीय माँ की अन्तिम आकांक्षा रहती है पुत्र का विवाह देखने की। शंकर की माँ आर्यम्बा भी भारतीय महिला थीं; वह भी इस भावना से मुक्त कैसे होतीं? कहीं बालक बौद्ध धर्म के जंजाल में न फँस जाय, इसलिए उन दिनों उन्हें अल्पावस्था में ही गृहस्थी के बंधन में बांध दिया जाता था। चारों ओर से शंकर पर विवाह के लिए दबाव पड़ने लगा। परन्तु शंकर के मन में तो कुछ और ही था। वह तो आजी-वन संन्यासी रहकर, घर-बार का मोह त्यागकर जन-जन के कल्याण के लिए प्रयत्नशील होना चाहता था। परन्तु संन्यास के लिए माता की अनुमति प्राप्त कर पाना इतना सरल कार्य नहीं है। माता के अश्रुपात से उत्पन्न कोमल भावनाओं की बाढ़ को जो व्यक्ति निज दृढ़ निश्चय की चट्टान से रोककर खड़ा हो सकता है, वही निज अन्तर में सजाए गए संन्यास के भवन को सुरक्षित रख पाता है।

संन्यास के निमित्त माता की अनुमति प्राप्त करने के लिए शंकर ने एक नाटक रचा। माँ-पुत्र नदी में स्नान करने गए। बीच नदी में पहुँचकर शंकर ने चीत्कार किया, "माँ! ग्राह निगले जा रहा है। उससे तभी मुक्ति प्राप्त हो सकती है, जब कि मैं संन्यास ग्रहण करूँ।" पुत्र की मृत्यु या पुत्र का संन्यास! विवशता के चक्र में उलझकर ममतामयी माँ को पुत्र का संन्यास स्वीकार करना पड़ा। ग्राह से तो शंकर की मुक्ति हो गई या यों कहा जाय कि संसाररूपी सरिता के मोहरूपी ग्राह से महामानव को छुटकारा मिल गया, परन्तु फिर भी आर्यम्बा ने शंकर से एक वचन ले ही लिया कि उसके मरते समय वह उसके पास आ जायगा। इस प्रकार शंकर लौकिक जीवन के बंधनों से मुक्त होकर संन्यास के क्षेत्र में प्रविष्ट हो गए।

गुरु की खोज और प्राप्ति

मन से तो शंकर संन्यासी हो गए, किन्तु अभी उन्हें विधि-वत् संन्यास ग्रहण करना था, सुयोग्य गुरु की खोज करनी थी, और गुरु से सद्ज्ञान की प्राप्ति करनी थी। अतः भूख-प्यास

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की चिंता छोड़कर, धूप-छाँह को समान समझते हुए अब वह वन-वन भटकने लगे, गिरि-गह्वरों में सद्गुरु की खोज करने लगे। वह अभी किशोरावस्था को पार कर ठीक प्रकार यौवनावस्था के द्वार पर खड़े भी नहीं हो पाए थे, फिर भी न सरिताएँ उनके मार्ग को रोक सकीं और न पर्वत-श्रेणियाँ उनके समक्ष खड़ी रह सकीं। शंकर तो वह तीर बनकर निकले थे, जो लक्ष्य पर पहुँचे बिना एक क्षण को भी रुकने को तैयार नहीं होता। उनमें पग की गति, करों की शक्ति, और हृदय की भक्ति का अद्भुत समन्वय था।

अन्त में, नर्मदा के तट पर अमरकान्त में शंकर को सद्गुरु के दर्शन हुए। सद्गुरु थे भगवद्गोविन्दपाद। कौन भगवद्गोविन्दपाद ? वेदान्तसूत्रों के रचयिता महर्षि बादरायण के पुत्र मुनि शुकदेव के पट्टशिष्य, आचार्य गौड़पाद के शिष्य। लोकोक्ति है कि शिष्य गुरु की खोज में फिरा करता है और गुरु शिष्य की प्रतीक्षा किया करता है। अतः शंकर ही भगवद्गोविन्दपाद को खोजते फिर रहे हों, ऐसा नहीं था; स्वतः गुरु गोविन्दपाद भी शंकर की बाट जोह रहे थे। योग्य गुरु को सुयोग्य शिष्य मिल गया। गुरु गोविन्दपाद ने शंकर को विधिवत् संन्यास की दीक्षा दी और तन्मयतापूर्वक उसे शास्त्रों का अध्ययन कराने लगे। गुरु ने शिष्य के समक्ष अपना सम्पूर्ण हृदय खोलने में कोई कोर-कसर उठा न रखी। यदि साहित्यिक भाषा में कहना हो तो गुरु ने शिष्य में निज आत्मा का प्रवेश करने की पूरी-पूरी चेष्टा की। भगवद्गोविंदपाद को शंकर के प्रति अत्यधिक ममत्व हो गया था, क्योंकि प्रथम बार देखते ही उन्होंने समझ लिया था कि शंकर भारत राष्ट्र और हिन्दू धर्म के उद्धारक के रूप में अवतरित हुए हैं।

कुछ लोग जीवन-संघर्ष से बचने के लिए संन्यास ग्रहण करते हैं, किन्तु शंकर उनमें से नहीं थे। उन्हें संघर्ष से भय नहीं लगता था, अपितु उन्होंने तो भव-सागर में डूबते जनों की रक्षा के लिए भगवा वस्त्रों का कवच धारण कर संघर्ष को ही अपना जीवन बना लिया था। वह मानो सिर पर कफन बाँधकर होली खेलने निकल पड़े थे। ऐसे व्यक्ति का एक क्षण के लिए भी जन-जीवन से सम्पर्क कैसे टूट सकता है ? गुरु गोविंदपाद के आश्रम में वास करते समय भी शंकर की आँखें जनता के कष्टों की ओर लगी रहीं और यदि देश-बांधवों की सेवा का कोई अवसर आया, तो उन्होंने उसे हाथ से जाने नहीं दिया। एक दुर्घटना का दृश्य बरबस शंकर-चरित के पाठकों की आँखों के समक्ष उपस्थित हो जाता है। गुरुदेव बाहर गए हुए थे। नर्मदा ने कराल रूप धारण किया। सर्वत्र त्राहि-त्राहि मचने लगी। लोगों के मकान ढहने लगे, पशु-सम्पत्ति आदि बहने लगे। संकट की उस घड़ी में शंकर ने नर्मदाष्टक की रचना कर जहाँ नर्मदा के प्रकोप को शान्त करने का उपक्रम रचा, वहाँ गुरु-बांधवों को साथ लेकर पीड़ित जनों के संकटमोचन के लिए, बिना एक क्षण की भी प्रतीक्षा किये, प्रयत्न प्रारम्भ कर दिए। नर्मदा भी शंकर की लगन से प्रसन्न हो उठी, उसका प्रकोप शान्त हो गया। जब गुरु गोविन्दपाद को इस घटना का पता लगा, तो वह गद्गद् हो उठे, उन्हें विश्वास हो गया कि शंकर ही उनके जीवन को सार्थक करेंगे।

हिमालय में :: गौड़पाद से भेंट

शंकर के पूर्ण विकास के लिए भगवद्गोविन्दपाद ने यह अनुभव किया कि उन्हें अपने गुरु भगवान् गौड़पादाचार्य के दर्शन कराए जाँय। फलतः गुरु और शिष्य बदरिकाश्रम में ब्रह्मनिष्ठा में लीन आचार्य गौड़पाद के दर्शन के निमित्त चल पड़े। सदुद्देश्य की प्राप्ति के हेतु उत्कंठित व्यक्ति को लम्बा और दुरूह मार्ग भी छोटा और सरल ही लगता है; अतः अमरकान्त से लेकर बदरिकाश्रम तक का कठिन और लम्बा रास्ता शंकर और गुरु गोविन्दपाद ने कुछ ही दिनों में पूर्ण कर लिया।

आचार्य गौड़पाद को भी पहली बार देखते ही विश्वास हो गया कि शंकर आर्य, धर्म, संस्कृति और सभ्यता का उद्धार करेंगे। उन्हें शंकर में एक ऐसे राष्ट्रभक्त का अन्तःकरण दिखाई दिया, जो देश के छोटे से छोटे व्यक्ति के दुःख-दर्द को देखकर रोया करता है, देश की दारुण दशा का अनुभव कर समस्त निजी सुख-सुविधाओं को तिलांजलि दे दिया करता है। शंकर चार वर्ष तक बदरिकाश्रम में रहे। परमगुरु आचार्य गौड़पाद का सान्निध्य लाभ कर शंकर का व्यक्तित्वरूपी कुसुम और भी विकसित हो उठा; एक-एक कर समस्त दोष समाप्त हो गए, रह गई केवल गुणों की सुरभि।

साहित्य-साधना

बदरिकाश्रमवास के काल में शंकर ने अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की। इसी काल में मुण्डकोपनिषद्-कारिका, वेदान्तप्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, गीता और वेदान्तसूत्र) के भाष्यों की रचना भी उन्होंने की। जगतप्रसिद्ध वेदान्तसूत्रों के भाष्य को देखकर तो बड़े-बड़े विद्वानों को विश्वास नहीं होता कि शंकर इतने अल्पकाल में और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इतनी अलौकिक विचार-सामग्री किस प्रकार प्रस्तुत कर पाए ! भाषा, विचार, मौलिकता, गम्भीरता और सरसता सभी दृष्टियों से ये भाष्य अतुलनीय हैं; आज तक अनेक पण्डितों ने वेदान्त-सूत्रों पर भाष्य लिखे हैं, किंतु शंकर के भाष्य की तुलना में कोई नहीं बैठते। किंवदंती है कि भाष्य-रचना से प्रसन्न होकर आचार्य गौड़पाद शंकर को कैलास ले गए, जहां उनके गुरु और परमगुरु आचार्य शुकदेव और महर्षि बादरायण वास करते थे। शुकदेव और बादरायण ऋषि के दर्शन कर शंकर धन्य हो गए; वह अतीन्द्रिय ज्ञान के भागी बन गए। इस किंवदंती में सत्यांश कितना है, यह तो कहा नहीं जा सकता, परन्तु इतना अवश्य है कि महर्षि बादरायण द्वारा रचित और आचार्य शुक द्वारा परिष्कृत वेदान्त-सूत्रों को जितनी गहराई के साथ शंकर ने समझा, उतना आज तक अन्य कोई नहीं समझ सका। व्यक्ति के विचारों को यथार्थ रूप में समझ लेने से अधिक व्यक्ति का साक्षात्कार और क्या होगा ?

माँ और गुरु की मृत्यु

इधर शंकर का अध्ययन पूर्ण हुआ, उधर उनका सम्बन्धी अग्निशर्मा कालटी से समाचार लाया कि मां आर्यम्बा मृत्यु-शैया पर पड़ी हैं। अग्निशर्मा ने शंकर को भारी धन-राशि भी दी, जो आर्यम्बा ने अपने पुत्र के पास भेजी थी। शंकर तो संन्यासी ठहरे, उन्हें धन-सम्पत्ति का क्या करना था ! उक्त धन से उन्होंने बदरिकाश्रम में श्री बदरीनाथ का मंदिर बनवा दिया, जहाँ आज भी सहस्रों हिन्दू प्रतिवर्ष भगवान् के चरणों में अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करने जाते हैं। माता की रुग्णता के समाचार ने शंकर के हृदय को अति व्यग्र बना दिया था। बदरिकाश्रम से कालटी पहुँचने में काफी समय लगनेवाला था। आवागमन के आज जैसे साधन तो तब थे नहीं। परन्तु माता के प्रेम से मतवाला पुत्र हवा से बातें करता कालटी की ओर चल पड़ा और सौभाग्य से कालटी पहुँचने पर शंकर को पूज्य माता के दर्शन हो गए। वह प्राणपण से माता की सेवा में जुट गए। माता की किसी आकांक्षा को शंकर ने अपूर्ण नहीं छोड़ा। एक दिन माता ने दुःख प्रकट किया कि रुग्ण होने के कारण वह नदी में स्नान करने नहीं जा सकतीं। शंकर ने उत्तर दिया, "क्यों चिंता करती हो, मां ? अब तक तुम नदी तक जाती थीं, अब नदी तुम्हारे पास आएगी !" और शंकर ने ऐसी व्यवस्था की कि नदी का जल उनके द्वार की सीढ़ियों का स्पर्श करने लगा !

अन्तिम काल में माता को अद्वैत का तत्त्व समझाने के लिए शंकर ने सीधी-सादी भाषा में 'तत्त्व-बोध' नामक एक अति सरल वेदान्त-ग्रंथ की रचना की। सब कुछ समझ कर भी माता ने भगवान् कृष्ण के विषय में चर्चा सुनने की इच्छा व्यक्त की। शंकर ने कृष्णाष्टक की रचना कर माता की इच्छा पूर्ण की। कहा जाता है, कृष्णाष्टक सुनकर आर्यम्बा इतनी भावविभोर हुईं कि फिर इहलोक का दर्शन करने वह उठी ही नहीं। 'कृष्णाष्टक' की रचना करते समय शंकर को अनुभव हुआ कि जनसाधारण केवल ज्ञान से संतुष्ट नहीं हो सकता, उसके लिए भक्ति की भावना भी आवश्यक है।

संन्यासी होते हुए भी शंकर माता के दाह-संस्कार करने को प्रवृत्त हुए। इस बात से अन्य व्यक्ति अति रुष्ट हो गए, क्योंकि संन्यासी द्वारा किसी का दाह-संस्कार किया जाना नियम-विरुद्ध माना जाता है। शंकर ने इन विरोधों की तनिक भी चिन्ता नहीं की और अकेले ही अपने घर के आँगन में चिता बनाकर माता के शव को उस पर रखा। हो सकता है, शंकर का यह कार्य शास्त्रविहित न हो, किन्तु संसार का कौन-सा संन्यासी शंकर की समता कर सकता है ? महापुरुष बनी हुई लीकों पर अपने पगों को नहीं घसीटते, वह तो अपने पद-चिह्नों से नवीन राहों का निर्माण करते हैं अथवा पुराने मार्गों को नवीन मोड़ देते हैं।

माता का अन्तिम संस्कार पूर्ण किया ही था कि गुरु गोविंदपाद की रुग्णता का समाचार आ पहुँचा। अतः गुरु के दर्शनार्थ शंकर अविलम्ब चल पड़े और दिन-रात चलकर एक मास में अमरकान्त जा पहुँचे। गुरुदेव अचेतन अवस्था में थे, किंतु परम प्रिय शिष्य का आगमन सुनकर उठ बैठे और शंकर को गले से लगा लिया। शंकर ने गुरु के चरण-स्पर्श कर दिग्विजय की अनुमति और सफलता का आशीर्वाद प्राप्त किया। 'ॐ ॐ' का उच्चारण करते-करते भगवद्-गोविंदपाद ब्रह्मलीन हो गए।

लोकशिक्षक के रूप में

भारतीय महापुरुषों के जीवन-वृत्त का अध्ययन करनेवाले छात्र इस बात से भली भाँति परिचित हैं कि अनेक महापुरुषों के प्रखर व्यक्तित्व की चमक सर्वसाधारण तक तब पहुँच पाती है, जबकि उक्त महापुरुषों के महान् गुरु निज जीवन-लीला समाप्त कर संसार से विदा हो जाते हैं। शंकर का सार्वजनिक जीवन भी गुरु के देहावसान के बाद ही प्रारम्भ होता है। हम देखते हैं कि अपने गुरु के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

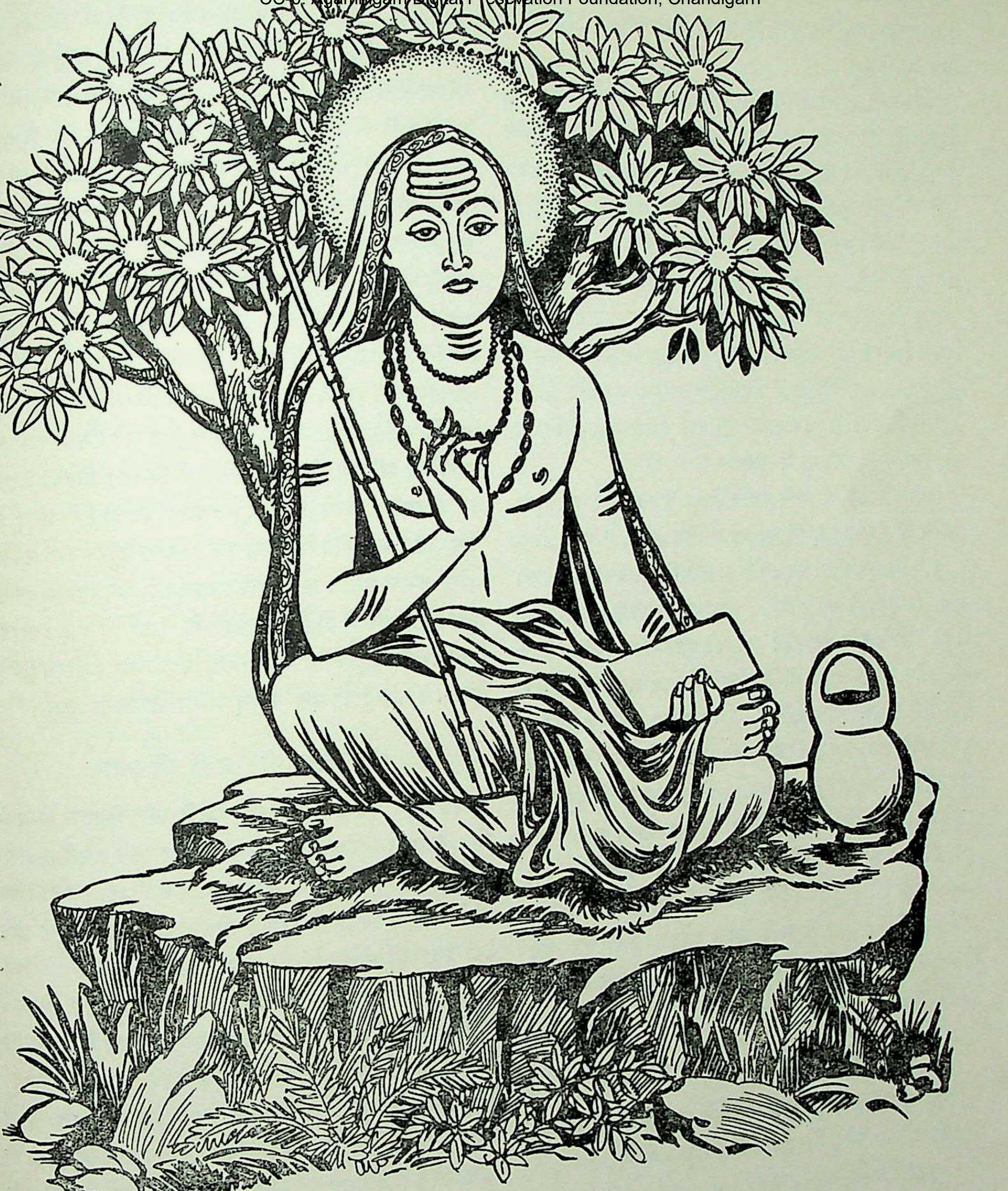

अद्वैत वेदान्त के महान् आचार्य शंकर

देहान्त के बाद कुछ दिन आचार्य शंकर काशी में जीवन व्यतीत करते हैं, और अपनी विद्वत्ता और सहृदयता की छाप वहाँ के पण्डितों और सर्वसाधारण जनों के मन पर अंकित कर देते हैं। तत्पश्चात् उनका महान् क्रांतिकारी रूप सामने आता है, जब प्रबल झंझा के समान जर्जर रूढ़ि-वृक्षों को झकझोरते हुए और धर्मविरोधी शक्तियों के विषाक्त कीटाणुओं को उड़ाते हुए वह राष्ट्र के एक कोने से दूसरे कोने तक गमन करते हैं। बड़े-बड़े राजा-महाराजा उनके पद-कमलों की वंदना करते हैं, दिग्गज पण्डित चँवर डुलाते हैं, और देश की कोटि-कोटि जनता उनके मार्ग में

अपने पलक बिछा देती है। इस प्रकार जगद्गुरु शंकर की दिग्विजय भारतीय संस्कृति और सभ्यता की दिग्विजय बन जाती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शंकर के समक्ष दो महान् उद्देश्य थे—(१) कर्मकांडी हिन्दुओं को उदार बनाकर उन्हें आत्मसात् करना; और (२) आर्य धर्म के विरोधी लोगों को परास्त कर उन्हें उक्त धर्म की ओर पुनः उन्मुख करना। प्रथम उन्होंने कर्मकांडी वर्ग को आत्मसात् करने का महान् कार्य हाथ में लिया। प्रयाग के निकट प्रतिष्ठानपुरी पहुँचकर उन्होंने आर्य धर्म के उद्भट सेनानी कुमारिल भट्ट के शिष्य प्रभाकराचार्य को, जो कि कर्मकाण्ड पर अनन्य विश्वास रखते थे, अपने मत से सहमय कराया और उन्हें निज धर्म-वाहिनी का एक प्रमुख सेनानी नियुक्त किया। शंकर की यह प्रथम महान् विजय थी, जिसने विरोधियों में हड़कम्प मचा दिया।

कुमारिल भट्ट के दूसरे प्रधान शिष्य मंडन मिश्र पर प्राप्त उनकी द्वितीय महान् विजय का उल्लेख करने से पूर्व आवश्यक है कि कुमारिल का संक्षिप्त-सा परिचय दे दिया जाय। एक राजकुमारी की पुकार सुनकर कुमारिल ने अल्पावस्था में ही भारतभूमि पर आर्य धर्म की पुनर्स्थापना की प्रतिज्ञा की, और बौद्ध आचार्यों से बौद्ध धर्म का ज्ञान प्राप्त कर वेद-विहित धर्म की स्थापना के लिए देश के एक कोने से दूसरे कोने तक भ्रमण किया तथा बौद्ध धर्म द्वारा प्रसारित अराष्ट्रीयता का उन्मूलन किया। किंतु सदा उनके हृदय में यह व्यथा बनी रही कि छद्म वेश में शिक्षा प्राप्त कर उन्होंने गुरु को धोखा दिया और एक महान् पाप किया है। इस पाप-प्रक्षालन हेतु कुमारिल ने प्रयाग में जलती ज्वाला का आलिंगन किया और विश्व के समक्ष आदर्श उपस्थित कर दिया कि हम भारतीय साध्य ही नहीं, साधन के पावित्र्य को भी कितना महत्व देते हैं।

मण्डन मिश्र से शास्त्रार्थ और विजय

इन्हीं कुमारिल भट्ट के स्थान-स्थान पर अनेक शिष्य थे, जिनकी प्रतिभा और विद्वत्ता की धाक समाज पर जमी हुई थी। कुमारिल का यह शिष्यवर्ग घोर कर्मकाण्डी था और बौद्ध धर्म की अवैदिक प्रणालियों के उन्मूलन के लिए वह वैदिक कर्मकाण्ड का पुनर्प्रचलन अनिवार्य मानता था। शंकर का मत इससे भिन्न था। वह समाज को पीछे लौटाना नहीं चाहते थे, अपितु समाजरूपी सरिता को एक नवीन किन्तु हितकारी मोड़ देना चाहते थे। उनकी दृष्टि में बौद्ध प्रणालियाँ उस जटिल वैदिक कर्मकाण्ड ही की प्रतिक्रिया थीं, जिसे समाज ज्यों-का-त्यों स्वीकार करने को तैयार नहीं था। इसीलिए शंकर ने समन्वयात्मक मार्ग ग्रहण किया। श्रेष्ठ वैदिक प्रणालियों के वह हिमायती थे, किंतु बौद्ध क्रान्ति के परिणामस्वरूप हुए कल्याणकारी परिवर्तनों के प्रति भी उन्हें घृणा नहीं थी। इसी कारण कर्मकाण्डियों के लिए वह 'प्रच्छन्न बौद्ध' थे और बौद्धों के लिए 'कट्टर वेदान्ती'। इन्हीं उदार विचारों के कारण शंकर का कुमारिल के शिष्यों से संघर्ष हुआ। प्रभाकराचार्य को दीक्षित कर इस संघर्ष को काफी अंशों में उन्होंने शमित कर दिया। किंतु कुमारिल के महान् शिष्य मण्डन मिश्र अभी मिथिला में शेष थे। शंकर स्वतः उनके पास गए, उनसे शास्त्रार्थ किया और अपने अकाट्य तर्कों के आधार पर अपने मत की प्रामाणिकता सिद्ध कर दिखाई। मण्डन मिश्र के मौन होने पर उनकी धर्मपत्नी भारती ने आचार्य शंकर से शास्त्रार्थ किया। विदुषी भारती का समाधान करने के लिए, बताया जाता है, शंकर को मृत राजा के शरीर में प्रवेश कर गार्हस्थ जीवन का अनुभव प्राप्त करना पड़ा। भारती के समाधान के पश्चात् मण्डन मिश्र और भारती दोनों ही शंकर के शिष्य हो गए। मण्डन मिश्र संन्यास ग्रहण कर सुरेश्वराचार्य बन गए। सुरेश्वराचार्य के रूप में शंकर को एक महान् कार्यकर्त्ता प्राप्त हुआ।

दिग्विजय और मठों की स्थापना

इस समय तक उनकी शिष्यमण्डली अति विशाल हो चुकी थी। अतः अब आचार्य ने देश में घूम-घूमकर अपने उपदेशों से लोगों को अनेकता के बीच एकता का दर्शन कराने का कार्य आरंभ किया। उन्होंने लोगों को उनके छोटे-छोटे देवी-देवताओं से वंचित नहीं किया, किंतु उन छोटे-बड़े देवी-देवताओं के बीच ही परम पिता परमात्मा के दर्शन कराए। उन्होंने समस्त उपासनापद्धतियों को एकसूत्रता में बद्ध करके विविध उपासकों के अन्तःकरण एक दूसरे से जोड़ दिए। हिन्दू समाज में प्रचलित 'पंचायतन' उपासना-प्रणाली शंकर की ही महान् देन है। शंकर की इसी उदार-हृदयता ने आगे चलकर जगन्नाथ के बौद्ध मंदिर को हिन्दू देवालय के रूप में परिणत कर दिया।

अपने कार्य को जारी रखने के लिए आचार्य ने देश में ऐसे 'मठों' की स्थापना की योजना संजोयी, जहाँ से दीक्षित होकर नवयुवक संन्यासी निकल सकें और सम्पूर्ण देश में धर्म की ध्वजा लहरा सकें। इसी उद्देश्य से दक्षिण में कांची में उन्होंने सर्वप्रथम मठ की नींव डाली, जिसका स्थान बाद में श्रृंगेरी-मठ ने ग्रहण कर लिया। सुरेश्वराचार्य श्रृंगेरी मठ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के पहले अधीश नियुक्त हुए।

दक्षिण में अपनी विजय-पताका लहराते हुए शंकराचार्य पूर्व की ओर अग्रसर हुए। शिव, विष्णु, लक्ष्मी के उपासकों के मध्य स्नेह और सहिष्णुता का भाव निर्माण कराते हुए वह जगन्नाथपुरी पहुँचे जहाँ के सम्बन्ध में प्रख्यात है—"जगन्नाथ का भात, पूछो जात न पाँत।" वहां शंकर ने कांची की भाँति गोवर्धन मठ की स्थापना की और तब काशी होते हुए वह चल पड़े पश्चिम की ओर। द्वारिकापुरी पहुँच कर उन्होंने वहाँ भी शारदापीठ नामक एक मठ की स्थापना की। इस प्रकार देश की तीन दिशाओं में आर्य-धर्म-पताका गर्व से मस्तक उन्नत कर लहराने लगी।

अब आचार्य उत्तर की ओर बढ़े। पंजाब में धर्मध्वजा फहराते वह सीधे बौद्धों के केन्द्र तक्षशिला पहुँचे। तक्षशिला में आचार्य का बौद्धाचार्यों से शास्त्रार्थ हुआ। शंकर ने भगवान् बुद्ध को विष्णु का अवतार सिद्ध कर दिखाया और प्रमाणित कर दिया कि वह भारतीय समाज में उत्पन्न कुरीतियों को दूर करने के लिए अवतरित हुए थे। बौद्धाचार्य शंकर के अकाट्य तर्कों से परास्त हो गए। बौद्ध धर्म की अनुयायी जनता आर्य धर्म के इस महान् आचार्य के आकर्षक व्यक्तित्व और सर्वग्राही विचारों से मोहित हो उठी। हिन्दुओं ने 'भगवान् बुद्ध' का जय-जय निनाद किया और बौद्धों ने 'वेदों की जय' का घोष। इस प्रकार भारतीय संस्कृति की पावन भागीरथी से निर्गत बौद्ध धारा पुनः उसी में सम्मिलित हो गई।

अभी शंकर के लिए महर्षि कश्यप की भूमि कश्मीर में धर्म की ध्वजा उड़ाना शेष था। कश्मीर के निवासी माँ शारदा के भक्त थे। वे तब तक शंकर की गुरुता स्वीकार करने को तैयार न थे, जब तक आचार्य देवी शारदा का आशीर्वाद प्राप्त न कर लेते। सबकी आशाओं के विपरीत आचार्य शंकर सदियों से बन्द शारदा के मन्दिर में प्रविष्ट होकर देवी का आशीर्वाद प्राप्त करने में सफल हुए। कश्मीर का कण-कण शंकर की कीर्ति-सुगंध से परिपूरित हो उठा। पर शंकर का कार्य अभी पूरा नहीं हुआ था। उनकी दृष्टि सुदूरपूर्व में अवस्थित प्राग्ज्योषित प्रान्त की ओर लगी हुई थी। उक्त प्रदेश में शाक्त मतावलम्बियों का प्रभाव था। तंत्रवाद और वाममार्ग के वासनाजन्य प्रभाव के कारण वहाँ के लोगों ने बुद्धि को तिलाञ्जलि दे रखी थी। वहां के धर्माचार्य प्रभाकराचार्य अथवा मण्डन मिश्र के समान सहिष्णु न होकर दुराग्रही थे, उनको तर्क के द्वारा समझाया जाना सम्भव नहीं था। शंकर ने जनसाधारण के समक्ष अपने विचार रखे। वामाचारों का प्रभाव धीरे-धीरे समाप्त होने लगा। किंतु अपने आधारहीन महल को ढहते देख वामाचार्यों ने शंकर के विरुद्ध षड्यन्त्र रचे। कापालिक द्वारा उनका शिरच्छेद कराने के दुष्प्रयास किए गए। परन्तु शंकर के शिष्यों की दक्षता के कारण उनके शरीर पर आँच न आ सकी। अभिनव गुप्त द्वारा तो बहुत समय तक आचार्य के विरुद्ध घातक योजनाएँ कार्यान्वित की जाती रहीं। इसी बीच शंकर को भगंदर का कष्टप्रद रोग हो गया। परन्तु रोग की असह्य पीड़ा और विरोधियों की कुयोजनाएँ भी आर्य धर्म के इस महान् सेनानी को अपने दृढ़ निश्चय से किंचित विचलित न कर सकीं। जिस कार्य के हेतु शंकर प्राग्ज्योषित आये थे, उसे पूर्ण करके ही वह शान्त हुए।

परमधामगमन

शान्ति की प्राप्ति के लिए हिमालय से उपयुक्त कौन-सा स्थान हो सकता है? अतः अब अचार्य शंकर बदरिकाश्रम पहुँचे और कुछ समय तक वहीं वास करते रहे। तत्पश्चात् केदारनाथ की यात्रा की उत्कंठा उनके अन्तःकरण में उत्पन्न हुई और वह चल पड़े केदारनाथ के दुस्तर मार्ग पर—कभी न लौटने के लिए। इस प्रकार यह अभिनव धर्मराज धर्म की साधना करते-करते धर्म ही के पथ पर ३२ वर्ष की अल्पावस्था में स्वजीवन का उत्सर्ग कर नर से नारायण बन गया!

भगिनी निवेदिता के शब्दों में—"पाश्चात्य जगत् मुश्किल से ही शंकराचार्य जैसे महान् व्यक्तित्व को समझ सकता है। इतने अल्प वर्षों में ऐसे दस महान् धर्मपीठों की संस्थापना कर देना, जिनमें चार आज भी अपनी प्रतिष्ठा के लिए प्रख्यात हैं; नवीन दर्शन की अभिव्यंजना के निमित्त संस्कृत का इतना अनुपम ज्ञान प्राप्त कर लेना कि आज बारह सौ वर्ष पश्चात् भी भारत का विद्वतसमांज उनकी धाक स्वीकार करे; ऐसे काव्य की रचना करना, जिसका अनन्य माधुर्य विदेशी और अशिक्षित लोगों को भी मोहित कर ले; और साथ ही साथ संतों के योग्य सहज स्वभाव तथा उन्मुक्त उल्लास से युक्त होकर शिष्यों के साथ सहवास करना वह महानता है, जिसका हम गुणानुवाद कर सकते हैं, किंतु उसे समझ नहीं सकते। हम एसिसी के संत फ्रांसिस की भक्ति, एबेलार्ड की विद्वता, मार्टिन लूथर के विचार-स्वातन्त्र्य और सामर्थ्य तथा इग्नेशस लायोला की राजनीतिक दक्षता का प्रसन्नता और विस्मय के साथ चिंतन करते हैं; किंतु शंकर के उस विवेक की कौन कल्पना कर सकता है जिसमें इन सब का सँगम है?"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विश्वकल्याणार्थ सूली पर चढ़नेवाले प्रेमयोगी महात्मा ईसा मसीह

विश्व-प्रेम का संदेश सुनानेवाले उस अमर पुरुष के बलिदान की कहानी, जिसने सूली पर चढ़ते समय भी अपने आततायियों के लिए कहा था—"हे परमपिता इन्हें क्षमा कर! ये नहीं समझते कि ये क्या कर रहे हैं!"

साधारण मनुष्य अपने धर्म, धर्मग्रंथों, धर्मगुरुओं के अंधानुसरण में ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान बैठते हैं। वे लकीर के फकीर होने में ही जीवन मानते हैं। जिस प्रकार गाय या बकरी केवल उतनी ही घूम-फिर सकती हैं, जितनी लम्बी रस्सी से वे बँधी हुई हों, उसी प्रकार अधिकांश मनुष्य दूसरे के बताये हुये मार्ग पर चलने में ही जीवन सफल समझते हैं। पर जिनको संसार 'बड़ा' कहता है, 'अवतार' समझता है, वे निज मस्तिष्क और हृदय के सामञ्जस्य द्वारा स्थापित मार्ग पर चलनेवाले व्यक्ति होते हैं। ईसा भी एक ऐसा ही व्यक्ति था।

ईसा का जन्म कुमारी मरियम की कोख से हुआ था। उसके जीवन के प्रथम ३० वर्ष कैसे बीते, इसका कोई लेखा नहीं। यूसुफ, जिसने पीछे मरियम से विवाह कर लिया था, एक बढ़ई था। इसी की दूकान में ईसा भी रन्दा-बसूला चलाता था। नाजरथ गाँव की जनता साधारण दर्जे की थी—दीन और दरिद्र! अधिकांश लोग मछुए थे। इन दीन-दरिद्र लोगों में ही ईसा रहा। समय पाने पर वही दीनता विनयशीलता में परिणत हो गई और वास्तविक दरिद्रता के प्रति ईसा की श्रद्धा दिन-दिन बढ़ती गई। ईसा के चारों ओर पाखंड का बोलबाला था। धर्म के वाह्यानुष्ठानों के प्रति लोगों में प्रगाढ़ भावना थी। व्रतों और उत्सवों के प्रति उनमें अंध श्रद्धा थी। नरपति हिरोद के अत्याचारों के जनता दुखी थी। रोमन साम्राज्य से छुटकारा पाने की उत्कट अभिलाषा उठ रही थी। हृदय-मंथन जोरों पर था। अनेक ऋषि प्रकट हो रहे थे और स्वप्न देख रहे थे उन स्वर्ण दिनों का, जब यरूशलम यहूदी साम्राज्य की राजधानी बनेगी और पुनः उनके राजा की तूती बोलेगी। ईसा से पहले ही यहुन्ना ने जौर्डन नदी के किनारे कहना आरम्भ कर दिया था कि "पाप का राज्य नष्ट होगा" और "स्वर्ग का राज्य निकट है।"

'मानव-पुत्र'

ईसा ने विचार करके अपने चारों ओर के जीवन के खोखलेपन को, उसकी कालिमा को देखा और उसने अपने को एकाकी अनुभव किया। उसे इच्छा हुई अपने सूने जीवन को प्रचलित धर्म का सहारा देने की, कुछ सांत्वना पाने की। पर उसकी जीवन-शक्ति उससे बोली, 'मूर्ख, सहारा मत टटोल! जीवन टटोल। जीवन से विमुख मत हो, अपने पैरों खड़ा होना सीख, किसी के सहारे नहीं। सहारा टटोलेगा, तो जीवन-पर्यन्त भयाक्रान्त रहेगा और तेरा सारा जीवन उस भय से युद्ध करते ही बीतेगा। इस प्रकार तुझे सुख कैसे मिलेगा?' ईसा ने सहारों और सांत्वनाओं को ठुकरा दिया और मानव-गौरव की रक्षा करने का दृढ़ निश्चय किया। इसी कारण उसने अपने को 'मानव का पुत्र' कहा। दीनता को उसने गले लगाया, क्योंकि उसने व्यक्तिगत रूप से दीनता के वास्तविक अर्थ समझ लिए थे। साथ ही वह जान गया था कि समाज व्यक्तियों का समूह है। जैसे व्यक्ति होंगे वैसा ही समाज होगा, और समाज के वातावरण से ही व्यक्तियों के विचार आक्रान्त होंगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ईसा ने वैयक्तिक जीवन को समझा। उसने समाज की नब्ज टटोली और रोग का निदान किया। उसने मानव को मानवता सिखाने का प्रण किया। उसने अपने जीवन के प्रथम ३० वर्षों में जिस मान का अभाव पाया, उस अभाव की सच्चाई का अनुभव किया। वह उसकी वास्तविकता की तह तक पहुँच गया। उसने जीवन को समझा और उसकी रक्षा में अपनी बलि चढ़ाने की सोच ली। तीन साल तक उसने अपने जीवन के उदाहरण द्वारा गैलिली, समरिया और यरूशलम तथा इनके निकटवर्ती प्रदेशों की जनता को 'स्वर्ग का राज्य निकट है' यह सुखद समाचार सुनाया। जब स्वर्ग का नाम लिया जाता है, तो लोग आसमान की तरफ देखने लगते हैं! नरक की कल्पना पैरों के तले की जमीन पर ही होती है! ईसा का अर्थ ऐसे स्वर्ग और नरक से हर्गिज नहीं था। वह तो प्रत्येक मानव को सुखी देखने का इच्छुक था। तभी तो वह प्रायः दीन-हीन जनता के मध्य में घूमता था जिनको उच्च कुलीन लोग छोटा, अछूत, नीच समझते थे, उनसे ही वह अधिक मिलता था और उन्हीं के यहाँ के निमन्त्रण स्वीकार करता था।

यहुन्ना से भेंट

ईसा के जीवन की प्रधान घटना यहुन्ना से भेंट थी। यहुन्ना उन इने-गिने यहूदियों में से था, जो रोमन साम्राज्य के नष्ट होने और ईश्वरीय साम्राज्य की स्थापना के स्वप्न देखा करता था। यह महापुरुष जौर्डन नदी के तट पर रहता था, और जो भी उसके दर्शनार्थ आते, उनकी ज्ञान-पिपासा बुझाता तथा उनको अपने विचारानुकूल बनाने के लिए जौर्डन नदी के जल से बपतिस्मा (दीक्षा) देता था। बपतिस्मा केवल एक वाह्यानुष्ठान था।

बपतिस्मा पानेवालों से यहुन्ना कहता था—"प्रायश्चित्त करो, क्योंकि स्वर्ग का राज्य निकट है।" "ईश्वर अपना क्रोध प्रकट करनेवाले हैं"—जिसका अर्थ था, बड़ी कठिन परीक्षा होनेवाली है। ईसा की तरह यहुन्ना भी धनी पुजारियों और उच्च कुलीन यहूदियों के विरुद्ध था और जिस प्रकार निम्न कोटि के मनुष्य ईसा की बातों को आदर से सुनते थे, उसी प्रकार यहुन्ना की भी बातें सुनी जाती थीं। यद्यपि यहुन्ना का कार्य-क्षेत्र जूडिया था, तदपि उसकी यशोगाथा ईसा के कानों में पड़ी थी। इस समय तक ईसा के भी अनेक भक्त हो गए थे। उनको साथ ले ईसा यहुन्ना की शिक्षा से लाभ उठाने के विचार से चल दिया। दोनों ही पूर्ण युवक थे। उनके अनेक विचार एक-से थे। दोनों में एक-दूसरे के प्रति श्रद्धा थी। कुछ दिनों तक ईसा ने यहुन्ना का पदानुसरण किया और बहुत दिनों तक समाज में प्रचलित बातों को माना भी, क्योंकि ईसा के विचार अभी पूर्ण परिपक्व नहीं हो पाए थे। परन्तु उन्होंने अपने मूल विचार पर कभी आघात नहीं होने दिया। बपतिस्मा का बहुत रिवाज हो चला था और इसीलिए ईसा ने भी उसे अपनाया। जौर्डन नदी के दोनों तटों पर बपतिस्मों की धूम मच गई। जनता बड़े चाव से ईसा के उपदेशों को सुनती थी।

यहुन्ना अधिकारी वर्ग की बहुत बुराई करता था, इससे अधिकारी उससे चिढ़े हुए थे। और जब हिरोदिया ने अपने पति को छोड़कर, जिसके साथ उसकी मर्जी के खिलाफ शादी कर दी गई थी, अन्तीपस के साथ नाजायज सम्बन्ध कर लिया, तो यहुन्ना ने उसके खिलाफ आवाज उठाई। अन्तीपस बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने यहुन्ना को मचेरो के किले में कैद करा दिया। अन्तीपस की इच्छा नहीं थी कि यहुन्ना का कत्ल किया जाय; क्योंकि जनता के भड़कने का उसे भय था।

चालीस दिन की तपश्चर्या और आत्मज्ञान

यहुन्ना के कैद होने के बहुत पीछे तक ईसा मृत्यु-सागर और जौर्डन नदी के निकटवर्ती प्रदेशों में उपदेश देता रहा। चालीस दिनों तक वह जूडिया के रेगिस्तान में रहा और उसने कठोर अनशन किया। यह जनश्रुति थी कि उस रेगिस्तान में भूतों और राक्षसों का डेरा था। जब ईसा वहाँ रहा, तो जनता ने नाना प्रकार की बातें कहनी प्रारम्भ कीं। यहाँ शैतान के साथ ईसा का घोर संग्राम हुआ। अनेक प्रलोभनों पर ईसा ने विजय प्राप्त की और अपने को मानवता के उद्धार के योग्य बनाया। यहाँ से ईसा गैलिली को लौट आया। यहुन्ना से भेंट होने और रेगिस्तान में ४० दिन की कठोर तपस्या के पश्चात् ईसा ने अपने को पहचाना। उसका व्यक्तित्व निखर आया। इतिहासज्ञों का कथन है कि यहुन्ना से भेंट होने के पहले ईसा के विचार कहीं अधिक अच्छे थे और यहुन्ना की भेंट के पश्चात् उनमें जो परिवर्तन हुए, वे उसको और नीचे घसीट लाए तथा उसकी उन्नति में बाधक हुए। यह भी कहा जाता है कि यदि यहुन्ना बन्दी न बनाया जाता, तो वाह्यानुष्ठानों के चक्कर में पड़कर ईसा ने अपने को खो दिया होता और वह विचार-रत्न जो ईसा ने संसार को दिए, इस रूप में कदापि न होते। यहुन्ना के बन्दी हो जाने पर ईसा का सहारा हट गया और उसने अब अपने ऊपर निर्भर होना सीखा। हाँ, यहुन्ना से भेंट होने का एक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लाभ उसे अवश्य हुआ था। वह उपदेश करना सीख गया था और अधिकारपूर्वक प्रत्येक बात को कहने लगा था।

स्वर्ग का राज्य

यहुन्ना की तरह ईसा ने भी 'स्वर्ग का राज्य निकट है' कहना आरम्भ किया। वह पूरा क्रांतिकारी बन गया। संसार का जड़ से सुधार करने का उसने बीड़ा उठाया और जिस आदर्श राज्य की वह कल्पना किया करता था, उसको स्थापित करने का उसने निश्चय किया। यहूदियों के लिए स्वर्ग के राज्य की कल्पना पूर्व-परिचित थी ही, परन्तु ईसा ने उसको सामाजिक रूप प्रदान किया। ईसा ने कहा—"संसार में पाप का राज्य हो रहा है। शैतान यहाँ का राजा है और सब उसी की आज्ञा-पालन में रहते हैं। राजा ऋषियों को मरवा डालते हैं। विद्वान् और पुरोहित जैसा कहते हैं, वैसा आचरण नहीं करते। भले लोगों के लिए रोने-धोने के अतिरिक्त इस संसार में कुछ नहीं है। इसलिए यह समाज, यह संसार भगवान् और उसके भक्तों का शत्रु है। पाप का घट भर गया है और वह फूटने ही वाला है। इसके बाद ही 'ईश्वर के राज्य' की बारी है।"

"यह राज्य एक आकस्मिक घटना की तरह प्रादुर्भूत होगा। दुनिया उलट जायगी। मानवता को पुनर्जीवन मिलेगा। अभी तो भले-बुरे मिले हुए हैं। कहा नहीं जा सकता कौन भला है, कौन बुरा है। दशा वैसी ही है, जैसे कि किसी खेत में अच्छे अनाज के साथ घास-फूस उग आने पर होती है। ईश्वरीय राज्य स्थापित होने पर भगवान् एक बड़ा जाल बिछाएँगे, जिसमें अच्छी और बुरी मछलियाँ फँस जायँगी। अच्छी ले ली जायँगी और बुरी फेंक दी जायँगी। प्रारम्भ में यह परिवर्तन बहुत धीमा होगा, बहुत सूक्ष्म रूप में होगा। इतना छोटा होगा, जैसा राई का दाना होता है। परन्तु जब वह दाना पृथ्वी में बो दिया जाता है, तो वृक्ष बन जाता है और उसकी पत्तियों की छाया में आकर चिड़ियां आराम करती हैं। यह परिवर्तन आटे में 'खमीर' की तरह होगा।" ईसा ने यों छोटे-छोटे कथानकों द्वारा जनता में अपने विचारों को फैलाना प्रारम्भ कर दिया।

यह स्वर्ग का राज्य स्थापित कौन करेगा, इस प्रश्न का उत्तर स्वयं ईसा था। समाज की दशा से ईसा का पूर्ण परिचय था। समाज क्या है, इस प्रश्न का उत्तर ईसा को मालूम था। इसी कारण ईसा ने उसके सुधार के उपादान भी समझ लिये थे। उसने अपने को 'मानव का पुत्र' प्रसिद्ध किया और अपने व्यक्तिगत उदाहरण, छोटे-छोटे परन्तु प्रभावशाली कथानकों और तर्क द्वारा समाज में अपने विचारों को फैलाया।

ईसा ने राजनीति का अपने कार्यक्षेत्र से बहिष्कार किया। उसने रोमन साम्राज्य के विरोध में खड़े होने की बात को सोचा तक नहीं। उसने सीजर (कैसर) को 'कर' दिया, जिससे कि उसके कार्य में बाधा न डाली जाय।

क्रान्तिकारी विचारक

ईसा ने सोचा, जब स्वाधीनता और अधिकार इस लोक के नहीं, तो व्यर्थ है उनके लिए झगड़ा करना। वह क्यों इनके लिए मरे-पचे? वह बहुत समय तक अपने मनोराज्य में रहा और लौकिक सुखों को घृणा की दृष्टि से देखा किया। परन्तु जनता से उसने यह नहीं कहा कि इस लोक में स्वर्ग का राज्य स्थापित नहीं करूँगा। बहुत-सी बातें ईसा की समझ में ठीक-ठीक नहीं आ रही थीं। जूडिया के रेगिस्तान में उसने बहुत-कुछ सोचा था। लौकिक प्रलोभनों से लड़ाई ठानी थी। उसने यह भी सोचा था कि स्वर्ग का राज्य हिंसात्मक उपायों से स्थापित किया जाय अथवा अहिंसात्मक उपायों से? क्रान्ति द्वारा या धैर्य द्वारा? पर वह कुछ निश्चय नहीं कर पाया। एक दिन गैलिली के भक्त लोगों ने उसे राजा बनाने का निश्चय किया, परन्तु यह सुनकर ईसा जङ्गल में भाग गया। उसकी विचारशीलता ने उसकी बहुत रक्षा की, अन्यथा वह भी एक साधारण क्रान्तिकारी ही रह जाता।

ईसा की इच्छा सदैव विचारों में क्रान्ति करने की रही। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर वह छोटे-छोटे कथानकों का, जिनको अपढ़ लोग बहुत आसानी से समझ सकते थे, प्रयोग करता था। उसने सदैव व्यक्ति से अपील की। उसके विचार डावांडोल थे—अभी स्थिर नहीं हो पाये थे। भलाई करने का विचार सदैव रहता था, पर उस भलाई का बीजारोपण अधिक-से-अधिक लोगों में किस प्रकार हो, यह वह तय नहीं कर पाता था। उसके विचारों में अपरिपक्वता थी। परन्तु एक बात पर वह दृढ़ था—स्वावलम्बन अथवा आत्मनिर्भरता अथवा आत्मा की स्वाधीनता। ईसा से पूर्व स्टोइक लोगों ने आततायियों के अधीन रहकर भी स्वाधीन बनकर रहना सीखा था। लेकिन ईसा ने ही यह अनुभव किया कि मानव की सच्ची स्वाधीनता आत्मनिर्भरता ही है। जब ईसा ने कहा, 'सीजर की वस्तुएँ सीजर को दो, और ईश्वर की वस्तुएँ ईश्वर को' तो उसने स्पष्ट कर दिया कि आततायी के राज्य में भी स्वाधीनतापूर्वक रहा जा

महापुरुष ईसा अपनी अमृतवाणी से लोगों को नवसंदेश सुना रहे हैं
[प्रसिद्ध चित्रकार रूबें का एक चित्र]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सकता है। परन्तु ऐसे सिद्धान्त में भय भी था। इसमें आततायी के अन्यायपूर्ण राज्य के लिए स्वीकृति थी।

परन्तु एक बड़ा लाभ ईसा ने अवश्य पहुँचाया। राजनीति को तुच्छ समझकर, उससे विमुख होकर जब उसने 'स्वर्ग के राज्य' के लिए 'खमीर' फैलाना प्रारम्भ किया, तो उसने संसार को यह दिखा दिया कि मानवता नागरिकता के ऊपर है, उससे ऊंची है।

संसारी जीव परिवर्तन चाहते हैं और उसके साथ-साथ अमरत्व भी। ईसा ने यही मानवी इच्छा पूर्ण की। 'स्वर्ग का राज्य निकट है', इस सुखसम्वाद में उसने उपर्युक्त दोनों अभिलाषाओं का सुन्दर समन्वय दिखाया।

राज्य की बात तो ईसा ने इसलिए लोगों से कही थी कि वे 'राज्य' का अर्थ समझते थे, उससे परिचित थे। वास्तव में ईसा राज्य को हानिकर समझता था। प्रत्येक न्यायाधीश को वह आततायी समझता था। उसने उनसे लड़ने के लिए लोगों को उभारा, और यह भी कहा कि विरोध के फलस्वरूप तुम्हें कष्ट भी मिलेंगे। परन्तु सामूहिक रूप से हिंसात्मक प्रयोग करने की बात उसने कभी नहीं कही। "मन की पवित्रता द्वारा तुम विजय प्राप्त करो", यही ईसा का सदैव कथन रहा। "ईश्वर का राज्य केवल निष्पाप जनों द्वारा स्थापित किया जायगा", इस सम्बन्ध में ईसा ने कभी दो मत प्रकट नहीं किए। न विद्वान्, न पुरोहित, न धनी; किन्तु स्त्रियां, साधारण जन, विनयशील प्राणी, शिशु, यही स्वर्ग का राज्य स्थापन करने के पूर्ण अधिकारी हैं। ईसा के जीवन का यह स्वप्न था कि समाज में उथल-पुथल मचा दी जाय, ऊँच-नीच की भावना मिटा दी जाय, और अधिकारी वर्ग का शिर नीचा किया जाय। वह यह जानता था कि संसार उसकी नहीं सुनेगा और उसकी जान का ग्राहक हो जायगा। परन्तु इससे क्या? उसकी बात साधारण दीनजन तो सुनेंगे, और वे अपनी विनम्रता से विजयी होंगे, इसका उसे निश्चय था।

ईसा की संसार के लिए सबसे बड़ी देन थी, 'अपनी आत्मा की रक्षा करो।' आत्मा का अर्थ यहां व्यक्तित्व से लेना चाहिये। व्यक्ति वही, जो सत्य को समझता हो। सत्य का त्याग व्यक्तित्व का हनन है। इसके लिए कोई भी व्यक्ति किस प्रकार तैयार हो सकता है? "ऐसे जीवन से क्या लाभ, यदि सत्य के हनन से संपूर्ण विश्व भी मिलता हो?" और आत्मरक्षा का केवल एक ही उपाय है, वही जिसको एक किसान बीज बोते समय काम में लाता है। वह अच्छे बीज बोता है और खराब थोथे बीज फेंक देता है। 'संसार के प्रलोभनों के लिए जो अपने जीवन की रक्षा करेगा, वह उसको खो देगा', इस कथन में विकसित व्यक्तित्व के चरम विजय के बीज छिपे हैं।

उपर्युक्त कथन से ही हम "पाप क्या है?" इसे समझ सकते हैं। जिससे सुख में बाधा पड़े, वही पाप है। सुख का अर्थ है सत्य, आत्मसौन्दर्य, चरम ऐश्वर्य अथवा ईश्वरत्व।

उपदेश और शिक्षा

ईसा ने ईश्वर को 'पिता' कहकर सम्बोधित किया है। ईश्वर ही, सत्य ही तो वास्तव में जीवन का सुख है। जीवन में भलाई उसी के द्वारा सम्भव है। जो 'पिता' का केवल लौकिक अर्थ लगाते हैं, वे केवल खिल्ली उड़ाने के हेतु से। वास्तव में वे समझते नहीं। न समझना ही पाप है। जब ईसा ने अपने को 'ईश्वर का पुत्र' कहा, तो उसने अतिशयोक्ति से काम नहीं लिया। उसने केवल एक सत्य का प्रकाशन किया। सत्य की ही छत्रछाया में तो सब सुखी रह सकते हैं। यदि जीवन में सत्य नहीं, तो कुछ भी नहीं। सत्य का ही प्रेम वास्तविक प्रेम है।

ईसा ने केवल एक बात का प्रचार किया, "तुझे केवल प्रेम करने का अधिकार है।" "अपने पड़ोसी को अपने समान ही चाहो," अर्थात् स्वार्थभावना का त्याग करो। किसी वस्तु को अपने लिए मत चाहो, बल्कि त्याग करना सीखो। इस शिक्षा द्वारा ईसा ने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का आदर्श सामने रखखा। यही आदर्श समझदार व्यक्तियों को आज दिन मान्य हो रहा है।

त्याग की साधना को ध्यान में रखकर ईसा ने अपने अनुयायियों से कहा, "त्याग द्वारा ही सब-कुछ तुमको मिला है, त्याग द्वारा ही उसका भोग करो।" ईसा की यह शिक्षा उपनिषद् के मन्त्र 'तेनत्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्' के समकक्ष है। "मेरे साथ चलो, या अकेले जहाँ जाओ, कुछ भी लेकर न जाओ—न पैसा, न खाना, न थैला, और न कपड़ा। पूर्ण त्याग की साधना करो। आतिथ्य पर जीवन-निर्वाह करो।" "जब तुमको कैद किया जाय और तुम्हारा मुकदमा हो, तो कोई प्रमाण मत दो। अपनी रक्षा का कोई प्रबन्ध मत करो।" "जब तक तुम मानव के पुत्र न हो जाओ, तब तक इजराइल के नगरों में पर्यटन करते रहो।" उसने कहा, "मैं जानता हूँ तुम मेमने हो और मैं तुम्हें भेड़ियों के बीच में भेज रहा हूँ।" "तुम पर मन्दिरों में कोड़े पड़ेंगे और तुम जेलों में सड़ोगे। भाई भाई की मृत्यु का कारण बनेगा और पिता पुत्र की मृत्यु का।" "जब

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तुम्हें एक देश में दुःख मिले, तुम दूसरे देश के लिए प्रयाण कर दो।" "भय मत करो यदि तुम्हारे शरीर को कष्ट मिले, क्योंकि तुम्हारी आत्मा अमर है" "जो बात सच्ची हो, उसको सबके सामने स्पष्ट कहो।" "सत्य के लिए माता, पिता, स्त्री, बच्चे, भाई और बहिन सबको छोड़ दो।" "जो मेरे लिए (सत्य के लिए) सर्वस्व का त्याग नहीं कर सकता, वह मेरा शिष्य नहीं हो सकता। वह मुझको (सत्य को) नहीं पा सकता।" "जो मेरा शिष्य बनना स्वीकार करे, वह मुझमें विलीन हो जावे। जो मुझसे (सत्य से) अधिक अपने संसारी माता-पिता से प्रेम करता है, वह मेरे योग्य नहीं, और जो अपने पुत्र अथवा पुत्री को मुझसे अधिक प्यार करता है, वह भी मेरे योग्य नहीं। जो अपने जीवन की रक्षा करेगा, वह उस जीवन से हाथ धो बैठेगा, और जो मेरे लिए और सुख-संवाद के लिए जीवन उत्सर्ग करेगा, उसे जीवन-दान मिलेगा। आत्मा को खोकर यदि जीवन मिला भी, तो किस काम का?"

बहुधा वह कहता था—"आओ, मेरे पास आओ, तुम जो श्रम करते हो, और भारी बोझों से दबे जाते हो। मैं तुम्हें आराम पहुँचाऊँगा। तुम मुझमें विश्वास करो, और मुझसे सीखो, क्योंकि मैं विनम्र हूँ। तुम्हारी आत्मा को शान्ति मिलेगी। मुझमें विश्वास करना अत्यन्त सरल है।"

प्रारम्भ में तो ईसा की शिक्षाओं के प्रति कोई विरोध नहीं हुआ, यद्यपि उसने अधिकारियों को अप्रसन्न करने के लिए कोई कसर उठा नहीं रक्खी थी। अन्तीपस के विरोध में कई बार उसने कह-सुन डाला था। अन्तीपस को भी ईसा की खबर लग चुकी थी। उसके अद्भुत कार्यों के बारे में वह सुन चुका था। उसने उससे मिलने की इच्छा प्रकट की, पर ईसा उससे दूर ही रहा।

एक बार किसी ने यह समाचार फैला दिया कि ईसा यहुन्ना के अतिरिक्त और कोई नहीं है। यहुन्ना पुनर्जीवित हो गया है। अन्तीपस घबराया और बहुत बेचन हो गया। वह ईसा को अपने राज्य से दूर रखने के उपाय सोचने लगा। कुछ कुलीन यहूदियों ने ईसा से कह दिया कि अन्तीपस तुम्हें मार डालने की फिक्र में है। पर ईसा ने इस बात की कोई परवाह न की।

नाजरथ में ही, जो ईसा की जन्मभूमि थी, उसका कोई आदर नहीं था। न तो उसके भाइयों ने उसकी बात को सुना और न गैलिली झील के तटवर्ती नगरों के निवासियों ने ही। ईसा को बड़ा अनुताप होने लगा। वह जीवन से बेजार-सा हो गया। उसने कहा, "लोमड़ियों के लिए जमीन के अन्दर गुफा हैं, चिड़ियों के लिए घोंसले हैं, पर मानव-पुत्र के लिए सिर रखने को भी कहीं स्थान नहीं है!"

विरोध का सामना :: फैरिसी वर्ग से टक्कर

यहूदियों में एक विशेष दोष था कि वे तर्क में बड़ी ही कटुता पैदा कर देते थे। ईसा को विरोध का जो सामना करना पड़ा, उसमें सबसे प्रबल 'फैरिसी' नामक ढोंगी वर्ग का प्रतिरोध था। फैरिसी लोगों को वाह्याडम्बर बहुत प्रिय था; उनकी श्रद्धा में गर्व की मात्रा आवश्यकता से अधिक थी। उनका आचरण उपहासजनक होता था और जो उनका आदर भी करते थे, उन्हें भी हँसी आए बिना न रहती थी। जनता ने फैरिसी वर्ग के लोगों के लिए अनेक उपनाम रख छोड़े थे। 'निक्फी' वे फैरिसी थे, जो गलियों में चलते समय पैरों को घसीटते हुए और पत्थरों से ठोकर मारते हुए चलते थे! 'किजाई' वे फैरिसी थे, जो आँखें बन्द करके चलते थे, जिससे किसी स्त्री पर दृष्टि न पड़ जावे! वे दीवारों से इतना सिर टकराते थे कि उनका मस्तक सदैव रुधिर से लथ-पथ रहता था। 'मदिन्किया' वे फैरिसी थे, जिनकी कमर मुँगरी के बेंटे की तरह दोहरी हो गई थी। 'शिकमी' वे फैरिसी थे, जो पीठ झुका कर चलते थे, मानो हजरत मूसा के नियमों का सारा बोझ उन्हीं के कन्धों पर रखा है। और 'रँगे सियार' वे फैरिसी थे, जो महापाखण्डी थे और वाह्याडम्बरों के पालन में तनिक भी त्रुटि नहीं करते थे।

ईसा को इस फैरिसी वर्ग से बड़ी चिढ़ थी। उसे दिखावा जरा भी पसन्द न था और फैरिसी वर्ग दिखाने को धर्म की पराकाष्ठा समझ बैठा था। ईसा सदैव छोटी जाति के विनयशील लोगों में ही उपदेश देता था और फैरिसी जाति इसमें अपना अपमान समझती थी। फैरिसी वर्ग अपने को बड़ा धर्मपरायण, निर्दोष और महान् पाण्डित्यपूर्ण समझता था। इसके विरुद्ध ईसा कहता था कि भयपूर्वक और कांपते हुए दिल से ईश्वर के राज्य की प्रतीक्षा करो। यहूदियों के मंदिरों में पाखण्ड सीमा को पार कर गया था। फल यह हुआ कि ईसा की फैरिसी वर्ग से सदैव उलझन रही। एक बार मंदिर से ईसा ने लेन-देन करने वाले व्यापारियों को निकाल बाहर किया और पुरोहितों को खूब खरी-खोटी सुनाई। ईसा और उसके अनुयायी फैरिसी जाति की रूढ़िगत बातों की जरा भी परवाह नहीं करते थे। फैरिसी लोग ईसा को इस पर टोकते थे और उलाहना देते थे। ईसा को फैरिसी वर्ग के दम्भ और प्रचण्ड गर्व से वैर था। एक बार ईसा ने कहा,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

"मैंने दो मनुष्यों को मन्दिर में पूजा के हेतु जाते देखा; उनमें से एक फैरिसी था, दूसरा अछूत। फैरिसी ने इस प्रकार प्रार्थना करनी प्रारम्भ की, 'हे ईश्वर, मैं तुझे धन्यवाद देता हूँ कि मैं औरों की तरह रुपया ऐंठनेवाला, अन्यायी, या व्यभिचारी नहीं हूँ और न मैं इस अछूत-सा ही हूँ। मैं सप्ताह में दो बार उपवास करता हूँ और अपने धन का दसवाँ हिस्सा दान कर देता हूँ।' और अछूत ने दूर खड़े होकर बिना आसमान की ओर आँख उठाए हुए, छाती पीटते हुए कहा—'हे ईश्वर, मुझ पापी पर दया कर।'" ईसा ने कहा, "मैं कहता हूँ कि अछूत फैरिसी की अपेक्षा अधिक अच्छा था।"

ऐसी बातों का फल यह हुआ कि फैरिसी ईसा के खून के प्यासे हो गए। ईसा आचार-विचार से रंचमात्र भी यहूदी न था। इसीसे ईसा की बातें फैरिसी लोगों के दिलों पर बड़ी करारी चोट करती थीं। वे तिलमिला जाते थे। जो श्लेष, जो व्यंग, ईसा के शब्दों में होता था, वह अभूतपूर्व चोट करनेवाला था।

गैलिली से विदा :: जूडिया में

यदि ईसा गैलिली में ही रहता, तब तो उसको जरा भी आंच न आती। परन्तु उसने सोचा यदि मेरा कार्यक्षेत्र गैलिली तक ही सीमित रहा, तो मैंने कुछ न किया। इसलिए उसने गैलिली से बाहर जूडिया में जाकर काम करने का निश्चय किया। उसकी यह इच्छा ही उसकी मौत का कारण हुई। ईसा के सम्बन्धियों ने भी उसे यरूशलम जाने की सलाह दी। उन्होंने उससे कहा—"अपने शिष्यों को दिखा दे कि तू क्या कर सकता है। जो खेल खेलना है, खुलकर खेल!" ईसा ने उन पर सन्देह की दृष्टि फेंकी और जाने से इन्कार किया। किन्तु जब सब यात्री टैबर्नेकिल के उत्सव के लिए चल दिए, तो ईसा भी अकेला, बिना सूचना के चल पड़ा। गैलिली से उसकी यह अन्तिम बार के लिए विदा थी।

जब वह जूडिया में आया, तो उसके शिष्य उससे मिले। परन्तु कितना परिवर्तन हो गया था! ईसा ने अपने को अपरिचित-सा अनुभव किया। उसने अपने को विरोध की दीवार से सिर टकराते हुए पाया। कुलीन यहूदियों ने उसका यहाँ भी पीछा किया। यहाँ उसने देखा कि उसकी बातों का जनता पर लेशमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ रहा है। उसके शिष्यों के प्रति तिरस्कार की भावना बहुत प्रबल थी। गैलिली के निवासी होने के कारण वे दुरदुराये जाते थे। ईसा ने इस बात का अनुभव किया कि कोलाहलपूर्ण नगर सबके धार्मिक विचारों के लिए उपयुक्त स्थान नहीं।

एक दिन उसके शिष्यों ने मन्दिर की सुन्दर इमारतों की ओर, वहाँ की सुन्दर-सुन्दर वस्तुओं की ओर, जो दीवारों पर टँगी हुई थीं, ईसा का ध्यान आकर्षित किया। ईसा ने कहा—"तुम इन इमारतों की ओर देखते हो? इनकी एक-एक ईंट का भी पता नहीं रहेगा।" उसने कहा, "देखना ही चाहते हो, तो इस गरीब विधवा की ओर देखो! इसने दान के सन्दूकचे में जो पाई डाली है, वही उसका सर्वस्व था। धनिकों के दान से इसके दान का अधिक महत्व है।" ऐसी बात मन्दिर के पुरोहितों को बहुत बुरी लगी।

ईसा ने यरूशलम आकर बहुत कटुता का अनुभव किया। दिल को शान्ति देने ने लिए वह बैथनी में, जो यरूशलम से डेढ़ घण्टे की यात्रा का मार्ग था, चला जाता था। यहाँ एक बहुत ही सुखी, सुन्दर परिवार था, जिसमें दो बहिनें—मार्था और मैरी---और उनका एक भाई लैजेरस रहते थे। यहाँ आकर ईसा अपने दुःखों को भूल जाता था।

यह बात नहीं थी कि यरूशलम की जनता में ऐसे व्यक्तियों का अभाव था, जो ईसा की बातें पसन्द करते हों। परन्तु लोग बहुत डरपोक थे। सामाजिक बहिष्कार का भय बहुत प्रबल था। यही नहीं, जो व्यक्ति यहूदी के-से आचार-विचार न रखता था, उसका सर्वस्व उससे छीन लिया जाता था।

ईसा के उपदेश के बीज यहाँ पथरीली जमीन पर ही पड़े। कुलीन यहूदी इस प्रयत्न में भी संलग्न रहते थे कि अधिकारीवर्ग को ईसा के विरोध में भड़का दें। पर ईसा को उनकी चालें मालूम थीं और वह अपनी बुद्धिमत्ता से उनको परास्त कर देता था।

एक दिन आवेश में आकार ईसा ने कह ही डाला—"हाथों से बनाए हुए इस मन्दिर को मैं नष्ट कर दूँगा, और बिना हाथों के तीन दिन के अन्दर दूसरा मन्दिर बना दूँगा।" इसका अर्थ लोगों ने बहुत लगाया, पर समझ न सके। बाद में ईसा का यही कथन उस अपराध-पत्र पर उद्धृत किया गया था, जिसे सुनाकर अंत में उसे क्रूस पर लटकाया गया था।

पुरोहितों ने ईसा के इस कथन को बहुत बुरा माना और उत्तर में कुलीन यहूदियों या फैरिसियों ने ईसा पर पत्थर बरसाये। उनका यह कार्य मूसा के नियम के आदेशानुसार था—"यदि कोई तुम्हें प्राचीन पंथ से विचलित करे, तो उसकी सुने बगैर उसे पत्थर मारो।" उन्होंने ईसा को पागल करार दिया और वे उसके प्राण लेने को उतारू हो गए।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

महापुरुष ईसा को सूली पर चढ़ाया जा रहा है
[प्रसिद्ध कलाकार रूबें का एक चित्र]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ईसा ने हेमन्त और शिशिर यरूशलम में ही बिताए। इसके पश्चात् वह जोर्डन के तट पर पर्यटनार्थ गया और जेरीको में जाकियस के यहाँ आतिथ्य स्वीकार किया। जाकियस पापी था। ईसा जानता था कि उसका पापी के घर में जाना कुलीन यहूदियों को खटकेगा। परन्तु उसने इसकी परवाह न की। जाकियस ईसा के उपदेश सुन कर अनुयायी बन गया और उसने अपना आधा धन दीनों अपाहिजों को दान कर दिया। जिस-जिससे उसने अन्याय द्वारा धन लिया था, उसे चौगुना धन वापिस कर दिया।

इसके बाद ही ईसा ने कुलीन यहूदियों पर प्रभाव डालने को इच्छा से एक मृतक को जीवन-दान दिया। कुलीन यहूदियों ने सभा की और उसमें उन्होंने यह संप्रश्न रक्खा, "क्या ईसा और यहूदी धर्म एक साथ रह सकते हैं?" और इसका केवल एक ही उत्तर था कि धर्म के रक्षार्थ एक मनुष्य का बलिदान आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है।

काइआफा ने, जो यरूशलम का प्रधान पुरोहित था, भयभीत होकर अपना आदेश सुना दिया। कुलीन यहूदियों को भय था कि कहीं उनके मन्दिर की आमदनी कम न हो जाय। आखिर ईसा को बन्दी करने का आज्ञापत्र निकाल दिया गया। परन्तु ईसा एफ्रन चला गया था। पासोवर का उत्सव निकट था। खयाल था कि ईसा इस उत्सव पर अवश्य यरूशलम आयगा और तभी वह बन्दी कर लिया जायगा। उत्सव से छः दिन पहले ईसा ने बेथनी में प्रवेश किया। तभी लाजेरस के यहाँ एक दावत का आयोजन किया गया। इस अवसर पर मेरी ने एक इत्रदान फोड़ दिया और इत्र को ईसा के चरणों पर उँडेल दिया। उसने उसके पैरों को अपने लम्बे-लम्बे बालों से पोंछा। घर भर में सुगन्ध-ही-सुगन्ध फैल गई। जूडास को यह अपव्यय भला न लगा। दूसरे दिन ईसा बेथनी से यरूशलम के लिए रवाना हो गया। गैलिली-निवासियों ने इस अवसर पर ईसा के लिए यरूशलम में विजय-प्रवेश का आयोजन किया। उन्होंने एक गर्दभ को सुन्दर वस्त्रों से सजाया और ईसा को उस पर बिठाया। अनेकों ने अपने सुन्दर वस्त्र सड़क पर बिछा दिए। जनता में से अनेकों ने उसको 'यहूदियों का राजा' कहकर पुकारा। इस पर कुछ कुलीन यहूदियों ने बुरा माना और ईसा से कहा कि वह अपने अनुयायियों को ऐसा कहने से मना करे। ईसा ने उत्तर में कहा, "यदि ये चुप हो जायँगे, तो सड़क का एक-एक रोड़ा पुकार उठेगा।" इस उत्सव पर यरूशलम में बड़ी भारी भीड़ थी। आगन्तुकों में बहुत उत्साह रहा। इसके बाद वह फिर बेथनी चला गया।

इस विजय-प्रवेश से यहूदियों में बहुत जोश फैला। वे क्रोध से अधीर हो उठे। काइआफा के घर पर फिर सभा हुई और निश्चय हुआ कि ईसा को बन्दी बनाया जाय। काम गुपचुप होकर किया जाय। पुरोहितों के गुमाश्तों ने ईसा के शिष्यों में से जूडास को फोड़ लिया।

बन्दी बनाये जाने से पहले ईसा ने अपने सब शिष्यों के साथ व्यालू किया और उस अवसर पर अपने शिष्यों से गम्भीरतापूर्वक कहा—"तुममें से एक मेरे साथ दगा करेगा।" सब शिष्य एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। उनकी समझ में न आया कि किस की ओर इशारा था। जूडास भी उपस्थित था। उसने साहस करके पूछा—"प्रभु, क्या आपका सन्देह मुझ पर है?"

ईसा के शिष्यों को ऐसा लगा, मानो कोई बड़ी भारी आफत आनेवाली है। जूडास को वह स्थान मालूम था, जहाँ ईसा प्रार्थना किया करता था। उसने पुरोहितों से कह दिया—"जिसका मैं चुम्बन लूं, उसी को तुम अपना बन्दी समझ लेना।" थोड़े-से रुपयों के प्रलोभन में पड़कर जूडास ने अपने को सदैव के लिए घृणा का पात्र बना लिया। जब पुरोहित जूडास को लेकर ईसा के पास पहुँचे, ईसा के सब शिष्य भाग खड़े हुए और ईसा बिना किसी आपत्ति के बन्दी बना लिया गया!

बलिदान

रोमन न्यायाधीश पाइलेट ने बाध्य होकर ईसा को पुरोहितों के सुपुर्द कर दिया। ईसा क्रूस (सूली) पर चढ़ा दिया गया! क्रूस पर चढ़े हुए ईसा के मुख से ये अमर शब्द निकले थे—"परमपिता, इनको क्षमा कर! ये नहीं समझते कि क्या कर रहे हैं!" उसके साथ उसी दिन दो प्राणियों को और सूली मिली थी। अनुश्रुति है कि दफनाने के तीसरे दिन ईसा की कब्र सूनी मिली थी! कहते हैं, वह पुनर्जीवित हो गया था इसके बाद तो मानों लपट की तरह जिस प्रकार ईसा द्वारा प्रतिपादित मत सारे संसार में फैला यह इतिहास का विषय है।

ईसा भी एक मनुष्य था, जैसे हम और आप हैं। परन्तु हममें और ईसा में एक महान् अन्तर था। वह अपने को जानता और समझता था और हम न अपने को समझते हैं, न जानते हैं। काश कि हम भी उसकी तरह अपने को समझ पाते, तो यह दुनिया कितनी सुहावनी बन जाती!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh